वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला का पुष्प नं. 393
ISBN 978-93-82071-78-5

तीनलोक जिनमंदिर

(तीनलोक के अकृत्रिम-कृत्रिम जिनमंदिर)

–संकलनकर्त्री–

बीसवीं सदी के प्रथमाचार्य चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागर जी महाराज के प्रथम शिष्य प्रथम पट्टाचार्य श्री वीरसागर जी महाराज की सुशिष्या, जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी, चारित्रचन्द्रिका, तीर्थोद्धारिका, राष्ट्रगौरव, युगप्रवर्तिका, सिद्धान्तचक्रेश्वरी, 250 से अधिक ग्रंथों की लेखिका, दो बार डी.लिट्. की मानद उपाधि से अलंकृत वाग्देवी, पूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि

श्री ज्ञानमती माताजी

शरदपूर्णिमा-18 अक्टूबर 2013, पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के 62वें त्यागदिवस
एवं 80वें जन्मदिवस-अमृत महोत्सव के अवसर पर प्रकाशित

-प्रकाशक-

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.

फोन नं.- (01233) 280184, 280994

Website : www.jambudweep.org, www.encyclopediaofjainism.com
E-mail : jambudweeptirth@gmail.com Facebook : jaintirthjambudweep

प्रथम संस्करण	वीर नि. सं. 2539	मूल्य
500 प्रतियाँ	आश्विन शुक्ला पूर्णिमा, 18 अक्टूबर 2013	140/-रु.

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा संचालित

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला में दिगम्बर जैन आर्षमार्ग का पोषण करने वाले हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं के न्याय, सिद्धान्त, अध्यात्म, भूगोल-खगोल, व्याकरण आदि विषयों पर लघु एवं वृहद् ग्रंथों का मूल एवं अनुवाद सहित प्रकाशन होता है। समय-समय पर धार्मिक लोकोपयोगी लघु पुस्तिकाएं भी प्रकाशित होती रहती हैं।

-: संस्थापिका एवं प्रेरणास्रोत :-

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी

-: मार्गदर्शन :-

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी

(पीएच.डी. की मानद उपाधि से अलंकृत)

-: निर्देशक एवं सम्पादक :-

स्वस्तिश्री कर्मयोगी पीठाधीश रवीन्द्रकीर्ति स्वामी जी

-: प्रबंध सम्पादक :-

जीवन प्रकाश जैन

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

कम्पोजिंग - ज्ञानमती नेटवर्क

जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.

विषयानुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ संख्या

प्रस्तावना आदि की विषय-सूची

१.	सम्पादकीय	१६
२.	आद्य वक्तव्य	१८
३.	योजन एवं कोश बनाने की विधि	२३
४.	प्रस्तावना	२४
५.	तीनलोक जिनमंदिर एक अद्भुत कृति	२७
६.	दो शब्द	२९
७.	मेरे उद्गार	३०
८.	पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी का परिचय	३२
९.	दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान का परिचय	४०
१०.	वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला के सहयोगियों की सूची	४६
११.	स्वाध्याय प्रारंभ एवं समापन की विधि	४७
१२.	शास्त्र स्वाध्याय का प्रारंभिक मंगलाचरण	४८

ग्रंथ विषय सूची

तीनलोक जिनमंदिर

१.	मंगलाचरण-चैत्यभक्ति (पद्यानुवाद एवं अर्थ सहित)	१
२.	प्रतिक्रमण भक्ति (निषिद्धिका दण्डक) (पद्यानुवाद सहित)	११
३.	प्रतिक्रमण भक्ति (निषीधिका दण्डक) संस्कृत टीका एवं हिन्दी टीका सहित	१४
४.	नन्दीश्वर भक्ति (पद्यानुवाद सहित)	२२
५.	त्रैलोक्य चैत्यवन्दना (पद्यानुवाद सहित)	३१
६.	मंगलाचरण	४०
७.	तीन लोक रचना	४०

(१) अधोलोक के जिनमंदिर

भवनवासी देवों के जिनमंदिर

तिलोयपण्णत्ति से—

८.	भवनवासी देवों के जिनमंदिर	४७
९.	वेदी परकोटे में भवनों के चारों तरफ चैत्यवृक्ष हैं	४८
१०.	भवनवासी देवों के भवनों में जिनमंदिर	५०
११.	भवनवासी देवों के जिनमंदिर की संख्या	५१

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ संख्या

१२. इन्द्रों के यहां ओलगशाला के आगे चैत्यवृक्ष ५२

त्रिलोकसार से—

३. भवनवासी देवों के जिनमंदिर ५३

जम्बूद्वीपपण्णत्ति से—

१४. भवनवासी व व्यंतर देवों के आवास ५४

सिद्धान्तसार दीपक से—

१५. भवनवासी देवों के भवनों में जिनमंदिर ५५

लोक विभाग से—

१६. भवनवासी व व्यंतरदेवों के आवास ५८

तत्त्वार्थवार्तिक से—

१७. भवनवासी व व्यंतर देवों के निवासस्थान ६०

तत्त्वार्थवृत्ति से—

१८. भवनवासी एवं व्यंतरदेवों के स्थान कहाँ हैं ६३

व्यंतर देवों के जिनमंदिर

तिलोयपण्णत्ति से—

१९. व्यंतर देवों के जिनमंदिर ६५

२०. व्यतंर देवों के चैत्यवृक्ष ६७

त्रिलोकसार से—

२१. व्यंतर देवों के जिनमंदिर ६८

सिद्धान्तसार दीपक से—

२२. व्यंतर देवों के जिनमंदिर ७२

२३. द्वीपों में व्यंतर देवों के नगर ७७

२४. व्यंतर देवों के चैत्यवृक्ष ७८

२५. देवों के नगर के बाहर वन-उद्यान में चैत्यवृक्ष में जिनप्रतिमाएँ ७९

लोकविभाग से—

२६. व्यंतर देवों के चैत्यवृक्ष ७९

(२) मध्यलोक के जिनमंदिर

त्रिलोकसार से—

२७. मध्यलोक के जिनमंदिर ८३

२८. नरलोक के अकृत्रिम जिन चैत्यालयों की संख्या ८४

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ संख्या
२९.	पाँचों मेरू पर्वत कहाँ–कहाँ हैं ?	८४
३०.	जम्बूद्वीप के सात क्षेत्रों के नाम	८५
३१.	छह कुलाचलों का वर्णन	८५
३२.	कुलाचलों के वर्ण	८६
३३.	सुमेरू पर्वत का वर्णन	८६
३४.	विजयमेरू आदि चार मेरू का वर्णन	८७
३५.	धातकीखण्ड द्वीप और पुष्करार्धद्वीप में दो–दो इष्वाकार पर्वत के जिनमंदिर	८९
३६.	धातकी व पुष्करार्धद्वीप में हिमवान आदि पर्वतों की संख्या	८९
३७.	धातकीखण्ड द्वीप–पुष्करार्धद्वीप के हिमवान पर्वत आदि के आकार का वर्णन	९०
३८.	मानुषोत्तर पर्वत के जिनमंदिर एवं कूटों की संख्या	९१
३९.	मानुषोत्तर पर्वत के कूटों की संख्या	९२
४०.	नन्दीश्वर द्वीप के जिनमंदिर	९३
४१.	कुण्डलवर पर्वत के कूटों की संख्या	९७
४२.	रुचकवर पर्वत के कूटों की संख्या	९८

मध्यलोक के जिनमंदिर

तिलोयपण्णत्ति से—

४३.	जम्बूद्वीप में ३११ पर्वत हैं	१०२
४४.	पाण्डुकवन के जिनमंदिर	१०२
४५.	भरतक्षेत्र के विजयार्ध पर्वत पर जिनमंदिर व कूट	१०९
४६.	ऐरावत क्षेत्र के विजयार्ध पर्वत पर जिनमंदिर व कूट	११३
४७.	हिमवान पर्वत के जिनमंदिर व देवभवन	११४
४८.	नाभिगिरि पर जिनमंदिर	११७
४९.	महाहिमवान पर्वत	११८
५०.	निषध पर्वत का वर्णन	११९
५१.	हरिक्षेत्र में नाभिगिरि	११९
५२.	सोलह वक्षार पर्वत के जिनमंदिर व देवभवन	१२०
५३.	नीलगिरि पर्वत के जिनमंदिर व कूट	१२०
५४.	रम्यक क्षेत्र में नाभिगिरि	१२१
५५.	रुक्मी पर्वत पर जिनमंदिर व कूट	१२१
५६.	हैरण्यवत क्षेत्र में नाभिगिरि	१२२

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ संख्या
५७.	शिखरी पर्वत पर जिनमंदिर व कूट	१२२
५८.	धातकीखण्ड द्वीप में इष्वाकार पर्वत	१२३
५९.	धातकीखण्ड द्वीप में हिमवान आदि व विजयार्ध पर्वत	१२४
६०.	धातकीखण्ड द्वीप व पुष्करार्ध के मेरु कुलाचल आदि की संख्या	१२५
६१.	पुष्करार्ध द्वीप में मानुषोत्तर पर्वत	१२६
६२.	पुष्करार्ध द्वीप में इष्वाकार पर्वतादि का वर्णन	१२७
६३.	नव द्वीप समुद्रों के रक्षक देवों के नाम	१२८
६४.	नन्दीश्वर द्वीप के जिनमंदिर	१२९
६५.	कुण्डलवर द्वीप के जिनमंदिर	१३४
६६.	रुचकवर द्वीप के जिनमंदिर	१३६
६७.	रुचकवर पर्वत की देवियाँ तीर्थंकर के जन्मकल्याणक में आती हैं	१३७
६८.	रुचकवर पर्वत के जिनमंदिर	१३८

जम्बूद्वीप में सुमेरू पर्वत कहाँ हैं ?

त्रिलोक भास्कर से—

६९.	विदेह क्षेत्र का वर्णन	१४०
७०.	सुमेरु पर्वत का वर्णन	१४०
७१.	सुमेरु पर्वत के वर्ण का कथन	१४१
७२.	सुमेरु पर्वत की हानि-वृद्धि का क्रम	१४१
७३.	चूलिका का वर्णन	१४१
७४.	मेरू पर्वत के शिखर का विस्तार	१४२
७५.	सुमेरु की कटनी के स्थान का प्रमाण	१४२
७६.	पाण्डुकवन का वर्णन	१४२

जम्बूद्वीप का संक्षिप्त अवलोकन

जम्बूद्वीप पुस्तक से—

७७.	जम्बूद्वीप का सामान्य वर्णन	१४२
७८.	विदेहक्षेत्र के बीचोंबीच में सुमेरू पर्वत	१४३
७९.	तीन सौ ग्यारह पर्वत कहाँ हैं	१४३
८०.	जम्बूद्वीप में ५६८ कूट हैं	१४३
८१.	जम्बूद्वीप की सम्पूर्ण नदियां कितनी हैं और कहाँ-कहाँ हैं ?	१४४
८२.	चौंतीस कर्मभूमि	१४५

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ संख्या
८३.	छह भोगभूमि	१४५
८४.	जम्बूवृक्ष-शाल्मलि वृक्ष	१४५
८५.	चौंतीस आर्यखण्ड	१४५
८६.	पांच सौ सत्तर म्लेच्छखण्ड	१४५
८७.	वेदी और वनखण्ड	१४५
८८.	जम्बूद्वीप के ७८ जिनचैत्यालय	१४६
८९.	इस जम्बूद्वीप में हम कहाँ हैं ?	१४६
लोक विभाग से—		
९०.	मानुषोत्तर पर्वत	१४७
९१.	द्वीप-समुद्रों के अधिपति देवों के नाम	१४७
९२.	नन्दीश्वर द्वीप	१४८
९३.	कुण्डलवर द्वीप के जिनमंदिर	१४९
९४.	रुचकवर द्वीप के जिनमंदिर	१५०
तत्त्वार्थवार्तिक से—		
९५.	नन्दीश्वर द्वीप के ५२ जिनमंदिर	१५२
९६.	कुण्डलवर द्वीप में ४ जिनमंदिर	१५५
९७.	रुचकवर द्वीप में ४ जिनमंदिर	१५६
	कूटादि के जिनमंदिर	
तिलोयपण्णत्ति से—		
९८.	सुमेरु के सौमनसवन में ९ कूट हैं	१५९
९९.	सुमेरु के नंदनवन में बलभद्र आदि ९ कूट हैं	१६०
१००.	हिमवान के पद्मसरोवर में तेरह कूट	१६१
१०१.	महाहिमवान के महापद्म सरोवर में तेरह कूट	१६१
१०२.	निषध पर्वत के नौ कूट	१६२
१०३.	निषध पर्वत के तिगिञ्छ सरोवर में तेरह कूट	१६३
	गजदंत पर्वत पर कूट	
१०४.	सौमनस गजदंत पर्वत पर ७ कूट हैं	१६३
१०५.	विद्युत्प्रभ गजदंत पर्वत पर ९ कूट	१६४
१०६.	गंधमादन गजदंत पर्वत पर ७ कूट	१६५
१०७.	माल्यवान गजदंत पर नौ कूट हैं	१६५

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ संख्या
१०८.	सीतोदा नदी कुण्ड	१६५
१०९.	कच्छा विदेह क्षेत्र में विजयार्ध पर्वत के ९ कूट	१६६

कूटादि के जिनमंदिर

त्रिलोकसार से—

११०.	सुमेरु के नन्दनवन में बलभद्र आदि ९ कूट हैं	१६८
१११.	हिमवान आदि छह पर्वत एवं विजयार्ध पर्वत के कूटों का वर्णन	१६९
११२.	भरत-ऐरावत के विजयार्ध के कूटों के नाम	१७२
११३.	चार गजदंत के कूटों के नाम	१७४
११४.	सोलह वक्षार के कूटों के नाम	१७५

मध्यलोक में नदी, पर्वत, वेदिका, तोरणद्वार एवं गंगादि के गिरने के स्थान पर जिनप्रतिमाएँ

तिलोयपण्णत्ति से—

११५.	गंगाकूट पर जिनप्रतिमा (गंगा नदी अभिषेक करती है)	१७८
११६.	सीता नदी के लवण समुद्र के प्रवेश की तरफ देवारण्यवन में जिनमंदिर	१७९
११७.	भूतारण्य वन में जिनमंदिर हैं	१७९
११८.	पुष्करिणी में सौधर्मेन्द्र का वैभव (पुष्करिणी में सौधर्मेन्द्र व उसके परिवार देवों के आसन)	१८०
११९.	मानस्तंभों में नीचे व ऊपर प्रतिमाएं हैं	१८१
१२०.	जम्बूद्वीप के परकोटे का एवं जिनमंदिर का वर्णन	१८२
१२१.	विजयद्वार का एवं उनमें जिनप्रतिमाओं का वर्णन	१८५
१२२.	पूर्व के विजयद्वार का वर्णन	१८६
१२३.	आकाश में अधर-विजयदेव का नगर-उसमें जिनमंदिर	१८६
१२४.	वापिकाओं में जिनमंदिर	१८७
१२५.	जम्बूद्वीप की समस्त नदियों के निर्गमन व प्रवेश स्थान के तोरणद्वारों पर जिनप्रतिमाएँ	१८८
१२६.	नदी के तट पर जिनप्रतिमाएँ	१९०
१२७.	नदियों के तोरणद्वारों पर जिनप्रतिमाएँ	१९०
१२८.	रूप्यकूल कुंड पर महल की छत पर जिनप्रतिमाएं हैं	१९१
१२९.	सुवर्णकूल कुंड पर महल की छत पर जिनप्रतिमा	१९१
१३०.	यमक शैल पर देवभवन एवं पांडुकवन में जिनमंदिर	१९१
१३१.	सीता नदी के सरोवर में जिनमंदिर	१९२

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ संख्या

१३२. दिग्गज पर्वत पर जिनमंदिर १९३

त्रिलोकसार से—

१३३. गंगा आदि नदियों के गिरने के स्थान पर महल की छत पर जिनप्रतिमाएँ १९४

१३४. जहाँ नदियाँ गिरती हैं वहाँ भगवान की जिनप्रतिमाएँ हैं १९६

१३५. तोरणद्वारों पर जिनप्रतिमाएँ हैं १९७

१३६. सभी पर्वत, नदी आदि के दोनों पार्श्वभागों में वेदिकाएँ हैं १९८

१३७. नन्दनवन के वापी में सौधर्मेन्द्र प्रासाद १९९

१३८. जम्बूद्वीप में कुल नदियाँ २००

१३९. विदेह क्षेत्र की सम्पूर्ण नदियाँ २०१

जम्बूद्वीपपण्णत्ति से—

१४०. गंगा कूट पर भगवान की प्रतिमाएँ (गंगा नदी द्वारा अभिषेक) २०३

१४१. कांचन पर्वत पर जिनमंदिर २०५

आदिपुराण से—

१४२. मानस्तंभों के मूलभाग में जिनप्रतिमाएँ २०६

तत्त्वार्थवार्तिक से—

१४३. सुमेरु के नन्दनवन में वापिकाएँ एवं जिनमंदिर २०७

तत्त्वार्थवृत्ति से—

१४४. जम्बूद्वीप के परकोटे के चारों द्वारों के अग्रभाग में जिनप्रतिमाएँ हैं २०८

अकृत्रिम वृक्षों पर जिनमंदिर

१४५. मंगलाचरण २१०

त्रिलोकसार से—

१४६. जम्बूद्वीप में जम्बूवृक्ष पर जिनमंदिर २११

१४७. जम्बूद्वीप में शाल्मली वृक्ष पर जिनमंदिर २१२

१४८. जम्बूद्वीप में जम्बूवृक्ष एवं शाल्मली वृक्ष की परिवार वृक्षों सहित संख्या २१२

तिलोयपण्णत्ति से—

१४९. धातकीखण्ड द्वीप में धातकीवृक्ष एवं शाल्मली वृक्षों पर जिनमंदिर २१३

लोक विभाग से—

१५०. अढ़ाई द्वीप में जम्बूवृक्ष आदि दस महावृक्ष हैं २१३

१५१. धातकीखण्ड द्वीप में वृक्षों की संख्या २१३

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ संख्या

जम्बूद्वीपपण्णत्ति से—

१५२. पुष्करार्ध द्वीप में पुष्करवृक्ष एवं शाल्मली वृक्षों पर जिनमंदिर २१४

तत्त्वार्थवार्तिक से—

१५३. पुष्करार्धद्वीप में पुष्करवृक्ष २१४

१५४. पुष्करार्ध द्वीप में पुष्करवृक्ष एवं शाल्मली वृक्ष के परिवार वृक्षों सहित संख्या २१४

१५५. ढाई द्वीप के कुल वृक्षों की संख्या २१४

अकृत्रिम कमलों में जिनमंदिर

१५६. मंगलाचरण २१५

१५७. धातकीखण्ड द्वीप में कमलों की संख्या २१५

तिलोयपण्णत्ति से—

१५८. कमलों में जिनमंदिर २१६

१५९. रोहितास्या नदी का वर्णन २१९

१६०. महापद्म सरोवर में कमलों पर जिनमंदिर २१९

१६१. तिगिञ्छ सरोवर के कमलों में जिनमंदिर २२०

१६२. पुण्डरीक सरोवर में कमलों में जिनमंदिर २२१

१६३. नीलगिरि के केसरी सरोवर में कमलों में जिनमंदिर २२२

१६४. महापुण्डरीक सरोवर के कमलों में जिनमंदिर २२२

त्रिलोकसार से—

१६५. सीता-सीतोदा के सरोवरों में जिनमंदिर २२३

१६६. हिमवन आदि कुलाचलों पर स्थित सरोवरों के नाम २२४

१६७. कमलों का वर्णन २२५

१६८. कुलाचलों का उदय एवं सरोवरों के व्यास आदि का प्रमाण २२५

१६९. कमल, कमलनाल एवं कमल कर्णिका का उत्सेधादि २२६

१७०. कमलों पर निवास करने वाली देवियाँ एवं परिवार कमल की संख्या २२७

जम्बूद्वीपपण्णत्ति से—

१७१. पद्म सरोवर में प्रत्येक कमल में जिनमंदिर हैं २२७

१७२. सीता-सीतोदा नदी के सरोवरों में कमलों पर जिनमंदिर २२८

१७३. सीतोदा नदी के सरोवर में जिनमंदिर २३०

लोक विभाग से—

१७४. सीता-सीतोदा नदी के २० सरोवरों में नागकुमारी देवियों के कमलों में जिनमंदिर २३१

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ संख्या

तिलोयपण्णत्ति से—

१७५. धातकीखण्डद्वीप में धातकी वृक्ष के परिवार वृक्ष एवं कमलों की संख्या २३३

लोक विभाग से—

१७६. धातकीखण्ड द्वीप व पुष्करार्धद्वीप में पर्वत, नदी, सरोवर, कुण्ड आदि २३३

१७७. जम्बूद्वीप संबंधी कुल कमलों की संख्या २३४

१७८. धातकीखण्ड द्वीप संबंधी कुल कमलों की संख्या २३४

१७९. पुष्करार्ध द्वीप संबंधी कुल कमलों की संख्या २३५

१८०. ढाईद्वीप के कुल कमलों की संख्या २३६

१८१. तीर्थंकर माता की सेवा करने वाली श्री आदि देवियाँ कहाँ से आती हैं ? २३६

लवण समुद्र में जिनमंदिर

त्रिलोक भास्कर से—

१८२. समुद्र के मध्य में पाताल २३७

१८३. चार उत्कृष्ट पाताल २३७

१८४. चार मध्यम पाताल २३८

१८५. एक हजार जघन्य पाताल २३८

तिलोयपण्णत्ति से—

१८६. लवण समुद्र में जिनमंदिर २३८

त्रिलोकसार से—

१८७. लवण समुद्र में अधर नगर २४२

१८८. लवण समुद्र में अभ्यन्तर द्वीप २४३

१८९. गौतम द्वीप २४३

१९०. मागध, वरतनु, प्रभासद्वीप २४४

जम्बूद्वीपपण्णत्ति से—

१९१. लवण समुद्र में पर्वतों पर जिनमंदिर २४४

१९२. लवण समुद्र में गौतम द्वीप में जिनमंदिर २४५

पद्मपुराण से—

१९३. लवण समुद्र के अंदर लंका-नगरी में जिनमंदिर २४६

१९४. लवण समुद्र में वानर द्वीप हैं २४७

१९५. लंका नगरी का वर्णन २४९

१९६. लवण समुद्र में लंका नगरी में अनेकों जिनमंदिर एवं श्री शांतिनाथ मंदिर २५०

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ संख्या
१९७.	श्री रामचन्द्र ने लंका में शांतिनाथ मंदिर के दर्शन किए (एक हजार खंभों सहित मंदिर)	२५१
१९८.	श्री रामचन्द्र ने लंका में पद्मप्रभ भगवान के मंदिर के दर्शन किए (एक हजार खंभों सहित मंदिर)	२५३

मध्यलोक में चैत्यवृक्षों में जिनप्रतिमाएँ

तिलोयपण्णत्ति से—

१९९.	जम्बूद्वीप के परकोटे में चैत्यवृक्ष	२५४
२००.	अकृत्रिम जिनमंदिर के परकोटे में चैत्यवृक्ष, सिद्धार्थवृक्ष आदि में जिनप्रतिमाएँ	२५५
२०१.	समवसरण में चैत्यवृक्ष व सिद्धार्थ वृक्ष पर जिनप्रतिमाएँ	२५८
२०२.	पाण्डुकवन में जिनमंदिर में चैत्यवृक्ष	२५९

जम्बूद्वीपपण्णत्ति से—

२०३.	अकृत्रिम जिनमंदिर के परकोटे में चैत्यवृक्ष-सिद्धार्थ वृक्ष एवं ध्वजाएँ (स्तूप व चैत्यवृक्षों में जिनप्रतिमाएँ हैं)	२६१

आदिपुराण से—

२०४.	सिद्धार्थ वृक्षों में जिनप्रतिमाएँ	२६३
२०५.	समवसरण में उपवनभूमि में चैत्यवृक्षों में जिनप्रतिमाएँ	२६३

द्वितीय जम्बूद्वीप

तिलोयपण्णत्ति से—

२०६.	इसमें भी जिनमंदिर व चैत्यवृक्ष हैं	२६६

ढाईद्वीप में कृत्रिम जिनमंदिर

२०७.	मंगलाचरण	२७२

आदिपुराण से—

२०८.	युग की आदि में इन्द्र ने अयोध्या में सर्वप्रथम पाँच जिनमंदिर बनाए	२७२

उत्तरपुराण से—

२०९.	कैलाशपर्वत पर भरत चक्री द्वारा बनवाए गए मंदिर	२७३

पद्मपुराण से—

२१०.	कैलाशपर्वत पर भरत चक्रवर्ती ने जिनमंदिर बनवाए थे	२७३

आदिपुराण से—

२११.	सुलोचना ने जिनमंदिर पर जिनप्रतिमाएँ बनवाईं	२७६

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ संख्या

पद्मपुराण से—

२१२. हरिषेण चक्रवर्ती ने अगणित जिनमंदिर बनवाए २७६
२१३. श्री रामचन्द्र ने कुंथलगिरि पर अनेक जिनमंदिर बनवाये २७९

आराधना कथा कोष से—

२१४. धाराशिव नगर में १००८ खंभों का जिनमंदिर २८०

कृत्रिम जिनप्रतिमा

२१५. जिनप्रतिमा का लक्षण (यक्ष-यक्षी समेत) २८१
२१६. शासन देव-देवी के प्रमाण २८३
२१७. पूजा के प्रकरण में प्रमाण २८५
२१८. अथ यक्ष एवं यक्षी पूजा २८७
२१९. चौबीस यक्ष एवं चौबीस यक्षी पूजा २८८
२२०. दिग्पाल पूजा २८९
२२१. क्षेत्रपाल पूजा २९०
२२२. क्षेत्रपाल का लक्षण २९०
२२३. क्षेत्रपाल का स्नपन २९०

(३) मध्यलोक अन्तर्गत ज्योतिर्लोक के जिनमंदिर

त्रिलोकसार से—

२२४. ज्योतिर्वासी देवों के जिनमंदिर २९५

तिलोयपण्णत्ति से—

२२५. ज्योतिर्वासी देवों के जिनमंदिर २९६
२२६. चन्द्रमा के विमान २९८
२२७. ज्योतिर्वासी देवों के जिनमंदिर २९९
२२८. सूर्य के विमान ३०१
२२९. ताराओं का वर्णन ३०२
२३०. मध्यलोक के चन्द्र-सूर्यों की संख्या ३०३

सिद्धान्तसारदीपक से—

२३१. ज्योतिषी देवों के जिनमंदिर ३०४
२३२. चित्रा पृथ्वी से ज्योतिर्बिम्बों की ऊँचाई की तालिका ३०५

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ संख्या

तत्त्वार्थवार्तिक ग्रंथ से—

२३३. ढाईद्वीप तक सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र और ताराओं की संख्या ३०६

जैन ज्योतिर्लोक से—

२३४. चित्रा पृथ्वी से ऊपर तारा, सूर्य, चन्द्र के विमान ३०८
२३५. सूर्य, चन्द्र आदि के विमानों का प्रमाण ३०८
२३६. ज्योतिष्क देवों के बिम्बों का प्रमाण ३०८
२३७. ज्योतिष्क विमानों की किरणों का प्रमाण ३०९
२३८. वाहन जाति के देव ३०९
२३९. शीत एवं उष्ण किरणों का कारण ३०९
२४०. सूर्य-चन्द्र के विमानों में स्थित जिनमंदिर का वर्णन ३०९
२४१. चन्द्रग्रहण-सूर्यग्रहण का क्रम ३१०
२४२. सूर्य चन्द्रादिकों का तीव्र-मन्द गमन ३१०
२४३. चक्रवर्ती के द्वारा सूर्य के जिनबिम्ब का दर्शन ३१०
२४४. एक चन्द्र का परिवार ३१०
२४५. कोड़ाकोड़ी का प्रमाण ३१०
२४६. एक तारे से दूसरे तारे का अन्तर ३११
२४७. ढाईद्वीप एवं दो समुद्र संबंधी सूर्य चन्द्रादिकों का प्रमाण ३११
२४८. मानुषोत्तर पर्वत के पूर्व के ही ज्योतिष्क देवों का भ्रमण ३११
२४९. २८ नक्षत्रों के नाम ३११
२५०. नक्षत्रों की गलियाँ ३११
२५१. मनुष्य क्षेत्र का वर्णन ३१२
२५२. अढ़ाईद्वीप के चन्द्र (परिवार सहित) ३१२
२५३. ढाईद्वीप के बाहर स्थित ज्योतिष्क देवों का वर्णन ३१३
२५४. पुष्करवर समुद्र के सूर्य चन्द्रादिक ३१३
२५५. असंख्यात द्वीप समुद्रों में सूर्य-चन्द्रादिक ३१४
२५६. ज्योतिर्वासी देवों में उत्पत्ति के कारण ३१४

(४) ऊर्ध्वलोक के जिनमंदिर

त्रिलोकसार से—

२५७. वैमानिक देवों के जिनमंदिर ३१७
२५८. वैमानिक देवों के नगर के बाहर उद्यान में चैत्यवृक्ष ३२१

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ संख्या
२५९.	तीर्थंकर भगवान के लिए वस्त्राभरणादि के मानस्तंभ	३२३
२६०.	देवों के जन्म के समय	३२५
२६१.	देवों के कार्य	३२६
तिलोयपण्णत्ति से—		
२६२.	वैमानिक देवों के जिनमंदिर	३२७
२६३.	सौधर्म ईशान स्वर्ग में तीर्थंकर के वस्त्राभरण हेतु स्तंभों का वर्णन	३३०
२६४.	सौधर्म आदि स्वर्गों में चैत्यवृक्ष एवं जिनमंदिर	३३१
२६५.	प्रत्येक इन्द्रनगर के चारों तरफ चैत्यवृक्ष	३३२
२६६.	नव ग्रैवेयक आदि में भी चैत्यवृक्ष हैं	३३२
सिद्धान्तसार दीपक से—		
२६७.	वैमानिक देवों के जिनमंदिर	३३३
२६८.	वैमानिक देवों के जितने विमान हैं उतने ही जिनमंदिर हैं	३३४
२६९.	इन्द्र के नगर	
२७०.	सौधर्मादि स्वर्गों के विमानों का प्रमाण	३३५
२७१.	इन्द्र के नगर के बाहर उद्यान में चैत्यवृक्ष एवं जिनप्रतिमा	३३६
लोक विभाग से—		
२७२.	सौधर्म स्वर्ग में जिनमंदिर-चैत्यवृक्ष	३३८
२७३.	स्वर्गों में चैत्यवृक्ष एवं मानस्तंभ में तीर्थंकर के वस्त्राभरणादि	३३९
त्रिलोकभास्कर से—		
२७४.	ऊर्ध्वलोक के चैत्यालयों की संख्या	३४०

सिद्धलोक और सिद्धशिला

त्रिलोक भास्कर से—		
२७५.	सिद्धलोक और सिद्धशिला का वर्णन	३४१
२७६.	उत्कृष्ट ५२५ धनुष की अवगाहना वाले सिद्ध भगवान	३४१
२७७.	लघु साढ़े ३ हाथ की अवगाहना वाले सिद्ध भगवान	३४२
२७८.	मध्यम अवगाहना वाले सिद्ध भगवान	३४२
२७९.	चैत्यवंदनाष्टक	३४३
२८०.	प्रशस्ति	३४५
२८१.	तीनलोक का ध्यान	३४८

सम्पादकीय

-स्वस्ति श्री पाठीधीश रवीन्द्रकीर्ति स्वामीजी

सन् १९७२ में स्थापित दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान जैन समाज की उच्च कोटि की संस्थाओं में से एक ऐसी संस्था है जहाँ से चतुर्मुखी कार्यकलापों का संचालन होता है। इसी संस्था के अन्तर्गत संचालित "वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला" के द्वारा जैनधर्म को समझने-समझाने की दृष्टि से अब तक लाखों की संख्या में ग्रन्थों का प्रकाशन हो चुका है और वर्तमान में यह प्रक्रिया अनवरत चल रही है।

यह हमारा परम सौभाग्य ही है कि इस संस्था एवं ग्रन्थमाला की स्थापना बीसवीं शताब्दी की उन महान साध्वी परम पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी की पावन प्रेरणा से हुई है जिनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व के सम्मुख सम्पूर्ण विश्व नतमस्तक है। इस युग में साक्षात् सरस्वती का अवतार पूज्य माताजी ने अब तक ३०० ग्रन्थों का लेखन कर जिनशासन पर महान उपकार किया है और उन ग्रन्थों के प्रकाशन का सौभाग्य इस ग्रन्थमाला को प्राप्त हुआ है। पूर्वाचार्यों के द्वारा प्रतिपादित कठिन एवं गहन विषयों को सरल एवं संक्षेप भाषा शैली में जनमानस के सम्मुख रचकर प्रस्तुत करना पू० माताजी की अनुपम शैली है। प्राय: विद्वानों में कोई न्याय, कोई अध्यात्म, कोई प्रथमानुयोग आदि पर अपना विशेष अधिकार रखते देखे जाते हैं तो कोई गहराई से कर्मसिद्धान्त का प्रतिपादन करने की क्षमता रखते हैं, कोई गद्य में तो कोई पद्य में विशेष अभिरुचि रखते हैं किन्तु पूज्य माताजी प्रकाण्ड विदुषी हैं, जैनागम के चतुरनुयोगों का उन्हें तलस्पर्शी ज्ञान प्राप्त है और प्रत्येक विषय पर उनका पूर्ण अधिकार है। उनके द्वारा लिखित उनकी प्रत्येक कृति भावपूर्ण होने के साथ-साथ अनुपमेय है। पू० माताजी की सशक्त लेखनी की भांति उनकी वाणी भी अत्यन्त ओजपूर्ण है, आगम के अनुसार लिखना, वक्तव्य देना और प्रतिक्षण आगम पर पूर्ण श्रद्धान रखना उनका विशेष गुण है।

जिनागम के विभिन्न विषयों पर तो आप पूर्ण अधिकार रखती ही हैं अन्य दर्शनों का भी आपने सूक्ष्मता से गहन अध्ययन किया है। अष्टसहस्री जैसे दुरुह ग्रन्थ का अनुवाद कर आपने अपने शिष्यों को अत्यन्त सुगमता से उसका अध्ययन कराकर उसमें निष्णात बना दिया है। जैनधर्मसम्बन्धी भौगोलिक ज्ञान तो आपका अनूठा है ऐसे नीरस विषयों को भी आपने अपनी प्रखर बुद्धि से सरस बनाकर आबाल-गोपाल को जैन भूगोल को परिष्कृत ज्ञान प्रदान कर महान उपकार किया है। अगर आपको "विद्वानों की जननी" कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति वाली बात नहीं है। भगवान महावीर के शासन में वर्तमान में उपलब्ध जैन सिद्धान्त के सर्वोच्च ग्रन्थ षट्खण्डागम पर आपने स्वतन्त्र संस्कृत टीका "सिद्धान्त चिन्तामणि" का लेखन किया है। वस्तुत: धवला टीका के पश्चात् इस सूत्रग्रन्थ पर प्रथम बार संस्कृत टीका का लेखन हुआ है जिसकी १६ पुस्तकें पूर्ण हो चुकी है, उसकी हिन्दी टीका संघस्थ आर्यिका प्रज्ञाश्रमणी श्री चन्दनामती माताजी कर रही हैं जिसमें से १२ पुस्तकों की हिन्दी पूर्ण हो चुकी है।

भक्तिमार्ग के क्षेत्र में सैंकड़ों सुन्दर, आगमोक्त, जैनागम से साररूप विधानों की रचना में आप बेजोड़ हैं, उन विधानों के माध्यम से अनेकों प्राणी प्रभुभक्ति के द्वारा सम्यग्दर्शनरूपी रत्न को प्राप्त कर महान पुण्य का बन्ध कर रहे हैं। साहित्य लेखन के उसी क्रम में आज भी पू० माताजी की लेखनी सतत प्रवाहमान है और आज भी हमें

उनके द्वारा संकलित एवं लिखित अनेक कृतियों के प्रकाशन का सौभाग्य प्राप्त हो रहा है जिसमें से यह कृति "तीनलोक जिनमंदिर" भी एक है जिसमें तीनों लोकों में अवस्थित सम्पूर्ण जिनमंदिर एवं जिनप्रतिमाओं का विस्तृत वर्णन है जिसे पू० माताजी ने गहन अध्ययन एवं विशेष परिश्रम कर पूर्वाचार्य प्रणीत ग्रन्थों से संकलित किया है। वास्तव में ऐसी महान साध्वी के बारे में कुछ भी कहना अथवा लिखना असम्भव है।

पूज्य माताजी के चतुर्मुखी कार्यकलापों का जितना भी वर्णन किया जाय कम है, उनके इन्हीं कार्यकलापों को देखते हुए अनेक समाज, सन्त, विद्वानों, यहाँ तक कि विश्वविद्यालयों ने इन्हें अनेक उपाधियाँ प्रदान कर स्वयं को गौरवान्वित अनुभव किया है। पूज्य माताजी का सम्पूर्ण जैन समाज पर महान उपकार है जिन्होंने अपने धर्ममयी चतुर्मुखी कार्यकलापों एवं व्यक्तित्व कृतित्व से जिनशासन का अलख सम्पूर्ण विश्व में जगाया है इस हेतु जिनशासन उनका चिरऋणी रहेगा। प्रस्तुत कृति 'तीन लोक जिनमंदिर" से आप सभी अकृत्रिम एवं कृत्रिम जिनमंदिरों की सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त कर उस पर दृढ़ श्रद्धान करते हुए उनकी वंदना करने की भावना भावें और विस्तृत जानकारी हेतु जम्बूद्वीप हस्तिनापुर में पधारकर यहां बनी रचनाओं से पूर्ण जानकारी प्राप्त करें।

तीर्थंकर जन्मभूमि अयोध्या तीर्थ वंदना

(जन्म, दीक्षा, ज्ञान व निर्वाण क्षेत्र वंदना)

-अनुष्टुप् छंद-

अयोध्या मंगलं कुर्या-दनन्ततीर्थकर्तृणाम्।
शाश्वती जन्मभूमिर्या, प्रसिद्धा साधुभिर्नुता।।१।।

ऋषभोऽजिततीर्थेशोऽप्यभिनंदनतीर्थकृत्।
श्रीमान् सुमतिनाथश्चा - नन्तनाथजिनेश्वरः।।२।।

पंचतीर्थकृतां गर्भ - जन्मकल्याणकादिषु।
इन्द्रादिभिः सदा वंद्या, वंद्यते वंदयिष्यते।।३।।

संप्रति कालदोषेण शेषास्तीर्थंकराः पृथक्।
संजातास्ता अपि जन्म-भूमयो मंगलं भुवि।।४।।

आद्य वक्तव्य

–गणिनी आर्यिका ज्ञानमती

यावन्ति सन्ति लोकेऽस्मिन्नकृतानि कृतानि च।
तानि सर्वाणि चैत्यानि, वन्दे भूयांसि भूतये।।

(श्री गौतमस्वामी कृत)

इस ग्रंथ का नाम है "तीनलोक जिनमंदिर" इस ग्रंथ में मैंने तीनों लोकों के जिनमंदिर और उनमें विराजमान अथवा अन्यत्र भी विराजमान जिनप्रतिमाओं की मुख्यरूप से वंदना की है, अर्थात् उन मंदिरों का वर्णन लिया है। यह मेरा संकलित ग्रंथ है।

सर्वप्रथम इसमें मैंने श्री गौतम गणधरदेव द्वारा विरचित "चैत्यभक्ति" को मंगलाचरण में लिया है। यह बहुत ही महत्वपूर्ण विषय है कि मति, श्रुत, अवधि व मनःपर्यय इन चारों ज्ञान के धारी, सम्पूर्ण ऋद्धियों से समन्वित भगवान महावीर स्वामी के प्रथम गणधरदेव जो कि उसी भव से मोक्ष गये हैं, अर्थात् सभी 'गणधर–देव' उसी भव से मोक्ष जाते हैं। ऐसे वे गणधर देव अकृत्रिम और कृत्रिम जिनप्रतिमाओं की वंदना कर रहे हैं। यह श्लोक जो मैंने यहाँ प्रारंभ में उद्धृत किया है—

'यावन्ति संति' आदि। यह श्लोक 'चैत्यभक्ति' का १८वाँ श्लोक है। आगे इसी भक्ति में कहते हैं—

इति स्तुतिपथातीत–श्रीभृतामर्हतां मम।
चैत्यानामस्तु संकीर्तिः, सर्वास्त्रवनिरोधिनी।।२२।।
इस विध स्तुति पथातीत, अंतर बाहिर श्रीयुत् अर्हन्।
चैत्यों के संकीर्तन से, मम सर्वास्त्रव का हो रोधन।।२२।।

यह श्री गौतमस्वामी का श्लोक निश्चयाभासी लोगों के लिए चुनौती है। यहाँ अर्हंतों की प्रतिमाओं की स्तुति से सम्पूर्ण आस्त्रव का निरोध–संवर मान रहे हैं। इतनी महिमा जिनमंदिर व जिनप्रतिमाओं की स्तुति, वंदना की है।

इस चैत्यभक्ति में श्री गौतम स्वामी ने प्रारंभ में श्री केवली भगवान महावीर स्वामी का अतिशय प्रगट किया है कि जिनके प्रभाव से जातविरोधी प्राणी— सिंह–हिरण आदि भी परस्पर वैर छोड़कर शांत भाव को प्राप्त हो रहे हैं आदि।

पुनः अर्हंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, जिनधर्म, जिनागम, जिनचैत्य, चैत्यालय इन नवदेवों का वर्णन है। मेरे द्वारा 'नवदेवता' पूजन को लेकर कई एक विद्वानों ने प्रश्न किया कि ये नवदेव कहाँ से आये ? यह गणिनी ज्ञानमती द्वारा माने गये हैं इत्यादि। तब मैंने उन्हें ये चैत्यभक्ति के प्रमाण भिजवाये हैं।

आगे इसी भक्ति में श्री गौतमस्वामी ने—

"अर्हन्महानदस्य......." आदि २३वें श्लोक से ३० तक ८ पद्यों में श्री अर्हंतदेव को महानदी तीर्थ बनाया है जो कि बहुत ही रोचक व हृदयग्राही है। पुनः श्री स्वामी जी ने "अताम्रनयनोत्पलं....." आदि ३१वें पद्य से ३५ तक पाँच पद्यों में 'वीतरागमुद्रा' का बहुत ही सुन्दर वर्णन करते हुए कहा है कि—

पुनातु भगवज्जिनेन्द्र! तव रूपमन्धीकृतम्।
जगत् सकलमन्यतीर्थगुरुरूपदोषोदयैः।।३०।।

हे भगवन्! हे जिनेन्द्र! आपका रूप–आपकी वीतराग मुद्रा अर्थात् हे स्वामिन्! आप इस सम्पूर्ण जगत् को–जगत् के जीवों को पावन करें — पवित्र करें। जो यह जगत् मिथ्यात्वी जनों के निमित्त से अंधे के समान हो रहा है। इत्यादि। इन वाक्यों से श्रीगणधर देव की हम जैसे संसारी प्राणियों पर असीम अनुकम्पा झलक रही है।

इस भक्ति में श्री गौतमस्वामी ने तीनों लोकों के अकृत्रिम जिनमंदिर–जिनप्रतिमाओं एवं मध्यलोक की अकृत्रिम–कृत्रिम जिनमंदिर, जिनप्रतिमाओं की वन्दना की है।

हमारे और आपके परम पुण्य और सौभाग्य का विषय है कि यह ''चैत्यभक्ति' त्रिकाल सामायिक में हमें और आपको पढ़ने के लिए कही गई है।

आगे इसी ग्रंथ में मंगलाचरण में श्री गौतमस्वामी के मुखकमल से विनिर्गत ''प्रतिक्रमणभक्ति–निषीधिका दण्डक'' को दिया है। उसमें श्री गणधरदेव ने ऊर्ध्व, अधो, मध्यलोक के समस्त जिनायतन आदि को व चैत्यवृक्षों के जिनप्रतिमाओं की निषीधिका — पंचकल्याणक तीर्थों आदि की वंदना की है। इसमें 'निषीधिका' शब्द के सत्रह (१७) अर्थ श्री टीकाकार प्रभाचंद्राचार्य ने किये हैं।

यथा — **चेइयरुक्खा य चेइयाणि।**

उड्ढमहतिरियलोए सिद्धायदणाणि णमंसामि, सिद्धाणिसीहियाओ अट्ठावयपव्वदे सम्मेदे उज्जंते चंपाए पावाए.......।

तथा च — ईषत्प्राग्भार पृथ्वी पर विराजमान सिद्धों की तथा गुरु, आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्तक, स्थविर, कुलकर आदि साधुओं की भी वंदना की है।

आगे इसी मंगलाचरण के अन्तर्गत नंदीश्वर भक्ति दे दी है। इसमें भी श्री पूज्यपाद स्वामी ने नंदीश्वर द्वीप के बावन जिनमंदिरों की वंदना के साथ ही तीनों लोकों के सम्पूर्ण असंख्यातों जिनमंदिरों की वंदना की है तथा अकृत्रिम जिनमंदिर का भी संक्षिप्त दिग्दर्शन कराया है। साथ ही तीर्थंकर भगवन्तों की निर्वाणभूमियों की वंदना की है। एक सौ सत्तर कर्मभूमियों के सभी त्रैकालिक तीर्थंकर भगवन्तों की वंदना की है। आगे इसी में तीर्थंकरों के चौंतीस अतिशय, आठ प्रातिहार्यों का भी सुंदर वर्णन किया है।

एक पद्य इसमें बहुत ही महिमापूर्ण है —

जिनपतयस्तत्प्रतिमास्तदालयास्तन्निषद्यकास्थानानि।
ते ताश्च ते च तानि च, भवन्तु भवघातहेतवो भव्यानाम्।।३६।।

अनन्तर वीर संवत् २४६८ (ईसवी सन् १९६६) में सोलापुर चातुर्मास में ''त्रैलोक्य चैत्यवंदना'' संस्कृत में बनाकर उसका हिन्दी पद्य भी बनाया था, वह अनेक साधुओं को भी अतिशय प्रिय रही है। उसे भी दे दिया है। इसमें ''आर्यास्कंधछंद' में त्रेसठ काव्य हैं।

इसमें मैंने तीनों लोकों के सम्पूर्ण जिनमंदिरों की संख्या का वर्णन करते हुए वंदना की है। इसमें एक काव्य बहुत ही महत्वपूर्ण है —

यथा — **गंगाप्रपातकुण्डे, श्रीदेव्यः सौधतले जटामुकुटयुताम्।**
जिनमूर्तिं वन्दे तां, स्नपयन्तीव पतति हिमगिरेर्गंगा।।४७।।
गंगा–प्रपात कुन्ड में गंगा देवी, के गृह की छत पर।
जटाजूट के मुकुट सहित जिन–प्रतिमा वंदूँ पातक हर।।

हिमगिरि से पड़ती गंगा वहाँ, करती हुई अभिषेक महा।
इसीलिए लौकिक जनने उस, गंगा को भी पूज्य कहा।।

आगे १७० कर्मभूमि के तीर्थंकरों की तीस चौबीसी तीर्थंकर व विद्यमान बीस तीर्थंकरों की भी वंदना की है। कृत्रिम जिनप्रतिमा, पंचकल्याणकभूमि, व अन्य निर्वाण क्षेत्र, अतिशय क्षेत्रों की भी वंदना की है।

अधोलोक के जिनमंदिर— पुन: तीनलोक का संक्षिप्त वर्णन करके अधोलोक में स्थित भवनवासी देवों के अकृत्रिम जिनमंदिरों का वर्णन है। ये मंदिर ७,७२००००० हैं। इनके वर्णन में १. तिलोयपण्णपत्ति, २. त्रिलोकसार, ३. जम्बूद्वीपपण्णत्ति, ४. सिद्धान्तसारदीपक, ५. लोकविभाग, ६. तत्त्वार्थवार्तिक व तत्त्वार्थवृत्ति ग्रंथों के प्रकरण लिये हैं।

यद्यपि यहाँ पुनरुक्ति हुई है-बार-बार वही प्रकरण आया है फिर भी अनेक ग्रंथों से मैंने लिये हैं। अत: पुनरुक्ति न समझ कर विशेष प्रामाणिकता का लक्ष्य ही समझना चाहिए।

जैसे कि आध्यात्मिक ग्रंथों में बार-बार आत्मा का शुद्धात्मा का ही प्रकरण आता रहता है। उसी प्रकार यहाँ भी बार-बार आते हुए भी मुझे प्रिय रहा है। इनके पढ़ने से असंख्यातों गुणी कर्मों की निर्जरा होती है।

आहारक ऋद्धिधारी मुनियों के भी जिनमंदिरों के दर्शन की भावना से आहारक पुतला निकल सकता है। यथा—

णियखेत्ते केवलिदुगविरहे णिक्कमणपहुडि कल्लाणे।
परखेत्ते संवित्ते जिण-जिणघरवंदणट्ठं च[1]।।२३६।।

गाथार्थ— अपने क्षेत्र में केवली तथा श्रुतकेवली का अभाव होने पर किन्तु दूसरे क्षेत्र में जहाँ पर कि औदारिक शरीर से उस समय पहुँचा नहीं जा सकता, वहाँ केवली या श्रुतकेवली के विद्यमान रहने पर अथवा तीर्थंकरों के दीक्षाकल्याणक आदि तीन कल्याणकों में से किसी के होने पर तथा जिनचैत्य एवं चैत्यालयोंकी वंदना के लिए भी आहारक ऋद्धि वाले छट्ठे गुणस्थानवर्ती प्रमत्तमुनि के आहारक शरीर नामकर्म के उदय से यह शरीर उत्पन्न हुआ करता है।

चारण ऋद्धिधारी मुनि भी अकृत्रिम जिनमंदिरों की वंदना के लिए अपनी ऋद्धि का उपयोग करते हैं।

आगे अधोलोक में व्यंतर देवों के असंख्यातों भवन हैं। मध्यलोक में असंख्यातों द्वीप-समुद्रों तक इनके भवनपुर और आवास हैं। इन सभी में जिनमंदिर हैं। इसमें हमें कुछ आचार्यों के ग्रंथों में मतभेद प्रतीत हुआ है। जैसे कि-अधोलोक में खरभाग में राक्षसजाति के व्यंतरों से अतिरिक्त सात प्रकार के व्यंतरदेवों के असंख्यात भवन हैं। कहीं ऐसा भी आया है कि भवन गणना में हैं। मध्यलोक में असंख्यातों भवनपुर-आवास हैं इत्यादि। इस ग्रंथ में पृ. ६१ से ६३ तक तत्त्वार्थवार्तिक ग्रंथ में खरभाग में असंख्यातों 'भवन' व्यंतर देवों के माने हैं। वहाँ उतने ही जिनमंदिर हैं। अत: अधोलोक में व्यंतर देवों के असंख्यातों जिनमंदिर हो जाते हैं।

इसलिए इन व्यंतर देवों के जिनमंदिरों के वर्णन में मैंने तिलोयपण्णत्ति, त्रिलोकसार आदि सभी के प्रकरण ले लिये हैं।

मध्यलोक के जिनमंदिर— मध्यलोक में ४५८ अकृत्रिम जिनमंदिरों का वर्णन करके यहाँ तेरहद्वीपों तक जितने भी कूट हैं। जैसे कि मात्र एक जम्बूद्वीप में ही ५६८ कूट माने हैं। इनमें जो 'सिद्धकूट' हैं उनमें शाश्वत-शुद्ध जिनमंदिर हैं तथा शेष जो कूट हैं उन पर देव-देवियों के भवन बने हुए हैं। उन सभी में अकृत्रिम जिनमंदिर हैं। जैसे कि यहाँ हस्तिनापुर में निर्मित जम्बूद्वीप व तेरहद्वीप रचना में कतिपय कूटों पर

---

१. गोम्मटसार जीवकांड-गाथा २३६

देव-देवियों के भवनों में जिनमंदिर दिखाये गये हैं।

एक श्रीदेवी के मुख्यकमल में जिनमंदिर हैं तथा उसके परिवार कमलों की संख्या १, ४०, ११५ हैं। इन सभी परिवार कमलों में भी जिनमंदिर हैं इत्यादि।

ये सभी प्रकरण बार-बार तिलोयपण्णत्ति, त्रिलोकसार आदि अनेक ग्रंथों से ज्यों की त्यों ले लेकर मैंने दिये हैं।

जम्बूद्वीप के विजयद्वार आदि के ऊपर भी उन-उन विजयदेव आदि के नगर बने हुए हैं, उनमें भी जिनमंदिर हैं।

लवणसमुद्र में अनेक पाताल हैं उन पर भी जिनमंदिर हैं। अनेक द्वीप-लंका आदि हैं उनमें भी जिनमंदिर हैं।

संख्यातों द्वीप समुद्रों के बाद पुनः पुनः इन्हीं-इन्हीं नाम वाले द्वीप-समुद्र आ जाते हैं। चूँकि शब्द संख्यात ही हैं और द्वीप-समुद्र असंख्यात हैं। अतः द्वितीय जम्बूद्वीप में भले ही कर्मभूमि की यहाँ जैसी रचना नहीं है फिर भी वहाँ के देवों के नगर, भवन आदि में जिनमंदिर, चैत्यवृक्ष आदि का वर्णन आया है। यह सभी प्रकरण इसमें लिया गया है जो बहुत ही सुन्दर रोचक व नया है। मध्यलोक में अनेक तोरणद्वार, गोपुरद्वार आदि में भी जिनप्रतिमाएं हैं उन सभी का प्रकरण-उद्धरण इस ग्रंथ में समाविष्ट है।

वास्तव में कृत्रिम-अकृत्रिम जिनमंदिरों की वंदना एवं चैत्यवृक्षों की वंदना श्री गौतमस्वामी ने भी प्रतिक्रमण भक्ति में की है। अतः हम जैसे सामान्य साधु-साध्वी व श्रावक, श्राविकाओं के लिए तो अनिवार्य ही है।

इसी ग्रंथ में पृ. १०७ पर पाण्डुक वन के जिनमंदिर के वर्णन में चैत्यवृक्षों का वर्णन आया है। देखें—

चैत्यवृक्ष के परिवारवृक्ष—

१,४०,११९+१=१४०१२० हुए।

प्रत्येक वृक्ष में कटनी पर चारों दिशाओं में एक-एक जिनप्रतिमाएँ हैं अतः —

१४०१२०×४=५६०४८० हुए।

ऐसे चारों दिशाओं के अशोक, सप्तच्छद, आम्र व चंपक ये चार वृक्ष हैं। अतः इनके भी इतने ही परिवारवृक्ष व चौगुनी अरहंत प्रतिमाएं हैं। इसलिए ५६०४८०×४ से गुणा करने पर-२२४१९२० संख्या होती है। अर्थात् चारों चैत्यवृक्षों की बाईस लाख, इकतालीस हजार, नव सौ बीस होती है। यह एक अकृत्रिम जिनमंदिर के चार चैत्यवृक्षों की संख्या है।

इन सभी अरहंत प्रतिमाओं को मेरा कोटि-कोटि नमस्कार होवे।

कृत्रिम जिनमंदिर— ढाईद्वीप में १७० कर्मभूमियों में कृत्रिम जिनमंदिरों की यदि अतीतकाल व भविष्यत्काल की भी ली जावे, तो अनंतानंत हो जावेगी। अतः एक पद्य में मैंने उनकी वंदना की है। यथा—

दोहा— **त्रैकालिक कृत्रिम सभी, जिनप्रतिमा, जिनधाम।**
कहे अनंतानंत हैं, तिन्हें अनंत प्रणाम।।१।।

आगे पृ. २८१ से कृत्रिम जिनप्रतिमाओं का वर्णन उनके निर्माण में यक्ष-यक्षी समेत का विधान आदि प्रकरण भी दे दिया है।

जैनज्योतिर्लोक— मध्यलोक में असंख्यातों द्वीपों व समुद्रों तक ज्योतिषी देवों के विमान माने गये हैं। उन सबमें जिनमंदिर हैं। अतः ज्योतिर्लोक के जिनमंदिर असंख्यातों हैं जो कि मध्यलोक में ही हैं। इनका वर्णन भी सभी

ग्रंथों के आधार से दिया है।

पुनः ऊर्ध्वलोक के जिनमंदिरों की संख्या व उनका वर्णन दिया है।

इसके बाद सिद्धशिला का सुंदर वर्णन है और उस सिद्धशिला से ऊपर तनुवातवलय के अंत में सिद्ध भगवान विराजमान हैं। यह सभी प्रकरण दिया है। यहाँ यह ध्यान में रखना है कि तीनलोक के-लोकाकाश के अंदर ही सिद्ध भगवान हैं न कि तीनलोक के बाहर अलोकाकाश में हैं।

इन सभी प्रकरणों का पुनः पुनः वर्णन आने से भी पुनरुक्ति दोष नहीं समझना, क्योंकि पुनः पुनः इनके पढ़ने से विषय दृढ़—पक्का हो जावेगा। पुण्य का महान आस्रव होगा और असंख्यातगुणी पापों की निर्जरा होगी। जैसे कि समयसार, परमात्मप्रकाश आदि ग्रंथों में पुनः पुनः आत्मा का-शुद्धात्मा का वर्णन आता है और भक्तिस्तोत्र पाठों में भी पुनः पुनः भक्ति भावना आती है तो भी पुनरुक्ति दोष वहाँ नहीं माना जाता है।

इस "तीनलोक जिनमंदिर" के स्वाध्याय से आप सभी पाठकों को घर बैठे तीनों लोकों के अकृत्रिम जिनमंदिरों के व अकृत्रिम जिनप्रतिमाओं के दर्शन हो जावेंगे तथा कतिपय कृत्रिम जिनमंदिरों के भी दर्शन का पुण्य प्राप्त होगा। कहा भी है—

नमस्तस्यै सरस्वत्यै, विमलज्ञानमूर्तये। विचित्रा लोकयात्रेयं, यत्प्रसादात्प्रवर्तते।।१।।

विमलज्ञान-केवलज्ञान की मूर्ति स्वरूप ऐसे सरस्वती माता को मेरा नमस्कार होवे कि जिनके प्रसाद से-जिनकी कृपा से यह विचित्र लोकयात्रा-तीनलोक की यात्रा हो जाती है अर्थात् तीनों लोकों के पूज्य 'तीर्थ', 'तीर्थंकर, महापुरुष, पंचपरमेष्ठी व अकृत्रिम-कृत्रिम जिनमंदिर-जिनप्रतिमाओं का दर्शन, वंदन हो जाता है। इन सभी कृत्रिम-अकृत्रिम जिनमंदिर, जिनप्रतिमाओं को और मध्यलोक में विद्यमान अथवा त्रैकालिक सभी पंचपरमेष्ठी को, जिनधर्म, जिनागम, जिनचैत्य, चैत्यालय इन नवदेवताओं को तथा सर्व पंचकल्याणक तीर्थों को, निर्वाणभूमियों को व अतिशयक्षेत्रों को भी मेरा अनंत-अनंतबार नमस्कार होवे।

जिन ग्रंथों के आधार से यह ग्रंथ संकलित किया गया उन ग्रन्थों की नामावली

१. मुनिचर्या
२. प्रतिक्रमण ग्रन्थत्रयी
३. महावीर देशना
४. जिनस्तोत्र संग्रह
५. तिलोयपण्णत्ति
६. त्रिलोकसार
७. जम्बूदीवपण्णत्ति
८. लोकविभाग
९. तत्त्वार्थवार्तिक
१०. सिद्धान्तसार दीपक
११. तत्त्वार्थवृत्ति
१२. त्रिलोकभास्कर
१३. जम्बूद्वीप
१४. जैन ज्योतिर्लोक
१५. आदिपुराण
१६. पद्मपुराण
१७. उत्तरपुराण
१८. प्रतिष्ठा सारोद्धार
१९. जिनेन्द्र कल्याणाभ्युदय
२०. वसुनन्दी प्रतिष्ठापाठ
२१. उमास्वामी श्रावकाचार
२२. अभिषेक पाठ संग्रह
२३. प्रतिष्ठा तिलक
२४. आराधना कथा कोष

योजन एवं कोश बनाने की विधि

-गणिनी ज्ञानमती

पुद्गल के एक अविभागी टुकड़े को परमाणु कहते हैं। अनन्तानन्त परमाणुओं से एक अवसन्नासन्न बनता है अर्थात्—

अंगुल का प्रमाण— अनन्तानन्त परमाणुओं का– १ अवसन्नासन्न

८ अवसन्नासन्न का	१ सन्नासन्न
८ सन्नासन्नों का	१ ऋुटिरेणु
८ त्रुटिरेणुओं का	१ त्रसरेणु
८ त्रसरेणुओं का	१ रथरेणु
८ रथरेणुओं का उत्तम भोगभूमिजों का	१ बालाग्र
८ इन बालाग्रों का मध्यम भोगभूमिजों का	१ बालाग्र
८ इन बालाग्रों का जघन्य भोगभूमिजों का	१ बालाग्र
८ इन बालाग्रों का	कर्मभूमिजों का १ बालाग्र
८ कर्मभूमिज के बालाग्रों की	१ लिक्षा
८ लिक्षा की	१ यूका
८ यूका की	१ जौ
८ जौ का	१ अंगुल

अंगुल के तीन भेद— उत्सेधांगुल, प्रमाणांगुल और आत्मांगुल। उपर्युक्त परिभाषा से सिद्ध हुआ अंगुल उत्सेधागुंल कहलाता है। पाँच सौ उत्सेधांगुल का एक प्रमाणांगुल होता है। जिस काल में भरत और ऐरावत में जो-जो मनुष्य हुआ करते हैं, उस-उस काल में उन्हीं मनुष्यों के अंगुल का नाम आत्मांगुल होता है।

किस अंगुल से किसका माप होता है?— उत्सेधांगुल से देव, मनुष्य, तिर्यंच और नारकियों के शरीर की ऊँचाई का प्रमाण और चारों प्रकार के देवों के निवास स्थान व नगरादि का प्रमाण जाना जाता है।

प्रमाणांगुल से द्वीप, समुद्र, कुलाचल, वेदी, नदी, कुंड या सरोवर, जगती और भरत आदि क्षेत्रों का प्रमाण जाना जाता है।

धनुष का प्रमाण— छह अंगुलों का १ पाद, २ पादों की १ वितस्ति, दो वितस्तियों का १ हाथ, २ हाथों का १ रिकु, दो रिकु का १ दण्ड या धनुष अर्थात् ४ हाथ का १ धनुष और दो हजार धनुष का एक कोस होता है।

योजन का प्रमाण— चार कोस का एक योजन होता है, इसे लघु योजन कहते हैं। इसी योजन को पाँच सौ से गुणा करने पर १ महायोजन बनता है यथा—४×५००=२०००, इन २००० कोस का एक महायोजन होता है।

प्रस्तावना

-आर्यिका चन्दनामती

जैन शासन का प्रतीक चिन्ह माने जाने वाले "तीनलोक" का विस्तृत वर्णन करने वाला यह "तीन लोक जिनमंदिर" ग्रंथ वास्तव में एक ऐसी कृति है, जिसके माध्यम से सम्पूर्ण तीनलोक के जिनमंदिर एक जगह एकत्रित हो गए, ऐसा प्रतीत होता है।

हम पौराणिक कथानकों में कई बार पढ़ते हैं कि नागश्री नामक एक कन्या को पूर्वभव का जाति स्मरण हो जाने के कारण उसे अध्ययन किये गये वेद-वेदांगों के सम्पूर्ण सूत्र स्मृति में आ गये। इसी प्रकार पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के जीवन के प्रत्येक पहलू पर दृष्टिपात करने से ऐसा प्रतीत होने लगता है कि क्या इन्हें जातिस्मरण हो गया है, अथवा सरस्वती माता से कोई वरदान प्राप्त किया है अथवा गुरुकृपा से कोई विद्या सिद्ध हो गई है.......?

अर्थात् लौकिक विद्याध्ययन से अनभिज्ञप्राय: साध्वी के द्वारा ३०० ग्रंथों का मात्र लेखन ही नहीं, संस्कृत जैसी क्लिष्ट भाषा पर पूर्ण अधिकार के साथ षट्खण्डागम सरीखे ग्रंथों की संस्कृत टीका का धारावाहिक लेखन, अष्टसहस्री जैसे दुरूह ग्रंथ की संस्कृत टीका का हिन्दी में अनुवाद करना विद्वानों को चकित कर देना ही है। दो-दो बार विश्वविद्यालयों के द्वारा डी.लिट्. की मानद उपाधि प्रदान किया जाना वास्तव में जिनशासन का गौरवमयी कीर्तिमान है। यह प्रतिभा देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि पूर्वजन्म की कोई अलौकिक विद्या का इन्हें जातिस्मरण हो आया है इसलिए वर्तमान में अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग इनका श्रुत ज्ञानोपलब्धि में निमित्त बन गया है।

दूसरी आश्चर्यजनक बात जैन भूगोल के संबंध में देखी जा रही है कि जिसके ज्ञान की दुरूहता और अश्रद्धान के कारण बड़े-बड़े मूर्धन्य विद्वान् भी तत्त्वार्थ सूत्र की तृतीय-चतुर्थ अध्याय को अप्रयोजनीभूत कहकर स्वयं भी नहीं पढ़ते हैं तथा शास्त्री-आचार्य आदि के कोर्स में से भी उन्हें बहिर्भूत कर दिया है—हटा दिया है। उस जैन भूगोल को आत्मसात करके पूज्य ज्ञानमती माताजी ने उन पर न केवल पुस्तकें लिखीं, वरन् उसे जम्बूद्वीप, तेरहद्वीप एवं तीनलोक रचना के रूप में धरती पर साकार करवाकर जो लोकोत्तर कार्य किया है उससे साक्षात् यही प्रतीत होता है कि पूर्वजन्म की देवपर्याय में इन्होंने सम्पूर्ण अकृत्रिम चैत्यालयों की वंदना करके उसे धरती पर निर्मित करने की भावना अवश्य भायी होगी, उसी के प्रतिफल में उन्हें जातिस्मरण के समान आज जैन भूगोल का तलस्पर्शी ज्ञान उपलब्ध हुआ है। उनका यही आगम ज्ञान उपर्युक्त रचनाओं के माध्यम से संसार को उपकृत कर रहा है।

कहते हैं कि धनपति कुबेर तीर्थंकर भगवान का समवसरण अर्धनिमिष (क्षणमात्र) में निर्मित कर देता है और उसके अतिशय का लाभ असंख्यों भव्यजीव प्राप्त करते हैं, किन्तु धनकुबेर स्वयं यदि वैसा ही समवसरण तीर्थंकर से अतिरिक्त कहीं बना लें, तो वह कहीं न कहीं गलती अवश्य कर जाएगा और उसमें वैसा अतिशय भी नहीं रहेगा, उसी प्रकार ज्ञानमती माताजी की कृतियों को देखकर उनकी नकल करके यदि कहीं जैन भूगोल की तीन लोक रचना कोई निर्मित भी कर रहे हैं, तो उनमें आगम की कोई न कोई गलती अवश्य देखने में आती है। जैसे-तीनलोक के बाहर ऊपर अलोकाकाश में सिद्धशिला बनाना या ऊपर भगवान विराजमान करना पूर्णतया

शास्त्र विरुद्ध है। अर्थात् सिद्धशिला तो लोक के अंदर ही तनुवातवलय में मानी है उसके बाहर पूरा अलोकाकाश है, वहाँ आकाश के सिवाय किसी रचना का निर्माण हो ही नहीं सकता।

इसी प्रकार समवसरण रचना संबंधी भी कुछ भ्रान्तियाँ आज देखी जा रही हैं उन्हें भी आगम के आलोक में समझकर समवसरण निर्माताओं को उनमें संशोधन करना चाहिए।

यहाँ इन १-२ विषयों को मैंने प्रसंगोपात्त इसलिए उल्लिखित किया है कि जो जिस विषय का Specialist (विशेषज्ञ) Digree Holderहोता है, उसे उस विषय की पूर्ण अधिकृत जानकारी होती है अतः दूसरों को या तो Specialization (विशेषज्ञता) लेना चाहिए अथवा Specialist से पूरी राय लेकर कार्य करना चाहिए, तभी सही दिशा में निर्णय हो सकता है, अन्यथा ग्रंथ रचना, निर्माणकार्य आदि में भारी विसंगतियाँ जैसी आज उत्पन्न हो रही हैं, वैसी ही आगे भी होती रहेंगी।

प्रस्तुत ग्रंथ के संदर्भ में—

पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने मानो अपने सम्पूर्ण जीवन में किये गये स्वाध्याय-अध्ययन से प्राप्त ज्ञान के अमृत को इस ग्रंथ में समाविष्ट कर दिया है। यही कारण है कि तत्त्वार्थसूत्र एवं उस पर लिखे गये सर्वार्थसिद्धि आदि अनेक टीका ग्रंथ, तिलोयपण्णत्ति, त्रिलोकसार, लोक विभाग, जम्बूद्वीवपण्णत्ति, सिद्धांतसारदीपक वगैरह करणानुयोग के उपलब्ध समस्त ग्रंथों के प्रमाण देकर इस ग्रंथ के अंदर तीनों लोकों के सम्पूर्ण जिनमंदिरों का सटीक वर्णन किया है।

इसे पढ़कर आपको अपना सम्यग्दर्शन दृढ़ तो करना ही है, साथ ही जिनमंदिर, जिनप्रतिमा निर्माण की भी प्रेरणा लेना है तथा अपने जीवन में हस्तिनापुर में निर्मित की गई भौगोलिक रचनाओं (तीनलोक, तेरहद्वीप, जम्बूद्वीप) के दर्शन करके अकृत्रिम रचनाओं के साक्षात् दर्शन की भावना भानी है।

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान के अन्तर्गत सन् १९७२ से संचालित "वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला" का भी सौभाग्य है कि इस प्रकार के सारगर्भित महत्त्वपूर्ण ग्रंथों को प्रकाशित करके विद्वद् वर्ग एवं जनसामान्य को सरलतापूर्वक ज्ञान प्राप्त करा रही है।

इस ग्रंथमाला से लगभग ३५० ग्रंथ लाखों की संख्या में प्रकाशित हो चुके हैं। उसी क्रम में यह "तीनलोक जिनमंदिर" नामक कृति है जिसमें तीन लोक में अवस्थित सम्पूर्ण कृत्रिम-अकृत्रिम जिनमंदिरों का जिन-जिन प्राचीन ग्रन्थों में वर्णन है उसका संकलन इसमें पूज्य माताजी ने किया है। सर्वप्रथम श्रीमद् गौतमस्वामी कृत चैत्यभक्ति, प्रतिक्रमण भक्ति (पू० माताजी द्वारा हिन्दी सहित) है पुनः मंगलाचरण करते हुए तीन लोक की रचना का संक्षिप्त वर्णन है।

श्री प्रभाचन्द्राचार्य कृत निषीधिकादण्डक संस्कृत टीका अनुवाद सहित है पुनः श्री पूज्यपाद आचार्य द्वारा रचित श्री नन्दीश्वर भक्ति (पूज्य माताजी द्वारा अनुवादित) और क्रमशः पूज्य माताजी द्वारा रचित त्रैलोक्य वंदना है। आगे सर्वप्रथम अधोलोक के जिनमंदिरों के वर्णन में भवनवासी देवों के जिनमंदिर तिलोयपण्णत्ति, त्रिलोकसार और लोकविभाग ग्रन्थ के माध्यम से वर्णित हैं। मध्यलोक के जिनमंदिर का सम्पूर्ण वर्णन त्रिलोकसार, तिलोयपण्णत्ति, त्रिलोकभास्कर, जम्बूद्वीप, लोकविभाग और तत्त्वार्थवार्तिक ग्रन्थ के माध्यम से किया गया है। ज्योतिर्वासी देवों के जिनमंदिर तिलोयपण्णत्ति, जैन ज्योतिर्लोक, त्रिलोकसार, सिद्धान्तसार दीपक, तत्त्वार्थवार्तिक

के आधार से वर्णित हैं, ऊर्ध्वलोक के जिनमंदिरों में वैमानिक देवों के जिनमंदिरों का वर्णन तिलोयपण्णत्ति, त्रिलोकसार, सिद्धान्तसार दीपक और लोकविभाग के आधार से है।

आगे पुनः मध्यलोक का वर्णन करते हुए तिलोयपण्णत्ति, त्रिलोकसार, जम्बूद्वीवपण्णत्ति, आदिपुराण, तत्त्वार्थवार्तिक, लोकविभाग, त्रिलोकभास्कर के माध्यम से मध्यलोक के चैत्यवृक्ष, सिद्धार्थवृक्ष, जम्बू-शाल्मली वृक्ष, कुलाचलों पर, सरोवरों के कमलों में, समुद्र के मध्य पाताल में, लवण समुद्र में पर्वत व द्वीपों पर, सुमेरुपर्वत के पाण्डुकवन में स्थित जिनमंदिरों का वर्णन है। द्वितीय जम्बूद्वीप का विस्तृत वर्णन करते हुए तिलोयपण्णत्ति का आधार लिया है, आगे कृत्रिम जिनमंदिरों के वर्णन में आदिपुराण, उत्तरपुराण, पद्मपुराण के माध्यम से इन्द्र द्वारा बनवाए गए तथा मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र जी के द्वारा बनवाए गए जिनमंदिर, भरतचक्री द्वारा बनवाए गए जिनमंदिर, सुलोचना द्वारा एवं हरिषेण चक्रवर्ती द्वारा बनवाए गए जिनमंदिरों का सुन्दर वर्णन है। प्रतिष्ठा सारोद्धार आदि अनेक प्राचीन ग्रन्थों के माध्यम से कृत्रिम जिनप्रतिमाओं (यक्ष-यक्षी सहित), शासन देव-देवी के प्रमाण, पूजा के प्रकरण में प्रमाण, यक्ष-यक्षी, दिग्पाल, क्षेत्रपाल पूजा को बताकर इस कृति की महत्ता को और अधिक द्विगुणित कर दिया है। चैत्यवन्दनाष्टक में पूज्य माताजी ने मात्र ९ श्लोकों में "गागर में सागर" वाली सूक्ति को चरितार्थ करते हुए तीनों लोकों के जिनमंदिरों की वंदना की है जिसे कंठाग्र कर भव्यात्मा प्राणी प्रतिदिन उसका पारायण कर तीनलोक की वंदना का पुण्य प्राप्त कर सकते हैं। ग्रन्थ के अंत में प्रशस्ति के माध्यम से पूज्य माताजी ने तीन लोक के जिनमंदिरों, गौतमस्वामी, सरस्वती माता को नमन करते हुए अपनी गुरुपरम्परा का वर्णन किया है और ग्रन्थ की परिपूर्णता की तिथि आदि को बताते हुए जैनशासन को नमन किया है।

प्रिय पाठक बंधुओं! मैं तो इस ग्रंथ की विषय वस्तु देखकर ही आश्चर्य चकित हूँ कि पूज्य माताजी का ८० वर्ष की उम्र में ऐसा दृढ़ शुभोपयोग, कृत्रिम-अकृत्रिम मंदिरों के दर्शन की तीव्र अभिलाषा, जनमानस को उसके ज्ञान से परिचित कराने की पवित्र भावना तथा उन सबको धरती पर साकार करके सरलरूप में आबाल-वृद्ध के लिए पुण्यबंध का मार्ग प्रशस्त करना सोलहकारण भावनाओं को भाकर तीर्थंकर प्रकृति का बंध करने सदृश असीम पुण्य का परिचायक है।

ग्रंथ के एक-एक विषय को आप सूक्ष्मता से पढ़िये और सामूहिक स्वाध्याय में इस एक ग्रंथ मात्र से अनेकानेक ग्रंथों की विषय वस्तु से सभी ज्ञानपिपासुओं को परिचित कराइए, यही पूज्य माताजी के महत् परिश्रम की सार्थकता होगी। आज मुझे स्वयं अपने सौभाग्य पर गर्व होता है कि ऐसी ज्ञानी-ध्यानी सर्वोच्च साध्वी की शिष्यता का लाभ प्राप्त कर मुझे अकृत्रिम चैत्यालयों की प्रतिकृतियों का दर्शन मिल रहा है यह दर्शन साक्षात् आत्म दर्शन में निमित्त बने, इसी आशीर्वाद की आकांक्षा के साथ पूज्य माताजी के श्रीचरणों में शत शत वंदन।

तीनलोक जिनमंदिर एक अद्भुत कृति

–आर्यिका सुव्रतमती

मृत्युंजयिनां प्रतिमाः, कृत्रिमास्तथा च संति यावन्त्योऽपि च।
अकृत्रिमा अप्रतिमा, जगत्त्रये नंनमीमि तास्ता मुक्त्यै।।१।।
मृत्युंजयि की प्रतिमा कृत्रिम, तथा अकृत्रिम अप्रतिम हैं।
भुवनत्रय में जितनी भी, उनको मन शिरसा वंदन है।।

जैनधर्म अनादिनिधन है, शाश्वत धर्म है सार्वभौम धर्म है। विदेह क्षेत्र में शाश्वत कर्मभूमि है। भरत और ऐरावत क्षेत्र में अशाश्वत कर्मभूमि है। षट्काल परिवर्तन से भरत, ऐरावत क्षेत्र में धर्म में वृद्धि, ह्रास होता रहता है।

तीनलोक यानि ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक और अधोलोक के खरभाग और पंकभागमें आठ करोड़, छप्पन लाख, सत्तानवे हजार, चार सौ इक्यासी अकृत्रिम जिनमंदिर है। इन सभी जिनमंदिरों में १०८–१०८ जिनप्रतिमाएँ है जिनका वर्णन कई ग्रन्थों से पूज्य गणिनी प्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने इस 'तीनलोक जिनमंदिर ग्रंथं में किया हैं तीनलोक के अकृत्रिम, कृत्रिम जिनमंदिरों की वन्दना से जन्म–जन्म के संचित पाप पुञ्ज क्षणभर में नष्ट हो जाते हैं। कहा भी है—

अनन्तानन्तसंसार संततिच्छेद कारणं। जिनराजपदाम्भोज स्मरणं शरणं मम।।

धवला पु. ६ में भी लिखा हैं—

दर्शनेन जिनेन्द्राणां पापसंघातकुंजरम्। शतधा भेदमायाति गिरिर्वज्रहतो यथा।।

आज के व्यस्त जीवन में जब कि मनुष्यों को मन्दिर जाने का, बड़े–बड़े ग्रंथोंका स्वाध्याय करने का समय नहीं है। अतः बीसवीं सदी में जैन समाज पर महान उपकार करने वाली युगप्रवर्तिका चारित्रचन्द्रिका परम पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माता जी ने तिलोयपण्णत्ति, त्रिलोकसार सिद्धान्तसारदीपक, लोकविभाग, आदिपुराण, पद्मपुराण, उत्तरपुराण आदि ग्रन्थों में जहाँ–जहाँ भी जिनमंदिर का वर्णन है, जहाँ–जहाँ जिनप्रतिमाएँ हैं, उन सबको निकाल–निकाल इस ग्रन्थ में गागर में सागर के समान भरकर प्रदान किया है। यह ग्रन्थ स्वाध्याय के लिए बहुत ही उपयोगी है।

पूज्य माताजी ने 'त्रैलोक्य चैत्यवन्दना' में संस्कृत के ६३ श्लोकों में तीन लोक के जिनमंदिर एवं जिनप्रतिमाओं का बहुत ही सुन्दर वर्णन किया है। अधोलोक में भवनवासी देवों के ७ करोड़ ७२ लाख जिनमंदिर हैं–

भवनालयेषु सप्त- कोटि द्वासप्तति - प्रमितलक्षेषु।
भवनेषु जिनप्रतिमा, नमामि भवभयविहानये विनयेन।।
भवनवासि देवों में जिनगृह, सप्तकरोड़ बहत्तर लाख।
भवविजयी की प्रतिमा उनमें, नमन करूँ हो दुख विनाश।।

सरस्वती की प्रतिमूर्ति पूज्य माताजी का ज्ञान वर्तमान समय में इतना उत्कृष्ट है कि किस ग्रन्थ में कहाँ क्या लिखा है, पूज्य माताजी बिना देखे बता देती हैं। जम्बूद्वीप रचना, तेरहद्वीप की रचना एवं तीनलोक की रचना के निर्माण के निमित्त से तिलोयपण्णत्ति, त्रिलोकसार आदि ग्रन्थों का पूज्य माताजी ने एक–दो बार नहीं, सैकड़ों बार स्वाध्याय किया है और रचना में कहाँ कितना माप होना चाहिए, कौन सा चैत्यालय कितना बड़ा हो आदि को शास्त्रोक्त प्रमाण से कई–कई डायरियों में लिख–लिख करके पूज्य माताजी की प्रेरणा से इतने सुन्दर–शास्त्रोक्त

निर्माण, भगवान शान्तिनाथ, कुंथुनाथ, अरहनाथ के ४-४ कल्याणक से पवित्र हस्तिनापुर की पावन भूमि पर हुए हैं।

जम्बूद्वीप हस्तिनापुर में आने वाला प्रत्येक यात्री इन रचनाओं का अर्थात् जैनभूगोल का दर्शन करके अत्यन्त प्रसन्न एवं गद्गद् होकर कहता है—माताजी! आपने यहाँ स्वर्ग का आनन्द प्राप्त करा दिया है। सभी रचनाएँ अति अद्भुत है। स्वर्णिम तेरहद्वीप में एक साथ २१२७ जिनप्रतिमाओं के दर्शन, तीनलोक रचना में ४५८ जिनप्रतिमाओं के दर्शन, जम्बूद्वीप में २२५ जिनप्रतिमाओं के दर्शन करके, चौबीसी जिनमंदिर में १००८ प्रतिमाओं के दर्शन, ध्यान मंदिर, ॐ मंदिर आदि अनेकों मंदिरों के दर्शन करके सभी को अत्यन्त आनन्द एवं महान पुण्य का बंध होता है। इन कृत्रिम प्रतिमाओं रचनाओं के तो आज हम सभी साक्षात् दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त कर रहे हैं लेकिन जो अकृत्रिम रचनाएँ हैं—अकृत्रिम प्रतिमाएँ हैं, उनके आज साक्षात् दर्शन नहीं कर सकते, किन्तु इस 'तीनलोक जिनमंदिर' पुस्तक के स्वाध्याय से परोक्षरूप में अनंतानंत जिनप्रतिमाओं के दर्शनों का पुण्य प्राप्त कर लेंगे।

पूज्य प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती जी ने 'तीनलोक रचना' के ऊपर बहुत ही सुन्दर भजन लिखा है—

जम्बूद्वीप हस्तिनापुर से बात सुनी है
तीन लोक की रचना सुन्दर वहाँ बनी हैं।
ऊर्ध्वलोक में स्वर्ग देखकर मन ललचाता।
पुण्यकर्म करने से मानव स्वर्ग में जाता।।
अर्द्धचन्द्रसम सिद्धशिला की बात सुनी है।
तीन लोक की रचना सुन्दर वहाँ बनी है।

इस पुस्तक की सेटिंग एवं प्रूफरीडिंग के माध्यम से मुझे इसके स्वाध्याय का जो लाभ और पुण्य मिला है वह सब पूज्य माताजी की असीम कृपा का फल है। आचार्य श्री पूज्यपाद स्वामी ने इष्टोपदेश में एक बहुत ही सुन्दर श्लोक लिखा है—

''अज्ञानोपास्तिरज्ञानं ज्ञानं ज्ञानि समाश्रयः।
ददात्ति यत्तु यस्यास्ति सुप्रसिद्धमिदं वचः।।''

अर्थात् अज्ञानी के पास अज्ञान और ज्ञानी के पास ज्ञान मिलता है। जिसके पास जो होगा वही तो देगा यह सूक्ति जग में प्रसिद्ध है। पूज्य माताजी -गणिनी प्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी एवं प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी के चरण सानिध्य में रहकर जो भी ज्ञान मुझे प्राप्त हुआ, उससे मुझे असीम आनन्द एवं सुखानुभूति होती है। पूज्य माताजी की छत्रछाया, चरणसानिध्य एवं आशीर्वाद सतत मुझे मिलता रहे यही मेरी मंगल भावना है।

इस 'तीनलोक जिनमंदिर' ग्रन्थ का स्वाध्याय मेरे जीवन में तीनलोक भ्रमण के समापन को प्राप्त करावे। इसी मंगल भावना के साथ तीनलोक के अनंतानंत जिनप्रतिमाओं को मेरा मन-वचन- कायपूर्वक अनन्त-अनन्त बार नमन। संसार समुद्र से निकालकर मोक्षमार्ग में लगाने वाली पूज्य माताजी के चरणों में मेरा कोटि-कोटि नमन।

ज्ञानमती माता को पाकर जीवन धन्य हुआ है।
उनकी शीतल छाया में कण-कण धन्य हुआ है।।
माँ का आशीष मिले सदा यही कामना है मेरी।
संयम चारित्र में बढ़ूँ सदा यही भावना है मेरी।।

दो शब्द

–ब्र. कु. बीना जैन (संघस्थ)

नवशतपंचविंशति-कोट्यो लक्षास्त्रयोत्तरपंचाशच्च।
सप्तविंशतिसहस्रा-ण्यष्टचत्वारिंशदधिकनवशतानि च।।१।।

नौ सौ पचीस कोटि त्रेपन, लाख सत्ताइस सहस प्रमाण।
नव सौ अड़तालिस जिन प्रतिमा, शिवसुख हेतु करूँ प्रणाम।।

जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी परम पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने इस 'तीन लोक जिनमंदिर' ग्रन्थ में तिलोयपण्णत्ति आदि कई ग्रन्थों से तीन लोक के समस्त अकृत्रिम, कृत्रिम जिनमंदिरों का वर्णन किया है। भवनवासी देवों के जिनमंदिर, व्यतंर देवों के जिनमंदिर, चैत्यवृक्षों पर जिन प्रतिमाएँ, मध्यलोक के जिनमंदिर–जम्बूद्वीपादि के ४५८ जिनमंदिर, जम्बूद्वीप के ५६८ कूटों पर जिनमंदिर, धातकीखण्डद्वीप में ११४४ कूटों पर जिनमंदिर, पुष्करार्ध द्वीप में भी ११४४ कूटों पर जिनमंदिर हैं। देवभवनों के जिनमंदिर, वृक्षों पर जिनमंदिर, कमलों में जिनमंदिर, नदी, पर्वत, वेदिका, तोरणद्वार, गंगादि गिरने के स्थान पर जिनप्रतिमाएँ हैं इन सभी जिनमंदिरों का वर्णन पढ़कर मन आल्हादित हो जाता है। इन सभी मन्दिरों में १०८–१०८ जिनप्रतिमाएँ विराजमान हैं। इन जिनमंदिरों का वैभव अवर्णनीय है, जहाँ मणियों की मालाएँ लटक रही हैं, धूपघट हमेशा जलते रहते हैं रत्नों की प्रतिमाएँ हैं, तोरणद्वार बने हैं, घंटियां लटक रही हैं, देवगण आकर इन अकृत्रिम मन्दिरों के दर्शन, पूजन करते रहते हैं।

परम पूज्य आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी का हम सभी पर यह महान उपकार है कि वे जैनागम में छिपे हुए बहुमूल्य रत्नों को, जिनागम के रहस्य को हम सभी को प्रदान कर रही हैं। ७९ वर्ष की उम्र में भी पूज्य माताजी सतत अपनी आवश्यक क्रियाओं को करते हुए कुछ न कुछ लेखन कार्य में लगी रहती हैं और हम सभी शिष्यों को भी लगाए रहती हैं। माताजी कहती हैं कि मेरे पास अभी इतना काम है जो कि शायद कभी पूरा ही नहीं होगा। लगभग ३०० ग्रन्थ तो माताजी ने लिख दिए हैं अभी कई ग्रन्थों की रूपरेखा तैयार करके रखी है जो कि छपने हैं।

लेखन के साथ, जिनमंदिर निर्माण, तीर्थों के जीर्णोद्धार में पूज्य माताजी ने जो कार्य किए हैं वे सभी अकथनीय हैं। माताजी के चरण सानिध्य में रहकर, उनकी वैय्यावृत्ति, आहारदान, स्वाध्याय आदि करके मन हर क्षण प्रफुल्लित रहता है। संसार समुद्र से निकाल कर मोक्षमार्ग में लगाने वाली पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी एवं प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी का आशीर्वाद हमेशा मिलता रहे यही जिनेन्द्र भगवान से मंगल प्रार्थना है। माताजी स्वस्थ रहें, दीर्घायु प्राप्त करें —

है यही कामना जिनवर से ये प्रभा सदा दिन दूनी हो।
भारत माता की गोदी इन माता से कभी न सूनी हो।।

इन्हीं शब्दों के साथ पूज्य माताजी के पावन चरणों में कोटि–कोटि नमन।

मेरे उद्गार

-ब्र. कु. इन्दु जैन (संघस्थ)

सर्वज्ञ भगवान से अवलोकित अनंतानंत अलोकाकाश के बहुमध्यभाग में ३४३ राजू प्रमाण पुरुषाकार लोकाकाश है। यह लोकाकाश जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और काल इन पाँचों द्रव्यों से व्याप्त है, अनादि अनंत है। छह द्रव्यों से सहित यह लोकाकाश स्थान निश्चय ही स्वयं प्रधान है, इसकी सब दिशाओं में नियम से अलोकाकाश स्थित है।

इस लोक के ऊर्ध्व, मध्य और अधोलोक ऐसे तीन भेद हैं। सम्पूर्ण लोक की ऊँचाई १४ राजू प्रमाण है एवं मोटाई सर्वत्र ७ राजू है जिसमें अधोलोक की ऊँचाई ७ राजू, मध्यलोक की ऊँचाई १ लाख ४० योजन एवं ऊर्ध्वलोक की ऊँचाई ७ राजू प्रमाण है। मृदंगाकार अधोलोक में रत्नप्रभा आदि सात पृथ्वियाँ हैं जिसमें प्रथम रत्नप्रभा पृथ्वी के खरभाग, पंकभाग और अब्बहुलभाग ऐसे तीन भाग हैं जिसमें खरभाग और पंकभाग में भवनवासी देवों के भवनों में सात करोड़ बहत्तर लाख जिनमंदिर एवं व्यंतर देवों के भवनों में असंख्यात जिनमंदिर हैं। मध्यलोक में ४५८ अकृत्रिम जिनमंदिर हैं जिसमें सुदर्शन, विजय आदि पांच मेरु सम्बन्धी ८०, कुलाचल के ३०, रजताचल के १७०, वक्षाराचल के ८०, गजदंतगिरी के २०, जम्बू शाल्मलि वृक्ष के १०, इष्वाकाराचल के ४, मनुजोत्तर पर्वत के ४, नन्दीश्वर द्वीप के ५२, (अंजनगिरि के ४, दधिमुख पर्वत के १६, रतिकर पर्वत के ३२), कुण्डलगिरि के ४, रुचकगिरि के ४ जिनमंदिर हैं। सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र आदि ज्योतिषी देवों के भी मध्यलोक में असंख्यात विमानों में असंख्यात जिनमंदिर हैं।

मध्यलोक के ऊपर ऊर्ध्वलोक अवस्थित है इसमें सोलह स्वर्ग, नव ग्रैवेयक, नव अनुदिश और पाँच अनुत्तर विमान हैं जिसमें सौधर्म स्वर्ग में ३२ लाख, ईशान स्वर्ग में अट्ठाईस लाख, सानत्कुमार में १२ लाख, माहेन्द्र स्वर्ग में आठ लाख, ब्रह्मयुगल में ४ लाख, लांतव युगल में ५० हजार, शुक्र युगल में ४० हजार, शतार युगल में ६ हजार, आनत-प्राणत-आरण-अच्युत में सात सौ, तीन अधो ग्रैवेयक में १११, तीन मध्यम ग्रैवेयक में १०७ जिनमंदिर एवं तीन ऊर्ध्व ग्रैवेयक में ९१ जिनमंदिर हैं। नव अनुदिश में ९ जिनमंदिर, पाँच अनुत्तर में ५ जिनमंदिर इस प्रकार ऊर्ध्वलोक में ८४,९७,०२३ जिनमंदिर हैं।

इस प्रकार तीनों लोकों में आठ करोड़ छप्पन लाख सत्तानवे हजार चार सौ इक्यासी अकृत्रिम जिनमंदिर हैं तथा ९२५ करोड़ ५३ लाख, २७ हजार, ९४८ जिनप्रतिमाएँ हैं। व्यंतर देव व ज्योतिष्क देवों के असंख्यात जिनमंदिरों में १०८-१०८ जिनप्रतिमाएँ हैं। इन सभी जिनमंदिर एवं जिनप्रतिमाओं का विस्तृत वर्णन तिलोयपण्णत्ति, त्रिलोकसार, तत्त्वार्थवार्तिक, सिद्धान्तसार दीपक, लोकविभाग, आदिपुराण आदि प्राचीन ग्रन्थों में मिलता है किन्तु इन सबका गहन अध्ययन करने पर ही हम इसे सविस्तार प्राप्त कर सकते हैं।

वस्तुतः बीसवीं इक्कीसवीं शताब्दी अत्यन्त गौरवशाली है जब इस कलिकाल में बीसवीं शताब्दी के प्रथमाचार्य चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज की निष्कलंक परम्परा में साक्षात् सरस्वती स्वरूपा, बीसवीं शताब्दी की प्रथम बाल ब्रह्मचारिणी, परम पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी जैसी महान

एवं प्रकाण्ड विदुषी साध्वी प्राप्त हुई हैं जिन्होंने जिनशासन पर महान उपकार करते हुए अपने उत्कृष्ट ज्ञान के क्षयोपशम से अष्टसहस्री, नियमसार, समयसार, षट्खण्डागम जैसे महान ग्रन्थों की हिन्दी-संस्कृत में टीका की। प्राकृत, संस्कृत तथा हिन्दी भाषाओं में अध्यात्म, सिद्धान्त भूगोल-खगोल, न्याय, व्याकरण, छन्द, अलंकार आदि नाना विषयों से समन्वित ३०० ग्रन्थों का सृजन किया, भक्तिमार्ग की शृंखला में अनेक विधानों की रचना कर अपूर्व कीर्तिमान स्थापित किया, तीर्थंकर भगवन्तों की पंचकल्याणक भूमियों का विकास-जीर्णोद्धार करवाया और अपने व्यक्तित्त्व और कृतित्त्व से सम्पूर्ण विश्व में जैनधर्म का जो शंखनाद किया वह वर्णनातीत है। आज ७९ वर्ष की वय में भी उनकी सतत चलती लेखनी से अनेक नूतन कृतियाँ संकलित अथवा लिखित रूप में जनमानस के सम्मुख आ रही हैं जो उनके अथक परिश्रम का ही परिचायक हैं। अनेक ग्रन्थों का आलोढन कर साररूप में पूज्य माताजी ने जो आगमोक्त जानकारी हमें प्रदान की है उससे हम जैनागम के अनेक गूढ़ किन्तु सारभूत तत्त्वों से परिचित हो पाएंगे।

वस्तुतः ऐसी महान कृतियों और ऐसे महान सन्तों से ही यह जिनशासन अपनी गरिमा को वृद्धिंगत करता रहा है जिनके माध्यम से प्राणी अपनी आत्मा का सहज ही कल्याण कर लेता है। इस अमूल्य और सारभूत कृति के माध्यम से आप सभी तीन लोक में विराजमान कृत्रिम-अकृत्रिम जिनप्रतिमाओं की विस्तृत जानकारी प्राप्त कर उनकी अकाट्य भक्ति करते हुए महान पुण्य का संचय करें।

इस ग्रन्थ की आद्योपान्त प्रूफ रीडिंग करके मुझे २-३ बार इसे पढ़ने का जो महान सौभाग्य प्राप्त हुआ वह अनिर्वचनीय है। प्रूफ रीडिंग के मध्य कुछ ऐसी बातें ज्ञात हुईं जिनका ज्ञान मुझे आज तक नहीं था, शायद इसीलिए आचार्यों ने स्वाध्याय को परम तप कहा है और यही तप एक दिन मुक्ति प्राप्ति में निमित्त बनता है इसमें कोई अतिशयोक्ति वाली बात नहीं है। यह स्वाध्याय मेरे जीवन में सफलीभूत हो और क्रम-क्रम से त्याग की उच्चतम सीढ़ियों पर आरोहण करते हुए एक दिन मैं भी सिद्धों की श्रेणी में अपना स्थान बना सकूं तथा ऐसे अमूल्य रत्नों की प्रदात्री परम पूज्य गणिनी प्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी चिरायु एवं स्वस्थ रहकर हम सभी पर इसी प्रकार अपना ज्ञानमयी, वात्सल्यमयी वरदहस्त बनाए रखें और आगामी भवों में कैवल्य अवस्था की प्राप्ति कर हमें भी अपने साथ मुक्तिलक्ष्मी का वरण करावें यही वीरप्रभू से मंगल प्रार्थना है।

आभार

इस ग्रंथ के प्रकाशन हेतु पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन गुरुकुल-महाराजगंज, हैदराबाद के प्रमुख श्री मांगीलाल जी बाबूलाल जी विजय कुमार पहाड़े, होटल राजधानी, सिदयम्बर बाजार, हैदराबाद ने आर्थिक सौजन्य प्रदान किया एतदर्थ हम आपके ज्ञानदान की भावनाओं का सम्मान करते हुए संस्थान की ओर से आपके प्रति बहुत-बहुत धन्यवाद एवं आभार ज्ञापित करते हैं। आगे भी इसी प्रकार ग्रंथ प्रकाशन व धर्म कार्यों में आप अपनी चंचला लक्ष्मी का सदुपयोग करते रहें, यही मंगल भावना है।

-सम्पादक

राष्ट्रगौरव परम पूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि
श्री ज्ञानमती माताजी का परिचय

-प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चंदनामती

कुन्दकुन्दान्वयो जीयात्, जीयात् श्री शांतिसागरः।
जीयात् पट्टाधिपस्तस्य, सूरिः श्री वीरसागरः।।
श्री ब्राह्मी गणिनी जीयात्, जीयादन्तिमचन्दना।
जीयात् ज्ञानमती माता, गणिन्यां प्रमुखा कलौ।।

जैनशासन के वर्तमान व्योम पर छिटके नक्षत्रों में दैदीप्यमान सूर्य की भाँति अपनी प्रकाश-रश्मियों को प्रकीर्णित कर रहीं पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर उठी लेखनी की अपूर्णता यद्यपि अवश्यंभावी है, तथापि आत्मकल्याण की भावना से पूज्य माताजी के श्रीचरणों में उनके दीर्घकालीन त्यागमयी जीवन के प्रति विनम्र विनयांजलिरूप मेरा यह विनीत प्रयास है।

१. जन्म, वैराग्य और दीक्षा-२२ अक्टूबर सन् १९३४, शरदपूर्णिमा के दिन टिकैतनगर ग्राम (जि. बाराबंकी, उ.प्र.) के श्रेष्ठी श्री छोटेलाल जैन की धर्मपत्नी श्रीमती मोहिनी देवी के दांपत्य जीवन के प्रथम पुष्प के रूप में "मैना" का जन्म परिवार में नवीन खुशियाँ लेकर आया था। माँ को दहेज में प्राप्त 'पद्मनंदिपंचविंशतिका' ग्रन्थ के नियमित स्वाध्याय एवं पूर्वजन्म से प्राप्त दृढ़ वैराग्य संस्कारों के बल पर मात्र १८ वर्ष की अल्प आयु में ही शरद पूर्णिमा के दिन मैना ने आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी महाराज से सन् १९५२ में आजन्म ब्रह्मचर्यव्रतरूप सप्तम प्रतिमा एवं गृहत्याग के नियमों को धारण कर लिया। उसी दिन से इस कन्या के जीवन में २४ घंटे में एक बार भोजन करने के नियम का भी प्रारंभीकरण हो गया।

नारी जीवन की चरमोत्कर्ष अवस्था आर्यिका दीक्षा की कामना को अपनी हर साँस में संजोये ब्र. मैना सन् १९५३ में आचार्य श्री देशभूषण जी से ही चैत्र कृष्णा एकम् को श्री महावीरजी अतिशय क्षेत्र में 'क्षुल्लिका वीरमती' के रूप में दीक्षित हो गईं। सन् १९५५ में चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज की समाधि के समय कुंथलगिरी पर एक माह तक प्राप्त उनके सान्निध्य एवं आज्ञा द्वारा 'क्षुल्लिका वीरमती' ने आचार्य श्री के प्रथम पट्टाचार्य शिष्य-वीरसागर जी महाराज से सन् १९५६ में 'वैशाख कृष्णा दूज' को माधोराजपुरा (जयपुर-राज.) में आर्यिका दीक्षा धारण करके "**आर्यिका ज्ञानमती**" नाम प्राप्त किया।

२. अध्ययन और अध्यापन-ज्ञानप्राप्ति की पिपासा माता ज्ञानमती जी के रोम-रोम में प्रारंभ से ही कूट-कूट कर भरी थी। दीक्षा लेते ही स्वाध्याय-मनन-चिंतन की धारा में ही उन्होंने स्वयं को निबद्ध कर लिया। ज्ञान प्राप्ति का सर्वश्रेष्ठ स्रोत बना-संघस्थ मुनियों, आर्यिकाओं एवं संघस्थ शिष्य-शिष्याओं को जैनागम का तलस्पर्शी अध्यापन। 'कातंत्र रूपमाला' रूपी बीज से पूज्य माताजी की ज्ञानसाधना रूप वृक्ष प्रस्फुटित हुआ, जिस पर जो पत्ते, फूल-फल इत्यादि लगे, उन्होंने समस्त संसार को सुवासित कर दिया। गोम्मटसार, परीक्षामुख, न्यायदीपिका, प्रमेयकमलमार्तण्ड, अष्टसहस्री, तत्त्वार्थराजवार्तिक, सर्वार्थसिद्धि, अनगारधर्मामृत, मूलाचार, त्रिलोकसार आदि

अनेक ग्रंथों को अपनी शिष्याओं और संघस्थ साधुओं को पढ़ा-पढ़ाकर आपने अल्प समय में ही विस्तृत ज्ञानार्जन कर लिया। हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, मराठी इत्यादि भाषाओं पर आपका पूर्ण अधिकार हो गया।

३. लेखनी का प्रारंभीकरण संस्कृत भाषा से-भगवान महावीर के पश्चात् २६०० वर्ष के जिस इतिहास में जैन साध्वियों के द्वारा शास्त्र लेखन की कोई मिसाल दृष्टिगोचर नहीं होती थी, वह इतिहास जागृत हो उठा जब क्षुल्लिका वीरमती जी ने सन् १९५४ में सहस्रनाम के १००८ मंत्रों से अपनी लेखनी का प्रारंभ किया। यही मंत्र सरस्वती माता का वरदहस्त बनकर पूज्य माताजी की लेखनी को ऊँचाइयों की सीमा तक ले गये। सन् १९६९-७० में न्याय के सर्वोच्च ग्रंथ 'अष्टसहस्री' के हिन्दी अनुवाद ने उनकी अद्वितीय विद्वत्ता को संसार के सामने उजागर कर दिया। कितने ही ग्रंथों की संस्कृत टीका, कितनी ही टीकाओं के हिंदी अनुवाद, संस्कृत एवं हिन्दी में अनेक मौलिक ग्रंथों की रचना मिलकर आज लगभग २५० से भी अधिक संख्या हो चुकी है। पूज्य माताजी द्वारा लिखित समयसार, नियमसार इत्यादि की हिन्दी-संस्कृत टीकाएँ, जैनभारती, ज्ञानामृत, कातंत्र व्याकरण, त्रिलोक भास्कर, प्रवचन निर्देशिका इत्यादि स्वाध्याय ग्रंथ, प्रतिज्ञा, संस्कार, भक्ति, आदिब्रह्मा, आटे का मुर्गा, जीवनदान इत्यादि जैन उपन्यास, द्रव्यसंग्रह-रत्नकरण्डश्रावकाचार इत्यादि के हिन्दी पद्यानुवाद व अर्थ, बाल विकास, बालभारती, नारी आलोक आदि का अध्ययन किसी को भी वर्तमान में उपलब्ध जैन वाङ्मय की विविध विधाओं का विस्तृत ज्ञान कराने में सक्षम है।

अध्यात्म, व्याकरण, न्याय, सिद्धांत, बाल साहित्य, उपन्यास, चारों अनुयोगोंरूप विविध विधाओं के अतिरिक्त पूज्य माताजी की लेखनी से विपुल भक्ति साहित्य उद्भूत हुआ है। इन्द्रध्वज, कल्पद्रुम, सर्वतोभद्र, तीन लोक, सिद्धचक्र, विश्वशांति महावीर विधान इत्यादि अनेकानेक भक्ति विधानों ने देश के कोने-कोने में जिनेन्द्र भक्ति की जो धारा प्रवाहित की है, वह अतुलनीय है। पूज्य माताजी का चिंतन एवं लेखन पूर्णतया जैन आगम से संबद्ध है, यह उनकी महान विशेषता है।

धन्य हैं ऐसी महान प्रतिभावान् सरस्वती माता!

४. सिद्धांत चक्रेश्वरी-पूज्य माताजी ने जैनशासन के सर्वप्रथम सिद्धांत ग्रंथ 'षट्खण्डागम' की सोलहों पुस्तकों के सूत्रों की संस्कृत टीका 'सिद्धांत चिंतामणि' का लेखन करके महान कीर्तिमान स्थापित किया है। क्रम-क्रम से हिन्दी टीका सहित इन पुस्तकों के प्रकाशन का कार्य चल रहा है। आज से लगभग १००० वर्ष पूर्व आचार्य श्री नेमिचंद्र सिद्धांतचक्रवर्ती ने जिस प्रकार छह खण्डरूप द्वादशांगरूप जिनवाणी को परिपूर्ण आत्मसात करके साररूप में द्रव्य संग्रह, गोम्मटसार, लब्धिसार इत्यादि ग्रंथ अपनी लेखनी से प्रसवित किये थे, उसी प्रकार इस बीसवीं सदी की माता ज्ञानमती जी ने समस्त उपलब्ध जैनागम का गहन अध्ययन-मनन-चिंतन करके इस सिद्धांतचिंतामणिरूप संस्कृत टीका लेखन के महत्तम कार्य से 'सिद्धांत चक्रेश्वरी' के पद को साकार कर दिया है। आचार्य श्री वीरसेन स्वामी द्वारा १००० वर्ष पूर्व लिखित 'धवलाटीका' के पश्चात् इस महान ग्रंथ की सरल टीका लेखन का कार्य प्रथम बार हुआ है।

५. शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर-जैन सिद्धांतों का मर्म विद्वत् वर्ग समझ सके, इस भावना से कितने ही शिक्षण-प्रशिक्षण शिविरों का आयोजन पूज्य माताजी की प्रेरणास्वरूप किया गया। सन् १९६९ में जयपुर चातुर्मास के मध्य 'जैन ज्योतिर्लोक' पर प्रशिक्षण शिविर आयोजित किया गया, जिसमें पूज्य माताजी द्वारा 'जैन

भूगोल एवं खगोल' का विशेष ज्ञान विद्वत्वर्ग को कराया गया। अक्टूबर सन् १९७८ में हस्तिनापुर में पं. मक्खनलाल जी शास्त्री, पं. मोतीचंद जी कोठारी, डा. लाल बहादुर शास्त्री सहित जैन समाज के उच्चकोटि के लगभग १०० विद्वानों का विद्वत् प्रशिक्षण शिविर आयोजित किया गया, जिसमें पूज्य माताजी ने विद्वत्समुदाय को यथेष्ट मार्गदर्शन प्रदान किया। समय-समय पर आज तक यह श्रृंखला चल रही है।

६. राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय सेमिनार-सन् १९८५ में 'जैन गणित एवं त्रिलोक विज्ञान' पर अंतर्राष्ट्रीय सेमिनार जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में सम्पन्न हुआ, पुनः अनेक संगोष्ठियाँ सम्पन्न होती रहीं और सन् १९९८ में 'भगवान ऋषभदेव राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन' के भव्य आयोजन द्वारा देशभर के विश्वविद्यालयों से पधारे कुलपतियों को भगवान ऋषभदेव को भारतीय संस्कृति एवं जैनधर्म के वर्तमानयुगीन प्रणेता पुरुष के रूप में जानने का अवसर प्राप्त हुआ। ११ जून २००० को 'जैनधर्म की प्राचीनता' विषय पर आयोजित इतिहासकारों के सम्मेलन द्वारा पाठ्य पुस्तकों में जैनधर्म संबंधी भ्रांतियों के सुधार के लिए विशेष दिशा-निर्देश 'राष्ट्रीय शैक्षणिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद' (NCERT) तक पहुँचाये गये। इनके अतिरिक्त अनेक अन्य सेमिनार भी समय-समय पर सम्पन्न हुए हैं, जिनके प्रतिफल में देश के समक्ष समय-समय पर साहित्यिक कृतियाँ (Proceedings) प्रस्तुत हो चुकी हैं।

७. दिगम्बर समाज की साध्वी को प्रथम बार डी.लिट्. की उपाधि प्रदान कर विश्वविद्यालय भी गौरवान्वित हुआ-किसी महाविद्यालय, विश्वविद्यालय आदि में पारम्परिक डिग्रियों को प्राप्त किये बिना मात्र स्वयं के धार्मिक अध्ययन के बल पर विदुषी माताजी ने अध्ययन, अध्यापन, साहित्य निर्माण की जिन ऊँचाइयों को स्पर्श किया, उस अगाध विद्वत्ता के सम्मान हेतु डॉ. राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, फैजाबाद द्वारा ५ फरवरी १९९५ को डी.लिट्. की मानद् उपाधि से पूज्य माताजी को सम्मानित करके स्वयं को गौरवान्वित अनुभव किया गया तथा दिगम्बर जैन साधु-साध्वी परम्परा में पूज्य माताजी यह उपाधि प्राप्त करने वाली प्रथम व्यक्तित्व बन गईं। पुनः इसके उपरांत ८ अप्रैल २०१२ को पूज्य माताजी के ५७वें आर्यिका दीक्षा दिवस के अवसर पर तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय, मुरादाबाद में विश्वविद्यालय का प्रथम विशेष दीक्षांत समारोह आयोजित करके विश्वविद्यालय द्वारा पूज्य माताजी के करकमलों डी.लिट्. की मानद उपाधि प्रदान की गई।

इसी प्रकार से समय-समय पर विभिन्न आचार्यों एवं सामाजिक संस्थाओं द्वारा पूज्य माताजी को न्याय प्रभाकर, आर्यिकारत्न, आर्यिकाशिरोमणि, गणिनीप्रमुख, वात्सल्यमूर्ति, तीर्थोद्धारिका, युगप्रवर्तिका, चारित्रचन्द्रिका, राष्ट्रगौरव, वाग्देवी इत्यादि अनेक उपाधियों से अलंकृत किया गया है, किन्तु पूज्य माताजी इन सभी उपाधियों से निस्पृह होकर अपनी आत्मसाधना को प्रमुखता देते हुए निर्दोष आर्यिका चर्या में निमग्न रहने का ही अपना मुख्य लक्ष्य रखती हैं।

८. पूज्य माताजी की प्रेरणा से त्याग में बढ़े कदम-त्यागमार्ग में अग्रसर सम्यग्दृष्टी जीव की यह विशेषता रहती है कि वह संसार परिभ्रमण से आक्रान्त अन्य भव्यजीवों को भी मोक्षमार्ग का पथिक बनाने हेतु विशेषरूप से प्रयासरत रहता है। इसी भावना की परिपुष्टी करते हुए पूज्य माताजी ने अनेकानेक शिष्य-शिष्याओं का सृजन किया।

संघस्थ साधुओं-मुनिजनों एवं आर्यिकाओं को अध्ययन कराते हुए सन् १९५६-५७ में ब्र. राजमल जी को राजवार्तिक आदि अनेक ग्रंथों का अध्ययन कराकर पूज्य माताजी ने उन्हें मुनिदीक्षा लेने की प्रेरणा प्रदान की। पुनश्च ब्र. राजमल जी कालांतर में आचार्य अजितसागर जी महाराज के रूप में चारित्रचक्रवर्ती आचार्यश्री

शांतिसागर जी महाराज की परम्परा में चतुर्थ पट्टाचार्य के रूप में प्रतिष्ठित हुए।

सन् १९६७ में सनावद चातुर्मास के मध्य पूज्य माताजी ने ब्र. मोतीचंद एवं युवक यशवंत कुमार को घर से निकाला, उन्हें खूब विद्याध्ययन कराया तथा यशवंत कुमार को मुनिदीक्षा दिलवायी, जो वर्तमान में आचार्यश्री वर्धमानसागर के नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त हैं। ब्र. मोतीचंद जी भी क्षुल्लक मोतीसागर बनकर जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर के प्रथम पीठाधीश के रूप में प्रतिष्ठित हुए।

वर्तमान पट्टाचार्यश्री अभिनंदनसागर जी महाराज ने भी पूज्य माताजी से राजवार्तिक, गोम्मटसार आदि ग्रंथों का अध्ययन किया था। मुनि श्री भव्यसागर जी महाराज, मुनि श्री संभवसागर जी महाराज इत्यादि ने भी पूज्य माताजी से विद्याध्ययन किया तथा उनकी प्रेरणा से ही मुनि दीक्षा प्राप्त की। वर्तमान में पूज्य माताजी के अनन्य शिष्य स्वस्तिश्री कर्मयोगी पीठाधीश रवीन्द्रकीर्ति स्वामी जी अत्यंत कर्मठ व्यक्तित्व के रूप में समस्त समाज में प्रसिद्धि को प्राप्त हैं।

आर्यिका माताओं की शृँखला में आर्यिका श्री पद्मावती माताजी, आर्यिका श्री जिनमती माताजी, आर्यिका श्री आदिमती माताजी, आर्यिका श्री श्रेष्ठमती माताजी, आर्यिका श्री अभयमती माताजी, आर्यिका श्री श्रुतमती माताजी, मैं स्वयं (आर्यिका चन्दनामती) तथा आर्यिका श्री सम्मेदशिखरमती माताजी, आर्यिका श्री कैलाशमती माताजी आदि अन्य कई माताजी पूज्य माताजी से प्राप्त वैराग्यमयी संस्कारों एवं अध्यापन का ही प्रतिफल हैं। पूज्य माताजी से सर्वांगीण ग्रंथों का अध्ययन करके पूज्य जिनमती माताजी ने प्रमेयकमलमार्तण्ड, पूज्य आदिमती माताजी ने गोम्मटसार कर्मकाण्ड का हिन्दी अनुवाद किया है। मुझे भी षट्खण्डागम एवं अन्य महान ग्रंथों की हिन्दी टीका, महावीर स्तोत्र की संस्कृत टीका एवं कतिपय संस्कृत रचनाएँ लिखने का सुअवसर पूज्य माताजी की अनुकम्पा से प्राप्त हुआ है।

६१ वर्षों की सुदीर्घ अवधि में कितने ही भव्य जीवों ने पूज्य माताजी से आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत, पंच अणुव्रत, शक्ति अनुसार प्रतिमाएँ इत्यादि ग्रहण करके संयम के मार्ग को आत्मसात किया है। वर्तमान में पूज्य माताजी के साक्षात् सानिध्य में रहकर अनेक ब्रह्मचारिणी बहनें त्यागमार्ग में संलग्न हैं।

९. तीर्थ विकास की भावना-तीर्थंकर भगवन्तों की कल्याणक भूमियों एवं विशेष रूप से जन्मभूमियों के विकास की ओर पूज्य माताजी की विशेष आंतरिक रुचि सदा से रही है। पूज्य माताजी का कहना है कि हमारी संस्कृति का परिचय प्रदान करने वाली ये कल्याणक भूमियाँ हमारी संस्कृति की महान धरोहर हैं अत: इनका संरक्षण-संवर्धन-विकास अत्यंत आवश्यक है।

सर्वप्रथम **भगवान शांतिनाथ, कुन्थुनाथ, अरहनाथ की जन्मभूमि 'हस्तिनापुर'** में पूज्य माताजी की प्रेरणा से निर्मित जैन भूगोल की अद्वितीय रचना 'जम्बूद्वीप' आज विश्व के मानस पटल पर अंकित हो गयी है, उ.प्र. सरकार के पर्यटन विभाग ने जम्बूद्वीप से हस्तिनापुर की पहचान बताते हुए उसे एक अतुलनीय 'मानव निर्मित स्वर्ग' (A Man Made Heaven of Unparallel Superlatives And Natural Wonders) की संज्ञा प्रदान की है। सन् १९९३ से १९९५ तक शाश्वत जन्मभूमि 'अयोध्या' में 'समवसरण मंदिर' और 'त्रिकाल चौबीसी मंदिर' का निर्माण करवाकर उसका विश्वव्यापी प्रचार, अकलूज (महाराष्ट्र) में नवदेवता मंदिर निर्माण की प्रेरणा, सनावद (म.प्र.) में णमोकार धाम, प्रीत विहार-दिल्ली में कमलमंदिर, मांगीतुंगी (महाराष्ट्र) में सहस्रकूट कमल मंदिर, अहिच्छत्र में ग्यारह शिखर वाला तीस चौबीसी मंदिर और भगवान ऋषभदेव की दीक्षा एवं केवलज्ञान

कल्याणक भूमि-प्रयाग (इलाहाबाद) में 'तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ' का भव्य निर्माण पूज्य माताजी की ही प्रेरणा के प्रतिफल हैं।

कितने ही अन्य स्थानों पर भी जैसे-**खेरवाड़ा में** कैलाशपर्वत निर्माण की प्रेरणा, **पिड़ावा में** समवसरण रचना की प्रेरणा, **सोलापुर (महा.) में** भगवान ऋषभदेव की विशाल प्रतिमा की स्थापना, **श्री महावीर जी के शांतिवीर नगर में** मंदारवृक्ष की स्थापना, **अतिशयक्षेत्र श्री त्रिलोकपुर में** पारिजातवृक्ष की स्थापना, **केकड़ी (राज.) में** सम्मेदशिखर की रचना आदि अनेकानेक निर्माण पूज्य माताजी के निर्देशन द्वारा सम्पन्न हुए और हो रहे हैं। भगवान महावीर स्वामी की **जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा-बिहार)** के विकास हेतु भगवान महावीर स्वामी कीर्तिस्तंभ, भगवान महावीर की विशाल खड्गासन प्रतिमा सहित विश्वशांति महावीर मंदिर, नवग्रह शांति जिनमंदिर, त्रिकाल चौबीसी मंदिर एवं नंद्यावर्त महल आदि अनेक निर्माण आपकी प्रेरणा से इस क्षेत्र पर हुए हैं तथा कुण्डलपुर तीर्थ विश्वभर के लिए आकर्षण का केन्द्र बन गया है।

भगवान मुनिसुव्रतनाथ की जन्मभूमि **'राजगृही' में** 'मुनिसुव्रतनाथ जिनमंदिर' एवं विपुलाचल पर्वत की तलहटी में मानस्तंभ रचना, भगवान महावीर की निर्वाणस्थली **पावापुरी में** जलमंदिर के समक्ष पाण्डुकशिला परिसर में भगवान की खड्गासन प्रतिमा सहित 'भगवान महावीर जिनमंदिर', गौतम गणधर स्वामी की निर्वाणस्थली **गुणावां जी में** गौतम स्वामी की खड्गासन प्रतिमा सहित जिनमंदिर, **श्री सम्मेदशिखर जी में** भगवान ऋषभदेव मंदिर इत्यादि समस्त निर्माण भी पूज्य माताजी की संप्रेरणा से ही सम्पन्न हुए हैं।

तीर्थंकर जन्मभूमि विकास की शृँखला में **भगवान पुष्पदंतनाथ की जन्मभूमि काकंदी में** 'श्री पुष्पदंतनाथ जिनमंदिर' का निर्माणकार्य होकर उसमें भगवान पुष्पदंतनाथ की विशाल सवा ९ फुट उत्तुंग पद्मासन प्रतिमा पंचकल्याणक प्रतिष्ठापूर्वक विराजमान हो चुकी हैं।

तीर्थंकरों की शाश्वत **जन्मभूमि अयोध्या में** वर्तमानकालीन वहाँ जन्में पाँच तीर्थंकरों की जन्मभूमि की टोकों पर जिनमंदिर निर्माण की प्रेरणा प्रदान कर आपने संस्कृति को जीवन्त करने का अभूतपूर्व प्रयास किया है। उस शृँखला में प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव की टोंक पर सुन्दर कलात्मक मंदिर बनकर उसमें सवा चार फुट पद्मासन श्वेत प्रतिमा विराजमान हुई हैं तथा सरयू नदी के तट पर भगवान अनन्तनाथ के मंदिर का निर्माण होकर पंचकल्याणक सम्पन्न हो चुका है। इसी प्रकार क्रमशः अन्य टोकों पर भी मंदिरों के शिलान्यास होकर निर्माण चल रहे हैं।

उल्लेखनीय है कि पूज्य माताजी के आर्यिका दीक्षास्थल-**माधोराजपुरा (राज.) में** भी 'गणिनीप्रमुख आर्यिका श्री ज्ञानमती दीक्षा तीर्थ' के विकास का कार्य सम्पन्न किया जा चुका है। यहाँ सुन्दर कृत्रिम सम्मेदशिखर पर्वत का निर्माण करके १५ फुट उत्तुंग काले पाषाण वाली भगवान पार्श्वनाथ की खड्गासन प्रतिमा एवं चौबीसी विराजमान की गई हैं। इस तीर्थ की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा २१ नवम्बर से २६ नवम्बर २०१० तक पीठाधीश क्षुल्लक श्री मोतीसागर जी महाराज के सान्निध्य में एवं कर्मयोगी ब्र.रवीन्द्र कुमार जैन (वर्तमान पीठाधीश रवीन्द्रकीर्ति स्वामी जी) के निर्देशन में विशेष महोत्सवपूर्वक सम्पन हुई है।

इसी शृँखला में अतिशय क्षेत्र **श्री महावीर जी (राज.) में** पूज्य माताजी की प्रेरणा एवं आशीर्वाद से शांतिवीर नगर के निकट स्थित महावीर धाम परिसर में **पंचबालयति दिगम्बर जैन मंदिर** का भव्य निर्माण कार्य सम्पन्न हुआ है। यहाँ पर पाँचों बालयति भगवान की प्रतिमाएँ विराजमान करके पृथक् वेदियों में पद्मावती,

क्षेत्रपाल की प्रतिमाएँ भी विराजमान की गई हैं। संस्थान द्वारा उक्त जिनमंदिर का पंचकल्याणक दिनाँक २९ जनवरी से २ फरवरी २०१२ तक सानंद सम्पन्न किया गया।

विशेष : तेरहद्वीप रचना, तीर्थंकरत्रय प्रतिमा एवं तीनलोक रचना–

जम्बूद्वीप–हस्तिनापुर तीर्थ के विकास की अद्वितीयता को अमरता प्रदान करने वाली इन रचनाओं का निर्माण पूज्य माताजी की प्रेरणा से इतिहास में प्रथम बार हुआ। अप्रैल सन् २००७ में स्वर्णिम तेरहद्वीप रचना की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा हुई। विश्व में प्रथम बार निर्मित इस रचना में विराजमान २१२७ जिनप्रतिमाओं के दर्शन करके लोग इच्छित फल की प्राप्ति करते हैं। इसके अतिरिक्त हस्तिनापुर में जन्मे भगवान शांतिनाथ–कुंथुनाथ–अरहनाथ की ३१–३१ फुट उत्तुंग खड्गासन प्रतिमाओं एवं ५६ फुट उत्तुंग निर्मित तीनलोक रचना की जिनप्रतिमाओं की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा फरवरी सन् २०१० में हुई जो हस्तिनापुर के अतिशय में चार चाँद लगा रही हैं।

१०. विश्व में अनोखी १०८ फुट मूर्ति निर्माण की प्रेरणा–विश्व के अप्रतिम आश्चर्य के रूप में १०८ फुट उत्तुंग भगवान ऋषभदेव की खड्गासन प्रतिमा के निर्माण का कार्य मांगीतुंगी (महा.) के पर्वत पर पूज्य माताजी की प्रेरणा से द्रुतगति से चल रहा है। युगों–युगों तक जिनशासन की महिमा को विकसित करने वाली यह प्रतिमा जैन संस्कृति के विशाल व्यक्तित्व का परिचय भी जनमानस को प्रदान करेगी।

११. शिरडी (महाराष्ट्र) में ज्ञानतीर्थ–शिरडी (महाराष्ट्र) को जैन संस्कृति केन्द्र के रूप में स्थापित करने हेतु वहाँ पर 'ज्ञानतीर्थ' के निर्माण की योजना मूर्त रूप ले रही है, जिसमें पूज्य माताजी के निर्देशानुसार भगवान पार्श्वनाथ की विशाल प्रतिमा विराजमान करके पंचकल्याणक महोत्सव सम्पन्न हो चुका है और अब वहाँ सुन्दर कमल मंदिर का निर्माण किया जा रहा है।

१२. जृम्भिका तीर्थ विकास की प्रेरणा–भगवान महावीर स्वामी की कैवल्य भूमि जृंभिका जो आज बिहार प्रान्त में जमुई के नाम से प्रसिद्ध है, वहाँ एक नूतन भूमि पर भगवान की प्रतिमा विराजमान हो चुकी है तथा इस जृम्भिका तीर्थ का विकास हो रहा है, जो शीघ्र ही भक्तों के तीर्थयात्रा की श्रेणी में आएगा।

१३. धर्मप्रभावना के विविध आयाम–जम्बूद्वीप रचना के निर्माण का प्रमुख लक्ष्य लेकर 'दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान' नामक संस्था का राजधानी दिल्ली में पूज्य माताजी की प्रेरणा से सन् १९७२ में गठन किया गया। इसी संस्थान ने विविध धर्मप्रभावना के कार्यों का संचालन किया है। संस्थान स्थित 'वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला' द्वारा लाखों की संख्या में ग्रंथ प्रकाशन, चारों अनुयोगों के ज्ञान से समन्वित 'सम्यग्ज्ञान' मासिक पत्रिका का प्रकाशन, णमोकार महामंत्र बैंक इत्यादि कितनी ही कार्ययोजनाएँ जिनशासन की कीर्ति को निरंतर प्रसारित कर रही हैं।

पूज्य माताजी की प्रेरणा से सन् १९८२ में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी द्वारा राजधानी दिल्ली से उद्घाटित 'जम्बूद्वीप ज्ञान ज्योति' ने तीन वर्ष तक सम्पूर्ण भारतवर्ष में जैनधर्म के सिद्धांतों का प्रचार–प्रसार किया और अंत में यह ज्योति अखण्डरूप से तत्कालीन केन्द्रीय रक्षामंत्री–श्री पी.वी. नरसिंहाराव द्वारा जम्बूद्वीप स्थल पर स्थापित कर दी गयी। इसी प्रकार अप्रैल सन् १९९८ में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने 'भगवान ऋषभदेव समवसरण श्रीविहार' का राजधानी दिल्ली से प्रवर्तन किया, जो समस्त प्रांतों में प्रवर्तन के पश्चात् भगवान ऋषभदेव की दीक्षास्थली–प्रयाग तीर्थ पर निर्मित 'समवसरण मंदिर' में स्थापित होकर युगों–युगों

तक के लिए भगवान ऋषभदेव के वास्तविक समवसरण की याद दिला रहा है। भगवान महावीर जन्मभूमि-कुण्डलपुर (नालंदा) से सन् २००३ में 'भगवान महावीर ज्योति रथ' का विविध प्रांतों में सफल प्रवर्तन भी इसी शृँखला की विशिष्ट कड़ी है।

जैनधर्म की प्राचीनता तथा भगवान ऋषभदेव के नाम एवं सिद्धांतों को जन-जन तक पहुँचाने के लिए पूज्य माताजी ने सन् १९९७ में राजधानी दिल्ली में विशाल 'चौबीस कल्पद्रुम महामण्डल विधान' आयोजित कराया, जिसका झण्डारोहण पूर्व राष्ट्रपति डॉ. शंकरदयाल शर्मा ने किया एवं दिल्ली के मुख्यमंत्री श्री साहिब सिंह वर्मा, मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री श्री दिग्विजय सिंह तथा श्रीमती सुषमा स्वराज आदि अनेक कैबिनेट मंत्रियों ने उपस्थित होकर धर्मलाभ लिया। साथ ही 'भगवान ऋषभदेव जन्मजयंती वर्ष' (सन् १९९७-१९९८ में) तथा 'भगवान ऋषभदेव अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव वर्ष' (सन् २००० में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा उद्घाटित) भी पूज्य माताजी की प्रेरणा द्वारा विविध धर्मप्रभावना के कार्यक्रमों सहित सम्पन्न हुए। विभिन्न टी.वी. चैनलों द्वारा पूज्य माताजी के 'तीर्थंकर जीवन दर्शन (सचित्र)' एवं अन्य विषयों पर प्रभावक प्रवचन लम्बे समय तक प्रसारित हुए एवं हो रहे हैं। पूज्य माताजी की प्रेरणा से स्थापित 'अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महिला संगठन' अपनी सैकड़ों ईकाइयों द्वारा दिगम्बर जैन समाज की नारी शक्ति को सृजनात्मक कार्यों हेतु संगठित कर रहे है।

इसके अतिरिक्त कितने ही अन्य धर्मप्रभावना के कार्य पूज्य माताजी ने सम्पन्न किये हैं जिनका यहाँ लेखन तो संभव नहीं है, किन्तु आज पूरा समाज उनके कार्यकलापों से परिचित होकर उन्हें कर्मठता की मूर्ति के रूप में पहचानता है।

१४. संघर्ष विजेत्री-पूज्य माताजी ने प्रारंभ से अपना प्रमुख लक्ष्य बनाया- प्रत्येक कार्य आगमानुकूल ही करना। पुनः उन कार्यों के निष्पादन में जो भी विघ्न आते हैं, उन्हें बहुत ही शांतिपूर्वक झेलकर पूरी तन्मयता के साथ उस कार्य को परिपूर्ण करना उनकी विशेषता रही है। उनका पूरा जीवन आर्ष परम्परा का संरक्षण करते हुए अपने मूलगुणों में बाधा न आने देकर जिनधर्म की अधिकाधिक प्रभावना के साथ व्यतीत हुआ है।

१५. भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव का आयोजन-२३वें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ की जन्मभूमि वाराणसी में ६ जनवरी २००५ को पूज्य माताजी की प्रेरणा एवं ससंघ सानिध्य में 'भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव' का उद्घाटन किया गया। भगवान की केवलज्ञान कल्याणक भूमि 'अहिच्छत्र', निर्वाणभूमि 'श्री सम्मेदशिखर जी' इत्यादि अनेकानेक तीर्थों पर विविध आयोजनों के साथ यह वर्ष मनाया गया। वर्ष २००६ को ''सम्मेदशिखर वर्ष'' के रूप में मनाने की प्रेरणा पूज्य माताजी ने प्रदान की, ताकि तन-मन-धन से दिगम्बर जैन समाज अपने महान तीर्थराज 'श्री सम्मेदशिखर जी' के प्रति समर्पित हो सके। पुनः दिसम्बर २००७ में अहिच्छत्र में आयोजित 'सहस्राब्दि महामस्तकाभिषेक' के साथ इस त्रिवर्षीय महोत्सव का समापन किया गया।

१६. शताब्दी का अभूतपूर्व अवसर : दीक्षा स्वर्ण जयंती -वैशाख कृष्णा दूज, वी.नि.सं. २५३२ अर्थात् १५ अप्रैल २००६ को अपनी आर्यिका दीक्षा के ५० वर्ष पूर्ण करने वाली प्रथम साध्वी पूज्य माताजी वर्तमान दिगम्बर जैन साधु परम्परा में सर्वाधिक प्राचीन दीक्षित होने के गौरव से युक्त होकर हम सभी के लिए अतिशयकारी प्राचीन प्रतिमा के सदृश बन गईं। जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में १४ से १६ अप्रैल २००६ तक '**गणिनीप्रमुख**

श्री ज्ञानमती माताजी आर्यिका दीक्षा स्वर्ण जयंती महोत्सव' का भव्य आयोजन करके समस्त समाज ने पूज्य माताजी के श्रीचरणों में अपनी विनम्र विनयांजलि अर्पित की।

१७. विश्वशांति अहिंसा सम्मेलन का उद्घाटन किया राष्ट्रपति जी ने-२१ दिसम्बर २००८ को जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में पूज्य माताजी की प्रेरणा से आयोजित विश्वशांति अहिंसा सम्मेलन का उद्घाटन भारत की प्रथम महिला राष्ट्रपति श्रीमती प्रतिभा देवीसिंह पाटील के करकमलों से हुआ। पुनः सन् २००९ ''शांति वर्ष'' में पूरे देश में विश्व की शांति के लिए धार्मिक अनुष्ठान एवं संगोष्ठियों के कार्यक्रम आयोजित किए गए।

१८. 'प्रथमाचार्य श्री शांतिसागर वर्ष' मनाने की प्रेरणा-बीसवीं सदी के प्रथम दिगम्बर जैनाचार्य चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागर जी महाराज के महान उपकारों से जन-जन को परिचित कराने के उद्देश्य से पूज्य माताजी ने वर्ष २०१० को ''प्रथमाचार्य श्री शांतिसागर वर्ष'' के रूप में मनाने की प्रेरणा समस्त समाज को प्रदान की। इस वर्ष का उद्घाटन ज्येष्ठ कृ. चतुर्दशी, ११ जून २०१० को जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में भगवान शांतिनाथ जन्म-दीक्षा एवं निर्वाणकल्याणक के शुभ दिवस किया गया तथा ज्येष्ठ कृ. चतुर्दशी, ३१ मई २०११ तक यह वर्ष पूरे देश के विभिन्न अंचलों में अनेक धर्मप्रभावनात्मक कार्यक्रमों के साथ विभिन्न आयोजनोंपूर्वक मनाया गया।

१९. प्रथम पट्टाचार्य श्री वीरसागर वर्ष मनाने की प्रेरणा-शरदपूर्णिमा-२०११ के शुभ अवसर पर पूज्य माताजी द्वारा प्रथमाचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज के प्रथम पट्टशिष्य आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज, जो पूज्य माताजी के दीक्षा गुरु भी हैं, का वर्ष मनाने की घोषणा की अतः यह वर्ष समाज द्वारा विभिन्न आयोजन पूर्वक सानंद मनाया गया।

२०. चारित्रवर्धनोत्सव वर्ष-जिनकी दीर्घकालिक तपस्या के वर्षों की गिनती जानकर अनेक आचार्य, मुनि, आर्यिकाएँ इत्यादि भी इस बात को कहते हुए गौरव का अनुभव करते हैं कि आज जितनी मेरी उम्र भी नहीं है उससे अधिक तो पूज्य माताजी की दीक्षा की आयु है, अर्थात् १८ वर्ष की उम्र से त्याग मार्ग पर जिन्होंने कदम रखा, उन्होंने अपनी जन्मतिथि-शरदपूर्णिमा को भी त्याग से सार्थक कर उस त्यागमयी जीवन के ६० वर्ष भी उन्होंने निर्विघ्नतापूर्वक पूर्ण किये। इसीलिए इनके ७९वें जन्मदिवस एवं ६१वें त्यागदिवस पर हमने अखिल भारतीय दिगम्बर जैन महिला संगठन के आह्वान पर चारित्रवर्धनोत्सव वर्ष २०१२-२०१३ मनाने की घोषणा की। इस वर्ष में सभी को शक्ति अनुसार चारित्र ग्रहण करने का संदेश दिया गया।

२१. मंगलमय अमृत महोत्सव-अब पूज्य माताजी के ८०वें जन्मदिवस को शरदपूर्णिमा-१८ अक्टूबर २०१३ को ''गणिनी ज्ञानमती अमृत महोत्सव'' के रूप में राष्ट्रीय स्तर पर मनाया जा रहा है। इस अवसर पर ''सम्मेदशिखर विधान'' के ८० मांडले बनाकर ८० परिवारों के द्वारा उनकी पूजन करने का विहंगम दृश्य उपस्थित होने जा रहा है। ज्ञातव्य है कि पूज्य माताजी की प्रेरणानुसार शाश्वत सिद्धक्षेत्र सम्मेदशिखर में ''आचार्य शांतिसागर धाम'' नामक स्मारक का निर्माण किया जा रहा है, जो आचार्य श्री की सम्मेदशिखर यात्रा (सन् १९२७-२८ में की गई) की ऐतिहासिकता का दिग्दर्शन कराएगा।

इन चतुर्मुखी प्रतिभा की धनी पूज्य माताजी के चरणों में कोटिशः नमन है तथा भगवान जिनेन्द्र से यही प्रार्थना है कि उनके इस पवित्र त्यागमयी जीवन का हमें शताब्दी महोत्सव भी मनाने का लाभ प्राप्त हो एवं आपके द्वारा नया-नया साहित्य जनता को प्राप्त होता रहे, यही मंगलकामना है।

एक अद्वितीय जैन केन्द्र

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान

-कर्मयोगी पीठाधीश स्वस्तिश्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामी (अध्यक्ष)

राजधानी दिल्ली से ११० किमी. दूर उत्तरप्रदेश के जिला मेरठ स्थित पौराणिक तीर्थ **हस्तिनापुर** में सन् १९७४ से 'जम्बूद्वीप' नाम से एक राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय केन्द्र अवस्थित है। २०० फुट के व्यास में निर्मित जैन भूगोल की अद्वितीय रचना **'जम्बूद्वीप'** के अन्दर हल्के गुलाबी संगमरमर से निर्मित १०१ फुट ऊँचे **सुमेरु पर्वत** की शोभा आज प्रत्येक व्यक्ति के मन को आकर्षित करती है।

प्राचीन जैन साहित्य एवं भूगोल के परिचायक, वैज्ञानिकों के लिए शोध केन्द्र, आध्यात्मिक उन्नयन के लिए पवित्र स्थान, मानसिक शांति एवं जिनेन्द्र भगवान की पूजन-भक्ति के सम्पूर्ण साधनों तथा समस्त आधुनिक सुविधाओं की उपलब्धता सहित इस अनुपम तीर्थ की जनक संस्था का नाम है-**दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान (रजि.)**। जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी पूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी की पावन प्रेरणा से १९७२ में इस संस्थान की स्थापना हुई। दिगम्बर जैन इंस्टीट्यूट ऑफ कॉस्मोग्राफिक रिसर्च **(Digambar Jain Institute of Cosmographic Research)** के नाम से प्रसिद्ध इस संस्थान का आधारभूत लक्ष्य था-जम्बूद्वीप का निर्माण और यह जम्बूद्वीप ही अंततः संस्थान का मुख्य कार्यालय बन गया।

जंबूद्वीप की ३५ एकड़ पवित्र भूमि पर संस्थान के द्वारा संचालित विभिन्न योजनाओं/रचनाओं का संक्षिप्त विवरण निम्नांकित है-

१. जंबूद्वीप रचना-जिनेन्द्र भगवान की २०७ प्रतिमाओं से पावन भारतीय शिल्प और जैन भूगोल का अद्वितीय उदाहरण, आधुनिक आकर्षणों-बिजली के फौव्वारे, नौका-विहार इत्यादि सहित।

२. कमल मंदिर-भगवान महावीर की अतिशयकारी खड्गासन प्रतिमा इस मंदिर में विराजमान हैं।

३. ध्यान मंदिर-२४ तीर्थंकर भगवन्तों की प्रतिमाओं सहित **'ह्रीं'** रचना इस मंदिर में विराजमान हैं, जो कि 'ध्यान' (Meditation) करने हेतु उत्तमोत्तम माध्यम हैं।

४. त्रिमूर्ति मंदिर-भगवान आदिनाथ, भरत एवं बाहुबली की खड्गासन प्रतिमाओं से इस मंदिर का नाम सार्थक है। कमल पर विराजमान भगवान नेमिनाथ एवं पार्श्वनाथ से इस मंदिर की शोभा द्विगुणित हो गयी है।

५. वासुपूज्य मंदिर-इस मंदिर में १२वें तीर्थंकर-वासुपूज्य स्वामी की खड्गासन प्रतिमा विराजमान हैं।

६. शांतिनाथ मंदिर-जिन भगवन्तों के गर्भ, जन्म, तप और ज्ञान कल्याणकों से हस्तिनापुर की भूमि परम-पावन हुई है, उन शांति-कुंथु और अरहनाथ भगवंतों की खड्गासन प्रतिमाएँ इस मंदिर में विराजमान हैं।

७. ॐ मंदिर-अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु परमेष्ठियों की प्रतिमाओं सहित **ॐ** (ओम) रचना इस मंदिर में विराजित है।

८. विद्यमान बीस तीर्थंकर मंदिर-इस मंदिर में विदेह क्षेत्र के विद्यमान २० तीर्थंकरों की प्रतिमाएँ बीस कमलों पर विराजमान हैं।

९. सहस्रकूट मंदिर–जिनेन्द्र भगवान की १००८ प्रतिमाओं सहित।

१०. भगवान ऋषभदेव मंदिर–धातु निर्मित भगवान ऋषभदेव की मूलनायक प्रतिमा एवं अन्य जिन प्रतिमाओं सहित।

११. भगवान ऋषभदेव कीर्तिस्तंभ–'भगवान ऋषभदेव अन्तर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव वर्ष' में निर्मित, भगवान के जीवन चरित्र को प्रदर्शित करने वाला, ८ प्रतिमाओं से समन्वित ३१ फुट ऊँचा कीर्तिस्तंभ।

१२. तेरहद्वीप जिनालय–इस मंदिर के अंदर मध्यलोक के तेरहद्वीपों की अकृत्रिम रचना का अति सुन्दरता के साथ दिग्दर्शन कराया गया है, जिसमें पंचमेरु पर्वतों के साथ–साथ कुल २१२७ प्रतिमाएँ विराजमान हैं।

१३. अष्टापद दिगम्बर जैन मंदिर–इस मंदिर के अंदर प्रथम जैन तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव की निर्वाणभूमि अष्टापद–कैलाशपर्वत की आकर्षक प्रतिकृति विराजमान है। कैलाशपर्वत का ही दूसरा नाम अष्टापद है। ४ फरवरी २००० को लाल किला मैदान, दिल्ली में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा इस प्रतिकृति के समक्ष निर्वाणलाडू चढ़ाकर इसका उद्घाटन किया गया।

१४. नवग्रह शान्ति जिनमंदिर—पूज्य माताजी की पावन प्रेरणा से उत्तर भारत में प्रथम बार निर्मित इस नवग्रहशांति जिनमंदिर में नवग्रह अरिष्ट निवारक नव तीर्थंकरों की धातु निर्मित सुन्दर प्रतिमाएँ विराजमान हैं, जिनके दर्शन–पूजन करके भक्तगण अपने ग्रहों की शांति करते हुए देखे जाते हैं।

१५. तीर्थंकरत्रय की विशाल प्रतिमाएँ—हस्तिनापुर में जन्मे तीर्थंकर श्री शांतिनाथ–कुंथुनाथ–अरहनाथ भगवान की ३१–३१ फुट की खड्गासन प्रतिमाएँ पूज्य माताजी की प्रेरणा से जम्बूद्वीप स्थल पर विराजमान हुई हैं, जिनका विशाल मंदिर भी प्रस्तावित है।

१६. तीनलोक की भव्य रचना—त्रिलोकसार, तिलोयपण्णत्ति आदि करणानुयोग ग्रंथों के अनुसार तीन लोक की सुन्दर रचना का निर्माण भी पूज्य माताजी की प्रेरणा का ही सुफल है। इसमें अत्याधुनिक सुविधा के लिए लिफ्ट लगाई गई है, जिससे सभी भक्तगण सिद्धशिला तक के दर्शन प्राप्त कर सकते हैं।

१७. जम्बूद्वीप पुस्तकालय—प्राचीन हस्तलिखित एवं प्रकाशित लगभग १५००० ग्रंथों एवं पुस्तकों के संग्रह सहित।

१८. जम्बूद्वीप औषधालय

१९. ज्ञानमती हीरक जयंती एक्सप्रेस—विशेष कृत्रिम रेल, जिसमें चौबीसों तीर्थंकरों की १६ जन्मभूमियों का विविध झाँकियों एवं चित्रावली के माध्यम से मनमोहक प्रस्तुतीकरण किया गया है।

२०. वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला—१९७२ में संस्थापित इस ग्रंथमाला द्वारा अब तक लाखों की संख्या में ३०० से अधिक ग्रंथों एवं पुस्तकों के संस्करणों का प्रकाशन हो चुका है।

२१. सम्यग्ज्ञान मासिक पत्रिका—यह पत्रिका सन् १९७४ से लगातार प्रकाशित हो रही है, जिसमें जैन शास्त्रों के साररूप लेखों एवं अन्य महत्वपूर्ण कार्यक्रमों का संकलन एक स्थान पर प्राप्त होता है।

२२. राजा श्रेयांस भोजनशाला—आने वाले दर्शनार्थियों को प्रतिदिन शुद्ध (जैनचर्या के अनुरूप) भोजन उपलब्ध कराने वाला यह दिगम्बर जैन समाज का प्रथम भोजनालय है, जहाँ एक साथ ५०० लोग बैठकर

भोजन कर सकते हैं।

२३. धर्मशालाएँ— २०० से अधिक फ्लैट, बंगले इत्यादि, जिनमें ठहरने संबंधी सभी आधुनिक सुविधाएँ उपलब्ध हैं।

२४. मनोरंजन के साधन— तरह-तरह के झूले, बच्चों की रेल, हँसी के गोलगप्पे, नौका विहार, फौव्वारे, हरे-भरे लॉन, पूरे कैम्पस में घूमने के लिए ऐरावत हाथी (मोटर से संचालित), बिजली की आकर्षक व्यवस्था, सुन्दर प्राकृतिक दृश्य इत्यादि बरबस ही दर्शनार्थियों को इस भव्य रचना की तुलना 'स्वर्ग' से करने के लिए प्रेरित करते हैं।

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा आयोजित सामाजिक एवं शैक्षणिक कार्यक्रम

अक्टूबर १९८१-जम्बूद्वीप (हस्तिनापुर) स्थल पर **'जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति सेमिनार'**।

३१ अक्टूबर १९८२-फिक्की ऑडिटोरियम-दिल्ली में **'जम्बूद्वीप सेमिनार'** जिसका उद्घाटन श्री राजीव गांधी, तत्कालीन संसद सदस्य द्वारा किया गया।

अप्रैल १९८५-जम्बूद्वीप (हस्तिनापुर) स्थल पर **'जैन गणित और त्रिलोक विज्ञान'** विषय पर अंतर्राष्ट्रीय सेमिनार, जिसका उद्घाटन उ.प्र. के तत्कालीन मंत्री प्रोफेसर वासुदेव सिंह द्वारा किया गया।

जून १९८२ से अप्रैल १९८५-लालकिला मैदान, दिल्ली से तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरागांधी द्वारा ४ जून, १९८२ को पूरे देश में भ्रमण करने हेतु **'जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति'** रथ का उद्घाटन किया गया। जनसाधारण में अहिंसा, चारित्र-निर्माण तथा विश्व बन्धुत्व के संदेश का प्रचार-प्रसार करते हुए १०४५ दिन तक देश भर में भ्रमण करने के पश्चात् यह ज्ञान ज्योति तत्कालीन रक्षामंत्री श्री पी.वी. नरसिम्हा राव (भूतपूर्व प्रधानमंत्री) द्वारा जम्बूद्वीप के मुख्य द्वार के समक्ष सदैव के लिए स्थापित कर दी गई।

१९९२-'अंतर्राज्यीय चरित्र निर्माण संगोष्ठी' का जंबूद्वीप स्थल पर श्री नेमीचंद जैन, विधायक (मध्यप्रदेश) की अध्यक्षता में आयोजन किया गया।

'जैन गणित' एवं **'चारित्र निर्माण'** आदि विषयों पर हुई संगोष्ठियाँ **मेरठ विश्वविद्यालय एवं दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान के संयुक्त तत्वावधान में** आयोजित की गईं।

१९९३-अयोध्या में अवध विश्वविद्यालय-फैजाबाद के संयुक्त तत्वावधान में **'भारतीय संस्कृति के आद्य प्रणेता भगवान ऋषभदेव'** विषय पर संगोष्ठी।

अक्टूबर १९९५-मेरठ विश्वविद्यालय के संयुक्त तत्वावधान में पंचदिवसीय **'गणिनी आर्यिका श्री ज्ञानमती साहित्य संगोष्ठी-९५'**।

मार्च-अप्रैल १९९८-तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा ९ अप्रैल १९९८ को तालकटोरा स्टेडियम, दिल्ली से देश भर में भ्रमण करने हेतु **'भगवान ऋषभदेव समवसरण श्रीविहार रथ'** का उद्घाटन। ३ वर्ष तक देशभर में तीर्थंकर भगवन्तों के सर्वोदयी सिद्धांतों एवं जैनधर्म की प्राचीनता का प्रचार-प्रसार करने के पश्चात् यह समवसरण इलाहाबाद उच्च न्यायालय के तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश द्वारा तीर्थंकर ऋषभदेव

तपस्थली प्रयाग तीर्थ (इलाहाबाद) में स्थापित कर दिया गया।

अक्टूबर १९९८–जम्बूद्वीप स्थल पर **'राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन',** जिसका उद्घाटन किया गया– स्वर्गीय श्री राजेश पायलट (तत्कालीन संसद सदस्य द्वारा)।

फरवरी २०००–तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा ४ फरवरी २००० को लाल किला मैदान, दिल्ली में एक वर्ष तक चलने वाले **'भगवान ऋषभदेव अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव वर्ष'** का उद्घाटन किया गया।

इस युग में जैनधर्म के प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव पर १००८ संगोष्ठियों की श्रृंखला, भगवान ऋषभदेव कीर्तिस्तंभों का निर्माण तथा अन्य अनेक सामाजिक एवं शैक्षणिक कार्यक्रम राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर इस वर्ष के अंतर्गत आयोजित किये गये।

टोरण्टो, कनाडा, न्यूजर्सी आदि विदेश की भूमियों पर भी इन्हीं प्रेरणाओं के माध्यम से ४ फरवरी २००० को निर्वाण महामहोत्सव मनाया गया।

जून २०००–जम्बूद्वीप स्थल पर ११ जून २००० को **'जैनधर्म की प्राचीनता'** विषय पर राष्ट्रीय सेमिनार आयोजित किया गया।

फरवरी २००१–भगवान ऋषभदेव की दीक्षाभूमि–प्रयाग (इलाहाबाद) में **'तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ'** का नवनिर्माण। इस तीर्थ पर भगवान के दीक्षा कल्याणक के प्रतीकस्वरूप धातु के वटवृक्ष के नीचे ध्यान में लीन महायोगी ऋषभदेव की सवा पांच फुट उत्तुंग पिच्छी–कमण्डलु सहित खड्गासन प्रतिमा, केवलज्ञान कल्याणक के प्रतीकस्वरूप भगवान की चतुर्मुखी प्रतिमा सहित दिव्य समवसरण रचना तथा निर्वाण कल्याणक के प्रतीक स्वरूप ५१ फुट उत्तुंग 'कैलाशपर्वत' की भव्य रचना पर भगवान ऋषभदेव की १४ फुट उत्तुंग अत्यंत मनोहारी लालवर्णी पद्मासन प्रतिमा तथा तीन चौबीसी के प्रतीक स्वरूप ७२ जिन प्रतिमाएँ विराजमान हैं। 'ऋषभदेव कीर्तिस्तंभ' भी स्थापित है। ४ से ८ फरवरी २००१ तक 'भगवान ऋषभदेव पंचकल्याणक प्रतिष्ठा' एवं १००८ महाकुंभों से कैलाशपर्वत पर प्रतिष्ठित भगवान ऋषभदेव का 'महाकुंभमस्तकाभिषेक' कार्यक्रम।

सन् २००३–२००४–भगवान महावीर की जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा) में **'नंद्यावर्त महल तीर्थ'** का निर्माण। भगवान महावीर मंदिर, भगवान ऋषभदेव मंदिर, नवग्रहशांति जिनमंदिर, त्रिकाल चौबीसी मंदिर और नंद्यावर्त महल (भगवान महावीर का जन्म महल) एवं उसमें स्थापित भगवान शांतिनाथ जिनालय इस तीर्थ के मुख्य आकर्षण हैं। महावीर की जन्मभूमि के प्रचार–प्रसार हेतु **भगवान महावीर ज्योति रथ** सम्पूर्ण भारतवर्ष में प्रवर्तन कर चुका है।

सन् २००५–२००७–भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव–६ जनवरी २००५ को जन्मभूमि वाराणसी से इसका भव्य उद्घाटन होकर पूरे एक वर्ष तक (२७ दिसम्बर २००५ तक) इसे विभिन्न आयोजनों के साथ मनाया गया।

पुनः सन् २००६ में पूज्य माताजी ने भगवान पार्श्वनाथ निर्वाणभूमि ''सम्मेदशिखर वर्ष'' घोषित किया तथा दिसम्बर २००७ में केवलज्ञान भूमि अहिच्छत्र तीर्थ पर भगवान पार्श्वनाथ सहस्राब्दि महोत्सव का राष्ट्रीय कार्यक्रम आयोजित करके ४ जनवरी २००८ को भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव का

समापन किया।

विशेषरूप से इस संस्थान द्वारा २१ दिसम्बर २००८ को जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में 'विश्वशांति अहिंसा सम्मेलन' का आयोजन किया गया, जिसका उद्घाटन पूज्य गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी ससंघ के सानिध्य में भारत गणतंत्र की राष्ट्रपति महामहिम श्रीमती प्रतिभा देवीसिंह पाटील के करकमलों द्वारा सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर राष्ट्रपति जी अपने पति डॉ. देवीसिंह शेखावत के साथ सम्मेलन में पधारीं। कार्यक्रम में उत्तरप्रदेश के राज्यपाल श्री टी.वी. राजेश्वर तथा स्वास्थ्य मंत्री श्री अनंत कुमार मिश्रा भी पधारे। इसी अवसर पर पूज्य माताजी द्वारा वर्ष २००९ को ''शांति वर्ष'' के रूप में मनाने की घोषणा की गई। यह 'शांति वर्ष-२००९' वर्तमान में समस्त जैन समाज द्वारा भारत के विभिन्न प्रान्तों में अनेक कार्यक्रमों के माध्यम से मनाया गया।

सन् २०१० में पूज्य माताजी की प्रेरणा से गठित ''अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थंकर जन्मभूमि विकास कमेटी'' द्वारा भगवान पुष्पदंतनाथ की जन्मभूमि काकन्दी (निकट गोरखपुर-उ.प्र.) का विकासकार्य सम्पन्न किया गया है। तीर्थ पर भगवान पुष्पदंतनाथ की सवा ९ फुट पद्मासन प्रतिमा सुन्दर जिनमंदिर में विराजमान होकर पंचकल्याणक प्रतिष्ठा से प्रतिष्ठित हो चुकी हैं तथा भगवान पुष्पदंतनाथ कीर्तिस्तंभ तीर्थ की कीर्ति को दिग् दिगन्तव्यापी ख्याति प्राप्त कराने में निमित्तभूत है।

सन् २०१२ में अतिशय क्षेत्र **श्री महावीर जी (राज.) में** पूज्य माताजी की प्रेरणा एवं आशीर्वाद से शांतिवीर नगर के निकट स्थित महावीर धाम परिसर में **पंचबालयति दिगम्बर जैन मंदिर** का भव्य निर्माण कार्य सम्पन्न हुआ है। यहाँ पर पाँचों बालयति भगवान की प्रतिमाएँ विराजमान करके पृथक् वेदियों में पद्मावती, क्षेत्रपाल की प्रतिमाएँ भी विराजमान की गई हैं। संस्थान द्वारा उक्त जिनमंदिर का पंचकल्याणक दिनाँक २९ जनवरी से २ फरवरी २०१२ तक सानंद सम्पन्न किया गया है तथा दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान के अन्तर्गत इस जैन मंदिर का संचालन सुचारू रूप से किया जा रहा है।

इस संस्थान के द्वारा समय-समय पर विविध पंचकल्याणक प्रतिष्ठाएं एवं धार्मिक कार्यक्रम सम्पन्न होते रहते हैं। संस्थान के अद्भुत कार्यकलाप की श्रेणी में है**-णमोकार महामंत्र बैंक,** जहाँ प्रतिवर्ष श्रद्धालु भक्तों द्वारा लाखों की संख्या में णमोकार मंत्र लिखकर जमा कराए जाते हैं। ये करोड़ों महामंत्र विश्वशांति की किरणें प्रसारित करने में अतिशय धरोहरस्वरूप हैं।

संस्थान द्वारा दिये जाने वाले पुरस्कार

गणिनी ज्ञानमती पुरस्कार-सन् १९९५ से प्रत्येक पाँच वर्ष में यह पुरस्कार जैन धर्म पर उच्चस्तरीय शोध तथा संस्थान की शैक्षणिक गतिविधियों में सहयोग हेतु किसी भी जैन विद्वान या समर्पित कार्यकर्ता को १,००,०००/-(एक लाख) रुपये की नगद राशि, प्रशस्ति-पत्र इत्यादि के साथ प्रदान किया जाता था। अप्रैल २००६ में ''गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी आर्यिका दीक्षा स्वर्ण जयंती महोत्सव'' के अवसर पर संस्थान द्वारा प्रतिवर्ष इस पुरस्कार को देने का निर्णय लिया गया अत: अब यह पुरस्कार प्रतिवर्ष किसी वरिष्ठ विद्वान अथवा विशिष्ट समाजसेवी को प्रदान किया जाता है।

आर्यिका रत्नमती पुरस्कार-सन् १९९९ में स्थापित २५,०००/- रुपये की नगद राशि सहित प्रतिवर्ष प्रदान किया जाने वाला पुरस्कार।

जम्बूद्वीप पुरस्कार-सन् २००० में स्थापित २५,०००/- रुपये की नगद राशि सहित प्रतिवर्ष प्रदान किया जाने वाला पुरस्कार।

नंद्यावर्त महल पुरस्कार-सन् २००४ से प्रारंभ २५०००/-रुपये की नगद राशि सहित प्रतिवर्ष प्रदान किया जाने वाला पुरस्कार।

श्री छोटेलाल जैन पुरस्कार-सन् २००३ में स्थापित २५,०००/-रुपये की नगद राशि सहित प्रतिवर्ष प्रदान किया जाने वाला पुरस्कार।

जम्बूद्वीप बाल प्रतिभा पुरस्कार-सन् २०१० से प्रारंभ ११०००/-रुपये की नगद राशि सहित प्रतिवर्ष प्रदान किया जाने वाला पुरस्कार।

प्रकाशचंद जैन स्मृति पुरस्कार-सन् २०१२ से प्रारंभ ११०००/-रुपये की नगद राशि सहित प्रतिवर्ष प्रदान किया जाने वाला पुरस्कार।

उपरोक्त पुरस्कारों के अतिरिक्त 'भगवान ऋषभदेव अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महोत्सव वर्ष' के अवसर पर घोषित '**भगवान ऋषभदेव नेशनल अवार्ड**', '**ब्राह्मी पुरस्कार**', '**भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर पुरस्कार**', '**गणिनी ज्ञानमती दीक्षा स्वर्ण जयंती पुरस्कार**', '**हीरक जयंती पुरस्कार**' तथा **रूपाबाई पुरस्कार** आदि भी संस्थान द्वारा प्रदान किये जा चुके हैं।

पुनः "गणिनी ज्ञानमती अमृत महोत्सव"-१८ अक्टूबर २०१३ के अवसर पर ८००००/-रुपये की राशि वाला '**अमृत महोत्सव पुरस्कार**' भी प्रदान किया जा रहा है।

इस प्रकार यह संस्थान अपनी विभिन्न समर्पित कार्य योजनाओं द्वारा समाज की सेवा में प्रतिक्षण संलग्न है। मानसिक शांति, आध्यात्मिक विकास, प्राकृतिक सौन्दर्य एवं अन्य अनेक लाभ एक साथ प्राप्त करने हेतु यह संस्थान जंबूद्वीप दर्शन के लिए आपको सादर आमंत्रित करता है।

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला के शिरोमणि संरक्षक

1. श्रीमती निर्मला जैन ध.प. स्व. श्री प्रेमचन्द्र जैन, तत्पुत्र प्रदीप कुमार जैन, खारी बावली, दिल्ली-6।
2. श्रीमती सुमन जैन ध.प. श्री दिग्विजय सिंह जैन, इंदौर।
3. श्री महावीर प्रसाद जैन संघपति, जी-19, साऊथ एक्सटेन्शन, नई दिल्ली।
4. श्री महेन्द्र पाल हरेन्द्र कुमार जैन, सूरजमल विहार, दिल्ली।
5. श्रीमती मोहनी जैन ध.प. श्री सुनील जैन, प्रीत विहार, दिल्ली।
6. श्री देवेन्द्र कुमार जैन (धारूहेड़ा वाले) गुड़गाँव (हरि.)।
7. श्रीमती शारदा रानी जैन ध.प. स्व. रिखबचंद जैन, बाहुबली एन्क्लेव, दिल्ली-92।
8. डॉ. देवेन्द्र कुमार जैन, भोपाल (म.प्र.)
9. श्रीमती संगीता जैन ध.प. श्री संजीव कुमार जैन, शेरकोट (बिजनौर) उ.प्र.
10. श्री अनिल कुमार जैन, दरियागंज, दिल्ली
11. श्री बी.डी. मदनाइक, मुम्बई
12. श्री धनकुमार जैन, बाहुबली एन्क्लेव, दिल्ली-92।
13. श्री जितेन्द्र कुमार जैन एवं श्रीमती सुनीता जैन कोटड़िया, फ्लोरिडा, यू.एस.ए.
14. श्रीमती विमला देवी जैन ध.प. श्री ओमप्रकाश जैन, स्वालिक नगर, हरिद्वार (उत्तराखंड)।
15. श्री अमित जैन एवं संभव जैन सुपुत्र श्रीमती अनीता जैन ध.प. श्री मूलचंद जैन पाटनी, दिसपुर (कामरूप) आसाम।
16. श्रीमती अजित कुमारी जैन ध.प. श्री महेन्द्र कुमार जैन, ओबेदुल्लागंज (रायसेन) म.प्र.।
17. श्री नाभिकुमार जैन, जैन बुक डिपो, सी-4, पी.वी.आर. प्लाजा के पीछे, कनॉट प्लेस, नई दिल्ली।

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला के परम संरक्षक

1. श्री माँगीलाल बाबूलाल पहाड़े, हैदराबाद (आन्ध्र प्रदेश)।
2. डॉ. प्रकाशचन्द्र जैन, 792 विवेकानंदपुरी, सिविल लाइन, सीतापुर (उ.प्र.)।
3. श्री सुमत प्रकाश जैन, गज्जू कटरा, शाहदरा, दिल्ली।
4. श्री सुनील कुमार जैन, द्वारा-सुनील टैक्सटाईल्स, सरधना (मेरठ) उ.प्र.।
5. स्व. श्री प्रकाश चंद अमोलक चंद जैन सर्राफ, सनावद (म.प्र.)।
6. श्री प्रद्युम्न कुमार जवेरी, रोकड़ियालेन, बोरीवली (वेस्ट) मुंबई।
7. श्रीमती उर्मिला देवी ध.प. श्री कान्ती प्रसाद जैन, ऋषभ विहार, दिल्ली।
8. श्रीमती उषा जैन ध.प. श्री विमल प्रसाद जैन, ऋषभ विहार, दिल्ली।
9. श्री आनन्द प्रकाश जैन (सौरम वाले) , गांधीनगर, दिल्ली।
10. श्रीमती सरिता जैन ध.प. श्री राजकुमार जैन, किदवई नगर, कानपुर।
11. स्व. श्रीमती कैलाशवती ध.प. श्री कैलाश चन्द्र जैन , तोपखाना बाजार, मेरठ।
12. श्री भानेन्द्र कुमार जैन, द्वारा-श्री विद्या जैन, भगत सिंह मार्ग, जयपुर।
13. श्री प्रदीप कुमार शान्तिलाल बिलाला, अनूपनगर, इंदौर, (म.प्र.)।
14. श्री सुरेशचंद पवन कुमार जैन, बाराबंकी (उ.प्र.)।
15. श्री नथमल पारसमल जैन, कलकत्ता-7।
16. श्रीमती स्व. शांताबाई ध.प. श्री कमलचंद जैन, सनावद (म.प्र.)।
17. श्री रूपचंद जैन कटारिया, दिल्ली
18. श्री आशु जैन, कालका जी, नई दिल्ली
19. श्री प्रद्युम्न कुमार जैन छोटी सा., श्री अमरचंद जैन सर्राफ, लखनऊ (उ.प्र.)
20. श्रीमती शशि जैन ध.प. श्री दिनेशचंद जैन, शिवालिक नगर, हरिद्वार (उत्तराखंड)।
21. श्रीमती आदर्श जैन ध.प. स्व. श्री अनन्तवीर्य जैन के सुपुत्र श्री मनोज कुमार जैन, मेरठ।
22. श्रीमती आरती जैन ध.प. श्री प्रकाशचंद जैन 'शीशे वाले', इलाहाबाद (उ.प्र.)।

स्वाध्याय प्रारंभ एवं समापन की विधि

अथ पौर्वाण्हिक[1] स्वाध्यायप्रतिष्ठापनक्रियायां श्रुतभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व-साहूणं।।

चत्तारिमंगलं–अरिहंत मंगलं, सिद्ध मंगलं, साहु मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा–अरिहंत लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा, साहु लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा। चत्तारि सरणं पव्वज्जामि–अरिहंत सरणं पव्वज्जामि, सिद्ध सरणं पव्वज्जामि, साहु सरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि।

जाव अरहंताणं भयवंताणं पज्जुवासं करेमि तावकालं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि।

(9 बार णमोकार मंत्र जपना–सत्ताईस श्वासोच्छ्वास में)

थोस्सामि हं जिणवरे तित्थयरे केवलिअणंतजिणे।
णरपवर-लोयमहिए विहुयरयमले महप्पण्णे।।1।।
लोयस्सुज्जोययरे धम्मं तित्थंकरे जिणे वन्दे।
अरहंते कित्तिस्से चउवीसं चेव केवलिणो।।2।।

–लघु श्रुतभक्ति–

श्रुतमपि जिनवरविहितं, गणधररचितं द्व्यनेकभेदस्थम्।
अंगांग - बाह्यभावित - मनन्तविषयं नमस्यामि।।1।।

इच्छामि भंते! सुदभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं अंगोवंगपइण्णए पाहुडयपरियम्म-सुत्त-पढमाणि-ओग-पुव्वगय-चूलिया चेव सुत्तत्थय-थुइ-धम्म-कहाइयं णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं, समाहिमरणं जिणगुणसम्पत्ति होउ मज्झं।

अथ पौर्वाण्हिकस्वाध्यायप्रतिष्ठापनक्रियायां आचार्यभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(णमो अरहंताणं से लेकर पूरा पाठ पढ़कर 9 बार णमोकार मंत्र जपकर 'थोस्सामिस्तव पढ़कर भक्ति पढ़ें।)

–आचार्यभक्ति–

गुरुभक्त्या वयं सार्ध-द्वीपद्वितयवर्तिनः।
वंदामहे त्रिसंख्योन-नवकोटि-मुनीश्वरान्।।1।।

इच्छामि भंते! आयरियभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं सम्मणाणसम्मदंसण-सम्मचारित्त-जुत्ताणं पंचविहाचाराणं आयरियाणं आयारादिसुदणाणोवदेसयाणं उवज्झायाणं तिरयणगुणपालणरयाणं सव्वसाहूणं णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ, बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसम्पत्ति होउ मज्झं।

पुनः स्वाध्याय समापन करते समय–

नमोऽस्तु पौर्वाण्हिकस्वाध्यायनिष्ठापनक्रियायां श्रुतभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं।

(पूर्ववत् णमो अरहंताणं आदि पढ़कर 9 बार महामंत्र जपकर 'थोस्सामिस्तव' पढ़वर श्रुतभक्ति पढ़ें)

---

1. मध्यान्ह में स्वाध्याय करते समय 'अपराण्हिक' बोलें। रात्रि में स्वाध्याय के प्रारंभ के समय 'पूर्वरात्रिक' बोलें।

शास्त्र स्वाध्याय का प्रारंभिक मंगलाचरण

ॐ नमः सिद्धेभ्यः, ॐ नमः सिद्धेभ्यः, ॐ नमः सिद्धेभ्यः

ओंकारं विन्दुसंयुक्तं, नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव, ओंकाराय नमो नमः।।१।।

अविरलशब्दघनौघ-प्रक्षालितसकलभूतलमलकलंका।
मुनिभिरुपासिततीर्था-सरस्वती हरतु नो दुरितान्।।२।।

अज्ञानतिमिरान्धानां, ज्ञानांजनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन, तस्मै श्रीगुरवे नमः।।३।।

श्री परमगुरवे नमः, परम्पराचार्यगुरवे नमः। सकलकलुषविध्वंसकं, श्रेयसां परिवर्धकं, धर्मसम्बन्धकं, पापप्रणाशकं, पुण्यप्रकाशकं भव्यजीवमनः प्रतिबोधकारकं इदं शास्त्रं तीनलोक जिनमंदिर[१] नामधेयं, अस्य मूलग्रंथकर्तारः श्री सर्वज्ञदेवाः, तदुत्तरग्रन्थकर्तारः श्री गणधरदेवाः प्रतिगणधरदेवाः तेषां वचोनुसामासाद्य श्री गणिनी ज्ञानमतीविरचितं[२]।

मंगलं भगवान् वीरो, मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दाद्यो, जैनधर्मोऽस्तु मंगलम्।।४।।

श्रोतारः सावधानतया शृण्वन्तु।

१. जिस ग्रंथ का स्वाध्याय करना हो उसका नाम लेना चाहिए।
२. उस ग्रंथ के जो रचयिता हों उनका नाम लेना चाहिए।

तीनलोक जिनमंदिर

मंगलाचरणम्

चैत्यभक्तिः

(श्रीमद्गौतमगणधरदेव विरचित)

हरिणीछंद — **जयति भगवान् हेमाम्भोजप्रचारविजृंभिता-**
वमरमुकुटच्छायोद्गीर्णप्रभापरिचुम्बितौ।
कलुषहृदया मानोद्भ्रान्ताः परस्परवैरिणो।
विगतकलुषाः पादौ यस्य प्रपद्य विशश्वसुः।।१।।

चैत्यभक्ति

पद्यानुवाद-(गणिनी ज्ञानमती)

चौबोल छंद — जय हे भगवन् ! चरण कमल तव, कनक कमल पर करें विहार।
इन्द्रमुकुट की कांति प्रभा से, चुंबित शोभें अति सुखकार।।
जातविरोधी कलुषमना, क्रुध मान सहित जन्तूगण भी।
ऐसे तव पद का आश्रय ले, प्रेम भाव को धरें सभी।।१।।

''श्री वर्धमानस्वामिनं प्रत्यक्षीकृत्य गौतमस्वामी जयतीत्यादिस्तुतिमाह—

श्री वर्धमान स्वामी को प्रत्यक्ष करके गौतम स्वामी'जयति भगवान्' इत्यादि रूपसे स्तुति करते हुये कहते हैं—

अर्थ—जो सुवर्णमय कमलों पर सामान्य मनुष्यों में न पाये जाने वाले और चरण क्रम के संचार से रहित प्रचार-गमन से शोभायमान हैं, देवों के मुकुटों में लगी हुई छाया—मणियों से निकलती हुई प्रभा से आलिंगित-स्पर्शित हैं ऐसे जिन के चरणों में आकर कलुष हृदय वाले, अहंकार से युक्त, परस्पर वैरी ऐसे सर्प, नेवला आदि जीव अपने-अपने स्वाभाविक क्रूर स्वभाव को छोड़कर विश्वास को प्राप्त होते हैं वे भगवान् जिनेन्द्र जयवंत रहें।।१।।

तदनु जयति श्रेयान् धर्मः प्रवृद्धमहोदयः
कुगति-विपथ-क्लेशाद्योऽसौ विपाशयति प्रजाः।
परिणतनयस्याङ्गी-भावाद्विविक्तविकल्पितं।
भवतु भवतस्त्रातृ त्रेधा जिनेन्द्रवचोऽमृतम्।।२।।
तदनु जयताज्जैनी वित्तिः प्रभंगतरंगिणी।
प्रभवविगमध्रौव्य - द्रव्यस्वभावविभाविनी।
निरुपमसुखस्येदं द्वारं विघट्य निरर्गलं।
विगतरजसं मोक्षं देयान्निरत्ययमव्ययम्।।३।।
अर्हत्सिद्धाचार्यो-पाध्यायेभ्यस्तथा च साधुभ्यः।
सर्वजगद्वंद्येभ्यो, नमोऽस्तु सर्वत्र सर्वेभ्यः।।४।।

जय हो श्रेयस्कर धर्मामृत, वृद्धिंगत महिमाशाली।
कुगति कुपथ से प्राणीगण को, निकालकर दे सुख भारी।।
नय को मुख्य गौण करने से, बहुत भेदयुत सुखदाता।
ऐसे जिनवचनामृतमय, हे धर्म! करो जग से रक्षा।।२।।
जय हो जैनी वाणी जग में, सप्तभंगमय गंगा है।
व्यय उत्पाद ध्रौव्ययुत द्रव्यों, के स्वभाव को प्रगट करे।।
अनुपम शिवसुख द्वार खोलती, अव्यय सुख को देती है।
विघ्न रहित अरु कर्म धूलि से, रहित मोक्ष को देती है।।३।।
अर्हत सिद्धाचार्य उपाध्याय, सर्व साधुगण सुरवंदित।
त्रिभुवन वंदित पंच परम गुरु, नमोऽस्तु तुमको मम संतत।।४।।

अनन्तर उत्तमक्षमादिलक्षण श्रेष्ठ धर्म जयवंत हो, जिससे प्राणियों के स्वर्गादि पदों की प्राप्ति वृद्धि को प्राप्त होती है। जो संसारी जीवों को नरकादि कुगतियों से, मिथ्यादर्शन आदि कुमार्गों से और उनसे जयमान क्लेशों से छुड़ाता है तथा द्रव्यार्थिक नय को गौणकर पर्यायार्थिक नय की प्रधानता लेकर अंग, पूर्व आदि रूप से रचा गया अथवा पूर्वापर दोषरहित रचा गया ऐसा उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य रूप से अथवा अंग, पूर्व और अंगबाह्यरूप से तीन प्रकार का जिनेन्द्र का वचनरूप अमृत संसार से रक्षा करे।।२।।अनन्तर जिनेन्द्र का केवलज्ञान जयवंत हो, जिसमें स्यादस्ति स्यान्नास्ति आदि सात भंगरूप कल्लोलें हैं जो द्रव्यों के उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यरूप स्वभावों को प्रकाशित करता है। ऐसा यह केवलज्ञान अनन्तसुख के मोहनीयरूप द्वार को अंतरायरूप अर्गल से रहित उद्घाटन कर ज्ञानदर्शनावरणरूप रज से रहित व्याधि अथवा जरा, मरण से रहित अविनश्वर मोक्ष को देवे।।३।। सम्पूर्ण जगत् द्वारा वन्दनीय सब अर्हंतों को, सब आचार्यों को, सब उपाध्यायों को और सब साधुओं को नमस्कार हो।।४।।

मोहादिसर्वदोषारि-घातकेभ्यः सदा हतरजोभ्यः।
विरहितरहस्कृतेभ्यः पूजार्हेभ्यो नमोऽर्हद्भ्य।।५।।
क्षान्त्यार्जवादिगुणगण-सुसाधनं सकललोकहितहेतुं।
शुभधामनि धातारं, वन्दे धर्मं जिनेन्द्रोक्तम्।।६।।
मिथ्याज्ञानतमोवृत-लोकैकज्योतिरमितगमयोगि।
सांगोपांगमजेयं, जैनं वचनं सदा वन्दे।।७।।
भवनविमानज्योति-र्व्यंतरनरलोकविश्वचैत्यानि।
त्रिजगदभिवन्दितानां, वंदे त्रेधा जिनेन्द्राणां।।८।।
भुवनत्रयेऽपि भुवन-त्रयाधिपाभ्यर्च्य-तीर्थकर्तृणाम्।
वन्दे भवाग्निशान्त्यै, विभवानामालयालीस्ताः।।९।।

मोहारि के घातक द्वयरज, आवरणों से रहित जिनेश।
विघ्न-रहस विरहित पूजा के, योग्य अर्हत को नमूँ हमेश।।५।।
क्षमादि उत्तम गुणगण साधक, सकल लोक हित हेतु महान्।
शुभ शिवधाम धरे ले जाकर, जिनवर धर्म नमूँ सुख खान।।६।।
मिथ्याज्ञान तमोवृत जग में, ज्योतिर्मय अनुपम भास्कर।
अंगपूर्वमय विजयशील, जिनवचन नमूँ मैं शिर नत कर।।७।।
भवनवासि व्यन्तर ज्योतिष, वैमानिक में नरलोक में ये।
जिनभवनों की त्रिभुवन वंदित, जिनप्रतिमा को वंदूँ मैं।।८।।
भुवनत्रय में जितने जिनगृह,भवविरहित तीर्थंकर के।
भवाग्नि शांति हेतु नमूँ मैं, त्रिभुवनपति से अर्चित ये।।९।।

जो मोह, राग, द्वेष आदि सम्पूर्ण दोषरूप शत्रुओं के घातक हैं, जिनने हमेशा के लिये ज्ञानावरणरूप रज को नष्ट कर दिया है तथा अन्तराय कर्म का भी जिनने विनाश कर दिया है ऐसे पूजा योग्य अर्हंतों को नमस्कार हो।।५।। क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच आदि गुणों का समुदाय जिसकी उत्पत्ति में साधन है, जो सम्पूर्ण लोक में हित का कारण है और शुभ धाम जो निर्वाण उसमें स्थापन करने वाला है ऐसे जिनेन्द्रोक्त धर्म को वन्दता हूँ।।६।। जो मिथ्याज्ञानरूप अन्धकार से आच्छादित लोक का प्रकाशक होने से अद्वितीय ज्योति है। अपरिमित श्रुतज्ञान का जनक होने से सम्बन्धी है। आचारादि अंगों और पूर्व वस्तु आदि उपांगों से युक्त है तथा एकान्तवादियों कर अजेय है ऐसे जैनवचन को सदा वन्दन करता हूँ।।७।। भवनवासी देवों, कल्पवासी देवों, ज्योतिष्क देवों और व्यन्तर देवों के विमानों में तथा मनुष्य लोक में तीन जगत् कर वन्दनीय जिनेन्द्रदेव की जितनी भर प्रतिमा हैं उन सबकी मन, वचन और काय से वन्दना करता हूँ।।८।। जिनका संसार परिभ्रमण विनष्ट हो चुका है, तीन भुवन के स्वामी देवेन्द्र, नरेन्द्र और धरणेन्द्र द्वारा पूज्य ऐसे तीर्थंकरों के आलय—मन्दिर की पंक्तियों को भी संसाररूप अग्नि की शांति के लिए वन्दता हूँ।।९।।

इति पंचमहापुरुषाः, प्रणुता जिनधर्म-वचन-चैत्यानि।
चैत्यालयाश्च विमलां, दिशन्तु बोधिं बुधजनेष्टां।।१०।।
अकृतानि कृतानि चाप्रमेय-द्युतिमन्तिद्युतिमत्सु मन्दिरेषु।
मनुजामरपूजितानि वंदे, प्रतिबिम्बानि जगत्त्रये जिनानाम्।।११।।
द्युतिमंडलभासुरांगयष्टीः, प्रतिमा अप्रतिमा जिनोत्तमानाम्।
भुवनेषु विभूतये प्रवृत्ता, वपुषा प्राञ्जलिरस्मि वन्दमानः।।१२।।
विगतायुधविक्रियाविभूषाः, प्रकृतिस्थाः कृतिनां जिनेश्वराणाम्।
प्रतिमाः प्रतिमागृहेषु कांत्या- प्रतिमा कल्मषशान्तयेऽभिवन्दे।।१३।।
कथयन्ति कषायमुक्तिलक्ष्मीं, परया शान्ततया भवान्तकानाम्।
प्रणमाम्यभिरूपमूर्तिमन्ति, प्रतिरूपाणि विशुद्धये जिनानाम्।।१४।।

इस विध प्रणुत पंचपरमेष्ठी, श्री जिनधर्म जिनागम को।
विमल चैत्य चैत्यालय वंदूँ, बुधजन इष्ट बोधि मम दो।।१०।।
द्युतिकर जिनगृह में अकृत्रिम, कृत्रिम अप्रमेय द्युतिमान।
नर सुर पूजित भुवनत्रय के, सब जिन बिंब नमूँ गुणखान।।११।।
द्युतिमंडल भासुर तनु शोभित, जिनवर प्रतिमा अप्रतिम हैं।
जग में वैभव हेतु उन्हें, वंदूँ अंजलिकर शिर नत मैं।।१२।।
आयुध विक्रिय भूषा विरहित, जिनगृह में प्रतिमा प्राकृत।
कांती से अनुपम हैं कल्मष, शांति हेतु मैं नमूँ सतत।।१३।।
परम शांति से कषायमुक्ती, को कहती मनहर अभिरूप।
भव के अंतक जिन की प्रतिमा, प्रणमूँ मन विशुद्धि के हेतु।।१४।।

इस तरह वन्दना किये गये अर्हंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, जिनधर्म, जिनवचन, जिनचैत्य और जिनचैत्यालय ये नव देवता बुधजन जो गणधर देवादि उनको इष्ट ऐसी मुझे निर्मल बोधि देवें।।१०।। तीन जगत में विद्यमान प्रचुर प्रभा से समन्वित, मन्दिरों में स्थित, मनुष्यों और देवों द्वारा पूज्य, प्रचुरतर प्रभायुक्त कृत्रिम और अकृत्रिम जिनेन्द्र के प्रतिबिम्बों को प्रणमन करता हूँ।।११।। जो तीन भुवन में विद्यमान हैं जिनकी शरीर-यष्टि प्रभामंडल से देदीप्यमान है ऐसी अर्हंतों की अनुपम प्रतिमाओं को वन्दना करने वाला मैं पुण्य की प्राप्ति के निमित्त शरीर से अंजलि बांधता हूँ अर्थात् ऐसी प्रतिमाओं को हाथ जोड़कर नमस्कार करता हूँ।।१२।। जो आयुध, विकार, आभूषणों से रहित हैं, अपने ही स्वभाव में स्थित हैं तथा कान्ति से अतुल्य हैं ऐसी कृति अर्थात् कृतकृत्य जिनेश्वरों की प्रतिमागृहों में विराजमान प्रतिमाओं को पाप की शान्ति के लिए वन्दता हूँ।।१३।। उत्कृष्ट, शान्ततायुक्त होने से कषाय के अभावरूप लक्ष्मी को कहने वाली, जिनेश्वर का जैसा रूप है वैसी मूर्तिमती, ऐसी संसार का नाश कर देने वाले जिनेश्वरों की मूर्तियों को आत्मपरिणामों की निर्मलता होने के लिए नमस्कार करता हूँ।।१४।।

यदिदं मम सिद्धभक्तिनीतं, सुकृतं दुष्कृतवर्त्मरोधि तेन।
पटुना जिनधर्म एव भक्ति- र्भवताज्जन्मनि जन्मनि स्थिरा मे।।१५।।
अर्हतां सर्वभावानां, दर्शनज्ञानसम्पदाम्।
कीर्तयिष्यामि चैत्यानि, यथाबुद्धि विशुद्धये।।१६।।
श्रीमद्भावनवासस्थाः, स्वयंभासुरमूर्तयः।
वन्दिता नो विधेयासुः, प्रतिमाः परमां गतिम्।।१७।।
यावन्ति सन्ति लोकेऽस्मिन्नकृतानि कृतानि च।
तानि सर्वाणि चैत्यानि, वन्दे भूयांसि भूतये।।१८।।
ये व्यन्तरविमानेषु, स्थेयांसः प्रतिमागृहाः।
ते च संख्यामतिक्रान्ताः, सन्तु नो दोषविच्छिदे।।१९।।

दुष्कृतपथ रोधक मम सिद्ध-भक्ति से हुआ पुण्य जो भी।
भव-भव में जिनधर्म हि में, दृढ़ भक्ति रहे फल मिले यही।।१५।।
सब पदार्थवित् दर्श ज्ञान-सम्पत् युत अर्हत की प्रतिमा।
यथा बुद्धि मनशुद्धि हेतु, गुण कीर्तन करूँ अतुल महिमा।।१६।।
श्रीमद् भवनवासि के गृह में, भासुर जिन मूर्ति स्वयमेव।
परम सिद्धगति करें हमारी, वंदूँ उन्हें करूँ नित सेव।।१७।।
इस जग में जितनी प्रतिमा हैं, कृत्रिम अकृत्रिम सबको।
मैं वंदूँ शिव वैभवहेतु, सब जिन चैत्य जिनालय को।।१८।।
व्यंतर के विमान में जिनगृह, उनमें अकृत्रिम प्रतिमा।
संख्यातीत कही हैं वंदूँ, दोष नाश के हेतु सदा।।१९।।

तीन जगत में प्रसिद्ध अर्हंतों के प्रतिबिंबों की भक्ति करने से जो यह पुण्य मुझे प्राप्त हुआ है जो कि पाप के मार्ग को रोकने वाला है उस समस्त पुण्य से मेरी भक्ति जन्म-जन्म में जिनधर्म में ही स्थिर होवे।।१५।। सम्पूर्ण पदार्थ जिनके विषयभूत हैं अथवा परिपूर्ण यथाख्यात चारित्र जिनके विद्यमान है, क्षायिक दर्शन और क्षायिक ज्ञानरूप संपदा जिनके मौजूद है ऐसे अर्हंतों के चैत्यों का अपनी बुद्धि के अनुसार परिणामों की निर्मलता के लिए अथवा कर्ममल के प्रक्षालन के लिए कठिन कीर्तन करूँगा।।१६।। मेरे द्वारा जिनकी वन्दना की गई है जो भवनवासी देवों के देदीप्यमान भवनों में स्थित हैं, जिनका स्वरूप स्वयंभासुररूप है ऐसी प्रतिमाएँ मुझ वंदक को परमगति अर्थात् मुक्ति प्रदान करें।।१७।। इस तिर्यग्लोक में कृत्रिम और अकृत्रिम जितने प्रचुरतर प्रतिबिम्ब हैं उन सबको विभूति के लिए वंदता हूँ।।१८।। व्यंतरों के आवासों में सर्वदा अवस्थित जो असंख्यात प्रतिमागृह हैं वे मेरे दोषों की शान्ति के लिये होवें।।१९।।

ज्योतिषामथ लोकस्य, भूतयेऽद्भुतसम्पदः।
गृहाः स्वयंभुवः सन्ति, विमानेषु नमामि तान्।।२०।।
वन्दे सुरतिरीटाग्र - मणिच्छायाभिषेचनम्।
याः क्रमेणैव सेवंते, तदर्चाः सिद्धिलब्धये।।२१।।
इति स्तुतिपथातीत - श्रीभृतामर्हतां मम।
चैत्यानामस्तु संकीर्तिः, सर्वास्रवनिरोधिनी।।२२।।
अर्हन्महानदस्य, त्रिभुवनभव्यजनतीर्थयात्रिकदुरित-
प्रक्षालनैककारण-मतिलौकिककुहकतीर्थमुत्तमतीर्थम्।।२३।।
लोकालोकसुतत्त्व-प्रत्यवबोधनसमर्थदिव्यज्ञान-
प्रत्यहवहत्प्रवाहं, व्रतशीलामल विशालकूलद्वितयम्।।२४।।

ज्योतिष देवों के विमान में, अद्भुत संपत्युत जिनगेह।
स्वयंभुवा प्रतिमा भी अगणित, उन्हें नमूँ निज वैभव हेतु।।२०।।
सुरपति के नत मुकुटमणि-प्रभ से अभिषेक हुआ जिनका।
वैमानिक सुर सेवित प्रतिमा, सिद्धि हेतु मैं नमूँ सदा।।२१।।
इस विध स्तुति पथातीत, अन्तर बाहिर श्रीयुत अर्हन्।
चैत्यों के संकीर्तन से मम, सर्वास्रव का हो रोधन।।२२।।
अर्हद्देव महानद उत्तम-तीर्थ अलौकिक हैं जग में।
त्रिभुवन भविजन तीर्थस्नान से, पापों का क्षालन करते।।२३।।
लोकालोक सुतत्त्व प्रकाशक, दिव्यज्ञान जल नित बहता।
शील रु सद्व्रत विशाल निर्मल, दो तट से शोभित दिखता।।२४।।

अनन्तर ज्योतिषी देवों के विमानों में अद्भुत सम्पत्तिधारी अर्हंतो के जो शाश्वत गृह हैं उनको मैं विभूति के निमित्त नमस्कार करता हूँ।।२०।। जो देवों के मुकुट के अग्रभाग में लगी हुई मणियों की कान्ति से अभिषेक को चरणों द्वारा सेवन करती हैं अर्थात् जिनके चरणों में वैमानिक देव सिर झुकाते हैं उन वैमानिक देवों के विमान सम्बन्धी प्रतिमाओं को मुक्ति की प्राप्ति के लिए नमस्कार करता हूँ।।२१।। इस प्रकार स्तुति के मार्ग को अतिक्रमण करने वाली अर्थात् जिसकी स्तुति इन्द्रादि देव भी नहीं कर सकते ऐसी अंतरंग और बहिरंग लक्ष्मी को धारण करने वाले अर्हंतों के चैत्यों की स्तुति मेरे सम्पूर्ण आस्रवों को रोकने वाली होवे।।२२।। जो तीन भुवन में निवास करने वाले भव्यजनरूप तीर्थयात्रियों के पाप कर्म के प्रक्षालन करने में अद्वितीय कारण हैं, जिसने लौकिक मिथ्या तीर्थों का अतिक्रमण—उल्लंघन कर दिया है, जिसमें लोक और अलोक का सच्चा स्वरूप समझाने में समर्थ ऐसे दिव्य केवलज्ञान या मतिश्रुतादि ज्ञान ही प्रतिदिन बहते हुय प्रवाह हैं, व्रत और शील ही जिसके स्वच्छ और विशाल दो तट हैं, जो शुक्लध्यानरूप स्थिर ऐसे दीप्त राजहंसों से शोभित है, जिसमें निरंतर स्वाध्याय पाठ ही मनोज्ञ नाद (शब्द) हैं, जो चौरासी लाख गुण, पंच समिति और तीन गुप्तिरूप सिकता (बालू) से सुशोभित है,

शुक्लध्यानस्तिमित-स्थितराजद्राजहंसराजितमसकृत्।
स्वाध्यायमन्द्रघोषं, नानागुणसमितिगुप्ति सिकतासुभगम्।।२५।।
क्षान्त्यावर्तसहस्त्रं, सर्वदया विकचकुसुमविलसल्लतिकम्।
दु:सहपरीषहाख्य- द्रुततररंगत्तरंगभंगुरनिकरम्।।२६।।
व्यपगतकषायफेनं, रागद्वेषादिदोष-शैवलरहितम्।
अत्यस्तमोहकर्दम-मतिदूरनिरस्तमरणमकरप्रकरम्।।२७।।
ऋषिवृषभस्तुतिमन्द्रो-द्रेकितनिर्घोषविविधविहगध्वानम्।
विविधतपोनिधिपुलिनं, सास्रवसंवरणनिर्जरानि:स्त्रवणं।।२८।।
गणधरचक्रधरेन्द्र-प्रभृतिमहाभव्यपुंडरीकैः पुरुषैः,
बहुभिः स्नातं भक्त्या, कलिकलुषमलापकर्षणार्थममेयम्।।२९।।
अवतीर्णवतः स्नातुं, ममापि दुस्तरसमस्तदुरितं दूरं।
व्यपहरतु परमपावन-मनन्यजय्यस्वभावभावगभीरं।।३०।।

शुक्लध्यानमय राजहंस, स्थिर राजत है इस नद में।
मंद्रघोष स्वाध्याय विविधगुण, समिति गुप्ति बालू चमके।।२५।।
क्षमादि हैं आवर्त सहस्रों, सर्वदयामय कुसुम खिले।
लता शोभती दु:सह परिषह, भंग तरंगित हैं लहरें।।२६।।
रहित कषाय फेन से राग-द्वेष आदि शैवाल रहित।
रहित मोह कीचड़ से मरणादिक जलचर मकरादि रहित।।२७।।
ऋषि प्रधान के मधुर स्तव हों, विविध पक्षि के शब्द सदृश।
विविध साधुगण तट हैं, आस्रव रोध निर्जरा जल नि:सृत।।२८।।
गणधर चक्री इन्द्र आदि जो, भव्य प्रवर बहु पुरुष प्रधान।
कलिमल कलुष दूर करने हित, भक्ति से यहाँ किया स्नान।।२९।।
इस विध श्री अर्हंत महाप्रभु, महातीर्थ गणधर कहते।
भविजन पाप मैल क्षालन हित, इसमें अवगाहन करते।।
अति पावन यह तीर्थ अन्य से, अजेय अनुपम है गंभीर।
मैं स्नान हेतु उतरा हूँ, मम दुष्कृत मल करिये दूर।।३०।।

जिसमें क्षमागुण ही हजारों आवर्त—लहरें हैं, सम्पूर्ण प्राणियों पर दयाभाव ही खिले हुए पुष्पों से शोभायमान बेल हैं, दु:सह क्षुधादि परीषह ही शीघ्र इधर-उधर फैलती हुई चंचल तरंगों का समुदाय है, कषायरूप फेन जिसमें नष्ट हो गया है, जो राग-द्वेषादि दोषरूप शैवाल (कांजी) से रहित है, जिसमें मोहरूप कीचड़ का अभाव है, मरणरूप मकरों का समूह नष्ट हो चुका है, ऋषिश्रेष्ठ गणधरदेवादिकों द्वारा बोली गई स्तुतियों के मनमोहक उत्कट शब्द ही नाना प्रकार के पक्षियों के कलरव हैं, नाना भाँति के तपोनिधि-मुनि ही किनारा हैं, जो आते हुए

पृथ्वी छंद —

अताम्रनयनोत्पलं, सकलकोपवह्लेर्जयात्, कटाक्षशरमोक्षहीन- मविकारतोद्रेकत:।।
विषादमदहानित:, प्रहसितायमानं सदा, मुखं कथयतीव ते, हृदयशुद्धिमात्यन्तिकीम्।।३१।।
निराभरणभासुरं, विगतरागवेगोदया- न्निरंबरमनोहरं, प्रकृतिरूपनिर्दोषत:।
निरायुधसुनिर्भयं, विगतहिंस्यहिंसाक्रमात् निरामिषसुतृप्तिमद्विविधवेदनानां क्षयात्।।३२।।
मितस्थितनखांगजं, गतरजोमलस्पर्शनं नवांबुरुहचन्दन-प्रतिमदिव्यगन्धोदयम्।
रवीन्दुकुलिशादि-दिव्यबहुलक्षणालंकृतं दिवाकरसहस्रभासुर-मपीक्षणानां प्रियम्।।३३।।

क्रोधाग्नि को जीत लिया नहिं, नेत्र कमल लालिमा प्रभो!
नहिं विकार उद्रेक अत: प्रभु, दृष्टि कटाक्ष रहित तुम हो।।
मद विषाद से रहित अत:, स्मित मुख सदा रहे भगवन्।
कहता है यह मंदहास्य तव, अंत:करण शुद्धि पूरण।।३१।।
रागोद्रेक रहित होने से, बिन आभूषण शोभित हो।
प्रकृति रूप निर्दोष तुम्हारा, प्रभु निर्वस्त्र मनोहर हो।।
हिंसा हिंस्य भावविरहित से, आयुध रहित सुनिर्भय हो।
विविध वेदना के क्षय से बिन-भोजन तृप्त सदा प्रभु हो।।३२।।
वृद्धि रहित नख केश प्रभू! रजमल स्पर्श न हो तन को।
विकसित कमल सुचंदन सम है, दिव्य सुगंधित देह विभो!
रवि शशि वज्र दिव्य लक्षण से, शोभित तव शुभरूप महान।
कोटि सूर्य से अधिक चमक, फिर भी दर्शक को प्रिय सुखदान।।३३।।

कर्मरूप जल के संवरण और आए हुए कर्मरूप जल के नि:स्रवण से मुक्त हैं, जिसमें गणधर, चक्रधर, इन्द्र आदि भव्य-पुण्डरीक पुरुषों ने पापरूप कलुष मल को दूर करने के लिये भक्तिपूर्वक स्नान किया है, जो बड़ा भारी है, परम पवित्र है, जिनके स्वरूप प्रतिवादियों द्वारा न जीते जा सकें ऐसे जीवादि पदार्थों से जो अगाध है ऐसा अर्हंतरूप महानद का उत्तम तीर्थ पापमल का प्रक्षालन रूप स्नान करने के लिये प्रविष्ट हुए मेरे भी दुस्तर समस्त पापों का व्यवहरण—नाश करे।।२३-३०।। हे भगवन् जिनेन्द्र! सम्पूर्ण कोपरूप अग्नियों के क्षय हो जाने से जिसमें नयन रूप उत्पलपत्र कुछ-कुछ लाल हैं या लालिमा रहित हैं, वीतरागता की परम प्रकर्षता के होने से जो कटाक्षरूप बाणों के छोड़ने से रहित है, विषाद और मद की हानि होने से सदा प्रफुल्लित है ऐसा आपके यथाजात रूप में आपका मुख आपके हृदय की आत्यंतिक शुद्धि को कह रहा है। हे भगवन्! आपका मुख राग के आवेग के उदय के नष्ट हो जाने से आभरण रहित होने पर भी भासुर रूप है, आपका स्वाभाविक रूप निर्दोष है इसलिये वस्त्र रहित नग्न होने पर भी मनोहर है, आपका यह रूप न औरों के द्वारा हिंस्य है और न औरों का हिंसक है इसलिये आयुध रहित होने पर भी अत्यन्त निर्भयस्वरूप है तथा नाना प्रकार की क्षुत्पिपासादि वेदनाओं के विनाश हो जाने से आहार न करते हुए तृप्तिमान है। आपके नख और केश नहीं बढ़ते हैं वे उतने ही हर समय रहते हैं

हितार्थपरिपंथिभिः, प्रबलरागमोहादिभिः कलंकितमना जनो, यदभिवीक्ष्य शोशुद्ध्यते।
सदाभिमुखमेव यज्जगति पश्यतां सर्वतः शरद्विमलचन्द्रमंडल – मिवोत्थितं दृश्यते।।३४।।
तदेतदमरेश्वर-प्रचलमौलिमालामणि-स्फुरत्किरणचुम्बनीय-चरणारविन्दद्वयम्।
पुनातु भगवज्जिनेन्द्र! तव रूपमन्धीकृतं जगत् सकलमन्यतीर्थगुरुरूपदोषोदयैः।।३५।।

आलोचना या अंचलिका—**इच्छामि भन्ते! चेइयभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, अहलोयतिरियलोयउड्ढलोयम्मि किट्टिमा-किट्टिमाणि जाणि जिणचेइयाणि ताणि सव्वाणि तिसु वि लोएसु भवणवासियवाणविंतरजोइसियकप्पवासियंति चउविहा देवा सपरिवारा दिव्वेण गन्धेण, दिव्वेण**

मोहराग से दूषित हितपथ-द्वेषीजन के सुन उपदेश।
कलुषमना जन हुए जगत में, शुचि होते वे तुमको देख।।
अतिशय युत तव मुख दर्शक, जन को अपने सन्मुख दिखता।
शरद् विमल शशि मंडल सम, तव आस्य चन्द्र है उदित हुआ।।३४।।
अमरेश्वर के नमस्कार से, मुकुट मणिप्रभ किरणों से।
चुम्बित चरण सरोरुह भगवन् ! तव शुभरूप मनोहर है।।
अन्य देव गुरु तीर्थ उपासक, सकल भुवन यह अन्ध समान।
उन सबको तव रूप पवित्र, करे अरु नेत्र करे अमलान।।३५।।

अंचलिका (बैठकर)

अनन्तर चैत्य के सम्मुख बैठकर नीचे लिखी आलोचना पाठ पढ़ें—

भगवन् ! चैत्यभक्ति अरु कायोत्सर्ग किया उसमें जो दोष।
उनकी आलोचन करने को, इच्छुक हूँ धर मन सन्तोष।।
अधो मध्य अरु ऊर्ध्वलोक में, अकृत्रिम कृत्रिम जिनचैत्य।
जितने भी हैं त्रिभुवन के, चउविध सुर करें भक्ति से सेव।।१।।

जितने केवलज्ञान की उत्पत्ति के समय होते हैं। रजोमल का स्पर्श भी आपके नहीं है, आपके रूप में विकसित कमल और चन्दन के सदृश दिव्यगंध का उदय है। आपका यह रूप सूर्य, चन्द्रमा, वज्र आदि एक सौ आठ प्रशस्त-चिन्हों से अलंकृत है तथा हजारों सूर्यों के समान भासुर होकर भी नेत्रों को अत्यन्त प्रिय है। आपके रूप को देखकर मोक्ष का परिपंथी शत्रु ऐसे प्रबल राग-मोह, आदि दोषों से कलंकित मन वाला जन-समुदाय अतिशय शुद्ध हो जाता है, जो जगत् में देखने वालों को चारों दिशाओं में सदा सन्मुख ही शरत्कालीन उदयापन्न निर्मल चन्द्रमा के समान दीखता है, देवेन्द्रों के नमस्कार, प्रवण मुकुटों की पंक्तियों में जटित मणियों की स्फुरायमान किरणों से आपके दोनों चरण-कमल आलिंगित हैं ऐसा यह आपका रूप, जैन मत से भिन्न अन्य मिथ्या तीर्थों से भी गुरु रूप राग, द्वेष, मोहादि दोषों के प्रादुर्भाव से अन्धे हुए सारे जगत को पवित्र करे।।३१-३५।। हे भगवन्! चैत्यभक्ति और तत्सम्बन्धी कायोत्सर्ग किया उसकी आलोचना करने की इच्छा करता हूँ। अधोलोक, तिर्यग्लोक और ऊर्ध्वलोक में जो कृत्रिम और अकृत्रिम जितनी प्रतिमाएँ हैं उन सबको तीन लोक में

पुप्फेण, दिव्वेण धूवेण, दिव्वेण चुण्णेण, दिव्वेण वासेण, दिव्वेण ण्हाणेण, णिच्चकालं अंचंति, पुज्जंति, वंदंति, णमंसंति अहमवि इह संतो तत्थ, संताइं णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुण-सम्पत्ति होउ मज्झं[१]।

भवनवासि व्यंतर ज्योतिष, वैमानिक सुर परिवार सहित।
दिव्य गंध सुम धूप चूर्ण से, दिव्य न्हवन करते नितप्रति।।
अर्चें पूजें वंदन करते, नमस्कार वे करें सतत।
मैं भी उन्हें यहीं पर अर्चूं, पूजूँ वदूँ नमूँ सतत।।२।।
दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय, होवे बोधि लाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुण संपति होवे।।३।।

भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क और कल्पवासी ये चार प्रकार के देव अपने-अपने परिवार सहित दिव्य गंध से, दिव्य पुष्पों से, दिव्य धूप से, दिव्य चूर्ण से, दिव्य सुगंधि से और दिव्य अभिषेक से सदा अर्चते हैं, पूजते हैं, वन्दते हैं, नमस्कार करते हैं, मैं भी यहीं पर बैठा हुआ वहाँ स्थित प्रतिमाओं को सदा अर्चता हूँ, पूजता हूँ, वन्दता हूँ, नमस्कार करता हूँ, मेरे दुःखों का क्षय हो, कर्मों का क्षय हो, बोधि-रत्नत्रय का लाभ हो, सुगति में गमन हो, समाधिमरण हो, जिनगुणसंपत्ति हो।

श्री गौतमस्वामी ने समवसरण में विराजमान श्री महावीर स्वामी की वन्दना करके नव देवताओं की वन्दना की है पुनः अकृत्रिम-कृत्रिम जिनप्रतिमा एवं जिनालयों की वन्दना की है। यह चैत्यभक्ति नाम से प्रसिद्ध है। हम सभी दिगम्बर जैन साधु-साध्वी प्रतिदिन त्रिकाल देववन्दना—सामायिक में इस भक्ति का पाठ करते हैं।

श्री महावीर स्वामी वंदना

यः सर्वाणि चराचराणि विधिवद्-द्रव्याणि तेषां गुणान्।
पर्यायानपि भूतभाविभवतः, सर्वान् सदा सर्वदा।।
जानीते युगपत् प्रतिक्षणमतः, सर्वज्ञ इत्युच्यते।
सर्वज्ञाय जिनेश्वराय महते, वीराय तस्मै नमः।।१।।

(श्री गौतम स्वामी विरचित)

जो विधिवत् सब लोक चराचर, द्रव्यों को उनके गुण को।
भूत भविष्यत् वर्तमान, पर्यायों को भी नित सबको।।
युगपत समय-समय प्रति जाने, अतः हुए सर्वज्ञ प्रथित।
उन सर्वज्ञ जिनेश्वर महति, वीर प्रभु को नमूँ सतत।।१।।

(पद्यानुवाद-गणिनी ज्ञानमती)

---

१. मुनिचर्या-चैत्यभक्ति-पृ. ८१ से ८९ तक।

प्रतिक्रमण भक्ति

(निषिद्धिका दंडक)

(श्रीमद् गौतमगणधरदेव विरचित)

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं[१]।।

णमो जिणाणं ३, णमो णिस्सिहीए ३, णमोत्थु दे ३, अरहंत! सिद्ध! बुद्ध! णीरय! णिम्मल! सममण! सुभमण[२]! सुसमत्थ! समजोग! समभाव! सल्लघट्टाणं सल्लघत्ताणं! णिब्भय! णीराय! णिद्दोस! णिम्मोह! णिम्मम! णिस्संग! णिस्सल्ल! माण-माय[३]-मोस-मूरण! तवप्पहावण! गुणरयणसीलसायर! अणंत! अप्पमेय! महदिमहावीर-वड्ढमाण-बुद्धरिसिणो चेदि णमोत्थु ए णमोत्थु ए णमोत्थु ए।

प्रतिक्रमण भक्ति में श्री गौतमस्वामी ने तीनों लोकों में अकृत्रिम-कृत्रिम जिनालय व जिनप्रतिमाओं की वन्दना की है। इसी भक्ति में चैत्यवृक्षों की व उनमें विराजमान प्रतिमाओं की भी वन्दना की है।

प्रतिक्रमणभक्ति —

निषिद्धिका (निषिधिका) दंडक

(पद्यानुवाद-गणिनी ज्ञानमती)

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं।।
नमो जिनेभ्यः ३, नमो निषीधिकायै[४] ३, नमोऽस्तु ते ३।

चौबोल छंद —

हे अर्हंत सिद्ध बुद्धा, नीरज निर्मलसम मन सुमना।
हे सुसमर्थ परम शमयोग, शमभावी हे भवशमना।।
शल्यदुखित के शल्यविनाशन, हे निर्भय निराग निर्दोष।
हे निर्मोह विगत ममता निःसंग तथा निःशल्य विरोष।।१।।

मद माया असत्य के मर्दक, तपःप्रभावी हे परमेश।
गुण-शीलादिरत्नत्रयसागर, हे अनंत अप्रमेय महेश।।
महति पूज्य महावीर वीर, हे वर्धमान हे बुद्धि ऋषीश।
नमस्कार हो नमस्कार हो, नमस्कार हो तुम्हें हमेश।।२।।

---

१. मुनिचर्या-पृ. ३५ से ३८ तक। २. प्रतिक्रमण ग्रन्थत्रयी में 'सुमण' ऐसा पाठ है। ३. प्रतिक्रमण ग्रन्थत्रयी में 'माया' ऐसा पाठ है।
४. जिन और सिद्धों की कृत्रिम-अकृत्रिम प्रतिमा, इनके मंदिर, ऋद्धिसहित मुनि आदि रूप से निषीधिका के १७ अर्थ टीका में किये हैं।

मम मंगलं अरहंता य सिद्धा य बुद्धा य जिणा य केवलिणो ओहिणाणिणो मणपज्जवणाणिणो चउदसपुव्वंगमिणो सुदसमिदिसमिद्धा य तवो य वारहविहो तवस्सी, गुणा य गुणवंतो य, महरिसी तित्थं तित्थंकरा य, पवयणं पवयणी य, णाणं णाणी य, दंसणं दंसणी य, संजमो संजदा य, विणीओ विणदा य, बंभचेरवासो बंभचारी य, गुत्तीओ चेव गुत्तिमंतो य, मुत्तीओ चेव मुत्तिमंतो य, समिदीओ चेव समिदिमंतो य, ससमयपर-समयविदू, खंतिक्खवगा य खंतिवंतो य, खीणमोहा य खीणवंतो य, बोहियबुद्धा य बुद्धिमंतो य, चेइयरुक्खा य चेइयाणि।

मेरा मंगल करें सर्व, अर्हंत सिद्ध बुद्धा जिनराज।
केवलि जिन अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी ऋषिराज।।

चौदश पूर्व अंग पारंगत, अंगबाह्य श्रुतसंपन्ना।
बारह तप तपसी गुण और, गुणोंयुत महाऋद्धि शरणा।।३।।

तीर्थ और तीर्थंकर प्रवचन, प्रवचनयुत व ज्ञान ज्ञानी।
सद्दर्शन सम्यग्दृष्टी, संयम व संयमी मुनिध्यानी।।

विनय तथा सुविनययुत साधू, ब्रह्मचर्य व्रत ब्रह्मचारी।
गुप्ति गुप्तिधर मुक्ति मुक्तियुत, समिति और समितिधारी।।४।।

स्वमत और परमत के ज्ञाता, क्षमाशील अरु क्षपक मुनी।
क्षीणमोह यति बोधितबुद्ध, बुद्धिऋद्धीयुत परममुनी।।

चैत्यवृक्ष जिनबिम्ब अकृत्रिम-कृत्रिम जितने त्रिभुवन में।
मेरा मंगल करें सभी ये, ये मंगलप्रद तिहुँजग में।।५।।

ऊर्ध्व अधो अरु मध्यलोक में, सिद्धायतन नमूँ उनको।
सिद्धक्षेत्र अष्टापद सम्मेदाचल ऊर्जयन्त गिरि को।।

चंपा पावा नगरि मध्यमा, हस्तिबालिका मंडप में।
और अन्य भी मनुज लोक में, तीर्थ क्षेत्र सबको प्रणमें।।६।।

मोक्षशिला को प्राप्त सिद्ध, जिनबुद्ध कर्म से मुक्त महान।
विगत कर्मरज नीरज विरहित, भावकर्ममल से अमलान।।

पांच भरत पांच ऐरावत, पांचों महाविदेहों में।
सूरि उपाध्याय गुरू प्रवर्तक, स्थविर और कुलकर जितने।।७।।

उड्ढमहतिरियलोए सिद्धायदणाणि णमंसामि, सिद्धणिसीहियाओ अट्ठावयपव्वए सम्मेदे उज्जंते चंपाए पावाए मज्झिमाए हत्थिवालियसहाए जाओ अण्णाओ काओवि णिसीहियाओ जीवलोयम्मि, इसिपब्भारतलग्गयाणं सिद्धाणं बुद्धाणं कम्मचक्कमुक्काणं णीरयाणं णिम्मलाणं, गुरु-आइरिय-उवज्झायाणं पव्वत्ति-त्थेर-कुल-यराणं, चाउवण्णो य समणसंघो य भरहेरावएसु दससु पंचसु महाविदेहेसु। जे लोए संति साहवो संजदा तवसी एदे मम मंगलं पवित्तं! एदेहं मंगलं करेमि भावदो विसुद्धो सिरसा अहिवंदिऊण सिद्धे काऊण अंजलिं मत्थयम्मि, तिविहं तियरणसुद्धो।

चतुर्वर्णयुत श्रमण संघ के, साधू जितने इस जग में।
संयम तपसी ये सब मेरे, पावन मंगल हेतु बनें।।

भावसहित मैं त्रिविधशुद्धियुत, अंजलि मस्तक पर धर के।
त्रिविधक्रिया में शीश झुकाकर, सबको वंदूँ रुचि करके।।८।।

श्री शांतिजिन स्तुति

–शम्भु छन्द –

श्री शांति प्रभो! शरणागत जन, शान्ती के दाता कहें तुम्हें।
यह धन्य हुई हस्तिनापुरी, जहाँ राज्य किया शांतीश्वर ने।।
विश्वसेन पिता ऐरादेवी, माता का अतिशय पुण्य खिला।
भादों वदि सप्तमि के प्रभु के, गर्भागम का सौभाग्य मिला।।1।।

शुभ ज्येष्ठ वदी चौदस आई, शांतीश्वर ने जब जन्म लिया।
सुरगृह में बाजे बाज उठे, इन्द्रों ने मस्तक नमित किया।।
त्रिभुवन में शांति लहर दौड़ी, नरकों में कुछ क्षण शांति हुई।
गिरि मंदर पर अभिषेक हुआ, उत्सव में भू नभ एक हुई।।2।।

शांतीश प्रभू चक्रीश बने, षट्खंड मही का भोग किया।
शुभ ज्येष्ठ वदी चौदस के दिन, बस चक्ररत्न को त्याग दिया।।
प्रभु ध्यान चक्र को ले करके, मोहारि नृपति को मारा था।
वर पौष सुदी दशमी के दिन, भव्यों को मिला सहारा था।।3।।

षोडश तीर्थंकर कामदेव, द्वादश पंचम चक्री स्वामी।
वर ज्येष्ठ वदी चौदस के दिन, त्रिभुवन साम्राज्य मिला नामी।।
हे शांतिनाथ! मैं नमूँ सदा, बस भक्ती का फल एक मिले।
कैवल्य ''ज्ञानमति'' प्राप्त करूँ, बस मुझको सिद्धी शीघ्र मिले।।4।।

-गणिनी ज्ञानमती

प्रतिक्रमण भक्ति

निषीधिका दण्डक

(श्री प्रभाचंद्राचार्यकृत टीका)

णिसीहियाए। निषीधिकाशब्दोऽनेकार्थाभिधायी। तथाहि-(१) जिनसिद्धप्रतिबिंबानि कृत्रिमाकृत्रिमाणि। (२) तथा तदालयः। (३) बुद्ध्यादिलब्धिसम्पन्ना मुनयः। (४) तैराश्रितानि क्षेत्राणि। (५) अवधिमनःपर्ययकेवलज्ञानिनः। (६) ज्ञानोत्पत्तिप्रदेशाः। (७) तैराश्रितक्षेत्राणि। (८) सिद्धजीवाः। (९) तन्निर्वाणक्षेत्राणि। (१०) तैराश्रिताकाशप्रदेशाः। (११) सम्यक्त्वादि-चतुर्गुणयुक्तास्तपस्विनः। (१२) तैराश्रितक्षेत्रम्। (१३) तत्त्यक्तशरीराश्रितप्रदेशाः। (१४) योगस्थिता-स्तपस्विनः। (१५) तैराश्रितं क्षेत्रम्। (१६) तन्मुक्त-शरीराश्रितप्रदेशाः। (१७) त्रिविधपण्डितमरणस्थिता मुनयः।[१] इत्यादि। उक्तं च—

प्रतिक्रमण भक्ति

निषीधिका दण्डक

(संस्कृत टीका अनुवाद-गणिनी ज्ञानमती कृत[२])

जिनेन्द्रों को नमस्कार हो, जिनेन्द्रों को नमस्कार हो, जिनेन्द्रों को नमस्कार हो। निषीधिकाओं को नमस्कार हो, निषीधिकाओं को नमस्कार हो, निषीधिकाओं को नमस्कार हो। आपको नमस्कार हो, आपको नमस्कार हो, आपको नमस्कार हो, हे अर्हंत! हे सिद्ध! हे बुद्ध! हे नीरज! हे निर्मल! हे सममन! हे शुभमन! हे सुसमर्थ! हे समयोग! हे समभाव! हे शल्यपीड़ित के शल्यघातक! हे निर्भय! हे नीराग! हे निर्दोष! हे निर्मोह! हे निर्मम! हे निःसंग! हे निःशल्य! हे मान-माया-मृषा के मर्दक! हे तपःप्रभावक! हे गुणरत्न और शील के सागर! हे अनंत! हे अप्रमेय! हे महतिमहावीर वर्द्धमान बुद्धर्षि भगवन्! आपको नमस्कार हो, नमस्कार हो, नमस्कार हो। यहाँ जिनेन्द्रदेव को तीन बार नमस्कार करने से अति भक्ति सूचित होती है। निषीधिका को भी तीन बार नमस्कार किया है। निषीधिका शब्द से सामान्यतया तीर्थंकरों की पंचकल्याणक भूमियाँ ली जाती हैं अथवा सामान्य केवली आदि के भी निर्वाणस्थान निषीधिका कहलाते हैं। टीकाकार श्री प्रभाचंद्राचार्य ने यहाँ 'निषीधिका' के सत्रह-१७ प्रकार बतलाये हैं—(१) जिन और सिद्ध की कृत्रिम-अकृत्रिम प्रतिमायें। (२) उनके मंदिर, (३) बुद्धि आदि ऋद्धि से सहित मुनिगण, (४) उनसे आश्रित क्षेत्र, (५) अवधि, मनःपर्यय और केवलज्ञानी, (६) उनके ज्ञानोत्पत्ति के प्रदेश, (७) उनसे आश्रित क्षेत्र, (८) सिद्धजीव (९) उनके निर्वाण क्षेत्र, (१०) उनसे आश्रित आकाशप्रदेश, (११) सम्यक्त्व, ज्ञान, चारित्र और तप इन चार से युक्त तपस्वी, (१२) उनसे आश्रित क्षेत्र, (१३) उनके द्वारा छोड़े गये शरीर के आश्रित प्रदेश, (१४) योग में स्थित तपस्वी, (१५) उनसे आश्रित क्षेत्र, (१६) उनके द्वारा छोड़े गये शरीर के आश्रित प्रदेश, (१७) और तीन प्रकार के पंडितमरण में स्थित मुनिगण। ये सभी 'निषीधिका'

---

१. प्रतिक्रमण ग्रंथत्रयी-पृ. २० से ३० तक। २. महावीर देशना पृ. ९७ से १०२ तक।

जिणसिद्धबिंबणिलया किदगाकिदगा य रिद्धिजुदसाहू।
णाणजुदा मुणिपवरा णाणुप्पत्ती य णाणिजुदखेत्तं।।
सिद्धा य सिद्धभूमी सिद्धाण समासिओ णहोदेसो।
सम्मत्तादिचउक्कं उप्पण्णं जेसु तेहिं सिदखेत्तं।।
चत्तं तेहिं य देहं तट्ठवियं जेसु ता णिसीहीओ।
जेसु विसुद्धा जोगा जोगधरा जेसु संठिआ सम्मं।।
जोगिपरिमुक्कदेहा पंडितमरणट्ठिदा णिसीहीओ।
तिविहे पंडिदमरणे चिट्ठंति महामुणी समाहीए।।
एयाओ अण्णाओ णिसीहियाओ सया वंदे।

एवंविधार्थस्य निषीधिकाशब्दस्य त्रिः प्रयोगः सर्वासां निषीधिकानामविशेषतः स्तुतिविषयत्वख्यापनार्थम्। अन्ये तु 'णिसीधिए' इत्यस्यार्थमित्थं व्याख्यानयंति—

णि त्ति णियमेहिं जुत्तो सि त्ति य सिद्धिं तहा अहिग्गामि।
धि त्ति य धिदिबद्धकओ ए त्ति य जिणसासणे भत्तो।। इति

णमोत्थु दे। दे तुभ्यं पूर्वोक्तायै निषीधिकायै नमो नमस्कारोऽस्तु। अत्रापि त्रिर्नमोऽस्तुशब्दप्रयोगो नमस्कर्तुः सर्वासु निषीधिकासु नमस्कारकरणेनाऽत्यन्तव्यावृत्तमात्मानं लक्षयति। ''णमो णिसीहिए' इति पाठे 'णमोत्थु दे' इत्यस्याऽरहंतेत्यादिभिः सम्बन्धः। हे अरहंत। अर्हन् घातिकर्मक्षयकारक ते तुभ्यं नमोऽस्तु। हे सिद्ध। निश्शेषकर्मोन्मूलक। हे बुद्ध। हेयापादेय-विवेकसम्पन्न। हे णीरय। रजसी ज्ञानदृगावरणे। ताभ्यां निष्क्रान्त। हे णिम्मल । द्रव्यभावकलंकरहित। हे सममण। समं तृणकांचने

शब्द से कहे गये हैं अतः इन सबको यहाँ नमस्कार हो जाता है।

घातिकर्म विरहित अर्हंतदेव हैं। आठों कर्मों से रहित सिद्ध भगवान हैं। केवलज्ञान सहित बुद्ध कहलाते हैं। ज्ञानावरण, दर्शनावरणरूपी रज से रहित 'नीरज' हैं। द्रव्य और भावरूप कर्म कलंक से रहित निर्मल हैं। तृण और स्वर्ण तथा शत्रु-मित्र में समभाव—रागद्वेष रहित चित्त वाले 'सममन' हैं। शोभन—आर्त, रौद्रध्यान से रहित मन वाले 'सुमन' या शुभमन वाले हैं। कायक्लेश तप के अनुष्ठान में और परीषहों के सहन करने में अच्छी तरह समर्थ होने से 'सुसमर्थ' कहलाते हैं। परम उपशम भाव से सहित होने से 'समयोग' होते हैं। संसार का उपशम करने के लिये अथवा राग द्वेष का परिहार करने के लिये द्वादश अनुप्रेक्षा की भावनारूप से परिणत 'समभाव' कहलाते हैं।

इस प्रकार जो सामान्यरूप से अर्हंत आदि हैं उन्हें नमस्कार करके यहाँ विशेषरूप से अंतिम तीर्थंकर की स्तुति करते हुये कहते हैं—'सल्लघत्ताणं'—चतुर्गति संसार में जो जीवों को 'शृणन्ति' कष्ट देते हैं—शारीरिक, मानस और आगंतुक दुःखों द्वारा पीड़ा पहुँचाते हैं वे शल्य कहलाते हैं, वे माया, मिथ्या, निदान ये तीन शल्य हैं तथा क्रोधादि भी कदाचित् शल्य कहलाते हैं जैसे कि बाणादि शल्य के समान। उन शल्यों से पीड़ित प्राणी

शत्रुमित्रे च तुल्यं मनो यस्य। रागद्वेषरहितचित्त इत्यर्थः। हे सुमण। शोभनमार्त-रौद्ररहितं मनो यस्य। हे सुसमत्थ। कायक्लेशानुष्ठाने परीषहसहने च सुष्ठु समर्थाऽक्लीब। हे समजोग। शमेन परमोपशमेन योगः सम्बन्धो यस्य। हे समभाव। शमार्थं संसारोपशमार्थं रागद्वेषपरिहारार्थं वा भावो द्वादशानुप्रेक्षाभावनारूपो यस्य। एवंविधा ये यूयमर्हदादयस्तेभ्यो नमोऽस्तु। एवं सामान्यतः सर्वानर्हदादीन् स्तुत्वा पुनर्विशेषतोऽन्तिमतीर्थकरं स्तुवन्। 'सल्लघट्टाण'-मित्याद्याह। सल्लघट्टाणं । चतुर्गतिसंसारे जीवान् शृणन्ति शारीरमानसागन्तुकदुःखैर्हिंसंति पीडयन्तीति शल्यानि निदानादीनि क्रोधादीनि च बाणादिशल्यवत्। तैर्घट्टानां पीडितानाम्। ये हि शैल्यैर्घट्टयन्ते पीड्यन्ते ते शल्यघट्टाः। तेषा शल्यघट्टानां प्राणिनाम्। हे सल्लघत्ताण। तद्दुःखहेतुभूतशल्यविनाशन। हे णिब्भय। सप्तभयरहित। हे णीराय। नीराग। निर्गतो रागो विषयासक्तिर्यस्य। हे णिद्दोस। हे निर्दोष। निष्कलंक अथवा अष्टादशदोषरहित। हे णिम्मोह। मोहादज्ञानाद्दर्शन-चारित्रमोहाद्वा निष्क्रान्त। हे णिम्मम। निर्मम। क्वचिदपि विषये ममत्वरहित। हे णिस्संग। बाह्याभ्यन्तरेण संगेन परिग्रहेण रहित। हे णिस्सल्ल। मायादिशल्यरहित। हे माणमायामोसमूरण। मानश्च गर्वो, माया च योगवक्रता, मोषश्च मृषावादस्तेषां मूरण मर्दक। हे तवप्पहावण। तपसां प्रभावो माहात्म्यम्। प्रकृष्टानां वा तपसां भावनाऽनुष्ठानं यत्र। तपसा वा कायक्लेशादिना प्रभावना दर्शनोद्योतो यस्मात्। हे गुणरयणसीलसायर। गुणाश्चतुरशीतिलक्षसंख्याः, रत्नानि सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि शीलान्यष्टादशसहस्रसंख्यानि तेषां सागर समुद्र निवासस्थान। हे

'शल्यघट्ट' कहलाते हैं। उन शल्यपीड़ित जीवों के शल्य घातक हैं अर्थात् उन चतुर्गति के दुःख के लिए कारणभूत जो शल्य हैं उनके विनाशक हैं। सात भयों से रहित होने से 'निर्भय' हैं। राग से रहित होने से 'नीराग' हैं। अठारह दोषों से रहित होने से 'निर्दोष' कहलाते हैं। मोह और अज्ञान से रहित होने से अथवा दर्शनमोह और चारित्रमोह को नष्ट कर देने से भगवान 'निर्मोह' कहलाते हैं। सभी सांसारिक विषयों में ममत्व रहित होने से 'निर्भय' हैं। बाह्य-अभ्यंतर परिग्रहों से रहित होने से 'निःसंग' हैं। माया आदि शल्यों से विरहित होने से 'निःशल्य' हैं। गुण चौरासी लाख हैं, रत्न—सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्ररूप तीन हैं और शील के भेद अठारह हजार होते हैं, इन गुण, रत्न और शील के आप सागर है—निवास स्थान हैं अतः आप 'गुणरत्नशीलसागर' कहलाते हैं। अनंत केवलज्ञान दर्शन आदि से युक्त होने से 'अनंत' कहलाते हैं। इन्द्रिय ज्ञान से—हम सभी छद्मस्थजनों के इन्द्रियज्ञान द्वारा नहीं जाने जा सकते अतः 'अप्रमेय' कहलाते हैं। इन विशेषणों से विशिष्ट 'महतिमहावीर' और 'वर्द्धमान' इन दो नामों से विभूषित आप 'महतिमहावीर वर्द्धमान' कहलाते हैं।

भगवान महावीर के गर्भावतार आदि में माता-पिता की इन्द्रों द्वारा महती पूजा की गई थी और रत्नवृष्टि आदि की गई थी इसीलिये बंधुजनों ने भगवान का 'वर्धमान' यह नाम रखा था। अव-समंतात् सब तरफ से ऋद्ध-मान अर्थात् पूजा होने से वर्द्धमान-वर्धमान कहलाते हैं। भगवान वर्धमान जब दीक्षा लेकर ध्यान में खड़े थे तब रुद्र ने महान् उपसर्ग किया था किन्तु जब वह उन्हें ध्यान से चलायमान नहीं कर सका तब उसने प्रसन्न

अणंत। अनंतकेवलज्ञानदर्शनादियुक्त। हे **अप्पमेय।** इन्द्रियज्ञानापरिच्छेद्य। एवंविधविशेषणविशिष्ट-**महदिमहावीरवड्ढमाण।** अन्तिमतीर्थंकरदेवस्य हीदं नामद्वयम्। भगवतो हि गर्भावतारादौ पित्रोरिन्द्रादिभिर्महती पूजा कृता रत्नवृष्ट्यादिका च। अतो बन्धुजनैर्भगवतो वर्धमान इति नाम कृतम्। अव समन्ताद्दद्धो मानः पूजातिशयो ज्ञानाद्यतिशयो बा यस्मादिति कृत्वा दीक्षां च गृहीत्वा ध्यानेन स्थितस्य तच्चालनार्थं रुद्रेण महत्युपसर्गे कृते ध्यानान्न चलित इति हेतोर्महतिमहावीर इति तेन नाम कृतम्। तस्येत्थम्भूतस्य '**बुद्धरिसिणो**' बुद्धो यथावत्परिज्ञाताशेषार्थस्वरूपः। स चासौ ऋषिश्च केवलज्ञा-नादिक्षायिकनवकेवललब्धिसम्पन्नः। तस्मै। **णमोत्थु दे।** नमोऽस्तु ते। नमोऽस्तु ते। नमोऽस्तु ते।

तथा-**मम मंगलं।** मलगालननिमित्तं भवन्तु। के ते ? **अरहंता य।** अर्हन्तश्च। **सिद्धा य।** सिद्धाश्च। **बुद्धा य।** बुद्धाश्च हेयोपादेयविवेकसम्पन्नाः। **जिणा य।** जिनाश्चानेकभवगहनव्यसन-प्रापणहेतुकर्मारात्युन्मूलकाः। चशब्दः सर्वत्र परस्परसमुच्चये। **केवलिणो ओहिणाणिणो।** केवलिनोऽवधिज्ञानिनश्च। **मणपज्जवणाणिणो।** मनःपर्ययज्ञानिनः। **चोद्दसपुव्वंगमिणो।**

होकर 'महति महावीर' नामकरण किया था। 'बुद्धरिसिणो'—जिन्होंने सम्पूर्ण पदार्थों को जैसे का तैसा जान लिया है ऐसे 'ऋषि' अर्थात् केवलज्ञान आदि क्षायिक नवकेवल लब्धियों से सम्पन्न होने से भगवान महावीर 'बुद्धर्षि' कहलाते हैं। इन सभी विशेषणों से समन्वित ऐसे अर्हंत, सिद्ध आदि विशेषणों से विशिष्ट हे महावीर स्वामिन्! आपके लिये नमस्कार हो, नमस्कार हो, नमस्कार हो।

अरहंत, सिद्ध, बुद्ध, जिन, केवली, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, चौदश पूर्वगामी, श्रुतसमिति से समृद्ध, बारह प्रकार के तप और तपस्वी, गुण और गुणधारी, महर्षि, तीर्थ और तीर्थंकर, प्रवचन और प्रवचन वाले, ज्ञान और ज्ञानी, दर्शन और दर्शनी, संयम और संयत मुनि, विनय और विनीत मुनि, ब्रह्मचर्यवास और ब्रह्मचारी, गुप्तियाँ और गुप्तिमान, मुक्ति और मुक्तिमान, समितियाँ और समितिवान्, स्वसमय-परसमय के ज्ञाता, क्षांति—क्षपक और क्षांतिमान, क्षीणमोह और क्षीणमोहवान्, बोधितबुद्ध और बुद्धिमान, चैत्यवृक्ष और चैत्य—जिनप्रतिमायें ये सब मेरे मंगल के लिये होवें।

विशेषार्थ—ये अरिहंत, सिद्ध आदि सब मेरे मंगल के लिये—मल गालन करने वाले होवें। छ्यालीस गुण सहित भगवान अर्हंत कहलाते हैं। संसाररूपी विषम कष्ट को देने में कारणभूत कर्म हैं इन कर्मों को जड़मूल से नष्ट करने वाले 'जिन' कहलाते हैं। केवली भगवान अवधिज्ञानी महामुनि, मनःपर्ययज्ञानी महामुनि, चतुर्दश पूर्व और द्वादशांग के ज्ञानी, श्रुत—अंगबाह्य अर्थात् कालिक, उत्कालिक आदि भेदों को जो समिति—समूह उनसे समृद्ध—अंगबाह्य श्रुत के ज्ञानी बारह प्रकार के तप—अनशन आदि भेदों सहित और तपस्वी महासाधु, गण—मूलगुण एवं उत्तरगुण अथवा चौरासी लाख उत्तर गुण और उनके गुणों से युक्त महामुनि। महर्षि—कोष्ठबुद्धि, बीजबुद्धि आदि परमऋद्धियुक्त मुनिगण ये सब मेरे मंगल के लिये होवें।

तीर्थ—आगम और उस आगम के आधारभूत संघ ये तीर्थ कहलाते हैं। तीर्थंकर भगवान मेरे लिए मंगलकारी होवें। पूर्वापर विरोध आदि दोषों से रहित वचन प्रवचन कहलाते हैं ऐसे प्रवचन और प्रवचन वाले

चतुर्दशपूर्वाणामंगानां च मा परिज्ञानम्। सा येषामस्ति ते चतुर्दशपूर्वांगमिणः। व्रीह्यादित्वादिन्। चतुर्दशपूर्वद्वादशांगविद इत्यर्थः। **सुदसमिदिसमिद्धा य।** श्रुतस्यांगबाह्यस्य कालिकोत्कालिकादि-भेदभिन्नस्य समितिः समूहस्तेन समृद्धाश्च तत्परिज्ञानवन्तः। न केवलमेत एवार्हदादयो मम मलगालननिमित्तं भवन्तु, अपि तु।। **तवो य बारसविहो।** तपो द्वादशप्रकारं मम मंगलं भवतु। **तवस्सी।** तेन तपसा युक्तास्तपस्विनो मुनयो मम मंगलं भवंतु। **गुणा य।** चतुरशीतिलक्षसंख्याः गुणाश्च। गुणवन्तो ये तैर्गुणैर्युक्ता मुनयः। **महरिसी तित्थं तित्थंकरा य।** महर्षयः कोष्ठबुद्धिबीजबुद्ध्यादिपरमर्द्धियुक्ता मुनयः। तीर्थमागमस्तदाधारसंघश्च। तीर्थकराश्च तीर्थकरदेवा गणधरदेवाश्च। **पवयणं।** प्रकृष्टं पूर्वापरविरोधादि-दोषरहितं वचनम्। **पवयणी य।** प्रवचनी च प्रकृष्टवचनयुक्तः पुरुषविशेषः। **णाणं।** मत्यादिज्ञानं पञ्चविधम्। **णाणी य।** ज्ञानी च तज्ज्ञानयुक्तः पुरुषविशेषः। **दंसणं।** औपशमिकादिदर्शनत्रयम्। **दंसणी य।** दर्शनी च तद्दर्शनयुक्तः पुरुषविशेषः। **संजमो।** संयमो द्वादशप्रकारः। **संजदा य।** संयताश्च तद्युक्ता मुनयः। **विणओ।** विनयश्च ज्ञानदर्शनचारित्रोपचार-लक्षणश्चतुर्विधो विनयः। **विणीदा य।** विनीताश्च विनयेन युक्ता मुनयः। **बंभचेरवासो य।** ब्रह्मचर्यवासश्च। ब्रह्माणि गुरुकुले व्रते वा चर्यतेऽनुष्ठीयत इति ब्रह्मचर्यम्। तेन सह वासस्तद्युक्तत्वेनावस्थानम्। **बंभचेरवासी य।** तत्सहवासवानात्मा। **गुत्तीओ चेव।** गुप्तयश्चैव

महामुनि, मति आदि पंचविध ज्ञान और ज्ञानधारी महासाधु, त्रिविध सम्यक्त्व और सम्यग्दर्शन महामुनि, बारह प्रकार का संयम और संयमधारी संयत, ज्ञान, दर्शन , चारित्र और उपचार इन चार भेदरूप विनय और विनयगुण युक्त मुनिगण ये मंगलकारी होवें।

ब्रह्मचर्यवास—ब्रह्म—गुरुकुल—मुनिसंघ अथवा व्रतों में जो चर्या की जाती है—उनका अनुष्ठान किया जाता है उसका नाम ब्रह्मचर्य है उसके साथ जिनका वास है अर्थात् जो ब्रह्मचर्य युक्त हैं और जो ब्रह्मचर्य से सहित आत्मा—मुनि हैं। त्रिविध गुप्तियाँ और गुप्तिमान महामुनि हैं। बाह्य और अंतरंग परिग्रह का त्याग मुक्ति है और मुक्ति के परिग्रह के त्यागी अथवा मोक्षप्राप्त आत्मा मुक्तिमान कहलाते हैं। पाँच समितियाँ और समितिधारी महासाधु होते हैं। स्वसमय—जैनमत, परसमय—जैन से अतिरिक्त वैदिक, बौद्ध आदि मत इन सबके ज्ञाता जो महामुनि हैं। क्षांति—क्षमाशील, क्षपकश्रेणी पर आरूढ़ महामुनि और क्षमावान मुनि, क्षीणमोह—मोहरहित, परिणाम—बारहवां गुणस्थान और उस गुणस्थान वाले क्षीणमोहवान् निर्ग्रंथ महासाधु होते हैं। संसार, शरीर, विषय आदि में उपदेश से वैराग्य को प्राप्त 'बोधितबुद्ध' कहलाते हैं। कोष्ठबुद्धि आदि ऋद्धि से सहित महामुनि बुद्धिमंत कहलाते हैं।

चैत्य—जिनप्रतिमायें और चैत्यवृक्ष—जिनवृक्षों में जिनप्रतिमायें विराजमान रहती हैं ऐसे अकृत्रिम जिनमंदिरों में तथा समवसरण में अशोक, सप्तच्छद, चंपक और आम्र के वनों में ये चैत्यवृक्ष माने गये हैं। इस प्रकार कृत्रिम—देव, मनुष्यों द्वारा बनवायी गयी जिनप्रतिमाओं और अनादिनिधन-शाश्वत जिनप्रतिमायें, 'चैत्य' शब्द से कही जाती हैं।

सम्यग्योगनिग्रहलक्षणास्तिस्त्रः। गुत्तिमंतो य। गुप्तिमन्तश्चात्मानः। मुत्तीओ चेव। मुक्तयश्चैव। बहिरन्तर्वा परिग्रहमोचनानि परित्यागाः। मुत्तिमंतो य। तद्वन्तश्चात्मानः। समिदीओ चेव। ईर्यादयः पञ्चसमितयश्चैव। समिदिमंतो य। तद्वन्तश्चात्मानः। समिदिमंतो य। तद्वन्तश्चात्मानः। ससमयपर-समयविदू। स्वसमयो जैनमतं, परसमयः परमतानि। तौ विदन्ति ये ते तद्विदः। खंतिखवगा य। क्षान्त्या सकलपरीषहसहनेन परमक्षमया वा 'खवगा य' क्षपकाश्च। क्षपकश्रेण्यारूढाः। खीणमोहा य। क्षीणमोहाश्च। क्षीणो मोहो दर्शनचारित्रमोहनीयं कर्म येषां ते क्षीणमोहाः। क्षीणकषायगुणस्थानवर्तिनः। बोहियबुद्धा य। बोद्धितबुद्धाश्च। संसारशरीरविषयादौ हि परपदेशादेवैराग्यं प्रतिपन्नास्ते बोधितबुद्धाः। बुद्धिमंतो य। बुद्धयो हि कोष्ठबुद्धिप्रभृतयो विद्यंते येषां ते बुद्धिमंतः। चेदियरुक्खा य। चैत्यवृक्षाश्च। चैत्यानि हि जिनादिप्रतिबिम्बानि। तेषामाधारभूता वृक्षाश्चैत्यवृक्षाः। चेदियाणि। कृत्रिमाकृत्रिमचैत्यानि। य अर्हंत इत्यादयश्चैत्यवृक्षपर्यन्ता व्याख्यातास्ते सर्वे मम मंगलं भवन्त्विति सम्बन्धः। तथा—

ये अर्हंत, सिद्ध आदि चैत्यवृक्षपर्यंत सभी पूज्य-वंद्य गुण और गुणधारी महापुरुष हम सभी के लिये मंगलकारी होवें।

मैं ऊर्ध्वलोक के, अधोलोक के और तिर्यग्लोक—मध्यलोक के सिद्धायतन को नमस्कार करता हूँ। अष्टापद पर्वत, सम्मेदशिखर, ऊर्जयंत, चंपापुर, पावापुर, मध्यमानगरी, हस्तिबालिकामंडप की सिद्धनिषीधिकाओं को नमस्कार करता हूँ।

अन्य जो भी निषीधिकायें इन ढाई द्वीप में हैं। ईषत्प्राग्भार—सिद्धशिला पर स्थित सिद्ध बुद्ध, कर्मचक्र से मुक्त नीरज, निर्मल हैं। जो गुरु, आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्तक, स्थविर और कुलकर हैं। चातुर्वर्ण और श्रमणसंघ हैं।

पाँच भरत और पाँच ऐरावत ऐसे ढाई द्वीपों की ये दश कर्मभूमियाँ हैं। पाँच महाविदेहों में जो कर्मभूमियों में ये गुरु आदि संघ पर्वत हैं, ये सब मेरे लिये मंगलकारी होवें। लोक में जो भी साधु संयत और तपस्वी हों वे सब मुझे पवित्र करें और मंगलप्रद हों। मैं भाव से विशुद्ध होकर मस्तक झुकाकर हस्तांजलि को मस्तक पर धरकर मन, वचन, काय की शुद्धिपूर्वक नमस्कार करता हूँ।

विशेषार्थ—मेरु के ऊपर के भाग को ऊर्ध्वलोक, मेरु के नीचे को अधोलोक और मेरु की ऊँचाई प्रमाण तिर्यग्लोक में जो भी सिद्धों के—मुक्तात्माओं के निषीधिका—निर्वाणक्षेत्र हैं उन सबको मैं नमस्कार करता हूँ।

ये सिद्ध निषीधिकायें कहाँ-कहाँ हैं ?

अष्टापदपर्वत—कैलाशपर्वत, सम्मेदशिखर पर्वत, ऊर्जयंतपर्वत—गिरनार, चम्पापुरी, पावापुरी, मध्यमानगरी और हस्तिबालिकामंडप ये सिद्ध निषीधिकायें हैं। इन निर्वाण क्षेत्रों से अतिरिक्त जिनके नाम निर्दिष्ट नहीं किये गए हैं ऐसी जो कोई भी निषीधिकायें इस ढाईद्वीप और दो समुद्र के अन्तर्गत हैं उन सबको मैं नमस्कार करता हूँ।

ये निषीधिकायें किन-किनकी हैं ?

यह सिद्धों की निषीधिकायें हैं।

उड्ढमहतिरियलोए सिद्धायदणाणि णमंसामि। सिद्धायतनानि सिद्धप्रतिमानामधिष्ठानानि। णमंसामि। नमस्करोमि। क्व ? **उड्ढमहतिरियलोए।** मेरोरुपर्यूर्ध्वलोकस्ततोऽधस्तादधोलोकः। मेरुप्रमाणस्तिर्यग्लोकस्तत्र। तथा—**सिद्धणिसीहियाओ।** सिद्धानां मुक्तात्मनां निषीधिका निर्वाणक्षेत्राणि नमस्यामि। क्व ताः सिद्धनिषीधिकाः ? **अट्ठावयपव्वए।** अष्टापदपर्वते कैलासपर्वते। **सम्मेदे।** सम्मेदपर्वते। **उज्जंते।** ऊर्जयन्तपर्वते। **चंपाए।** चम्पानगर्याम्। **पावाए।** पावानगर्याम्। **मज्झिमाए।** मध्यमानगर्याम्। **हत्थिवालियसहाए।** हस्तिवालिकामण्डपे। **जाओ अण्णाओ।** इत्यादि। अन्या उक्तनिषीधिकाभ्यो व्यतिरिक्ता अनिर्दिष्टनामानो याः काश्चिदपि निषीधिकाः। **जीवलोयम्हि।** अर्धतृतीयद्वीपसमुद्रद्वये। केषां निषीधिका इत्याह—**इसीत्यादि।** सिद्धानां निषीधिकाः। कथम्भूतानां सिद्धानाम्? **इसिपब्भारतलग्गयाणं।** ईषत्प्राग्भारो मोक्षशिला। तस्य तलमुपरितनभागः। तत्र गतानां स्थितानाम्। तथा—**बुद्धाणं।** पदार्थस्वरूपपरिज्ञानवतां, न पुनर्जडरूपाणाम्। तथा—**कम्मचक्कमुक्काणं।** कर्मणां ज्ञानावरणादीनां चक्रं मूलोत्तरप्रकृतिभेदप्रपञ्चः। तेन मुक्तानां रहितानाम्। तथा—**णीरयाणं।** रजो ज्ञानदृगावरणे पापं वा। ततो निष्क्रान्तानाम्। तथा—**णिम्मलाणं।** मलः सम्यग्दर्शनाद्यतिचारः भावकर्म वा। ततो निष्क्रान्तानाम्। तथा—**गुरु-आयरिय-उवज्झायाणं।** गुरवो दीक्षागुरवः शिक्षागुरव इत्यादयः। आचार्याः पञ्चविधाचारचरणाचरणकुशलाः। उपाध्याया अंगप्रविष्टांगबाह्यश्रुतोपदेशकाः। एतेषां च याः काश्चिन्निषीधिकाः। तथा—**पव्वत्तिथेरकुलयराणं।** प्रवर्तनां सन्मार्गप्रवर्तकानां, स्थविराणां वयोवृद्धानां, गुणज्येष्ठानां वा, कुलकराणां नन्दिदेवसेनसिंहसंघ-

---

ईषत्प्राग्भार—मोक्षशिला—सिद्धशिला कहलाती है। उसके ऊपर के तलभाग पर स्थित जो सिद्धक्षेत्र भगवान हैं उन्हीं के विशेषण बतलाते हैं। **बुद्धाणं**—संपूर्ण पदार्थों के स्वरूप को जानने वाले हैं वे सिद्ध जड़रूप नहीं हैं। **कम्मचक्कमुक्काणं**—ज्ञानावरणादि मूल और उत्तर प्रकृतियों के भेद से अनेक भेदरूप कर्मों से रहित हैं। **णीरयाणं**—रज—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अथवा पाप, इनसे जो रहित हैं।

णिम्मलाणं—सम्यग्दर्शनादि के अतिचार—दोष और भावकर्मरूपी मलों से रहित हो चुके हैं। इन सिद्धशिला के उपरिम भाग में विराजमान सिद्धों को नमस्कार हो।

गुरुआयरियउवज्झायाणं—गुरु—दीक्षागुरु, शिक्षागुरु आदि गुरु कहलाते हैं। पाँच प्रकार के आचारों के पालन करने वाले और कराने वाले आचार्य कहलाते हैं इनकी जो निषीधिकायें हैं तथा—**पव्वत्तित्थेरकुलयराणं**—सन्मार्ग के प्रवर्तक प्रवर्तित हैं। वयोवृद्ध साधु स्थविर हैं अथवा गुणों में ज्येष्ठ भी स्थविर कहलाते हैं। नंदिसंघ, देवसंघ, सेनसंघ और सिंहसंघ ये संघ कहलाते हैं। देशिगण, बलात्कारगण, काणूरगण और सूरस्थगण ये गण शब्द से कहे जाते हैं। इन संघ और गणों के भेद वाले महामुनियों की जो कोई भी निषीधिकायें हैं। इन सब निषीधिकाओं को मैं नमस्कार करता हूँ।

व्रतिक—संयमियों के चार भेद माने हैं—ऋषि, यति, मुनि और अनगार, इन्हें चातुर्वर्ण श्रमणसंघ कहते हैं अथवा ऋषि, आर्यिका, श्रावक और श्राविका के भेदरूप चातुर्वर्ण संघ या चतुर्विधसंघ कहलाता है।

देशिगणबलात्कारगणकाणूर-गणसूरस्थगणप्रभृति-संघगणभेदकराणां च याः काश्चिन्निषीधिकास्ता नमस्यामि। तथा—चाउवण्णो य समणसंघो य। श्रमणानां व्रतिनां सङ्घःसमुदायः। चातुर्वर्णश्चतुष्प्रकारः, ऋषियतिमुन्यनगारभेदात्, अथवा ऋष्यार्यिकाश्रावकश्राविकाभेदात्। क्वत्यस्तत्संघः? भरहेरावएसु दससु। अर्धतृतीयद्वीपेषु हि पंच भरताः पंचैरावताश्च। तेषु यस्तत्संघः। तथा—पंचसु महाविदेहेसु। यस्तत्संघ स मम मङ्गलं भवत्विति। तथा—जे लोए संति साहू। लोके मानुषोत्तरवलयाकृतिपर्वतावधिक्षेत्रे ये सन्ति साधवः। सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रैर्मोक्षं साधयन्ति साधितवन्तश्च ये ते साधवः।। तथा—संजदा तवस्सी। संयतास्तपस्विनः। एदे मम मंगलं पवित्तं। एते कर्तृभूता मम पवित्रं मंगलं मलगालननिमित्तं सुखावाप्तिनिमित्तं वा भवन्तु। एदेहं मंगलं करेमि भावदो विसुद्धो सिरसा। एतान्कर्मतापन्नानहं भावतो विशुद्धः शिरसोत्तमांगेन मंगलं करोमि स्तुतिगोचरतां नयामि, 'आदौ मध्येऽवसाने च मंगलं भाषितं बुधैः। तज्जिनेन्द्रगुणस्तोत्र'—मित्यभिधानात्। किं कृत्वा तान्मंगलं करोमि ? सिरसा अहिवंदिऊण सिद्धे। शिरसाऽभिवंद्य सिद्धान्। किं कृत्वा ? काऊण अंजलिं मत्थयम्हि। मस्तके अंजलिं करमुकुलं कृत्वा। अहं किंविशिष्टः ? तिविहं तिरयणसुद्धो। देववंदनाप्रतिक्रमणस्वाध्यायलक्षणत्रिविधक्रियानुष्ठाने त्रीणि करणानि मनोवाक्कायलक्षणानि शुद्धानि यस्य।

।। इति निषीधिकादण्डक विवरणम्।।

यह संघ कहाँ-कहाँ पाया जाता है ?

ढाई द्वीपों में पाँच भरत और पाँच ऐरावत ऐसे दश क्षेत्र माने हैं तथा पाँच महाविदेह माने हैं। इन पंद्रह कर्मभूमियों में यह चतुर्विध संघ रहता है यह संघ मेरे लिये मंगलकारी होवे।

लोक में—मानुषोत्तर पर्वत वलयाकार है जो कि ढाई द्वीप की सीमा पर है। उन ढाई द्वीप क्षेत्र के अंदर में जो भी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के द्वारा मोक्ष की साधना कर रहे हैं और कर चुके हैं वे सभी दिगम्बर जैन साधु, संयत, तपस्वी मेरा मंगल करें और मुझे पवित्र करें—मलगालन के लिये जो निमित्त है उसे मंगल कहते हैं अथवा सुख को प्राप्त कराने में जो निमित्त है उसे भी मंगल कहते हैं।

इन सबका मैं भाव से विशुद्ध होता हुआ शिर झुकाकर मंगल करता हूँ अर्थात् स्तुति करता हूँ। कहा भी है—

आदौ मध्येऽवसाने च मंगलं भाषितं बुधैः। तज्जिनेंद्रगुणस्तोत्र-मित्याहुर्मुनिपुंगवाः।

ग्रन्थ रचना के आदि, मध्य और अन्त में बुद्धिमानों को मंगल करना चाहिये। वह जिनेन्द्र भगवान के गुणों का स्तोत्र ही है ऐसा महामुनियों ने कहा है।

किस विधि से मैं मंगल—स्तुति करता हूँ ?

मैं देववंदना, प्रतिक्रमण और स्वाध्याय इन तीन प्रकार की क्रियाओं के अनुष्ठान में मन, वचन, काय की शुद्धिपूर्वक अंजलि को मस्तक पर रखकर शिर झुकाकर सिद्धों की वंदना करके उपर्युक्त सभी सिद्धनिषीधिकाओं, सिद्धों को, सिद्धक्षेत्रों को, गुरु-आचार्य-उपाध्याय आदि महामुनियों को नमस्कार करता हूँ।

नंदीश्वरभक्तिः

(श्रीमत्पूज्यपादस्वामि विरचित)

त्रिदशपति-मुकुट-तटगत-मणिगण-करनिकर-सलिल-धारा-धौत-
क्रमकमल-युगलजिनपति-रुचिर-प्रतिबिंब-विलय-विरहित-निलयान्।।१।।

निलया-नह-मिह महसां सहसा, प्रणिपतन-पूर्व-मवनौम्य-वनौ।
त्रय्यां त्रय्या शुद्ध्या निसर्ग-शुद्धान्-विशुद्धये घनरजसां।।२।।

भावन-सुर-भवनेषु, द्वासप्तति-शत-सहस्त्र-संख्या- भ्यधिकाः।
कोट्यः सप्त प्रोक्ता, भवनानां भूरितेजसां भुवनानाम्।।३।।

त्रिभुवन-भूतविभूनां, संख्यातीता-न्यसंख्य-गुणयुक्तानि।
त्रिभुवन-जननयन-मनः-प्रियाणि भवनानि भौमविबुध-नुतानि।।४।।

यावन्ति सन्ति कान्त-ज्योतिर्लोकाधि-देवताभि-नुतानि।
कल्पेऽनेक-विकल्पे, कल्पातीतेऽहमिन्द्रकल्पानल्पे।।५।।

विंशति-रथ त्रिसहिता, सहस्त्र-गुणिता च सप्तनवतिः प्रोक्ता।
चतु-रधिका-शीति-रतः, पंचक-शून्येन विनिहता-न्यनघानि।।६।।

नंदीश्वर भक्ति

(पद्यानुवाद-गणिनी ज्ञानमती)

त्रिदशपती के मुकुटतटों की, मणिगणप्रभ जलधारा से।
धौत पादपंकज जिनप्रतिमा, के अकृत्रिम जिनगृह हैं।।१।।

उन नैसर्गिक शुद्ध जिनालय, को सहसा साष्टांग यहीं।
त्रयशुद्धी से नमूँ निविडरज-कर्मविशुद्धी हेतु सही।।२।।

भवनवासि देवों के जिनगृह, सात करोड़ बहत्तर लाख।
उनमें तेजोमय जिनप्रतिमा, वंदन करूँ नमाकर माथ।।३।।

व्यंतर देवों में त्रिभुवनपति, प्रतिमा के गृह संख्यातीत।
त्रिभुवनजन मननयन प्रीतिकर, सुरनुत उन्हें नमूँ नत शीश।।४।।

ज्योतिष सुर से पूज्य जिनालय, संख्यातीत नमूँ उनको।
बहु विकल्पयुत कल्पों में, अरु कल्परहित में वन्दन हो।।५।।

लक्ष चुरासी सहस सत्तानवे, तेईस अधिक जिनालय हैं।
कल्पवासि कल्पातीतों के, उनको नितप्रति वंदूँ मैं।।६।।

---

१. मुनिचर्या-चैत्यभक्ति-पृ. ३३४ से ३४५ तक।

अष्टापंचाश-दतश्चतुः शतानीह मानुषे क्षेत्रे।
लोकालोकविभाग-प्रलोकनालोक-संयुजां जयभाजाम्।।७।।

नवनवचतुः शतानि च, सप्त च नवतिः सहस्त्रगुणिताः षट् च।
पंचाशत्-पंचवियत्-प्रहताः पुनरत्र कोट्योऽष्टौ प्रोक्ताः।।८।।

एतावंत्येव सता-मकृत्रिमा-ण्यथ जिनेशिनां भवनानि।
भुवनत्रितये त्रिभुवन-सुरसमिति-समर्च्यमान-सत्प्रतिमानि।।९।।

वक्षाररुचककुंडल - रौप्यनगोत्तर - कुलेषुकार - नगेषु।
कुरुषु च जिनभवनानि, त्रिशतान्यधिकानि तानि षड्विंशत्या।।१०।।

नंदीश्वर - सद्द्वीपे, नंदीश्वरजलधि - परिवृते धृतशोभे।
चंद्रकरनिकर-संनिभ-रुन्द्रयशो-वितत-दिङ्महीमंडलके।।११।।

तत्रत्यांजन-दधिमुख-रतिकर-पुरुनग-वराख्य-पर्वतमुख्याः।
प्रतिदिश-मेषा-मुपरि, त्रयोदशेन्द्रा-र्चितानि जिनभवनानि।।१२।।

आषाढकार्तिकाख्ये, फाल्गुन-मासे च शुक्लपक्षे-ष्टम्याः।
आरभ्याष्ट-दिनेषु च, सौधर्म-प्रमुख-बिवुधपतयो भक्त्या।।१३।।

लोकालोक विलोकित जिनवर, जयशाली के जिनगृह हैं।
मनुषक्षेत्र में चार शतक, अट्ठावन उनको प्रणमूँ मैं।।७।।

त्रिभुवन के सब चैत्यालय हैं, आठ करोड़ सुछप्पन लाख।
सहस सत्तानवे चार शतक, इक्यासी सबको नमूँ त्रिकाल।।८।।

इतने ही जिनभवन अकृत्रिम, त्रिभुवन में हैं नमूँ उन्हें।
त्रिभुवन के सुरगण से अर्चित, सत्प्रतिमायुत नमूँ उन्हें।।९।।

कुलगिरि इष्वाकार रुचक, कुंडल वक्षार रजत पर्वत।
मनुजोत्तरगिरि देवोत्तरकुरु, के जिनगृह छब्बिस त्रयशत।।१०।।

नन्दीश्वरजलधि से वेष्टित, नन्दीश्वरवरद्वीप महान।
चन्द्रकिरणसम उज्ज्वल यश से, व्याप्त किया भूमण्डल आन।।११।।

उनमें अंजन दधिमुख रतिकर, उत्तम पर्वत प्रतिदिश में।
तेरह तेरह उन पर सुरपति, अर्चित जिनमंदिर शोभें।।१२।।

अषाढ़ कार्तिक फाल्गुन के शुभ, शुक्लपक्ष अष्टमि तिथि से।
अष्ट दिनों तक भक्ती से, सौधर्म प्रमुख सुरपति आते।।१३।।

तेषु महामह-मुचितं, प्रचुराक्षत-गंधपुष्प-धूपैर्दिव्यैः।
सर्वज्ञ - प्रतिमाना - मप्रतिमानां प्रकुर्वते सर्वहितम् ।।१४।।
भेदेन वर्णना का, सौधर्मः स्नपन - कर्तृता - मापन्नः।
परिचारक-भावमिताः, शेषेन्द्रा रुन्द्रचंद्र-निर्मल-यशसः।।१५।।
मंगल पात्राणि पुनस्तद्देव्यो बिभ्रति स्म शुभ्रगुणाढ्याः।
अप्सरसो नर्तक्यः, शेषसुरास्तत्र लोकना - व्यग्रधियः।।१६।।
वाचस्पति-वाचामपि, गोचरतां संव्यतीत्य यत्क्रममाणम्।
विबुधपति-विहितविभवं, मानुष-मात्रस्य कस्य शक्तिः स्तोतुम्।।१७।।
निष्ठापित-जिनपूजाश्-चूर्णस्नपनेन दृष्टविकृत-विशेषाः।
सुरपतयो नंदीश्वर-जिनभवनानि प्रदक्षिणीकृत्य पुनः।।१८।।
पंचसु मंदरगिरिषु, श्रीभद्रशाल - नंदन - सौमनसं।
पांडुकवन - मिति तेषु, प्रत्येकं जिनगृहाणि चत्वार्येव।।१९।।
तान्यथ परीत्य तानि च, नमसित्वा कृतसुपूजनास्-तत्रापि।
स्वास्पदमीयुः सर्वे, स्वास्पदमूल्यं स्वचेष्टया संगृह्य।।२०।।
सहतोरण-सद्वेदी, परीतवन-याग-वृक्ष-मानस्तंभ-
ध्वजपंक्ति-दशकगोपुर-चतुष्टय-त्रितय-शाल-मंडपवर्यैः।।२१।।

वहाँ दिव्य बहु गंधाक्षत चरु, दीप धूप पुष्पादिक से।
अनुपम जिन सर्वज्ञ बिम्ब की, महामहिम पूजा करते।।१४।।
भेदों का क्या वर्णन जब, सौधर्म इन्द्र संस्नपन करें।
शेष इन्द्र शशिसम निर्मल, यशयुत परिचारक भाव धरें।।१५।।
इन्द्र देवियाँ उज्ज्वल गुण-मणियुत बहु मंगलपात्र लिये।
नृत्य करें अप्सरा शेष, सुरगण अवलोकन व्यग्र हुए।।१६।।
वाचस्पति के वचन अगोचर, इन्द्रादिककृत विभव सहित।
उस पूजाविधि के वर्णन में, मनुजमात्र हैं शक्ति रहित।।१७।।
जिनपूजा निष्ठापित कर वे, चूर्ण लेप से दिखें विशेष।
सुरगण नन्दीश्वर जिनगृह की, प्रदक्षिणा कर पुनः अशेष।।१८।।
पाँचों मन्दरगिरि पर जाते, भद्रसाल नन्दन वन में।
सौमनसं पांडुकवन सबमें, चार-चार मंदिर शोभें।।१९।।
उनकी प्रदक्षिणा वन्दन कर, पूजा कर निजचर्या से।
स्वास्पद मूल्य ग्रहण कर सुरगण, स्वस्वस्थान चले जाते।।२०।।
तोरण वेदी वन से वेष्टित, यागवृक्ष अरु मानस्तंभ।
दशध्वज पंक्ति चार गोपुर, त्रयसाल सहित शुभवर मंडप।।२१।।

अभिषेक-प्रेक्षणिका-क्रीडनसंगीत-नाटका-लोकगृहैः।
शिल्पिविकल्पित-कल्पन-संकल्पातीतकल्पनैः समुपेतैः।।२२।।

वापीसत्-पुष्करिणी-सुदीर्घिका-द्यंबुसंसृतैः समुपेतैः।
विकसित-जलरुहकुसुमै-र्नभस्यमानैः शशिग्रहर्क्षैः शरदि।।२३।।

भृङ्गाराब्दक-कलशा-द्युपकरणै-रष्टशतक-परिसंख्यानैः।
प्रत्येकं चित्रगुणैः, कृतझणझण-निनद-वितत-घंटाजालैः।।२४।।

प्रभ्राजंते नित्यं, हिरणमया - नीश्वरेशिनां भवनानि।
गंधकुटीगतमृगपति-विष्टर-रुचिराणि विविधविभवयुतानि।।२५।।

येषु जिनानां प्रतिमाः, पंचशत-शरा-सनोच्छ्रिताः सत्प्रतिमाः।
मणिकनक-रजत-विकृता-दिनकर-कोटिप्रभाधिक-प्रभदेहाः।।२६।।

तानि सदा वंदेऽहं, भानु-प्रतिमानि यानि कानि च तानि।
यशसां महसां प्रतिदिश-मतिशय-शोभाविभांजि पापविभंजि।।२७।।

सप्तत्यधिकशत-प्रियधर्मक्षेत्र-गततीर्थकर-वरवृषभान्।
भूतभविष्यत्संप्रति-कालभवान्-भवविहानये विनतोऽस्मि।।२८।।

अभिषेक प्रेक्षण क्रीड़न, संगीत नाट्य आलोक सदन।
शिल्पि कल्पना संकल्पों से, रहित अकल्पित चैत्यभवन।।२२।।

वापी पुष्करिणी जलसंभृत, विकसित पंकज पुष्प सहित।
नभ से शशिग्रह तारागण से, प्रतिबिम्बित जलजन्तु रहित।।२३।।

झारी दर्पण कलश आदि, उपकरण एक सौ आठ प्रमाण।
सब प्रतिमा के पास शोभते, अरु घण्टा की ध्वनि झण झाण।।२४।।

श्रीजिनवर के भवन स्वर्णमय, सदा शोभते विभव सहित।
उनमें गंधकुटी में सुन्दर, सिंहासन हैं रुचिर विविध।।२५।।

उन पर राजित जिनवर प्रतिमा, धनुष पाँच सौ ऊँची हैं।
मणिमय कनक रजतमय प्रतिमा, कोटि सूर्यप्रभ मंद करें।।२६।।

भानु सदृश उन सब जिनगृह को, वंदूँ मैं निज भक्तिसहित।
प्रतिदिश में यश तेज करें, अघनाशक अतिशय शोभायुत।।२७।।

इक सौ सत्तर धर्मक्षेत्र में, तीर्थंकर जितने होते।
भूत भावि सांप्रत त्रैकालिक, उन्हें नमूँ भवदुःख हरें।।२८।।

अस्या-मवसर्पिण्यां, वृषभजिनः प्रथमतीर्थकर्ता भर्ता।
अष्टापदगिरि-मस्तक-गतस्थितो मुक्तिमाप पापान्मुक्तः।।२९।।
श्रीवासुपूज्यभगवान्, शिवासु पूजासु पूजित-स्त्रिदशानां।
चंपायां दुरितहरः, परमपदं प्रापदा-पदा-मन्तगतः।।३०।।
मुदितमतिबलमुरारि-प्रपूजितो जितकषाय रिपुरथ जातः।
बृहदूर्जयंतशिखरे, शिखामणि-स्त्रिभुवनस्य नेमिर्भगवान्।।३१।।
पावापुर-वरसरसां, मध्यगतः सिद्धिवृद्धि-तपसां महसां।
वीरो नीरद नादो, भूरिगुणश्-चारुशोभ-मास्पदमगमत्।।३२।।
सम्मदकरिवन-परिवृत-सम्मेदगिरीन्द्र-मस्तके विस्तीर्णे।
शेषा ये तीर्थकराः, कीर्तिभृतः प्रार्थितार्थसिद्धिमवापन् ।।३३।।
शेषाणां केवलिनां, अशेषमतवेदि-गणभृतां साधूनां।
गिरितल-विवर-दरी-सरि-दुरुवन-तरुविटपि-जलधि-दहनशिखासु।।३४।।
मोक्षगतिहेतुभूत-स्थानानि सुरेन्द्र-रुन्द्र-भक्तिनुतानि।
मंगलभूता-न्येता-न्यंगीकृत-धर्मकर्मणा-मस्माकम्।।३५।।

इस अवसर्पिणि में तीर्थंकर, वृषभदेव जिन प्रथम हुए।
अष्टापदगिरि मस्तक से प्रभु, पापनाश शिवधाम गये।।२९।।
पंचकल्याणक पूजा में श्री-वासुपूज्य सुरगण पूजित।
चम्पापुर से मुक्त हुए सब, दुरित दूर आपद अंतक।।३०।।
मुदितमती बलदेवमुरारी-पूज्य कषायजयी भगवान।
ऊर्जयन्तगिरि से त्रिभुवन के, चूड़ामणि हुए नेमि महान।।३१।।
पावापुरिवर सरवर मध्ये, सिद्धि वृद्धि तप तेज सहित।
मेघध्वनी सम वीरनाथ, शिवधाम गये अगणित गुणयुत।।३२।।
मत्तगजों युत वन से वेष्टित, श्रीसम्मेदशिखरगिरि से।
शेष तीर्थंकर कीर्ति सहित, इच्छित सिद्धी को प्राप्त हुए।।३३।।
शेष केवली सब मतवेदी, गणधरगण साधूगण भी।
गिरि तल विवर दरी उपवन तरु, जलधी अग्नि शिखा से भी।।३४।।
मोक्ष गये हैं जहाँ कहीं से, सभी स्थल सुरपति नुत हैं।
धर्मकर्म रुचियुत हम सबके, लिए सदा मंगलमय हैं।।३५।।
जिनपति जिनप्रतिमा जिनगृह, जिन निषीधिका स्थान महान।
वे चारों ही भव्य जनों के, भव घातक हों मम सुखदान।।३६।।

जिनपतयस्-तत्प्रतिमास्-तदालयास्-तन्निषद्यका-स्थानानि।
ते ताश्च ते च तानि च, भवन्तु भवघातहेतवो भव्यानाम्।।३६।।
संध्यासु तिसृसु नित्यं, पठेद्यदि स्तोत्रमेतदुत्तम-यशसाम्।
सर्वज्ञानां सार्वं, लघु लभते श्रुतधरेडितं पदममितम्।।३७।।
नित्यं निःस्वेदत्वं, निर्मलता क्षीरगौर-रुधिरत्वं च।
स्वाद्या-कृति-संहनने, सौरुप्यं सौरभं च सौलक्ष्यम्।।३८।।
अप्रमित-वीर्यता च, प्रियहित-वादित्व-मन्य-दमितगुणस्य।
प्रथिता दश संख्याताः, स्वतिशय-धर्माः स्वयंभुवो देहस्य।।३९।।
गव्यूतिशत-चतुष्टय-सुभिक्षता-गगन-गमन-मप्राणिवधः।
भुक्त्युपसर्गाभावश्-चतुरास्यत्वं च सर्वविद्येश्वरता।।४०।।
अच्छायत्व-मपक्ष्म-स्पंदश्च समप्रसिद्धनखकेशत्वं।
स्वतिशयगुणा भगवतो, घातिक्षयजा भवंति तेऽपि दशैव।।४१।।
सार्वार्ध-मागधीया, भाषा मैत्री च सर्वजनता-विषया।
सर्वर्तुफलस्तवक-प्रवाल-कुसुमोपशोभित-तरुपरिणामा।।४२।।
आदर्शतल-प्रतिमा, रत्नमयी जायते मही च मनोज्ञा।
विहरण-मन्वेत्यनिलः, परमानंदश्च भवति सर्वजनस्य।।४३।।

संध्यात्रय में नित उत्तम, यशयुत सर्वज्ञ स्तुति पढ़ते।
वे श्रुतधरनुत अमित सर्वहित-पद को त्वरित प्राप्त करते।।३७।।

स्वेद रहित निर्मलता नित ही, क्षीर समान रुधिर उज्ज्वल।
उत्तम संस्थान संहननयुत, सुरभितदेह सुरूप सुभग।।३८।।

सहस आठ लक्षणयुत अतुलित, वीर्यसहित प्रियहित वादी।
अगणितगुणी स्वयंभू प्रभु के, ये दश अतिशय बड़भागी।।३९।।

कोस चार सौ तक सुभिक्षता, गगन गमन नहिं प्राणीवध।
भोजन अरु उपसर्ग नहीं है, सब विद्या ईश्वर चउमुख।।४०।।

छाया अरु टिमकार रहित हैं, नहिं नख-केश बढ़े प्रभु के।
घाति के क्षय से दश अतिशय, प्रगट हुए केवलिजिन के।।४१।।

अर्द्धमागधी भाषा होती, सब जन मैत्रीभाव सदा।
सब ॠतु के फल फूल खिलें, तरुलता सुशोभित हुए मुदा।।४२।।

पृथ्वी रत्नमयी दर्पणवत्, शोभित हुई चमकशाली।
परमानन्द करें सब जन को, मंद सुगंधित पवन चली।।४३।।

मरुतोऽपि सुरभि-गंध-व्यामिश्रा योजनांतरं भूभागं।
व्युपशमितधूलिकंटक-तृणकीटक-शर्करोपलं प्रकुर्वन्ति।।४४।।

तदनु स्तनितकुमारा, विद्युन्माला-विलास-हासविभूषाः।
प्रकिरन्ति सुरभिगंधिं, गंधोदक-वृष्टि-माज्ञया त्रिदशपतेः।।४५।।

वरपद्मरागकेसर-मतुलसुखस्पर्शहेममय-दलनिचयम्।
पादन्यासे पद्मं, सप्त पुरः पृष्ठतश्च सप्त भवंति।।४६।।

फलभारनम्रशालिब्रीह्यादि-समस्त-सस्य-धृतरोमांचा।
परिहृषितेव च भूमिस् -त्रिभुवन-नाथस्य वैभवं पश्यंती।।४७।।

शरदुदयविमल-सलिलं, सर इव गगनं विराजते विगतमलं।
जहति च दिशस्तिमिरिकां, विगतरजः प्रभृति-जिह्मताभावं सद्यः।।४८।।

एतैतेति त्वरितं, ज्योति-र्व्यंतर दिवौकसा-ममृतभुजः।
कुलिशभृदाज्ञापनया, कुर्वन्त्यन्ये समन्ततो व्याह्वानम् ।।४९।।

स्फुरदर-सहस्त्र-रुचिरं, विमलमहारत्न-किरण-निकरपरीतम्।
प्रहसितकिरण-सहस्त्र-द्युतिमंडल-मग्रगामि धर्मसुचक्रम्।।५०।।

वायुकुमार सुगंधित वायू, से योजन तक पृथ्वी को।
धूलि कंटक तृण पत्थर से, रहित स्वच्छ कर दिया अहो।।४४।।

मेघकुमार देव भी विद्युन्माला, की बहु शोभा से।
इन्द्राज्ञा से सुरभि सुगंधित, गंधोदक वृष्टी करते।।४५।।

जहाँ चरण प्रभु धरें वहाँ हैं, उत्तम स्वर्ण कमल खिलते।
आगे पीछे सात-सात, सौगंधित अतुल सुखद होते।।४६।।

शालि आदिक खेती के फल, भारों से झुकती पृथ्वी।
त्रिभुवनपति का वैभव लखकर, हर्षित हो रोमांच हुई।।४७।।

शरद ऋतु सम विमल सरोवर, सम निर्मल आकाश अहो।
सभी दिशाएँ तत्क्षण ही, तमरहित प्रकाशें सब थल को।।४८।।

आओ! आओ! देव! भवन, व्यंतर ज्योतिष वैमानिक सब।
इंद्राज्ञा से सभी तरफ से, त्वरित बुलावें सुरगण तब।।४९।।

हजार आरों से सुन्दर बहु, रत्न किरणयुत अति चमके।
रविमंडल को हंसने वाला, धर्मचक्र चलता आगे।।५०।।

इत्यष्टमंगलं च, स्वादर्शप्रभृति भक्ति-रागपरीतैः।
उपकल्प्यन्ते त्रिदशैरेतेऽपि निरुपमाति-विशेषाः।।५१।।

वैडूर्यरुचिरविटप-प्रवालमृदुपल्लवोप-शोभितशाखः।
श्रीमानशोकवृक्षो, वरमरकतपत्र-गहन-बहलच्छायः।।५२।।

मंदारकुंदकुवलय-नीलोत्पल-कमल-मालती-बकुलाद्यैः।
समदभ्रमर-परीतैर्व्या-मिश्रा पतति कुसुम-वृष्टिर्नभसः।।५३।।

कटक-कटि-सूत्रकुंडल-केयूर-प्रभृति-भूषितांगौ स्वंगौ।
यक्षौ कमल दलाक्षौ, परिनिक्षिपतः सलीलचामर-युगलम्।।५४।।

आकस्मिकमिव युगपद्दिवसकर-सहस्त्र-मपगतव्यवधानम्।
भामंडल-मविभावित-रात्रिंदिवभेद-मतितरा-माभाति।।५५।।

प्रबलपवनाभिघात-प्रक्षुभितसमुद्र-घोषमन्द्र-ध्वानम्।
दंध्वन्यते सुवीणा-वंशादि-सुवाद्यदुंदुभिस्-तालसमं।।५६।।

त्रिभुवनपतितालांछन-मिंदुत्रयतुल्य-मतुलमुक्ताजालम्।
छत्रत्रयं च सुबृहद्-वैडूर्यविक्लृप्तदंड-मधिक-मनोज्ञम्।।५७।।

ध्वनिरपि योजनमेकं, प्रजायते श्रोत्रहृदय-हारिगंभीरः।
ससलिल-जलधर-पटल-ध्वनित-मिव प्रविततान्त-राशावलयं।।५८।।

इस विध मंगल आठ कहें, दर्पण आदिक अनुपम सुविशेष।
भक्तिराग युत देवेन्द्रों से, कल्पित बहुविध महा विशेष।।५१।।

वर मरकत पत्रों से छाया, युत प्रवाल मृदु कोपलयुत।
श्रीमत् तरु अशोक बहु शाखा-युत वैडूर्य तना संयुत।।५२।।

नील कमल मंदार कुंद, अरविन्द मालती वकुलादी।
भ्रमर सहित पुष्पों की सुन्दर, कुसुमवृष्टि नभ से होती।।५३।।

कुंडल कंकण कटीसूत्र, केयूर आदि भूषण भूषित।
कमल नेत्र वाले दो यक्ष, ढोरें चंवर सुलीलायुत।।५४।।

अकस्मात् युगपत् हजार रवि, सदृश सदा व्यवधान रहित।
रात्री दिन का भेद मिटाते, भामंडल अतिशय शोभित।।५५।।

प्रबल पवन से क्षुभित जलधि की, मंद्र ध्वनि के सदृश महान।
वीणा दुंदुभि ताल बांसुरी, वाद्यों का सुरदुंदुभि स्वान।।५६।।

तीन चंद्रवत् मुक्ताफलयुत, रुचिर दंड वैडूर्य रचित।
तीन छत्र तव त्रिभुवन प्रभुता, बतलाते हैं सदा प्रगट।।५७।।

दिव्यध्वनि तव इक योजन तक, हो गंभीर कर्ण मनहर।
सजलमेघ सम ध्वनि कर खिरती, व्याप्त किया सब दिश अंतर।।५८।।

स्फुरितांशु-रत्नदीधिति-परिविच्छुरिता मरेन्द्रचापच्छायम्।
ध्रियते मृगेन्द्रवर्यैः, स्फटिकशिला-घटितसिंह-विष्टर-मतुलम्।।५९।।
यस्येह चतुस्त्रिंशत्-प्रवरगुणाः प्रातिहार्य-लक्ष्म्यश्चाष्टौ।
तस्मै नमो भगवते, त्रिभुवन-परमेश्वरार्हते गुणमहते।।६०।।

***अंचलिका* —इच्छामि भंते! णंदीसरभत्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं णंदीसरदी-वम्मि, चउदिस-विदिसासु अंजण-दधिमुह-रदिकर-पुरु-णगवरेसु जाणि जिणचेइयाणि ताणि सव्वाणि तिसुवि लोएसु भवणवासिय-वाणविंतर-जोइसिय-कप्पवासियत्ति चउविहा देवा सपरिवारा दिव्वेहि गंधेहि, दिव्वेहि पुप्फेहि, दिव्वेहि धूव्वेहि, दिव्वेहि चुण्णेहि, दिव्वेहि वासेहि, दिव्वेहि ण्हाणेहि, आसाढ-कत्तिय-फागुणमासाणं अट्ठमिमाइं काऊण जाव पुण्णिमंति णिच्चकालं अंचंति, पूजंति, वंदंति, णमंसंति णंदीसर-महाकल्लाणं करंति, अहमवि इह संतो तत्थसंताइं णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउं मज्झं।**

रत्न किरण से चित्रित सुंदर, इंद्रधनुष छवि सिंहासन।
बना अतुल स्फटिक शिला से, मृगपति धृत सुंदर आसन।।५९।।
जिनके ये चौंतिस गुण अतिशय, प्रातिहार्य लक्ष्मी हैं आठ।
उन त्रिभुवन परमेश्वर भगवन्, अर्हत प्रभु को वंदूँ आज।।६०।।

अंचलिका —

भगवन्! नंदीश्वर भक्ति का, कायोत्सर्ग किया मैंने।
उसके आलोचन करने की, इच्छा करता हूँ मुद से।।१।।
द्वीप नंदीश्वर में चउदिश-विदिशा में अंजनगिरि दधिमुख।
रतिकर पर्वत तेरह-तेरह, उन पर बावन जिन आलय।।२।।
उन सबको तीनों लोकों के, भवनवासि व्यंतर ज्योतिष।
कल्पवासि सुर चउविध ये सब, निज-निज परिवारों संयुत।।३।।
दिव्य गंध पुष्पों धूपों से, चूर्ण वास अभिषव विधि से।
मास कार्तिक अषाढ़ फाल्गुन, में अष्टमि तिथि से करके।।४।।
पूर्णमासि तक नित ही अर्चन, पूजन वंदन नमन करें।
नंदीश्वर की महाकल्याणक, पूजा कर बहु पुण्य भरें।।५।।
मैं भी यहाँ पर उन जिनवर, आलय की नित अर्चना करूँ।
पूजन वंदन करूँ भक्ति से, नमस्कार भी नित्य करूँ।।६।।
दुःखों का क्षय कर्मों का क्षय, हो मम बोधि लाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधि मरणं, मम जिन गुण संपति होवे।।७।।

त्रैलोक्य चैत्यवंदना

(गणिनी ज्ञानमती विरचित)

(आर्या स्कंध छन्द)

श्रीवर्धमानदेवं, त्रिलोकवंद्यं त्रिशुद्धितः प्रणिपत्य।
त्रिभुवनजिनभवनानि, प्रतिमाश्चापि स्तुवे त्रिविधमलहान्यै।।१।।
भवनालयेषु सप्त - कोटिद्वासप्तति-प्रमितलक्षेषु।
भवनेषु जिनप्रतिमा, नमामि भवभयविहानये विनयेन।।२।।
पंचसु मंदरशैले - ष्वशीतिनिलयेषु मारहरजिनबिम्बान्।
वन्दे त्रिकरणशुद्ध्या, संसारपरिभ्रमणपरिहारार्थम्।।३।।
कुलशैलेषु त्रिंशत्-रत्नमयगृहेषु कामविजयिजिनप्रतिमाः।
भक्त्या स्तुवे त्रिसंध्यं, कलिकलुषमलाकर्षणार्थं क्षिप्रम्।।४।।
विजयार्धगिरिषु सप्तति-शतप्रमेष्वालयेषु जिनरूपाणि।
कंदर्पदर्पहरजिन-राजानां तानि नौमि सततं प्रीत्या।।५।।
वक्षारनगाशीति - प्रमेषु सर्वेषु जिनप्रतिकृतयः।
सुरगणमुनिगणपूजित-चरणाब्जास्ताः सदा नमस्करोमि।।६।।

त्रैलोक्य चैत्यवंदना

(पद्यानुवाद–गणिनी ज्ञानमती)

महावीर प्रभू को वंदन कर, त्रिभुवन के जिनभवनों की।
करूँ वंदना भक्तिभाव से, राजित सब प्रतिमाओं की।।१।।
भवनवासि देवों में जिनगृह, सप्त करोड़ बहत्तर लाख।
भवविजयी की प्रतिमा उनमें, नमन करूँ हो दुःख विनाश।।२।।
पंचमेरु के अस्सी जिनगृह, कर्म विजयि प्रतिमा तिनमें।
पंचमगति के प्राप्त करन को, भावभक्ति से वंदूं मैं।।३।।
कुलपर्वत के तीस जिनालय, रत्नमयी प्रतिमा भवहर।
भवभय दुःखहरन के हेतू, करूँ वंदना मन वच कर।।४।।
रजताचल के इक सौ सत्तर, मदनविजयि जिनराजसदन।
तिनमें प्रतिमा नमन करूँ मैं, शतेन्द्र नितप्रति करें नमन।।५।।
वक्षारगिरी पर अस्सी जिन–भवनों में प्रतिमा राज रहीं।
करूँ वंदना भक्तिभाव से, सुरनर मुनिगण पूज्य कहीं।।६।।

---

१. जिनस्तोत्र संग्रह–पृ. १८७ से १९७ तक

गजदंताचलविंशति-जिनगेहेष्वप्रमेयरुचिजिनकृतयः।
मीनध्वजगजमदहर - जिनेश्वराणां भवंतु मे भवशान्त्यै।।७।।

जम्बूशाल्मलिभूरुह-शाखासु दशसु मणिमयजिननिलयेषु।
कंतुविजयिजिनप्रतिमाः, सुरनरवंद्या अवंतु मां भवक्लेशात्।।८।।

इष्वाकारनगेषु च, चतुर्षु सदनेषु विश्वद्रष्टुश्छायाः।
त्रैलोक्येश्वरपूज्या, नमामि नित्यं हरंतु मे भवदोषान्।।९।।

मनुजोत्तरशैलेऽपि च, चतुर्दिक्षु जिनवरालया राजंते।
तेषु कर्मजयिकृतयो, दंतिरिपुपीठस्थिताश्च ताः प्रवन्दे।।१०।।

नंदीश्वरवरद्वीपे, द्वापंचाशज्जिनालयाः शोभन्ते।
नानासुरत्नमणिमय-कनकमयास्तान् नमामि शिरसा सततम्।।११।।

तत्र चतुर्दिक्ष्वपि चतु-रंजनगिरिषु निरञ्जनकृतयो भांति।
कर्माञ्जनच्युतसौम्या, नमोऽस्तु ताभ्यो दुरिताञ्जननाशाय।।१२।।

षोडशदधिमुखगिरिषु, षोडशसदनेषु संति सुरनुतप्रतिमाः।
मणिकनकादिमयास्ताः, प्रणौमि मोदाद् भवाग्निशान्त्यै शिरसा।।१३।।

गजदंतगिरी के बीस भवन में, रत्नमयी हैं सिंहासन।
उन पर मारदंति मदहर्ता, जिनबिम्बों को करूँ नमन।।७।।

जंबू शाल्मलि दश वृक्षों की, शाखाओं पर दश मंदिर।
कंतुविजयि जिन की प्रतिमा को, वंदूं सदा भाव शुचि कर।।८।।

इष्वाकार चार पर्वत पर, चार जिनालय में प्रतिमा।
हाथ जोड़कर नमूं सदा मैं, जिनकी अतुल अकथ महिमा।।९।।

मनुजोत्तर नग पर चउदिश में, चार जिनसदन शोभ रहें।
उन पर दंतिवैरि विष्टर पर, राजित कृति हम नमन करें।।१०।।

नंदीश्वरवर द्वीप आठवाँ, बावन श्रीजिनभवन वहाँ।
मणिमय कनक रजतमय, मनहर प्रतिमा वंदूं शीश नमां।।११।।

वहीं चतुर्दिक अंजनगिरि में, कर्मांजनच्युत श्री जिनगेह।
तिनमें नित्य निरंजन प्रतिमा, वंदूं दुरितांजन हर हेत।।१२।।

दधिमुख पर्वत सोलह तिन पर, सुरनुत चैत्यालय शोभें।
मोहविजयि की वहाँ मूर्तियाँ, वंदूं मैं सुरगण पूजें।।१३।।

रतिकरनगद्वात्रिंशत् - तेषु स्मरहरगृहेषु भान्त्यकृतेषु।
रतिपतिविजयिजिनार्चा-स्ताभ्यो भक्त्या नमोऽस्तु कल्मषहान्यै।।१४।।
कुंडलाद्रौ चतुर्दिक् - जिनसद्मसु मोहतिमिरघनमार्तंडान्।
मनसिजमदहरजिनवर - बिंबान् बद्धांजलिश्च नौमि सदाहं।।१५।।
रुचकवरगिरौ चतुर्दिक्-चतुरनंगजिद्गृहाणि रत्नमयानि।
तेषु विधुतकलिलानां, रूपाणि जिनेशिनां सदा वंदेऽहं।।१६।।
मध्यमलोके भान्ति, स्मरजयिचैत्यालया अकृतका रम्याः।
संख्याष्टापंचाशच्चतुःशतमता भवंतु मेऽमितसिद्ध्यै।।१७।।
व्यंतरनिकायमध्ये, व्यतीतसंख्या जिनेन्द्रनिलयास्तेषु।
झषकेतुविजयिजिनपति-प्रतिमा अनुपमसुखप्रदाः प्रणमामि।।१८।।
ज्योतिर्लोकेऽगणिता, भासंते भासमानसुरनुतनिलयाः।
तेषु जिनसूर्यबिम्बान्, रविशशिशोभातिशायिनः संस्तौमि।।१९।।
ऊर्ध्वलोकेषु भान्ति, जिनसदनानि च सुरेन्द्रभक्तिनुतानि।
तेषु भवजयिच्छायाः, कंठीरवपीठास्थिताश्च ता नमामि।।२०।।
सौधर्मे द्वात्रिंशल्लक्षप्रमितेषु वीतरागभवनेषु।
विजितकषायजिनानां, प्रतिबिंबानि प्रणौमि चित्तविशुद्ध्यै।।२१।।

रतिकराद्रि बत्तीस जहाँ पर, जिनभवनों में जिनप्रतिमा।
मोहतिमिर हर भास्कर जिनकी, वंदन करूँ महा महिमा।।१४।।
कुंडलगिरि के चतुर्दिशा में, चउ जिनगृह शोभा पाते।
कालविजयि के जिनबिम्बों को, वंदन कर भव दुख जाते।।१५।।
रुचकगिरी के चतुर्दिक चतु-अनंगजयि जिनमंदिर हैं।
विधुतकर्म श्रीजिनबिम्बों को, वंदन भावभक्ति कर है।।१६।।
मध्यलोक के चार शतक, अट्ठावन अकृत्रिम मन्दिर।
स्मरविजयि जिनकी आकृतियाँ, वंदूं मैं मस्तक नत कर।।१७।।
व्यंतरवासी देवों में व्यतीत, संख्या जिनराज भवन।
मीनपताकाविजयी जिनकी, प्रतिमा अनुपम करूँ नमन।।१८।।
ज्योतिष सुर के अगणित जिनगृह, में चैत्यालय भास रहे।
रवि शशि दीप्ति विजित तेजोमय, जिनप्रतिमा की स्तुति कहें।।१९।।
ऊर्ध्वलोक में शोभ रहे हैं, इन्द्र भक्तियुत चैत्यसदन।
सिंहपीठ पर संस्थित भवविजयी प्रतिमा को करूँ नमन।।२०।।
ऊर्ध्वलोक के प्रथम स्वर्ग में, बत्तिस लक्ष भवन मनहर।
जितकषायरिपु जिनवर प्रतिमा, वंदूं मैं भव पातक हर।।२१।।

ईशानस्वर्गेऽष्टा - विंशतिलक्षप्रमितमदनरिपुसद्मसु।
त्रैलोक्यभव्यपूजित - चरणसरोरुहजिनेश्वरार्चाः स्तौमि।।२२।।

सानत्कुमारस्वर्गे, द्वादशलक्षप्रमेषु जिनसदनेषु।
कालविजयिनां प्रतिमाः सहस्रनाम्ना स्तुताश्च ताः प्रणमामि।।२३।।

माहेन्द्रस्वर्गेऽष्टसु, लक्षेषु जिनालयेषु जिनप्रतिमाभ्यः।
नित्यं नमोऽस्तु शाश्वत्मूर्तिभ्यो मे दिशंतु शाश्वतसौख्यं।।२४।।

ब्रह्मयुगले विजितभव - जिननिलयेषु प्रतितचतुर्लक्षेषु।
परब्रह्मणां प्रतिमा, भवन्तु मे ब्रह्मसौख्यसंप्राप्त्यर्थम्।।२५।।

लांतवयुगे पंचाशत् - सहस्रनिलयेषु दंतिरिपुपीठेषु।
कालविजयिजिनकृतयस्तास्त्रेधा संस्तवीमि भक्त्या सततम्।।२६।।

शुक्रयुगे भवनेषु च, चत्वारिंशत्सहस्रसंख्यमितेषु।
राजन्ते कन्तुजयि-च्छायास्ताभ्यो नमो भवान्मां पांतु।।२७।।

शतारयुगले सद्मसु, सहस्रषट्स्वपि मोहविजयिसम्राजां।
दिनकरकरप्रभाधिक-प्रतिमानां वंदनां सदा कुर्वेऽहम्।।२८।।

ईशान स्वर्ग में अट्ठाइस-लक्ष प्रमित जिनसदनों में।
त्रिभुवन पूजित जिनप्रतिमा के, शत शत वंदन चरणों में।।२२।।

सानत्कुमार दिव में जिनगृह, बारह लक्ष प्रमाण कहे।
यम के अंतक जिनबिम्बों को, वंदूं मैं भवपाप बहे।।२३।।

माहेन्द्र स्वर्ग में आठ लक्ष, जिनभवनों में जिनप्रतिमायें।
भक्तिभाव से नमस्कार कर, हम भी शाश्वत सुख पायें।।२४।।

ब्रह्मयुगल स्वर्गों में जिनगृह, चतुर्लक्ष महिमा अनुपम।
परमब्रह्म जिन प्रतिमा तिनमें, ब्रह्मसौख्य के लिये नमन।।२५।।

लांतव युगल में सहस पचास, जिनालयों में शोभ रही।
कालविजयि जिनवर की प्रतिमा, वंदूं सुर मन मोह रहीं।।२६।।

शुक्र युगल स्वर्गों में चालिस-हजार जिनगृह शोभ रहे।
उनमें कंतुविजयि जिनबिम्बों-को वंदत शिवसौख्य लहे।।२७।।

शतार युग स्वर्गों में श्रीजिन, भवन छह सहस तिनमें हैं।
दिनकर किरण प्रभाधिक सुन्दर, जिनबिंबों को वंदूं मैं।।२८।।

आनतप्राणतयुगले, तथारणाच्युतयुगे च सप्तशतानि।
त्रिभुवननुततीर्थेशां, गृहाणि मूर्तीश्च नौमि शिरसा सततम्।।२९।।

एकादशोत्तरशता - न्यधोग्रैवेयकेषु च त्रिषु भवनानि।
तेषुमदनमदमर्दक - प्रतिकृतयस्ता भजामि भवभयशान्त्यै।।३०।।

सप्तोत्तरशतनिलया, मध्यमग्रैवेयकेषु त्रिषु भासंते।
तत्र प्रतिच्छंदानि, तीर्थकराणामवन्तु मां भवविपिनात्।।३१।।

एकनवति जिनभवना - न्यूर्ध्वग्रैवेयकत्रयेषु राजंते।
चतुर्गतिभ्रमनिर्गत जिनवर प्रतिमा नमोऽस्तु ताभ्यः शिरसा।।३२।।

नवानुदिशभवनेषु च, घनघातिविघातकजिनसद्मस्वपि नवसु।
त्रिभुवनजनहृदयाम्बुज-भास्करमूर्तीस्स्तुवे त्रिसंध्यं भक्त्या।।३३।।

पंचस्वनुत्तरेष्वपि, पंचपरावर्तनात्प्रमुक्तजिनानां।
पंचालया विभांति, पंचकल्याणकपति-जिनतीर्थभृतां च।।३४।।

तत्र जिनप्रतिमास्ता, भवपंचविहानये स्तवीमि सुभक्त्या।
पंचांगेन नमामि, पंचमगतिलब्धये त्वरं मे संतु।।३५।।

आनत प्राणत आरण अच्युत, वहाँ सातशत भवन कहें।
तिनमें त्रिभुवन नुत तीर्थंकर की प्रतिकृति हम नमन करें।।२९।।

तीन अधोग्रैवेयक में इक-सौ ग्यारह जिनभवन नमूं।
तहाँ मदनमदमर्दन जिन-प्रतिमा को वंदूं पाप वमूं।।३०।।

मध्यम ग्रैवेयक तीनों में, इक सौ सात जिनालय हैं।
उनमें तीर्थकरों की प्रतिमा, भवभय हरिये वंदूं मैं।।३१।।

ऊर्ध्व ग्रैवेयक त्रय में जिन-मन्दिर इक्यानवे प्रमाण।
चतुर्गति दुःख नाश हेतु मैं, जिनबिंबों को करूँ प्रणाम।।३२।।

नवअनुदिश में नव मंदिर घन, घाति अघाति विघातक के।
त्रिभुवन जन हृदयाम्बुज भास्कर, प्रतिमा वंदूँ रुचि धरके।।३३।।

पंच अनुत्तर में पण जिनगृह, पंचकल्याणकपति जिनके।
पंच परावर्तन से विरहित, तीर्थंकर जिनवर प्रभु के।।३४।।

उनमें जिनवर प्रतिमा राजें, मैं उनको पंचांग नमूँ।
पाँच परावृत से झट छूटूं, पंचमगति को प्राप्त करूँ।।

आठ कोटि छप्पन सुलक्ष, सत्तानवे हजार चार शतक।
इक्यासी जिनगृह अकृत्रिम, मन वच तन से नमूं सतत।।३५।।

अष्टकोटिषट्पंचा - शल्लक्षसप्तनवतिसहस्त्रयुतानि च।
चतुःशतैकाशीति - मिताकृत्रिमाणि चैत्यसदनानि स्युः।।३६।।

अभिषेकप्रेक्षागृह - क्रीडनसंगीतनाट्यलोकगृहयुक्ताः।
रत्नमयवेदिमंडप - मंगलघटधूपघटसुमणिमालाद्यैः।।३७।।

ध्वजतोरणघंटास्वन- भृंगारप्रभृतिमंगलाष्टकैर्भान्ति।
प्राकारत्रयमानस्तंभस्तूपैर्वनानि परितश्च युताः।।३८।।

त्रिशतोत्तुंगचतुःशतदीर्घद्विशतविस्तृताश्च क्रोशैः प्रमिताः।
भव्यात्मकलिलविलया, जिनालयाः स्युर्विचित्रशोभानिलयाः।।३९।।

उत्तमप्रमाणमेतत्, तस्यार्धं मध्यमजिनपतिनिलयानाम्।
जघन्यनिलये बहवो, भेदाः सन्त्यागमे यथायोग्यं च।।४०।।

तत्र धनुःपंचशतै-स्तुंगाः प्रतिमा अकृत्रिमा उत्कृष्टे-।
ष्वपरेषु यथायोग्यं, प्रतिगृहमष्टोत्तरशतमिताः प्रतिमाश्च।।४१।।

गर्भगृहेषु तथा जिन-पार्श्वे चमररिरुहहस्तयक्षमूर्तयः।
श्रीदेवीश्रुतदेवी - सर्वाण्हसनत्कुमारकृतयश्च स्युः।।४२।।

अभिषेक प्रेक्षागृह क्रीडन, संगीत नाटक लोकगृह।
रत्नखचित वेदी मंडपमणि, मंगलघट और धूपसुघट।।३६।।

मणिमाला ध्वज तोरण शोभित, घंटा किंकणि ध्वनीसहित।
शालत्रय मानस्तंभ-स्तूपादि उपवनों से वेष्टित।।३७।।

इत्यादि विविध अनुपम वैभव-युत चैत्यालय शोभा पाते।
भव्य जनों का पाप दूर कर, विचित्र महिमा बतलाते।।३८।।

क्रोश चार सौ लंबे दो सौ, चौड़े ऊँचे तीन शतक।
जिनगृह इनके अर्ध-मध्य का, जघन्य मिति के भेद विविध।।३९।।

प्रति जिनगृह में इक सौ अठ प्रम, हस्त दो सहस ऊँचाई।
मध्यम लघु जिनगृह में प्रतिमा, यथायोग्य परिमाण कहीं।।४०।।

गर्भालय में जिनवर सन्निध, यक्ष मूर्तियाँ चामरयुत।
श्रीदेवी श्रुतदेवी सानत्कुमार, अरु सर्वाण्ह यक्ष।।४१।।

अष्टमंगल अठ प्रातिहार्ययुत, गंधकुटी में शोभित हैं।
कर्मजयी जिनप्रतिमा वंदूं, सुरनर मुनिगण वंदित हैं।।४२।।

अष्टप्रातिहार्यशोभित-गंधकुटीगतसिंहविष्टरे प्रतिमाः।
भ्राजन्ते तत्र सदा, ता भवाब्धेस्तितीर्षया प्रणमामि।।४३।।

नवशतपंचविंशति-कोट्यो लक्षास्त्रयोत्तरपंचाशच्च।
सप्तविंशतिसहस्रा-ण्यष्टचत्वारिंशद-धिकनवशतानि च।।४४।।

अकृतानि च जिनरूपा-ण्येतावंत्येव गण्यतामुपयांति।
ज्योतिर्व्यंतरधामसु, संख्यातीतानि सन्ति चान्यत्रापि।।४५।।

मानस्तंभेषु तथा, चैत्यसिद्धार्थतरुषु च कांचनाद्रिषु च।
विद्यंते यत्रापि च, प्रतिमाः सर्वाश्च नौमि शिरसा मोदात्।।४६।।

गंगाप्रपातकुंडे, श्रीदेव्यः सौधतले जटामुकुटयुतां।
जिनमूर्तिं वंदे यां, स्नपयंतीव पतति हिमगिरेर्गंगा।।४७।।

जिनसमवसृतौ च तथा, मानस्तंभेषु चैत्यसिद्धार्थतरुषु।
प्रतिमाश्च गंधकुट्यां, साक्षाद् देवाधिदेव-महमभिवंदे।।४८।।

जंबूधातकिद्वीपे, चार्धपुष्करे कृता मनुजराजाद्यैः।
सुरनरवंदितनिलयाः, स्वजन्ममरणोपशांतये वंदेऽहं।।४९।।

नव सौ पचीस कोटि त्रेपन, लाख सताइस सहस प्रमाण।
नव सौ अड़तालिस जिनप्रतिमा, शिवसुख हेतू करूँ प्रणाम।।४३।।

अकृत्रिम जिनप्रतिमा इतनी, ही संख्या में आती हैं।
ज्योतिर्व्यंतर भवनों में वे, संख्यातीत कहाती हैं।।४४।।

मानस्तंभों में तथा चैत्य, सिद्धार्थवृक्ष कांचनगिरि पर।
और जहाँ भी बिंब राजते, नमूं सदा मैं अंजलि कर।।४६।।

गंगा प्रपात कुन्ड में गंगादेवी, के गृह की छत पर।
जटाजूट के मुकुट सहित जिन-प्रतिमा वंदूं पातक हर।।४७।।

हिमगिरि से पड़ती गंगा वहाँ, करती हुई अभिषेक महा।
इसीलिये लौकिकजन ने उस, गंगा को भी पूज्य कहा।।४७।।

जिनवर समवसरण में मानस्तंभ चैत्य - सिद्धार्थतरू।
इनमें प्रतिमा नमूं गंधकुटि में, साक्षात् प्रभु दर्श करूँ।।४८।।

जम्बूधातकि पुष्करार्ध, ढाई द्वीपों में जिनमंदिर।
मनुजचक्रवर्त्यादिक निर्मापित, कृत्रिम वंदूं अघहर।।४९।।

भरतैरावतदशसु च, षष्ठ्युत्तरशतविदेहक्षेत्रेष्वपि।
सप्ततिशततीर्थंकरान्, द्वादशगणपूजितान् प्रवंदे मोदात्।।५०।।

भूतभविष्यत्संप्रति-त्रिकालजातान् त्रिलोकतिलकश्रेष्ठान्।
त्रिंशच्चतुर्विंशतीन्, तीर्थभृतः प्रणिदधे मनसि सिद्ध्यर्थम्।।५१।।

सीमंधरादिविंशति - तीर्थकरेभ्यः सततविहरमाणेभ्यः।
भव्याम्बुजसूर्येभ्यो, नमोऽस्तु मह्यं भवे भवे शं दिश्युः।।५२।।

अनुपमगर्भावतरण-जन्मोत्सवनुत-सुरर्षिपरिनिष्क्रमण-।
कैवल्यबोधनिर्वाण-कल्याणानि स्तुवे भवाब्धितितीर्षुः।।५३।।

कैलासे चंपायां, पावाया-मूर्जयंतगिरिशिखरे च।
सम्मेदशैलशिखरे, मुक्तिगतान् तीर्थकरवरान् वंदेऽहम्।।५४।।

यत्र गणभृतोऽन्येपि च, बहवो मुनयः सुसिद्धपदवीं जग्मुः।
निर्वाणभूमिसर्वाः-ता नौमि सदा ममापि मनः पुनंतु।।५५।।

पंचकल्याणपूता, भुवः प्रसिद्धा जिनेशिनामिह लोके।
तास्सर्वाः संस्तौमि च, पंचपरावर्तनात् प्रमोक्षो भूयात्।।५६।।

दश भरतैरावत विदेह में, इक सौ साठ नगरियों के।
इक सौ सत्तर धर्मतीर्थंकर, वंदूं त्रिकरण शुचि करके।।५०।।

भूत भविष्यत् वर्तमान त्रैकालिक, त्रिभुवन तिलक महान्।
चौबीसी तीसों वंदूं मैं, पाप कर्म की होवे हान।।५१।।

सीमंधर आदिक तीर्थंकर, विहरमान बीसों संतत।
भव्यकमल बोधन दिनकर को, वंदूं मैं क्षय हो पातक।।५२।।

अनुपम गर्भावतरण-जन्मोत्सव, सुरषिनुत निष्क्रमण।
कैवल्यज्ञान निर्वाण पंच-कल्याणक का नित करूँ नमन।।५३।।

कैलाशगिरी चंपा पावापुरी, ऊर्जयंत सम्मेदाचल।
सिद्धक्षेत्र वंदन से होऊँ, कर्मनाश कर पूर्ण विमल।।५४।।

गणधर मुनिगण अमित जहाँ पर, मुक्तिधाम को प्राप्त हुये।
नमूं सभी निर्वाणभूमियाँ, नितप्रति मन शुद्धि के लिये।।५५।।

पंचकल्याणक से पवित्र सब, क्षेत्र वंदना करूँ सदा।
पंचमगति की शीघ्र प्राप्ति हो, भव दुःख फिर नहिं पाऊँ कदा।।५६।।

अतिशयक्षेत्राणि तथा, लोके ख्यातिमवापु-रतिशयतगुणतः।
सातिशयपुण्यहेतो - र्नमाम्यजस्त्रं मनः समाधिर्मेऽस्तु।।५७।।
गोम्मटदेवं वंदे, यस्य प्रसादादकृत्रिमा जिनप्रतिमाः।
संस्तौमि मुदा भक्त्या, तस्मिन् मे भवभवे स्थिरा भक्तिः स्यात्।।५८।।
त्रैलोक्यमूर्ध्नि पंच- चत्वारिंशत्सुलक्षयोजनप्रमितौ।
सिद्धशिलायां संस्थित-भूतभवद्भाविसर्वसिद्धांस्तौमि।।५९।।
मृत्युंजयिनां प्रतिमाः, कृत्रिमास्तथा च संति यावन्त्योऽपि च।
अकृत्रिमा अप्रतिमा, जगत्त्रये नंनमीमि तास्ता मुक्त्यै।।६०।।
अर्हत्सिद्धाचार्यो - पाध्यायान् नौमि सर्वसाधूंश्च।
तेषां प्रतिबिंबानि च, संस्तौमि पुनः पुनः शिवसुखसिद्ध्यै।।६१।।
कलिप्रभावदलनपटु - चारित्र - चक्रधर - शांतिसागराचार्य।
तत्पट्टे वीराब्धिं, परंपरागतसूरिमुनींश्च नमामि।।६२।।
इत्थं भुवनत्रयजिन-चैत्य-वंदनां पठति सदा यो भक्त्या।
सज् ''ज्ञानमति' भक्तिः, तस्मै दिशति त्रिभुवनपतिसुखमचिरात्।।६३।।
(इति त्रैलोक्यचैत्यवंदना)

अतिशय क्षेत्र सभी मैं वंदूं, अतिशय गुण से जो हैं सिद्ध।
सातिशय पुण्य हेतु भविजन को, मुनिगण को हो ध्यान सु सिद्ध।।५७।।
गोम्मटदेव सदा वंदूं, जिनके दर्शन से भक्ति जगी।
अकृत्रिम जिनबिंब दर्श की, तथा तीव्र रुचि स्तवन की।।५८।।
त्रिलोक मस्तक पर पैंतालिस, लक्ष सुयोजन सिद्धशिला।
भूतभवद्भावी अनंत सब, सिद्ध नमूं मन कमल खिला।।५९।।
मृत्युंजयि की प्रतिमा कृत्रिम, तथा अकृत्रिम अप्रतिम हैं।
भुवनत्रय में जितनी भी, उनको मन शिरसा वंदन है।।६०।।
अर्हत्सिद्ध आचार्य उपाध्याय, और अखिल साधू वंदूं।
उनके प्रतिबिम्बों को भी मैं, नमूं कर्मपर्वत खंडूं।।६१।
कलिप्रभाव दलनपटु श्री-चारित्र चक्रवर्ती ऋषिवर।
शांतिसिंधु उन पट्ट शिष्य श्री-वीरसिंधु आचार्य प्रवर।।
परंपरागत आचार्यों को, मुनिगण को भी नमूं त्रिबार।
सम्यग् ''ज्ञानमती'' भक्ती से, पाऊँ शाश्वत सौख्य अपार।।६२।।
यह त्रिलोक जिन चैत्यवंदना, रुचि से जो नित पढ़ते हैं।
सो ''सज्ज्ञानमती'' भक्ती से, त्रिभुवनपति सुख लभते हैं।।६३।।
(इति त्रैलोक्यचैत्यवंदना)

मंगलाचरण

जिणसिद्धाणं पडिमा अकिट्टिमा किट्टिमा तु अदिसोहा।
रयणमया हेममया रूप्पमया ताणि वंदामि।।१।।
सिद्धांस्त्रैलोक्यमूर्धस्थां-स्त्रैकालिकानपि स्तुमः।
अनन्तानन्तमानांस्तान्, सर्वान् रत्नत्रयाप्तये।।२।।
त्रैलोक्येऽकृतचैत्यानि, ह्यकृत्रिमा जिनालयाः।
असंख्याताश्च तानि तान्, वन्दे त्रेधा त्रिशुद्धये।।३।।
त्रैकालिककृतान् वन्दे, जिनचैत्यजिनालयान्।
अनन्तानन्तप्रोक्तांस्ता-ननन्तगुणलब्धये।।४।।
तीर्थकृच्चक्रभृत्काम-देवत्रिपदधारिणः।
शांतिकुंथ्वरतीर्थेशा भवद्भ्योऽनन्तशो नमः।।५।।

मंगलाचरण

जिन—अर्हंतों की और सिद्धों की प्रतिमायें अतिसुंदर अकृत्रिम और कृत्रिम हैं। ये रत्नमयी हैं, सुवर्णमयी हैं और चाँदी की बनी हैं अथवा धातु—पीतल, पाषाण आदि की हैं उन सभी की मैं वन्दना करता हूँ।।१।। तीन लोक के मस्तक पर स्थित—विराजमान, भूत, वर्तमान और भविष्यत् काल में भी हुये हैं, होते हैं और होवेंगे ऐसे अनन्तानंत प्रमाण सभी सिद्धों की हम रत्नत्रय की प्राप्ति के लिये स्तुति करते हैं—''नमस्कार करते हैं।।२।। तीनों लोकों में जितनी भी अकृत्रिम जिनप्रतिमायें हैं और जितने भी अकृत्रिम जिनमंदिर हैं, ये असंख्यातों हैं उन जिनप्रतिमाओं को और जिनालयों को मन, वचन, काय की शुद्धि के लिये हम मन, वचन, काय से वंदन करते हैं।।३।। भूत, वर्तमान और भविष्यत् ऐसे तीनों कालों में बनवाये गये ऐसे त्रैकालिक जिनबिंब एवं जिनमंदिर अनन्तानंत होते हैं उन सबकी हम अनंतगुणों की प्राप्ति के लिये वंदना करते हैं।।४।। तीर्थंकर, चक्रवर्ती और कामदेव इन तीन-तीन पद के धारक ऐसे श्री शांतिनाथ, श्री कुंथुनाथ और श्री अरनाथ ये तीन तीर्थंकर हुये हैं इन तीनों भगवंतों को हमारा अनंत-अनंत बार नमस्कार होवे।।५।।

तीन लोक रचना

तीनलोक—तीन लोक की ऊँचाई १४ राजू प्रमाण है एवं मोटाई सर्वत्र ७ राजू है।

तीन लोक के जड़ भाग से लोक की ऊँचाई का प्रमाण—अधोलोक की ऊँचाई ७ राजू है। इसमें ७ भूमियाँ हैं।

ऊर्ध्वलोक की ऊँचाई ७ राजू है। इसमें प्रथम स्वर्ग से लेकर सिद्धशिला पर्यंत व्यवस्था है।

अधोलोक के तल भाग में लोक की चौड़ाई ७ राजू है। यह चौड़ाई घटते-घटते मध्यलोक में १ राजू रह गई है। मध्यलोक से ऊपर बढ़ते-बढ़ते ब्रह्मलोक (५वें स्वर्ग) तक ५ राजू हो गई है पुनः ब्रह्मस्वर्ग से ऊपर घटते-

घटते सिद्धशिला तक चौड़ाई १ राजू रह गई। इस प्रकार यह लोक पैर फैलाकर खड़े हुए एवं कमर पर हाथ रखे हुए पुरुष के समान बन गया है।

त्रसनाली— तीनों लोकों के बीचोंबीच में १ राजू चौड़ी-मोटी तथा १४ राजू ऊँची-लम्बी त्रसनाली है।

इस त्रसनाली में ही त्रसजीव—दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीव पाये जाते हैं। शेष सम्पूर्ण लोक में स्थावर—एकेन्द्रिय जीव ही रहते हैं।

अधोलोक— अधोलोक में ७ पृथ्वी हैं, उनके नाम—रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तम:प्रभा और महातम:प्रभा। रत्नप्रभा पृथ्वी के तीन भाग हैं—खरभाग, पंकभाग और अब्बहुलभाग। इस अब्बहुलभाग में प्रथम नरक हैं।

अधोलोक में सबसे नीचे निगोद स्थान है। वहाँ यह अनादिकाल से एकेन्द्रिय अवस्था में है। वहाँ एक श्वांस में अठारह बार जन्म-मरण होता है। इतनी तुच्छ—अल्प आयु है। हम और आप सभी वहीं से आकर त्रस पर्याय को प्राप्त कर मनुष्य हुए हैं।

पुन: सातवाँ नरक है। ऐसे क्रम से छठा, पाँचवाँ, चौथा, तीसरा, दूसरा एवं पहला नरक है। इन नरकों में नारकी जीव प्रतिक्षण दु:ख भोग रहे हैं। आरे से चीरे जाना, कढ़ाई में तले जाना, तिल-तिल बराबर टुकड़े किये जाना आदि कष्ट आपस में एक-दूसरे को देते रहते हैं। जो यहाँ हिंसा, झूठ, चोरी, व्यभिचार, शिकार, परस्त्रीसेवन आदि पाप करते हैं वे नरकों में जाकर दु:ख भोगते हैं। इन नारकियों के दु:खों को देखकर आप पाप न करने की प्रतिज्ञा करें।

अधोलोक में प्रथम पृथ्वी के तीन भाग में से खरभाग में भवनवासी देवों के भवन हैं। भवनवासी देवों के १० भेद nQ—असुरकुमार आदि। इनके क्रमश: ६४ लाख आदि भवन हैं। प्रत्येक भवनों में विशाल जिनमंदिर हैं। इन प्रत्येक भवनवासी देवों में इंद्र, सामानिक, त्रायस्त्रिंश, पारिषद, आत्मरक्ष, लोकपाल, अनीक, प्रकीर्णक,आभियोग्य और किल्विषक ऐसे दश भेद माने हैं।

भवनवासी के १० भेद एवं उनके विमानों की संख्या

भवनवासी के १० भेद	**विमान संख्या**	**भवनवासी के १० भेद**	**विमान संख्या**
असुरकुमार के	६४ लाख	स्तनितकुमार के	७६लाख
नागकुमार के	८४ लाख	विद्युत्कुमार के	७६ लाख
सुपर्णकुमार के	७२ लाख	दिक्कुमार के	७६ लाख
द्वीपकुमार के	७६ लाख	अग्निकुमार के	७६ लाख
उदधिकुमार के	७६ लाख	वायुकुमार के	९६ लाख

इन भवनवासी के १० भेदों में एक-एक में इन्द्र के भवन में ओलगशाला के आगे एक-एक चैत्यवृक्ष है। असुरकुमारेन्द्र का चैत्यवृक्ष पीपल है। इसकी कटनी पर जिनप्रतिमाएँ हैं। ऐसे ही नागकुमारेन्द्र का सप्तपर्ण, सुपर्णकुमार का शाल्मलि, द्वीपकुमार का जामुन, उदधिकुमार का वेंतस, स्तनितकुमार का कदंब, विद्युत्कुमार का प्रियंगु, दिक्कुमार का शिरीष, अग्निकुमार का पलाश और वायुकुमार का चिरौंजी चैत्यवृक्ष है।

कुल मिलाकर भवनवासी देवों के भवन ७ करोड़ ७२ लाख हैं। इन प्रत्येक भवनों में १-१ जिनमंदिर हैं। अत: भवनवासी के ७,७२,००,००० जिनमंदिर हैं। इनके चैत्यवृक्षों में भी जिनप्रतिमाएँ विराजमान हैं।

यहाँ अधोलोक के खरभाग में असुरकुमार को छोड़कर शेष ९ प्रकार के देवों के ७ करोड़ ८ लाख भवन हैं। द्वितीय पंकभाग में असुरकुमार के ६४ लाख भवन हैं।

व्यंतर देवों के भेद व भवन आदि—व्यंतर देव के किन्नर, किंपुरुष आदि ८ भेद हैं। प्रत्येक के असंख्यातों भवन हैं। इनके भवन, भवनपुर और आवास ऐसे तीन प्रकार के स्थान माने गये हैं। अधोलोक के खरभाग में राक्षस को छोड़कर सात प्रकार के व्यंतर देवों के भवन हैं तथा पंकभाग में राक्षस जाति के व्यंतर देवों के भवन हैं।

मध्यलोक में द्वीप, समुद्रों में इनके भवनपुर हैं एवं पर्वत, सरोवर, वृक्ष आदि के ऊपर इनके आवास माने गये हैं। ये सभी व्यंतरदेव असंख्यातों हैं।

व्यंतर देवों के ८ भेद के नाम—१. किन्नर देव, २. किंपुरुष देव, ३. महोरग देव, ४. गंधर्व देव, ५. यक्ष देव, ६. राक्षस देव, ७. भूतदेव, ८. पिशाच देव।

इन व्यंतर देवों के इंद्रों के महल के आगे चैत्यवृक्ष माने गये हैं। किन्नरेंद्र का चैत्यवृक्ष अशोक, किंपुरुषेन्द्र का चंपक, महोरगेंद्र का नागद्रुम, गंधर्वेन्द्र का तुंबरु, यक्षेंद्र का वट, राक्षसेंद्र का कंटक, भूतेन्द्र का तुलसी एवं पिशाचेन्द्र का कदंब चैत्यवृक्ष है। इन सभी चैत्यवृक्षों में जिनप्रतिमाएँ विराजमान हैं।

मध्यलोक—एक राजू प्रमाण विस्तृत एवं एक लाख योजन ऊँचा मध्यलोक है। इसमें असंख्यात द्वीप-समुद्र हैं। प्रथम द्वीप का नाम जंबूद्वीप है। यह एक लाख योजन व्यास वाला, गोल थाली के समान है। इसको चारों तरफ से घेरकर लवणसमुद्र, उसको चारों तरफ से घेरकर धातकीखण्ड द्वीप, इसे चारों तरफ से घेरकर कालोदधि समुद्र, इसे घेरकर पुष्करद्वीप आदि द्वीप-समुद्र हैं।

तेरहद्वीप समुद्रों के नाम

जंबूद्वीप	—	लवण समुद्र
धातकीखण्ड द्वीप	—	कालोदधि समुद्र
पुष्करवर द्वीप	—	पुष्करवर समुद्र
वारुणीवरद्वीप	—	वारुणीवर समुद्र
क्षीरवर द्वीप	—	क्षीरवर समुद्र
घृतवर द्वीप	—	घृतवर समुद्र
क्षौद्रवर द्वीप	—	क्षौद्रवर समुद्र
नंदीश्वर द्वीप	—	नंदीश्वर समुद्र
अरुणवर द्वीप	—	अरुणवर समुद्र
अरुणाभास द्वीप	—	अरुणाभास समुद्र
कुण्डलवर द्वीप	—	कुण्डलवर समुद्र
शंखवर द्वीप	—	शंखवर समुद्र
रुचकवर द्वीप	—	रुचकवर समुद्र

ऐसे असंख्यातों द्वीप-समुद्रों के बाद अंतिम स्वयंभूरमण द्वीप एवं स्वयंभूरमण समुद्र है। इस मध्यलोक में ढाईद्वीप तक कर्मभूमि है। यहीं तक मनुष्य हैं। आगे सभी द्वीपों में तिर्यंच-युगल रहते हैं। अंतिम स्वयंभूरमण द्वीप में बीचों-बीच में स्वयंप्रभ पर्वत है। उसके इधर तक तिर्यंचों की भोगभूमि है पुनः आधे स्वयंभूरमणद्वीप में और पूरे स्वयंभूरमण समुद्र में कर्मभूमियाँ तिर्यंच हैं। इनमें से कोई-कोई तिर्यंच जातिस्मरण अथवा देवों के संबोधन आदि से सम्यक्त्व तथा पाँच अणुव्रत ग्रहणकर देशव्रती बन जाते हैं, वे मरणकर देवगति को प्राप्त कर लेते हैं।

जंबूद्वीप के बीचों-बीच में सुदर्शनमेरु पर्वत है। यह एक लाख योजन ऊँचा है। इसकी चूलिका ४० योजन की है। इसमें हिमवान आदि छह पर्वत, भरतक्षेत्र आदि सात क्षेत्र हैं। इसमें अकृत्रिम ७८ जिनमंदिर हैं। सारी रचना आप हस्तिनापुर में खुले मैदान में निर्मित जम्बूद्वीप में देख सकते हैं।

आगे पुष्कर द्वीप में बीच में चूड़ी के समान आकार वाला मानुषोत्तर पर्वत है अतः इस द्वीप के दो भाग हो गये। इस तरह जंबूद्वीप, धातकीखण्ड, आधा पुष्कर—पुष्करार्धद्वीप, इस प्रकार मानुषोत्तर पर्वत के पहले-पहले मनुष्यों का अस्तित्व है। यहीं तक पाँच मेरु, १७० कर्मभूमि आदि व्यवस्था है। यहाँ तक ३९८ अकृत्रिम जिनमंदिर हैं। इन सबको आप हस्तिनापुर में निर्मित तेरहद्वीप जिनालय में देख सकते हैं।

मानुषोत्तर पर्वत से आगे आठवाँ द्वीप—नंदीश्वर द्वीप है। इसमें ५२ जिनमंदिर एवं ग्यारहवें कुण्डलवर द्वीप तथा तेरहवें रुचकवर द्वीप के बीच-बीच में कुण्डलवर-रुचकवर पर्वतों पर चार-चार जिनमंदिर, ऐसे ३९८+५२+४+४=४५८ अकृत्रिम जिनमंदिर मध्यलोक में हैं। इनके दर्शन आप 'तेरहद्वीप रचना' में कर सकते हैं।

ज्योतिर्लोक—यहाँ मध्यलोक में चित्रा पृथ्वी से ७९० योजन ऊपर आकाश में अधर ज्योतिषी देवों के विमान हैं। सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र और तारा ऐसे ज्योतिषी देवों के पाँच भेद हैं। ताराओं के विमान भूमि से ३१ लाख साठ हजार मील की ऊँचाई पर हैं। सूर्य के विमान ३२ लाख, चन्द्रमा के विमान ३५ लाख २० हजार मील की ऊँचाई पर हैं। ये विमान अर्धगोलक के समान हैं। इनमें समतल भाग में बीच में जिनमंदिर व चारों तरफ देवों के भवन बने हुए हैं। सूर्य का विमान ३१४७ मील का एवं सबसे छोटा तारा का विमान २५० मील का है। ये सूर्य, चन्द्र आदि असंख्यात द्वीप-समुद्रों में असंख्यातों हैं। ढाईद्वीप तक ये सूर्य, चन्द्र आदि मेरु प्रदक्षिणा के क्रम से भ्रमण करते रहते हैं। इसी से दिन-रात का विभाग होता है। ढाईद्वीप से आगे सभी सूर्यादि विमान स्थिर हैं। प्रत्येक में जिनमंदिर होने से ज्योतिषी देवों के जिनमंदिर असंख्यात हैं। इनका विशेष विवरण 'जैन ज्योतिर्लोक' पुस्तक से या त्रिलोकसार आदि से जान सकते हैं।

ऊर्ध्वलोक—सुमेरु की चूलिका के ऊपर एक बालमात्र के अंतर से प्रथम स्वर्ग है। ऊर्ध्वलोक में—१६ स्वर्ग, नव ग्रैवेयक, नव अनुदिश और पाँच अनुत्तर हैं। पुनः सबसे ऊपर सिद्धशिला है।

१६ स्वर्गों के नाम—

१. सौधर्म-ईशान स्वर्ग	२. सानत्कुमार-माहेन्द्र स्वर्ग
३. ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर स्वर्ग	४. लांतव-कापिष्ठ स्वर्ग
५. शुक्र-महाशुक्र स्वर्ग	६. शतार-सहस्रार स्वर्ग

७. आनत-प्राणत स्वर्ग ८. आरण-अच्युत स्वर्ग

ये १६ स्वर्ग दो-दो एक साथ हैं।

सौधर्म स्वर्ग के ३२ लाख विमान हैं। ईशान स्वर्ग के २८ लाख, सानत्कुमार के १२ लाख, माहेन्द्र के ८ लाख, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर के ४ लाख, लांतव-कापिष्ठ के ५० हजार, शुक्र-महाशुक्र के ४० हजार, शतार-सहस्रार के ६ हजार, आनत-प्राणत, आरण-अच्युत के ७ सौ विमान हैं। इनमें प्रत्येक इंद्र के महल के आगे वटवृक्ष नाम के चैत्यवृक्ष हैं। इनमें कटनी पर जिनप्रतिमाएँ विराजमान हैं। उनके आगे मानस्तंभ हैं।

सोलह स्वर्गों तक देव-देवियाँ दोनों हैं। इनमें इंद्र, सामानिक, पारिषद, त्रायस्त्रिंश, आत्मरक्ष, लोकपाल, अनीक, प्रकीर्णक, आभियोग्य और किल्विषक ये १० भेद हैं। १६ स्वर्ग के ऊपर सभी अहमिंद्र हैं। वहाँ देवियाँ नहीं हैं।

सौधर्म-ईशान, सानत्कुमार और माहेन्द्र इन चार स्वर्गों में ऐसे मानस्तंभ बने हुए हैं, जिनमें रत्नों के पिटारे हैं। वहाँ उनमें तीर्थंकर भगवन्तों के लिए वस्त्र, अलंकार आदि वस्तुएँ उत्पन्न होती रहती हैं। देवगण वहाँ से लाकर यहाँ तीर्थंकर भगवन्तों को गार्हस्थ्य अवस्था में प्रदान करते हैं।

नव ग्रैवेयक के नाम — सुदर्शन, अमोघ, सुप्रबुद्ध, यशोधर, सुभद्र, सुविशाल, सुमनस, सौमनस और प्रीतिंकर।

इनमें से तीन अधस्तन ग्रैवेयक के १११, तीन मध्यम के १०७, तीन उपरिम के ९१ विमान हैं।

नव अनुदिश के नाम — अर्चि, अर्चिमालिनी, वैर, वैरोचन, सोम, सोमरूप, अंक, स्फटिक और आदित्य, ये १-१ विमान हैं।

पाँच अनुत्तर के नाम — विजय, वैजयंत, जयंत, अपराजित और सर्वार्थसिद्धि, ये भी १-१ विमान हैं।

ऐसे सौधर्म स्वर्ग से लेकर ३२ लाख सब मिलकर ८४९७०२३ विमान हैं। इन सबमें १-१ जिनमंदिर हैं अत: ऊर्ध्वलोक के ८४ लाख ९७ हजार तेईस जिनमंदिर हैं। प्रत्येक विमान कोई संख्यात योजन के और कोई असंख्यात योजन के हैं। इन सबमें असंख्यातों देव रहते हैं।

स्वर्गों में माता-पिता से जन्म नहीं है। वहाँ उपपादशय्या बनी हुई हैं, जिनमें देव ४८ मिनट में ही यौवन शरीर प्राप्त कर जन्म लेकर उठकर बैठ जाते हैं। जो हिंसा आदि पापों को छोड़कर देवपूजा, गुरुभक्ति, दान, तीर्थयात्रा, तपश्चरण आदि पुण्य करते हैं। वे देवयोनि को प्राप्त करते हैं अत: आपको सदैव पुण्य संपादन करना चाहिए।

सिद्धशिला — लोक के अग्रभाग पर मनुष्यलोक — ढाईद्वीप प्रमाण विस्तृत — ४५ लाख योजन प्रमाण सिद्धशिला है। ये मध्य में आठ योजन ऊँची है और क्रम से घटते हुए एक अणु प्रमाण रह गई है। यह "उत्तानचषकमिव[१]" — सीधे रखे हुए कटोरे के समान है — अर्धचंद्र के समान है। ढाईद्वीप से अनादिकाल से लेकर आज तक अनंतानंत सिद्ध परमेष्ठी हुए हैं अत: वहाँ पर एक अणुमात्र भी जगह खाली नहीं है।

ये सिद्ध भगवान सिद्धशिला के ऊपर घनोदधिवातवलय, घनवातवलय से ऊपर तनुवालवलय में विराजमान हैं। सभी सिद्धों के मस्तक तनुवातवलय के अंतिम भाग से स्पर्शित हैं। आगे लोकाकाश के बाहर धर्मास्तिकाय का अभाव होने से एवं अलोकाकाश में जीव द्रव्य के नहीं होने से सिद्ध भगवान वहीं तक लोक के अग्रभाग में विराजमान हैं। उन अनंतानंत सिद्धों को हमारा अनंत-अनंत बार नमस्कार होवे।

अधोलोक के जिनमंदिर

णमोकार महामंत्र एवं चत्तारिमंगल पाठ

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं।।

चत्तारि मंगलं–अरिहंत मंगलं, सिद्ध मंगलं, साहु मंगलं, केवलि पण्णत्तो धम्मो मंगलं।

चत्तारि लोगुत्तमा–अरिहंत लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा, साहु लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा।

चत्तारि सरणं पव्वज्जामि–अरिहंत सरणं पव्वज्जामि, सिद्ध सरणं पव्वज्जामि, साहु सरणं पव्वज्जामि, केवलि पण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि। ह्रौं शांतिं कुरु कुरु स्वाहा। अनादि सिद्धमंत्रः।

(हस्तलिखित वसुनंदि प्रतिष्ठासार संग्रह)

-गणिनी ज्ञानमती

इसलिए ये महामंत्र और चत्तारि मंगल पाठ अनादि निधन है, ऐसा स्पष्ट है।

वर्तमान में विभक्ति लगाकर 'चत्तारिमंगल पाठ'–नया पाठ पढ़ा जा रहा है। जो कि विचारणीय है। यह पाठ सन् 1974 के बाद में अपनी दिगम्बर जैन परम्परा में आया है। देखें प्रमाण–'ज्ञानार्णव' जैसे प्राचीन ग्रंथ में बिना विभक्ति का प्राचीन पाठ ही है। यह विक्रम सम्वत् 1963 से लेकर कई संस्करणों में वि.सं. 2054 तक में प्रकाशित है। पृ. 309 पर यही प्राचीन पाठ है। प्रतिष्ठातिलक जो कि वीर सं. 2451 में सोलापुर से प्रकाशित है, उसमें पृष्ठ 40 पर यही प्राचीन पाठ है। आचार्य श्री वसुविंदु-अपरनाम जयसेनाचार्य द्वारा रचित 'प्रतिष्ठापाठ' जो कि वीर सं. 2452 में प्रकाशित है। उसमें पृ. 81 पर प्राचीन पाठ ही है। हस्तलिखित 'श्री वसुनंदिप्रतिष्ठापाठ संग्रह' में भी प्राचीन पाठ है। प्रतिष्ठासारोद्धार जो कि वीर सं. 2443 में छपा है, उसमें भी यही पाठ है। 'क्रियाकलाप' जो कि वीर सं. 2462 में छपा है, उसमें भी तथा जो 'सामायिकभाष्य' श्री प्रभाचंद्राचार्य द्वारा 'देववंदना' की संस्कृत टीका है, उसमें भी अरहंत मंगलं-अरहंत लोगुत्तमा,....... अरहंत सरणं पव्वज्जामि, यही पाठ है पुनः यह संशोधित नया पाठ क्यों पढ़ा जाता है। क्या ये पूर्व के आचार्य व्याकरण के ज्ञाता नहीं थे ? इन आचार्यों की कृति में परिवर्तन, परिवर्धन व संशोधन कहाँ तक उचित है ?

नया पाठ–

चत्तारि मंगलं–अरहंता मंगलं...., अरहंता लोगुत्तमा......, अरहंते सरणं पव्वज्जामि, सिद्धे सरणं पव्वज्जामि.....।

यह पाठ सन् 1974 से आया है ऐसा पं. पन्नालाल जी साहित्याचार्य आदि विद्वानों ने कहा था। जो भी हो, हमें और आपको प्राचीन पाठ ही पढ़ना चाहिए। सभी पुस्तकों में प्राचीन पाठ ही छपाना चाहिए व मानना चाहिए। नया परिवर्द्धित पाठ नहीं पढ़ना चाहिए।

अधोलोक के जिनमंदिर

भवनवासी देवों के जिनमंदिर

(तिलोयपण्णत्ति से)

भव्वजणमोक्खजणणं मुणिंददेविंदपणदपयकमलं। णमिय अभिणंदणेसं भावणलोयं परूवेमो[1]।।१।।

रयणप्पहपुढवीए खरभाए पंकबहुलभागम्मि। भवणसुराणं भवणाइं होतिं वररयणसोहाणि।।७।।

सोलयसहस्समेत्तो खरभागो पंकबहुलभागो वि। चउसीदिसहस्साणिं जोयणलक्ख दुवे मिलिदा।।८।।

१६०००।८४०००।

असुरा णागसुवण्णा दीओवहिथणिदविज्जुदिसअग्गी। वाउकुमारा परया दसभेदा होंति भवणसुरा।।९।।

चूडामणिअहिगरुडा करिमयरा वड्ढमाणवज्जहरी। कलसो तुरवो मउडे कमसो चिण्हाणि एदाणि।।१०।।

चउसट्ठी चउसीदी बावत्तरि होंति छस्सु ठाणेसु।
छाहत्तरि छण्णउदी लक्खाणिं भवणवासिभवणाणिं।।११।।

६४०००००। ८४०००००। ७२०००००। ७६०००००। ७६०००००। ७६०००००।
७६०००००। ७६०००००। ७६०००००। ९६०००००।

एदाणं भवणाणं एक्कस्सिं मेलिदाण परिमाणं। बाहत्तरि लक्खाणिं कोडीओ सत्तमेत्ताओ।।१२।।

७,७२०००००।

भवनवासी देवों के जिनमंदिर

(तिलोयपण्णत्ति से)

जो भव्य जीवों को मोक्ष प्रदान करने वाले हैं तथा जिनके चरणकमलों में मुनीन्द्र अर्थात् गणधर एवं देवों के इन्द्रों ने नमस्कार किया है, ऐसे अभिनन्दन स्वामी को नमस्कार करके भावन—लोक का निरूपण करते हैं।।१।। रत्नप्रभा पृथ्वी के खरभाग और पंकबहुलभाग में उत्कृष्ट रत्नों से शोभायमान भवनवासी देवों के भवन हैं।।७।। इन दोनों भागों में से खर भाग सोलह हजार योजन और पंकबहुलभाग चौरासी हजार योजन प्रमाण मोटा है। उक्त दोनों भागों की मोटाई मिलकर एक लाख योजन प्रमाण है।।८।।

खरभाग की मोटाई १६०००+पंकबहुलभाग ८४०००=१००००० योजन।

असुरकुमार, नागकुमार, सुपर्णकुमार, द्वीपकुमार, उदधिकुमार, स्तनितकुमार, विद्युत्कुमार, दिक्कुमार, अग्निकुमार और वायुकुमार, इस प्रकार भवनवासी देव दश प्रकार के हैं।।९।। उपर्युक्त दश भवनवासी देवों के मुकुट में क्रम से चूड़ामणि, सर्प, गरुड़, हाथी, मगर, वर्द्धमान (स्वस्तिक), वज्र, सिंह, कलश और तुरग, ये (दश) चिह्न होते हैं।।१०।। चौंसठ लाख, चौरासी लाख, बहत्तर लाख, छह स्थानों में छियत्तर लाख और छियानबे लाख, इस प्रकार क्रम से दश स्थानों में उन भवनवासी देवों के भवनों की संख्या है।।११।। असुरकुमार ६४०००००, नागकुमार ८४०००००, सुपर्णकुमार ७२०००००, द्वीपकुमार ७६०००००, उदधिकुमार ७६०००००,

---

१. तिलोयपण्णत्ति, अधिकार ३, पृ. ११० से ११८ तक।

दससु कुलेसुं पुह पुह दो दो इंदा हवंति णियमेण। ते एक्कस्सिं मिलिदा वीस विराजंति भूदीहिं।।१३।।

भवणा भवणपुराणिं आवासा अ सुराण होदि तिविहा णं।

रयणप्पहाए भवणा दीवसमुद्दाण उवरि भवणपुरा।।२२।।

दहसेलदुमादीणं रम्माणं उवरि होंति आवासा। णागादीणं केसिं तियणिलया भवणमेक्कमसुराणं।।२३।।

अप्पमहद्धियममज्झिमभावणदेवाण होंति भवणाणि। दुगबादालसहस्सा लक्खमधोधो खिदीय गंताउ।।२४।।

२०००। ४२०००। १०००००।

अप्पमहद्धियमज्झिमभावणदेवाण वासवित्थारो। समचउरस्सा भवणा वज्जामयद्दारछज्जिया सव्वे।।२५।।

बहलत्ते तिसयाणिं संखासंखेज्जजोयणा वासे। संखेज्जरुंदभवणेसु भवणदेवा वसंति संखेज्जा।।२६।।

संखातीदा सेयं छत्तीससुरा य होदि संखेज्जा (?)। भवणसरूवा एदे वित्थारा होइ जाणिज्जो ।।२७।।

वेदी-परकोटे में भवनों के चारों तरफ चैत्यवृक्ष हैं

तेसिं चउसु दिसासुं जिणदिट्ठपमाणजोयणे गंता। मज्झम्मि दिव्ववेदी पुह पुह वेट्ठेदि एक्केक्का।। २८।।

दो कोसा उच्छेहा वेदीणमकट्टिमाण सव्वाणं। पंचसयाणिं दंडा वासो वररयणछण्णाणं।।२९।।

स्तनितकुमार ७६०००००, विद्युत्कुमार ७६०००००, दिक्कुमार ७६०००००, अग्निकुमार ७६०००००, वायुकुमार ९६०००००। इन सब भवनों के प्रमाण को एकत्र मिलाने पर सात करोड़ बहत्तर लाख होते हैं।।१२।। ७,७२०००००।

उपर्युक्त दश भवनवासियों के नियम से पृथक्-पृथक् दो-दो इन्द्र होते हैं। वे सब मिलकर बीस इन्द्र होते हैं , जो अपनी-अपनी विभूति से शोभायमान हैं।।१३।।

भवनवासी देवों के निवासस्थान भवन, भवनपुर और आवास के भेद से तीन प्रकार के होते हैं। इनमें रत्नप्रभा पृथ्वी में स्थित निवासस्थानों को भवन, द्वीप-समुद्रों के ऊपर स्थित निवासस्थानों को भवनपुर और रमणीय तालाब, पर्वत तथा वृक्षादिक के ऊपर स्थित निवास स्थानों को आवास कहते हैं। नागकुमारादिक देवों में से किन्हीं के तो भवन, भवनपुर और आवासरूप तीनों ही तरह के निवासस्थान होते हैं परन्तु असुरकुमारों के केवल एक भवनरूप ही निवासस्थान होते हैं।।२२-२३।। अल्पर्द्धिक, महर्द्धिक और मध्यम ऋद्धि के धारक भवनवासी देवों के भवन क्रमशः चित्रा पृथिवी के नीचे-नीचे दो हजार, बयालीस हजार और एक लाख योजनपर्यन्त जाकर हैं।।२४।। अल्पर्द्धिक २०००, महर्द्धिक ४२०००, मध्य ऋद्धिधारक १०००००। अब अल्पर्द्धिक, महर्द्धिक और मध्यम ऋद्धि के धारक भवनवासी देवों के निवासस्थानों का विस्तार कहा जाता है। ये सब भवन समचतुष्कोण तथा वज्रमय द्वारों से शोभायमान हैं।।२५।। ये भवन बाहल्य में (ऊँचाई में) तीन सौ योजन और विस्तार में संख्यात व असंख्यात योजन प्रमाण होते हैं। इनमें से संख्यात योजन विस्तार वाले भवनों में संख्यात और शेष असंख्यात योजन विस्तार वाले भवनों में असंख्यात भवनवासी देव रहते हैं, ऐसा भवनों का स्वरूप और विस्तार जानना चाहिए।।२६-२७।।

वेदी-परकोटे में भवनों के चारों तरफ चैत्यवृक्ष हैं

उन भवनों की चारों दिशाओं में जिनभगवान् से उपदिष्ट योजन प्रमाण जाकर एक-एक दिव्य वेदी (कोट) पृथक्-पृथक् उन भवनों को मध्य में वेष्टित करती है।।२८।। उत्तमोत्तम रत्नों से व्याप्त इन सब अकृत्रिम वेदियों

गोउरदारजुदाओ उवरिम्मि जिणिंदगेहसहिदाओ। भवणसुररक्खिदाओ वेदीओ ताओ सोहंति।।३०।।

तब्बाहिरे असोयंसत्तच्छदचंपचूदवण पुण्णा। णियणाणातरुजुत्ता चेट्ठंति चेत्ततरूसहिदा।।३१।।

चेत्तदुमत्थलरुंदं दोण्णि सया जोयणाणि पण्णासा। चत्तारो मज्झम्मि य अंते कोसद्धमुच्छेहो।।३२।।

रा

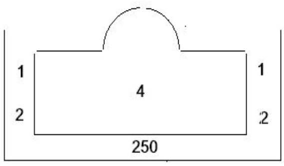

छद्दोभूमुहरुंदा चउजोयणउच्छिदाणि पीढाणि। पीढोवरि बहुमज्झे रम्मा चेट्ठंति चेत्तदुमा।।३३।।

। ६ । २ । ४ ।

पत्तेक्कं रुक्खाणं अवगाढं कोसमेक्कमुद्दिट्ठं। जोयण खंदुच्छेहो साहादीहत्तणं च चत्तारि।।३४।।

को १ । जो १ । ४।

विविहवररयणसाहा विचित्तकुसुमोवसोभिदा सव्वे। वरमरगयवरपत्ता दिव्वतरू ते विरायंति।।३५।।

विविहंकुरुचेंचइया विविहफला विविहरयणपरिणामा। छत्तादिछत्तजुत्ता घंटाजालादिरमणिज्जा।।३६।।

आदिणिहणेण हीणा पुढिविमया सव्वभवणचेत्तदुमा। जीवुप्पत्तिलयाणं होंति णिमित्ताणि ते णियमा।।३७।।

चेत्ततरूणं मूले पत्तेक्कं चउदिसासु पंचेव। चेट्ठंति जिणप्पडिमा पलियंकठिया सुरेहिं महणिज्जा।।३८।।

की ऊँचाई दो कोस और विस्तार पांच सौ धनुष प्रमाण होता है।।२९।। गोपुरद्वारों से युक्त और उपरिम भाग में **जिनमन्दिरों से सहित** वे वेदियां भवनवासी देवों से रक्षित होती हुई सुशोभित होती हैं।।३०।। वेदियों के बाह्य भाग में **चैत्यवृक्षों से सहित** और अपने नाना वृक्षों से युक्त पवित्र अशोक वन, सप्तच्छदवन, चंपकवन और आम्रवन स्थित हैं।।३१।। चैत्यवृक्षों के स्थल का विस्तार दो सौ पचास योजन तथा ऊँचाई मध्य में चार योजन और अन्त में अर्ध कोस प्रमाण होती है।। ३२।। पीठों की भूमि का विस्तार छह योजन, मुख का विस्तार दो योजन और ऊँचाई चार योजन होती है। इन पीठों के ऊपर बहुमध्यभाग में रमणीय चैत्यवृक्ष स्थित होते हैं।। ३३।। भूविस्तार ६, मु. वि. २, ऊँचाई ४ यो.। प्रत्येक वृक्ष का अवगाढ़ एक कोस, स्कंध का उत्सेध एक योजन और शाखाओं की लंबाई चार योजन प्रमाण कही गयी है।।३४।। अवगाढ़ को. १, स्कन्ध की ऊँचाई यो. १, शाखाओं की लंबाई यो. ४। वे सब दिव्य वृक्ष विविध प्रकार के उत्तम रत्नों की शाखाओं से युक्त, विचित्र पुष्पों से अलंकृत और उत्कृष्ट मरकत मणिमय उत्तम पत्रों से व्याप्त होते हुए अतिशय शोभा को प्राप्त हैं।।३५।।

विविध प्रकार के अंकुरों से मंडित, अनेक प्रकार के फलों से युक्त, नाना प्रकार के रत्नों से निर्मित, छत्र के ऊपर छत्र से संयुक्त, घंटाजालादि से रमणीय और आदि-अन्त से रहित, ऐसे वे पृथिवी के परिणामरूप सब भवनों के चैत्यवृक्ष नियम से जीवों की उत्पत्ति और विनाश के निमित्त होते हैं।।३६-३७।। चैत्यवृक्षों के मूल में चारों दिशाओं में से प्रत्येक दिशा में पद्मासन से स्थित और देवों से पूजनीय **पांच-पांच जिनप्रतिमाएँ**

चउतोरणाभिरामा अट्ठमहामंगलेहि सोहिल्ला। वररयणणिम्मिदेहिं माणत्थंभेहि अइरम्मा।।३९।।

भवनवासी देवों के भवनों में जिनमंदिर

वेदीणं बहुमज्झे जोयणसयमुच्छिदा महाकूडा। वेत्तासणसंठाणा रयणमया होंति सव्वट्ठ ।।४०।।
ताणं मूले उवरिं समंतदो दिव्ववेदीओ। पुव्विल्लवेदियाणं सारिच्छं वण्णणं सव्वं ।।४१।।
वेदीणब्भंतरए वणसंढा वरविचित्ततरुणियरा। पुक्खरिणीहिं समग्गा तप्परदो दिव्ववेदीओ ।।४२।।
कूडोवरि पत्तेक्कं जिणवरभवणं हवेदि एक्केक्कं। वररयणकंचणमयं विचित्तविण्णासरमणिज्जं।।४३।।
चउगोउरा तिसाला वीहिं पडि माणथंभणवथूहा। वणधयचेत्तखिदीओ सव्वेसुं जिणणिकेदेसुं।।४४।।
णंदादिओ तिमेहल तिपीढपुव्वाणि धम्मविभवाणि। चउवणमज्झेसु ठिदा चेत्ततरू तेसु सोहंति।।४५।।
हरिकरिवसहखगाहिवसिहिससिरविहंसपउमचक्कधया।एक्केक्कमट्ठजुदसयमेक्केक्कं अट्ठसय खुल्ला।।४६।।
वंदणभिसेयणच्चणसंगीआलोयमंडवेहिं जुदा। कीडणगुणणगिहेहिं विसालवरपट्टसालेहिं ।।४७।।
सिरिदेवीसुददेवीसव्वाणसणक्कुमारजक्खाणं। रूवाणि अट्ठमंगल देवच्छंदम्मि जिणणिकेदेसुं।।४८।।
भिंगारकलसदप्पणधयचामरछत्तवियणसुपइट्ठा। इय अट्ठमंगलाणिं पत्तेक्कं अट्ठअहियसयं।।४९।।
दिप्पंतरयणदीवा जिणभवणा पंचवण्णरयणमया। गोसीसमलयचंदणकालागरुधूवगंधड्ढा।।५०।।

विराजमान होती हैं।।३८।। ये जिनप्रतिमाएँ चार तोरणों से रमणीय, आठ महामंगल द्रव्यों से सुशोभित और उत्तमोत्तम रत्नों से निर्मित मानस्तम्भों से अतिशय शोभायमान होती हैं।।३९।।

भवनवासी देवों के भवनों में जिनमंदिर

इन वेदियों के बहुमध्य भाग में सर्वत्र एक सौ योजन ऊंचे, वेत्रासन के आकार और रत्नमय महाकूट स्थित हैं।।४०।। इन कूटों के मूल भाग में और ऊपर चारों तरफ दिव्य वेदियां हैं । इन वेदियों का सम्पूर्ण वर्णन वेदियों जैसा ही समझना चाहिये।।४१।। इन वेदियों के भीतर उत्तम एवं विविध प्रकार के वृक्ष समूह से व्याप्त और वापिकाओं से परिपूर्ण वनसमूह हैं, फिर इनके आगे दिव्य वेदियां हैं।।४२।। प्रत्येक कूट के ऊपर एक-एक **जिनेन्द्र भवन** है, जो उत्तम रत्न एवं सुवर्ण से निर्मित तथा विचित्र विन्यास से रमणीय है।।४३।। सब जिनालयों में चार-चार गोपुरों से संयुक्त तीन कोट, प्रत्येक वीथी में एक मानस्तंभ व नौ स्तूप तथा (कोटों के अन्तराल में) क्रम से वनभूमि, ध्वजभूमि और चैत्यभूमि होती हैं।।४४।। उन जिनालयों में चारों वनों के मध्य में स्थित तीन मेखलाओं से युक्त नन्दादिक वापिकायें और तीन पीठों से संयुक्त धर्म विभव तथा चैत्यवृक्ष शोभायमान होते हैं।।४५।। ध्वजभूमि में सिंह, गज, वृषभ, गरुड़, मयूर, चन्द्र, सूर्य, हंस, पद्म और चक्र, इन चिह्नों से अंकित प्रत्येक चिह्न वाली एक सौ आठ महाध्वजाएँ और एक-एक महाध्वजा के आश्रित एक सौ आठ क्षुद्रध्वजायें होती हैं।।४६।। उपर्युक्त जिनालय वंदनमण्डप, अभिषेकमण्डप, नर्तनमण्डप, संगीतमण्डप और आलोक (प्रेक्षण) मंडप, इन मण्डपों तथा क्रीडागृह, गुणनगृह अर्थात् स्वाध्यायशाला एवं विशाल व उत्तम पट्टशालाओं (चित्रशालाओं से) से युक्त होते हैं।।४७।। जिनमन्दिरों में देवच्छंद के भीतर श्रीदेवी, श्रुतदेवी तथा सर्वाण्ह और सनत्कुमार यक्षों की मूर्तियां एवं आठ मंगल द्रव्य होते हैं।।४८।। झारी, कलश, दर्पण, ध्वजा, चामर, छत्र, व्यजन और सुप्रतिष्ठ इन आठ मंगल द्रव्यों में से वहां प्रत्येक एक सौ आठ होते हैं।।४९।। ये जिनभवन चमकते हुये रत्नदीपकों से सहित, पांच वर्ण के रत्नों से निर्मित, गोशीर्ष, मलयचंदन, कालागरु और धूप के गन्ध से व्याप्त तथा भंभा, मृदंग, मर्दल,

भंभामुइंगमद्दलजयघंटाकंसतालतिवलीणं। दुंदुहिपडहादीणं सद्देहिं णिच्चहलबोला।।५१।।
सिंहासणादिसहिदा चामरकरणागजक्खमिहुणजुदा। णाणाविहरयणमया जिणपडिमा तेसु भवणेसुं।।५२।।

भवनवासी देवों के जिनमंदिर की संख्या

बाहत्तरि लक्खाणिं कोडीओ सत्त जिणणिकेदाणिं। आदिणिहणुज्झिदाणिं भवणसमाइं विराजंति।।५३।।
। ७,७२००००० ।
सम्मत्तरयणजुत्ता णिब्भरभत्तीय णिच्चमच्चंति। कम्मक्खवणणिमित्तं देवा जिणणाहपडिमाओ।।५४।।
कुलदेवा इदि मण्णिय अण्णेहिं बोहिया बहुपयारं। मिच्छाइट्ठी णिच्चं पूजंति जिणिंदपडिमाओ।।५५।।
कूडाण समंतादो पासादा होंति भवणदेवाणं। णाणाविहविण्णासा वरकंचणरयणणियरमया।।५६।।
सत्तट्ठणवदसादियविचित्तभूमीहिं भूसिदा सव्वे। लंबंतरयणमाला दिप्पंतमणिप्पदीयकंतिल्ला।।५७।।
जम्माभिसेयभूसणमेहुणओलग्गमंतसालाहिं। विविधाहिं रमणिज्जा मणितोरणसुंदरदुवारा।।५८।।
सामण्णगब्भकदलीचित्तासणणालयादिगिहजुत्ता। कंचणपायारजुदा विसालवलहीविराजमाणा य।।५९।।
धुव्वंतधयवडाया पोक्खर णीवाविकूवसंडाहिं। सव्वे कीडणजुत्ता णाणावरमत्तवारणोपेता।।६०।।
मणहरजालकवाडा णाणाविहसालभंजिकाबहुला। आदिणिहणेण हीणा किं बहुणा ते णिरुवमा णेया।।६१।।

जयघंटा, कांस्यताल, तिवली, दुंदुभि एवं पटहादिक के शब्दों से नित्य ही शब्दायमान रहते हैं।।५०-५१।। उन भवनों में सिंहासनादिक से सहित, हाथ में चँवर लिये हुये नागयक्षयुगल से युक्त और नाना प्रकार के रत्नों से निर्मित ऐसी जिनप्रतिमायें विराजमान हैं।।५२।।

भवनवासी देवों के जिनमंदिर की संख्या

आदि-अन्त से रहित (अनादिनिधन) वे जिनभवन भवनवासी देवों के भवनों की संख्या प्रमाण सात करोड़ बहत्तर लाख सुशोभित होते हैं।।५३।। ७,७२,०००००। जो देव सम्यग्दर्शनरूपी रत्न से युक्त हैं अर्थात् सम्यग्दृष्टि हैं, वे कर्मक्षय के निमित्त नित्य ही इन जिनप्रतिमाओं की भक्ति से पूजा करते हैं।।५४।। इसके अतिरिक्त अन्य सम्यग्दृष्टि देवों से सम्बोधित किये गये मिथ्यादृष्टि देव भी कुलदेवता मानकर उन जिनेन्द्रमूर्तियों की नित्य ही बहुत प्रकार से पूजा करते हैं।।५५।। कूटों के चारों तरफ नाना प्रकार की रचनाओं से युक्त और उत्तम सुवर्ण एवं रत्नसमूह से निर्मित भवनवासी देवों के प्रासाद हैं।।५६।।

सब भवन सात, आठ, नौ, दश इत्यादिक विचित्र भूमियों से भूषित; लंबायमान रत्नमालाओं से सहित; चमकते हुए मणिमय दीपकों से सुशोभित; जन्मशाला, अभिषेकशाला, भूषणशाला,मैथुनशाला, ओलगशाला (परिचर्यागृह) और मंत्रशाला, इन विविध प्रकार की शालाओं से रमणीय; मणिमय तोरणों से सुंदर द्वारों वाले; सामान्यगृह, गर्भगृह, कदलीगृह, चित्रगृह, आसनगृह, नादगृह और लतागृह इत्यादि गृहविशेषों से सहित; सुवर्णमय प्राकार से संयुक्त; विशाल छज्जों से विराजमान; फहराती हुई ध्वजापताकाओं से सहित ; पुष्करिणी, वापी और कूप, इनके समूहों से युक्त; क्रीडनयुक्त; अनेक उत्तम मत्तवारणों से संयुक्त; मनोहर गवाक्ष और कपाटों से सुशोभित ; नाना प्रकार की पुत्तलिकाओं से सहित और आदि-अन्त से हीन अर्थात् अनादिनिधन हैं। बहुत कहने से क्या ? ये सब प्रासाद उपमा से रहित अर्थात् अनुपम हैं ऐसा जानना चाहिये।।५७-६१।। उन भवनों के चारों

चउपासाणिं तेसुं विचित्तरूवाणि आसणाणिं च। बररयणविरचिदाणिं सयणाणि हवंति दिव्वाणिं।।६२।।
एक्केक्कस्सिं इंदे परिवारसुरा हवंति दस एदे। पडिइंदा तेत्तीसत्तिदसा सामाणीयदिसाइंदा।।६३।।
तणुरक्खा तिप्परिसा सत्ताणीया पइण्णगभियोगा। किब्बिसया इदि कमसो पवण्णिदा इंदपरिवारा।।६४।।

इन्द्रों के यहाँ ओलगशाला के आगे चैत्यवृक्ष

सव्वेसिं इंदाणं चिण्हाणि तिरीटमेव मणिखजिदं। पडिइंदादिचउण्हं चिण्हं मउडं मुणेदव्वा[१]।।१३४।।
ओलगसालापुरदो चेत्तदुमा होंति विविहरयणमया। असुरप्पहुदिकुलाणं ते चिण्हाइं इमा होंति।।१३५।।
अस्सत्थसत्तवण्णा संमलजुबू य वेतसकडंबा। तह पीयंगू सिरसा पलासरायद्दुमा कमसो।।१३६।।
चेत्तदुमामूलेसुं पत्तेक्कं चउदिसासु चेट्ठंते। पंच जिणिंदप्पडिमा पलियंकठिदी परमरम्मा।।१३७।।
पडिमाणं अग्गेसुं रयणत्थंभा हवंति वीस फुडं। पडिमापीढसरिच्छा पीडा थंभाण णादव्वा।।१३८।।
एक्केक्कमाणथंभे अट्ठावीसं जिणिंदपडिमाओ। चउसु दिसासुं सिंहासणविण्णासजुत्ताओ।।१३९।।
सेसाओ वण्णणाओ चउवणमज्झत्थचेत्ततरुसरिसा। छत्तादिछत्तपहुदीजुदाण जिणणाहपडिमाणं।।१४०।।
संखातीदा सेढी भावणदेवाण दसविकप्पाणं। तीए पमाणं सेढी बिदंगुलपढममूलहदा।।१४३।।

पार्श्व भागों में विचित्र रूप वाले आसन और उत्तम रत्नों से रचित दिव्य शय्यायें स्थित हैं।।६२।। प्रतीन्द्र, त्रायस्त्रिंश देव, सामानिक, दिशाइन्द्र (लोकपाल), तनुरक्षक, तीन पारिषद, सात अनीक, प्रकीर्णक, आभियोग्य और किल्विषिक, ये दश प्रत्येक इन्द्र के परिवार देव होते हैं । इस प्रकार क्रम से इन्द्र के परिवार देव कहे गये हैं।।६३-६४।।

इन्द्रों के यहां ओलगशाला के आगे चैत्यवृक्ष

सब इन्द्रों के चिन्ह मणियों से खचित किरीट (तीन शिखर वाला मुकुट) और प्रतीन्द्रादिक चार देवों का चिन्ह साधारण मुकुट ही जानना चाहिये ।।१३४।। ओलगशालाओं के आगे विविध प्रकार के रत्नों से निर्मित चैत्यवृक्ष होते हैं । ये (अग्रिमगाथा में निर्दिष्ट) चैत्यवृक्ष असुरादिक कुलों से चिन्हरूप होते हैं ।।१३५।। अश्वत्थ (पीपल), सप्तपर्ण, शाल्मलि, जामुन, वेतस, कदंब तथा प्रियंगु, शिरीष, पलाश और राजद्रुम, ये दश चैत्यवृक्ष क्रम से उन असुरादिक कुलों के चिन्हरूप होते हैं।।१३६।। **प्रत्येक चैत्यवृक्ष के मूल भाग में चारों ओर पल्यंकासन से स्थित परम रमणीय पांच-पांच जिनेन्द्रप्रतिमायें विराजमान होती हैं।।१३७।।** प्रतिमाओं के आगे बीस रत्नमय स्तम्भ (मानस्तम्भ) होते हैं । स्तम्भों की पीठिकायें प्रतिमाओं की पीठिकाओं के सदृश जानना चाहिये।।१३८।। **एक-एक मानस्तम्भ के ऊपर चारों दिशाओं में सिंहासन के विन्यास से युक्त अट्ठाईस जिनेन्द्रप्रतिमायें होती हैं ।।१३९।।**

इस प्रकार बीस मानस्तम्भों में कुल ५६० प्रतिमाएं होती हैं।

छत्र के ऊपर छत्र इत्यादिक से युक्त जिनेन्द्रप्रतिमाओं का शेष वर्णन चार वनों के मध्य में स्थित चैत्यवृक्षों के सदृश जानना चाहिये ।।१४०।। दश भेदरूप भवनवासी देवों का प्रमाण असंख्यात जगश्रेणीरूप है। उसका प्रमाण घनांगुल के प्रथम वर्गमूल से गुणित जगश्रेणीमात्र है ।।१४३।।

---

१. तिलोयपण्णत्ति पृ. १२८।

भवनवासी देवों के जिनमंदिर

(त्रिलोकसार से)

अथ तत्रत्यदेवानामैश्वर्यमाह —

अट्ठगुणिड्ढिविसिट्ठा णाणामणिभूसणेहि दित्तंगा। भुंजंति भोगमिट्ठं सगपुव्वतवेण तत्थ सुरा[१]।।२१९।।

अष्टगुणर्धिविशिष्टाः नानामणिभूषणैः दीप्ताङ्गाः। भुञ्जते भोगमिष्टं स्वकपूर्वतपसा तत्र सुराः।।२१९।।

अट्ठ । छायामात्रमेवार्थः।।२१९।।

अथ तेषां भवनानां भूगृहोपमानानां व्यासादिकमाह —

जोयणसंखासंखाकोडी तव्वित्थडं तु चउरस्सा। तिसयं बहलं मज्झं पडि सयतुंगेक्ककूडं च।।२२०।।

योजनसंख्यासंख्यकोट्यः तद्विस्तारस्तु चतुरस्राः। त्रिशतं बाहल्यं मध्यं प्रति शततुङ्गैककूटश्च।।२२०।।

जोयण। जघन्येन योजनानां संख्यातकोट्यः उत्कर्षेण असंख्यातकोट्यः तद्विस्तारस्तु चतुरस्राः त्रिशतयोजनबाहल्यं। तत्र प्रतिमध्यं शततुङ्गैककूटस्तदुपरि चैत्यालयश्च।।२२०।।

भवनवासी देवों के जिनमंदिर

(त्रिलोकसार से)

भवनवासी देवों का ऐश्वर्य—

गाथार्थ :— नाना प्रकार की मणियों के आभूषणों से दीप्त तथा अष्टगुण ऋद्धियों से विशिष्ट वे भवनवासी देव अपने पूर्व तपश्चरण के फलस्वरूप अनेक प्रकार के इष्ट भोग भोगते हैं।।२१९।। **विशेषार्थः** —जो जीव मनुष्य पर्याय में तपश्चरण कर पुण्य सञ्चय करते हैं और जिनके देवायु का बन्ध हो जाता है तथा जो बाद में सम्यक्त्वादि से च्युत हो जाते हैं, वे जीव अनेक गुण ऋद्धियों से युक्त भवनवासी देव होकर मनोहर इष्ट भोग भोगते हैं।

भूमिगृह की उपमा को धारण करने वाले भवनों का व्यासादि कहते हैं :—

गाथार्थ :— भवनों की लम्बाई-चौड़ाई का जघन्य प्रमाण संख्यात करोड़ योजन और उत्कृष्ट प्रमाण असंख्यात करोड़ योजन है। वे समस्त भवन चौकोर हैं तथा उनका बाहुल्य (ऊँचाई) तीन सौ योजन है। प्रत्येक भवन के बीच में सौ योजन ऊँचा एक-एक पर्वत है और उन पर्वतों के ऊपर **चैत्यालय** हैं।।२२०।।

विशेषार्थ :— भवनों का जघन्य विस्तार संख्यात करोड़ योजन और उत्कृष्ट विस्तार असंख्यात करोड़ योजन है। उनका आकार चौकोर है। ऊँचाई तीन सौ योजन है। प्रत्येक भवन के ठीक मध्य में सौ योजन ऊँचा एक पर्वत है और प्रत्येक पर्वत पर एक चैत्यालय है।

शंका :— भवनों को भूमिगृह की उपमा क्यों दी गई है ?

समाधान :—जैसे यहाँ मकान में पृथ्वी के नीचे जो कमरा बनाते हैं, उसे तहखाना, तलघरा या भूमिगृह कहते हैं,वैसे ही भवनवासियों के भवन रत्नप्रभा पृथ्वी में चित्रा पृथ्वी के नीचे खरभाग और पङ्कभाग में हैं अतः इन्हें भूमिगृह की उपमा दी गई है।

---

१. त्रिलोकसार पृ. २०६-२०७।

भवनवासी व व्यंतर देवों के आवास

(जंबूदीवपण्णत्ति से)

चित्ते वइरे वेरुलि लोहियअंके मसारगल्ले य। गोमज्जए पवाले य तह जोइरसेत्ति य[१]।।११७।।
णवमे अंजणे वुत्ते दसमे अंजणमूलये। अंके एक्कारसे वुत्ते फलिहंके बारसेत्ति य।।११८।।
चंदणे वच्चगे चावि बहुले पण्णारसेत्ति य। सिलामए वि अक्खाए सोलसे पुढवी तले।।११९।।
सोलस चेव सहस्सा रयणाइं होंति चेव बोद्धव्वा। तलउवरिमम्मि भागे जेण दु रयणप्पभा णाम।।१२०।।
अवसेसा पुढवीओ बोद्धव्वा होंति पंकबहुलाओ। वेहुलिएहि य तेसिं छण्हं पि इमं कमं जाणे।।१२१।।
बत्तीसं च सहस्सा अट्ठावीसा तहेव चउवीसा। वीसा सोलस अट्ठ य ओसरणकमेण बहुलियं।।१२२।।
पंकबहुलम्मि भागे बोद्धव्वा रक्खसाणमावासा। असुराण य चेव तहा अवसेसाणं खरे भागे।।१२३।।
असुरा णागसुवण्णा दीवोदधिथणिअविज्जुदिसणामा। अग्गीवादकुमारा दसधा भणिदा भवणवासी।।१२४।।
चदुसट्ठिं चुलसीदी बावत्तरि चेव सदसहस्साणि। छावत्तरिं च छण्हं वादिंदाणं च छण्णउदिं।।१२५।।

शंका :—नरक बिल भी इसी प्रकार रत्नप्रभा पृथ्वी में चित्रादि पृथ्वियों के नीचे अब्बहुल भाग में बने हुए हैं, फिर उन्हें भवन संज्ञा न देकर बिल संज्ञा क्यों दी गई है ?

समाधान :—जिस प्रकार यहाँ सर्पादि पापी जीवों के स्थानों को बिल कहते हैं और पुण्यवान् मनुष्यों के रहने के स्थानों को भूमिगृह आदि कहते हैं उसी प्रकार निःकृष्ट पाप के फल को भोगने वाले नारकी जीवों के रहने के स्थानों की संज्ञा बिल है और पुण्यवान् देवों के स्थानों की संज्ञा भवन है ।

भवनवासी व व्यंतरदेवों के आवास

(जंबूदीवपण्णत्ति से)

चित्ता, वज्रा, वैडूर्या, लोहितांका, मसारगल्ला, गोमेदका, प्रवाला, ज्योतिरसा, नवमी अंजना, दशवीं अंजनमूलका, ग्यारहवीं अंका, बारहवीं स्फटिका, चन्दना, वर्चका (सर्वार्थका), पन्द्रहवीं बहुला (बकुला) और शिलामय, इस प्रकार तलभाग में सोलह हजार योजन की मोटाई में ये सोलह पृथिवियाँ हैं। चूँकि इसके तल व उपरिम भाग में रत्नादि हैं इसीलिए इसका नाम रत्नप्रभा जानना चाहिए।।११७-१२०।। शेष छह पृथिवियाँ पंकबहुल जानना चाहिए। उन छहों पृथिवियों के बाहल्य का क्रम यह है।।१२१।। बत्तीस हजार, अट्ठाईस हजार, चौबीस हजार, बीस हजार, सोलह हजार और आठ हजार, इस प्रकार यह नीचे-नीचे क्रम से उक्त पृथिवियों का बाहल्य जानना चाहिए।।१२२।। पंकबहुल भाग में राक्षसों और असुरकुमारों के आवास तथा खरभाग में शेष व्यन्तर व भवनवासी देवों के आवास जानना चाहिए।।१२३।। असुरकुमार, नागकुमार, सुपर्णकुमार, द्वीपकुमार, उदधिकुमार, स्तनितकुमार, विद्युत्कुमार, दिक्कुमार, अग्निकुमार और वातकुमार, ये दश प्रकार के भवनवासी कहे गए हैं।।१२४।। चौंसठ लाख (३४००००० + ३००००००) चौरासी लाख (४४००००० + ४००००००), बहत्तर लाख (३८००००० + ३४०००००), छह के छियत्तर लाख (४००००००+ ३६०००००) और वायुकुमारों के छियानबे लाख (५०००००० + ४६०००००), यह उन दश प्रकार के भवनवासियों के भवनों का प्रमाण है।।१२५।।

---

१. जम्बूद्वीवपण्णत्ति, अधिकार-१२, पृ. १९७।

भवनवासी देवों के भवनों में जिनमंदिर

(सिद्धान्तसार दीपक से)

मङ्गलाचरणं

सद्वासप्ततिलक्षांश्च सप्तकोटिजिनालयान्। भावनामरवन्द्याच्च्र्यान् वन्दे तत्प्रतिमाः स्तुवे[१]।।१।।
अथ वक्ष्ये समासेन भावनादिपुरस्सरान्। देवांश्चतुर्विधान् नृणां सद्धर्मफलव्यक्तये।।२।।
भावना व्यन्तरा ज्योतिष्काः कल्पवासिनोऽमराः। इमे चतुर्विधाः प्रोक्ताः प्राप्तधर्मफला जिनैः।।३।।
भावनव्यन्तराणां चाधोलोके भावनानि वै। मध्यलोके गृहाः सन्ति यावत्सुदर्शनाग्रकम्।।४।।
दशोनाष्टशतान्यूर्ध्वं गत्वा चित्रामहीतलात्। योजनानां विमानानि ज्योतिष्काणां भवन्ति च।।५।।
चित्राभूमितलात्क्षेत्रं सौधर्मस्वर्गसंश्रितम्। तदाश्रयान्मतास्तेऽपि स्वर्गलोकाश्रिताः सुराः।।६।।
अथवा देवलोक त्वादूर्ध्वलोकाश्रिताः स्मृताः। यथास्थानस्थितान् वक्ष्ये क्रमात् तान् सह नाकिभिः।।७।।

भवनवासी देवों के भवनों में जिनमंदिर

(सिद्धान्तसार दीपक से)

मंगलाचरण

अर्थ :—भवनवासी देवों के द्वारा वन्दनीय और पूज्यनीय सात करोड़ बहत्तर लाख जिनालयों की मैं वन्दना करता हूँ तथा उनमें स्थित प्रतिमाओं की स्तुति करता हूँ।।१।।

प्रतिज्ञा सूत्र कहते हैं—

अर्थ :—प्राप्त किया है समीचीन धर्म का फल जिन्होंने, ऐसे मनुष्यों के लिये भवनवासी आदि हैं आगे जिनके, ऐसे चार प्रकार के देवों का संक्षेप से वर्णन करूँगा।।२।।

अब देवों के मूल चार भेद और उन चारों के अवस्थान का स्थान कहते हैं :—

अर्थ :— जिनेन्द्र भगवान ने धर्म का फल प्राप्त करने वाले देव चार प्रकार के कहे हैं—१—भवनवासी, २—व्यन्तरवासी, ३—ज्योतिषी और कल्पवासी (विमानवासी)।।३।। भवनवासी और व्यन्तरों के भवन अधोलोक में हैं किन्तु व्यन्तरों के गृह-आवास मध्यलोक में मेरु पर्वत के अग्रभाग पर्यन्त भी हैं।

विशेषार्थ —त्रिलोकसार में व्यन्तरों के निवास तीन प्रकार के कहे हैं—१—भवनपुर, २—आवास और ३—भवन । द्वीप-समुद्रों में जो स्थान हैं उन्हें भवनपुर कहते हैं। तालाब, पर्वत आदि पर जो निवास हैं उन्हें आवास कहते हैं और चित्रा पृथिवी के नीचे जो स्थित हैं उन्हें भवन कहते हैं।।४।। ज्योतिषी देवों के विमान चित्रा पृथिवी के (ऊपरी) तल से ७९० योजन की ऊँचाई से लेकर ऊपर (नौ सौ योजन) तक हैं।।५।। चित्रा पृथिवी के तल से सौधर्म आश्रित क्षेत्र है, उसके आश्रय से रहने वाले देव भी स्वर्ग लोक आश्रित जानना चाहिए अथवा चित्रा पृथिवीतल पर देव रहते हैं इसलिये इसको ऊर्ध्वलोक आश्रित कहा गया है। देवों के स्थान कहां पर स्थित हैं उसका और उनके साथ देवों का यथाक्रम से वर्णन करूँगा ।।६-७।।

---

१. सिद्धान्तसार दीपक अधिकार-१२, पृ. ४३० से ४३३ तक, ४३५ से ४३७ तक।

चित्राभूमिं विहायाधः खरांशे भवनेशिनाम्। नागादीनां नवानां स्युर्महान्ति भवनानि च।।८।।
ततोऽसुरकुमाराणां स्फुरद्रत्नमयान्यपि। भवनान्येव विद्यन्ते पङ्कभागे द्वितीयके।।९।।
चित्राभूमेरधो भागेऽल्पर्द्धियुक्त सुधाशिनाम्। योजनद्विसहस्रान्तं भवन्ति शाश्वता गृहाः।।१०।।
योजनानां द्विचत्वारिंशत्सहस्रान्तभूतले। महर्द्धियुतदेवानां विद्यन्ते प्रवरा गृहाः।।११।।
लक्षयोजनपर्यन्तं चित्राभूमेरधस्तले। मध्यमर्द्धियुतानां स्युर्देवानां विपुलालयाः।।१२।।
घनाङ्गुलस्य यन्मूलं प्रथमं श्रेणिसंगुणम्। तत्समा जातिभेदेन दशधा भावनामराः।।१३।।
असुरानागदेवाः सुपर्णाद्वीपास्तथाब्धयः। विद्युतः स्तनिताख्या दिक्कुमारा अग्निसंज्ञकाः।।१४।।
वाताभिधा इमे देवा दशभेदाः स्वजातितः। नाना सम्पद्युताः प्रोक्ता भावना आगमे जिनैः।।१५।।
कुमारा इव सर्वत्र कीडन्त्येते ततो मताः। असुरादिकुमाराश्च सर्वे सार्थकनामकाः।।१६।।
असुराः कृष्णसद्वर्णा नागाब्धयश्च पाण्डुराः। स्तनिता दिक्कुमाराः स्युः सुपर्णाः काञ्चनप्रभाः।।१७।।
विद्युद् द्वीपाग्नयो नीलवर्णा अत्यन्तसुन्दराः। अरुणा मरुतोऽत्रेति वर्णभेदान्विता इमे।।१८।।

अब भवनवासी देवों के स्थान विशेष का वर्णन करते हैं :—

अर्थ :— चित्रा भूमि को छोड़कर (चित्रा के) नीचे खरभाग में नागकुमार आदि नव प्रकार के भवनवासी देवों के महान वैभवशाली (विमान) भवन हैं और असुरकुमार जाति वाले भवनवासी देवों के रत्नमयी भवन दूसरे पङ्कभाग में हैं।।८-९।। चित्रा पृथ्वी के अधोभाग से दो हजार योजन नीचे तक अल्प ऋद्धिधारक भवनवासी देवों के शाश्वत भवन हैं।।१०।। भूतल में बयालीस हजार तक महाऋद्धिधारक भवनवासी देवों के उत्तम भवन हैं और चित्रा भूमि से नीचे एक लाख योजन तक मध्यम ऋद्धिधारक विमानवासी देवों के विपुल भवन हैं।।११-१२।।

अब भवनवासी देवों का प्रमाण दर्शाते हैं :—

अर्थ :— घनांगुल के प्रथमवर्ग मूल को जगत्छ्रेणी से गुणित करने पर जो प्रमाण प्राप्त होता है उतने ही दश प्रकार की जाति भेद से युक्त भवनवासी देवों का प्रमाण है।।१३।।

अब भवनवासियों के देश, जातियों के नाम और उनकी कुमार संज्ञा की सार्थकता का दिग्दर्शन करते हैं :—

अर्थ :-जिनेन्द्र भगवान ने आगम में अनेक प्रकार की संपत्ति से युक्त भवनवासी देवों के असुरकुमार, नागकुमार, सुपर्णकुमार, द्वीपकुमार, उदधिकुमार, विद्युतकुमार, स्तनितकुमार, दिक्कुमार, अग्निकुमार और वायुकुमार नामक दश भेद कहे हैं।।१४-१५।। ये सभी देव कुमारों के सदृश सर्वत्र क्रीडा करते हैं इसलिये इनके असुरकुमार आदि दसों कुलों के अन्त में कुमार शब्द सार्थक नामवाची है।।१६।।

अब दसों कुलों में अवस्थित असुरकुमारादि देवों के वर्ण और चिन्ह कहते हैं :—

अर्थ :— सभी असुरकुमार देव कृष्ण वर्ण के, नागकुमार और उदधिकुमार पाण्डु वर्ण के, स्तनित कुमार, दिक्कुमार और सुपर्णकुमार काञ्चन वर्ण के, विद्युतकुमार, द्वीपकुमार एवं अग्निकुमार ये सभी देव अत्यन्त सुन्दर नीलवर्ण के हैं और वायुकुमार के देव लालवर्ण के होते हैं इनमें इस प्रकार वर्ण भेद हैं।।१७-१८।।

मणिर्नागस्ततो दीप्तो गरुडो गजसत्तमः। मकरः स्वस्तिकं वज्रं सिंहश्च कलशस्ततः।।१९।।
तुरगोऽमूनि चिह्नानि राजन्ते मुकुटे क्रमात्। दशभेदानि दीप्राणि दशानां भावनात्मनाम्।।२०।।
असुराणां चतुःषष्टि लक्षाणि भवनानि च। नागानां चतुरग्राशीतिलक्षप्रमिता गृहाः।।२१।।
द्वासप्ततिश्च लक्षाणि सुपर्णानां गृहास्ततः। द्वीपानामुदधीनां च विद्युतां स्तनितात्मनाम्।।२२।।
दिगाख्यानां तथाग्नीनां प्रत्येकं भवनानि च। स्युः षट्सप्तति लक्षाणि वातानां गृहसत्तमाः।।२३।।
स्युः षण्णवति लक्षाण्यमी सर्वे पिण्डिता गृहाः। द्वासप्ततिश्च लक्षाणि सप्तकोटियुतानि च।।२४।।
भवनानि च षड्चत्वारिंशल्लक्षाणि सन्ति वै। इत्युक्तसंख्ययुक्तानि नानारत्नमयानि च।।४३।।
एकैकजिनचैत्यालयालङ्कृतोन्नतान्यपि। दिव्यैश्चैत्यद्रुमैर्मानस्तम्भैः कूटध्वजोत्करैः।।४४।।
भूषितानि भृतानि स्त्रीवृन्दसैन्यामरादिभिः। गीतनर्तनवाद्यादि जिनार्चोत्सवकोटिभिः।।४५।।
रम्याणि विस्फुरच्छुद्धमणिभित्तिमयान्यपि। दिव्यामोदप्रपूर्णानि सर्वाक्षसुखदानि वै।।४६।।
जम्बूद्वीपप्रमव्यासा जघन्या सद्गृहा मताः। संख्ययोजनविस्ताराः केचिच्च मध्यमाः शुभाः।।४९।।
असंख्ययोजनव्यासा उत्कृष्टा भवनोत्कराः। क्रमेणैतेऽसुरादीनां दशधा चैत्यपादपाः।।५०।।
अश्वत्थः सप्तपर्णाख्यः शाश्वतः शाल्मली द्रुमः। जंबूश्च वेतसोवृक्षोऽथप्रियङ्गुः पलाशकः।।५१।।

दसों कुलों में उत्पन्न असुरकुमार आदि भवनवासी देवों के मुकुटों में क्रम से चूड़ामणि, नाग, गरुड़, उत्तम हाथी, मगर, स्वस्तिक, वज्र, सिंह, कलश और अश्व ये देदीप्यमान दश चिह्न सुशोभित होते हैं।।१९-२०।।

अब भवनवासी देवों के भवनों की पृथक्-पृथक् संख्या कहते हैं :—

अर्थ :— असुरकुमार देवों के चौंसठ लाख भवन हैं। नागकुमार देवों के चौरासी लाख, सुवर्णकुमार के ७२ लाख, द्वीपकुमार के ७६ लाख, उदधिकुमार के ७६ लाख, विद्युत्कुमार के ७६ लाख, स्तनितकुमार के ७६ लाख, दिक्कुमार के ७६ लाख, अग्निकुमार के ७६ लाख और वायुकुमार के ९६ लाख भवन हैं।।२१-२३।। इन दस कुलों के सर्व भवनों का एकत्रित योग (६४ ला. + ८४ ला. + ७२ ला. + (७६ला. × ६)+९६=) ७,७२,००००० अर्थात् सात करोड़ बहत्तर लाख है।।२४।। इस प्रकार उपर्युक्त (७ करोड़ ७२ लाख) संख्या से युक्त ये सभी भवन रत्नमय हैं।।४३।। ये प्रत्येक भवन उन्नत चैत्यालयों से अलंकृत हैं, दिव्य चैत्यवृक्षों, मानस्तम्भों, कूटों और ध्वजा समूहों से विभूषित हैं, देवांगनाओं के समूहों से एवं देवों के सैन्य समूहों से भरे रहते हैं, गीत, नृत्य एवं वाद्य आदि से और जिनपूजन के करोड़ों उत्सवों से रम्य हैं, देदीप्यमान उत्तम मणियों की भित्तियों से निर्मित हैं, दिव्य आमोदों से परिपूर्ण हैं और पाँचों इन्द्रिय के सम्पूर्ण सुखों को देने वाले हैं।।४४-४६।।

अब उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य भवनों का प्रमाण तथा जिनेन्द्रप्रतिमायुक्त दस प्रकार के कल्पवृक्षों का वर्णन करते हैं :—

अर्थ :— भवनवासियों के जघन्य भवनों का व्यास जंबूद्वीप प्रमाण अर्थात् एक लाख योजन है । मध्यम भवनों का व्यास संख्यात योजन और उत्कृष्ट भवनों का विस्तार असंख्यात योजन प्रमाण है । असुरकुमार आदि दस कुलों के क्रम से अश्वत्थ—पीपल, सप्तपर्ण,शाल्मलि—सेमल, जम्बू—जामुन, वेतस—बेंत का वृक्ष, प्रियंगु,पलाश—ढाक, शिरीष—सिरस, कदम्ब और राजद्रुम—कृतमाल ये दश चैत्यवृक्ष हैं। रत्नपीठ पर

शिरीषाख्यः कदम्बश्च राजद्रुम इमे शुभाः। रत्नपीठाश्रिता रत्नमया रत्नांशुदीपिताः।।५२।।
असुरादिदशानां दशविधा चैत्यपादपाः। रत्नोपकरणोपेता दीप्ता भवन्ति शाश्वताः।।५३।।
मूलेऽमीषां चतुर्दिक्षुप्रत्येकं सुरपूजिताः। पञ्च पञ्च प्रमाः सन्ति जिनेन्द्रप्रतिमाः पराः।।५४।।
पञ्चपञ्चप्रमाणाः स्युर्मानस्तम्भा महोन्नताः। रत्नपीठाश्रिता हेमघण्टाध्वजादि शोभिताः।।५५।।
तीर्थेशप्रतिमासारैः शिरोभागविराजिताः। मणिदीप्ताश्च सर्वेषां भवनानां दिशं प्रति।।५६।।

भवनवासी व व्यंतरदेवों के आवास

(लोकविभाग से)

सहस्रमवगाह्याधो व [वा] नान्तरसुरालयाः। आलोकान्ताद् गता वेद्या द्विसहस्रेऽल्पभावनाः[१]।।९४।।
। १००० ।
द्विचत्वारिंशतं गत्वा सहस्राणामितः परम्। महद्धिभावना देवास्तत्र तिष्ठन्ति सर्वतः।।९५।।
। ४२०००।
योजनानामितो गत्वा नियुतं भावनालयाः। ततोऽतीत्य सहस्रं च तत्राद्या नरकालयाः।।९६।।
।१०००००।
रत्नकूटकमध्यानि सर्वरत्नमयानि च। त्रिशतोच्चानि रम्याणि भवनान्यैन्द्रकाणि च।।९७।।

स्थित रत्नमय, रत्नकिरणों से देदीप्यमान, प्रकाशमान रत्न के उपकरणों से युक्त, अत्यन्त रमणीक और शाश्वत ये दस प्रकार के चैत्यवृक्ष असुरकुमार आदि दस कुलों में से क्रमशः प्रत्येक के एक-एक हैं।।४९-५३।। इन प्रत्येक चैत्यवृक्षों के मूल में चारों दिशाओं में से प्रत्येक दिशा में देवसमूहों से पूज्य परमोत्कृष्ट **पांच-पांच जिनेन्द्र प्रतिमाएँ** हैं।।५४।।

अब मानस्तम्भों का वर्णन करते हैं :—

अर्थ :—संपूर्ण भवनों (चैत्यवृक्षों) की प्रत्येक दिशा में तीर्थंकरों की सर्वोत्कृष्ट प्रतिमाओं से जिनके शिरोभाग विभूषित हैं ऐसे देदीप्यमान मणियों से निर्मित, स्वर्णमय घण्टाओं एवं ध्वजाओं से सुशोभित, रत्नपीठ पर स्थित महाउन्नत पाँच-पाँच मानस्तम्भ हैं।।५५-५६।।

भवनवासी व व्यंतरदेवों के आवास

(लोकविभाग से)

चित्रा पृथिवी से नीचे एक हजार (१०००) योजन जाकर लोकपर्यन्त व्यन्तर देवों के आश्चर्यजनक भवन स्थित जानना चाहिए। अल्पर्द्धिक भवनवासी देवों के भवन उससे दो हजार (२०००) योजन नीचे जाकर अवस्थित हैं।।९४।। उससे बयालीस हजार (४२०००) योजन नीचे जाकर वहाँ सब ओर महर्द्धिक भवनवासी देव स्थित हैं।।९५।। इससे एक लाख (१०००००) योजन नीचे जाकर मध्यमर्द्धिक भवनवासी देव स्थित हैं।।९६।। वे रमणीय ऐन्द्रक भवन मध्य में रत्नमय कूट से संयुक्त, सर्व रत्नों से निर्मित और तीन सौ (३००) योजन ऊँचे हैं।।९७।। असुरकुमारों का गमन ऊपर ऐशान स्वर्ग तक होता है। यह उपर्युक्त विवरण बिन्दुमात्र

---

१. लोकविभाग विभाग-७, पृ. १४४।

असुराणां गतिश्चोर्ध्वमैशानात्खलु कल्पतः। बिन्दुमात्रमिदं शेषं ग्राह्यं लोकानुयोगतः।।९८।।
ऋद्धिर्दिव्या संततरम्या भवनानामात्तैः पुण्यैर्हस्तगतैषा मनुजानाम्।
एवं मत्वा साधु चरन्तश्चरितानि रंरम्यन्ते मत्तमयूरा इव तेषु।।९९।।
इयं रत्नप्रभा भूमिस्त्रेधा स्यादिति वर्णिता। खरभागः पङ्कभागश्च भागश्चाब्बहुलादिकः[1]।।१।।
प्रथमः षोडशाभ्यस्तसहस्रबहुलः स्मृतः। द्वितीयश्चतुरशीतिघ्नसहस्रबहुलो भवेत्।।२।।
। १६०००। ८४०००।
सहस्रगुणितोशीतिबहुलोऽब्बहुलो भवेत्। पूर्वयोर्भवनावासास्तृतीये नरकाः स्मृताः।।३।।
।८००००।
अधश्चोर्ध्व सहस्रं स्युस्त्यक्त्वास्यां प्रतरा भुवि। नरकावासकेष्वेषु प्रथमा नरकाः स्मृताः।।४।।
शर्करावालुकापङ्कप्रभा धूमप्रभेति च। तमःप्रभा च षष्ठी भूः सप्तमी च महातमः।।५।।
घर्मा वंशा च शैला च अञ्जनारिष्टसंज्ञका। मघवी माघवी चेति गोत्रनामानि सप्त च।।६।।
द्वात्रिंशदष्टाविंशतिश्चतुरग्रा च विंशतिः। विंशतिः षोडशाष्टौ च सहस्राणि क्रमाद् घनाः।।७।।
तिर्यग्लोकप्रविस्तारसंमितान्यन्तराणि च। सप्तानामपि भूमीनामाहुर्लोकतलस्य च।।८।।
घनोदधिघनानिलस्तनुवातस्त्रयोऽनिलाः। भूमीनां च तले लोकबहिर्भागे भवन्त्यमी।।९।।

अर्थात् बहुत संक्षिप्त है। शेष कथन लोकानुयोग से जानना चाहिए।।९८।। निरन्तर रमणीय यह भवनवासी देवों की ऋद्धि मनुष्यों के लिए पूर्वप्राप्त पुण्य से हस्तगत होती है, ऐसा समझकर साधु आचरण करने वाले प्राणी उन भवनों में मत्त मयूरों के समान बार-बार रमते हैं।।९९।।

यह रत्नप्रभा भूमि खरभाग, पंकभाग और अब्बहुलभाग के भेद से तीन प्रकार की कही गई है।।१।। इनमें खरभाग नाम का प्रथम भाग सोलह हजार (१६०००) योजन, द्वितीय भाग चौरासी हजार (८४०००) योजन और तीसरा अब्बहुल भाग अस्सी हजार (८००००) योजन प्रमाण मोटा है। उनमें से पूर्व के दो भागों (खरभाग और पंकभाग) में भवनवासी देवों के आवास हैं तथा तीसरे अब्बहुल भाग में नरक माने गए हैं।।२-३।। इस पृथिवी में नीचे और ऊपर एक-एक हजार (१०००) योजन छोड़कर नारक पटल स्थित हैं। इस नरकावासों में प्रथम नरक के बिल माने गए हैं।।४।। उस रत्नप्रभा पृथिवी के नीचे क्रम से शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, छठी तमप्रभा और सातवीं महातमप्रभा पृथिवी स्थित है।।५।। इन पृथिवियों के क्रम से घर्मा, वंशा, शैला, अंजना, अरिष्टा, मघवी और माघवी; ये सात गोत्रनाम हैं।।६।। शर्कराप्रभा को आदि लेकर इन पृथिवियों की मोटाई क्रम से बत्तीस हजार (३२०००), अट्ठाईस हजार (२८०००), चौबीस हजार (२४०००), बीस हजार (२००००), सोलह हजार (१६०००) और आठ हजार (८०००) योजन प्रमाण है।।७।। इन सातों पृथिवियों तथा लोकतल के मध्य में तिर्यग्लोक के विस्तारप्रमाण अर्थात् एक-एक राजू का अन्तर है।।८।। इन पृथिवियों के तलभाग में तथा लोक के बाह्य भाग में क्रम से घनोदधि, घनवात और तनुवात ये तीन वातवलय स्थित हैं।।९।। इनमें घनोदधि का वर्ण गोमूत्र जैसा, घनवात का मूंग के समान और तनुवात का वर्ण अनेक प्रकार का है।।१०।। उपर्युक्त पृथिवियों के तलभाग में

---

१. लोकविभाग, अष्टम विभाग, पृ. १४५।

घनोदधिश्च गोमूत्रवर्णः स्याद् घनवातकः। मुद्गवर्णनिभो नानावर्णश्च तनुवातकः।।१०।।
भूलोकतलवायूनां द्विहतायुतयोजनम्। बाहल्यं च पृथग्मूलाद्यावद्रज्जुप्रमाणकम्।।११।।
। २००००।

भवनवासी एवं व्यंतरदेवों के निवासस्थान

(तत्त्वार्थवार्तिक से[1])

अस्याः रत्नप्रभायाः पङ्कबहुलभागेऽसुरकुमाराणां भवनानि चतुःषष्टिशतसहस्राणि। अस्माज्जम्बूद्वीपात् तिर्यगपागसंख्येयान् द्वीपसमुद्रान् अतीत्य पङ्कबहुलभागे चमरस्याऽसुरेन्द्रस्य चतुस्त्रिंशद्भवनशतसहस्राणि, चतुःषष्टिसामानिकसहस्राणि, त्रयस्त्रिंशत्त्रायस्त्रिंशाः, तिस्रः परिषदः, सप्तानीकानि चत्वारो लोकपालाः, पञ्चाग्रमहिष्यः, चत्वारि चतुःषष्ट्युत्तराणि आत्मरक्षसहस्राणि, एवं विभवपरिवारः दक्षिणार्धपतिः दिव्यान् भोगान् अनुभवति। तथोत्तरस्यां दिशि वैरोचनस्य त्रिंशद्भवनशतसहस्राणि षष्टिसामानिकसहस्राणि, त्रयस्त्रिशत्त्रायस्त्रिंशाः, तिस्रः परिषदः, सप्तानीकानि, चत्वारो लोकपालाः, पञ्चाग्रमहिष्यः, चत्वारि चतुःषष्ट्युत्तराणि आत्मरक्षसहस्राणि, एवं विभवपरिवारः उत्तरार्धपतिः दिव्यान् भोगान् अनुभुङ्क्ते।

खरपृथ्वीभागे उपर्यधश्चैकैकयोजनसहस्रं वर्जयित्वा शेषे नवानां कुमाराणां भवनानि भवन्ति। तद्यथा— अस्माज्जम्बूद्वीपात्तिर्यगपागसंख्येयान् द्वीपसमुद्रानतीत्य धरणस्य नागराजस्य चतुश्चत्वारिंशत् भवनशतसहस्राणि,

---

तथा लोक के भी तलभाग में स्थित इन वातवलयों में से प्रत्येक का बाहल्य पृथक्-पृथक् दुगुणे दस अर्थात् बीस हजार (२००००) योजन प्रमाण है यह उनका बाहल्यप्रमाण लोक के उभय पार्श्वभागों में मूल से लेकर एक राजूमात्र ऊपर जाने तक है।।११।।

भवनवासी एवं व्यंतरदेवों के निवासस्थान

(तत्त्वार्थवार्तिक से)

इस रत्नप्रभा पृथ्वी के पंकबहुल भाग में असुरकुमार देवों के चौंसठ लाख भवन हैं। इस जम्बूद्वीप से तिरछे दक्षिण दिशा में असंख्यात द्वीप समुद्रों के बाद पङ्कबहुल भाग में चमर नामक असुरेन्द्र के चौंतीस लाख भवन हैं। इस असुरेन्द्र के चौंसठ हजार सामानिक, तेतीस त्रायस्त्रिंश, तीन सभा, सात प्रकार की सेना, चार लोकपाल, पाँच अग्रमहिषी (पटरानी) और चार हजार चौंसठ आत्मरक्षक हैं। इस दिव्य वैभव और परिवार के साथ दक्षिणाधिपति चमर नामक असुरेन्द्र दिव्य भोगों का अनुभव करता है। जम्बूद्वीप की उत्तरदिशा में तिरछे असंख्यात द्वीप समुद्रों के बाद पङ्कबहुल भाग में वैरोचन नामक असुरेन्द्र के तीस लाख भवन हैं। उसके साठ हजार सामानिक हैं, तेतीस त्रायस्त्रिंश, तीन परिषद्, सात अनीक, चार लोकपाल, पाँच अग्रमहिषी और चार हजार चौंसठ आत्मरक्षक हैं। इस प्रकार के विभव एवं परिवार के साथ उत्तराधिपति वैरोचन नामक असुरेन्द्र विविध प्रकार के दिव्य भोगों का अनुभव करता है। चमरेन्द्र के ३४ लाख और वैरोचन के तीस लाख, दोनों के मिलाकर पङ्कबहुल भाग में कुल चौंसठ लाख भवन हैं।

---

१. तत्त्वार्थवार्तिक-पृ. ६०२ से ६०६ तक।

षष्टिसामानिकसहस्राणि, त्रयस्त्रिंशत्त्रायस्त्रिंशाः, त्रिस्रः परिषदः, सप्तानीकानि, चत्वारो लोकपालाः, षडग्रमहिष्यः, षडात्मरक्षसहस्राण्याख्यायन्ते। तथा अस्माज्जम्बूद्वीपात्तिर्यगुदगसंख्येयान् द्वीपसमुद्रान् अतीत्य भूतानन्दस्य नागेन्द्रस्य चत्वारिंशद्भवनशतसहस्राणि, अवशिष्टं धरणेन्द्रवज्ज्ञेयम्। तान्येतानि नागकुमाराणां चतुरशीतिभवनशतसहस्राणि।

तथा सुपर्णकुमाराणां द्विसप्ततिर्भवनशतसहस्राणि। तत्र वेणुदेवस्य दक्षिणाधिपतेः अष्टत्रिंशद्भवनशत-सहस्राणि। इतरद्धरणेन्द्रवन्नेयम्। उत्तराधिपतेर्वेणुधारिणः चतुस्त्रिंशतद्भवनशतसहस्राणि। अवशिष्टं धरणेन्द्रवन्नेयम्। विद्युदग्निस्तनितोदधिद्वीपदिक्कुमाराणां षण्णामपि प्रत्येकं षट्सप्ततिर्भवनशतसहस्राणि। तत्र दक्षिणेन्द्राणां हरिसिंहाग्निशिखसुघोषजलकान्तपूर्णामितगतीनां प्रत्येकं चत्वारिंशद्भवनशतसहस्राणि। हरिकान्ताग्निमाणवमहा-घोषजलप्रभवशिष्टामितवाहनानां उत्तराधिपतीनां प्रत्येकं षट्त्रिंशद्भवनशतसहस्राणि । वातकुमाराणां षण्णवतिर्भवनशतसहस्राणि । तत्र वैलम्बस्य दक्षिणेन्द्रस्य पञ्चाशद्भवनशतसहस्राणि । उत्तराधिपतेः प्रभञ्जनस्य षट्चत्वारिंशद्भवनशतसहस्राणि । सर्वेषामेषां धरणेन्द्रवन्नेयम् । तान्येतानि भवनानि समुदितानि सप्तकोट्यो द्विसप्ततिश्च शतसहस्राणि ।

द्वितीयनिकायस्य सामान्यविशेषसंज्ञावधारणार्थमाह—

व्यन्तराः किन्नरकिम्पुरुषमहोरगगन्धर्वयक्षराक्षसभूतपिशाचाः।।११।।

खर पृथ्वी भाग के ऊपर नीचे एक-एक हजार योजन छोड़कर शेष भागों में शेष नवकुमारों के भवन हैं। जैसे—इस जम्बूद्वीप से तिरछी ओर दक्षिणदिशा में असंख्यात द्वीप-समुद्रों का उल्लंघन कर धरण नागराज के चवालीस लाख भवन हैं। इसके साठ हजार सामानिक, तेतीस त्रायस्त्रिंश, तीन परिषद्, सात अनीक, चार लोकपाल, छह अग्रमहिषी और छह हजार आत्मरक्षक देव हैं। इस जम्बूद्वीप से तिरछी ओर उत्तरदिशा में असंख्यात द्वीप समुद्रों का उल्लंघन करके भूतानन्द नागेन्द्र के चालीस लाख भवन हैं। इसका शेष वैभव धरणेन्द्र के समान जानना चाहिये। ये सब मिलाकर नागकुमारों के चौरासी लाख भवन हैं।

सुपर्णकुमारों के बहत्तर लाख भवन हैं। उनमें दक्षिणदिशा के अधिपति वेणुदेव के अड़तीस लाख और उत्तराधिपति वेणुधारी इन्द्र के चौंतीस लाख भवन हैं। इनका वैभव और परिवार धरणेन्द्र के समान है। विद्युत्कुमार, अग्निकुमार, स्तनितकुमार, उदधिकुमार, द्वीपकुमार और दिक्कुमार इनमें से प्रत्येक के छिहत्तर लाख भवन हैं। इनमें दक्षिणेन्द्र हरिसिंह, अग्निशिख, सुघोष, जलकान्त, पूर्णभद्र और अमितगति इन प्रत्येक के चालीस-चालीस लाख भवन हैं। हरिकान्त, अग्निमाणव, महाघोष, जलप्रभ, वशिष्ट और अमितवाहन इन प्रत्येक उत्तरेन्द्र के छत्तीस-छत्तीस लाख भवन हैं। वातकुमारों के छियानवे लाख भवन हैं । इनमें दक्षिणेन्द्र वैलम्ब के पचास लाख भवन हैं और उत्तराधिपति प्रभञ्जन के छियालीस लाख भवन हैं। विद्युत्कुमार आदि सातों प्रकार के भवनवासियों का सामानिक देव आदि परिवार धरणेन्द्र के समान है। इस प्रकार सब मिलाकर भवनवासी देवों के सात करोड़ बहत्तर लाख भवन हैं।।८।।

द्वितीय निकाय (व्यन्तरों) की सामान्य विशेष संज्ञाओं की अवधारणा के लिए सूत्र कहते हैं—

किन्नर, किम्पुरुष, महोरग, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, भूत और पिशाच ये व्यन्तरों के आठ भेद हैं।।११।।

विविधदेशान्तरनिवासित्वाद् व्यन्तराः।१। विविधदेशान्तराणि येषां निवासास्ते व्यन्तरा इत्यन्वर्थाः। सामान्यसंज्ञेयमष्टानामपि विकल्पानाम्।

किन्नरादयस्तद्विकल्पाः।२। तेषां व्यन्तराणामष्टौ विकल्पाः किन्नरादयो द्रष्टव्याः।

नामकर्मोदयविशेषतस्तद्विशेषसंज्ञाः।३। देवगतिनाम्नो मूलस्य उत्तरोत्तर-प्रकृतिभेदस्योदयाद्विशेषसंज्ञा भवन्ति। किन्नरनामकर्मोदयात् किन्नराः, किम्पुरुषनामकर्मोदयात् किम्पुरुषाः इत्यादि।

क्रियानिमित्ता एवेति चेत्; न; उक्तत्वात्।४। स्यादेतत्—क्रियानिमित्ताः एवैताः संज्ञाः, किन्नरान् कामयन्त इति किन्नराः, किम्पुरुषान् कामयन्त इति किम्पुरुषाः, पिशिताशनात् पिशाचा इत्यादि; तन्न; किं कारणम् ? उक्तत्वात्। उक्तमेतत्—अवर्णवाद एष देवानामुपरीति। कथम् ? न हि ते शुचिवैक्रियिकदेहा अशुच्यौदारिक शरीरान् नरान् कामयन्ते, नापि पिशितमश्नन्ति । मांसमदिरादिषु दृष्टा लोके प्रवृत्तिरिति चेत् ; न ; क्रीडासुखनिमित्तत्वात् , मानसाहारा हि ते। क्व पुनस्तेषामावासाः इति ? अत्रोच्यते—अस्माज्जम्बूद्वीपात्तिर्यग-पागसंख्येयान् द्वीपसमुद्रान् अतीत्य औपरिष्टे खरपृथिवीभागे किन्नरस्य किन्नरेन्द्रस्य असंख्येयानि नगर-शतसहस्राणि वर्ण्यन्ते। तस्य चत्वारि सामानिकसहस्राणि, तिस्रः परिषदः, सप्तानीकानि, चतस्रोऽग्रमहिष्यः, षोडशात्मरक्षसहस्राणि। उदीच्यां दिशि पूर्ववदेव किन्नरेन्द्रः किम्पुरुषस्तादृग्विभवपरिवारः। एवं शेषाणां षण्णां

विविध देशों में निवास करने वाले होने से ये व्यन्तर कहलाते हैं। विविध देशान्तरों में जिनका निवास है, वे व्यन्तर हैं। यह इनका सार्थक नाम है, किन्नर आदि आठों विकल्पों की सामान्य संज्ञा व्यन्तर है।।१।। किन्नरादि उसके विकल्प हैं। उन व्यन्तरों के किन्नरादि आठ विकल्प जानने चाहिये।।२।। नामकर्म के उदय विशेष से उनकी किन्नरादि विशेष संज्ञा है। मूल देवगति नामकर्म के उत्तरोत्तर प्रकृति भेद के उदय से किन्नरादि विशेष संज्ञा होती है। किन्नर नामकर्म के उदय से किन्नर, किम्पुरुष नामकर्म के उदय से किम्पुरुष , इत्यादि।।३।।

क्रियानिमित्तक इनकी संज्ञा कहना उचित नहीं है क्योंकि इसका पूर्व में खण्डन किया है।

प्रश्न—खोटे मनुष्यों को चाहने के कारण किन्नर, कुत्सित पुरुषों की कामना करने के कारण किम्पुरुष, मांस खाने से पिशाच आदि कारणों से ये संज्ञायें क्यों नहीं मानते ?

उत्तर—व्यन्तरों में किम्पुरुष आदि की क्रियानिमित्तक संज्ञा मानना उचित नहीं, यह सब तो देवों का अवर्णवाद है। ये देव पवित्र वैक्रियिक शरीरधारी होते हैं। ये कभी अशुचि औदारिक शरीर वाले मनुष्य आदि की कामना नहीं करते हैं और न मांस-मदिरादि के खान-पान में ही प्रवृत्त होते हैं। लोक में जो व्यंतरों की मांसादि ग्रहण की प्रवृत्ति सुनी जाती है, वह केवल उनकी क्रीडा मात्र है। उनके तो मानसिक आहार होता है।

प्रश्न—उन व्यन्तरों के रहने के स्थान कहाँ हैं ?

उत्तर—इस जम्बूद्वीप से तिरछे दक्षिण दिशा में असंख्यात द्वीप-समुद्रों के बाद नीचे खर पृथ्वी के ऊपरी भाग में दक्षिणाधिपति किन्नरेन्द्र का निवास है। वहाँ उसके असंख्यात लाख नगर हैं। इसके चार हजार सामानिक देव, तीन परिषद् (सभा), सात प्रकार की सेना ,चार अग्रमहिषियाँ और सोलह हजार आत्मरक्षक देव हैं। उत्तराधिपति किन्नरेन्द्र, किम्पुरुष का भी इतना ही विभव और परिवार है। उसका आवास उत्तर दिशा में है। शेष छह दक्षिणाधिपति—सत्पुरुष, अतिकाय, गीतिरति, पूर्णभद्र, स्वरूप और काल नामक इन्द्रों के आवास दक्षिण दिशा में हैं तथा उत्तराधिपति महापुरुष, महाकाय, गीतयश, मणिभद्र, अप्रतिरूप और महाकाल नामक व्यन्तरेन्द्रों

दक्षिणेन्द्राणां सत्पुरुषातिकायगीतिरतिपूर्णभद्रस्वरूपकालाख्यानां दक्षिणे भागे आवासाः। तथा महापुरुषमहाकायगीतयशोमणिभद्राऽप्रतिरूपमहाकालाख्यानां तु उत्तराधिपतीनाम् उत्तरभागे आवासास्तावन्त एव वेदितव्याः। राक्षसेन्द्रस्य भीमस्य दक्षिणस्यां दिशि पङ्कबहुलभागेऽसंख्येयानि नगरशतसहस्राणि आख्यायन्ते। उत्तरस्यां दिशि महाभीमस्य राक्षसेन्द्रस्य पङ्कबहुलभागेऽसंख्येयानि नगरशतसहस्राणि वर्ण्यन्ते। षोडशानामपि एषां व्यन्तरेन्द्राणां सामानिकादि परिवारास्तुल्याः। भूमितलेऽपि द्वीपाद्रिसमुद्रदेशग्रामनगरत्रिकचतुष्कचत्वरगृहाङ्गण-रथ्याजलाशयोद्यानदेवकुलादीनि असंख्येयानि आवासशतसहस्राणि तेषामाख्यायन्ते ।

भवनवासी एवं व्यंतरदेवों के स्थान कहाँ हैं ?

(तत्त्वार्थवृत्ति से[1])

भवनवासिनोऽसुरनागविद्युत्सुपर्णाग्निवातस्तनितोदधिद्वीपदिक्कुमाराः।।१०।।

असुरकुमाराणां पङ्कबहुलभागे भवनानि वर्तन्ते । शेषाणां नवानां खरबहुलभागे भवनानि सन्ति ।

अथेदानीं द्वितीयस्य निकायस्य उत्सर्गापवादसंज्ञाविज्ञापनार्थं सूत्रमिदमाहु—

व्यन्तराः किन्नरकिम्पुरुषमहोरगगन्धर्वयक्षराक्षसभूतपिशाचाः।।११।।

के आवास उत्तरदिशा में हैं और उनके रहने के स्थान — नगर असंख्यात लाख है। दक्षिण दिशा में पंकबहुल भाग में भीम नामक राक्षसेन्द्र के असंख्यात लाख नगर कहे गये हैं और उत्तराधिपति महाभीम नामक राक्षसेन्द्र के उत्तर दिशा में पंकबहुल भाग में असंख्यात लाख नगर हैं। इन सोलहों व्यन्तर-इन्द्रों के सामानिक आदि विभव-परिवार तुल्य हैं अर्थात् चार हजार सामानिक , तीन परिषद्, सात अनीक, चार अग्रमहिषियाँ और सोलह हजार आत्मरक्षक देव प्रत्येक इन्द्र के हैं । भूमितल पर भी द्वीप, पर्वत, समुद्र, देश, ग्राम, नगर, त्रिक (तिराहा), चौराहा, घर, आंगन, गली, जलाशय, उद्यान और देवमन्दिर आदि स्थानों में व्यन्तर देवों के असंख्यात लाख आवास कहे गये हैं।।४।।

भवनवासी एवं व्यंतरदेवों के स्थान कहाँ हैं ?

(तत्त्वार्थवृत्ति से)

भवनवासी देवों के असुरकुमार,नागकुमार,विद्युत्कुमार, सुपर्णकुमार, अग्निकुमार, वातकुमार, स्तनितकुमार, उदधिकुमार, द्वीपकुमार और दिक्कुमार ये दस भेद हैं।।१०।। विशिष्ट नामकर्म उदयजनित देवत्व स्वभाव होने पर भी इनकी वेश-भूषा, यान-वाहन और क्रीडा आदि नृपकुमारों के समान होती है इसलिये सब भवनवासियों में कुमार शब्द रूढ़ है। रत्नप्रभा के पङ्कबहुल भाग में असुरकुमारों के भवन हैं और खर पृथ्वी भाग में ऊपर नीचे एक-एक हजार योजन छोड़कर शेष नौ प्रकार के कुमारों के भवन हैं।

अब दूसरे निकाय की सामान्य और विशेष संज्ञा का निश्चय करने के लिये आगे का सूत्र कहते हैं—

व्यन्तर देव आठ प्रकार के हैं— किन्नर, किम्पुरुष, महोरग, गन्धर्व, राक्षस, भूत, और पिशाच।।११।।

---

१. तत्त्वार्थवृत्ति पृ.-३३७-३३८।

व्यन्तराः विविधदेशान्तराणि निवासा येषां ते व्यन्तराः इयं सामान्यसंज्ञा अन्वर्था वर्तते सत्यार्था वर्तते। कानि देशान्तराणि तेषां निवास इति चेत् ? निरूपयामि—एतस्माज्जम्बूद्वीपात् असङ्ख्येयद्वीपसमुद्रात् व्यतिक्रम्य स्थिते खरपृथ्वीभागे किन्नरकिम्पुरुषमहोरगगन्धर्वयक्षराक्षसभूतपिशाचानां सप्तप्रकाराणां व्यन्तराणां निवासाः सन्ति राक्षसानान्तु निवासाः तद्भागसमे खरभागसमपङ्कबहुलभागे वर्तन्ते।। किन्नराश्च किम्पुरुषाश्च महोरगाश्च गन्धर्वाश्च यक्षाश्च भूताश्च पिशाचाश्चेति द्वन्द्वः ते तथोक्ताः। एते अष्टप्रकारा व्यन्तरा विशेषसंज्ञा ज्ञातव्याः, देवगतिविशिष्टनामकर्म्मोदयसमुत्पन्ना इत्यर्थः।

जिनका नाना प्रकार के देशों में निवास है वे व्यन्तर देव कहलाते हैं। यह सामान्य संज्ञा सार्थक है।

प्रश्न—कौन-कौन से देश में उनका निवास है ?

उत्तर—इस जम्बूद्वीप के असंख्यात द्वीपों और समुद्रों को लाँघकर प्रथम भूमि के खर पृथिवी भाग में किन्नर, किम्पुरुष, महोरग, गन्धर्व, यक्ष, भूत और पिशाच ये सात प्रकार के व्यन्तर रहते हैं तथा खर भाग के समान ही पङ्कबहुल भाग में राक्षसों का निवास है । इन किन्नर आदि शब्दों में द्वन्द्व समास है। यह किन्नर आदि आठ प्रकार के व्यन्तरों की विशेष संज्ञा जाननी चाहिये । यह संज्ञा देवगति नामकर्म के उदय से होती है ।

श्री कुंथुजिन स्तुति

-गणिनी ज्ञानमती

–शंभु छन्द–

जितने भी पुद्गल इस जग में, सबको भोगा छोड़ा मैंने।
अब सब उच्छिष्ट सदृश मुझको, हा फिर भी ममता है इनमें।।
नभ के प्रत्येक प्रदेशों को, मैं जन्म-मरण से पूर्ण किया।
त्रिभुवन में जी भर घूम चुका, नहिं कुछ भी क्षेत्र अपूर्ण रहा।।1।।
अब काल लब्धि को पाकर मैं, भव भ्रमणों से अकुलाया हूँ।
निज शुद्ध स्वभाव प्रगट करके, स्थिर पद पाने आया हूँ।।
हे कुंथुनाथ! मैं नमूँ तुम्हें, अब दया करो भव फेर हरो।
तुम ही हो शरणागत रक्षक, अब मेरी बार न देर करो।।2।।
यह हस्तिनागपुर तीर्थ बना, प्रभु सूरसेन के घर जन्में।
श्रीकांता माता मुदित हुईं, जब गोद में खेला था तुमने।।
श्रावण वदि दशमी गर्भ तिथी, वैशाख सुदी एकम जनि की।
फिर वही तिथी दीक्षा दिन की, सित चैत्र तृतीया केवल की।।3।।
इक सौ चालिस कर देह तुंग, आयू पंचानवे सहस बरस।
अज लांछन कनक वर्ण सुन्दर, तुम कामदेव चक्रेश्वर प्रभु।।
वैशाख सुदी एकम तिथि में, सम्मेदाचल से मुक्ति वरी।
मुझ ''ज्ञानमती'' कैवल्य करो, बस यही प्रार्थना है मेरी।।4।।

व्यंतरदेवों के जिनमंदिर

(तिलोयपण्णत्ति से)

चोत्तीसादिसएहिं विम्हयजणणं सुरिंदपहुदीणं। णमिऊण सीदलजिणं वेंतरलोयं णिरूवेमा[१]।।१।।

रज्जुकदी गुणिदव्वा णवणउदिसहस्सअधियलक्खेणं। तम्मज्झे तिवियप्पा वेंतरदेवाण होंति पुरा।।५।।

४९। १,९९०००।

भवणं भवणपुराणिं आवासा इय भवंति तिवियप्पा। जिणमुहकमलविणिग्गदवेंतरपण्णत्तिणामाए।।६।।

रयणप्पहपुढवीए भवणाणिं दीवउवहिउवरिम्मि। भवणपुराणिं दहगिरिपहुदीणं उवरि आवासा।।७।।

बारससहस्सजोयणपरिमाणं होदि जेट्ठभवणाणं। पत्तेक्कं विक्खंभा तिण्णि सयाणं च बहलत्तं।।८।।

१२०००।३००।।

पणुवीस जोयणाणिं रुंदपमाणं जहण्णभवणाणं। पत्तेक्कं बहलत्तं तिचउब्भागप्पमाणं च।।९।।

अहवा रुंदपमाणं पुह पुह कोसो जहण्णभवणाणं। तव्वेदीउच्छेहो कोदंडाणिं पि पणुवीसं।।१०।।

को १। दं २५।। पाठान्तरम्।

बहलतिभागपमाणा कूडा भवणाण होंति बहुमज्झे। वेदी चउवणतोरणदुवारपहुदीहिं रमणिज्जा।।११।।

कूडाण उवरि भागे चेट्ठंते जिणवरिंदपासादा। कणयमया रजदमया रयणमया विविहविण्णासा।।१२।।

व्यंतर देवों के जिनमंदिर

(तिलोयपण्णत्ति से)

चौंतीस अतिशयों से देवेंद्र आदि जनों को आश्चर्य उत्पन्न करने वाले शीतल जिनेन्द्र को नमस्कार करके व्यंतरलोक का निरूपण करते हैं।।१।। राजू के वर्ग को एक लाख निन्यानवे हजार से गुणा करने पर जो प्राप्त हो उसके मध्य में व्यंतर देवों के तीन प्रकार के पुर होते हैं।।५।। जिन भगवान् के मुखरूप कमल से निकले हुए व्यंतरप्रज्ञप्ति नामक अधिकार में भवन, भवनपुर और आवास इस प्रकार के भवन कहे गये हैं।।६।। इनमें से रत्नप्रभा पृथ्वी में भवन, द्वीप-समुद्रों के ऊपर भवनपुर और द्रह एवं पर्वतादिकों के ऊपर आवास होते हैं ।।७।। उत्कृष्ट भवनों में से प्रत्येक का विस्तार बारह हजार योजन और बाहल्य तीन सौ योजन प्रमाण है।।८।।१२०००।३००।। जघन्य भवनों में से प्रत्येक के विस्तार का प्रमाण पच्चीस योजन और बाहल्य एक योजन के चार भागों में से तीन भाग मात्र है।।९।।

अथवा जघन्य भवनों के विस्तार का प्रमाण पृथक्-पृथक् एक कोश और उनकी वेदी की ऊँचाई पच्चीस धनुष है।।१०।। को.१।दं.२५।। पाठान्तर। भवनों के बहुमध्य भाग में वेदी, चार वन और तोरण द्वारादिकों से रमणीय ऐसे बाहल्य के तीसरे भागप्रमाण कूट होते हैं।।११।। **इन कूटों के उपरिम भाग पर विविध प्रकार के विन्यास से संयुक्त सुवर्ण, चांदी और रत्नमय जिनेन्द्रप्रासाद अर्थात् जिनमंदिर हैं।।१२।।** प्रत्येक

---

१. तिलोयपण्णत्ति अधिकार ६, पृ. ६४१ से ६४५, ६५५।

भिंगार-कलस-दप्पण-धय-चामर-वियण-छत्त-सुपइट्ठा। इय अट्ठुत्तरसयवरमंगलजुत्ता य पत्तेक्कं।।१३।।
दुंदुहि-मयंग-महल-जयघंटा-पडह-कंसतालाणं। वीणा-वंसादीणं सद्देहिं णिच्चहलबोला।।१४।।
सीहासणादिसहिदा चामरकरणागजक्खमिहुणजुदा। तेसुं अकिट्टिमाओ जिणिंदपडिमाओ विजयंते।।१५।।
कम्मक्खवणणिमित्तं णिब्भरभत्तीए विविहदव्वेहि। सम्माइट्ठी देवा जिणिंदपडिमाओ पूजंति।।१६।।
एदे कुलदेवा इय मण्णंता देवबोहणबलेण। मिच्छाइट्ठी देवा पूयंति जिणिंदपडिमाओ।।१७।।
एदाणं कूडाणं समंतदो वेंतराण पासादा। सत्तट्ठपहुदिभूमी विण्णासविचित्तसंठाणा।।१८।।
लंबंतरयणमाला वरतोरणरइदसुंदरदुवारा। णिम्मलविचित्तमणिमयसयणासणणिवहपरिपुण्णा।।१९।।
एवंविहरूवाणिं तीससहस्साणि होंति भवणाणिं। पुव्वोदिदभवणामरभवणसमं वण्णणं सबलं।।२०।
वट्टादिसरूवाणं भवणपुराणं हुवेदि जेट्ठाणं। एक्कावणलक्खाणं जोयणमेक्कं जहण्णाणं।।२१।।

५,१००००० जो।१।

कूडा जिणिंदभवणा पासादा वेदिया वणप्पहुदी। भवणसरिच्छं सव्वं भवणपुरेसुं पि दट्ठव्वं।।२२।।
बारससहस्सबेसयजोयणवासा य जेट्ठआवासा। होंति जहण्णाबासा तिकोसपरिमाणवित्थारा।।२३।।

१२२००। को. ३।

कूडा जिणिंदभवणा पासादा वेदिया वणप्पहुदी। भवणपुराण सरिच्छं आवासाणं पि णादव्वा।।२४।
किंणरकिंपुरुसमहोरगा य गंधव्वजक्खरक्खसिया। भूदपिसाया एवं अट्ठविहा वेंतरा होंति।।२५।।

जिनेन्द्रप्रासाद झारी, कलश, दर्पण, ध्वजा, चंवर, बीजना, छत्र और ठोना, इन एक सौ आठ-आठ उत्तम मंगल द्रव्यों से संयुक्त हैं।।१३।। उपर्युक्त जिनेन्द्रप्रासाद दुन्दुभी, मृदंग, मर्दल, जयघंटा, भेरी, झांझ, वीणा और बांसुरी आदि वादित्रों के शब्दों से हमेशा मुखरित रहते हैं ।।१४।। उन जिनेन्द्र भवनों में सिंहासनादि प्रातिहार्यों से सहित और हाथ में चामरों को लिये हुए नागयक्ष देवयुगलों से संयुक्त ऐसी अकृत्रिम जिनेन्द्रप्रतिमायें जयवन्त होती हैं।।१५।। सम्यग्दृष्टि देव कर्मक्षय के निमित्त गाढ़ भक्ति से विविध द्रव्यों के द्वारा उन जिनेन्द्रप्रतिमाओं की पूजा करते हैं।।१६।। अन्य देवों के उपदेशवश मिथ्यादृष्टि देव भी 'ये कुलदेवता हैं' ऐसा समझकर उन जिनेन्द्रप्रतिमाओं की पूजा करते हैं।।१७।। इन कूटों के चारों ओर सात-आठ आदि भूमियों के विन्यास और विचित्र आकृतियों से सहित व्यंतरों के प्रासाद हैं।।१८।। ये प्रासाद लम्बायमान रत्नमालाओं से सहित, उत्तम तोरणों से रचित सुन्दर द्वारों वाले और निर्मल एवं विचित्र मणिमय शयनों तथा आसनों के समूह से परिपूर्ण हैं।।१९।। इस प्रकार के स्वरूप वाले ये प्रासाद तीस हजार प्रमाण हैं। इनका सम्पूर्ण वर्णन पूर्व में कहे हुए भवनवासी देवों के भवनों के समान है।।२०।। वृत्त इत्यादि स्वरूप से संयुक्त उत्कृष्ट भवनपुरों का विस्तार इक्यावन लाख योजन और जघन्य भवनपुरों का विस्तार एक योजन मात्र है।।२१।।यो.५१०००००।१। कूट, जिनेन्द्रभवन, प्रासाद, वेदिका और वन आदि सब भवनों के सदृश भवनपुरों में भी जानना चाहिये ।।२२।। उत्कृष्ट आवास बारह हजार दो सौ योजन प्रमाण विस्तार वाले और जघन्य आवास तीन कोश प्रमाण विस्तार वाले हैं ।।२३।। कूट, जिनेन्द्रभवन,प्रासाद, वेदिका और वन आदि भवनपुरों के सदृश आवासों के भी जानना चाहिये ।।२४।। किन्नर, किम्पुरुष, महोरग, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, भूत, और पिशाच, इस प्रकार व्यन्तर देव आठ प्रकार के होते हैं।।२५।। भूतों के चौदह हजार प्रमाण और

चोद्दससहस्समेत्ता भवणा भूदाण रक्खसाणं पि। सोलससहस्ससंखा सेसाणं णत्थि भवणाणिं।।२६।।

१४०००।१६०००।

व्यंतर देवों के चैत्यवृक्ष

किंणरकिंपुरुसादियवेंतरदेवाण अट्ठभेयाणं। तिवियप्पणिलयपुरदो चेत्तदुमा होंति एक्केक्का।।२७।।
कमसो असोयचंपयणागडुमतुंबुरू य णग्गोहे। कंटयरुक्खो तुलसी कदंब विदओ त्ति ते अट्ठं।।२८।।
ते सव्वे चेत्ततरू भावणसुरचेतरुक्खसारिच्छा। जीउप्पत्तिलयाणं हेऊ पुढवीसरूवा य।।२९।।
मूलम्मि चउदिसासुं चेत्ततरूणं जिणिंदपडिमाओ। चत्तारो चत्तारो चउतोरणसोहमाणाओ।।३०।।
पल्लंकआसणाओ सपाडिहेराओ रयणमइयाओ। दंसणमेत्तणिवारिददुरिताओ देंतु वो मोक्खं।।३१।।
संखेज्जजोयणाणिं संखेज्जाऊ य एक्कसमयेणं। जादि असंखेज्जाणिं ताणि असंखेज्जआऊ य।।९७।।
अट्ठाण वि पत्तेक्कं किंणरपहुदीण वेंतरसुराणं। उच्छेहो णादव्वो दसकोदंडप्पमाणेणं।।९८।।
चउलक्खाधियतेवीसकोडिअंगुलयसूइवग्गेहिं। भजिदाए सेढीए वग्गे भोमाण परिमाणं।।९९।।

४̿। ५३०८४१६०००००००००००।

संखातीदविभत्ते विंतरवासम्मि लद्धपरिमाणा। उप्पज्जंता देवा मरमाणा होंति तम्मत्ता।।१००।।

राक्षसों के सोलह हजार प्रमाण भवन हैं। शेष व्यन्तरों के भवन नहीं हैं।।२६।। १४०००।१६०००।।

व्यंतर देवों के चैत्यवृक्ष

किन्नर-किम्पुरुषादिक आठ प्रकार के व्यन्तर देवों संबंधी तीनों प्रकार के (भवन, भवनपुर, आवास) भवनों के सामने एक-एक चैत्यवृक्ष है।।२७।। अशोक, चम्पक, नागद्रुम, तुम्बरु, न्यग्रोध (वट), कण्टकवृक्ष, तुलसी और कदम्ब वृक्ष, इस प्रकार क्रम से वे चैत्यवृक्ष आठ प्रकार के हैं।।२८।। ये सब चैत्यवृक्ष भवनवासी देवों के चैत्यवृक्षों के सदृश जीवों की उत्पत्ति व विनाश के कारण और पृथिवीस्वरूप हैं।।२९।। **चैत्यवृक्षों के मूल में चारों ओर चार तोरणों से शोभायमान चार-चार जिनेन्द्रप्रतिमायें विराजमान हैं।।३०।।** पल्यंक आसन से स्थित, प्रातिहार्यों से सहित और दर्शनमात्र से ही पाप को दूर करने वाली वे रत्नमयी जिनेन्द्रप्रतिमायें आप लोगों को मोक्ष प्रदान करें।।३१।। संख्यात वर्ष प्रमाण आयु से युक्त व्यंतर देव एक समय में संख्यात योजन और असंख्यात वर्ष प्रमाण आयु से युक्त वह असंख्यात योजन जाता है।।९७।। किन्नर प्रभृति आठों व्यंतर देवों में से प्रत्येक की ऊंचाई दश धनुषप्रमाण जानना चाहिये ।।९८।। तेईस करोड़ चार लाख सूच्यंगुलों के वर्ग का (अर्थात् तीन सौ योजन वर्ग का) जगश्रेणी के वर्ग में भाग देने पर जो लब्ध आवे उतना व्यन्तर देवों का प्रमाण है असंख्यातों हैं ।।९९।। व्यन्तरों के असंख्यात का भाग देने पर जो लब्ध आवे उतने देव उत्पन्न होते हैं और उतने ही मरते हैं ।।१००।।

व्यंतरदेवों के जिनमंदिर

(त्रिलोकसार से)

अथ तेषां भवनावस्थितस्थानानि गाथाद्वयेनाह—

वेंतर अप्पमहड्डियमज्झिमभवणामराण भवणाणि। भूमीदोधो इगिदुगवादालसहस्सइगिलक्खे[1]।।२२१।।

व्यन्तराणां अल्पमहर्धिकमध्यमभवनामराणां भवनानि। भूमितोधः एकद्विकद्वाचत्वारिंशत्सहस्रएकलक्षाणि।।२२१।।

वतर। व्यन्तराणां अल्पर्धिमहर्धिकमध्यमर्धिभवनामराणां च भवनानि चित्राभूमितः अधोधः एकसहस्रद्विसहस्रद्वाचत्वारिंशत्सहस्रएकलक्षाणियोजनानि गत्वा भवन्ति ।।२२१।।

रयणप्पहपंकड्ढे भागे असुराण होंति आवासा। भौम्मेसु रक्खसाणं अवसेसाणं खरे भागे ।।२२२।।

रत्नप्रभापङ्काढ्ये भागे असुराणां भवन्ति आवासाः। भौमेषु राक्षसानां अवशेषाणां खरे भागे ।।२२२।।

रमण। भौमेषु व्यन्तरेषु, अवशेषाणां नागादीनां इत्यर्थः । शेषं छायामात्रमेवार्थः।।२२२।।

अथ व्यन्तराणां निलयभेदमाह—

विंतरणिलयतियाणि य भवणपुरावासभवणणामाणि। दीवसमुद्दे दहगिरितरुम्हि चित्तावणिम्हि कमे ।।२९४।।

व्यन्तरनिलयत्रयाणि च भवनपुरावासभवननामानि। द्वीपसमुद्रे द्रहगिरितरौ चित्रावन्यां क्रमेण ।।२९४।।

व्यंतरदेवों के जिनमंदिर

(त्रिलोकसार से)

अब उन भवनों में स्थित स्थानों का वर्णन दो गाथाओं में किया जाता है —

गाथार्थ :—चित्रा पृथ्वी से एक हजार योजन नीचे व्यन्तर देवों के आवास हैं । दो हजार योजन–दो हजार योजन नीचे जाकर अल्पऋद्धि के धारक भवनवासी देवों के विमान हैं। बयालीस हजार योजन नीचे जाकर महाऋद्धि के धारक भवनवासी देवों के भवन हैं तथा एक लाख योजन नीचे जाकर मध्यम ऋद्धिधारक देवों के भवन हैं।।२२१।।

विशेषार्थ :—व्यन्तर देव तथा अल्पर्द्धि, महर्द्धिक और मध्यम ऋद्धि के धारक भवनवासी देवों के आवास और भवन क्रमशः चित्रा पृथ्वी के नीचे एक हजार, दो हजार, बयालीस हजार और एक लाख योजन जाकर हैं।

आवास और भवन में अन्तरः—रमणीक तालाब, पर्वत तथा वृक्षादिक के ऊपर स्थित निवासस्थानों को आवास कहते हैं तथा रत्नप्रभा पृथ्वी में स्थित निवासस्थानों को भवन कहते हैं।

गाथार्थ :—रत्नप्रभा पृथ्वी के पङ्कभाग में असुरकुमारों के भवन हैं; भौमेषु अर्थात् व्यन्तरों में केवल राक्षसों के आवास पङ्कभाग में हैं, शेष भवनवासी एवं व्यंतरों के आवास खरभाग में हैं।।२२२।।

विशेषार्थ :—रत्नप्रभा पृथ्वी के प्रधानतः तीन भाग हैं; पहले खरभाग में नागकुमारादि नौ प्रकार के भवनवासियों के भवन तथा राक्षसों के अतिरिक्त शेष सात प्रकार के व्यन्तरों के आवास हैं । यह भाग १६०००

---

१. त्रिलोकसार पृ. २०७-२०८, २४७ से २५० तक।

विंतर । व्यन्तराणां निलयत्रयाणि च भवनपुरं आवासं भवनमिति नामानि। इह कुत्र कुत्रेति चेत्। द्वीपसमुद्रे ह्रदगिरितरौ चित्रावन्यां च क्रमेण भवन्ति।।२९४।।

अथ निलयत्रयं विवृणोति—

उड्ढगया आवासा अधोगया विंतराण भवणाणि। भवणपुराणि य मज्झिमभागगया इदि तियं णिलयं।।२९५।।

ऊर्ध्वगताः आवासा अधोगता व्यन्तराणां भवनानि। भवनपुराणि च मध्यमभागगतानीति त्रयं निलयम्।।२९५।।

उड्ढगया । छायामात्रमेवार्थः ।।२९५।।

अथ सर्वेषां व्यन्तराणां यथासम्भवं निवासप्रदेशमुपदिशति—

चित्तवइरादु जावय मेरुदयं तिरियलोयवित्थारं। भोम्मा हवंति भवणे भवणपुरावासगे जोग्गे।।२९६।।

चित्रावज्रातः यावत् मेरूदयं तिर्यग्लोकविस्तारं। भौमा भवन्ति भवने भवनपुरावासके योग्यं।।२९६।।

योजन मोटा है । दूसरा पङ्कभाग ८४००० योजन मोटा है और इसमें असुरकुमारों के भवन और राक्षस देवों (व्यन्तर) के आवास हैं। तीसरा अब्बहुलभाग ८०००० योजन मोटा है, इस भाग में नारकी जीव हैं।

नीचोपपाद व्यन्तर देवों की आयु का प्रमाण दस हजार वर्ष, दिग्वासी का बीस हजार, अन्तरवासी का तीस हजार, कूष्माण्ड का चालीस हजार, उत्पन्न का पचास हजार, अनुत्पन्न का साठ हजार, प्रमाणक का सत्तर हजार, गन्ध का अस्सी हजार, महागन्ध का चौरासी हजार , भुजङ्ग देवों का पल्य के आठवें भाग, प्रीतिक का पल्य के चतुर्थ भाग प्रमाण और आकाशोत्पन्न देवों की आयु का प्रमाण पल्य के अर्धभाग प्रमाण है ।

व्यन्तरदेवों के निलय भेद —

गाथार्थ :—व्यन्तरदेवों के निवास स्थानों के तीन नाम हैं —भवनपुर, आवास और भवन । ये तीनों क्रमशः द्वीपसमुद्र, तालाब, पर्वत और चित्रा पृथ्वी में स्थित हैं।।२९४।।

विशेषार्थ :—व्यन्तरदेवों के निवास स्थान तीन प्रकार के हैं —भवनपुर, आवास और भवन । भवनपुर द्वीप-समुद्रों में स्थित हैं । आवास तालाब, पर्वत और वृक्षादि पर तथा भवन चित्रा पृथ्वी के नीचे स्थित हैं।

तीनों प्रकार के निलयों का वर्णन करते हैं—

गाथार्थ :—व्यन्तर देवों के जो निवासस्थान मध्यलोक की समभूमि पर हैं, उन्हें भवनपुर कहते हैं । जो स्थान पृथ्वी से ऊँचे हैं उन्हें आवास तथा जो स्थान पृथ्वी से नीचे हैं, उन्हें भवन कहते हैं।।२९५।।

अब यथासम्भव सभी व्यन्तरदेवों के निवासक्षेत्र कहते हैं—

गाथार्थ :—चित्रा और वज्रा पृथ्वी की मध्य सन्धि से प्रारम्भ कर मेरु पर्वत की ऊँचाई पर्यन्त तथा तिर्यग्लोक के विस्तार पर्यन्त व्यन्तरदेव अपने-अपने योग्य भवनपुरों में, भवनों में और आवासों में निवास करते हैं।।२९६।।

विशेषार्थ :—चित्रा और वज्रा पृथ्वी की सन्धि से प्रारम्भ कर मेरु पर्वत की ऊँचाई तक के तथा मध्यलोक का विस्तार जहाँ तक है वहाँ तक के समस्त क्षेत्र में व्यन्तरदेव यथायोग्य भवनपुरों, आवासों एवं भवनों में रहते हैं।

चित्त ।चित्रावज्रामध्यादारभ्य यावन्मेरूदयं यावत्तिर्यग्लोकविस्तारं तावति क्षेत्रे भौमा भवन्ति स्वस्वयोग्यभवनपुरे आवासे च ।।२९६।।

अथ निलयसंक्रममावेदयति—

भवणं भवणपुराणि य भवणपुरावासयाणि केसिंपि। भवणामरेसु असुरे विहाय केसिं तियं णिलयं।।२९७।।

भवनं भवनपुरे च भवनपुरावासकानि केषांचित्। भवनामरेषु असुरान् विहाय केषां त्रयं निलयम्।।२९७।।

भवणं। केषांचित् भवनमेव, केषांचिद्भवनभवनपुरे च भवतः, केषांचिद्भवनभवन पुरावासकानि च भवन्ति । भवनामरेषु असुरान् विहाय केषांचित् त्रयं निलयम्।।२९७।।

अथ निलयत्रयाणां व्यासादिकं गाथात्रयेण कथयति—

जेट्ठावरभवणाणं बारसहस्सं तु सुद्ध पणुवीसं। बहलं तिसय तिपादं बहलतिभागुदयकूडं च।।२९८।।

ज्येष्ठावरभवनयोः द्वादशसहस्रं तु शुद्धपञ्चविंशतिः। बाहुल्यं त्रिशतं त्रिपादं बाहुल्यत्रिभागोदयकूटं च।।२९८।।

जेट्ठा । ज्येष्ठ जघन्यभवनयोर्विस्तारौ द्वादशसहस्रयोजनानि शुद्धा पञ्चविंशतिः, तयोर्बाहुल्यं त्रिशतयोजनानि त्रिपादयोजनं तयोर्मध्ये तद्बाहुल्यत्रिभागोदयकूटं चास्ति।।२९८।।

जेट्ठभवणाण परिदो वेदी जोयणदलुच्छिया होदि। अवराणं भवणाणं दंडाणं पण्णुवीसुदया।।२९९।।

ज्येष्ठभवनानां परितः वेदी योजनदलोच्छ्रिता भवति। अवराणां भवनानां दण्डानां पञ्चविंशत्युदया।।२९९।।

जेट्ठ । वेदी शब्दः दिवारं सम्बध्यते । अन्यत् छायामात्रमेवार्थः।।२९९।।

वट्टादीण पुराणं जोयणलक्खं कमेण एक्कं च । आवासाणं बिसयाहियबारसहस्स य तिपादं ।।३००।।

अब निलयों का क्रम कहते हैं—

गाथार्थ :— कुछ व्यन्तरदेवों के मात्र भवन ही हैं, कुछ के भवन और भवनपुर हैं तथा कुछ के भवन, भवनपुर और ये तीनों हैं। भवनवासी देवों में असुरकुमारों को छोड़कर शेष में किन्हीं-किन्हीं के भवन, भवनपुर और आवास ये तीनों होते हैं।।२९७।। **विशेषार्थ :—** व्यन्तर देवों में से कोई-कोई व्यन्तरदेव मात्र भवनों में रहते हैं; कोई भवन और भवनपुर इन दोनों में रहते हैं तथा कोई-कोई भवन, भवनपुर और आवास इन तीनों में रहते हैं।

भवनवासी देवों में असुरकुमारों को छोड़कर शेष में से किन्हीं-किन्हीं के तीनों प्रकार के निवासस्थान हैं।

तीन गाथाओं द्वारा तीनों निलयों का व्यासादि कहते हैं :—

गाथार्थ :— उत्कृष्ट और जघन्य भवनों का विस्तार क्रमशः बारह हजार (१२०००) और शुद्ध पच्चीस योजन मात्र है तथा उनका बाहुल्य तीन सौ और तिपाद अर्थात् पौन (३/४) योजन है। बाहुल्य के तीसरे भाग प्रमाण ऊँचे कूट हैं ।।२९८।। **विशेषार्थ :—** भवनों का उत्कृष्ट विस्तार बारह हजार योजन और बाहुल्य तीन सौ योजन है। जघन्य विस्तार मात्र २५ योजन और बाहुल्य ३/४ अर्थात् पौन योजन (तीन कोस) है। भवनों के मध्य में बाहुल्य के तीसरे भाग (३००×१/३) अर्थात् १०० योजन एवं एक कोस ऊँचे कूट हैं । **गाथार्थ :—** उत्कृष्ट भवनों के चारों ओर आधा योजन ऊँची वेदी है तथा जघन्य भवनों के चारों ओर पच्चीस धनुष ऊँची वेदी है।।२९९।।

गाथार्थ :— गोलादि भवनपुरों का उत्कृष्ट विस्तार क्रमशः एक लाख योजन और एक योजन है। आवासों का उत्कृष्टादि विस्तार क्रमशः बारह हजार दो सौ (१२,२००) योजन और पौन योजन है ।।३००।।

वृत्तादीनां पुराणं योजनलक्षं क्रमेण एकं च। आवासानां द्विशताधिकद्वादशसहस्राणि च त्रिपादम्।।३००।।

वट्टा । वृत्तादीनां पुराणां योजनलक्षमुत्कृष्टविस्तारः क्रमेण जघन्यमेकयोजनं। वृत्तादीनामावासानां द्विशताधिकद्वादशसहस्राण्युत्कृष्टविस्तारः जघन्यं त्रिपादयोजनं ३/४ ।।३००।।

अथ भवनत्रये उत्पद्यमानजीवानाह—

उम्मग्गचारि सणिदाणणलादिमुदा अकामणिज्जरिणो।
कुदवा सबलचरित्ता भवणत्तिय जंति ते जीवा[१]।।४५०।।

उन्मार्गचारिणः सनिदानाः अनलादिमृता अकामनिर्जरणः। कुतपसः शबलचारित्रा भवनत्रये यांति ते जीवाः।।४५०।।

उम्मग्गचारि। उन्मार्गचारिणः सनिदाना अनलादिमृता अकामनिर्जरिणः कुतपसः शबलचारित्रा ये ते जीवा भवनत्रये यान्ति।।४५०।।

विशेषार्थ :— गोलादि आकार वाले भवनपुरों का उत्कृष्ट विस्तार एक लाख योजन और जघन्य विस्तार एक योजन प्रमाण है। इसी प्रकार गोल आदि आवासों का उत्कृष्ट विस्तार बारह हजार दो सौ (१२,२००) योजन तथा जघन्य विस्तार पौन योजन अर्थात् तीन कोस है।

भवनत्रय में जन्म लेने वाले जीवों को कहते हैं :—

गाथार्थ :— उन्मार्ग का आचरण करने वाले, निदान सहित तप आदि करने वाले, जल, अग्नि आदि से मरने वाले, अकामनिर्जरा करने वाले, खोटा तपश्चरण और सदोष चारित्र पालन करने वाले जीव भवनत्रय में जन्म लेते हैं।।४५०।।

विशेषार्थ :- जिनमत से विपरीत धर्म का आचरण, निदानपूर्वक तप, अग्नि, जल आदि से मरण, अकामनिर्जरा, पञ्चाग्नि आदि तप और सदोष चारित्र को धारण करने वाले जीव भवनत्रय में जन्म लेते हैं।

श्री अरजिन स्तुति

-गणिनी ज्ञानमती

–शंभु छन्द–

अरनाथ! स्वयं अरि कर्मों को, घाता अर्हत्पदवी पायी।
त्रिभुवन के नाथ उदर तिष्ठे, मित्रसेना माता हर्षायी।।
सुरपूज्य सुदर्शन जनक अहो, है धन्य हस्तिनापुरी अहा।
फाल्गुन वदि तीज गर्भ मंगल, मगसिर सुदि चौदस जन्म लहा।।1।।

मगसिर सित दशमी दीक्षा ली, बाह्याभ्यंतर तप तपते थे।
कार्तिक सित बारस के दिन में, केवलज्ञानी रवि चमके थे।।
चौरासि हजार वर्ष आयू, तनु इक सौ बीस हाथ सुन्दर।
मछली लाञ्छन युत कनक वर्ण, प्रभु कामदेव औ चक्रेश्वर।।2।।

शुभ चैत्र अमावस के प्रभुवर, सम्मेदाचल से मृत्युजयी।
निज भेद विज्ञान प्रगट करके, अपने को पाया आप सही।।
मैं भी प्रभु चरण कमल वंदूँ, यह कृपा प्रसाद मिले मुझको।
मैं केवल ''ज्ञानमती'' पाऊँ, मुझसे ही सिद्धि मिले मुझको।।3।।

---

१. त्रिलोकसार, पृ. ३९७, ३९८।

व्यन्तरदेवों के जिनमंदिर

(सिद्धान्तसार दीपक से)

असंख्यव्यन्तरावासस्थितान् सर्वान् जिनालयान्। व्यन्तरामरवन्द्यार्च्यान् प्रतिमाभिः सह स्तुवे[1]।।१।।

अथ पञ्चगुरुन्नत्वा विश्वकल्याणसिद्धिदान्। करिष्ये वर्णनं सिद्धये ह्यष्टधाव्यन्तरात्मनाम्।।२।।

आदिमाः किन्नरादेवाः किम्पुरुषा महोरगाः। गन्धर्वाख्यास्ततो यक्षा राक्षसा भूतनिर्जराः।।३।।

पिशाचाश्च ह्यमी ज्ञेया अष्टधा व्यन्तरामराः। अमीषां वर्णभेदादीन् पृथग्वक्ष्येऽधुनाचिदे।।४।।

प्रियङ्गुफलभाः किन्नराश्च किम्पुरुषाः सिताः। महोरगा हि कृष्णाङ्गा गन्धर्वयक्षराक्षसाः।।५।।

हेमप्रभास्त्रयो भूताः कृष्णवर्णाः पिशाचकाः। बहुलप्रभसद्गात्रा अमीषां भेद उच्यते।।६।।

रत्नप्रभाक्षितेः सन्ति खरभागे महागृहाः। चतुर्दशसहस्राणि भूतानामविनश्वराः[2]।।३९।।

रत्नप्रभावनेः पङ्कभागे रत्नमयाः शुभाः। आवासा राक्षसानां स्युः सहस्रषोडशप्रमाः।।४०।।

शेषव्यन्तरदेवानां मध्यलोकेऽचलादिषु। सर्वतः सन्ति चावासाश्चैत्यालयविराजिताः।।४१।।

अञ्जनो वज्रधातुश्च द्वीपः सुवर्णनामकः। द्वीपो मनःशिलाभिख्यो द्वीपो वज्रसमाह्वयः।।४२।।

व्यन्तरदेवों के जिनमंदिर

(सिद्धान्तसार दीपक से)

मङ्गलाचरण एवं प्रतिज्ञा—

अर्थ :—व्यन्तर देवों से वन्दनीय और व्यन्तर देवों के असंख्यात आवासों में स्थित प्रतिमाओं सहित सम्पूर्ण जिनालयों का मैं स्तवन करता हूँ ।।१।। इसके बाद विश्व का कल्याण करने वाले और सिद्धि प्रदान करने वाले पंचपरमेष्ठियों को नमस्कार करके अब मैं आत्मसिद्धि के लिये आठ प्रकार के व्यन्तर देवों का वर्णन करूँगा।।२।।

व्यन्तरदेवों के आठ भेद—

अर्थ :—किन्नरदेव, किम्पुरुषदेव, महोरग, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, भूत और पिशाच ये आठ प्रकार के व्यन्तर देव हैं। अब ज्ञान प्राप्ति के लिये इनके शरीर का वर्ण और इनके भेद अलग-अलग करता हूँ ।।३-४।।

अब व्यन्तर देवों के शरीर का वर्ण कहते हैं :—

अर्थ :— किन्नर देवों के शरीर का वर्ण प्रियंगुफल सदृश नील वर्ण, किम्पुरुषों का धवलवर्ण, महोरगों का कृष्ण वर्ण, गन्धर्व, यक्ष और राक्षसों का स्वर्ण सदृश वर्ण, भूतों का कृष्ण वर्ण और पिशाच जाति के देवों का पंक सदृश वर्ण होता हैं।।५-६।।

अब व्यंतर देवों के निवास का एवं उनके पुरों (नगरों) आदि का वर्णन करते हैं :—

अर्थ :— रत्नप्रभा पृथिवी के खरभाग में भूत नामक व्यन्तर देवों के शाश्वत चौदह हजार महागृह हैं।।३९।। रत्नप्रभा पृथिवी के पंकभाग में राक्षस कुल व्यंतरों के रत्नमयी और अत्यन्त रमणीक सोलह हजार प्रमाण आवास हैं।।४०।। शेष व्यंतर देवों के चैत्यालयों से विभूषित आवास तिर्यग्लोक के पर्वतों पर सर्वत्र हैं।।४१।। अंजन, वज्रधातु, सुवर्ण , द्वीप, मनःशिल द्वीप, वज्र द्वीप, रजत द्वीप, हिंगुल द्वीप और हरिताल द्वीप, इन आठ

१-२. सिद्धान्तसारदीपक-अधिकार-१३, पृ. ४५६, ४५७, ४६० से ४६७ तक।

रजतो हिङ्गुलद्वीपो हरितालाभिधानकः। अष्टद्वीपेषु चैतेषु समभागे समावनौ।।४३।।
अष्टानां व्यन्तरेन्द्राणां प्रत्येकं शाश्वतानि च। जम्बूद्वीपसमानानि पञ्चपञ्चपुराण्यपि।।४४।।
पूर्वादिदिक्षु विद्यन्ते मानस्तम्भजिनालयैः। चैत्यवृक्षैश्च युक्तानि स्वस्वेन्द्रनामभिः स्फुटम्।।४५।।
अमीषां मध्यभागस्थं स्वेन्द्रनामयुतं पुरम्। प्रभं चावर्तकं कान्तं मध्यमं चेति दिक्ष्वपि।।४६।।

एतेषां पृथग्नामानि प्रोच्यंते :—

एषां पुराणां मध्यस्थपुरस्य किन्नरपुराख्यं नाम स्यात्। पूर्वभागस्थितपुरस्य किन्नरप्रभाह्वयं नामास्ति। दक्षिणदिग् भागस्थपुरस्य किन्नरावर्तपुराभिधं नाम स्यात्। पश्चिमाशास्थपुरस्य किन्नरकान्तपुरसंज्ञं नामास्ति। उत्तरादिग् स्थितपुरस्य किन्नर मध्यमाह्वयं नाम भवेत्। तथा अन्येषां सप्तद्वीपस्थ सर्वपुराणां अनया रीत्या स्व स्वेन्द्रनामपूर्वाणि प्रभावर्तकान्त मध्यमान्तानि नामानि भवन्ति।

प्राकारा नगरेषु स्युः शाश्वताः प्रोन्नताः शुभाः। द्विक्रोशाधिकसप्तत्रिंशद्योजनैश्च विस्तृताः।।४७।।
मूले क्रोशद्वयाग्रद्वादशसंख्यैश्च योजनैः। सार्धद्वियोजन व्यासा मूर्ध्नि द्वारादिभूषिताः।।४८।।
द्वारााणामुदयोऽमीषां सार्धद्विषष्टियोजनः। विस्तारः कोशसंयुक्तैकत्रिंशद्योजनप्रमः।।४९।।
द्वाराणां मस्तकेऽमीषां प्रासादामणिसङ्कुलाः। विद्यन्ते प्रोन्नता रम्याः पञ्चसप्ततियोजनैः।।५०।।
विस्तृताः क्रोशसंयुक्तैकत्रिंशद्योजनैः शुभाः। तेषां मध्ये सुधर्माख्यो राजते मणिमण्डपः।।५१।।
योजनानां नवोत्तुङ्गः सार्धद्वादशयोजनैः। आयतो विस्तृतः कोशाधिकषड्भिश्च योजनैः।।५२।।

द्वीपों में चित्रा भूमि पर समभाग में अर्थात् भूमि के नीचे या पर्वतों के ऊपर नहीं जम्बूद्वीप सदृश समतल भूमि पर आठ प्रकार के व्यन्तर देवों में से प्रत्येक इन्द्र के जम्बूद्वीप सदृश प्रमाण वाले पांच-पांच नगर हैं।।४२-४४।।

ये नगर मानस्तम्भों, जिनालयों और चैत्यवृक्षों से युक्त तथा अपने-अपने इन्द्रों के नाम से संयुक्त पूर्वादि चारों दिशाओं में हैं । इन नगरों में से अपने-अपने इन्द्रों के नाम से युक्त पुर नाम का नगर मध्य में स्थित है, अवशेष किन्नरप्रभ, किन्नरावर्त, किन्नरकान्त और किन्नरमध्य ये चारों नगर क्रमशः पूर्व आदि चारों दिशाओं में अवस्थित हैं।।४५-४६।।

अब इन नगरों के पृथक्-पृथक् नाम कहते हैं :—

अर्थ :— अंजन द्वीप के मध्य स्थित नगर का नाम किन्नरपुर है। पूर्व दिशा स्थित नगर का नाम किन्नरप्रभ है। दक्षिणदिग् स्थित नगर का नाम किन्नरावर्त है। पश्चिम दिश् स्थित नगर का नाम किन्नरकान्त है और उत्तर दिग् स्थित नगर का नाम किन्नरमध्य है। इसी प्रकार सातों द्वीपों में अपने-अपने इन्द्रों के नाम हैं पूर्व में जिनके, ऐसे पुर, प्रभ, आवर्त, कान्त और मध्य नाम के नगर इसी रीति से पूर्वादि दिशाओं में अवस्थित हैं।

अब प्राकार, द्वार, प्रासाद, सभामण्डप एवं चैत्यवृक्षों आदि का प्रमाणपूर्वक वर्णन करते हैं :—

अर्थ :—उन प्रत्येक नगरों में ३७ योजन २ कोस ऊँचे, मूल में १२-१/२ योजन चौड़े, ऊपर २-१/२ योजन चौड़े, शाश्वत, शुभ और द्वारों आदि से विभूषित प्राकार हैं।।४७-४८।। इन प्राकारों में स्थित द्वारों में से प्रत्येक द्वार की ऊँचाई ६२-१/२ योजन तथा चौड़ाई ३१-१/४ योजन प्रमाण है।।४९।। इन द्वारों के ऊपर ७५ योजन ऊँचे और ३१-१/४ योजन चौड़े मणिमय प्रासाद हैं। जिनके मध्य में सुधर्मा नाम के मणिमय मण्डप सुशोभित होते हैं ।।५०-५१।। जो ९ योजन ऊँचे, १२-१/२ योजन चौड़े और ६-१/४ योजन चौड़े हैं।।५२।। उस

तस्य द्वाराणि रम्याणि द्वियोजनोन्नतानि च। योजनव्यासयुक्तानि मण्डपस्य भवन्त्यपि ।।५३।।
इत्येवं वर्णना ज्ञेया सर्वेन्द्राणां पुरेषु च। नगराणां चतुर्दिक्षु चत्वारश्चैत्यपादपाः ।।५४।।
रत्नपीठाश्रिता मूले चतुर्दिक्षु विराजिताः। भौमेन्द्र पूजिताभिः स्युर्जिनेन्द्रदिव्यमूर्तिभिः।।५५।।
मानस्तम्भाश्च चत्वारो मणिपीठत्रिकोर्ध्वगाः। शालत्रय युताः सन्ति सिद्धबिम्बाढ्यशेखराः।।५६।।
अशोकश्चम्पको नागस्तुम्बुरुश्च वटद्रुमः। बदरी तुलसी वृक्षः कदम्बोऽष्टांह्रिपा इमे।।५७।।
मणिपीठाग्रभागस्थाः पृथ्वीसारमयोन्नताः। भवनेषु क्रमात्सन्ति ह्यष्टानां व्यन्तरात्मनाम्।।५८।।
तेषां मूले चतुर्दिक्षु चतस्रः प्रतिमाः पृथक्। चतुस्तोरणसंयुक्ता दीप्ता दिव्या जिनेशिनाम्।।५९।।
मानस्तम्भोऽस्ति चैकैकः एकैकां प्रतिमां प्रति। मुक्तास्रग्मणिघण्टाढ्यस्त्रिपीठशालभूषितः।।६०।।
पुराणां च चतुर्दिक्षु त्यक्त्वा द्वे च सहस्रके। योजनानां हि चत्वारि वनानि शाश्वतान्यपि।।६१।।
लक्षयोजनदीर्घाणि लक्षार्धविस्तृतानि वै। अशोकसप्तपर्णाम्र-चम्पकाढ्यानि सन्ति च ।।६२।।
मध्येऽमीषां हि चत्वारो राजन्ते चैत्यपादपाः। अशोक-सप्तपर्णाम्र-चम्पकाख्या जिनार्चनैः।।६३।।
विदिक्षु नगराणा स्युर्गणिकानां पुराणि च। सहस्रचतुरशीतियोजनैर्विस्तृतानि वै।।६४।।
वृत्ताकाराणि नित्यानि प्राकारादियुतान्यपि। पुराणि शेष भौमानामनेकद्वीपवार्धिषु।।६५।।

सभामण्डप के द्वार अत्यन्त रमणीक, दो योजन ऊँचे और एक योजन चौड़े हैं।।५३।। इसी प्रकार का वर्णन सर्व इन्द्रों (दक्षिणेन्द्रों और उत्तरेन्द्रों) के नगरों में जानना चाहिये। नगरों की चारों दिशाओं में (एक-एक) चार चैत्यवृक्ष हैं। जिनके मूल में चारों दिशाओं में रत्नपीठ के आश्रित, व्यन्तर देवों से पूजित **जिनेन्द्र भगवान की दिव्य मूर्तियाँ हैं।**।५४-५५।। इन्हीं चारों वृक्षों के सामने तीन-तीन मणिमय पीठ के ऊपर, तीन कोट से युक्त चार मानस्तम्भ हैं, जिनके शिखर सिद्ध भगवान् के बिम्बों से युक्त हैं।।५६।।

अब पिशाचादि व्यन्तर देवों के चैत्यवृक्षों के भिन्न-भिन्न नाम, उनमें स्थित प्रतिबिंब एवं मानस्तम्भों का वर्णन करते हैं :—

अर्थ :— किन्नर, किम्पुरुष, महोरग, गन्धर्व, यक्ष,राक्षस, भूत और पिशाच इन आठों व्यन्तर देवों के क्रम से अशोक, चम्पक, नाग(केसर), तुम्बरु, वट, वदरी, तुलसी और कदम्ब नाम वाले चैत्यवृक्ष होते हैं। ये ऊँचे-ऊँचे वृक्ष पृथ्वी के सारमय (पृथ्वीकायिक) और मणिपीठ के अग्रभाग पर स्थित होते हैं। इन वृक्षों के मूल में चारों दिशाओं में जिनेन्द्र भगवान की चार-चार तोरण द्वारों से युक्त, देदीप्यमान और दिव्य पृथक्-पृथक् चार प्रतिमाएँ हैं तथा एक-एक प्रतिमा के प्रति मुक्तादामों एवं मणिमय घण्टाओं से युक्त, मणिमय तीन-तीन पीठ और प्राकार से युक्त एक-एक मानस्तम्भ हैं।।५७-६०।।

अब नगरों की चारों दिशाओं में स्थित वनों एवं विदिशाओं में स्थित नगरों का कथन करते हैं:—

अर्थ :— नगरों की चारों दिशाओं में दो-दो हजार योजन छोड़कर अशोक, सप्तपर्ण, आम्र और चम्पक नाम के चार-चार शाश्वत वन हैं, जो एक-एक लाख योजन लम्बे तथा पचास-पचास हजार योजन चौड़े हैं। इन वनों के मध्य में जिनेन्द्र भगवान की प्रतिमाओं से युक्त अशोक, सप्तपर्ण, आम्र और चम्पक नाम के चार-चार चैत्यवृक्ष शोभायमान होते हैं।।६१-६३।। नगरों की चारों विदिशाओं में गणिकाओं (प्रधान देवियों) के वलयाकार, शाश्वत और प्राकार आदि से युक्त नगर हैं, जो ८४००० योजन लम्बे और ८४००० योजन ही चौड़े हैं। शेष व्यन्तर देवों के नगर अनेक द्वीपों एवं अनेक समुद्रों में हैं।।६४-६५।।

प्रदर्शनी हि भोगाख्या भोगावती भुजङ्गिनी। नागप्रिया सुतोषाथ घोषाख्या विमलप्रिया।।६८।।
सुस्वरानिन्दितादेवी देवी भद्रा सुभद्रका। मालिनी पद्ममालाख्या सर्वश्री सर्वसैनिका।।६९।।
रुद्राथ रुद्रदर्शाख्या भूतकान्ता समाह्वया। भूतभूतप्रिया देवी दत्ता महाभुजङ्गिनी।।७०।।
अम्बिकाथ करालाख्या सुरसेना सुदर्शना। इन्द्राणां स्युरिमा देव्यो द्वात्रिंशद्विश्वपिण्डिता:।।७१।।
अष्टानां व्यन्तराणां स्यु: पुराणि भवनानि च। आवासा इति विज्ञेयास्त्रिविधा: स्थानका: शुभा:।।७२।।
मध्यलोकस्थद्वीपाब्धिमहीषु स्यु पुराणि च। खरांशे पङ्कभागे चाधोलोके भवनान्यपि।।७३।।
आवासा: सन्ति चैतेषामूर्ध्वलोके क्षयोज्झिता:। पर्वताग्रेषु कूटेषु वृक्षाग्रेषु ह्रदादिषु।।७४।।
वृत्तोत्कृष्टपुराणां स्याद् व्यासो लक्षैकयोजन:। जघन्यनगराणां किलैकयोजनविस्तर:।।७५।।
उत्कृष्टभवनानां हि सकलोत्कृष्टविस्तर:। योजनद्विशताग्रस्थसहस्रद्वादशप्रम:।।७६।।
जघन्यभवनानां स्याद् विस्तरोऽतिजघन्यक:। योजनानामधोलोके पञ्चविंशतिमानक:।।७७।।
विष्कम्भो निखिलोत्कृष्टावासानां श्रीजिनागमे। योजनानां जिनै: प्रोक्त: सहस्रद्वादशप्रम:।।७८।।
आवासानां जघन्यानां व्यास: कोशत्रयं भवेत्। उत्कृष्टभवनादीनां मध्ये कूटो जघन्यक:।।८०।।
एकगव्यूतिविस्तारो हेमरत्नमयोऽक्षय:। क्रोशैकस्य त्रिभागानामेकभागसमुन्नत:।।८१।।
अमीषां सर्वकूटानां मध्यभागे च मूर्धनि। स्फुरद्रत्नमयस्तुङ्ग एकैक: श्रीजिनालय:।।८२।।
ज्येष्ठानां भवनादीनामुत्कृष्टा वेदिका मता। प्रतोलीतोरणाद्याढ्या कोशद्वयोच्छ्रितोर्जिता।।८३।।

अर्थ :— सोलह इन्द्रों में से प्रत्येक की गणिका नाम की दो-दो प्रधान देवांगनाएँ हैं, इनमें से प्रत्येक की आयु एक-एक पल्य प्रमाण है।।६६।। माधुरी, मधुरालाप, मधुरस्वरा, पुरुषप्रिया, पृथुका, सोमा, प्रदर्शनी, भोगा, भोगवती, भुजङ्गिनी, नागप्रिया, सुतोषा, घोषा, विमलप्रिया, सुस्वरा, अनिंदिता, भद्रा, सुभद्रका, मालिनी, पद्ममाला, सर्वश्री, सर्वसैनिका, रुद्रा, रुद्रदर्शा, भूतकान्ता, भूतप्रिया, दत्ता, महाभुजङ्गिनी, अम्बिका, कराला, सुरसेना और सुदर्शना ये ३२ गणिका महत्तरिकाएँ व्यन्तरवासी इन्द्रों की हैं।।६७-७१।।

अब व्यन्तर देवों के तीन प्रकार के निवासस्थानों का अवस्थान सूचित कर उनके नगरों एवं कूटों का प्रमाण कहते हैं :—

अर्थ :— आठों प्रकार के व्यन्तर देवों के रहने के शुभ स्थान पुर, भवन और आवास के भेद से तीन प्रकार के जानना चाहिये।।७२।। मध्यलोक में (सम) पृथ्वी पर स्थित द्वीप-समुद्रों में व्यन्तर देवों के निवास स्थान हैं उन्हें पुर कहते हैं। अधोलोक में खर और पङ्कभाग में जो स्थान हैं उन्हें भवन कहते हैं तथा ऊर्ध्वलोक में अर्थात् पृथ्वी से ऊपरी भागों में पर्वतों के अग्रभागों पर, कूटों पर, वृक्षों के अग्रभागों पर और पर्वतस्थ सरोवरों आदि में जो स्थान हैं उन्हें आवास कहते हैं। ये तीनों प्रकार के निवासस्थान हानि-क्षय से रहित अर्थात् शाश्वत हैं।।७३-७४।। उत्कृष्ट पुर वृत्ताकार और एक लाख योजन विस्तार वाले हैं तथा जघन्य पुर एक योजन विस्तार वाले हैं।।७५।। समस्त उत्कृष्ट भवनों का उत्कृष्ट विस्तार १२,२०० योजन प्रमाण है।।७६।। अधोलोक स्थित जघन्य भवनों का जघन्य विस्तार २५ योजन प्रमाण है।।७७।। जिनागम में जिनेन्द्र भगवान के द्वारा सम्पूर्ण उत्कृष्ट आवासों का विष्कम्भ १२००० योजन कहा गया है तथा जघन्य आवासों का व्यास तीन कोस कहा गया है। उत्कृष्ट भवन आदि के मध्य में देदीप्यमान कूट हैं, जो ३०० योजन चौड़े और १०० योजन ऊँचे हैं। जघन्य भवनों

लघूनां भवनादीनां लघ्वी सद्वेदिका भवेत्। पञ्चविंशतिचापोच्चा गोपुरादिविभूषिता।।८४।।
केषाञ्चिद् भौमदेवानामावासाः सन्ति केवलम्। केषाञ्चिद् भवनैः सार्धमावासाः स्युः सुधाभुजाम्।।८५।।
पुराणि भवनान्युच्चावासा एते त्रयः शुभाः। भवन्ति वसतिस्थानाः केषाञ्चित्पुण्यपाकतः।।८६।।
तथेतित्रिविधस्थानानि स्युर्भवनवासिनाम्। नवानामसुराणां च केवलं भवनान्यपि।।८७।।

आदि के मध्य में जघन्य कूट हैं जो स्वर्ण और रत्नमय हैं, शाश्वत हैं तथा एक कोस चौड़े और १/३ कोस ऊँचे हैं।।७८-८१।।

अब कूटों का अवशेष वर्णन करते हुए व्यन्तरदेवों के निवास (आवासों आदि का) स्थानों का विभाग दर्शाते हैं :—

अर्थ :—इन उत्कृष्ट एवं जघन्य सर्व कूटों के ऊपर मध्य भाग में देदीप्यमान रत्नमय एक-एक उत्तुङ्ग जिनालय है।।८२।। उत्कृष्ट भवनों आदि की उत्कृष्ट वेदियाँ प्रतोली तथा तोरणों आदि से युक्त दो कोस ऊँची हैं तथा जघन्य भवनों आदि की जघन्य वेदियाँ गोपुर आदि से विभूषित और २५ धनुष ऊँची हैं।।८३-८४।। पूर्व पुण्योदय से किन्हीं-किन्हीं व्यन्तर देवों के मात्र आवास ही हैं, किन्हीं के आवास और भवन दोनों हैं।।८५।। तथा किन्हीं-किन्हीं व्यन्तर देवों के आवास , भवन और पुर ये तीनों प्रकार के अत्यन्त शुभ निवासस्थान होते हैं।।८६।। भवनवासी देवों में असुरकुमारों के मात्र भवन होते हैं, अन्य शेष भवनवासियों के तीनों प्रकार के निवासस्थान होते हैं।।८७।।

चारित्र की वंदना

चारित्रं सर्वजिनैश्चरितं, प्रोक्तं च सर्वशिष्येभ्यः।
प्रणमामि पंचभेदं, पंचमचारित्रलाभाय।।६।।

-श्री गौतम स्वामी विरचित

सभी जिनेश्वर ने भवदुःखहर, चारित को पाला रुचि से।
सब शिष्यों को भी उपदेशा, विधिवत् सम्यक् चारित ये।।
पाँच भेद युत सम्यक् चारित, को प्रणमूँ मैं भक्ती से।
पंचम यथाख्यात चारित की, प्राप्ति हेतु वंदूँ मुद से।।६।।

द्वीपों में व्यंतर देवों के नगर

रत्नप्रभाक्षितेः सन्ति खरभागे महागृहाः। चतुर्दशसहस्राणि भूतानामविनश्वराः[१]।।३९।।
रत्नप्रभावनेः पङ्कभागे रत्नमयाः शुभाः। आवासा राक्षसानां स्युः सहस्रषोडशप्रमाः।।४०।।
शेषव्यन्तरदेवानां मध्यलोकेऽचलादिषु। सर्वतः सन्ति चावासाश्चैत्यालयविराजिताः।।४१।।
अञ्जनो वज्रधातुश्च द्वीपः सुवर्णनामकः। द्वीपो मनःशिलाभिख्यो द्वीपो वज्रसमाह्वयः।।४२।।
रजतो हिङ्गुलद्वीपो हरितालाभिधानकः। अष्टद्वीपेषु चैतेषु समभागे समावनौ।।४३।।
अष्टानां व्यन्तरेन्द्राणां प्रत्येकं शाश्वतानि च। जम्बूद्वीपसमानानि पञ्चपञ्चपुराण्यपि।।४४।।
पूर्वादिदिक्षु विद्यन्ते मानस्तम्भजिनालयैः। चैत्यवक्षैश्च युक्तानि स्वस्वेन्द्रनामभिः स्फुटम्।।४५।।
अमीषां मध्यभागस्थं स्वेन्द्रनामयुतं पुरम्। प्रभं चावर्तकं कान्तं मध्यमं चेति दिक्ष्वपि।।४६।।

एतेषां पृथग्नामानि प्रोच्यंते—

एषां पुराणां मध्यस्थपुरस्य किन्नरपुराख्यं नाम स्यात्। पूर्वभागस्थितपुरस्य किन्नरप्रभाह्वयं नामास्ति। दक्षिणदिग् भागस्थपुरस्य किन्नरावर्तपुराभिधं नाम स्यात्। पश्चिमाशास्थपुरस्य किन्नरकान्तपुरसंज्ञं नामास्ति। उत्तरदिग् स्थितपुरस्य किन्नर मध्यमाह्वयं नाम भवेत्। तथा अन्येषां सप्तद्वीपस्थ सर्वपुराणां अनया रीत्या स्व स्वेन्द्रनामपूर्वाणि प्रभावर्तकान्त मध्यमान्तानि नामानि भवन्ति।

द्वीपों में व्यंतर देवों के नगर

अर्थ—रत्नप्रभा पृथिवी के खरभाग में भूत नामक व्यन्तर देवों के शाश्वत चौदह हजार महागृह हैं।।३९।।

रत्नप्रभा पृथिवी के पंकभाग में राक्षस कुल व्यन्तरों के रत्नमयी और अत्यन्त रमणीक सोलह हजार प्रमाण आवास हैं।।४०।। शेष व्यन्तर देवों के चैत्यालयों से विभूषित आवास तिर्यग्लोक के पर्वतों पर सर्वत्र हैं।।४१।।

अंजन, वज्रधातु, सुवर्ण, द्वीप, मनःशिल द्वीप, वज्र द्वीप, रजत द्वीप, हिंगुल द्वीप और हरिताल द्वीप, इन आठ द्वीपों में चित्रा भूमि पर समभाग में अर्थात् भूमि के नीचे या पर्वतों के ऊपर नहीं जम्बूद्वीप सदृश समतल भूमि पर आठ प्रकार के व्यन्तर देवों में से प्रत्येक इन्द्र के जम्बूद्वीप सदृश प्रमाण वाले पाँच-पाँच नगर हैं।।४२-४४।।

ये नगर मानस्तम्भों, जिनालयों और चैत्यवृक्षों से युक्त तथा अपने-अपने इन्द्रों के नाम से संयुक्त पूर्वादि चारों दिशाओं में हैं। इन नगरों में से अपने-अपने इन्द्रों के नाम से संयुक्त पुर नाम का नगर मध्य में स्थित हैं, अवशेष किन्नरप्रभ, किन्नरावर्त, किन्नरकान्त और किन्नरमध्य ये चारों नगर क्रमशः पूर्व आदि चारों दिशाओं में अवस्थित हैं।।४५-४६।।

अब इन नगरों के पृथक्-पृथक् नाम कहते हैं—

अर्थ—अंजन द्वीप के मध्य स्थित नगर का नाम किन्नरपुर है। पूर्व दिशा स्थित नगर का नाम किन्नरप्रभ है। दक्षिणदिग् स्थित नगर का नाम किन्नरावर्त है। पश्चिम दिश् स्थित नगर का नाम किन्नरकान्त है और उत्तर दिश् स्थित नगर का नाम किन्नरमध्य है। इसी प्रकार सातों द्वीपों में अपने-अपने इन्द्रों के नाम हैं पूर्व में जिनके, ऐसे पुर, प्रभ, आवर्त, कान्त और मध्य नाम के नगर इसी रीति से पूर्वादि दिशाओं में अवस्थित हैं।

---

१. सिद्धान्तसार दीपक, अधिकार-१३ पृ. ४६१ से ४६३ तक।

प्राकारा नगरेषु स्युः शाश्वताः प्रोन्नताः शुभाः। द्विक्रोशाधिकसप्तत्रिंशद्योजनैश्च विस्तृताः।।४७।।
मूले क्रोशद्वयाग्रद्वादशसंख्यैश्च योजनैः। सार्धद्वियोजन व्यासा मूर्ध्नि द्वारादिभूषिताः।।४८।।
द्वाराणामुदयोऽमीषां सार्धद्विषष्टियोजनः। विस्तारः क्रोशसंयुक्तैकत्रिंशद्योजनप्रमः।।४९।।
द्वाराणां मस्तकेऽमीषां प्रासादामणिसङ्कुलाः। विद्यन्ते प्रोन्नता रम्याः पञ्चसप्ततियोजनैः।।५०।।
विस्तृताः क्रोशसंयुक्तैकत्रिंशद्योजनैः शुभाः। तेषां मध्ये सुधर्माख्यो राजते मणिमण्डपः।।५१।।
योजनानां नवोत्तुङ्गः सार्धद्वादशयोजनैः। आयतो विस्तृतः क्रोशाधिकषड्भिश्च योजनैः।।५२।।
तस्य द्वाराणि रम्याणि द्वियोजनोन्नतानि च। योजनव्यासयुक्तानि मण्डपस्य भवन्यपि।।५३।।
इत्येवं वर्णना ज्ञेया सर्वेन्द्राणां पुरेषु च। नगराणां चतुर्दिक्षु चत्वारश्चैत्यपादपाः।।५४।।
रत्नपीठाश्रिता मूले चतुर्दिक्षु विराजिताः। भौमेन्द्र पूजिताभिः स्युर्जिनेन्द्रदिव्यमूर्तिभिः।।५५।।
मानस्तम्भाश्च चत्वारो मणिपीठत्रिकोर्ध्वगाः। शालत्रय युताः सन्ति सिद्धबिम्बाढ्यशेखराः।।५६।।

व्यंतर देवों के चैत्यवृक्ष

अशोकचम्पको नागस्तुम्बुरुश्च वटद्रुमः। बदरी तुलसी वृक्षः कदम्बोऽष्टांह्रिपा इमे[१]।।५७।।
मणिपीठाग्रभागस्थाः पृथ्वीसारमयोन्नताः। भवनेषु क्रमात्सन्ति ह्यष्टानां व्यन्तरात्मनाम्।।५८।।
तेषां मूले चतुर्दिक्षु चतस्त्रःप्रतिमाः पृथक्। चतुस्तोरणसंयुक्ता दीप्ता दिव्या जिनेशिनाम्।।५९।।

अब प्राकार, द्वार, प्रासाद, सभामण्डप एवं चैत्यवृक्षों आदि का प्रमाणपूर्वक वर्णन करते हैं—

अर्थ—उन प्रत्येक नगरों में ३७ योजन २ कोस ऊँचे, मूल में १२-१/२ योजन चौड़े, ऊपर २-१/२ योजन चौड़े, शाश्वत, शुभ और द्वारों आदि से विभूषित प्राकार हैं।।४७-४८।। इन प्राकारों में स्थित द्वारों में से प्रत्येक द्वार की ऊँचाई ६२-१/२ योजन तथा चौड़ाई ३१-१/४ योजन प्रमाण है।।४९।। इन द्वारों के ऊपर ७५ योजन ऊँचे और ३१-१/४ योजन चौड़े मणिमय प्रासाद हैं। जिनके मध्य में सुधर्मा नाम के मणिमय मण्डप सुशोभित होते हैं।।५०-५१।। जो ९ योजन ऊँचे, १२-१/२ योजन चौड़े और ६-१/४ योजन चौड़े हैं।।५२।। उस सभामण्डप के द्वार अत्यन्त रमणीक, दो योजन ऊँचे और एक योजन चौड़े हैं।।५३।।

इसी प्रकार का वर्णन सर्व इन्द्रों (दक्षिणेन्द्रों और उत्तरेन्द्रों) के नगरों में जानना चाहिए। नगरों की चारों दिशाओं में (एक-एक) चार चैत्यवृक्ष हैं। जिनके मूल में चारों दिशाओं में रत्नपीठ के आश्रित, व्यन्तर देवों से **पूजित जिनेन्द्र भगवान** की दिव्य मूर्तियाँ हैं।।५४-५५।। इन्हीं चारों वृक्षों के सामने तीन-तीन मणिमय पीठ के ऊपर तीन कोट से युक्त चार मानस्तम्भ हैं, जिनके शिखर सिद्ध भगवान के बिम्बों से युक्त हैं।।५६।।

व्यंतर देवों के चैत्यवृक्ष

अब पिशाचादि व्यन्तर देवों के चैत्यवृक्षों के भिन्न-भिन्न नाम, उनमें स्थित प्रतिबिम्ब एवं मानस्तम्भों का वर्णन करते हैं—

अर्थ—किन्नर, किम्पुरुष, महोरग, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, भूत और पिशाच इन आठों व्यन्तर देवों के क्रम से अशोक, चम्पक, नाग (केसर), तुम्बरु, वट, वदरी, तुलसी और कदम्ब नाम वाले चैत्यवृक्ष होते हैं। ये ऊँचे-

---

१. सिद्धान्तसार दीपक, अधिकार-१३ पृ. ४६३ से ४६४ तक।

मानस्तम्भोऽस्ति चैकैकः एकैकां प्रतिमां प्रति। मुक्तास्त्रग्मणिघण्टाढ्यस्त्रिपीठशालभूषितः।।६०।।

देवों के नगर के बाहर वन-उद्यान में चैत्यवृक्ष में जिनप्रतिमायें

पुराणां च चतुर्दिक्षु त्यक्त्वा द्वे च सहस्त्रके। योजनानां हि चत्वारि वनानि शाश्वतान्यपि।।६१।।
लक्ष्योजनदीर्घाणि लक्षार्धविस्तृतानि वै। अशोकसप्तपर्णाम्र-चम्पकाढ्यानि सन्ति च।।६२।।
मध्येऽमीषां हि चत्वारो राजन्ते चैत्यपादपाः। अशोक-सप्तपर्णाम्र-चम्पकाख्या जिनार्चनैः।।६३।।
विदिक्षु नगराणां स्युर्गणिकानां पुराणि च। सहस्त्रचतुरशीतियोजनैर्विस्तृतानि वै।।६४।।
वृत्ताकाराणि नित्यानि प्राकारादियुतान्यपि। पुराणि शेष भौमानामनेकद्वीपवार्धिषु।।६५।।

व्यंतरदेवों के चैत्यवृक्ष

(लोकविभाग से)

तेसिं असोयचंपयणागा तुंबुरु वडो य कंटतरू। तुलसी कडंबणामा चेत्ततरू होंति हु कमेण[1] ।।७।।
कदम्बस्तु पिशाचानां राक्षसाः कण्टकद्रुमाः। भूतानां तुलसीचैत्यं यक्षाणां च वटो भवेत्।।५५।।
किंनराणामशोकः स्वात्किंपुरुषेषु च चम्पकः। महोरगाणां नागोऽपि गन्धर्वाणां च तुम्बरुः।।५६।।
पृथिवीपरिणामास्ते आयागनियुतद्रुमाः। जम्बूमानार्धमानाश्च कीर्तितास्ते प्रमाणतः।।५७।।

ऊँचे वृक्ष पृथ्वी के सारमय (पृथ्वीकायिक) और मणिपीठ के अग्रभाग पर स्थित होते हैं। इन **वृक्षों के मूल में चारों दिशाओं में जिनेन्द्र भगवान की चार-चार तोरण द्वीपयुक्त, देदीप्यमान और दिव्य पृथक्-पृथक् चार प्रतिमाएँ हैं** तथा एक-एक प्रतिमा के प्रति मुक्ता एवं मणिमय घण्टाओं से युक्त, मणिमय तीन-तीन पीठ और प्राकार से युक्त एक-एक मानस्तम्भ हैं।।५७-६०।।

देवों के नगर के बाहर वन-उद्यान में चैत्यवृक्ष में जिनप्रतिमायें

अब नगरों की चारों दिशाओं में स्थित वनों एवं विदिशाओं में स्थित नगर का कथन करते हैं—

अर्थ—नगरों की चारों दिशाओं में दो-दो हजार योजन छोड़कर अशोक, सप्तपर्ण, आम्र,चम्पक नाम के चार-चार शाश्वत वन हैं, जो एक-एक लाख योजन लम्बे तथा पचास-पचास योजन चौड़े हैं। इन वनों के मध्य में जिनेन्द्र भगवान की प्रतिमाओं से युक्त अशोक, सप्तच्छद और चम्पक नाम के चार-चार चैत्यवृक्ष शोभायमान होते हैं।।६१-६३।। नगरों की चारों विदिशाओं में प्रधान देवियों के वलयाकार, शाश्वत और प्राकार आदि से युक्त नगर हैं, जो ८४००० लम्बे और ८४००० योजन ही चौड़े हैं। शेष व्यन्तर देवों के नगर अनेक द्वीपों एवं अनेक समुद्रों मेंहैं।।६४-६५।।

व्यंतरदेवों के चैत्यवृक्ष

(लोकविभाग से)

व्यंतर देवों के क्रम से अशोक, चम्पक, नाग (नागकेसर), तुंबरु, वट, कण्टतरु, तुलसी और कदम्ब; इन नामों वाले चैत्यवृक्ष होते हैं।।७।। चैत्यवृक्ष पिशाचों का कदम्ब, राक्षसों का कण्टकद्रुम, भूतों का तुलसी, यक्षों का वट, किन्नरों का अशोक, किंपुरुषों का चम्पक, महोरगों का नाग (नागकेसर) और गन्धर्वों का तुंबरु होता है।।५५-५६।। आयाग पर नियत वे चैत्यवृक्ष पृथिवी के परिणामस्वरूप होते हुए प्रमाण में जम्बूवृक्ष के प्रमाण के

---

१. लोकविभाग अधिकार-९, पृ. १७०।

दिव्यरत्नविचित्रं च छत्रत्रितयमेकशः। शुभध्वजपताकास्ते विभान्त्यायागमाश्रिताः।।५८।।
तोरणानि च चत्वारि नानारत्नमयानि च। आसक्तमाल्यधामानि चैत्यानां हि चतुर्दिशम्।।५९।।
प्रत्येकं च चतस्रोऽर्चाः सौवर्ण्योऽत्र चतुर्दिशम्। भूमिजानां यथा वृक्षाः तथा वानान्तरद्रुमाः।।६०।।

अर्ध प्रमाण वाले कहे गऐ हैं।।५७।। उनमें से प्रत्येक के दिव्य रत्नों से विचित्र तीन छत्र होते हैं। आयाग के आश्रित वे वृक्ष उत्तम ध्वजा पताकाओं से संयुक्त होते हुए शोभायमान होते हैं।।५८।। चैत्यवृक्षों की चारों दिशाओं में मालाओं के तेज से सहित अनेक रत्नमय चार तोरण होते हैं।।५९।। प्रत्येक वृक्ष की चारों दिशाओं में **चार सुवर्णमय जिनप्रतिमाएँ स्थित होती** हैं। ये वृक्ष जैसे भूमिजों (भवनवासियों) के होते हैं वैसे ही वे व्यन्तरों के भी होते हैं।।६०।।

धर्म की वंदना

धर्मः सर्वसुखाकरो हितकरो, धर्मं बुधाश्चिन्वते।
धर्मेणैव समाप्यते शिवसुखं, धर्माय तस्मै नमः।
धर्मान्नास्त्यपरः सुहृद्भवभृतां, धर्मस्य मूलं दया,
धर्मे चित्तमहं दधे प्रतिदिनं, हे धर्म! मां पालय।।७।।

धम्मो मंगलमुद्दिट्ठं (मुक्किट्ठं), अहिंसा संयमो तवो।
देवा वि तस्स पणमंति, जस्स धम्मे सया मणो।।८।।

-श्री गौतम स्वामी विरचित

धर्म सर्वसुख खानि हितंकर, बुधजन करें धर्म संचय।
शिवसुखप्राप्त धर्म से होता, उसी धर्म के लिए नमन।।
धर्म से अन्य मित्र नहिं जग में, दयाधर्म का मूल कहा।
मन को धरूँ धर्म में नित, हे धर्म! करो मेरी रक्षा।।७।।

धर्म महा मंगलमय है यह, कहा वीर प्रभु ने जग में।
प्रमुख अहिंसा संयम तपमय, धर्म सदा उत्तम सब में।।
जिसके मन में सदा धर्म है, सुरगण भी उसको प्रणमें।
मैं भी नमूं धर्म को संतत, धर्म बसो मेरे मन में।।८।।

पद्यानुवाद-गणिनी ज्ञानमती

मध्यलोक के जिनमंदिर

चौबीस तीर्थंकरों की सोलह जन्मभूमियों की नामावली

महानुभावों! अपने नगर के जिनमंदिरों में चौबीस तीर्थंकरों की सोलह जन्मभूमियों केनाम निम्नानुसार लिखवाएं एवं इन तीर्थों की यात्रा करके पुण्यलाभ प्राप्त करें।

1. अयोध्या (फैजाबाद-उ.प्र.)	–श्री ऋषभदेव भगवान
	–श्री अजितनाथ भगवान
	–श्री अभिनंदननाथ भगवान
	–श्री सुमतिनाथ भगवान
	–श्री अनंतनाथ भगवान
2. श्रावस्ती (बहराइच-उ.प्र.)	–श्री संभवनाथ भगवान
3. कौशाम्बी (उ.प्र.)	–श्री पद्मप्रभु भगवान
4. वाराणसी (उ.प्र.)	–श्री सुपार्श्वनाथ भगवान
	–श्री पार्श्वनाथ भगवान
5. चन्द्रपुरी (वाराणसी) उ.प्र.	–श्री चन्द्रप्रभु भगवान
6. काकन्दी (देवरिया नि.-गोरखपुर) उ.प्र.	–श्री पुष्पदंतनाथ भगवान
7. भद्रिकापुरी	–श्री शीतलनाथ भगवान
8. सिंहपुरी (सारनाथ) उ.प्र.	–श्री श्रेयांसनाथ भगवान
9. चम्पापुरी (भागलपुर-बिहार)	–श्री वासुपूज्यनाथ भगवान
10. कम्पिलपुरी (फर्रूक्खाबाद-उ.प्र.)	–श्री विमलनाथ भगवान
11. रत्नपुरी (फैजाबाद-उ.प्र.)	–श्री धर्मनाथ भगवान
12. हस्तिनापुर (मेरठ-उ.प्र.)	–श्री शांतिनाथ भगवान
	–श्री कुन्थुनाथ भगवान
	–श्री अरनाथ भगवान
13. मिथिलापुरी	–श्री मल्लिनाथ भगवान
	–श्री नमिनाथ भगवान
14. राजगृही (नालंदा-बिहार)	–श्री मुनिसुव्रतनाथ भगवान
15. शौरीपुर (बटेश्वर-उ.प्र.)	–श्री नेमिनाथ भगवान
16. कुण्डलपुर (नालंदा-बिहार)	–श्री महावीर भगवान

–निवेदक–

अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थंकर जन्मभूमि विकास कमेटी

*प्रधान कार्यालय –***जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.**, फोन नं.-01233-280184

मध्यलोक के जिनमंदिर

(त्रिलोकसार से)

इतः परं प्राप्तावसरं नरतिर्यग्लोकं निरूपयितुमनास्तावल्लोकद्वयस्थितजिनभवनस्तुतिपूर्वकं तत्संख्यामाह—

णमह णरलोयजिणघर चत्तारि सयाणि दोविहीणाणि। वावण्णं चउ चउरो णंदीसर कुंडले रुचगे[1]।।५६१।।

नमत नरलोकजिनगृहाणि चत्वारि शतानि द्विविहीनानि। द्वापञ्चाशत् चत्वारि चत्वारि नन्दीश्वरे कुण्डले रुचके।।५६१।।

णमह। नरलोके चतुःशतानि द्विविहीनानि ३९८ जिनगृहाणि नन्दीश्वरद्वीपे कुण्डलद्वीपे रुचकद्वीपे च तिर्यग्लोकसम्बन्धीनि यथासंख्यं द्वापञ्चाशज्जिनगृहाणि ५२ चत्वारि जिनगृहाणि ४ चत्वारि जिनगृहाणि ४ नमत।।५६१।।

मध्यलोक के जिनमंदिर

(त्रिलोकसार से)

इसके आगे प्राप्त किया है अवसर जिन्होंने, ऐसे नरतिर्यग्लोक के निरूपण की अभिलाषा से संयुक्त आचार्यदेव सर्वप्रथम दोनों लोकों में स्थित जिनमन्दिरों की स्तुतिपूर्वक संख्या कहते हैं—

गाथार्थ—मनुष्यलोक सम्बन्धी दो कम चार सौ (३९८) जिनमन्दिरों को तथा तिर्यग्लोक सम्बन्धी नन्दीश्वर द्वीप, कुण्डलगिरि और रुचकगिरि में क्रम से स्थित बावन, चार और चार जिनमन्दिरों को नमस्कार करो।।५६१।।

विशेषार्थ—मनुष्यलोक अर्थात् अढाई द्वीप में ३९८ अकृत्रिम जिनचैत्यालय हैं तथा नन्दीश्वर द्वीप में ५२, कुण्डलगिरि पर ४ और रुचकगिरि पर चार इस प्रकार तिर्यग्लोक में ६० अकृत्रिम जिनचैत्यालय हैं। इन सर्व (३९८ + ६० = ४५८) जिनमन्दिरों को नमस्कार करो।

इन अकृत्रिम जिनचैत्यालयों का चित्रण निम्न प्रकार हैं—

नोट–इस जम्बूद्वीप के उपर्युक्त चित्रण में सुदर्शनमेरु के चार वनों में स्थित १६ अकृत्रिम जिनमंदिर ३४ विजयार्धों में स्थित ३४ ,, ,, ,, १६ वक्षार पर्वतों पर स्थित १६ ,, ,, ,, ४ गजदंतो पर्वतों पर स्थित ४ ,, ,, ,, ६ कुलाचलों पर स्थित ६ ,, ,, ,, जंबू शाल्मलि २ वृक्षों पर स्थित २ ,, ,, ,, हैं	७८ × ५ = ३९० अकृत्रिम चैत्यालय ५ मेरु संबंधी हुए अतः— पंचमेरु सम्बन्धी ३९० अकृत्रिम चैत्यालय हैं। चार इष्वाकार के ४ अकृत्रिम चैत्यालय–गाथा ५६२ मानुषोत्तर के ४ अकृत्रिम चैत्यालय–गाथा ९४० नन्दीश्वर के ५२ अकृत्रिम चैत्यालय–गाथा ९७३ रुचकगिरि के ४ अकृत्रिम चैत्यालय–गाथा ९४७ कुण्डलगिरि के ४ अकृत्रिम चैत्यालय–गाथा ९४४
७८ एक मेरु सम्बन्धी अकृत्रिम जिनमंदिर हैं।	४५८ नरतिर्यग्लोक के सम्पूर्ण अकृ० चैत्यालय।

१. त्रिलोकसार–पृ. ४७७ से ४८२ तक।

नरलोक के अकृत्रिम जिनचैत्यालयों की संख्या

अथ नरलोकजिनगृहाणि कुत्र कुत्र तिष्ठन्ति इत्युक्ते आह—

मंदरकुलवक्खारिसुमणुसुत्तररुप्पजंबुसालिसु। सीदी तीसं तु सयं चउ चउ सत्तरिसयं दुपणं।।५६२।।

मन्दरकुलवक्षारेषु मानुषोत्तररूप्यजम्बूशाल्मलिषु। अशीतिः त्रिंशत् तु शतं चत्वारि चत्वारि सप्ततिशतं द्विपञ्च।।५६२।।

मंदर। मन्दरेषु ५ कुलपर्वतेषु ३० वक्षारेषु १०० इष्वाकारेषु ४ मानुषोत्तरे १ विजयार्धेषु १७० जम्बूवृक्षेषु ५ शाल्मलीवृक्षेषु ५ यथासंख्यं जिनगृहाण्यशीति ८० त्रिंशत् ३० शतं १०० चत्वारि ४ चत्वारि ४ सप्तत्युत्तरशतं १७० द्विवारपञ्च ५-५ भवन्ति।।५६२।।

पाँचों मेरुपर्वत कहाँ-कहाँ हैं ?

अथ अग्रे वक्ष्यमाणानामर्थानां मन्दराश्रयत्वात्तानेव प्रथमं प्रतिपादयति—

जंबूदीवे एक्को इसुकयपुव्ववरचावदीवदुगे। दो द्दो मन्दरसेला बहुमज्झगविजयबहुमज्झे।।५६३।।

जम्बूद्वीपे एकः इषुकृतपूर्वापरचापद्वीपद्विके। द्वौ द्वौ मन्दरशैलौ बहुमध्यगविजयबहुमध्ये।।५६३।।

जंबू। जम्बूद्वीपे एको मन्दरः इष्वाकारपर्वतकृतपूर्वापरचापद्वीपद्विके द्वौ द्वौ मन्दरशैलौ। तत्रापि ते मन्दराः क्व तिष्ठन्ति ? भरतादिदेशानामतिशयेन मध्यस्थितो विजयः देश इत्यर्थः। तस्यात्यन्तमध्यप्रदेशे तिष्ठन्ति।।५६३।।

नरलोक के अकृत्रिम जिनचैत्यालयों की संख्या

नरलोक के चैत्यालय कहाँ-कहाँ स्थित हैं ? उन्हें कहते हैं—

गाथार्थ—सुमेरु, कुलाचल, वक्षारगिरि, इष्वाकार, मानुषोत्तर, रूप्यगिरि (विजयार्ध) जम्बूवृक्ष और शाल्मलि वृक्षों पर क्रम से अस्सी, तीस, सौ, चार, चार, एक सौ सत्तर, पाँच और पाँच जिनमन्दिर हैं।।५६२।।

विशेषार्थ—पाँच सुमेरु पर्वतों पर ८० जिनमंदिर हैं, तीस कुलाचलों पर ३०, गजदन्त सहित सौ वक्षारगिरि पर १००, चार इष्वाकार पर ४, मानुषोत्तर पर ४, एक सौ सत्तर विजयार्धों पर १७०, पाँच जम्बूवृक्षों पर ५ और पाँच शाल्मलि वृक्षों पर ५ जिनमन्दिर स्थित हैं। इस प्रकार नरलोक में कुल (८० + ३० + १०० + ४ + ४ + १७० + ५ + ५ =) ३९८ जिनमन्दिर हैं।

पाँचों मेरुपर्वत कहाँ-कहाँ हैं ?

अग आगे कहा जाने वाला सर्व अर्थ मेरू के आश्रय है अत: सर्वप्रथम मेरुगिरि का प्रतिपादन करते हैं—

गाथार्थ—जम्बूद्वीप में एक मेरुगिरि है। दो द्वीपों में इष्वाकार पर्वतों के द्वारा किए हुए पूर्व-पश्चिम में दो-दो धनुषाकार क्षेत्रों में दो-दो मेरुपर्वत हैं, इन मेरु पर्वतों का अवस्थान उन धनुषाकार क्षेत्रों के ठीक मध्य में स्थित विदेहों के ठीक मध्य में है।।५६३।।

विशेषार्थ—जम्बूद्वीप में एक मेरुगिरि है तथा धातकीखण्ड और पुष्करार्ध द्वीपों में इष्वाकार पर्वतों के द्वारा पूर्व पश्चिम दिशाओं में किए हुए दो-दो धनुषाकार क्षेत्र हैं अर्थात् धातकीखण्ड में दो इष्वाकार पर्वतों ने धनुषाकार दो क्षेत्र बनाये हैं और पुष्करार्ध द्वीप में भी दो इष्वाकार पर्वतों ने धनुषाकार दो क्षेत्र बनाए हैं। इन्हीं चार क्षेत्रों में चार सुमेरुगिरि स्थित हैं। उन क्षेत्रों में भी वे मन्दरगिरि कहाँ अवस्थित हैं ? इष्वाकार पर्वतों के द्वारा बनाए हुए जो भरतैरावतादि क्षेत्र हैं, उनके ठीक मध्य भाग में विदेहक्षेत्रों की अवस्थिति है, विदेहक्षेत्रों के अत्यन्त मध्य में ये चारों सुमेरु पर्वत स्थित हैं।

जम्बूद्वीप के ७ क्षेत्रों के नाम

अथ तेषां मन्दराणामुभयपार्श्वस्थितक्षेत्राणां नामानि कथयति—

दक्खिणदिसासु भरहो हेमवदो हरिविदेहरम्मो य। हइरण्णवदेरावदवस्सा कुलपव्वयंतरिया।।५६४।।

दक्षिणदिशासु भरतो हैमवतः हरिविदेहरम्यश्च। हैरण्यवदैरावतवर्षाः कुलपर्वतान्तरिताः।।५६४।।

दक्खिण। तेषां मन्दराणां दक्षिणदिशाया आरभ्य भरतः हैमवतः हरिः विदेहः रम्यकः हैरण्यवतः ऐरावत इत्येते वर्षा हिमवदादिकुलपर्वतान्तरिताः।।५६४।।

छह कुलाचलों का वर्णन

अथ तेषां पर्वतानां नामादिकं गाथाद्वयेनाह—

हिमवं महादिहिमवं णिसहो णीलो य रुम्मि सिहरी य। मूलोवरि समवासा मणिपासा जलणिहिं पुट्ठा।।५६५।।

हिमवान् महादिहिमवान् निषधः नीलश्च रुक्मी शिखरी च। मूलोपरि समव्यासा मणिपार्श्वा जलनिधिं स्पृष्टाः।।५६५।।

हिमवं। हिमवान् महाहिमवान् निषधो नीलश्च रुक्मी शिखरी च, एते सर्वे मूलोपरि समानव्यासाः मणिमयपार्श्वा जलनिधिं स्पृष्टाः।।५६५।।

जम्बूद्वीप के ७ क्षेत्रों के नाम

उन सुमेरु पर्वतों के दोनों पार्श्वभागों में स्थित क्षेत्रों के नाम कहते हैं—

गाथार्थ—उन मन्दर मेरुओं की दक्षिण दिशा से लगाकर क्रमशः (१) भरत (२) हैमवत (३) हरि (४) विदेह (५) रम्यक (६) हैरण्यवत और (७) ऐरावत ये सात क्षेत्र हैं, जो कुलपर्वतों से अन्तरित हैं अर्थात् जिनके बीच में कुल पर्वतों के होने से अन्तर प्राप्त है।।५६४।।

विशेषार्थ—उन सुमेरु पर्वतों की दक्षिण दिशा से प्रारम्भ कर क्रमशः भरतादि सात क्षेत्र हैं। जिनमें बीच-बीच में कुल पर्वतों के कारण अन्तर है अर्थात् इन क्षेत्रों के अन्तराल में कुल पर्वत हैं। यथा—भरत और हैमवत के बीच में हिमवान् पर्वत है। हैमवत और हरि के बीच में महाहिमवान्, हरि और विदेह के बीच निषध, विदेह और रम्यक के बीच में नील, रम्यक और हैरण्यवत के बीच में रुक्मी तथा हैरण्यवत और ऐरावत के बीच में शिखरिन् पर्वत हैं।

छह कुलाचलों का वर्णन

दो गाथाओं द्वारा उन कुलाचलों के नामादि कहते हैं—

गाथार्थ—हिमवान्, महाहिमवान्, निषध, नील, रुक्मी और शिखरिन् ये छह कुलपर्वत मूल में व ऊपर समान व्यास-विस्तार से युक्त हैं। मणियों से खचित इनके दोनों पार्श्वभाग समुद्रों का स्पर्श करने वाले हैं।।५६५।।

विशेषार्थ—(१) हिमवान् (२) महाहिमवान् (३) निषध (४) नील (५) रुक्मी और (६) शिखरिन् ये छह कुलाचल पर्वत हैं। दीवाल सदृश इन कुलाचलों का व्यास-चौड़ाई नीचे से ऊपर तक समान है। इन कुलाचलों के दोनों पार्श्वभाग मणिमय हैं और समुद्रों को स्पर्श करने वाले हैं। जम्बूद्वीप में कुलाचलों के दोनों पार्श्वभाग लवणसमुद्र को स्पर्श करते हैं। धातकीखण्ड में लवणोदधि और कालोदधि को स्पर्श करते हैं किन्तु पुष्करार्धद्वीप में कालोदधि और मानुषोत्तर पर्वत को स्पर्श करते हैं।

कुलाचलों के वर्ण

हेमज्जुणतवणीया कमसो वेलुरियरजदहेममया। इगिदुगचउचउदुगइगिसयतुंगा होंति हु कमेण।।५६६।।

हेमार्जुनतपनीयाः क्रमशः वैडूर्यरजतहेममयाः। एकद्विकचतुश्चतुर्द्विकैकशततुङ्गा भवन्ति हि क्रमेण।।५६६।।

हेम। हेमवर्णः अर्जुनवर्णः श्वेत इत्यर्थः। तपनीयवर्णः कुक्कटचूडछविरित्यर्थः, वैडूर्यवर्णः मयूरकण्ठच्छविरित्यर्थः, रजतवर्णः हेममयः एते क्रमशः तेषां पर्वतानां वर्णाः एकशतः द्विशतः चतुःशतः चतुःशतः द्विशतः एकशतः क्रमेण तेषामुत्सेधा भवन्ति।।५६६।।

सुमेरु पर्वत का वर्णन

साम्प्रतं विदेहमध्यस्थितमन्दरगिरेः स्वरूपमाचष्टे—

मेरू विदेहमज्झे णवणउदिदहेक्कजोयणसहस्सा। उदयं भूमुहवासं उवरुवरिगवणचउक्कजुदो[1]।।६०६।।

मेरुः विदेहमध्ये नवनवतिदशैकयोजनसहस्राणि। उदयः भूमुखव्यासः उपर्युपरिगवनचतुष्कयुतः।।६०६।।

मेरू। विदेहस्य मध्यप्रदेशे मेरुरस्ति, तस्योदयभूमुखव्यासा यथासंख्यं नवनवतिसहस्र ९९००० दशसहस्र १०००० एकसहस्र १००० योजनानि स्युः। स च पुनरुपर्युपरि कणयगतवनचतुष्कयुतः।।६०६।।

कुलाचलों के वर्ण

गाथार्थ—इन कुलाचलों का वर्ण क्रमशः हेम (स्वर्ण) अर्जुन (चाँदी सदृश श्वेत) तपनीय (तपाये हुए स्वर्ण सदृश) वैडूर्यमणि (नीला) रजत (श्वेत) और हेम (स्वर्ण) सदृश है। इनकी ऊँचाई का प्रमाण भी क्रमशः एक सौ, दौ सौ, चार सौ, चार सौ, दो सौ और एक सौ योजन है।।५६६।।

विशेषार्थ—हिमवान् पर्वत का वर्ण स्वर्ण सदृश और ऊँचाई १०० योजन (४००००० मील) है। महाहिमवान् का अर्जुन अर्थात् श्वेत वर्ण तथा ऊँचाई २०० योजन (८००००० मील) है। निषध पर्वत का वर्ण तपनीय—तपाये हुए स्वर्ण के समान तथा ऊँचाई ४०० योजन (१६००००० मील) है। नील पर्वत का वर्ण वैडूर्य अर्थात् मयूरकण्ठ सदृश नीला है, इसकी ऊँचाई ४०० योजन है। रुक्मी पर्वत का वर्ण रजत अर्थात् श्वेत तथा ऊँचाई २०० योजन है। इसी प्रकार शिखरिन् पर्वत का वर्ण स्वर्ण सदृश एवं ऊँचाई १०० योजन है।

सुमेरु पर्वत का वर्णन

अब विदेहक्षेत्र के मध्य में स्थित मन्दर मेरु का स्वरूप कहते हैं—

गाथार्थ—विदेहक्षेत्र के मध्य प्रदेश—स्थान में सुदर्शन मेरु स्थित है, जिसका उदय, भू व्यास और मुखव्यास क्रमशः ९९०००, १०००० और १००० योजन है। यह मन्दिर मेरु के ऊपर-ऊपर चार वनों से संयुक्त हैं।।६०६।।

विशेषार्थ—विदेहक्षेत्र के मध्य स्थित सुदर्शन मेरु ९९००० योजन ऊँचा है; मूल में उसकी चौड़ाई दस हजार और ऊपर एक हजार योजन है तथा वह ऊपर-ऊपर कटनी में चार वनों से संयुक्त है।

---

१. त्रिलोकसार–पृ. ५१० से ५१३ तक।

इदानीं वनचतुष्कस्य संज्ञा तदन्तरालं च प्रतिपादयति—

भू भद्दसाल साणुग णंदणसोमणसपांडुकं च वणं। इगिपणघणबाबत्तरिहिदपंचसयाणि गंतूणं।।६०७।।

भुवि भद्रशालं सानुगं नन्दनसौमनसपाण्डुकं च वनम्। एक पञ्चघनद्वासप्ततिहतपञ्चशतानि गत्वा।।६०७।।

भूभद्द। भूगतं वनं भद्रशालाख्यं सानुत्रयगतानि यथासंख्यं नन्दनसौमनसपाण्डुकाख्यवनानि, तानि एक १ पञ्चघन १२५ द्वासप्तति ७२ हत पञ्चशतयोजनानि ५००। ६२५००। ३६००० गत्वा गत्वा तिष्ठन्ति।।६०७।।

अथ तद्वनस्थवक्षानाह—

मंदारचूदचंपयचंदणघणसारमोचचोचेहिं। तंबूलिपूगजादीपहुदीसुरतरुहि कयसोहं।।६०८।।

मन्दारचूतचम्पकचन्दनघनसारमोचचोचैः। ताम्बूलीपूगजातिप्रभृतिसुरतरुभिः कृतशोभानि।।६०८।।

मंदार। मन्दारचूतचम्पकचन्दनघनसारमोचचोचैः ताम्बूलीपूगजातिप्रभृतिभिः सुरतरुभिश्च कृतशोभानि तानि वनानि।।६०८।।

विजयमेरु आदि चार मेरु का वर्णन

साम्प्रतमितरमन्दराणां व्यवधाननिरूपणाव्याजेनोत्सेधं कथयति—

पणसय पणसयसहियं पणवण्णसहस्सयं सहस्साणं। अट्ठावीसिदराणं सहस्सगाढं तु मेरूणं[१]।।६०९।।

चारों वनों के नाम और उनके अन्तराल का प्रतिपादन करते हैं—

गाथार्थ—मेरु की मूल पृथ्वी पर भद्रशाल वन है तथा इसके सानु प्रदेश अर्थात् कटनी पर नन्दन वन, सौमनस वन और पाण्डुक वन हैं। इनकी अवस्थिति एक से गुणित पाँच सौ, पाँच के घन (१२५) से गुणित पाँच सौ और बहत्तर से गुणित पाँच सौ योजन प्रमाण आगे जाकर है।।६०७।।

विशेषार्थ—सुमेरु पर्वत के मूल में (भूमिगत) भद्रशाल नाम का वन है। यह वन मन्दर महाचलेन्द्र के चारों ओर है। इस वन से ५०० × १ अर्थात् ५०० योजन आगे जाकर कटनी पर दूसरा नन्दन नाम का वन है। इससे ५०० × (५ × ५ ×५ = १२५) अर्थात् ६२,५०० योजन ऊपर जाकर सौमनस नाम का वन है। इस वन से ५०० × ७२ अर्थात् ३६००० योजन ऊपर जाकर सुमेरु के शीर्ष पर चौथा पाण्डुक नामक वन है। ये तीनों वन भी मन्दर गिरीन्द्र के चारों ओर हैं। मन्दर मेरु की कुल ऊँचाई ९९००० योजन है। चारों महावनों के तीन अन्तरालों का एकत्रित (५०० + ६२५०० + ३६०००) प्रमाण सुदर्शन मेरु की ऊँचाई ९९००० योजन प्रमाण है।

उन वनों में स्थित वृक्षों को कहते हैं—

गाथार्थ—कल्पवृक्षों की शोभा प्राप्त करने वाले उन चारों वनों में मन्दार, आम्र, चम्पक, चन्दन, घनसार, केला, श्रीफल, ताम्बूली, सुपारी और जायपत्री आदि के अनेक वृक्ष हैं।।६०८।।

विजयमेरु आदि चार मेरु का वर्णन

अब अन्य मेरुपर्वतों पर स्थित वनों के अन्तराल निरूपण के बहाने से उन मन्दर मेरुओं की ऊँचाई का प्रमाण कहते हैं—

गाथार्थ—अन्य चार मेरु पर्वतों पर भी मेरु के मूल अर्थात् पृथ्वी पर भद्रशाल वन है, इसके ऊपर क्रम से पाँच सौ योजन, पचपन हजार पाँच सौ और अट्ठाईस हजार योजन जा-जाकर अन्य वनों की अवस्थिति है।

---

१. त्रिलोकसार-पृ. ५१३ से ५१४ तक।

पञ्चशतं पञ्चशतसहितं पञ्चपञ्चाशतसहस्रकं सहस्राणां। अष्टाविंशतिरितरेषां सहस्रगाधस्तु मेरूणाम्।।६०९।।

पणसय। पञ्चशतयोजनानि ५०० पञ्चशतसहितं पञ्चपञ्चाशत्सहस्रयोजनानि ५५५०० अष्टाविंशति-सहस्रयोजनानि २८००० इतरेषां मेरूणां वनाद्वनान्तराणि पञ्चानां मेरूणां सहस्रयोजनावगाधो १००० ज्ञातव्यः।।६०९।।

अथ तेषां वनानां विस्तारं निरूपयति—

बावीसं च सहस्सा पणपणछक्कोणपणसयं वासं।
पढमवणं वज्जित्ता सव्वणगाणं वणाणि सरिसाणि।।६१०।।

द्वाविंशतिः च सहस्रं पञ्चपञ्चषट्कोनपञ्चशतं व्यासं। प्रथमवनं वर्जयित्वा सर्वनगानां वनानि सदृशानि।।६१०।।

बावीसं। सुदर्शनमेरोर्भद्रशालवनं पूर्वापरेण प्रत्येकं द्वाविंशतिसहस्रयोजनव्यासं, नन्दनं पञ्चशतयोजनव्यासं, सौमनसं पञ्चशतयोजनव्यासं, पाण्डुकं षडूनपञ्चशतयोजनव्यासं ४९४। सुदर्शनस्य प्रथमवनं वर्जयित्वा सर्वमेरूणां नन्दनादि वनानि सदृशप्रमाणानि।।६१०।।

अथ तद्वनचतुष्टयस्थित चैत्यालयसंख्यामाह—

एक्केक्कवणो पडिदिसमेक्केक्कजिणालया सुसोहंति। पडिमेरुमुपरि तेसिं वण्णणमणुवण्णइस्सामि।।६११।।

एकैकवने प्रतिदिशमेकैकजिनालयाः सुशोभन्ते। प्रतिमेरुमुपरि तेषां वर्णनमनुवर्णयिष्यामि।।६११।।

एक्के। प्रतिमेरुं एकैकस्मिन् वने प्रतिदिशमेकैकजिनालयाः सुशोभन्ते। उपरि तेषां चैत्यालयानां वर्णनमनु पश्चान्नन्दीश्वरद्वीपवर्णनावसरे वर्णयिष्यामि।।६११।।

इन्हीं अन्तरालों के योग का प्रमाण मेरु पर्वतों की ऊँचाई का प्रमाण है। पाँचों मेरु पर्वतों का गाध—नींव का प्रमाण एक हजार योजन है।।६०९।।

विशेषार्थ—जम्बूद्वीप सम्बन्धी विदेह स्थित मेरु के अतिरिक्त दो मेरु धातकीखण्ड में और दो मेरु अर्धपुष्कर द्वीप में स्थित हैं। चारों मेरु पर्वतों के मूल में भद्रशाल वन है; इस वन से ५०० योजन ऊपर नन्दनवन, ५५,५०० योजन ऊपर जाकर सौमनसवन और २८००० योजन ऊपर जाकर पाण्डुक वन की अवस्थिति है। इन चारों वनों के अन्तराल का योग (५०० + ५५५०० + २८०००) = ८४००० योजन है। यही ८४००० योजन प्रत्येक मेरु पर्वत की ऊँचाई का प्रमाण है। पाँचों मेरु पर्वतों का गाध अर्थात् नींव १००० योजन ही है।

उन वनों के विस्तार का वर्णन करते हैं—

गाथार्थ—सुदर्शन मेरु के भद्रशाल वन की (पूर्व पश्चिम दिशा की) चौड़ाई २२००० योजन, नन्दन वन की ५०० योजन, सौमनस वन की ५०० योजन और पाण्डुक वन की ४९४ योजन है। सुदर्शन मेरु के भद्रशाल वन को छोड़कर सभी मेरु पर्वतों के नन्दनादि तीनों वनों की चौड़ाई का प्रमाण सदृश ही है।।६१०।।

विशेषार्थ—सुदर्शन मेरु के भद्रशाल वन की चौड़ाई पूर्व दिशा में २२००० योजन, पश्चिम दिशा में २२००० योजन (दक्षिण में २५० और उत्तर में भी २५० योजन) है। पाँचों मेरु पर्वतों के नन्दन वनों की चारों दिशा की चौड़ाई का प्रमाण ५०० योजन है। पाँचों सौमनस वनों की चारों दिशा की चौड़ाई का प्रमाण भी ५०० योजन ही है तथा पाँचों पाण्डुक वनों की चारों दिशा की चौड़ाई का प्रमाण ४९४ योजन है। तात्पर्य यह हुआ कि सुदर्शन मेरु के भद्रशाल वन को छोड़कर पाँचों मेरु पर्वतों के नन्दनादि वनों का प्रमाण सदृश ही है।

धातकीखण्डद्वीप और पुष्करार्धद्वीप में दो-दो इष्वाकार पर्वत के जिनमंदिर

साम्प्रतं धातकीखण्डपुष्करार्धयोरेकप्रकारत्वादग्रे वक्ष्यमाणक्षेत्रविभागहेतून् तयोरुभयपार्श्वस्थितमिष्वाकारपर्वतानाह—

चउरिसुगारा हेमा चउकूड सहस्सवास णिसहुदया। सगदीववासदीहा इगिइगिवसदी हु दक्खिणुत्तरदो[१]।।९२५।।

चतुरिष्वाकारा हेमाः चतुःकूटाः सहस्रव्यासा निषधोदयाः। स्वकद्वीपव्यासदीर्घा एकैकवसतयः हि दक्षिणोत्तरतः।।९२५।।

चउ। धातकीखण्डपुष्करार्धयोर्मिलित्वा हेममयाश्चतुः कूटाः सहस्रव्यासाः निषधोदया ४०० वस्कीयद्वीपव्यासदैर्ध्याः एकैकवसतयश्चत्वार इष्वाकारपर्वतास्तयोर्द्वीपयोर्दक्षिणोत्तरतस्तिष्ठन्ति।।९२५।।

धातकी व पुष्करार्ध द्वीप में हिमवान आदि पर्वतों की संख्या

अथ तद्द्वीपद्वयावस्थितानां कुलगिरिप्रभृतीनां स्वरूपं निरूपयति—

कुलगिरिवक्खारणदीदहवणकुंडाणि पुक्खरदलोत्ति। ओवेधुस्सेहसमा दुगुणा दुगुणा दु वित्थिण्णा।।९२६।।

उन चारों वनों में स्थित चैत्यालयों की संख्या कहते हैं—

गाथार्थ—प्रत्येक मेरु पवर्त के ऊपर प्रत्येक वन की प्रत्येक दिशा में **एक-एक जिनालय शोभायमान** हैं, जिनका वर्णन मैं (श्री नेमिचन्द्राचार्य) आगे करूँगा।।६११।।

विशेषार्थ—प्रत्येक मेरु पर्वत पर भद्रशाल आदि चार-चार वन हैं और प्रत्येक वन की चारों दिशाओं में एक-एक जिनचैत्यालय है। इस प्रकार पञ्चमेरु सम्बन्धी १६ वनों के ८० जिनचैत्यालय शोभायमान हैं; जिनका वर्णन अन्य चैत्यालयों के वर्णन के बाद नन्दीश्वर द्वीप के वर्णन के अवसर पर ग्रन्थकर्ता करेंगे।

धातकीखण्डद्वीप और पुष्करार्धद्वीप में दो-दो इष्वाकार पर्वत के जिनमंदिर

धातकीखण्ड और पुष्करार्ध में क्षेत्र व पर्वतादि एक प्रकार के हैं। इनमें क्षेत्रों का विभाग करने वाले दोनों पार्श्व भागों में स्थित इष्वाकार पर्वतों को कहते हैं—

गाथार्थ—दोनों द्वीपों के दक्षिणोत्तर दिशा में **चार इष्वाकार पर्वत हैं जो स्वर्णमय और चार-चार कूटों** से संयुक्त हैं। जिनका एक हजार योजन व्यास, निषध कुलाचल सदृश उदय और अपने-अपने द्वीपों के व्यास प्रमाण लम्बाई है तथा जो दक्षिण और उत्तर दिशा में एक-एक स्थित हैं एवं दक्षिणोत्तर लम्बे हैं।।९२५।।

विशेषार्थ—धातकीखण्ड और पुष्करार्ध द्वीपों की दक्षिणोत्तर दिशा में स्वर्णमय चार इष्वाकार पर्वत हैं। ये चारों पर्वत चार-चार कूटों से संयुक्त हैं, उनकी पूर्व पश्चिम चौड़ाई १००० योजन प्रमाण है। निषध कुलाचल सदृश ४०० योजन ऊँचे हैं तथा अपने-अपने द्वीपों के व्यास सदृश चार और आठ लाख योजन प्रमाण लम्बे हैं। ये दक्षिण और उत्तर दिशा में एक-एक स्थित हैं तथा दक्षिणोत्तर लम्बे हैं।

धातकी व पुष्करार्ध द्वीप में हिमवान आदि पर्वतों की संख्या

आगे दोनों द्वीपों में अवस्थित कुलाचल आदि का स्वरूप कहते हैं—

गाथार्थ—धातकीखण्ड से पुष्करार्ध पर्यन्त अवस्थित कुलाचल, वक्षारगिरि, नदी, द्रह, वन और कुण्डों की गहराई एवं ऊँचाई जम्बूद्वीपस्थ कुलाचलादि के सदृश है तथा विस्तार दुगुना-दुगुना है अर्थात् जम्बूद्वीपस्थ

---

१. त्रिलोकसार-पृ. ७०७ से ७०८ तक।

कुलगिरिवक्षारनदीद्रहवनकुण्डानि पुष्करदल इति। अवगाधोत्सेधसमा द्विगुणा द्विगुणाः तु विस्तीर्णाः।।९२६।।

कुल। धातकीखण्डादारभ्य पुष्करार्धपर्यन्त तत्र तत्रस्थाः कुलगिरयः १२ वक्षाराः ४० नद्यः १८० ह्रदाः ५२ वनानि ? कुण्डानि १८०। एते सर्वे जम्बूद्वीपस्थकुलगिरिप्रभृतीनामवगाधोत्सेधाभ्यां समानाः एतेषां विस्तारास्तु जम्बूद्वीपस्थविस्तारेभ्यो द्विगुणद्विगुणाः।।९२६।।

धातकीखण्ड द्वीप-पुष्करार्ध द्वीप के हिमवान पर्वत आदि के आकार का वर्णन

अथ द्व्यर्धद्वीपस्थितवर्षवर्षधरपर्वतानामाकारं निरूपयति—

सयलुद्धिणिभा वस्सा दिवड्ढदीवम्हि तत्थ सेलाओ। अंते अंकमुहाओ खुरप्पसंठाणया बाहिं।।९२७।।

शकटोद्धिनिभा वर्षा द्व्यर्धद्वीपे तत्र शैलाः। अन्तः अङ्कमुखाः क्षुरप्रसंस्थानका बहिः।।९२७।।

सयलु। द्व्ययर्धद्वीपे वर्षाः शकटोद्धिकानिभाः तत्र शैला अभ्यन्तरे अङ्कमुखाः बाह्ये क्षुरप्रसंस्थानाः।।९२७।।

कुलाचलादिक के व्यास से धातकीखण्ड स्थित कुलाचलादिकों का व्यास दुगुना है और धातकीखण्ड की अपेक्षा पुष्करार्ध का विस्तार दुगुना है।।९२६।।

विशेषार्थ—धातकीखण्ड से प्रारम्भ कर पुष्करार्ध पर्यन्त एक-एक द्वीप में दो-दो मेरु सम्बन्धी कुलाचल १२, गजदन्तों सहित वक्षार पर्वत ४०, गङ्गा सिन्धु और विभङ्गा आदि तथा कच्छादि विदेह सम्बन्धी दो-दो नदियाँ और सब मिलाकर कुल नदियाँ १८०, कुलाचलों और भद्रशाल वनों में स्थित द्रह ५२, पर्वतों और नदियों के पार्श्वभागों में स्थित वन संख्यात तथा गङ्गादि नदियों के गिरने के और विभङ्गादि नदियों के निकलने के कुल कुण्ड १८० हैं। इन सबकी गहराई और ऊँचाई तो जम्बूद्वीपस्थ कुलाचलादिकों के सदृश है किन्तु जम्बूद्वीपस्थ कुलाचलादिकों के विस्तार से धातकीखण्डस्थ कुलाचलादिकों का विस्तार दूना है तथा धातकी खण्ड की अपेक्षा पुष्करार्धद्वीपस्थ कुलाचलादिकों का विस्तार दूना है।

धातकीखण्ड द्वीप-पुष्करार्ध द्वीप के हिमवान पर्वत आदि के आकार का वर्णन

अब डेढ़ द्वीप में स्थित क्षेत्र और कुलाचलों का आकार कहते हैं—

गाथार्थ—द्व्यर्धद्वीपे अर्थात् डेढ़ द्वीप में स्थित क्षेत्रों का आकार तो शकटोद्धिका अर्थात् गाड़ी के पहिये के सदृश है तथा वहाँ के कुलाचलों का अभ्यन्तर आकार अङ्कमुख एवं बाह्य आकार क्षुरप्रसंस्थान सदृश है।।९२७।।

विशेषार्थ—धातकीखण्ड और अर्ध पुष्करवर द्वीप में क्षेत्र का आकार गाड़ी के पहिये के दो आरों के बीच के आकार सदृश है तथा पर्वतों का आकार पहिये के आरों सदृश है। जिनके अभ्यन्तर की ओर का आकार अङ्क मुख और बाह्य की ओर का आकार खुरपा मुख है।

मानुषोत्तर पर्वत के जिनमंदिर एवं कूटों की संख्या

अनन्तरं मानुषोत्तरस्वरूपं गाथात्रयेणाह—

अंते टंकच्छिण्णो बाहिं कमवड्ढिहाणि कणयणिहो। णदिणिग्गमपहचोद्दसगुहाजुदो माणुसुत्तरगो[1]।।९३७।।

अन्त: टङ्कच्छिन्नो बाह्ये क्रमवृद्धिहानिक: कनकनिभ:। नदीनिर्गमपथचतुर्दशगुहायुत: मानुषोत्तर:।।९३७।।

अंते। अभ्यन्तरे टङ्कच्छिन्नो बाह्ये शिखरात् क्रमवृद्ध: मूलात् क्रमहानियुक्त: कनकनिभ: नदीनिर्गमपथैश्चतुर्दशगुहाभिर्युतो मानुषोत्तराख्यशैलो ज्ञातव्य:।।९३७।।

मणुसुत्तरुदयभूमुहमिगिवीसं सगसयं सहस्सं च। बावीसहियसहस्सं चउवीसं चउसयं कमसो।।९३८।।

मानुषोत्तरोदयभूमुखमेकविंशं सप्तशतं सहस्रं च। द्वाविंशधिकसहस्रं चतुर्विंशति: चतु:शतं क्रमश:।।९३८।।

मणुसु। मानुषोत्तरोदयभूमुखव्यासा: क्रमेण एकविंशतिसप्तशतोत्तरसहस्रयोजनानि १७२१ द्वाविंशत्यधिकसहस्रयोजनानि १०२२ चतुर्विंशत्युत्तरचतु: शतयोजनानि ४२४ भवन्ति।।९३८।।

तण्णगसिहरे वेदी चावाणं चदुस्सहस्सतुंगजुदा। सोहइ बलयायारा चरणण्णिदकोसवित्थारा।।९३९।।

तन्नगशिखरे वेदी चापानां चतु: सहस्रतुङ्गयुता। शोभते बलयाकारा चरणान्वितक्रोशविस्तारा।।९३९।।

तण्णग। तन्मानुषोत्तरनगस्य शिखरे चापानां चतु: सहस्रतुङ्गयुता चतुर्थांशान्वितक्रोशविस्तारा २५०० वलयाकारा वेदी शोभते।।९३९।।

मानुषोत्तर पर्वत के जिनमंदिर एवं कूटों की संख्या

अब मानुषोत्तर पर्वत का स्वरूप तीन गाथाओं द्वारा कहते हैं—

गाथार्थ—पुष्कर द्वीप के मध्य में मानुषोत्तर पर्वत है। वह अभ्यन्तर में टङ्कछिन्न और बाह्य भाग में क्रमिक वृद्धि एवं हानि को लिए हुए है। स्वर्ण सदृश वर्ण वाला एवं नदी निकलने के चौदह गुफाद्वारों से युक्त है।।९३७।।

विशेषार्थ—पुष्कर द्वीप के मध्य में मानुषोत्तर नाम का पर्वत स्थित है। वह अभ्यन्तर मनुष्यलोक की ओर टङ्कछिन्न अर्थात् नीचे से ऊपर तक एक सदृश है तथा बाह्य-तिर्यग्लोक की ओर शिखर से क्रमिक वृद्धि और मूल से क्रमिक हानि को लिए हुए है। उसका वर्ण स्वर्ण सदृश है तथा चौदह महानदियों के निर्गम स्वरूप चौदह गुफाद्वारों से युक्त है।

गाथार्थ—मानुषोत्तर पर्वत का उदय, भू व्यास और मुख व्यास क्रमश: एक हजार सात सौ इक्कीस योजन, एक हजार बावीस योजन और चार सौ चौबीस योजन प्रमाण है।।९३८।।

विशेषार्थ—मानुषोत्तर पर्वत की ऊँचाई १७२१ योजन, भूव्यास अर्थात् मूल में चौड़ाई १०२२ योजन और मुख व्यास अर्थात् ऊपर की चौड़ाई ४२४ योजन प्रमाण है तथा इसकी नींव १७२१/४ = ४३० योजन १ कोश है।

गाथार्थ—उस मानुषोत्तर पर्वत के शिखर पर चार हजार धनुष ऊँची और सवा कोस (१-१/४) चौड़ी वलयाकार वेदी शोभायमान है।।९३९।।

---

१. त्रिलोकसार-पृ. ७२९-७३० तक।

मानुषोत्तर पर्वत के कूटों की संख्या

अथात्र स्थितानि कूटानि कथयति —

णइरिदिवायव्वदिसं वज्जिय छस्सुवि दिसासु कूडाणि।
तियतियमावलियाए ताणब्भंतरदिसासु चउवसई[१]।।९४०।।

नैऋतीं वायव्यदिशं वर्जयित्वा षट्स्वपि दिशासु कूटानि। त्रिकत्रिकमावल्या तेषामभ्यन्तरदिशासु चतुष्कवसत्यः।।९४०।।

णइ। नैऋतीं वायवीं च दिशं वर्जयित्वा षट्स्वपि दिशासु पंक्तिक्रमेण त्रीणि त्रीणि कूटानि सन्ति। तेषामभ्यन्तरदिशासु चतुरस्रा वसत्यः सन्ति।।९४०।।

अथ तत्कूटवासिदेवानाह—

अग्गीसाणछकूडे गरुडकुमारा वसंति सेसे दु। दिग्गयबारसकूडे सुवण्णकुलदिक्कुमारीओ।।९४१।।

अग्नीशानषट्कूटे गरुडकुमारा वसन्ति शेषुषु तु। दिग्गतद्वादशकूटेषु सुवर्णकुलदिक्कुमार्यः।।९४१।।

अग्गी। आग्नेय्यैशानदिक्स्थेषु षट्सु कूटेषु गरुडकुमारा वसन्ति। शेषेषु पुनर्दिग्गत द्वादशकूटेषु सुपर्णकुलदिक्कुमार्यो वसन्ति।।९४१।।

अथ मानुषोत्तरस्य स्थानादिकमाह—

पणदाललक्खमाणुसखेत्तं परिवेढिऊण सो होदि। उदयचउत्थोगाढो पुक्खरबिदियद्धपढमम्हि।।९४२।।

पञ्चचत्वारिंशल्लक्षमानुषक्षेत्रं परिवेष्ट्य स भवति। उदयचतुर्थावगाधः पुष्करद्वितीयार्धप्रथमे।।९४२।।

पण। पञ्चोत्तरचत्वारिंशल्लक्षयोजन ४५०००० प्रमितमानुषक्षेत्रं परिवेष्ट्य पुष्करद्वीपद्वितीयार्धस्य प्रथम भागे स मानुषोत्तरो भवति। तस्यावगाधः उदयचतुर्थांशः ४३०-१/४ स्यात्।।९४२।।

मानुषोत्तर पर्वत के कूटों की संख्या

अब इस पर्वत के ऊपर स्थित कूट कहते हैं—

गाथार्थ—नैऋत्य और वायव्य इन दो विदिशाओं को छोड़कर अवशेष छह दिशाओं में पंक्तिरूप तीन-तीन कूट हैं तथा उन कूटों के अभ्यन्तर की ओर चार दिशाओं में चार वसतिका हैं।।९४०।।

विशेषार्थ—उस मानुषोत्तर पर्वत पर नैऋत्य और वायव्य इन दो दिशाओं को छोड़कर अवशेष छह दिशाओं में पंक्तिस्वरूप तीन-तीन कूट हैं तथा उन कूटों के अभ्यन्तर अर्थात् मनुष्यलोक की ओर चार दिशाओं में चार वसतिका अर्थात् जिनमन्दिर हैं।

उन कूटों में बसने वाले देवों को कहते हैं—

गाथार्थ—आग्नेय और ईशान दिशा सम्बन्धी छह कूटों में गरुड़कुमार देव तथा अवशेष दिशागत बारह कूटों में सुपर्णकुमार देव एवं दिक्कुमारी देवांगनाएँ निवास करती हैं।।९४१।।

आगे मानुषोत्तर पर्वत का स्थान आदि कहते हैं—

गाथार्थ—पुष्कर द्वीप के द्वितीय अर्ध भाग के प्रथम भाग में ४५००००० योजन प्रमाण मनुष्यलोक को वेष्टित किए हुए मानुषोत्तर पर्वत है। जिसका अवगाध ऊँचाई का चतुर्थ भाग प्रमाण है।।९४२।।

---

१. त्रिलोकसार-पृ. ७३० से ७३१ तक।

नंदीश्वर द्वीप के जिनमंदिर

इदानीं नन्दीश्वद्वीपं सविशेषं प्रतिपादयन् तावत्तस्य वलयव्यासमाह—

आदीदो खलु अट्ठमणंदीसरदीववलयविक्खंभो। सयसमहियतेवट्ठीकोडी चुलसीदिलक्खा ये[1]।।९६६।।

आदितः खलु अष्टमनन्दीश्वरद्वीपवलयविष्कम्भः। शतसमधिकत्रिषष्टिकोटिः चतुरशीतिलक्षश्च।।९६६।।

आदीदो। जम्बूद्वीपादारभ्याष्टमनन्दीश्वरद्वीपवलयविष्कम्भः शतसमधिकत्रिषष्टिकोटिचतुरशीतिलक्षयोजनप्रमितः खलु १६३८४००००० एतावत्कथं नन्दीश्वरद्वीपसहितप्राक्तनद्वीपसमुद्राणां संख्या १५ कृत्वा रूऊणाहियपदमित्यादिना कृते सति भवति।।९६६।।

अथात्र दिक्चतुष्टयस्थितानां पर्वतानामाख्यां संख्यामवस्थानं च निरूपयति—

एक्कचउक्कट्ठं जणदहिमुहरइयरणगा पडिदिसम्हि। मज्झे चउदिसवावीमज्झे तब्बाहिरदुकोणे।।९६७।।

एकचतुष्काष्टाञ्जनदधिमुखरतिकरनगाः प्रतिदिशं। मध्ये चतुर्दिग्वापीमध्ये तद्बाह्यद्विकोणे।।९६७।।

एक्क। प्रतिदिशं मध्ये चतुर्दिकस्थवापीमध्ये तद्वापीबाह्यद्विकोणे च यथासंख्यं एक चतुष्काष्टसंख्याकाः अञ्जनदधिमुखरतिकराख्याः नगा नन्दीश्वरद्वीपे ज्ञातव्याः।।९६७।।

विशेषार्थ—४५००००० योजन प्रमाण मनुष्य लोक को घेरे हुए पुष्कर द्वीप के द्वितीय अर्ध भाग के प्रथम भाग का जो आदि क्षेत्र है उसमें मानुषोत्तर पर्वत है। इसकी नींव—गाध ऊँचाई का चतुर्थांश अर्थात् (१७२१/४)= ४३०-१/४ योजन है।

नंदीश्वर द्वीप के जिनमंदिर

अब नन्दीश्वर द्वीप का सविशेष वर्णन करते हुए सर्वप्रथम उसका वलय व्यास कहते हैं—

गाथार्थ :—जम्बूद्वीप से प्रारम्भ कर आठवें नन्दीश्वर द्वीप पर्यन्त का वलय व्यास एक सौ त्रेसठ करोड़ चौरासी लाख योजन प्रमाण है।।९६६।।

विशेशार्थ :—जम्बूद्वीप से प्रारम्भ कर नन्दीश्वर द्वीप का वलय व्यास एक सौ त्रेसठ करोड़ चौरासी लाख योजन प्रमाण है। इतना प्रमाण कैसे होता है ? जम्बूद्वीप से नन्दीश्वर द्वीप पर्यन्त के समस्त द्वीप समुद्रों की संख्या १५ है। इसे "रूऊणाहिय पदमिद" गाथा ३०९ के नियमानुसार पद (गच्छ) स्वरूप करके पद में से एक कम करके (१५-१)= अवशेष १४ का विरलन कर प्रत्येक के ऊपर दो का अङ्क देय स्वरूप देकर परस्पर में गुणा कर, लब्ध में से ० (शून्य) घटा देने पर तथा ५ शून्यों से सहित करने पर नन्दीश्वर द्वीप का वलय व्यास १६३८४००००० योजन प्रमाण है। यथा—पद १५ - १ = १४ २/१ २/१ २/१ २/१ २/१ २/१ २/१ २/१ २/१ २/१ २/१ २/१ २/१ २/१ = १६३८४ अंक प्राप्त हुए इन्हें ५ शून्यों से सहित कर एक शून्य घटा देने पर (१६३८४००००० - ०) = १६३८४००००० योजन नन्दीश्वर द्वीप के वलय व्यास का प्रमाण प्राप्त होता है।

आगे इस द्वीप की चारों दिशाओं में स्थित पर्वतों के नाम, संख्या और अवस्थान का निरूपण करते हैं—

गाथार्थ :—नन्दीश्वर द्वीप की प्रत्येक दिशा के मध्य में एक, चारों दिशा सम्बन्धी बावड़ियोंके मध्य में चार और बावड़ियों के बाह्य दो दो कोनों में एक-एक अर्थात् ८ क्रमशः अञ्जन, दधिमुख और रतिकर नाम के पर्वत हैं।।९६७।।

---

१. त्रिलोकसार-पृ. ७४२।

अथ तद्गिरीणां वर्णं परिमाणं च प्रतिपादयति—

अंजणदहिकणयणिहा चुलसीदिदहेक्कजोयणसहस्सा। वट्टा वासुदएणय सरिसा बावण्णसेलाओ।।९६८।।

अञ्जनदधिकनकनिभाः चतुरशीतिदशैकयोजनसहस्राः। वृत्ताः व्यासोदयेन सदृशाः द्वापञ्चाशच्छैलाः।।९६८।।

अंजण। अञ्जनादयस्त्रयः पर्वताः यथासंख्यं अञ्जनदधिकनकाभाः तेषां प्रमाणं चतुरशीतिसहस्र ८४००० दशसहस्रै १०००० एकसहस्र १००० योजनानि। ते च वृत्ताः व्यासोदयेन सदृशाः सर्वे मिलित्वा द्वापञ्चाशच्छैला ५२ भवन्ति।।९६८।।

इदानीं तद्वापीनां नामानि गाथाद्वयेनाह—

णंदा णंदवदी पुण णंदुत्तर णंदिसेण अरविरया। गयवीदसोगविजया वईजयंती जयंती य।।९६९।।

अवराजिदा य रम्मा रमणीया सुप्पभा य पुव्वादी। रयणतडा लक्खपमा चरिमा पुण सव्वदोभद्दा।।९७०।।

नन्दा नन्दवती पुनः नन्दोत्तरा नन्दिषेणा अरविरजे। गतवीतशोकाविजयाः वैजयन्ती जयन्ती च।।९६९।।

अपराजिता च रम्या रमणीया सुप्रभा च पूर्वादितः। रत्नतट्यः लक्षप्रमाः चरमा पुनः सर्वतोभद्रा।।९७०।।

णंदा। नन्दा नन्दवती पुनर्नन्दोत्तरा नन्दिषेणा अरजा विरजा गतशोका वीतशोका विजय वैजयन्ती जयन्ती च।।९६९।।

अवरा। अपराजिता च रम्या रमणीया सुप्रभा च चरमा पुनः सर्वतोभद्राः। एताः सर्वा रत्नतट्यो लक्षयोजनप्रमिताः पूर्वदिग्भागादितो ज्ञातव्याः।।९७०।।

विशेषार्थ :—नन्दीश्वर द्वीप की प्रत्येक दिशा के मध्य भाग में अञ्जन नाम का एक-एक पर्वत है। इस पर्वत की चारों दिशाओं में चार बावड़ियाँ हैं जिनके मध्य में दधिमुख नाम का एक-एक अर्थात् ४ दधिमुख पर्वत हैं तथा इन बावड़ियों के दो-दो बाह्य कोनों पर एक-एक अर्थात् आठ रतिकर पर्वत हैं। इस प्रकार एक दिशा में (अञ्जन १, दधिमुख ४ और रतिकर ८) = १३ पर्वत और ४ बावड़ियाँ हैं अतः चारों दिशाओं में (अञ्जन ४, दधिमुख १६ और रतिकर ३२) = ५२ पर्वत और ४ बावड़ियाँ हैं।

अब उन पर्वतों के वर्ण और प्रमाण का प्रतिपादन करते हैं—

गाथार्थ :—अञ्जन, दधिमुख और रतिकर पर्वत यथाक्रम अञ्जन, दधि और स्वर्ण सदृश वर्ण वाले हैं। ये क्रमशः चौरासी हजार, दस हजार और एक हजार योजन प्रमाण वाले हैं। इनका उदय (ऊँचाई) और व्यास सदृश है। आकार गोल है। इस प्रकार ये बावन पर्वत हैं।।९६८।।

विशेषार्थ :—चार अञ्जन पर्वत अञ्जन—कज्जल सदृश, १६ दधिमुख पर्वत दधि सदृश (श्वेत) और ३२ रतिकर पर्वत तपाए हुए स्वर्ण सदृश वर्ण वाले हैं। अञ्जन पर्वतों की ऊँचाई एवं भूमुख व्यास ८४००० योजन, दधिमुखों का १०००० योजन और रतिकरों का १००० योजन है अर्थात् इन पर्वतों की जितनी ऊँचाई है, उतनी ही नीचे ऊपर चौड़ाई है। ये खड़े हुए ढोल के सदृश गोल आकार वाले हैं। इनकी सम्पूर्ण संख्या ५२ है।

अब उन वापियों के नाम दो गाथाओं द्वारा कहते हैं—

गाथार्थ :—पूर्वादि चारों दिशाओं में क्रमशः नन्दा, नन्दवती, नन्दोत्तरा, नन्दिषेणा, अरजा, विरजा, गतशोका, वीतशोका, विजया, वैजयन्ती, जयन्ती, अपराजिता, रम्या, रमणीया, सुप्रभा और सर्वतोभद्रा रत्नमय तट से युक्त ये सर्व वापिकाएँ एक लाख योजन प्रमाण वाली हैं।।९६९-९७०।।

अनन्तरं तासां वापीनां स्वरूपमाह—

सव्वे समचउरस्सा टंकुक्किण्णा सहस्समोगाढ़ा। वेदियचउवण्णजुदा जलयरउम्मुकजलपुण्णा।।९७१।।

सर्वाः समचतुरस्राः टङ्कोत्कीर्णाः सहस्रमवगाधाः। वेदिकाचतुर्वर्णयुता जलचरोन्मुक्तजलपूर्णाः।।९७१।।

सव्वे। ताः सर्वाः समचतुरस्राष्टङ्कोत्कीर्णाः सहस्रयोजनावगाधाः वेदिकाभिश्चतुर्वनैश्च युक्ताः जलचरोन्मुक्तजलपूर्णाः स्युः।।९७१।।

अथ तद्वापीनां वनस्वरूपमाह—

वावीणं पुव्वादिसु असोयसत्तच्छदं च चंपवणं। चूदवणं च कमेण य सगवावीदीहदलवासा।।९७२।।

वापीनां पूर्वदिषु अशोकसप्तच्छदं च चम्पवनं। चूतवनं च क्रमेण च स्वकवापीदीर्घदलव्यासानि।।९७२।।

वावीणं। तद्वापीनां पूर्वादिदिक्षु यथाक्रमेण स्वकीयस्वकीयवापीदीर्घाणि १ ल० तद्दलव्यासानि ५०००० अशोकसप्तच्छदचम्पकचूतवनानि भवन्ति।।९७२।।

इदानीमञ्जनादिगिरीन्द्रेषु प्रत्येकमेकैकं चैत्यालयं प्रतिपादयन् तेषु चतुर्णिकायामरैः कालविशेषाश्रयेण क्रियमाणपूजाविशेषं प्रतिपादयितुं गाथापञ्चकेनाह—

तव्वावण्णणगेसुवि बावण्णजिणालया हवंति तहिं। सोहम्मादी बारसकप्पिंदा ससुरभवणतिया।।९७३।।

विशेषार्थ :—नन्दीश्वर द्वीप की पूर्व दिशा में नन्दा, नन्दवती, नन्दोत्तरा और नन्दिषेणा ये चार वापिकाएँ हैं। दक्षिण दिशा में अरजा, विरजा, गतशोका और वीतशोका; पश्चिम दिशा में विजया, वैजयन्ती, जयन्ती और अपराजिता तथा उत्तर दिशा में रम्या, रमणीया, सुप्रभा और सर्वतोभद्रा ये चार वापिकाएँ हैं। इन सब वापिकाओं के तट रत्नमय हैं तथा ये १००००० योजन प्रमाण वाली हैं।

अब उन वापिकाओं का स्वरूप कहते हैं—

गाथार्थ :—वे सर्व वापिकाएँ समचतुरस्र, टङ्कोत्कीर्ण, एक हजार योजन अवगाह युक्त, चार-चार वनों से सहित, जलचर जीवों से रहित और जल से परिपूर्ण हैं।।९७१।।

विशेषार्थ :—वे सर्व वापिकाएँ एक लाख योजन लम्बी और एक लाख योजन चौड़ी अर्थात् समचतुरस्र आकार वाली हैं। टङ्कोत्कीर्ण अर्थात् ऊपर नीचे एक सदृश हैं। उनकी गहराई १००० योजन प्रमाण है, ये वेदिकाएँ चारों दिशाओं में एक-एक वन अर्थात् प्रत्येक चार-चार वनों से संयुक्त हैं। ये जलचर जीवों से रहित और जल से परिपूर्ण हैं।

अब उन वापिकाओं के वनों का स्वरूप कहते हैं—

गाथार्थ :—उन वापिकाओं की पूर्वादि दिशाओं में क्रमशः अपनी वापी की दीर्घता के सदृश लम्बे (१००००० यो०) और लम्बाई के अर्धप्रमाण चौड़े (५०००० यो०) अशोक, सप्तच्छद, चम्पक और आम्र के वन हैं।।९७२।।

अब अञ्जनादि प्रत्येक पर्वत के ऊपर एक-एक चैत्यालय का प्रतिपादन करते हुए आचार्य उन चैत्यालयों में चतुर्निकाय देवों द्वारा कालविशेष में की हुई पूजाविशेष को पाँच गाथाओं द्वारा कहते हैं—

गाथार्थ :—उस नंदीश्वरद्वीप में बावन पर्वतों पर बावन ही जिनालय हैं, उनमें अन्य कल्पवासी देवों और भवनत्रिक देवों सहित सौधर्मादि बारह कल्पों के इन्द्र, हाथी, घोड़ा, सिंह, बैल, सारस, कोयल, हंस, चकवा, गरुड़, मगर, मोर, कमल और पुष्पक विमान आदि पर समारूढ़ हो (अपने परिवार देवों सहित) हाथों में दिव्य फल और दिव्य पुष्प धारण कर प्रशस्त आभरणों, चामरों, सेनाओं, ध्वजाओं एवं वादित्रों के शब्दों से संयुक्त होते

गयहयकेसरिवसहे सारसपिकहंसकोकगरुडे य। मयरसिहिकमलपुप्फयविमाणपहुदिं समारूढा।।९७४।।
दिव्वफलपुप्फहत्था सत्थाभरणा सचामराणीया। बहुधयतूरारावा गत्ता कुव्वंति कल्लाणं।।९७५।।
पडिवरिसं आसाढे तह कत्तियफग्गुणे य अट्ठमिदो। पुण्णदिणोत्ति यभिक्खं दो द्दो पहरं तु ससुरेहिं।।९७६।।
सोहम्मो ईसाणो चमरो वइरोचणो पदक्खिणदो। पुव्ववरदक्खिणुत्तरदिसासु कुव्वंति कल्लाणं।।९७७।।

तद्द्वीपञ्चाशन्नगेष्वपि द्वापञ्चाशज्जिनालया भवन्ति तेषु। सौधर्मादयो द्वादशकल्पेन्द्राः ससुरभवनत्रिकाः।।९७३।।
गजहयकेसरिवृषभान् सारसपिकहंसकोकगरुडान् च। मकरशिखिकमलपुष्पकविमानप्रभृति समारूढाः।।९७४।।
दिव्यफलपुष्पहस्ता शस्ताभरणाः सचामरानीकाः। बहुध्वजतूर्यारावाः गत्वा कुर्वन्ति कल्याणं।।९७५।।
प्रतिवर्षमाषाढे तथा कार्तिके फाल्गुने च अष्टमीतः। पूर्णदिनान्तं चाभीक्ष्णं द्वौ द्वौ प्रहरौ तु स्वसुरैः।।९७६।।
सौधर्म ईशानः चमरो वैराचनः प्रदक्षिणतः। पूर्वापरदक्षिणोत्तरदिशासु कुर्वन्ति कल्याणं।।९७७।।

तब्बाव। तेषु द्वापञ्चाश ५२ न्नगेष्वपि द्वापञ्चाश ५२ ज्जिनालया भवन्ति। तेषु इतरसुरैः भवनत्रयदेवैश्च सहिताः सौधर्मादयो द्वादशकल्पेन्द्राः।।९७३।।

गय। गजहयकेसरिवृषभान् सारसपिकहंसकोकगरुडांश्च मकरशिखिकमलपुष्पकविमानप्रभृति समारूढ़ा।।९७४।।

दिव्व। दिव्यफलपुष्पहस्ता शस्ताभरणाः सचामरानीकाः बहुध्वजतूर्यारावाः सन्तो गत्वा ऐन्द्रध्वजादिकल्याणं कुर्वन्ति।।९७५।।

पडि। प्रतिवर्षमाषाढमासे तथा कार्तिकमासे फाल्गुनमासे चाष्टमीत आरभ्य पूर्णिमादिनपर्यन्तमभीक्ष्णं द्वौ द्वौ प्रहरौ स्वस्वसुरैः सह।।९७६।।

सोह। सौधर्म ईशानश्चमरो वैरोचनश्च प्रदक्षिणतः पूर्वापरदक्षिणोत्तरदिशासु कल्याणं पूजां कुर्वन्ति।।९७७।।

हुए, नन्दीश्वर द्वीप में जाकर प्रत्येक वर्ष की आषाढ़, कार्तिक और फाल्गुन मास की अष्टमी से प्रारम्भ कर पूर्णिमा पर्यन्त निरन्तर दो-दो पहर तक कल्याण अर्थात् ऐन्द्रध्वज आदि पूजन करते हैं।।९७३-९७६।।

किस प्रकार करते हैं ?—

गाथार्थ :—सौधमेन्द्र, ईशानेन्द्र, चमर और वैरोचन ये प्रदक्षिणारूप से पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशाओं में पूजा करते हैं।।९७७।।

विशेषार्थ :—नन्दीश्वर द्वीप के (४ + १६ + ३२) = ५२ पर्वतों पर ५२ ही जिनमन्दिर हैं। उनमें अन्य देवों और भवनत्रिक के साथ सौधर्मादि कल्पों के बारह इन्द्र हाथी, घोड़ा, सिंह, बैल, सारस, कोयल, हंस, चकवा, गरुड़, मगर, मोर, कमल और पुष्पक विमान आदि पर आरूढ़ हो, हाथों में दिव्य फल एवं पुष्प धारण कर प्रशस्त आभरणों, चामरों, सेनाओं, ध्वजाओं एवं वादित्रों के शब्दों से सहित होते हुए नन्दीश्वर द्वीप जाकर प्रत्येक वर्ष की आषाढ़, कार्तिक और फाल्गुन मास की अष्टमी से प्रारम्भ कर पूर्णिमा पर्यन्त निरन्तर दो-दो पहर तक पूजा करते हैं।

प्रथम युगल के सौधर्मैशान एवं असुरकुमारों के चमर और वैरोचन ये चारों इन्द्र प्रदक्षिणा रूप से पूर्व, दक्षिण, पश्चिम एवं उत्तर दिशाओं में पूजा करते हैं अर्थात् पूर्व दिशा में पूजन करने वाले देव जब दक्षिण में आते हैं तब दक्षिण दिशा वाले देव पश्चिम में और पश्चिम वाले उत्तर में तथा उत्तर दिशा वाले पूर्व में आकर ऐन्द्रध्वज आदि महापूजा करते हैं।

कुंडलवर पर्वत के कूटों की संख्या

अथ कुण्डलरुचकाचलयोरुदयादित्रयमाह—

कुंडलगो दसगुणिओ पणसदरिसहस्स तुंगओ रुजगे। चउरासीदिसहस्सा सव्वत्थुभयं सुवण्णमयं[1]।।९४३।।

कुण्डलगौ दशगुणितौ पञ्चसप्ततिसहस्रं तुङ्गो रुचके। चतुरशीतिसहस्राणि सर्वत्रोभयौ सुवर्णमयौ।।९४३।।

कुंडल। मानुषोत्तरभूमुखव्यासात् कुण्डलपर्वतस्य भूमुखव्यासौ दशगुणितौ भू १०२२० मुख ४२४० तत्तुङ्गस्तु पञ्चसप्ततिसहस्रयोजनानि ७५००० रुचके सर्वत्रउदये व्यासे च चतुरशीतिसहस्रयोजनानि ८४०००। उभयौ कुण्डलरुचकौ सुवर्णमयौ स्यातां।।९४३।।

साम्प्रतं कुण्डलस्योपरिमकूटानि गाथात्रयेणाह—

चउ चउ कूडा पडिदिसमिह कुंडलपव्वदस्स सिहरिम्मि। ताणब्भंतरदिग्गय चत्तारि जिणिंदकूडाणि।।९४४।।

वज्जं तप्पह कणयं कणयप्पह रजदकूड रजदाहं। सुमहप्पह अंककप्पह मणिकूडं च मणिपहयं।।९४५।।

रुजगरुजगाह हिमवं मंदरमिह चारि सिद्धकूडाणि। अत्थंति सेसि कूडे कूडक्खसुरा कदावासा।।९४६।।

चत्वारि चत्वारि कूटानि प्रतिदिशमिह कुण्डलपर्वतस्य शिखरे। तेषामभ्यन्तरदिग्गतानि चत्वारि जिनेन्द्रकूटानि।।९४४।।

वज्रं तत्प्रभं कनकं कनकप्रभं रजतकूटं रजताभं। सुमहप्रभं अङ्कमङ्कप्रभं मणिकूटं च मणिप्रभं।।९४५।।

कुंडलवर पर्वत के कूटों की संख्या

अब कुण्डलगिरि और रुचकगिरि के उदयादि तीनों कहते हैं–

गाथार्थ—कुण्डलगिरि का भूव्यास और मुख व्यास मानुषोत्तर के भूमुख व्यास के दशगुणा है और ऊँचाई पचहत्तर हजार योजन है तथा रुचकगिरि सर्वत्र चौरासी हजार योजन प्रमाण है। ये दोनों पर्वत स्वर्णमय हैं।।९४३।।

विशेषार्थ—मानुषोत्तर पर्वत के भूमुख व्यास से कुण्डलगिरि का भू व्यास, मुख व्यास दशगुणा है अर्थात् कुण्डलगिरि का भूव्यास १०२२० योजन, मुखव्यास ४२४० योजन और ऊँचाई ७५००० योजन है तथा रुचकगिरि का उदय, भू व्यास और मुख व्यास ये तीनों ८४००० योजन प्रमाण हैं। दोनों पर्वत स्वर्णमय हैं।

अब कुण्डलगिरि के ऊपर स्थित कूटों को तीन गाथाओं द्वारा कहते हैं—

गाथार्थ—इस कुण्डलगिरि के शिखर पर एक-एक दिशा में चार-चार कूट हैं। इनके अभ्यन्तर की ओर चारों दिशाओं में (एक-एक) चार कूट जिनेन्द्र भगवान सम्बन्धी हैं। उनके नाम—१ वज्र, २ वज्रप्रभ, ३ कनक, ४ कनकप्रभ, ५ रजतकूट, ६ रजताभ, ७ सुप्रभ, ८ महाप्रभ, ९ अङ्क, १० अङ्कप्रभ, ११ मणिकूट, १२ मणिप्रभ, १३ रुचक, १४ रुचकाभ, १५ हिमवत और मन्दर ये सोलह कूट हैं। अन्य चार सिद्धकूट हैं **जिनमें भगवान के चैत्यालय** हैं। अवशेष १६ कूटों में अपने-अपने कूट सदृश नाम वाले देव निवास करते हैं।।९४४, ९४५,९४६।।

विशेषार्थ—इस कुण्डलगिरि के शिखर पर पूर्व दिशा में वज्र, वज्रप्रभ, कनक और कनकप्रभ ये चार एवं एक सिद्धकूट इस प्रकार कुल पाँच कूट हैं। इसी प्रकार दक्षिण में रजतकूट, रजताभ, सुप्रभ, महाप्रभ और एक

---

१. त्रिलोकसार–पृ. ७४२।

रुचकरुचकाभं हिमवत् मन्दरमिह चत्वारि सिद्धकूटानि। आसते शेषेषु कूटेषु कूटाख्यसुराः कृतावासाः।।९४६।।

चउ। इह कुण्डलपर्वतस्य शिखरे प्रतिदिशं चत्वारि ४ चत्वारि ४ कूटानि। तेषामभ्यन्तरदिग्गतानि चत्वारि ४ जिनेन्द्रकूटानि।।९४४।।

वज्जं। वज्रं वज्रप्रभं कनकं कनकप्रभं रजतकूटं रजताभ सुप्रभं महाप्रभं अङ्कं अङ्कप्रभं मणिकूटं मणिप्रभं।।९४५।।

रुजग। रुचकं रुचकाभं हिमवत् मन्दरं ४ एभ्यः कूटेभ्यः सकाशादन्यानि इह चत्वारि सिद्धकूटानि सन्ति। शेषकूटेषु १६ कूटाख्याः सुराः कृतावासा भूत्वा आसते १६।।९४६।।

रुचकवर पर्वत के कूटों की संख्या

इदानीं रुचकोपरिमकूटानि तन्निवासिनीदेवीस्तत्कृत्यं च त्रयोदशगाथाभिराह—

पुव्वादिसु पुह अड अड अंते चउ चारि चारि कूडाणि। रुजगे सव्वब्भंतरचत्तारि जिणिंदकूडाणि।।९४७।।

पूर्वादिषु पृथक् अष्टौ अष्टौ अन्तः चतसृषु चत्वारि चत्वारि कूटानि। रुचके सर्वाभ्यन्तरचत्वारि जिनेन्द्रकूटानि।।९४७।।

पुव्वा। रुचकगिरौ पूर्वादिषु चतसृषु दिक्षु पृथक् पंक्तिक्रमेणाष्टावष्टौ कूटानि। तेषामभ्यन्तरे चतसृषु दिक्षु एकवारं चत्वारि कूटानि। तदभ्यन्तरे पुनरप्येकवारं चत्वारि कूटानि तदभ्यन्तरे च पुनरप्येकवारं चत्वारि कूटानि एवमभ्यन्तरे प्रतिदिशं त्रीणि त्रीणि कूटानि तेषु सर्वाभ्यन्तराणि चत्वारि जिनेन्द्रकूटानि।।९४७।।

कणयं कंचण तवणं सोत्थियकूडं सुमद्दमंजणयं। अंजणमूलं वज्जं तत्थेदा दिक्कुमारी ओ।।९४८।।

विजयाय वइजयंती जयंति अवरजिदाय णंदेत्ति। णंदवदी णंदुत्तर णामांतो णंदिसेणेत्ति।।९४९।।

कनकं काञ्चनं तपनं स्वस्तिककूटं सुभद्रमञ्जनकं। अञ्जनमूलं वज्रं तत्रैता दिक्कुमार्यः।।९४८।।

सिद्धकूट, पश्चिम में अङ्क, अङ्कप्रभ, मणिकूट, मणिप्रभ और एक सिद्धकूट तथा उत्तर में रुचक, रुचकाभ, हिमवत्, मन्दर और एक सिद्धकूट हैं। इस प्रकार कुल कूट २० हैं। जिनमें ४ सिद्धकूटों में चैत्यालय हैं और अवशेष सोलह कूटों में अपने कूट नामधारी देव निवास करते हैं।

रुचकवर पर्वत के कूटों की संख्या

अब रुचक पर्वत के ऊपर स्थित कूट, उनमें निवास करने वाली देवांगनाएँ और उन देवांगनाओं के कार्य तेरह गाथाओं द्वारा कहते हैं—

गाथार्थ—रुचकगिरि पर्वत के ऊपर पूर्वादि चारों दिशाओं में पृथक्–पृथक् आठ–आठ कूट हैं। जिनके अभ्यन्तर की ओर चारों दिशाओं में चार कूट हैं। उन चार कूटों की अभ्यन्तर चार दिशाओं में पुनः चार कूट हैं और सर्व अभ्यन्तर चार दिशाओं में **चार जिनेन्द्र कूट** हैं।।९४७।।

विशेषार्थ—रुचक पर्वत पर पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर इन चार दिशाओं में से पृथक्–पृथक् दिशा में पंक्तिक्रम से अर्थात् पंक्तिबद्ध आठ–आठ कूट हैं। इन आठ कूटों की अभ्यन्तर चारों दिशाओं में चार कूट हैं अर्थात् प्रत्येक दिशा में एक–एक कूट है। इन चारों कूटों के अभ्यन्तर में चार कूट हैं जो एक–एक दिशा में एक–एक हैं। इस प्रकार प्रत्येक दिशा में आठ कूटों के अभ्यन्तर में तीन–तीन कूट और हैं जिनमें चार सर्व अभ्यन्तर कूट जिनेन्द्र सम्बन्धी हैं अर्थात् इन **चारों कूटों पर जिनेन्द्रभवन** हैं, देवियों का वास नहीं है।

विजया वैजयन्ती जयन्ती अपराजिता नन्दा इति। नन्दवती नन्दोत्तरा नाम्नामन्ते नन्दिषेणा इति।।९४९।।

कणयं। कनकं काञ्चनं तपनं स्वस्तिककूटं सुभद्रमञ्जनकं अञ्जनमूलं वज्रमित्येतानि पूर्वदिश्यष्टौ कूटानि। तत्रैता अग्रे वक्ष्यमाणा दिक्कुमार्यो निवसन्ति।।९४८।।

विजया। विजया वैजयन्ती जयन्त्यपराजिता नन्दा नन्दवती नन्दोत्तरा नन्दिषेणेत्यष्टौ ता दिक्कुमार्यः।।९४९।।

फलिह रजदं व कुमुदं णलिणं पउमं ससीय वेसवणं। वेलुरियं देवीओ इच्छापढमा समाहारा।।९५०।।
सुपइण्णाय जसोहर लच्छी सेसवदि चित्तगुत्तोत्ति। चरिम वसुंधरदेवी अमोहमह सोत्थियं कूडं।।९५१।।
तो मंदर हेमवदं रज्जं रज्जुत्तमं च चंदमवि। पच्छिम सुदंसणं पुण इलादिदेवी सुरादेवी।।९५२।।
पुढवी पउमवदी इगिणासो देवी य णवमिया सीदा। भद्दा तो विजयादी चउकूडं कुंडलं रुजगं।।९५३।।
तो रयणवंत सव्वादीरयणं उत्तरे अलंबूसा। बिदिया दु मिस्सकेसीदेवी पुण पुंडरीगिणि सा।।९५४।।
वारुणि आसासच्चा हिरिसरि पुव्वगयदिक्कुमारीओ। भिंगारं धरिदूणिह दक्खिणदेवीउ मुकुरुंदं।।९५५।।
पश्चिमगा छत्ततयं उत्तरगा चामरं पमोदजुदा। तित्थयरजणणिसेवं जिणजणिकाले पकुव्वंति।।९५६।।

स्फटिकं रजतं वा कुमुदं नलिनं पद्म राशि वैश्रवणं। वैडूर्यं देव्यः इच्छाप्रथमा समाहाराः।।९५०।।
सुप्रकीर्णा यशोधरा लक्ष्मीः शेषवती चित्रगुप्ता इति। चरमा वसुन्धरा देव्य, अमोघमथ स्वस्तिकं कटं।।९५१।।
ततो मन्दरं हैमवतं राज्य राज्योत्तमं च चन्द्रमपि। पश्चिम सुदर्शनं पुनः इलादिका सुरादेवी।।९५२।।
पृथ्वी पद्मावती एकनासा देवी च नवमिका सीता। भद्रा ततो विजयादिचतुष्कूटानि कुण्डलं रुचकं।।९५३।।
ततो रत्नवत् सर्वादिरत्नं उत्तरे अलंभूषा। द्वितीया तु मिश्रकेशी देवी पुनः पुण्डरीकिनी सा।।९५४।।
वारुणी आशासत्या ह्रीः श्रीः पूर्वगतदिक्कुमार्यः। भृङ्गारं धृत्वा इह दक्षिणदेव्यो मुकुरुन्द।।९५५।।
पश्चिमगाः छत्रत्रयं उत्तरगाः चामरं प्रमोदयुताः। तीर्थंकरजननीसेवां जिनजनिकाले प्रकुर्वन्ति।।९५६।।

फलिह। स्फटिकं रजतं कुमुदं नलिनं पद्मं शशि वैश्रवणं वैडूर्यं इत्यष्टौ ८ दक्षिणदिक्कूटानि अत्रस्था देव्यः इच्छासमाहाराः।।९५०।।

गाथार्थ—रुचक पर्वत के ऊपर पूर्व दिशा में १ कनक, २ काञ्चन, ३ तपन, ४ स्वस्तिक कूट, ५ सुभद्र, ६ अञ्जनक, ७ अञ्जनमूल और ८ वज्र नाम के कूट हैं, जिनमें क्रम से विजया, वैजयन्ती, जयन्ती, अपराजिता, नन्दा, नन्दवती, नन्दोत्तरा और नन्दिषेणा ये आठ देवकुमारियाँ निवास करती हैं।।९४८, ९४९।।

विशेषार्थ—रुचक पर्वत के ऊपर पूर्व दिशा के कनककूट में विजया, काञ्चन में वैजयन्ती, तपन में जयन्ती, स्वस्तिक में अपराजिता, सुभद्र में नन्दा, अञ्जनक में नन्दवती, अञ्जनमूल में नन्दोत्तरा और वज्रकूट में नन्दिषेणा देवकुमारी निवास करती हैं। ये भृङ्गार धारण कर माता की सेवा करती हैं।

गाथार्थ—दक्षिण दिशा में १ स्फटिक, २ रजत, ३ कुमुद, ४ नलिन, ५ पद्म, ६ शशि, ७ वैश्रवण और ८वैडूर्य, ये आठ कूट हैं। इनमें क्रम से इच्छा, समाहारा, सुप्रकीर्णा, यशोधरा, लक्ष्मी, शेषवती, चित्रगुप्ता और वसुन्धरा ये आठ देवांगनाएँ रहती हैं तथा १ अमोघ, २ स्वस्तिक कूट, ३ मन्दर, ४ हैमवत, ५ राज्य, ६ राज्योत्तम, ७ चन्द्र और ८ सुदर्शन ये पश्चिम दिशा के आठ कूट हैं और इन पर क्रम से इलादेवी, सुरादेवी, पृथ्वी, पद्मावती, एकनासा, नवमिका, सीता और भद्रा ये आठ देवकुमारियाँ रहती हैं। इसके बाद १ विजय, २ वैजयन्त, ३ जयन्त, ४ अपराजित, ५ कुण्डल, ६ रुचक, ७ रत्नवत् और ८ रत्न ये उत्तर दिशा सम्बन्धी आठ

सुपइ। सुप्रकीर्णा यशोधरा लक्ष्मीः शेषवती चित्रगुप्ता वसुन्धरा इत्यष्टौ ८ देव्यः अमोघमथ स्वस्तिकं कूटं।।९५१।।

तो। ततो मन्दरं हैमवतं राज्यं राज्योत्तमं चन्द्रमपि सुदर्शनमित्यष्टौ ८ पश्चिमदिक्कूटानि तत्र स्थिता देव्यः इलावती सुरादेवी।।९५२।।

पुढवी। पृथ्वी पद्मावती एकनासा देवी नवमिका सीताभद्रा इत्यष्टौ ता देव्यः। ततो विजय-वैजयन्तजयन्ता-पराजितानीति चत्वारि कूटानि कुण्डलं रुचकं।।९५३।।

तो। ततो रत्नवत् सर्वरत्नमित्यष्टौ ८ उत्तरदिक्कूटानि, तत्र स्थितास्तु देव्यः अलंभूषा मिश्रकेशी देवी पुण्डरीकिणी।।९५४।।

वारुणि। वारुणी आशासत्या ह्री श्रीत्यष्टौ देव्यः। एतासु तावत्पूर्वगतदिक्कुमार्यो भृङ्गारं धृत्वा इह दक्षिणदेव्यो मुकुरुन्दं धृत्वा।।६५५।।

पश्चिम। पश्चिमदिग्गता देव्यश्छत्रत्रयं धृत्वा उत्तरदिग्गता देव्यश्चामराणि धृत्वा प्रमोदयुता सत्यस्ताः सर्व देव्यो जिनजननकाले तीर्थकरजननीसेवां प्रकुर्वते।।६५६।।

पुव्वे विमलं कूलं णिच्चालोयं सयंपहं अवरे। णिच्चुज्जोदं देवी कमसो कणया सदादिदहा।।९५७।।
कणयादिचित्त सोदामणि सव्वदिसप्पसण्णदं देंति। तित्थयरजम्मकाले कूलं वेलुरियरुजगमदो।।९५८।।
मणिकूडं रज्जुत्तममिह रुजगा रुजगकित्ति रुजगादी। कंता रुजगादिपहा जिणजादयकम्मकदिकुसला।।९५९।।
पूर्वयोः विमलं कूटं नित्यालोक अपरयोः। नित्योद्योतं देव्यः क्रमशः कनका शतादिह्रदा।।९५७।।
कनकादिचित्रा सौदामिनी सर्वदिशाप्रसन्नतां दधते। तीर्थकरजन्मकाले कूटं वैडूर्यं रुचकमतः।।९५८।।

कूट हैं, इनमें क्रम से अलंभूषा, मिश्रकेशी, पुण्डरीकिणी, वारुणी, आशा, सत्या, ह्री और श्री ये आठ देवकुमारियाँ निवास करती हैं। पूर्व दिशा सम्बन्धी देवकुमारियाँ भृङ्गार धारण कर, दक्षिणगत देवियाँ मुकुरुन्द (दर्पण), पश्चिमगत देवियाँ तीन छत्र और उत्तरगत देवियाँ चमर धारण कर महाप्रमोद से युक्त होती हुई तीर्थङ्कर के जन्मकाल में तीर्थङ्कर की माता की सेवा करती हैं।।९५० से ९५६।।

विशेषार्थ—दक्षिण दिशा में स्फटिक कूट में इच्छा नाम की देवकुमारी वास करती है। रजत कूट में समाहारा, कुमुद में सुप्रकीर्णा, नलिन में यशोधरा, पद्म में लक्ष्मी, शशि में शेषवती, वैश्रवण में चित्रगुप्ता और वैडूर्य में वसुन्धरा ये आठ देवांगनाएँ रहती हैं। ये आठों देवकुमारियाँ हाथ में दर्पण लेकर माता की सेवा करती हैं। पश्चिम दिशा के अमोघ कूट में इलादेवी, स्वस्तिक में सुरादेवी, मन्दर में पृथ्वी, हैमवत में पद्मावती, राज्य में एकनासा, राज्योत्तम में नवमिका, चन्द्र में सीता और सुदर्शन में भद्रा नाम की देवकुमारियाँ रहती हैं। ये हाथ में तीन छत्र धारण कर अति प्रमोदयुक्त होती हुई जिनमाता की सेवा करती हैं।

इसके बाद उत्तरदिशागत विजयकूट में अलंभूषा, वैजयन्त में मिश्रकेशी, जयन्त में पुण्डरीकिणी, अपराजित में वारुणी, कुण्डल में आशा, रुचक में सत्या, रत्नवत् में ह्री और रत्न में श्री देवियाँ रहती हैं। ये सभी जिनेन्द्र भगवान के जन्मकाल में चँवर धारण कर अतिप्रमोदपूर्वक जिनमाता की सेवा करती हैं।

---

१. त्रिलोकसार–पृ. ७३१ से ७३४ तक।

मणिकूटं राज्योत्तममिह रुचका रुचककीर्तिः रुचकादिः। कान्ता रुचकादिप्रभा जिनजातककर्मकृतिकुशलाः।।९५९।।

पुव्वे। रुचकस्याभ्यन्तरकूटेषु तावत्पूर्वादिशि विमलंकूटं दक्षिणदिशि नित्यालोकं अपरदिशि स्वयंप्रभं उत्तरदिशि नित्योद्योतमिति चत्वारि कूटानि। अत्रस्थिताः देव्यः क्रमशः कनका शतह्लदा।।९५७।।

कणया। कनकचित्रा सौदामिनी चतस्रस्ता देव्यः तीर्थंकरजन्मकाले सर्वदिशां प्रसन्नतां दधते। अतो अभ्यन्तरे पूर्वादिदिक्षु वैडूर्यं रुचकं।।९५८।।

मणि। मणिकूटं राज्योत्तममिति चत्वारि कूटानि, इहस्था देव्यः रुचका रुचककीर्तिः रुचककान्ता रुचकप्रभा चतस्रो देव्यो जिनजातकर्मकृतौ कुशलाः।।९५९।।

गाथार्थ—रुचक पर्वत के अभ्यन्तर कूटों में से पूर्व और दक्षिण में क्रमशः विमल और नित्यालोक तथा पश्चिम और उत्तर में क्रमशः स्वयम्प्रभ और नित्योद्योत नाम के कूट हैं। इनमें क्रम से कनका, शतह्लदा, कनकचित्रा और सौदामिनी ये चार देवियाँ रहती हैं। ये तीर्थङ्कर के जन्मकाल में सर्वदिशाओं को निर्मल करती हैं। इन कूटों के अभ्यन्तर की ओर चारों दिशाओं में क्रम से वैडूर्य, रुचक, मणिकूट और राज्योत्तम ये चार कूट हैं। इनमें क्रम से रुचका, रुचककीर्ति, रुचककान्ता और रुचकप्रभा ये चार देवियाँ रहती हैं। ये तीर्थङ्कर के जन्म समय जात कर्म करने में कुशल होती हैं।।९५७-९५८-९५९।।

विशेषार्थ—रुचक पर्वत के अभ्यन्तर कूटों में पूर्वदिशा में विमल कूट है जिसमें कनका देवी वास करती हैं। दक्षिण के नित्यालोक कूट में शतह्लदा, पश्चिम के स्वयम्प्रभ कूट में कनकचित्रा और उत्तर के नित्योद्योत कूट में सौदामिनी देवी रहती हैं। ये चारों देवियाँ तीर्थङ्कर के जन्मकाल में सम्पूर्ण दिशाओं को प्रसन्न रखती हैं। इन कूटों के अभ्यन्तर की ओर पूर्व के वैडूर्य कूट में रुचका, दक्षिण दिशा के रुचक कूट में रुचककीर्ति, पश्चिम दिशा के मणिकूट में रुचककान्ता और उत्तर दिशा के राज्योत्तम कूट में रुचकप्रभा ये चार देवियाँ रहती हैं। तीर्थङ्कर के जन्म समय में ये जातकर्म करती हैं। ये सभी जातकर्म में अतिनिपुण होती हैं।

श्रीपार्श्वनाथ जिनस्तुतिः

-उपजातिछंद-

कल्याणकल्पद्रुमसारभूतं,
चिंतामणिं चिंतितदानदक्षम्।
श्रीपार्श्वनाथस्य सुपादपद्मं,
नमामि भक्त्या परया मुदा च।।1।।

जो कल्याण कल्पतरु सार-भूत चिंतामणि चिंतितदा।
श्रीपारस प्रभु पादकमल को, भक्तिभाव से नमूँ मुदा।।

-गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी

मध्यलोक के जिनमंदिर

(तिलोयपण्णत्ति से)

जंबूद्वीप में ३११ पर्वत हैं

छक्कुलसेला सव्वे विजयड्ढा होंति तीस चउजुत्ता। सोलस वक्खारगिरी वारणदंताइ चत्तारो[1]।।२३९४।।

६। ३४। १६। ४।

तह अट्ठ दिग्गइंदा णाभिगिरिंदा हवंति चत्तारि। चोत्तीस वसहसेला कंचणसेला सयाण दुवे।।२३९५।।

८। ४। ३४। २००।

एक्को य मेरु कूडा पंचसया अट्ठसट्ठिअब्भहिया। सत्त च्चिय महविजया चोत्तीस हवंति कम्मभूमीओ।।२३९६।।

१। ५६८। ७। ३४।

सत्तरि अब्भहियसयं मेच्छखिदी छच्च भोगभूमीओ। चत्तारि जमलसेला जंबूदीवे समुद्दिट्ठा।।२३९७।।

पांडुकवन के जिनमन्दिर

तव्वणमज्झे चूलियपुव्वदिसाए जिणिंदपासादो। उत्तरदक्खिणदीहो कोससयं पंचहत्तरी उदओ[2]।।१८५५।।

कोस १०० । ७५ ।

मध्यलोक के जिनमंदिर

(तिलोयपण्णत्ति से)

जंबूद्वीप में ३११ पर्वत हैं

जम्बूद्वीप में सब कुलपर्वत छह, विजयार्द्ध चौंतीस, वक्षारगिरि सोलह और गजदन्त चार हैं।।२३९४।।

कुलशैल ६। विजयार्ध ३४। वक्षारगिरि १६। गजदन्त पर्वत ४।

दिग्गजेन्द्र पर्वत आठ, नाभिगिरीन्द्र चार, वृषभशैल चौंतीस तथा कांचनशैल दो सौ हैं।।२३९५।।

दिग्गजेन्द्र ८। नाभिगिरि ४। वृषभशैल ३४। कांचनशैल २००।

कुल मिलाकर—१ + ६ + ३४ + १६ + ४ + ८ + ४ + ३४ + २०० + ४ = ३११

एक मेरु, पाँच सौ अड़सठ कूट, सात महाक्षेत्र और चौंतीस कर्मभूमियाँ हैं।।२३९६।।

मेरु १। कूट ५६८। महाक्षेत्र ७। कर्मभूमियाँ ३४।

जम्बूद्वीप में एक सौ सत्तर म्लेच्छखण्ड, छह भोगभूमियाँ और चार यमकशैल बतलाये गये हैं।।२३९७।।

पांडुकवन के जिनमन्दिर

उस पांडुकवन के मध्य में चूलिका से पूर्व की ओर सौ कोस प्रमाण उत्तर-दक्षिण दीर्घ और पचहत्तर कोस प्रमाण ऊँचा **जिनेन्द्रप्रासाद** है।।१८५५।। कोस १०० । ७५।।

---

१. तिलोयपण्णत्ति पृ. ४४४, ४४५। २. तिलोयपण्णत्ति, महाधिकार-४ पृ. ३८४ से ३९३ तक।

पुव्वावरभाएसुं कोसा पण्णास तत्थ वित्थारो। कोसद्धं अवगाढो अकट्टिमणिहणपरिहीणो।।१८५६।।
को ५० । गा १ । २।
एसो पुव्वाहिमुहो चउजोयण जेट्ठदारउच्छेहो। दोजोयण तव्वासो वाससमाणो पवेसो य।।१८५७।।
४ । २ । २।
उत्तरदक्खिणभाए खुल्लयदाराणि दोण्णि चेट्ठंति। तद्दलपरिमाणाणिं वरतोरणथंभजुत्ताणिं।।१८५८।।
२ । १ । १ ।
संखेंदुकुंदधवलो मणिकिरणकलप्पणासियतमोघो। जिणवइपासादवरो तिहुवणतिलओ त्ति णामेणं।।१८५९।।
दारसरिच्छुस्सेहा वज्जकवाडा विचित्तवित्थिण्णा। जमला तेसुं सव्वे जलमरगयकक्केयणादिजुदा।।१८६०।।
विम्हयकररूवाहिं णाणाविहसालभंजियाहिं जुदा। पणवण्णरयणरइदा थंभा तस्सिं विरायंति।।१८६१।।
भित्तीओ विविहाओ णिम्मलवरफलिहरयणरइदाओ। चित्तेहिं विचित्तेहिं विम्हयजणणेहिं जुत्ताओ।।१८६२।।
थंभाण मज्झभूमी समंतदो पंचवण्णरयणमई। तणुमणणयणाणंदणसंजणणी णिम्मला विरजा।।१८६३।।
बहुविहविदाणएहिं मुत्ताहलदामचामरजुदेहिं। वररयणभूसणेहिं संजुत्तो सो जिणिंदपासादो।।१८६४।।
वसहीए गब्भगिहे देवच्छंदो दुजोयणुच्छेहो। इगिजोयणवित्थारो चउजोयणदीहसंजुत्तो।।१८६५।।
जो २ । १ । ४ ।
सोलसकोसुच्छेहं समचउरस्सं तदद्धवित्थारं। लोयविणिच्छयकत्ता देवच्छंदं परूवेइ।।१८६६।।
को १६ । ८ । पाठान्तरम्!

यह अकृत्रिम एवं अविनाशी (अनादिनिधन) जिनेन्द्रप्रासाद पूर्व–पश्चिम भागों में विस्तार में पचास योजन और अवगाह में अर्ध कोस मात्र है ।।१८५६।। को. ५० । अवगाह १/२ ।

यह जिनभवन पूर्वाभिमुख है । इसके ज्येष्ठ द्वार की ऊँचाई चार योजन, विस्तार दो योजन और प्रवेश भी विस्तार के समान दो योजन मात्र है ।।१८५७।। ४ । २ । २ । उत्तर–दक्षिण भाग में दो क्षुद्र द्वार स्थित हैं, जो ज्येष्ठ द्वार की अपेक्षा अर्धभागप्रमाण ऊँचाई आदि से सहित और उत्तम तोरणस्तम्भों से युक्त हैं ।।१८५८।। । २ । १ । १ । शंख, चंद्रमा अथवा कुंदपुष्प के समान धवल और मणियों के किरणकलाप से अंधकार समूह को नष्ट करने वाले यह उत्तम **जिनेन्द्रप्रासाद 'त्रिभुवनतिलक'** नाम से विख्यात है ।।१८५९।। इन द्वारों में द्वारों के समान ऊँचाई से सहित और विचित्र एवं विस्तीर्ण सब युगल वज्रकपाट जलकान्त, मरकत और कर्केतनादि मणिविशेषों से संयुक्त हैं ।।१८६०।। उस जिनेन्द्रप्रासाद में विस्मयजनक रूप वाली नाना प्रकार की शालभंजिकाओं से युक्त और पांच वर्ण के रत्नों से रचे गये स्तम्भ विराजमान हैं ।।१८६१।। निर्मल एवं उत्तम स्फटिक रत्नों से रची गई विविध प्रकार की भित्तियां विचित्र और विस्मयजनक चित्रों से युक्त हैं ।।१८६२।। खम्भों की मध्यभूमि चारों ओर पांच वर्ण के रत्नों से निर्मित, शरीर, मन एवं नेत्रों को आनन्ददायक, निर्मल और धूलि से रहित है।।१८६३।। वह जिनेन्द्रप्रासाद मोतियों की माला तथा चामरों से युक्त एवं उत्तम रत्नों से विभूषित बहुत प्रकार के वितानों से संयुक्त है।।१८६४।। वसतिका में गर्भगृह के भीतर दो योजन ऊंचा, एक योजन विस्तार वाला और चार योजन प्रमाण लम्बाई से संयुक्त देवच्छंद है ।। १८६५ ।। योजन २ । १ । ४ । लोकविनिश्चय के कर्ता देवच्छंद को समचतुष्कोण सोलह कोस ऊंचा और इससे आधे विस्तार से संयुक्त बतलाते हैं ।। १८६६ ।। को.

लंबंतकुसुमदामो पारावयमोरकंठवण्णणिहो। मरगयपवालवण्णो कक्केयणइंदणीलमओ।।१८६७।।
चोसट्ठकमलमालो चामरघंटापयाररमणिज्जो। गोसीरमलयचंदणकालागरूधूवगंधड्ढो।।१८६८।।
भिंगारकलसदप्पणणाणाविह धयवडेहिं सोहिल्लो। देवच्छंदो रम्मो जलंतवररयणदीवजुदो।।१८६९।।
अट्ठुत्तरसयसंखा जिणवरपासादमज्झभायम्मि। सिंहासणाणि तुंगा सपायपीढा य फलिहमया।।१८७०।।
सिंहासणाण उवरिं जिणपडिमाओ अणाइणिहणाओ। अट्ठुत्तरसयसंखा पणसयचावाणि तुंगाओ।।१८७१।।
भिण्णिंदणीलमरगयकुंतलभूवग्गदिण्णसोहाओ। फलिहिंदणीलणिम्मिदधवलासिदणेत्तजुयलाओ।।१८७२।।
वज्जमयदंतपंतीपहाओ पल्लवसरिच्छअधराओ। हीरमयवरणहाओ पउमारुणपाणिचरणाओ।।१८७३।।
अट्ठब्भहियसहस्सप्पमाणवंजणसमूहसहिदाओ। बत्तीसलक्खणेहिं जुत्ताओ जिणेसपडिमाओ।।१८७४।।
जीहासहस्सजुगजुदधरणिंदसहस्सकोढिकोडीओ। ताणं ण वण्णणेसुं सक्काओ माणुसाण का सत्ती।।१८७५।।
पत्तेक्कं सव्वाणं चउसट्ठी देवमिहुणपडिमाओ। वरचामरहत्थाओ सोहंति जिणिंदपडिमाणं।।१८७६।।
छत्तत्तयादिजुत्ता पडियंकासणसमण्णिदा णिच्चं । समचउरस्सायारा जंयति जिणणाहपडिमाओ।।१८७७।।
खेयरसुररायेहिं भत्तीए णमियचलणजुगलाओ। बहुविहविभूसिदाओ जिणपडिमाओ णमंसामि।।१८७८।।
ते सव्वे उवयरणा घंटापहुदीओ तह य दिव्वाणिं। मंगलदव्वाणि पुढं जिणिंदपासेसु रेहंति।।१८७९।।
भिंगारकलसदप्पणचामरधयवियणछत्तसुपयट्ठा। अट्ठुत्तरसयसंखा पत्तेक्कं मंगला तेसुं।।१८८०।।

---

१६ । ८ । पाठान्तर। यह रमणीय देवच्छंद लटकती हुई पुष्पमालाओं से सहित, कबूतर व मोर के कण्ठगत वर्ण के सदृश मरकत व प्रवाल जैसे वर्ण से संयुक्त, कर्केतन एवं इन्द्रनील मणियों से निर्मित, चौंसठ कमलमालाओं से शोभायमान, नाना प्रकार के चँवर व घंटाओं से रमणीय, गोशीर, मलयचन्दन एवं कालागरु धूप के गन्ध से व्याप्त, झारी, कलश, दर्पण व नाना प्रकार की ध्वजा-पताकाओं से सुशोभित और देदीप्यमान उत्तम रत्नदीपकों से युक्त है।।१८६७-१८६९।। जिनेन्द्रप्रासाद के मध्य भाग में पादपीठों से सहित स्फटिकमणिमय एक सौ आठ उन्नत सिंहासन हैं।।१८७०।। **सिंहासनों के ऊपर पांच सौ धनुषप्रमाण ऊंची एक सौ आठ अनादिनिधन जिनप्रतिमायें विराजमान हैं।।१८७१।।** ये जिनेन्द्रप्रतिमायें भिन्न इन्द्रनीलमणि व मरकतमणिमय कुंतल तथा भृकुटियों के अग्रभाग से शोभा को प्रदान करने वाली, स्फटिकमणि और इन्द्रनीलमणि से निर्मित धवल व कृष्ण नेत्रयुगल से सहित, वज्रमय दन्तपंक्ति की प्रभा से संयुक्त, पल्लव के सदृश अधरोष्ठ से सुशोभित, हीरे से निर्मित उत्तम नखों से विभूषित, कमल के समान लाल हाथ-पैरों से विशिष्ट, एक हजार आठ व्यंजनसमूह से सहित और बत्तीस लक्षणों से युक्त हैं।।१८७२-१८७४।। जब सहस्रों युगलजिह्वाओं से युक्त धरणेन्द्रों की सहस्रों हजार कोड़ाकोड़ियां भी उन प्रतिमाओं के वर्णन करने में समर्थ नहीं हो सकतीं, तब मनुष्यों की तो शक्ति ही क्या है।।१८७५।। सब जिनेन्द्र प्रतिमाओं में से प्रत्येक प्रतिमा के समीप हाथ में उत्तम चँवरों को लिये हुए चौंसठ देवयुगलों की प्रतिमायें शोभायमान हैं।।१८७६।। तीन छत्रादि से सहित, पल्यंकासन से समन्वित और समचतुरस्र आकार वाली वे जिननाथ-प्रतिमायें नित्य जयवन्त होवें।।१८७७।। जिनके चरणयुगलों को विद्याधर और देवेन्द्र भक्ति से नमस्कार करते हैं, उन बहुत प्रकार से विभूषित जिनप्रतिमाओं को मैं नमस्कार करता हूँ।।१८७८।। घंटाप्रभृति वे सब उपकरण तथा दिव्य मंगलद्रव्य पृथक्-पृथक् जिनेन्द्रप्रतिमाओं के पास में सुशोभित होते हैं।।१८७९।। भृंगार, कलश, दर्पण, चँवर, ध्वजा, बीजना, छत्र और सुप्रतिष्ठ, ये आठ मंगलद्रव्य हैं। इनमें से

सिरिसुददेवीण तहा सव्वाण्हसणक्कुमारजक्खाणं। रूवाणिं पत्तेक्कं पडि वररयणाइ रइदाणिं।।१८८१।।
देवच्छंदस्स पुरो णाणाविहरयणकुसुममालाओ। फुरिदक्किरणकलाओ लंबताओ विरायंते।।१८८२।।
बत्तीससहस्साणिं कंचणरजदेहिं णिम्मिदा विउला। सोहंति पुण्णकलसा खचिदा वररयणणियरेहिं।।१८८३।।
चउवीससहस्साणिं धूवघडा कणयरजदणिम्मविदा। कप्पूरागुरूचंदणपहुदिसमुद्धंतधूवगंधड्ढा।।१८८४।।
भिंगाररयणदप्पणबुब्बुदवरचमरचक्क कयसोहं। घंटापडायपउरं जिणिंदभवणं णिरूवमाणं तं।।१८८५।।
जिणपासादस्स पुरो जेट्ठद्दारस्स दोसु पासेसुं। पुह चत्तारिसहस्सा लंबंते रयणमालाओ।।१८८६।।
४००० ।
ताणं पि अंतरेसुं अकट्टिमाओ फुरंतकिरणादी। बारससहस्ससंखा लंबते कणयमालाओ।।१८८७।।
।१२००० ।
अट्ठट्ठसहस्साणिं धूवघडा दारअग्गभूमीसुं। अट्ठट्ठसहस्साओ ताण पुरे कणयमालाओ।।१८८८।।
। ८००० ।
पुह खुल्लयदारेसुं ताणद्धं होंति रयणमालाओ। कंचणमालाओ तह धूवघढा कणयमालाओ ।।१८८९।।
चउवीससहस्साणिं जिणपुरपुट्ठीए कयणमालाओ। ताणं च अंतरेसुं अट्ठसहस्साणि रयणमालाओ।।१८९०।।
मुहमंडवो हि रम्मो जिणवरभवणस्स अग्गभागम्मि। सोलसकोसुच्छेहो सयं च पण्णासद्दीहवासाणिं।।१८९१।।
कोसद्धो ओगाढ़ो णाणावररयणणियरणिम्मविदो। धुव्वंतधयवडाओ किं बहुणा सो णिरूवमाणो।।१८९२।।
मुहमंडवस्स पुरदो अवलोयणमंडओ परमरम्मो। अधिया सोलसकोसा उदओ रूंदों सयं सयं दीहं।।१८९३।।
१६। १०० ।

प्रत्येक वहां एक सौ आठ होते हैं।।१८८०।। प्रत्येक प्रतिमा के प्रति उत्तम रत्नादिकों से रचित श्रीदेवी, श्रुतदेवी तथा सर्वाण्ह व सनत्कुमार यक्षों की मूर्तियां रहती हैं ।। १८८१ ।। देवच्छंद के सन्मुख नाना प्रकार के रत्न और पुष्पों की मालायें प्रकाशमान किरणसमूह से सहित लटकती हुई विराजमान हैं।।१८८२।। सुवर्ण एवं रजत से निर्मित और उत्तम रत्नसमूहों से खचित बत्तीस हजार प्रमाण विशाल पूर्ण कलश सुशोभित हैं।।१८८३।। कर्पूर, अगुरु और चन्दनादिक से उत्पन्न हुई धूप के गन्ध से व्याप्त और सुवर्ण एवं चांदी से निर्मित चौबीस हजार धूपघट हैं।।१८८४।। झारी, रत्नदर्पण, बुद्बुद, उत्तम चमर और चक्र से शोभायमान तथा प्रचुर घंटा और पताकाओं से युक्त वह जिनेन्द्रभवन अनुपम है।।१८८५।। जिनप्रासाद के सन्मुख ज्येष्ठ द्वार के दोनों पार्श्व भागों में पृथक्-पृथक् चार हजार रत्नमालायें लटकती हैं।।१८८६।। ४०००। इनके भी बीच में प्रकाशमान किरणादि से सहित बारह हजार अकृत्रिम सुवर्णमालायें लटकती हैं।।१८८७।। १२०००। द्वार की अग्रभूमियों में आठ–आठ हजार धूपघट और उन धूपघटों के आगे आठ–आठ हजार सुवर्णमालायें हैं।।१८८८।। ८०००। क्षुद्र द्वारों में पृथक्-पृथक् इससे आधी रत्नमालायें, कंचनमालायें, धूपघट तथा सुवर्णमालायें हैं।।१८८९।। जिनपुर के पृष्ठभाग में चौबीस हजार कनकमालायें और इनके बीच में आठ हजार रत्नमालायें हैं।।१८९०।। जिनेन्द्रभवन के अग्रभाग में सोलह कोस ऊंचा, सौ कोस लम्बा और पचास कोस प्रमाण विस्तार से युक्त रमणीय मुखमण्डप है।।१८९१।। वह मुखमण्डप आधे कोस अवगाह से युक्त, नाना प्रकार के उत्तम रत्नसमूहों से निर्मित और फहराती हुई ध्वजा–पताकाओं से सहित है। बहुत वर्णन से क्या, वह मण्डप निरुपम है।।१८९२।। मुखमण्डप के आगे परम रमणीय

णियजोगुच्छेहजुदो तप्पुरदो चेट्ठदे अधिट्ठाणो। कोसासीदी वासो तेत्तियमेदस्स दीहत्तं।।१८९४।।
८० ।
तस्स बहुमज्झदेसे सभापुरं दिव्वरयणवररइदं। अधिया सोलस उदओ कोसा चउसट्ठि दीहवासाणिं।।१८९५।।
१६। ६४ । ६४ ।
सीहासणभद्दासणवेत्तासणपहुदिविविहपीढाणिं। वररयणणिम्मिदाणिं सभापुरे परमरम्माणिं।।१८९६।।
होदि सभापुरपुरदो पीढो चालीसकोसउच्छेहो। णाणाविहरयणमओ उच्छण्णो तस्स वासउवएसो।।१८९७।।
४०को
पीढस्स चउदिसासुं बारस वेदीओ होंति भूमियले। वरगोउराओ तेत्तियमेत्ताओ पीढउड्ढम्मि।।१८९८।।
पीढोवरि बहुमज्झे समवट्टो चेट्ठदे रयणथूहो। वित्थारूच्छेहेहिं कमसो कोसाणि दोहि चउसट्ठी।।१८९९।।
को ६४ । ६४ ।
तत्तो वि छत्तसहिओ कणयमओ पज्जलंतमणिकिरणो। थूहो अणाइणिहणो जिणसिद्धपडिमपडिपुण्णो।।१९००।।
तस्स य पुरदो पुरदो अट्ठत्थूहा सरिच्छवासादी। ताणं अग्गे दिव्वं पीढं चेट्ठेदि कणयमयं।।१९०१।।
तं रूंदायामोहिं दोण्णि सया जोयणाणि पण्णासा। पीढस्स उदयमाणे उवएसो अम्ह उच्छण्णो।।१९०२।।
२५० । २५० । ० ।
पीढस्स चउदिसासुं बारस वेदीओ होंति भूमियले। वरगोउराओ तेत्तियमेत्ताओ पीढउड्ढम्मि।।१९०३।।
पीढस्सुवरिमभागे सोलसगव्वूदिमेत्तउच्छेहो। सिद्धंतो णामेणं चेत्तदुमो दिव्ववरतेओ ।।१९०४।।
को १६ ।

अवलोकनमण्डप है, जो सोलह कोस से अधिक ऊंचा, सौ कोस विस्तृत और सौ कोस लंबा है।।१८९३।। १६।। १००।

उसके आगे अपने योग्य ऊँचाई से युक्त अधिष्ठान स्थित है। इसका विस्तार अस्सी कोस और लम्बाई भी इतनी ही है।।१८९४।। ८० । उसके बहुमध्य भाग में उत्तम दिव्य रत्नों से रचा गया सभापुर है, जिसकी ऊँचाई सोलह कोस से अधिक और लम्बाई व विस्तार चौंसठ कोस प्रमाण है ।।१८९५।। १६ । ६४ । ६४। सभापुर में सिंहासन, भद्रासन और वेत्रासनप्रभृति विविध पीठ उत्तम रत्नों से निर्मित परम रमणीय हैं।।१८९६।। सभापुर के आगे चालीस कोस ऊंचा और नाना प्रकार के रत्नों से निर्मित पीठ है। इसके विस्तार का उपदेश नष्ट हो गया है।।१८९७।। ४० । पीठ के चारों ओर उत्तम गोपुरों से युक्त बारह वेदियां पृथ्वीतल पर और इतनी ही पीठ के ऊपर हैं।।१८९८।। पीठ के ऊपर बहुमध्य भाग में समवृत्त रत्नस्तूप स्थित है, जो क्रम से चौंसठ कोस प्रमाण विस्तार व ऊँचाई से सहित है।।१८९९।। को. ६४ । ६४ । इसके भी आगे छत्र से सहित, देदीप्यमान मणिकिरणों से विभूषित और जिन व सिद्ध प्रतिमाओं से परिपूर्ण अनादिनिधन सुवर्णमय स्तूप है ।।१९००।। इसके भी आगे समान विस्तारादि से सहित आठ स्तूप हैं। इन स्तूपों के आगे सुवर्णमय दिव्य पीठ स्थित है।।१९०१।। इस पीठ का विस्तार व लंबाई दो सौ पचास योजन प्रमाण है। इसकी ऊँचाई के प्रमाण का उपदेश हमारे लिये नष्ट हो गया है।।१९०२।। २५० । २५० ।०। पीठ के चारों ओर उत्तम गोपुरों से युक्त बारह वेदियां भूमितल पर और इतनी ही पीठ के ऊपर हैं।।१९०३।। पीठ के उपरिम भाग पर सोलह कोस प्रमाण ऊंचा दिव्य व उत्तम तेज को धारण करने वाला सिद्धार्थ नामक चैत्यवृक्ष है ।। १९०४।। को. । १६ ।

खंधुच्छेहो कोसा चत्तारो बहलमेक्कगव्वूदी। बारसकोसा साहादीहत्तं चेय विच्चालं।।१९०५।।
को ४ । १ । १२ । १२ ।
इगिलक्खं चालीसं सहस्सया इगिसयं च वीसजुदं। तस्स परिवाररूक्खा पीढोवरि तप्पमाणधरा।।१९०६।।
१४०१२० ।
विविहवररयणसाहा मरगयपत्ता य पउमरायफला। चामीयररजदमयाकुसुमजुदा सयलकालं ते।।१९०७।।
सव्वे अणाइणिहणा पुढविमया दिव्वचेत्तवररूक्खा। जीवुप्पत्तिलयाणं कारणभूदा सइं भवंति।।१९०८।।
रूक्खाण चउदिसासुं पत्तेक्कं विविहरयणरइदाओ। जिणसिद्धप्पडिमाओ जयंतु चत्तारि चत्तारि।।१९०९।।
चेत्ततरूणं पुरदो दिव्वं पीढं हवेदि कणयमयं। उच्छेहदीहवासा तस्स य उच्छण्णउवएसा ।। १९१०
पीढस्स चउदिसासुं बारस वेदी य होंति भूमियले। चरिअट्टालयगोउरदुवारतोरणविचित्ताओ ।। १९११
चउजोयणउच्छेहा उवरिं पीढस्स कणयवरखंभा। विविहमणिणियरखचिदा चामरघंटापयारजुदा।।१९१२।।
सव्वेसुं थंभेसुं महाधया विविहवण्णरमणिज्जा। णामेण महिंदधया छत्तत्तयसिहरसोहिल्ला।।१९१३।।
पुरदो महाधयाणं मकरप्पमुहेहिं मुक्कसलिलाओ। चत्तारो वावीओ कमलुप्पलकुमुदछण्णाओ।।१९१४।।
पण्णासकोसउदया कमसो पणुवीस रूंददीहत्ता। दस कोस अवगाढा वावीओ वेदियादिजुत्ताओ।।१९१५।।
को ५० । १०० । गा १० ।
वावीणं बहुमज्झे चेट्ठदि एक्को जिणिंदपासादो। विप्फुरिदरयणकिरणो किं बहुसो सो णिरूवमाणो।।१९१६।।
तत्तो दहाउ पुरदो पुव्वुत्तरदक्खिणेसु भागेसुं। पासादा रयणमया देवाणं कीडणा होंति।।१९१७।।

चैत्यवृक्ष के स्कन्ध की ऊँचाई चार कोस, बाहल्य एक कोस और शाखाओं की लम्बाई व अन्तराल बारह कोस प्रमाण है।।१९०५।। को. ४ । १। १२। १२। पीठ के ऊपर इसी प्रमाण को धारण करने वाले **एक लाख चालीस हजार एक सौ बीस इसके परिवार वृक्ष** हैं।।१९०६।। १४०१२०। ये वृक्ष विविध प्रकार के उत्तम रत्नों से निर्मित शाखाओं, मरकत मणिमय पत्तों, पद्मरागमणिमय फलों और सुवर्ण एवं चाँदी से निर्मित पुष्पों से सदैव संयुक्त रहते हैं।।१९०७।। ये सब उत्तम दिव्य चैत्यवृक्ष अनादिनिधन और पृथ्वीरूप होते हुए जीवों की उत्पत्ति और विनाश के स्वयं कारण होते हैं।।१९०८।। **इन वृक्षों में प्रत्येक वृक्ष के चारों ओर विविध प्रकार के रत्नों से रचित चार-चार जिन और सिद्धों की प्रतिमायें विराजमान हैं। ये प्रतिमायें जयवन्त होवें**।।१९०९।। चैत्यवृक्षों के आगे सुवर्णमय दिव्य पीठ है। इसकी ऊँचाई, लम्बाई और विस्तारादिक का उपदेश नष्ट हो गया है।।१९१०।। पीठ के चारों ओर भूमितल पर मार्ग व अट्टालिकाओं, गोपुरद्वारों और तोरणों से विचित्र बारह वेदियां हैं।।१९११।। पीठ के ऊपर विविध प्रकार के मणिसमूह से खचित और अनेक प्रकार के चमर व घंटाओं से युक्त चार योजन ऊंचे सुवर्णमय खम्भे हैं ।।१९१२।। सब खम्भों के ऊपर अनेक प्रकार के वर्णों से रमणीय और शिखररूप तीन छत्रों से सुशोभित महेन्द्र नामक महाध्वजायें हैं।।१९१३।। महाध्वजाओं के आगे मगर आदि जलजन्तुओं से रहित जल वाली और कमल, उत्पल व कुमुदों से व्याप्त चार वापिकायें हैं।।१९१४।। वेदिकादि से सहित वापिकायें प्रत्येक पचास कोस प्रमाण विस्तार से युक्त, इससे दुगुनी अर्थात् सौ कोस लम्बी और दश कोस गहरी हैं।।१९१५।। को. ५० । १०० । ग. १० । **वापियों के बहुमध्य भाग में प्रकाशमान रत्नकिरणों से सहित एक जिनेन्द्रप्रासाद स्थित है। बहुत कथन से क्या, वह जिनेन्द्रप्रासाद निरुपम है**।।१९१६।।

पण्णासकोसउदया कमसो पणुवीस रूंददीहत्ता। धूवघडेहिं जुत्ता ते णिलया विविहवण्णधरा।।१९१८।।

को ५० । २५ । २५ ।

वरवेदियाहिं रम्मा वरकंचणतोरणेहिं परियरिया। वरवज्जणीलमरगयणिम्मिदभित्तीहिं सोहंते।।१९१९।।

ताण भवणाण पुरदो तेत्तियमाणेण दोण्णि पासादा। धुव्वंतधयवदाया फुरंतवररयणकिरणोहा।।१९२०।।

५० । २५ । २५ ।

तत्तो विचित्तरूवा पासादा दिव्वरयणणिम्मविदा।
कोससयमेत्तउदया कमेण पण्णासदीहवित्थिण्णा।।१९२१।।

जे जेट्ठदारपुरदो दिव्वमुहमंडवादि कहिदा य। ते खुल्लयदारेसुं हवंति अद्धप्पमाणेंहि।।१९२२।।

तत्तो परदो वेदी एदाणिं वेढिदूण सव्वाणिं। चेट्ठदि चरिअट्टालयगोउरदोरहिं कणयमई।।१९२३।।

तीए परदो वरिया तुंगेहिं कणयरयणथंभेहिं। चेट्ठंति चउदिसासुं दसप्पयारा धयणिबंधा।।१९२४।।

हरिकरिवसहखगाहिवसिहिससिरविहंसकमलचक्कधया। अट्ठुत्तरसयसंखा पत्तेक्कं तेत्तिया खुल्ला।।१९२५।।

चामीयरवरवेदी एदाणिं वेढिदूण चेट्ठेदि। विप्फुरिदरयणकिरणा चउगोउरदाररमणिज्जा।।१९२६।।

बे कोसाणिं तुंगा वित्थारेणं धणूणि पंचसया। विप्फुरिदधयवदाया फडिहमयाणेयवरभित्ती।।१९२७।।

को २ । दं ५०० ।

तीए परदो दसविहकप्पतरू ते समंतदो होंति। जिणभवणेसुं तिहुवणविम्हयजणणेहिं रूवेहिं ।।१९२८।।

गोमेदयमयखंधा कंचणमयकुसुमणियररमणिज्जा। मरगयमयपत्तधरा विद्दुमवेरुलियपउमराय फला।।१९२९।।

अनन्तर वापियों के आगे पूर्व, उत्तर और दक्षिण भागों में देवों के रत्नमय क्रीडाभवन हैं।।१९१७।। विविध वर्णों को धारण करने वाले वे भवन पचास कोस ऊंचे, क्रम से पच्चीस कोस विस्तृत और पच्चीस ही कोस लम्बे तथा धूपघटों से संयुक्त हैं।।१९१८।। को. ५० । २५ । २५ । उत्तम वेदिकाओं से रमणीय और उत्तम सुवर्णमय तोरणों से युक्त वे भवन उत्कृष्ट वज्र, नीलमणि और मरकत मणियों से निर्मित भित्तियों से शोभायमान हैं।।१९१९।। उन भवनों के आगे इतने ही प्रमाण से संयुक्त फहराती हुई ध्वजा-पताकाओं से सहित और प्रकाशमान उत्तम रत्नों के किरणसमूह से सुशोभित दो प्रासाद हैं।।१९२०।। ५० ।। २५ । २५ । इसके आगे सौ कोस ऊंचे, क्रम से पचास कोस लम्बे-चौड़े दिव्य रत्नों से निर्मित विचित्र रूप वाले प्रासाद हैं।।१९२१।। ज्येष्ठ द्वार के आगे जो दिव्य मुखमण्डपादिक कहे जा चुके हैं, वे आधे प्रमाण से सहित क्षुद्र द्वारों में भी हैं।।१९२२।। इसके आगे मार्ग, अट्टालिकाओं और गोपुरद्वारों से सहित सुवर्णमयी वेदी इन सबको वेष्टित करके स्थित है।।१९२३।। इस वेदी के आगे चारों दिशाओं में सुवर्ण एवं रत्नमय उन्नत खम्भों से सहित दश प्रकार की श्रेष्ठ ध्वजपंक्तियाँ स्थित हैं।।१९२४।। सिंह, हाथी, बैल, गरुड़, मोर, चन्द्र, सूर्य, हंस, कमल और चक्र, इन चिह्नों से युक्त ध्वजाओं में से प्रत्येक एक सौ आठ और इतनी ही क्षुद्रध्वजायें हैं।।१९२५।। प्रकाशमान रत्नकिरणों से संयुक्त और चार गोपुरद्वारों से रमणीय सुवर्णमय उत्तम वेदी इनको वेष्टित करके स्थित है।।१९२६।। यह वेदी दो कोस ऊंची, पांच सौ धनुष चौड़ी, फहराती हुई ध्वजापताकाओं से सहित और स्फटिक मणिमय अनेक उत्तम भित्तियों से संयुक्त है।।१९२७।। को. २ । द. ५०० । इसके आगे **जिनभवनों** में चारों ओर तीनों लोकों को आश्चर्य उत्पन्न करने वाले स्वरूप से संयुक्त वे दश प्रकार के कल्पवृक्ष हैं।।१९२८।।

सव्वे अणाइणिहणा अकट्टिमा कप्पपायवपयारा। मूलेसु चउदिसासुं चत्तारि जिणिंदपडिमाओ।।१९३०।।
तप्फलिहवीहिमज्झे वेरुलियमयाणि माणथंभाणिं। वीहिं पडि पत्तेयं विचित्तरूवाणि रेहंति।।१९३१।।
चामरघंटाकिंकिणिकेतणपहुदीहिं उवरि संजुत्ता। सोहंति माणथंभा चउवेदीदारतोरणेहिं जुदा।।१९३२।।
ताणं मूले उवरिं जिणिंदपडिमाओ चउदिसंतेसुं। वररयणणिम्मिदाओ जयंतु जयथुणिदचरिदाओ।।१९३३।।
कप्पमहिं परिवेढिय साला वररयणणियरणिम्मविदा। चेट्ठदि चरियट्टालयणाणाविहधयवडाडोवा।१९३४।।
चूलियदक्खिणभाए पच्छिमभायम्मि उत्तरविभागे।
एक्केक्कं जिणभवणं पुव्वम्हि व वण्णणेहिं जुदं।।१९३५।।
एवं संखेवेणं पंडुगवणवण्णणाओ भणिदाओ। वित्थारवण्णणेसुं सक्को वि ण सक्कदे तस्स।।१९३६।।

भरतक्षेत्र के विजयार्ध पर्वत पर जिनमंदिर व कूट

भरहखिदीबहुमज्झे विजयद्धो णाम भूधरो तुंगो। रजदमओ चेट्ठेदि हु णाणावररयणरमणिज्जो[1]।।१०७।।
पणुवीसजोयणुदओ वुत्तो तद्दुगुणमूलविक्खंभो। उदयतुरिमंसगाढो जलणिहिपुट्ठो। तिसेढिगओ।।१०८।।
२५। ५०। २५।
४
दसजोयणाणि उवरिं गंतूणं तस्स दोसु पासेसुं। विज्जाहराण सेढी एक्केक्का जोयणाणि दस रुंदा।।१०९।।
१०।

सब प्रकार के कल्पवृक्ष गोमेदमणिमय स्कन्ध से सहित, सुवर्णमय कुसुमसमूह से रमणीय, मरकतमणिमय पत्तों को धारण करने वाले, मूंगा, नीलमणि एवं पद्मरागमणिमय फलों से संयुक्त, अकृत्रिम और अनादिनिधन हैं। **इनके मूल में चारों ओर चार जिनेन्द्रप्रतिमायें विराजमान हैं**।।१९२९-१९३०।। उन स्फटिकमणिमय वीथियों के मध्य में से प्रत्येक वीथी के प्रति विचित्र रूप वाले वैडूर्यमणिमय मानस्तम्भ सुशोभित हैं।।१९३१।। चार वेदीद्वार और तोरणों से युक्त ये मानस्तम्भ ऊपर चँवर, घंटा, किंकिणी और ध्वजा इत्यादि से संयुक्त होते हुए शोभायमान होते हैं ।।१९३२।। इन मानस्तम्भों के नीचे और चारों दिशाओं में विराजमान, उत्तम रत्नों से निर्मित और जग से कीर्तित चरित्र से संयुक्त **जिनेन्द्रप्रतिमाएँ** जयवन्त होवें।।१९३३।। मार्ग व अट्टालिकाओं से युक्त, नाना प्रकार की ध्वजा-पताकाओं के आटोप से सुशोभित और श्रेष्ठ रत्न समूह से निर्मित कोट इस कल्पमही को वेष्टित करके स्थित हैं।।१९३४।। चूलिका के दक्षिण, पश्चिम और उत्तर भाग में भी **पूर्वदिशावर्ती जिनभवन के समान वर्णनों से संयुक्त एक-एक जिनभवन** हैं।।१९३५।। इस प्रकार यहां संक्षेप से पाण्डुकवन का वर्णन किया गया है । उसका विस्तार से वर्णन करने के लिये तो इन्द्र भी समर्थ नहीं हो सकता है।।१९३६।।

भरतक्षेत्र के विजयार्ध पर्वत पर जिनमंदिर व कूट

भरतक्षेत्र के बहुमध्य भाग में रजतमय और नाना प्रकार के उत्तम रत्नों से रमणीय विजयार्द्ध नामक उन्नत पर्वत स्थित है।।१०७।। वह पर्वत पच्चीस योजन ऊँचा, इससे दूने अर्थात् पचास योजन प्रमाण मूल में विस्तार से युक्त, ऊँचाई के चतुर्थ भागप्रमाण (६-१/४ यो.) नींव से सहित, पूर्वापर समुद्र को स्पर्श करने वाला और तीन श्रेणियों में विभक्त कहा गया है।।१०८।। ऊँचा २५, मूलविस्तार ५०, अवगाह २५/४ यो.।

---

१. तिलोयपण्णत्ति, चतुर्थमहाधिकार, पृ० १५५ से १५९ तक।

विजयड्ढायामेणं हुवंति विज्जाहराण सेढीओ। एक्केक्का तह वेदी णाणाविहतोरणेहिं कियसोहा।।११०।।
दक्खिणदिससेढीए पण्णास पुराणि पुव्ववरदिसम्मि। उत्तरसेढीए तह णयराणिं सट्ठि चेट्ठंति।।१११।।
द ५०। उ ६०।
तण्णामा किंणामिदकिंणरगीदाइं तह य णरगीदं। बहुकेदुपुंडरीया सीहद्धयसेदकेदूइं।।११२।।
गरुडद्धयं सिरिप्पहसिरिधरलोहग्गला अरिंजयकं।
वइरग्गलवइरड्ढा विमोजिया जयपुरी य सगडमुही।।११३।।
चदुमुहबहुमुहअरजक्खयाणि विरजक्खणामविक्खादं। तत्तो रहणेउरमेहलग्गखेमंपुरावराजिदया।।११४।।
णामेण कामपुप्फं गयणचरी विजयचरियसुक्कपुरी। तह संजयंतणयरी जयंतविजयवइजयंतं च।।११५।।
खेमंकरचंदाभा सूराभपुरुत्तमापुराइं पि। चित्तमहाकूडाइं सुवण्णकूडा तिकूडा य।।११६।।
वइचित्तमेहकूडा तत्तो वइसवणकूडसूरपुरा। चंदं णिच्चुज्जोयं विमुही तह णिच्चवाहिणी सुमुही।।११७।।
५०।
अज्जुणअरुणीकइलासवारुणीओ य विज्जुपहणामा।
किलकिलचूडामणियं ससिपहवं सालपुप्फचूलाइं।।११८।।
णामेण हंसगब्भं बलाहकसिवंकरा सिरिसउधं। चमरं सिवमंदिरवसुवक्खावसुमाइमा णामा।।११९।।
सव्वत्थपुरं सत्तुंजयं च णामेण केदुमालं ति। सुरवइकंतं तह गगणणंदणं पुरमसोगं च।।१२०।।
तत्तो विसोकयं वीदसोकअलकाइतिलकणामं च। अंबरतिलकं मंदरकुमुदा कुंदं च गयणवल्लभयं।।१२१।।
दिव्वतिलयं च भूमीतिलयं गंधव्वपुरवरं तत्तो। मुत्ताहरणइमिसणामं तहग्गिजालमहजाला।।१२२।।
णामेण सिरिणिकेदं जयावहं सिरिणिवासमणिवज्जं। भद्दस्सव्वधणंजयमाहिंदो विजयणयरं च।।१२३।।
तह य सुगंधिणिवेरद्धदरा गोखीरफेणमक्खोभा। गिरिसिहरधरणिवाराणिदुग्गाइं दुद्धरं सुदंसणयं।।१२४।।

दश योजन ऊपर जाकर उस पर्वत के दोनों पार्श्वभागों में दश योजन विस्तार से युक्त विद्याधरों की एक-एक श्रेणी है।।१०९।। १०। विजयार्द्ध के आयामप्रमाण विद्याधरों की श्रेणियाँ तथा नाना प्रकार के तोरणों से शोभायमान एक-एक वेदिका है।।११०।। पूर्व से पश्चिम दिशा की ओर दक्षिण दिशा की श्रेणी में पचास और उत्तर श्रेणी में साठ नगर स्थित हैं।।१११।। द. श्रे. ५०। उ. श्रे. ६०। उन नगरों के नाम हैं—किंनामित, किन्नरगीत, नरगीत, बहुकेतु, पुण्डरीक, सिंहध्वज, श्वेतकेतु, गरुड़ध्वज, श्रीप्रभ, श्रीधर, लोहार्गल, अरिंजय, वज्रार्गल, वज्राढ्य, विमोचिता, जयपुरी, शकटमुखी, चतुर्मुख, बहुमुख, अरजस्का, विरजस्का, रथनूपुर, मेखलाग्र, क्षमपुर, अपराजित,कामपुष्प, गगनचरी, विजयचरी (विनयपुरी), शुक्रपुरी, संजयंत नगरी, जयंत, विजय, वैजयंत, क्षेमंकर, चन्द्राभ, सूर्याभ, पुरोत्तम, चित्रकूट, महाकूट, सुवर्णकूट, त्रिकूट, विचित्रकूट, मेघकूट, वैश्रवणकूट, सूर्यपुर,चन्द्र, नित्योद्योत, विमुखी, नित्यवाहिनी और सुमुखी, ये पचास नगरियां दक्षिण श्रेणी में हैं।।११२-११७।। ५०। अर्जुनी, अरुणी, कैलाश, वारुणी, विद्युत्प्रभ, किलकिल, चूड़ामणि, शशिप्रभ, वंशाल, पुष्पचूल, हंसगर्भ, वलाहक, शिवंकर, श्रीसौध, चमर, शिवमंदिर, वसुमत्का, वसुमती, सर्वार्थापुर, (सिद्धार्थपुर), शत्रुंजय, केतुमाल, सुरपतिकान्त, गगननन्दन, अशोक, विशोक, वीतशोक, अलका, तिलक, अंबरतिलक, मन्दर, कुमुद, कुंद, गगनवल्लभ, दिव्यतिलक, भूमितिलक, गन्धर्वपुर, मुक्ताहर, नैमिष, अग्निज्वाल, महाज्वाल, श्रीनिकेत, जयावह,

रयणायररयणपुरा उत्तरसेढीय सट्ठि णयरीओ। विजयड्ढायामेणं विरचिदपंतीय णिवसंति।।१२५।।
विज्जाहरणयरधरा अणाइणिहणा सहावणिप्पण्णा। णाणाविहरयणमया गोउरपासायतोरणादिजुदा।।१२६।।
उज्जाणवणसंजुत्ता पोक्खरणीकूवदिग्घयासहिदा। धुव्वंतधयवडाया पासादा ते च रयणमया।।१२७।।
णाणाविहजिणगेहा विज्जाहरपुरवरेसु रमणिज्जा। वररयणकंचणमया ठाणट्ठाणेसु सोहंति।।१२८।।
वणसंडवत्थणाहा वेदीकडिसुत्तएहि कंतिल्ला। तोरणकंकणजुत्ता विज्जाहररायभवणमउडधरो।।१२९।।
मणिगिहकंठाभरणा चलंतहिंदोलकुंडलेहिं जुदा। जिणवरमंदिरतिलया णयरणरिंदा विरायंति।।१३०।।
पुप्फिदकमलवणेहिं वावीणिचएहिं मंडिया विउला। पुरबाहिरभूभागा उज्जाणवणेहिं रेहंति।।१३१।।
कल्हारकमलकुवलयकुमुदुज्जलजलपवाहपडहत्था। दिव्वतलाया विउला तेसु पुरेसुं विरायंति।।१३२।।
जमणालवल्लतुवरीतिलजवगोधुम्ममासपहुदीहिं। सव्वेहिं सुधण्णेहिं पुराइं सोहंति भूमीहिं।।१३३।।
बहुदिव्वगामसहिदा दिव्वमहापट्टणेहिं रमणिज्जा। कब्बडदोणमुहेहिं संवाहमडंबएहि परिपुण्णा।।१३४।।
रयणाण यायरेहिं विभूसिदा पउमरायपहुदीणं। दिव्वणरेहिं पुण्णा धणधण्णसमिद्धिरम्मेहिं।।१३५।।
जंबकुमारसरिच्छा बहुविहविज्जाहिं संजुदा पवरा। विज्जाहरा मणुस्सा छक्कम्मजुदा हुवंति सदा।।१३६।।
अच्छरसरिच्छरूवा अहिणवलावण्णदिव्वरमणिज्जा। विज्जाहरवणिताओ बहुविहविज्जासमिद्धाओ।।१३७।।
कुलजाईविज्जाओ साहियविज्जा अणेयभेयाओ। विज्जाहरपुरिसपुरंधियाण वरसोक्खजणणीओ।।१३८।।

श्रीनिवास, मणिवज्र, भद्राश्व, धनंजय, माहेन्द्र, विजयनगर, सुगन्धिनी, वज्रार्द्धतर, गोक्षीरफेन, अक्षोभ, गिरिशिखर, धरणी, वारिणी (धारिणी), दुर्ग, दुर्द्धर, सुदर्शन, रत्नाकर और रत्नपुर, ये उत्तरश्रेणी में साठ नगरियाँ हैं, जो विजयार्द्ध की लम्बाई में पंक्ति से स्थित हैं।।११८-१२५।।

उपर्युक्त विद्याधरों के श्रेष्ठ नगर अनादिनिधन, स्वभावसिद्ध, अनेक प्रकार के रत्नमय तथा गोपुर, प्रासाद और तोरणादि से सहित हैं।।१२६।। उन नगरों में उद्यान वनों से संयुक्त; पुष्करिणी, कूप एवं दीर्घिकाओं से सहित और फहराती हुई ध्वजा-पताकाओं से सुशोभित रत्नमय प्रासाद हैं।।१२७।। **इन श्रेष्ठ विद्याधरपुरों में रमणीय, उत्तम रत्न और सुवर्णमय नाना प्रकार के जिनमंदिर स्थान-स्थान पर शोभायमान होते हैं।।**१२८।। वनखंडरूपी वस्त्र से आच्छादित, वेदिका रूप कटिसूत्र से कान्तिमान्, तोरणरूपी कंकण से युक्त, विद्याधरों के राजभवनरूप मुकुट को धारण करने वाले, मणिगृहरूप कंठाभरण से विभूषित, चंचल हिंडोलेरूप कुण्डलों से युक्त और जिनेन्द्रमन्दिररूपी तिलक से सुशोभित, ऐसे विद्याधरनगररूपी राजा विराजमान हैं।।१२९-१३०।। नगर के बाहरी विशाल प्रदेश प्रफुल्लित कमलवनों वाले और वापीसमूहों से युक्त उद्यानवनों से मंडित होते हुए शोभायमान हैं।।१३१।। उन नगरों में कल्हार, कमल, कुवलय और कुमुदों से उज्ज्वल जलप्रवाह से परिपूर्ण बहुत दिव्य तालाब शोभायमान हैं।।१३२।। यवनाल (जुवार), वल्ल, तूवर, तिल, जौ, गेहूँ और उड़द इत्यादिक समस्त उत्तम धान्यों से युक्त भूमियों द्वारा वे नगर शोभा को प्राप्त हैं।।१३३।। वे नगर बहुत दिव्य ग्रामों से सहित, दिव्य महापट्टनों से रमणीय; कर्वट, द्रोणमुख, संवाह और मटंबों से परिपूर्ण; पद्मरागादिक रत्नों की खानों से विभूषित और धन-धान्य की वृद्धि से रमणीय दिव्य मनुष्यों से परिपूर्ण हैं।।१३४-१३५।। उन नगरों में रहने वाले उत्तम विद्याधर मनुष्य जम्बुकुमार (कामदेव) के समान बहुत प्रकार की विद्याओं से संयुक्त और सदा छह कर्मों से सहित हैं।।१३६।।

रम्मुज्जाणेहिं जुदा होंति हु विज्जाहराण सेढीओ। जिणभवणभूसिदाओ को सक्कइ वण्णिदुं सयलं।।१३९।।
दसजोयणाणि तत्तो उवरिं गंतूण दोसु पासेसुं। अभियोगामरसेढी दसजोयणवित्थरा होदि।।१४०।।
वरकप्परुक्खरम्भा फलिदेहिं उववणेहि परिपुण्णा। वावितलायप्पउरा वरअच्छरकीडणेहिं जुदा।।१४१।।
कंचणवेदीसहिदा वरगोउरसुंदरा य बहुचित्ता। मणिमयमंदिरबहुला परिखापायारपरियरिया।।१४२।।
सोहम्मसुरिंदस्स य वाहणदेवा हुवंति विंतरया। दक्खिणउत्तरपासेसु तिए वरदिव्वरूवधरा।।१४३।।
अभियोगपुरेहिंतो गंतूणं पंचजोयणाणि तदो। दसजोयणवित्थिण्णं वेयड्ढगिरिस्स वरसिहरं।।१४४।।
तियसिंदचावसरिसं विसालवरवेदियाहि परियरियं। बहुतोरणदारजुदं विचित्तरयणेहि रमणिज्जं।।१४५।।
तत्थ समभूमिभागे फुरंतवररयणकिरणणियरम्मि। चेट्ठंते णव कूडा कंचणमणिमंडिया दिव्वा।।१४६।।
णामेहिं सिद्धकूडो पुव्वदिसंतो तदो भरहकूडो। खंडप्पवादणामो तुरिमो तह माणिभद्दो त्ति।।१४७।।
विजयड्ढकुमारो पुण्णतिमिस्सगुहाभिधाणो य। उत्तरभरहो कूडो पच्छिमयंतम्मि वेसमणो।।१४८।।
कूडाणं उच्छेहो पुह पुह छज्जोयणाणि इगिकोसं। तेत्तियमेत्तं णियमा हुवेदि मूलम्मि विक्खंभो।।१४९।।
जो ६ को १। जो ६ को १।
तस्सद्धं वित्थारो पत्तेक्कं होदि कूडसिहरम्मि। मूलसिहराण रुंदं मेलिय दलिदम्मि मज्झस्स।।१५०।।
जो ३ को १/२। जो ४ को ११/४।

विद्याधरों की स्त्रियाँ अप्सराओं के सदृश रूप से युक्त, नवीन दिव्य लावण्य से रमणीय और बहुत प्रकार की विद्याओं से समृद्ध हैं।।१३७।। अनेक प्रकार की कुलविद्याएँ, जाति विद्याएँ और साधितविद्याएँ विद्याधर पुरुष एवं पुरंध्रियों को उत्तम सुख की देने वाली हैं।१३८।। विद्याधरों की श्रेणियाँ रमणीय उद्यानों से युक्त और जिनभवनों से भूषित हैं। इनका सम्पूर्ण वर्णन करने के लिए कौन समर्थ हो सकता है ?।।१३९।। विद्याधर श्रेणियों से आगे दश योजन ऊपर जाकर विजयार्ध के दोनों पार्श्वभाग में दश योजन विस्तार वाली आभियोग्य देवों की श्रेणी है।।१४०।। यह श्रेणी उत्कृष्ट कल्पवृक्षों से रमणीय, फलित उपवनों से परिपूर्ण, प्रचुर वापी एवं तालाबों से सहित, उत्तम अप्सराओं की क्रीडाओं से युक्त, सुवर्णमय वेदी से सहित, उत्कृष्ट गोपुरों से सुन्दर, बहुत चित्रों से युक्त, बहुत से मणिमय भवनों से परिपूर्ण और परिखा एवं प्राकार से वेष्टित है।।१४१-१४२।। इस श्रेणी के दक्षिण-उत्तर पार्श्वभाग में उत्तम दिव्य रूप के धारी सौधर्म इन्द्र के व्यन्तर वाहन देव हैं।।१४३।। अभियोगपुरों से पाँच योजन ऊपर जाकर दश योजन विस्तार वाला वैताढ्य पर्वत का उत्तम शिखर है।।१४४।। यह शिखर त्रिदशेन्द्रचाप अर्थात् इन्द्रधनुष के सदृश, विशाल व उत्तम वेदिकाओं से वेष्टित, बहुत तोरणद्वारों से संयुक्त और विचित्र रत्नों से रमणीय है।।१४५।। वहाँ पर स्फुरायमान उत्तम रत्नों के किरणसमूहों से युक्त समभूमिभाग में सुवर्ण और मणियों से मंडित दिव्य नौ कूट स्थित हैं।।१४६।। **पूर्व दिशा के अन्त में सिद्धकूट**, इसके पश्चात् भरतकूट, खण्डप्रपात, चतुर्थ माणिभद्र, विजयार्द्धकुमार, पूर्णभद्र, तिमिस्रगुह नामक उत्तर भरतकूट और पश्चिम दिशा के अन्त में वैश्रवण, ये उन नौ कूटों के नाम हैं।।१४७-१४८।। इन कूटों की ऊँचाई पृथक्-पृथक् छह योजन और एक कोस तथा इतना ही नियम से मूल में विस्तार भी है।।१४९।।ऊँचाई यो. ६, को. १, मूलविस्तार यो. ६ को. १। प्रत्येक कूट का विस्तार शिखर पर इससे आधा अर्थात् तीन योजन और आधा कोस है। मूल और शिखर के

आदिमकूडे चेट्ठदि जिणिंदभवणं विचित्तधयमालं। वरकंचणरयणमयं तोरणजुत्तं विमाणं च।।१५१।।
दीहत्तमेक्ककोसो विक्खंभो होति कोसद्धसम्मेत्तं। गाउतियचरणभागो उच्छेहो जिणणिकेदस्स।।१५२।।
को १। १/२। ३/४।

ऐरावत क्षेत्र के विजयार्ध पर्वत पर जिनमंदिर व कूट

सिहरिस्सुत्तरभागे जंबूदीवस्स जगदिदक्खिणदो। एरावदो त्ति वरिसो चेट्ठदि भरहस्स सारिच्छो[1]।।२३६५।।
णवरि विसेसो तस्सिं सलागपुरिसा भवंति जे केई। ताणं णामप्पहुदिसु उवदेसो संपइ पणट्ठो।।२३६६।।
अण्णण्णा एदस्सिं णामा विजयड्ढकूडसरियाणं। सिद्धो रेवदखंडा माणी विजयड्ढपुण्णा य।।२३६७।।
तिमिसगुहो रेवदवेसमणं णामाणि होंति कूडाणं। सिहरिगिरिंदोवरि महपुंडरियदहस्स पुव्वदारेणं।।२३६८।।
रत्ता णामेण णदी णिस्सरिय पडेदि रत्तकुंडम्मि। गंगाणइसारिच्छा पविसइ लवणंबुरासिम्मि।।२३६९।।
तद्दहपच्छिमतोरणदारेणं णिस्सरेदि रत्तोदा। सिंधुणईए सरिसा णिवडइ रत्तोदकुंडम्मि।।२३७०।।
पच्छिममुहेण तत्तो णिस्सरिदूणं अणेयसरिसहिदा। दीवजगदीबिलेणं लवणसमुद्दम्मि पविसेदि।।२३७१।।
गंगारोहिंहरिओ सीदाणारीसुवण्णकूलाओ।
रत्त त्ति सत्त सरिया पुव्वाए दिसाए वच्चंति।।२३७२।।

विस्तार को मिलाकर आधा करने पर जो प्रमाण हो उतना विस्तार उक्त कूटों के मध्य में है।।१५०।। शिखर पर यो. ३ को. १/२, मध्य में यो. ४ को. $\frac{11}{4}(\frac{6-\frac{1}{4}+3-\frac{1}{8}}{2})$ **प्रथम कूट पर विचित्र ध्वजासमूहों से शोभायमान जिनेन्द्रभवन तथा उत्तम सुवर्ण और रत्नों से निर्मित तोरणों से युक्त विमान भी स्थित** हैं।।१५१।। उक्त जिनभवन की लम्बाई एक कोस, चौड़ाई आधा कोस और ऊँचाई गव्यूति के तीन चौथाई भागप्रमाण है।।१५२।। दीर्घता १, विष्कंभ १/२, उत्सेध ३/४ कोस।

ऐरावत क्षेत्र के विजयार्ध पर्वत पर जिनमंदिर व कूट

शिखरी पर्वत के उत्तर और जम्बूद्वीप की जगती के दक्षिण भाग में भरतक्षेत्र के सदृश ऐरावत क्षेत्र स्थित है।।२३६५।। विशेष यह कि उस क्षेत्र में जो कोई शलाकापुरुष होते हैं, उनका नामादिविषयक उपदेश इस समय नष्ट हो चुका है।।२३६६।। इस क्षेत्र में विजयार्द्धपर्वत के ऊपर स्थित कूटों और नदियों के नाम भिन्न हैं। सिद्ध, ऐरावत, खण्डप्रपात, माणिभद्र, विजयार्द्ध, पूर्णभद्र, तिमिश्रगुह, ऐरावत और वैश्रवण ये नौ कूट यहाँ विजयार्द्ध पर्वत के ऊपर हैं। शिखरी पर्वत के ऊपर स्थित महापुण्डरीक द्रह के पूर्व द्वार से निकलकर रक्ता नामक नदी रक्तकुण्ड में गिरती है। पुनः वह गंगानदी के सदृश लवणसमुद्र में प्रवेश करती है।।२३६७-१३६९।। उसी द्रह के पश्चिम तोरणद्वार से रक्तोदा नदी निकलती है और सिन्धुनदी के सदृश रक्तोदकुण्ड में गिरती है।।२३७०।। पश्चात् वह उस कुण्ड से निकलकर पश्चिममुख होती हुई अनेक नदियों से सहित होकर द्वीप की जगती के बिल से लवणसमुद्र में प्रवेश करती है।।२३७१।। गंगा, रोहित्, हरित्, सीता, नारी, सुवर्णकूला और रक्ता, ये सात नदियाँ

---

१. तिलोयपण्णत्ति, चतुर्थमहाधिकार, पृ० ४४१।

हिमवान पर्वत के जिनमंदिर व देवभवन

हिमवंतसरिसदीहा तडवेदी दोण्णि होंति भूमितले। वे कोसा उत्तुंगा पंचधणुस्सदपमाणवित्थिण्णा[१]।।१६२९।।

को २ । दं ५००।

जोयणदलविक्खंभो उभए पासेसु होदि वणसंडो। बहुतोरणदारजुदा वेदी पुव्विल्लवेदिएहिं समा।।१६३०।।

व जो । १/२

खुल्लहिमवंतसिहरे समंतदो पउमवेदिया दिव्वा। वणभवणवेदिसव्वं पुव्वं पिव एत्थ वत्तव्वं।।१६३१।।

सिद्धहिमवंतकूडा भरहइलागंगकूडसिरिणामा। रोहीदासा सिंधू सुरहेमवदं च वेसमणं।।१६३२।।

उदयं भूमुहवासं मज्झं पणुवीस तत्तियं दलिदं। सुहभूमिजुदस्सद्धं पत्तेक्कं जोयणाणि कूडाणं।।१६३३।।

२५।२५। २५। १८। को ३।

२

एक्कारस पुव्वादी समवट्टा वेदिएहिं रमणिज्जा। वेंतरपासादजुदा पुव्वे कूडम्मि जिणभवणं।।१६३४।।

आयामो पण्णासं वित्थारो तद्दलं च जोयणया।

पणहत्तरिदलमुदओ तिहारजुदस्स जिणणिकेदस्स।।१६३५।।

५०। २५। ७५। ३।

२

पूर्वदिशा में जाती हैं।।२३७२।। सिंधु, रोहितास्या, हरिकान्ता, सीतोदा, नरकान्ता, रूप्यकूला और रक्तोदा, ये सात नदियाँ पश्चिम दिशा में जाती हैं।।

हिमवान पर्वत के जिनमंदिर व देवभवन

भूमितल पर हिमवान् पर्वत के सदृश लम्बी उसकी दो तटवेदियाँ हैं। ये वेदियाँ दो कोस ऊँची और पाँच सौ धनुषप्रमाण विस्तार से युक्त हैं।१६२९।। उत्सेध कोस २। विस्तार दण्ड ५००। पर्वत के दोनों पार्श्वभागों में अर्ध योजनप्रमाण विस्तार से युक्त वनखण्ड है तथा पूर्वोक्त वेदियों के समान बहुत तोरणद्वारों से संयुक्त वेदी है।।१६३०।। यो० १/२। क्षुद्र हिमवान् पर्वत के शिखर पर चारों तरफ पद्मरागमणिमय दिव्य वेदिका है। वन, भवन और वेदी आदि सबका, पहले के समान यहाँ पर भी कथन करना चाहिये।।१६३१।। सिद्ध, हिमवान्, भरत, इला, गंगा, श्री, रोहितास्या, सिन्धु, सुरा, हैमवत और वैश्रवण, इस प्रकार ये ग्यारह उस पर्वत के ऊपर कूट हैं।।१६३२।। इनमें से प्रत्येक कूट की ऊँचाई पच्चीस योजन, भूविस्तार भी इतना अर्थात् पच्चीस योजन, मुखविस्तार पच्चीस का आधा अर्थात् साढ़े बारह योजन और मध्यविस्तार भूमि एवं मुख के जोड़ का अर्धभाग मात्र है।।१६३३।। उत्सेध यो. २५। भूव्यास २५। मुखव्यास २५/२। मध्यव्यास ५०/२ + २५/२÷२ = यो. १८, को. ३। पूर्वादिक्रम से ये ग्यारह कूट समान गोल, वेदियों से रमणीय और व्यन्तरों के भवनों से संयुक्त हैं। **इनमें से पूर्व कूट पर जिनभवन है**।।१६३४।। तीन द्वारों से संयुक्त इस जिनभवन की लम्बाई पचास योजन, विस्तार इसका आधा अर्थात् पच्चीस योजन और ऊँचाई पचहत्तर योजन के अर्धभाग प्रमाण अर्थात् साढ़े सैंतीस योजन है।।१६३५।। आयाम ५०। विस्तार २५। उत्सेध ७५/२। द्वार ३। उपर्युक्त तीन द्वारों से पूर्वमुख द्वार की ऊँचाई आठ योजन,

---

१. तिलोयपण्णत्ति पृ० ३५६ से ३६० तक।

पुव्वमुहदारउदओ जोयणया अट्ठ तद्दलं रुंदं। रुंदसमं तु पवेसं ताणद्धं दक्खिणुत्तरदुवारे।।१३३६।।
८।४।४।४।२।२।
अट्ठेव य दीहत्तं दीहच्चउभाग तत्थ वित्थारं। चउजोयणउच्छेहो देवच्छंदो जिणणिवासे।।१६३७।।
सिंहासणादिसहिया चामरकरणागजक्खमिहुणजुदा। पुरुजिणपडिमा तुंगा अट्ठत्तरसयधणुप्पमाणाओ।।१३३८।।
सिरिदेवी सुददेवी सव्वाणसणक्कुमारजक्खाणं। रूवाणि अट्ठमंगल देवच्छंदम्मि चेट्ठंति।।१६३९।।
लंबंतकुसुमदामा पारावयमोरकंठणिहवण्णा। मरगयपवालवण्णा विदाणणिवहा विरायंति।।१६४०।।
भंभामुयंगमद्दलजयघंटाकंसतालतिवलिजुदा। पहुपडहसंखकाहलसुरदुंदुभिसद्दगंभीरा।।१६४१।।
जिणपुरदुवारपुरदो पत्तेक्कं वदणमंडवा दिव्वा। पणवीसजोयणाइं वासो विउणाइ आयामो।।१६४२।।
२५ । ५०।
अट्ठ च्चिय जोयणया अदिरित्ता होदि ताण उच्छेहो। अभिसेयगीदअवलोयणाण वरमंडवा य तप्पुरदो।।१६४३।।
चउगोउराणि सालत्तिदयं वीहिसु माणथंभा य। णवथूवा तह वणधयचित्तक्खोणीओ जिणणिवासेसुं।।१६४४।।
सव्वे गोउरदारा रमणिज्जा पंचवण्णरयणमया। वाउलतोरणजुत्ता णाणाविहमत्तवारणया।।१६४५।।
बहुसालभंजियाहिं सुरकोकिलबरहिणादिपक्खीहिं। महुररवेहिं सहिदा णच्चंताणेयधयवडायाहिं।।१६४६।।

विस्तार इससे आधा अर्थात् चार योजन और विस्तार के समान प्रवेश भी चार योजनमात्र है। शेष दक्षिण और उत्तर द्वार की लम्बाई आदि पूर्व द्वार से आधी है।।१६३६।। पूर्वमुखद्वार—उत्सेध ८। विस्तार ४। प्रवेश ४। द. उ. द्वार—उत्सेध ४। विस्तार २। प्रवेश २। जिनभवन में आठ योजन लंबा तथा लम्बाई के चतुर्थभाग मात्र विस्तार से संयुक्त और चार योजन ऊँचा ऐसा देवच्छंद है।।१६३७।। वहाँ पर सिंहासनादि से सहित, हाथ में चमरों को लिए हुए नागयक्षयुगल से संयुक्त और **एक सौ आठ धनुषप्रमाण ऊँची उत्तम जिनप्रतिमाएँ विराजमान** हैं।।१६३८।। देवच्छंद के भीतर श्रीदेवी, श्रुतदेवी तथा सर्वाह्व और सनत्कुमार यक्षों की मूर्तियाँ एवं आठ मंगलद्रव्य स्थित हैं।।१६३९।। वहाँ पर लटकती हुई पुष्पमालाओं से संयुक्त और कबूतर व मयूर के कंठसदृश तथा मरकत एवं मूंगा जैसे वर्ण वाले चँदोवों के समूह शोभायमान हैं।।१६४०।। प्रत्येक जिनपुरद्वार के आगे भंभा (भेरी), मृदंग, मर्दल, जयघंटा, कांस्यताल और तिवली से संयुक्त तथा पटुपटह, शंख, काहल और सुरदुन्दुभि बाजों के शब्दों से गम्भीर ऐसे दिव्य मुखमण्डप हैं। इन मण्डपों का विस्तार पच्चीस योजन और लम्बाई इससे दूनी अर्थात् पचास योजन मात्र है।।१६४१-१६४२।। २५। ५०। इन मण्डपों की ऊँचाई आठ योजन से अधिक है। इनके आगे अभिषेक, गीत और अवलोकन के उत्तम मण्डप हैं।।१६४३।। जिनभवनों में चार गोपुर, तीन प्राकार, वीथियों में मानस्तम्भ, नौ स्तूप, वनभूमि, ध्वजाभूमि और चैत्यभूमि होती है।।१६४४।। पाँच वर्ण के रत्नों से निर्मित सब गोपुरद्वार पुतलीयुक्त तोरणों से सहित और नाना प्रकार के मत्तवारणों से रमणीय हैं।।१६४५।। इसके अतिरिक्त ये गोपुरद्वार बहुत सी शालभंजिकाओं (पुतलियों) एवं मधुर शब्द करने वाले सुरकोकिल और मयूर आदिक पक्षियों सहित तथा नाचती हुई अनेक ध्वजा-पताकाओं से संयुक्त हैं।।१६४६।। वहाँ के उद्यानवन इलायची, तमालवल्ली (शाल), लौंग, कंकोल (शीतल चीनी का वृक्ष) और केला इत्यादि नाना वृक्ष-रत्नों से शोभायमान हैं।।१६४७।। जिनगृह के उद्यानवनों में कल्हार, कमल, कन्दल, नीलकमल और कुमुद के फूलों से व्याप्त पुष्करिणी, वापी और

एलातमालवल्लीलवंगकंकोलकदलिपहुदीहिं। णाणातरुरयणेहिं उज्जाणवणा विराजंति।।१६४७।।
कल्हारकमलकंदलणीलुप्पलकुमुदकुसुमसंछण्णा। जिणउज्जाणवणेसुं पोक्खरणीवाविवरकूवा।।१६४८।।
णंदादीअ तिमेहल तिपीढपुव्वाणि धम्मचक्काणिं। चउवणमज्झगयाणिं चेदियरुक्खाणि सोहंति।।१६४९।।
सेसेसुं कूडेसुं वेंतरदेवाण होंति पासादा। चउतोरणवेदिजुदा णाणाविहरयणणिम्मविदा।।१६५०।।
हेमवदभरहहिमवंतसेसमणणामधेयकूडेसुं। णियकूडणामदेवा सेसे णियकूडणामदेवीओ।।१६५१।।
बहुपरिवारेहिं जुदा चेट्ठंते तेसु देवदेवीओ। दसधणुउच्छेहतणू सोहम्मिंदस्स ते य परिवारा।।१६५२।।
ताणं बरपासादा सकोसइगितीसजोयणारुंदा। दोकोससट्ठिजोयणउदया सोहंति रयणमया।।१६५३।।
पायारवलहिगोउरधवलामलवेदियाहिं परियरिया। देवाण होंति णयरा दसप्पमाणेसु कूडसिहरेसुं।।१६५४।।

धुव्वंतधयवडाया गोउरदारेहिं सोहिदा विउला।
वरवज्जकवाडजुदा उववणपोक्खरणिवाविरमणिज्जा।।१६५५।।
कमलोदरवण्णणिहा तुहारससिकिरणहारसंकासा।
वियसियचंपयवण्णा णीलुप्पलरत्तकमलवण्णा य।।१६५६।।

वज्जिंदणीलमरगयकक्केयणपउमरायसंपुण्णा। जिणभवणेहि सणाहा को सक्कइ वण्णिदुं सयलं।।१६५७।।

उत्तम कूप हैं।।१६४८।। चारों वनों के मध्य में स्थित तीन मेखलायुक्त नन्दादिक वापिकाएँ, तीन पीठों से सहित धर्मचक्र और चैत्यवृक्ष शोभायमान हैं।।१६४९।। शेष कूटों पर चार तोरण वेदियों से सहित और नाना प्रकार के रत्नों से निर्मित व्यन्तर देवों के भवन हैं।।१६५०।। हैमवत, भरत, हिमवान् और वैश्रवण नामक कूटों पर अपने-अपने कूटों के नामक देव तथा शेष कूटों पर अपने-अपने कूटों के नाम की देवियाँ रहती हैं।।१६५१।। इन कूटों पर बहुत परिवार और दश धनुषप्रमाण ऊँचे शरीर से युक्त जो देव-देवियाँ स्थित हैं, वे सौधर्म इन्द्र के परिवाररूप हैं।।१६५२।। इन व्यन्तर देव-देवियों के रत्नमय भवन विस्तार में इकतीस योजन एक कोस और ऊँचाई में बासठ योजन दो कोसप्रमाण होते हुए शोभायमान हैं।।१६५३।। दश कूटों के शिखरों पर प्राकार, बलभी (छज्जा), गोपुर और धवल निर्मल वेदिकाओं से व्याप्त देवों के नगर हैं।।१६५४।। ये देवों के नगर उड़ती हुई ध्वजापताकाओं से सहित, गोपुरद्वारों से शोभित, विशाल, उत्तम वज्रमय कपाटों से युक्त और उपवन, पुष्करिणी एवं वापिकाओं से रमणीय हैं।।१६५५।। इन नगरों से कितने ही कमलोदरवर्ण के सदृश वर्ण वाले, कितने ही तुषार, चन्द्रकिरण एवं हार के सदृश, कितने ही विकसित चम्पक जैसे वर्ण वाले और कितने ही नील व रक्तकमल के सदृश वर्ण वाले हैं।।१६५६।। उपर्युक्त नगर वज्रमणि, इन्द्रनीलमणि, मरकतमणि, कर्केतन (रत्नविशेष) और पद्मरागमणियों से परिपूर्ण तथा **जिनभवनों से सनाथ हैं।** इनका पूरा वर्णन करने के लिए कौन समर्थ हो सकता है ?।।१६५७।।

यावन्ति जिनचैत्यानि विद्यन्ते भुवनत्रये।
तावन्ति सततं भक्त्या, त्रिःपरीत्य नमाम्यहम्।।१।।

नाभिगिरि पर जिनमंदिर

हेमवदस्स य रुंदा चालसहस्सा य ऊणवीसहिदा। तस्स य उत्तरबाणो भरहसलागादु सत्तगुणा[१]।।१६९८।।
अवसेसवण्णणाओ सरिसाओ सुसमदुस्समेणं पि। णवरि यवट्ठिदरूवं परिहीणं हाणिवड्ढीहिं।।१७०३।।
तक्खित्ते बहुमज्झे चेट्ठदि सद्दावणि त्ति णाभिगिरी। जोयणसहस्सउदओ तेत्तियवासो सरिसवट्टो।।१७०४।।
१०००। १०००।
सव्वस्स तस्स इगितीससयाइं तह य बासट्ठी। सो पल्लसरिसठाणो कणयमओ बट्टविजयड्ढो।।१७०५।।
एक्कसहस्सं पणसयमेक्कसहस्सं च सगसया पण्णा। उदओ मुहभूमज्झिमवित्थारा तस्स धवलस्स।।१७०६।।
१०००। ५००। १०००। ७५०। पाठान्तरम्।
मूलोवरिभाएसुं सो सेलो वेदिउववणोहिं जुदो। वेदीवणाण रुंदा हिमवंतणग व्व णादव्वा।।१७०७।।
बहुतोरणदारजुदा तव्वणवेदी विचित्तरयमणमई। चरियट्टालियविउला णच्चंताणेयधयवडालोया।।१७०८।।.
तग्गिरिउवरिमभागे बहुमज्झे होदि दिव्वजिणभवणं। बहुतोरणवेदिजुदं पडिमाहिं सुंदराहि संजुत्तं।।१७०९।।
उच्छेहप्पहुदीसुं संपहि अम्हाण णत्थि उवदेसो। तस्स य चउद्दिसासुं पासादा होंति रयणमया।।१७१०।।
सत्तट्ठप्पहुदीहिं भूमीहिं भूसिदा विचित्ताहिं। धुव्वंतधयवडाया णाणाविहरयणकयसोहा।।१७११।।

नाभिगिरि पर जिनमंदिर

हैमवत क्षेत्र का विस्तार उन्नीस से भाजित चालीस हजार योजन और उसका उत्तरबाण भरतक्षेत्र की शलाका से सात गुणा है।।१६९८।। ४००००/१९। ३६८४-४/१९। इसका शेष वर्णन सुषमदुषमा काल के सदृश है। विशेषता केवल यह है कि वह क्षेत्र हानि-वृद्धि रहित होता हुआ अवस्थितरूप अर्थात् एक सा है।।१७०३।। इस क्षेत्र के बहुमध्य भाग में एक हजार योजन ऊँचा और इतने ही विस्तार वाला सदृश गोल शब्दावनि (शब्दवान्) नामक नाभिगिरि स्थित है।।१७०४।। १०००।१०००। उन सब पर्वत की परिधि इकतीस सौ बासठ योजनप्रमाण है। यह पर्वत पल्य (कुशूल) के सदृश आकार वाला कनकमय वृत्त विजयार्द्ध है।।१७०५।। उस धवल पर्वत की ऊँचाई, मुखविस्तार, भूविस्तार और मध्यविस्तार क्रम से एक हजार, पाँच सौ, एक हजार और सात सौ पचास योजनप्रमाण है।।१७०६।। उत्सेध १०००। मुखवि. ५००। भूवि. १०००। मध्यवि. ७५०। पाठान्तर।

वह पर्वत मूल और उपरिम भागों में वेदी एवं उपवनों से संयुक्त है। वेदी और वनों का विस्तार हिमवान् पर्वत के समान ही जानना चाहिए।।१७०७।। उस पर्वत की वनवेदी बहुत तोरणद्वारों से संयुक्त, विचित्र रत्नमयी, मार्ग व अट्टालिकाओं से विपुल और नाचती हुई अनेक ध्वजापताकाओं से आलोकित है।।१७०८।। उस पर्वत के ऊपर बहुमध्यभाग में अनेक तोरण व वेदियों से युक्त और **सुन्दर प्रतिमाओं से सहित दिव्य जिनभवन** है।।१७०९।। इस जिनभवन की ऊँचाई आदि के विषय में इस समय हमारे पास उपदेश नहीं है। जिनभवन के चारों ओर रत्नमय प्रासाद हैं।।१७१०।। ये प्रासाद सात-आठ इत्यादि विचित्र भूमियों से भूषित, फहराती हुई ध्वजापताकाओं से संयुक्त और नाना प्रकार के रत्नों से शोभायमान हैं।।१७११।। वहाँ पर दश धनुष ऊँचा, एक पल्यप्रमाण आयु से सहित और महान् शरीर का धारक शाली नामक व्यन्तरदेव बहुत परिवार से युक्त होकर

---

१. तिलोयपण्णत्ति पृ० ३६५ से ३६७ तक।

बहुपरिवारेहिं जुदो सालीणामेण वेंतरो देओ। दसधणुतुंगो चेट्ठदि पल्लमिदाऊ महादेहो।।१७१२।।

पउमद्दहाओ उत्तरभागेसुं रोहिदास णाम णदी। बेकोसेहिं अपाविय णाभिगिरिं पच्छिमे वलइ।।१७१३।।

बे कोसे वि य पाविय अचलं तं वलिय पच्छिमाहिमुहा।
उत्तरमुहेण तत्तो कुडिलसरूवेण एत्ति सा सरिया।।१७१४।।

गिरिबहुमज्झपदेसं णियमज्झपदेसयं च कादूणं। पच्छिममुहेण गच्छइ परिवारणदीहिं परियरिया।।१७१५।।.

अट्ठावीससहस्सा परिवारणदीण होदि परिमाणं।
दीवस्स य जगदिबिलं पविसिय पविसेदि लवणवारिणिहिं।।१७१६।।

२८०००।

महाहिमवान पर्वत

भरहावणिरुंदादो अडगुणरुंदो य दुसय उच्छेहो। होदि महाहिमवंतो हिमवंतवियं वणेहिं कयसोहो[1]।।१७१७।।

रुं ८००००। उ २००।

१९

महहिमवंते दोसुं पासेसुं वेदिवणाणि रम्माणिं। गिरिसमदीहत्ताणिं वासादीणं च हिमवगिरिं।।१७२३।।

सिद्धमहाहिमवंता हेमवदो रोहिदो य हरिणामो। हरिकंता हरिवरिसो वेरुलिओ अड इमे कूडा।।१७२४।।

हिमवंतपव्वदस्स य कूडादो उदयवासपहुदीणिं। एदाणं कूडाणं दुगुणसरूवाणि सव्वाणिं।।१७२५।।

जंणामा ते कूडा तंणामा वेंतरा सुरा होंति। अणुवमरूवसरीरा बहुविहपरिवारसंजुत्ता।।१७२६।।

रहता है।।१७१२।। रोहितास्या नामक नदी पद्मद्रह के उत्तरभाग से निकलकर नाभिगिरि पहुँचने से दो कोस पूर्व ही पश्चिम की ओर मुड़ जाती है।।१७१३।। वह नदी दो कोस से पर्वत को न पाकर अर्थात् पर्वत से दो कोस पूर्व ही रहकर पश्चिमाभिमुख हो जाती है। इसके पश्चात् फिर उत्तराभिमुख होकर कुटिलरूप से आगे जाती है और पर्वत के बहुमध्य प्रदेश को अपना मध्यप्रदेश करके परिवार नदियों से युक्त होती हुई पश्चिम की ओर चली जाती है।।१७१४-१७१५।। इसकी परिवारनदियों का प्रमाण अट्ठाईस हजार है। इस प्रकार यह नदी जम्बूद्वीप की जगती के बिल में होकर लवणसमुद्र में प्रवेश करती है।।१७१६।। २८०००।

महाहिमवान पर्वत

महाहिमवान् पर्वत का विस्तार भरतक्षेत्र से आठ गुणा और ऊँचाई दो सौ योजन प्रमाण है। वह हिमवन्त के समान ही वनों से शोभायमान है।।१७१७।। वि. ८००००/११ । उं. २००। महाहिमवान् पर्वत के दोनों पार्श्वभागों में रमणीय वेदी और वन हैं। इनकी लम्बाई इसी पर्वत के बराबर और विस्तारादिक हिमवान् पर्वत के समान है।।१७२३।। इस पर्वत के ऊपर सिद्ध, महाहिमवान्, हैमवत, रोहित्, हरि, हरिकान्त, हरिवर्ष और वैडूर्य, इस प्रकार ये आठ कूट हैं।।१७२४।। हिमवान् पर्वत के कूटों से इन कूटों की ऊँचाई और विस्तारप्रभृति सब दुगुणा-दुगुणा है।।१७२५।। जिन नामों के वे कूट हैं, उन्हीं नाम वाले व्यन्तरदेव उन कूटों पर रहते हैं। ये देव अनुपम रूपयुक्त शरीर के धारक और बहुत प्रकार के परिवार से संयुक्त हैं।।१७२६।।

---

१. तिलोयपण्णत्ति पृ० ३६७, ३६८ ।

निषधपर्वत का वर्णन

सोलससहस्सअडसयबादाला दो कला णिसहरुंदं। उणवीसहिदा सूई तीससहस्साणि छल्लक्खं[1]।।१७५०।।

१६८४२। २। ६३०००००।

१९ १९

कूडो सिद्धो णिसहो हरिवस्सो तह विदेहहरिविजया। सीदोदपरविदेहा रुजगो य हवेंदि णिसहउवरिम्मि।।१७५८।।

ताणं उदयप्पहुदी सव्वे हिमवंतसेलकूडादो। चउगुणिया णवरि इमे कूडोवरि जिणपुरा सरिसा।।१७५९।।

जंणामा ते कूडा तंणामा वेंतरा सुरा तेसुं। बहुपरिवारेहिं जुदा पल्लाऊ दसधणुत्तुंगा।।१७६०।।

हरिक्षेत्र में नाभिगिरि

अवसेसवण्णणाओ सुसमस्स व होंति तस्स खेत्तस्स।णवरि य संठिदरूवं परिहीणं हाणिवड्ढीहिं[2]।।१७४४।।

तक्खेत्ते बहुमज्झे चेट्ठदि विजयावदित्ति णाभिगिरी। सव्वदिव्ववण्णणजुत्ता इह किर चारणा देवा।।१७४५।।

महपउमदहाउ णदी उत्तरभागेण तोरणद्दारे। णिस्सरिदूणं वच्चदि पव्वदउवरिम्मि हरिकंता।।१७४६।।

सा गिरिउवरिं गच्छइ एक्कसहस्सं पणुत्तरा छसया। जोयणया पंच कला पणालिए पडदि कुंडम्मि।।१७४७।।

१६०५। ५।

१९

वेकोसेहिमपाविय णाभिगिरिंदं पदाहिणं कादुं। पच्छिममुहेण वच्चदि रोहीदो बिगुणवासादी।।१७४८।।

निषध पर्वत का वर्णन

निषध पर्वत का विस्तार सोलह हजार आठ सौ बयालीस योजन और दो कला तथा सूची उन्नीस से भाजित छह लाख तीस हजार योजन प्रमाण है।।१७५०।। १६८४२ ।६३००००००/१९। निषध पर्वत के ऊपर सिद्ध, निषध, हरिवर्ष, विदेह, हरि, विजय, सीतोदा, अपरविदेह और रुचक, ये नौ कूट स्थित हैं।।१७५८।। इन कूटों की ऊँचाई आदि सब हिमवान् पर्वत के कूटों से चौगुणी है। विशेषता केवल यह है कि कूटों पर स्थित ये जिनपुर हिमवान् पर्वत सम्बन्धी जिनपुरों के सदृश हैं।।१७५९।। जिस नाम के धारक ये कूट हैं, उसी नाम के धारक व्यन्तरदेव उन कूटों पर निवास करते हैं। ये देव बहुत परिवारों से युक्त, एक पल्य प्रमाण आयु वाले और दश धनुष ऊँचे हैं।।१७६०।।

हरिक्षेत्र में नाभिगिरि

उस क्षेत्र का अवशेष वर्णन सुषमाकाल के समान है। विशेष यह है कि वह क्षेत्र हानि–वृद्धि से रहित होता हुआ संस्थितरूप अर्थात् एक सा ही रहता है।।१७४४।। इस क्षेत्र के बहुमध्यभाग में विजयवान् नामक नाभिगिरि स्थित है। यहाँ पर सर्व दिव्य वर्णन से संयुक्त चारण देव रहते हैं।।१७४५।। महापद्मद्रह के उत्तरभागसम्बन्धी तोरणद्वार से हरिकान्ता नदी निकलकर पर्वत के ऊपर से जाती है।।१७४६।। वह नदी एक हजार छह सौ पाँच योजन और पाँच कलाप्रमाण पर्वत के ऊपर जाकर नाली के द्वारा कुण्ड में गिरती है।।१७४७।। १६०५–५/१९। पश्चात् वह नदी दो कोस से नाभिगिरि को न पाकर अर्थात् नाभिगिरि से दो कोस इधर ही रहकर उसकी प्रदक्षिणा करके रोहित् नदी की अपेक्षा दुगुणे विस्तारादि से सहित होती हुई पश्चिम की ओर जाती है।।१७४८।। इस प्रकार

---

१. तिलोयपण्णत्ति, चतुर्थमहाधिकार पृ० ३७१, ३७३ । २. तिलोयपण्णत्ति पृ. ३७१।

छप्पण्णसहस्सेहिं परिवारतरंगिणीहिं परियरिया।
दीवस्स य जगदिबिलं पविसिय पविसेइ लवणणिहिं।।१७४९।।
५६०००।

सोलह वक्षार पर्वत के जिनमंदिर व देवभवन

गयदंतगिरी सोलस सीदासीदोदयाण तीरेसुं। पणसयजोयणउदया कुलगिरिपासेसु एक्कसयहीणा[१]।।२३०७।।
५००। ४००।
वक्खाराणं दोसुं पासेसुं होंति दिव्ववणसंडा। पुह पुह गिरिसमदीहा जोयणदलमेत्तवित्थारा।।२३०८।।
सव्वे वक्खारगिरी तुरंगखंधेण होंति सारिच्छा। उवरिम्मि ताण कूडा चत्तारि हवंति पत्तेक्कं।।२३०९।।
सिद्धो वक्खारुड्ढाधोगदविजयणामकूडा य। ते सव्वे रयणमया पव्वयचउभागउच्छेहा।।२३१०।।
सीदासीदोदाणं पासे एक्को जिणिंदभवणजुदो। सेसा य तिण्णि कूडा वेंतरणयरेहिं रमणिज्जा।।२३११।।

नीलगिरि पर्वत के जिनमंदिर व कूट

णीलगिरि णिसहो पिव उत्तरपासम्मि दोविदेहाणं। णवरि विसेसो अण्णे कूडाणं देवदेविदहणामा[२]।।२३२७।।
सिद्धक्खो णीलक्खो पुव्वविदेहो त्ति सीदकित्तीओ। णारी अवरविदेहो रम्मकणामावदंसणो कूडो।।२३२८।।
एदेसु पढमकूडे जिणिंदभवणं विचित्तरयणमयं। उच्छेहप्पहुदीहिं सोमणसि जिणालयसमाणं।।२३२९।।

वह नदी छप्पन हजार परिवारनदियों से सहित होती हुई द्वीप के जगतीबिल में प्रवेश करके लवणसमुद्र में प्रवेश करती है।।१७४९।। ५६०००।

सोलह वक्षार पर्वत के जिनमंदिर व देवभवन

सोलह गजदन्त पर्वत (वक्षार) सीता-सीतोदा के किनारों पर पाँच सौ योजन और कुलाचलों के पार्श्वभागों में एक सौ कम अर्थात् चार सौ योजन ऊँचे हैं।।२३०७।। वक्षार पर्वतों के दोनों पार्श्वभागों में पृथक्-पृथक् पर्वत के समान लंबे और अर्द्धयोजनमात्र विस्तार वाले दिव्य वनखण्ड हैं।।२३०८।। सब वक्षार पर्वत घोड़े के स्कंध के सदृश होते हैं। इनमें से प्रत्येक पर्वत के ऊपर चार कूट हैं।।२३०९।। इनमें से प्रथम सिद्धकूट, द्वितीय वक्षार के समान नाम वाला और शेष दो कूट वक्षारों के अधस्तन और उपरिम क्षेत्रों के नामों से युक्त हैं। वे सब रत्नमय कूट अपने पर्वत की ऊँचाई के चतुर्थभाग प्रमाण ऊँचे हैं।।२३१०।। सीता-सीतोदा के पार्श्वभाग में **एक कूट जिनेन्द्रभवन से युक्त** और शेष तीन कूट व्यन्तरनगरों से रमणीय हैं।।२३११।।

नीलगिरि पर्वत के जिनमंदिर व कूट

दोनों विदेहों के उत्तरपार्श्व भाग में निषध के ही समान नीलगिरि भी स्थित है। विशेष इतना है कि इस पर्वत पर स्थित कूटों, देव-देवियों और द्रहों के नाम अन्य ही हैं।।२३२७।।

सिद्धाख्य, नीलाख्य, पूर्वविदेह, सीता, कीर्ति, नारी, अपरविदेह, रम्यक और अपदर्शन, इस प्रकार इस पर्वत पर ये नौ कूट स्थित हैं।।२३२८।। इनमें से प्रथम कूट के ऊपर सौमनसस्थ जिनालय के समान ऊँचाई आदि से सहित विचित्र **रत्नमय जिनेन्द्रभवन** स्थित है।।२३२९।।

---

१. तिलोयपण्णत्ति पृ. ४३५। २. तिलोयपण्णत्ति पृ. ४३७।

सेसेसुं कूडेसुं वेंतरदेवाण होंति णयरीओ। णयरीसुं पासादा विचित्तरूवा णिरुवमाणा।।२३३०।।
वेंतरदेवा सव्वे णियणियकूडाभिधाणसंजुत्ता। बहुपरिवारा दसधणुतुंगा पल्लप्पमाणाऊ।।२३३१।।

रम्यक क्षेत्र में नाभिगिरि

रम्मकविजओ रम्मो हरिवरिसो व वरवण्णणाजुत्तो।
णवरि विसेसो एक्को णाभिणगे अण्णणामाणिं[१]।।२३३५।।

रम्मकभोगखिदीए बहुमज्झे होदि पउमणामेणं। णाभिगिरी रमणिज्जो णियणामजुदेहिं देवेहिं।।२३३६।।
केसरिदहस्स उत्तरतोरणदारेण णिग्गदा दिव्वा। णरकंता णाम णदी सा गच्छिय उत्तरमुहेणं।।२३३७।।
णरकंतकुंडमज्झे णिवडिय णिस्सरदि उत्तरदिसाए। तत्तो णाभिगिरिंदं कादूण पदाहिणं पि पुव्वं व।।२३३८।।
गंतूणं सा मज्झं रम्मकविजयस्स पच्छिममुहेहिं। पविसेदि लवणजलहिं परिवारणदीहिं संजुत्ता।।२३३९।।

रुक्मी पर्वत पर जिनमंदिर व कूट

रम्मकभोगखिदीए उत्तरभागम्मि होदि रुम्मिगिरी। महहिमवंतसरिच्छं सयलं चिय वण्णणं तस्स[२]।।२३४०।।
णवरि य ताणं कूडद्दहपुरदेवीण अण्णणामाणिं। सिद्धो रुम्मीरम्मकणरकंताबुद्धिरुप्पो त्ति।।२३४१।।
हेरण्णवदो मणिकंचणकूडो रुम्मियाण तहा। कूडाण इमा णामा तेसुं जिणमंदिरं पढमकूडे।।२३४२।।
सेसेसुं कूडेसुं वेंतरदेवाण होंति णयरीओ। विक्खादा ते देवा णियणियकूडाण णामेहिं।।२३४३।।

शेष कूटों पर व्यन्तरदेवों की नगरियाँ और उन नगरियों में विचित्र रूप वाले अनुपम प्रासाद हैं।।२३३०।। सब व्यन्तर देव अपने-अपने कूटों के नामों से संयुक्त, बहुत परिवारों से सहित, दश धनुष ऊँचे और एक पल्यप्रमाण आयु वाले हैं।।२३३१।।

रम्यक क्षेत्र में नाभिगिरि

रमणीय रम्यकविजय भी हरिवर्ष के समान उत्तम वर्णना से युक्त है। विशेषता केवल एक यही है कि यहाँ नाभिपर्वत का नाम दूसरा है।।२३३५।। रम्यकभोगभूमि के बहुमध्यभाग में अपने नाम वाले देवों से युक्त रमणीय पद्म नामक नाभिगिरि स्थित है।।२३३६।। केसरी द्रह के उत्तर तोरणद्वार से निकली हुई दिव्य नरकान्ता नामक प्रसिद्ध नदी उत्तर की ओर गमन करती हुई नरकान्तकुण्ड के मध्य में पड़कर उत्तर की ओर से निकलती है। पश्चात् वह नदी पहिले के ही समान नाभिपर्वत को प्रदक्षिण करके रम्यकक्षेत्र के मध्य से जाती हुई पश्चिममुख होकर परिवारनदियों के साथ लवणसमुद्र में प्रवेश करती है।।२३३७-२३३९।।

रुक्मी पर्वत पर जिनमंदिर व कूट

रम्यक भोगभूमि के उत्तरभाग में रुक्मिपर्वत है। उसका सम्पूर्ण वर्णन महाहिमवान् के सदृश समझना चाहिए।।२३४०।। विशेष इतना है कि यहाँ उन कूट, द्रह, पुर और देवियों के नाम भिन्न हैं। सिद्ध, रुक्मि, रम्यक, नरकान्ता, बुद्धि, रूप्यकूला, हैरण्यवत और मणिकांचन, ये रुक्मिपर्वत पर स्थित उन आठ कूटों के नाम हैं। इनमें से प्रथम कूट पर जिनमन्दिर और शेष कूटों पर व्यन्तरदेवों की नगरियाँ हैं वे देव अपने-अपने कूटों के नामों से विख्यात हैं।।२३४१-२३४३।।

१, २- तिलोयपण्णत्ति, चतुर्थमहाधिकार पृ० ४३८।

हैरण्यवतक्षेत्र में नाभिगिरि

विजओ हेरण्णवदो हेमवदो वप्पवण्णणाजुत्तो।
णवरि विसेसो एक्को दहणाभिणईण अण्णणामाणिं[१]।।२३५०।।

तस्स बहुमज्झभागे विजयड्ढो होदि गंधवंतो त्ति। तस्सोवरिमणिकेदे पभासणामो ठिदो देवो।।२३५१।।

शिखरी पर्वत पर जिनमंदिर व कूट

तव्विजउत्तरभागे सिहरीणामेण चरमकुलसेलो। हिमवंतस्स सरिच्छं सयलं चिय वण्णणं तस्स[२]।।२३५५।।

णवरि विसेसो कूडद्दहाण देवाण देविसरियाणं। अण्णाइं णामाइं तस्सिं सिद्धो पढमकूडो।।२३५६।।

सिहरी हेरण्णवदो रसदेवीरत्तलच्छिकंचणया। रत्तवदी गंधवदी रेवदमणिकंचणं कूडं।।२३५७।।

एक्कारसकूडाणं पुह पुह पणुवीस जोयणा उदओ। तेसुं पढमे कूडे जिणिंदभवणं परमरम्मं।।२३५८।।

सेसेसुं कुंडेसुं णियणियकूडाण णामसंजुत्ता। वेंतरदेवा मणिमयपासादेसुं विरायंति।।२३५९।।

हैरण्यवतक्षेत्र में नाभिगिरि

हैरण्यवतक्षेत्र हैमवतक्षेत्र के समान वर्णन से युक्त है। विशेषता केवल एक यही है कि यहाँ द्रह, नाभिगिरि और नदियों के नाम भिन्न हैं।।२३५०।। इस क्षेत्र के बहुमध्य भाग में गन्धवान् नामक विजयार्द्ध (नाभिगिरि) है। इसके ऊपर स्थित भवन में प्रभास नामक देव रहता है।।२३५१।।

शिखरी पर्वत पर जिनमंदिर व कूट

इस क्षेत्र के उत्तरभाग में शिखरी नामक अन्तिम कुलपर्वत स्थित है। इस पर्वत का सम्पूर्ण वर्णन हिमवान् पर्वत के सदृश है।।२३५५।। विशेष यह है कि यहाँ कूट, द्रह, देव, देवी और नदियों के नाम भिन्न हैं। उस पर्वत पर प्रथम सिद्धकूट, शिखरी, हैरण्यवत, रसदेवी, रक्ता, लक्ष्मी, कांचन, रक्तवती, गन्धवती, रैवत (ऐरावत) और मणिकांचनकूट, इस प्रकार ये ग्यारह कूट स्थित हैं। इन ग्यारह कूटों की ऊँचाई पृथक्-पृथक् पच्चीस योजन प्रमाण है। इनमें से प्रथम कूट पर परम रमणीय जिनेन्द्रभवन और शेष कूटों पर स्थित मणिमय प्रासादों में अपने-अपने कूटों के नामों से संयुक्त व्यन्तरदेव विराजमान हैं।।२३५६-२३५९।।

प्रात:काल जिनमुखावलोकन

सुप्तोत्थितेन सुमुखेन सुमंगलाय, दृष्टव्यमस्ति यद् मंगलमेव वस्तु।
अन्येन किं तदिह नाथ! तवैव वक्त्रं, त्रैलोक्यमंगलनिकेतनमीक्षणीयम्।।१।।

---

१. तिलोयपण्णत्ति, चतुर्थमहाधिकार पृ० ४३९। २. तिलोयपण्णत्ति, चतुर्थमहाधिकार पृ० ४४०।

धातकीखण्डद्वीप में इष्वाकार पर्वत

(तिलोयपण्णत्ति से[१])

धातकीखण्डद्वीप इस सम्पूर्ण लवणसमुद्र को वेष्टित करता है। मण्डलाकार से स्थित यह द्वीप चार लाख योजन प्रमाण विस्तार से संयुक्त है।।२५२७।। ४०००००। जगती, विन्यास, भरतक्षेत्र, उसमें कालभेद, हिमवान् पर्वत, हैमवतक्षेत्र, महाहिमवान् पर्वत, हरिवर्षक्षेत्र, निषधपर्वत, विदेहक्षेत्र, नील पर्वत, रम्यक क्षेत्र, रुक्मिपर्वत, हैरण्यवतक्षेत्र, शिखरीपर्वत और ऐरावत क्षेत्र, इस प्रकार धातकीखण्डद्वीप के वर्णन में ये सोलह भेदरूप अन्तराधिकार हैं। अब अनुक्रम से इनके स्वरूप का कथन करते हैं।।२५२८-२५३०।। उस धातकीखण्डद्वीप को चारों तरफ से दिव्य रत्नमय जगती वेष्टित करती है। इस जगती का वर्णन जम्बूद्वीप में वर्णित जगती के ही समान है।।२५३१।।

धातकीखण्डद्वीप के दक्षिण और उत्तरभाग में इस द्वीप को विभाजित करने वाला व दक्षिण उत्तर लम्बा एक-एक इष्वाकार पर्वत है।।२५३२।। लवण और कालोद समुद्र से संलग्न वे दोनों पर्वत निषधपर्वत के समान ऊँचे तथा अभ्यन्तर भाग में अंकमुख व बाह्य भाग में क्षुरप्र के आकार के हैं।।२५३३।। उन दोनों पर्वतों में से प्रत्येक का विस्तार सर्वत्र एक हजार योजन प्रमाण है। एक सौ योजनप्रमाण अवगाह से सहित वे सुवर्णमय पर्वत विराजमान हैं।।२५३४।। उन पर्वतों के दोनों पार्श्वभागों में पाँच सौ धनुषप्रमाण विस्तार से सहित, दो कोस ऊँची और फहराती हुई ध्वजाओं से संयुक्त एक-एक तटवेदी है।।२५३५।। उन वेदियों के दोनों पार्श्वभागों में वेदी, तोरण, पुष्करिणी एवं वापिकाओं से युक्त और जिनेन्द्रप्रासादों से रमणीय वनखंड हैं।।२५३६।। इन वनखण्डों में देव मनुष्यों के युगलों से सहित, तटवेदी व तोरणों से युक्त और विविध प्रकार के रत्नों के समूहों से निर्मित दिव्य प्रासाद हैं।।२५३७।। इष्वाकार पर्वतों के ऊपर चारों ओर पूर्वोक्त प्रकार विस्तार से परिपूर्ण दिव्य तटवेदी, वन और वनवेदी स्थित है।।२५३८।। **उन प्रत्येक पर्वतों पर चार-चार उत्तम कूट हैं। इनमें से प्रथम कूट के ऊपर जिनभवन और शेष कूटों के ऊपर व्यन्तरों के पुर हैं।**।२५३९।। उस द्वीप में जिनभवन और व्यन्तरदेवों के दिव्य प्रासाद निषधपर्वत के वर्णन में निर्दिष्ट जिनभवन और व्यन्तरवासियों के सदृश हैं।।२५४०।। दोनों इष्वाकारों के मध्य वे क्षेत्र दो-दो हैं। जो क्षेत्र जम्बूद्वीप में हैं उनसे दुगुणे धातकीखण्ड में हैं।।२५४१।। नाना प्रकार के विन्यास से युक्त जितने पर्वत, तालाब, नदियाँ, क्षेत्र और कुण्ड हैं वे धातकीखण्ड में भी शोभायमान हैं।।२५४२।। इष्वाकार पर्वतों के अन्तराल में नाना प्रकार के विचित्र वर्ण वाले वे सब पर्वतादि धातकीखण्ड में स्थित हैं।।२५४३।। दोनों द्वीपों में प्रणिधिगत क्षेत्र क्षेत्रों के सदृश, विजयार्द्ध विजयार्द्धों के सदृश, मेरु मेरु के सदृश, कुलपर्वत कुलपर्वतों के सदृश, नाभिगिरि नाभिगिरियों के सदृश और नदियाँ नदियों के सदृश हैं। इनमें से मेरु के बिना शेष सबों का अवगाह व ऊँचाई सदृश है।।२५४४-२५४५।। मेरु को छोड़कर विजयार्द्धप्रभृति पर्वतों में से वे प्रत्येक जम्बूद्वीप में बतलाये हुए विस्तार की अपेक्षा दुगुने विस्तार से सहित हैं।।२५४६।। मेरु पर्वत को छोड़कर सब पर्वत और कुण्ड आदि तथा अवगाह एवं विस्तारादि दोनों द्वीपों में समान हैं, ऐसा कितने ही आचार्यों का अभिप्राय है।।२५४७।। पाठान्तर।

---

१. तिलोयपण्णत्ति, चतुर्थ महाधिकार, पृ० ४६० से ४६२ तक।

धातकीखण्डद्वीप में हिमवान् आदि व विजयार्ध पर्वत

बारह कुलपर्वत मूल व उपरिम भाग में समान विस्तार से सहित होते हुए दोनों अन्तिम भागों से लवणोदधि और कालोदधि से संलग्न हैं [१]।।२५४८।। भरत व ऐरावत क्षेत्रों के बहुमध्यभाग में स्थित दो-दो दीर्घ विजयार्द्ध दोनों पार्श्वभागों में लवणोदधि और कालोदधि से संलग्न हैं।।२५४९।। वे बारह कुलपर्वत और चारों ही दीर्घ विजयार्द्ध अभ्यन्तर व बाह्य भाग में क्रम से अंकमुख और क्षुरप्र जैसे आकार वाले हैं।।२५५०।। जम्बू और शाल्मली वृक्षों के नामों को छोड़कर शेष जो क्षेत्रादिकों के विविध प्रकार के नाम जम्बूद्वीप में बतलाये गये हैं, उनको ही यहाँ पर भी कहना चाहिये।।२५५१।। अब धातकीखण्डद्वीप के क्षेत्रों का अभ्यन्तर, मध्य और बाह्य भाग में जितना विस्तार है उसे कहते हैं।।२५५५।। दो हजार एक सौ पाँच योजन और उन्नीस से भाजित पाँच भागप्रमाण हिमवान् पर्वत का विस्तार समझना चाहिये।।२५५६।। २१०५-५/१९। महाहिमवान् पर्वत का विस्तार हिमवान् पर्वत के विस्तार से चौगुणा और निषध पर्वत का विस्तार महाहिमवान् पर्वत के विस्तार से चौगुणा है।।२५५७।। ८४२१-१/१९। ३३६८४-४/१९। उस द्वीप में पूर्व और अपर विदेहक्षेत्रों के बहुमध्य भाग में पूर्वोक्त स्वरूप से संयुक्त एक-एक मन्दर पर्वत स्थित है।।२५७६।। उत्तम एवं नाना प्रकार के रत्नों के परिणामस्वरूप वे प्रत्येक पर्वत एक हजार योजन प्रमाण अवगाह से सहित और चौरासी हजार योजन ऊँचे हैं।।२५७७।। अवगाह १०००। उत्सेध ८४०००। मेरु का विस्तार तलभाग में दश हजार योजन और पृथिवीपृष्ठ पर चौरानबे सौ योजन प्रमाण है।।२५७८।। १००००। ९४००। इस द्वीप में दोनों मन्दर पर्वतों की चूलिकायें जम्बूद्वीप के वर्णन में कही हुई मन्दर पर्वत चूलिका के सदृश हैं।।२५८३।। जम्बूद्वीप में कहे हुए मेरुपर्वत के समान इन मेरुओं के भी पाण्डुक, सौमनस, नन्दन और भद्रशाल नामक चार वन हैं।।२५८४।। यहाँ विशेषता यह है कि पाण्डुकवन से अट्ठाईस हजार योजनमात्र ही नीचे जाकर सौमनस नामक वन स्थित है।।२५८५।। २८०००। इसी प्रकार यहां सौमनस वन के नीचे पचपन हजार पांच सौ योजन मात्र जाकर नन्दन वन है।।२५८६।। ५५५००। धातकीखण्डद्वीप में नन्दनवन से पांच सौ योजन मात्र नीचे जाने पर भद्रशाल नामक वन है।। २५८७।। ५००। इनमें से प्रत्येक भद्रशाल वन की पूर्वापर लंबाई एक लाख सात हजार आठ सौ उन्यासी योजनमात्र है।।२५८८।। १०७८७९। मन्दरपर्वतों के उत्तर-दक्षिण भागों में भद्रशालवनों का जितना विस्तार है, उसके प्रमाण का उपदेश नष्ट हो गया है।।२५८९।। विदेह का मध्यविस्तार ८०५१९४ -१८४/२१२ ; मेरुविस्तार ९४००; (८०५१९४-१८४/२१२-९४००) ÷ २ = ३९७८९७-९२/२१२ प्रत्येक कुरुक्षेत्र का विस्तार। धातकीखण्डद्वीप के भीतर उत्तरकुरु और देवकुरु क्षेत्रों में धातकीवृक्ष स्थित हैं, इसी कारण इस द्वीप का 'धातकीखण्ड' यह सार्थक नाम है।।२६००।। **इस द्वीप में उन धातकी वृक्षों के परिवारवृक्ष पांच लाख साठ हजार चार सौ अस्सी हैं।**।२६०१।। ५६०४८०। उन वृक्षों पर सम्यक्त्वरूपी रत्न से संयुक्त और उत्तम भूषणों से भूषित आकृति को धारण करने वाले प्रियदर्शन और प्रभास नामक दो अधिपति देव निवास करते हैं।।२६०२।। इन दोनों देवों के परिवार देव आदर और अनादर देवों के परिवारदेवों की अपेक्षा दुगुणे हैं जो पूर्वोक्त वर्णन से संयुक्त हैं।।२६०३।। अब धातकीखण्ड में गिरि (मेरु), भद्रशाल, विजय, वक्षार, विभंगनदी और देवारण्य, इनका पूर्वापर विस्तार कहना चाहिये।।२६०४।। इनमें से प्रत्येक मेरु का विस्तार पृथिवी के पृष्ठ भाग पर चौरानबे सौ योजन प्रमाण है।।२६०५।। ९४००।

---

१. तिलोयपण्णत्ति, महाधिकार-४ पृ० ४६२, ४६३, ४६७, ४६८, ४७०, ४७१।

धातकीखण्ड व पुष्करार्ध के मेरु-कुलाचल आदि की संख्या

दोण्णि वि इसुगाराणं विच्चाले होंति दोण्णि विजयवरा। चंदद्धसमायारा एक्केक्का तासु मेरुगिरि[1]।।२७८५।।
धादइसंडे दीवे जेत्तियकुंडाणि जेत्तिया विजया। जेत्तियसरवर जेत्तियसेलवरा जेत्तियणईआ।।२७८६।।
पोक्खरदीवद्धेसुं तेत्तियमेत्ताणि ताणि चेट्ठंति। दोण्णं इसुगाराणं गिरीण विच्चालभाएसुं।।२७८७।।
विजया विजयाण तहा वेयड्ढाणं हवंति वेयड्ढा। मेरुगिरीणं मेरु कुलसेला कुलगिरीणं च।।२७८८।।
सरियाणं सरियाओ णाभिगिरिंदाण णाभिसेलाणिं। पणिधिगदा तियदीवे च उस्सेहसमं विणा मेरुं।।२७८९।।
एदाणं रुंदाणिं जंबूदीवम्मि भणिदरुंदादो। एत्थ चउग्गुणिदाइं णेयाइं जेण पढमविणा।।२७९०।।
मुक्का मेरुगिरिदं कुलगिरिपहुदीणि दीवतिदयम्मि। वित्थारुच्छेहसमो केई एवं परूवेंति।।२७९१।।
छविदूण माणुसुत्तरसेलं कालोदगं च चेट्ठंति। चत्तारो विजयद्धा दीवद्धे बारस कुलद्दी।।२७९२।।
दीवम्मि पोक्खरद्धे कुलसेलादी तह य दीहविजयद्धा।
अब्भंतरम्मि बाहिं अंकमुहा ते खुरुप्पसंठाणा।।२७९३।।
वज्जिय जंबूसामलिणामाइं विजयसरगिरिप्पहुदिं। जंबूदीवसमाणं णामाणिं एत्थ वत्तव्वा।।२७९४।।

धातकीखण्ड व पुष्करार्ध के मेरु-कुलाचल आदि की संख्या

इन दोनों इष्वाकार पर्वतों के बीच में अर्धचन्द्र के समान (चक्ररंध्र के समान) आकार वाले दो उत्तम क्षेत्र और उनमें (दोनों विदेहों में) एक-एक मेरु पर्वत है।।२७८५।।

धातकीखण्डद्वीप में जितने कुंड, जितने विजय, जितने सरोवर, जितने श्रेष्ठ पर्वत और जितनी नदियाँ हैं, उतने ही वे सब पुष्करार्द्धद्वीप में भी दोनों इष्वाकार पर्वतों के अन्तराल भागों में स्थित हैं।।२७८६-२७८७।।

तीनों द्वीपों में प्रणिधिगत विजयों के सदृश विजय, विजयार्द्धों के सदृश विजयार्द्ध, मेरुपर्वतों के सदृश मेरुपर्वत, कुलगिरियों के सदृश कुलगिरि, नदियों के सदृश नदियाँ तथा नाभिगिरियों के सदृश नाभिपर्वत है। इनमें से मेरु को छोड़कर शेष सबकी ऊँचाई समान है।।२७८८-२७८९।।

सर्वप्रथम कहे हुए विजयों को छोड़ इनका विस्तार यहाँ जम्बूद्वीप में बतलाये हुए विस्तार से चौगुणा जानना चाहिये।।२७९०।।

मेरुपर्वत को छोड़कर शेष कुलाचल आदिकों का विस्तार व ऊँचाई तीनों द्वीपों में समान है ऐसा कितने ही आचार्य निरूपण करते हैं।।२७९१।। पुष्करार्द्धद्वीप में चार विजयार्द्ध व बारह कुलपर्वत मानुषोत्तरशैल और कालोदकसमुद्र को छूकर स्थित हैं।।२७९२।।

पुष्करार्द्धद्वीप में स्थित वे कुलपर्वतादिक तथा दीर्घविजयार्द्ध अभ्यन्तर व बाह्य भाग में क्रम से अंकमुख और क्षुरप्रके सदृश आकार वाले हैं।।२७९३।।

यहाँ जम्बू और शाल्मली वृक्षों के नामों को छोड़कर शेष क्षेत्र, तालाब और पर्वतादिक के नाम जम्बूद्वीप के समान ही कहने चाहिये।।२७९४।।

---

१. तिलोयपण्णत्ति, पृ० ५००।

पुष्करार्धद्वीप में मानुषोत्तर पर्वत

इस सम्पूर्ण कालसमुद्र को, सोलह लाख योजन प्रमाण विस्तार से संयुक्त पुष्करवर द्वीप मण्डलाकार से वेष्टित किये हुए है[१]।।२७४४।। १६०००००। इस पुष्करद्वीप के कथन में मानुषोत्तर पर्वत, विन्यास, भरतक्षेत्र, उसमें कालविभाग, हिमवान् पर्वत, हैमवतक्षेत्र, महाहिमवान् पर्वत, हरिवर्ष, निषधपर्वत, विदेह, नीलगिरि, रम्यकवर्ष, रुक्मिपर्वत, हैरण्यवतक्षेत्र, शिखरीपर्वत और ऐरावतक्षेत्र, इस प्रकार ये सोलह अन्तराधिकार हैं। अब अनुक्रम से यहाँ उनका स्वरूप कहा जाता है।।२७४५-२७४७।। कालोदकसमुद्र की जगती से चारों ओर आठ लाख योजन जाकर मानुषोत्तर नामक पर्वत उस द्वीप को सब तरफ से वेष्टित किये हुए है।।२७४८।। ८०००००। इस पर्वत की ऊँचाई सत्रह सौ इक्कीस योजन और अवगाह चार सौ तीस योजन व एक कोसप्रमाण है।।२७४९।। उत्सेध १७२१ यो.। अवगाह ४३० यो. १ को.। इस पर्वत का विस्तार मूल, मध्य व शिखर पर क्रम से एक हजार बाईस, सात सौ तेईस और चार सौ चौबीस योजनमात्र है।।२७५०।। मूलविस्तार १०२२। मध्यविस्तार ७२३। शिखरविस्तार ४२४ यो.। देव व विद्याधरों के मन को हरने वाला, अनादिनिधन और सुवर्ण के सदृश यह मानुषोत्तर पर्वत अभ्यन्तर भाग में टंकोत्कीर्ण और बाह्यभाग में क्रम से हीन है।।२७५१।। उस पर्वत में चारों ओर क्षेत्रों के बहुमध्यभाग में उनके पार्श्व भागों में प्रकाशमान किरणों से संयुक्त दिव्य रत्नमय चौदह गुफायें हैं।।२७५२।। **इस मानुषोत्तर पर्वत के ऊपर बाईस दिव्य कूट स्थित हैं। इनमें पूर्वादिक चारों दिशाओं में से प्रत्येक में तीन-तीन कूट हैं**।।२७६५।। इनमें से वैडूर्य, अश्मगर्भ और सौगन्धी ये तीन कूट पूर्वदिशा में तथा रुचक, लोहित और अंजन नामक तीन कूट दक्षिणदिशाभाग में स्थित हैं।।२७६६।। अंजनमूल, कनक और रजत नामक तीन कूट पश्चिम तथा स्फटिक, अंक और प्रवाल नामक तीन कूट उत्तरदिशा में स्थित हैं।।२७६७।। तपनीय और रत्न नामक दो कूट अग्निदिशा में तथा प्रभंजन और वज्र नामक दो कूट ईशानदिशाभाग में स्थित हैं।।२७६८।। वायव्यदिशा में केवल एक बेलंबकूट और नैॠत्यदिशा भाग में सर्वरत्न नामक कूट स्थित है।।२७६९।। मानुषोत्तर पर्वत के ऊपर पूर्वादिक चार दिशाओं में बतलाये हुए कूटों की अग्रभूमियों में **एक-एक सिद्धकूट** भी हैं।।२७७०।। इन कूटों में से प्रत्येक कूट की ऊँचाई पर्वत की ऊँचाई के चतुर्थ भाग प्रमाण तथा इतना ही उनका मूल में विस्तार भी है। शिखर पर इससे आधा विस्तार है।।२७७१।। मूल और शिखर के विस्तार को मिलाकर आधा करने पर जो प्राप्त हो उतना प्रत्येक कूट के मध्यम विस्तार का प्रमाण है।।२७७२।। ४३०–१/४ + २१५–१/८ ÷ २ = ३२२–११/१६ = यो. ३२२, को. २–३/४। कूटों के मूल में व शिखर पर मणिमय मन्दिरों से रमणीय और वेदी आदिकों से सुशोभित दिव्य वनखण्ड स्थित हैं।।२७७३।। मानुषोत्तर पर्वत के चारों सिद्धकूटों पर निषध पर्वत पर स्थित जिनभवनों के सदृश चार जिनमंदिर स्थित हैं।।२७७४।। शेष कूटों पर पूर्वोक्त वर्णनाओं से संयुक्त उत्तम रत्न एवं सुवर्णमय व्यन्तरदेवों के दिव्य प्रासाद हैं।।२७७५।। मानुषोत्तर शैल के पूर्वदिशा सम्बन्धी तीन कूटों पर क्रम से यशस्वान्, यशस्कान्त और यशोधर नामक तीन अधिपति देव बहुत परिवार के साथ निवास करते हैं।।२७७६।। इसी प्रकार दक्षिण दिशा के तीन कूटों पर नन्द (नन्दन), नन्दोत्तर और अशनिघोष नामक तीन व्यन्तरदेव लीलापूर्वक निवास करते हैं।।२७७७।। उस पर्वत के पश्चिम दिशा

---

१. तिलोयपण्णत्ति, महाधिकार-४ पृ० ४९५, ४९७ से ४९९ तक ।

सम्बन्धी तीन कूटों पर सिद्धार्थ, वैश्रवण (क्रमण) और मानसदेव (मानुष), ये तीन व्यन्तराधिपति निवास करते हैं।।२७७८।। मानुषोत्तर पर्वत के उत्तरदिशा सम्बन्धी तीन कूटों पर क्रमशः सुदर्शन, मेघ (अमोघ) और सुप्रबुद्ध नामक तीन देव स्थित हैं।।२७७९।। अग्निदिशा के तपनीय नामक कूट पर स्वातिदेव और रत्नकूट पर वेणु नामक भवनेन्द्र स्थित हैं।।२७८०। ईशानदिशा के वज्रनाभिकूट पर हनुमान नामक देव और प्रभंजनकूट पर वेणुधारी (प्रभंजन) भवनेन्द्र रहता है।।२७८१।। वायव्यदिशा के वेलम्ब नामक कूट पर वेलम्ब नामक और नैऋत्यदिशा के सर्वरत्नकूट पर वेणुधारी (वेणुनीत) भवनेन्द्र रहता है।।२७८२।। आठ दिशाओं में से नैऋत्य और वायव्य दिशाओं को छोड़कर शेष दिशाओं में से प्रत्येक में तीन-तीन कूट हैं। शेष वर्णन पूर्व के ही समान है, ऐसा कितने ही आचार्य स्वीकार करते हैं।।२७८३।।

पुष्करार्द्धद्वीप में इष्वाकार पर्वतादि का वर्णन

पुष्करार्द्धद्वीप में भी धातकीखण्ड में वर्णित इष्वाकार पर्वतों के सदृश वर्णन वाले और आयाम से दुगुणे दो इष्वाकार पर्वत स्थित हैं[१]।।२७८४।। इन दोनों इष्वाकार पर्वतों के बीच में अर्धचन्द्र के समान (चक्ररंध्र के समान) आकार वाले दो उत्तम क्षेत्र और उनमें (दोनों विदेहों में) एक-एक मेरु पर्वत है।।२७८५।। धातकीखण्डद्वीप में जितने कुंड, जितने विजय, जितने सरोवर, जितने श्रेष्ठ पर्वत और जितनी नदियाँ हैं, उतने ही वे सब पुष्करार्द्धद्वीप में भी दोनों इष्वाकार पर्वतों के अन्तराल भागों में स्थित हैं।।२७८६-२७८७।। तीनों द्वीपों में प्रणिधिगत विजयों के सदृश विजय, विजयार्द्धों के सदृश विजयार्द्ध, मेरुपर्वतों के सदृश मेरुपर्वत, कुलगिरियों के सदृश कुलगिरि, नदियों के सदृश नदियाँ तथा नाभिगिरियों के सदृश नाभिपर्वत है। इनमें से मेरु को छोड़कर शेष सबकी ऊँचाई समान है।।२७८८-२७८९।। सर्वप्रथम कहे हुए विजयों को छोड़ इनका विस्तार यहाँ जम्बूद्वीप में बतलाये हुए विस्तार से चौगुणा जानना चाहिये।।२७९०।। मेरुपर्वत को छोड़कर शेष कुलाचल आदिकों का विस्तार व ऊँचाई तीनों द्वीपों में समान है। ऐसा कितने ही आचार्य निरूपण करते हैं।।२७९१।। पुष्करार्द्धद्वीप में चार विजयार्द्ध व बारह कुलपर्वत मानुषोत्तरशैल और कालोदक समुद्र को छूकर स्थित हैं।।२७९२।। पुष्करार्द्धद्वीप में स्थित वे कुलपर्वतादिक तथा दीर्घविजयार्द्ध अभ्यन्तर व बाह्य भाग में क्रम से अंकमुख और क्षुरप्र के सदृश आकार वाले हैं।।२७९३।।

यहाँ जम्बू और शाल्मली वृक्षों के नामों को छोड़कर शेष क्षेत्र, तालाब और पर्वतादिक के नाम जम्बूद्वीप के समान ही कहने चाहिये।।२७९४।। हिमवान् पर्वत का विस्तार चार हजार दो सौ दश योजन और एक योजन के उन्नीस भागों में से दश भाग अधिक है। इसके आगे निषधपर्वत पर्यंत क्रम से उत्तरोत्तर चौगुणा विस्तार है।।२७९८।। हिमवान् ४२१०-१०/१९। महाहिमवान् १६८४२-२/१९। निषध ६७३६८-४/१९। इन तीनों पर्वतों के विस्तार को मिलाकर चौगुणा करने पर जो प्राप्त हो उतने योजनप्रमाण सब कुलपर्वतों का समस्त विस्तार जानना चाहिये।।२७९९।। ४२१०-१०/१९ + १६८४२-२/१९ + ६७३६८-८/१९ × ४ = ३५३६८४-४/१९। दोनों इष्वाकार पर्वतों का विस्तार दो हजार योजनप्रमाण है। इसको पूर्वोक्त कुलपर्वतों के समस्त विस्तार में मिला देने पर पुष्करार्द्धद्वीप में पर्वतरुद्धक्षेत्र का प्रमाण होता है।।२८००।। २००० + ३५३६८४-४/१९ = ३५५६८४-४/१९।

१. तिलोयपण्णत्ति महाधिकार-४, पृ. ४९९ से ५०१ तक।

नव द्वीप समुद्रों के रक्षक देवों के नाम

आदरअणादरक्खा जंबूदीवस्स अहिवई होंति। तह य पभासो पियदंसणो य लवणंबुरासिम्मि[१]।।३८।।
भुंजेदि प्पियणामा दंसणणामा य धादईसंडं। कालोदयस्स पहुणो कालमहाकालणामा य।।३९।।
पउमो पुंडरियक्खो दीवं भुंजंति पोक्खरवरक्खं। चक्खुसुचक्खू पहुणो होंति य मणुसुत्तरगिरिस्स।।४०।।
सिरिपहुसिरिधरणामा देवा पालंति पोक्खरसमुद्दं। वरुणो वरुणपहक्खो भुंजंते चारु वारुणीदीवं।।४१।।
वारुणिवरजलहिपहू णामेणं मज्झमज्झिमा देवा। पंडुरयपुप्फदंता दीवं भुंजंति चारु खीरवरं।।४२।।
विमलपहक्खो विमलो खीरवरंवाहिणीसअहिवइणो। सुप्पहधदवरदेवा धदवरदीवस्स अधिणाहा।।४३।।
उत्तरमहप्पहक्खा देवा रक्खंति खोदवरसिंधुं। णंदीसरम्मि दीवे गंधमहागंधया पहुणो।।४५।।
णंदीसरवारिणिहिं रक्खंते णंदिणंदिपहुणामा। चंदसुभद्दा देवा भुंजंते अरुणवरदीवं।।४६।।
अरुणवरवारिरासिं रक्खंते अरुणअरुणपहणामा। अरुणब्भासं दीवं भुजंति सुगंधसव्वगंधसुरा।।४७।।
सेसाणं दीवाणं वारिणिहीणं च अहिवई देवा। जे केइ ताण णामस्सुवएसो संपहि पणट्ठो।।४८।।
पढमपवण्णिददेवा दक्खिणभागम्मि दीवउवहीणं। चरिमुच्चारिददेवा चेट्ठंते उत्तरे भाए।।४९।।

नवद्वीप समुद्रों के रक्षक देवों के नाम

जम्बूद्वीप के अधिपति आदर और अनादर नामक तथा लवणसमुद्र के प्रभास और प्रियदर्शन नामक दो व्यन्तरदेव हैं।।३८।। प्रिय और दर्शन नामक दो देव धातकीखण्डद्वीप का उपभोग करते हैं तथा काल और महाकाल नामक दो देव कालोदक समुद्र के प्रभु हैं।।३९।। पद्म और पुण्डरीक नामक दो देव पुष्करवरद्वीप को भोगते हैं। चक्षु व सुचक्षु नामक दो देव मानुषोत्तर पर्वत के प्रभु हैं।।४०।।

श्रीप्रभ और श्रीधर नामक दो देव पुष्करसमुद्र का तथा वरुण और वरुणप्रभ नामक दो देव वारुणीवरद्वीप का भलीभाँति रक्षण करते हैं।।४१।। मध्य और मध्यम नामक दो देव वारुणीवर समुद्र के प्रभु हैं। पाण्डुर और पुष्पदन्त नामक दो देव क्षीरवरद्वीप की रक्षा करते हैं।।४२।।

विमलप्रभ और विमल नामक दो देव क्षीरवरसमुद्र के तथा सुप्रभ और घृतवर नामक दो देव घृतवरद्वीप के अधिपति हैं।।४३।। उत्तर और महाप्रभ नामक दो देव घृतवरसमुद्र की तथा कनक और कनकाभ नामक दो देव क्षौद्रवरद्वीप की रक्षा करते हैं।।४४।।

पूर्ण और पूर्णप्रभ नामक दो देव क्षौद्रवरसमुद्र की रक्षा करते हैं। गंध और महागंध नामक दो देव नन्दीश्वरद्वीप के प्रभु हैं।।४५।। नन्दि और नन्दिप्रभ नामक दो देव नन्दीश्वर समुद्र की तथा चन्द्र और सुभद्र नामक दो देव अरुणवरद्वीप की रक्षा करते हैं।।४६।।

अरुण और अरुणप्रभ नामक व्यन्तर देव अरुणवरसमुद्र की तथा सुगंध और सर्वगंध नामक देव अरुणाभासद्वीप की रक्षा करते हैं।।४७।। शेष द्वीप-समुद्रों के जो कोई भी अधिपति देव हैं, उनके नामों का उपदेश इस समय नष्ट हो गया है।।४८।। इन देवों में से पहिले (युगलों में से) कहे हुए देव द्वीप-समुद्रों के दक्षिणभाग में तथा अन्त में

---

१. तिलोयपण्णत्ति, अधिकार-५ पृ० ५३५-५३६।

णियणियदीउवहीणं उवरिमतलसंठिदेसु णयरेसुं। बहुविहपरिवारजुदा कीडंते बहुविणोदेणं।।५०।।
एक्कपलिदोवमाऊ पत्तेक्कं दसधणूणि उत्तुंगा। भुंजंते विविहसुहं समचउरस्संगसंठाणा।।५१।।

नंदीश्वर द्वीप के जिनमंदिर

जंबूदीवाहिंतो अट्ठमओ होदि भुवणविक्खादो। णंदीसरो त्ति दीओ णंदीसरजलिहिपरिखित्तो[१]।।५२।।
एक्कसया तेसट्ठी कोडीओ जोयणाणि लक्खाणिं। चुलसीदी तद्दीवे विक्खंभो चक्कवालेणं।।५३।।
१६३८४०००००।
पणवण्णाधियछस्सयकोडीओ जोयणाणि तेत्तीसा। लक्खाणि तस्स बाहिरसूचीए होदि परिमाणं।।५४।।
६५५३३००००००।
तदियपणसत्तदुखदोइगिछत्तियसुण्णएक्कअंककमे। जोयणया णंदीसरअब्भंतरपरिहिपरिमाणं।।५५।।
१०३६१२०२७५३।
बाहत्तरिजुदुदुसहसकोडीतेत्तीसलक्खजोयणया। चउवण्णसहस्साइं इगिसयणउदी य बाहिरे परिही।।५६।।
२०७२३३५४१९०।
णंदीसरबहुमज्झे पुव्वदिसाए हुवेदि सेलवरो। अंजणगिरि त्ति खादो णिम्मलवरइंदणीलमओ।।५७।।
जोयणसहस्सगाढो चुलसीदिसहस्समेत्तउच्छेहो। सव्वस्सिं चुलसीदीसहस्सरुंदो य समवट्टो।।५८।।
१०००। ८४०००। ८४०००।

कहे हुए देव उत्तरभाग में स्थित हैं।।४९।। ये देव अपने-अपने द्वीप-समुद्रों के उपरिम भाग में स्थित नगरों में बहुत प्रकार के परिवार से युक्त होकर बहुत विनोद के साथ क्रीडा करते हैं।।५०।।

इनमें से प्रत्येक की आयु एक पल्योपम व ऊँचाई दश धनुषप्रमाण है। ये सब समचतुरस्रसंस्थान से युक्त होते हुए विविध प्रकार के सुख को भोगते हैं।।५१।।

नंदीश्वर द्वीप के जिनमंदिर

जम्बूद्वीप से आठवां द्वीप भुवनविख्यात व नन्दीश्वर समुद्र से वेष्टित 'नन्दीश्वर' है।।५२।।

उस द्वीप का मण्डलाकार से विस्तार एक सौ तिरेसठ करोड़ चौरासी लाख योजनमात्र है।।५३।। १६३८४०००००।

इस द्वीप का बाह्य सूची का प्रमाण छह सौ पचपन करोड़ तेतीस लाख योजन है।।५४।। ६५५३३००००००।

नन्दीश्वरद्वीप की अभ्यन्तर परिधि का प्रमाण अंकक्रम से तीन, पाँच, सात, दो, शून्य, दो, एक, छह, तीन, शून्य और एक इन अंकों से जो संख्या उत्पन्न हो उतने योजन है।।५५।। १०३६१२०२७५३।

इसकी बाह्य परिधि दो हजार बहत्तर करोड़ तेतीस लाख चउवन हजार एक सौ नब्बै योजनमात्र है।।५६।। २०७२३३५४१९०। नन्दीश्वरद्वीप के बहुमध्यभाग में पूर्व दिशा की ओर अंजनगिरि इस नाम से प्रसिद्ध निर्मल उत्तम इन्द्रनीलमणिमय श्रेष्ठ पर्वत है।।५७।। यह पर्वत एक हजार योजन गहरा, चौरासी हजार योजन ऊँचा और सब जगह चौरासी हजार योजनमात्र विस्तार से सहित समवृत्त है।।५८।। अवगाह १०००। उत्सेध ८४०००।

---

१. तिलोयपण्णत्ति, अधिकार-५, पृ० ५३६ से ५४४ तक।

मूलम्मि य उवरिम्मि य तडवेदीओ विचित्तवणसंडा। वणवेदीओ तस्स य पुव्वोदिदवण्णणा होंति।।५९।।
चउसु दिसाभागेसुं चत्तारि दहा भवंति तग्गिरिणो। पत्तेक्कमेक्कजोयणलक्खपमाणा य चउरस्सा।।६०।।
१०००००।
जोयणसहस्सगाढा टंकुक्किण्णा य जलयरविमुक्का। फुल्लंतकमलकुवलयकुमुदवणामोदसोहिल्ला।।६१।।
१०००
णंदाणंदवदीओ णंदुत्तरणंदिघोसणामाओ। एदाओ वावीओ पुव्वादिपदाहिणकमेणं।।६२।।
असोयवणं पढमं णं सत्तच्छदचंपयाण विउणाणिं। चूदवणं पत्तेक्कं पुव्वादिदिसासु चत्तारि।।६३।।
जोयणलक्खायामा तदद्धवासा भवंति वणसंडा। पत्तेक्कं चेत्तदुमा वण्णणामजुदा वि एदाणं।।६४।।
वावीणं बहुमज्झे दधिमुहणामा भवंति दधिवण्णा। एक्केक्का वरगिरिणो पत्तेक्कं अयुदजोयणुच्छेहो।।६५।।
१००००।
तम्मेत्तवासजुत्ता सहस्सगाढम्मि वज्जसमवट्टा। ताणोवरिमतडेसुं तडवेदीवरवणाणि विविहाणिं।।६६।।
१००००। १०००।
वावीण बाहिरेसुं दोसुं कोणेसु दोण्णि पत्तेक्कं। रतिकरणामा गिरिणो कणयमया दहिमुहसरिच्छा।।६७।।
जोयणसहस्सवासा तेत्तियमेत्तोदया य पत्तेक्कं। अड्ढाइज्जसयाइं अवगाढा रतिकरा गिरिणो।।६८।।
१०००। १०००। २५०।
ते चउचउकोणेसुं एक्केक्कदहस्स होंति चत्तारि। लोयविणिच्छियकत्ता एवं णियमा परूवेंति।।६९।।
पाठान्तरम्।

विस्तार ८४०००। उसके मूल व उपरिम भाग में तटवेदियाँ व विचित्र वनखण्ड स्थित हैं। उसकी वन-वेदियों का वर्णन पूर्वोक्त वेदियों के ही समान है।।५९।। उस पर्वत के चारों ओर चार दिशाओं में चौकोण चार द्रह हैं। इनमें से प्रत्येक एक लाख योजन विस्तार वाले एवं चतुष्कोण हैं।।६०।। विस्तार १००००० योजन। फूले हुए कमल, कुवलय और कुमुदवनों की सुगन्ध से शोभित ये द्रह एक हजार योजन गहरे, टंकोत्कीर्ण एवं जलचर जीवों से रहित हैं।।६१।। गहराई १००० योजन। नन्दा, नन्दवती, नन्दोत्तरा और नन्दिघोषा नामक ये चार वापिकायें पूर्वादिक दिशाओं में प्रदक्षिण रूप से स्थित हैं।।६२।। पूर्वादिक चारों दिशाओं में से प्रत्येक में प्रथम अशोकवन, सप्तच्छद और चम्पक वन एवं आम्रवन ये चार वन हैं।।६३।। ये वनखण्ड एक लाख योजन लम्बे और इससे आधे विस्तार से सहित हैं। इनमें से प्रत्येक वन में वन के नाम से संयुक्त चैत्यवृक्ष हैं।।६४।। वापियों के बहुमध्यभाग में दही के समान वर्ण वाले एक-एक दधिमुख नामक उत्तम पर्वत हैं। इनमें से प्रत्येक पर्वत की ऊँचाई दश हजार योजन प्रमाण है।।६५।। १००००। उतने मात्र (दश हजार योजन) विस्तार से सहित उक्त पर्वत एक हजार योजन गहराई में वज्रमय व गोल हैं। इनके उपरिम तटों पर तटवेदियाँ और विविध प्रकार के वन हैं।।६६।। व्यास १००००। अवगाह १०००। वापियों के दोनों बाह्य कोनों में से प्रत्येक में दधिमुखों के सदृश सुवर्णमय रतिकर नामक दो पर्वत हैं।।६७।। प्रत्येक रतिकर पर्वत का विस्तार एक हजार योजन, इतनी ही ऊँचाई और अढ़ाई सौ योजनप्रमाण अवगाह है।।६८।। व्यास १०००। उदय १०००। अवगाह २५०। वे रतिकर पर्वत प्रत्येक द्रह के चार-चार कोनों में चार होते हैं, इस प्रकार लोकविनिश्चयकर्ता नियम से निरूपण करते हैं।।६९।। पाठान्तर।

एक्कचउक्कट्ठंजणदहिमुहरइयरगिरीण सिहरम्मि। चेट्ठदि वररयणमओ एक्केक्कजिणिंदपासादो।।७०।।
जं भद्दसालवणजिणपुराण उस्सेहपहुदि उवइट्ठं। तेरसजिणभवणाणं तं एदाणं पि वत्तव्वं।।७१।।
जलगंधकुसुमतंदुलवरचरुफलदीवधूवपहुदीणं। अच्चंते थुणमाणा जिणिंदपडिमाणि देवाणं।।७२।।
जोइसियवाणवेंतरभावणसुरकप्पवासिदेवीओ। णच्चंति य गायंति य जिणभवणेसुं विचित्तभंगेहिं।।७३।।
भेरीमद्दलघंटापहुदीणिं विविहदिव्ववज्जाणिं। वायंते देववरा जिणवरभवणेसु भत्तीए।।७४।।
एवं दक्खिणपच्छिमउत्तरभागेसु होंति दिव्वदहा। णवरि विसेसो णामा पउमिणिसंडाण अण्णण्णा।।७५।।
पुव्वादिसुं अरज्जा विरजासोका य वीदसोक त्ति। दक्खिणअंजणसेले चत्तारो पउमिणीसंडा।।७६।।
विजय त्ति वइजयंती जयंतिअपराजिदा य तुरिमाए। पच्छिमअंजणसेले चत्तारो कमलिणीसंडा।।७७।।
रम्मारमणीयाओ सुप्पहणामा य सव्वदोभद्दा। उत्तरअंजणसेले पुव्वादिसु कमलिणीसंडा।।७८।।
एक्केके पासादा चउसट्ठिवणेसु अंजणगिरीणं। धुव्वंतधयवडाया हवंति वररयणकणयमया।।७९।।
बासट्ठि जोयणाणिं उदओ इगितीस ताण वित्थारो। वित्थारसमो दीहो वेदियवरगोउरेहि परियरिओ।।८०।।
वणसंडणामजुत्ता वेंतरदेवा वसंति एदेसुं। मणिमयपासादेसुं बहुविहपरिवारपरियरिया।।८१।।
णंदीसरविदिसासुं अंजणसेला भवंति चत्तारि। रइकरमाणसरिच्छा केई एवं परूवेंति।।८२।।
वरिसे वरिसे चउविहदेवा णंदीसरम्मि दीवम्मि। आसाढकत्तिएसुं फग्गुणमासे समायंति।।८३।।

एक अंजनगिरि, चार दधिमुख और आठ रतिकर पर्वतों के शिखर पर उत्तम रत्नमय एक-एक जिनेन्द्र मन्दिर स्थित है।।७०।। भद्रशालवन के जिनपुरों की जो ऊँचाई आदि बतलाई है, वही इन तेरह जिनभवनों की भी कहना चाहिये।।७१।। इन मन्दिरों में देव जल, गन्ध, पुष्प, तंदुल, उत्तम नैवेद्य, फल, दीप और धूपादिक द्रव्यों से जिनेन्द्र प्रतिमाओं की स्तुतिपूर्वक पूजा करते हैं।।७२।। ज्योतिषी, वानव्यन्तर, भवनवासी और कल्पवासी देवों की देवियाँ इन जिनभवनों में विचित्र रीति से नाचती और गाती हैं।।७३।। जिनेन्द्रभवनों में उत्तम देव भक्ति से भेरी, मर्दल और घंटा आदि अनेक प्रकार के दिव्य बाजों को बजाते हैं।।७४।। इस प्रकार पूर्वादिशा के समान ही दक्षिण, पश्चिम और उत्तर भागों में भी दिव्य द्रह हैं। विशेष इतना है कि इन दिशाओं में स्थित कमलयुक्त वापियों के नाम भिन्न-भिन्न हैं।।७५।। दक्षिण अंजनगिरि की पूर्वादिक दिशाओं में अरजा, विरजा, अशोका और वीतशोका नामक चार वापिकायें हैं।।७६।। पश्चिम अंजनगिरि की चारों दिशाओं में विजया, वैजयन्ती, जयन्ती और चौथी अपराजिता, इस प्रकार ये चार वापिकायें हैं।।७७।। उत्तर अंजनगिरि की पूर्वादिक दिशाओं में रम्या, रमणीया, सुप्रभा और सर्वतोभद्रा नामक चार वापिकायें हैं।।७८।। अंजनगिरियों के चौंसठ वनों में फहराती हुई ध्वजापताकाओं से संयुक्त उत्तम रत्न एवं सुवर्णमय एक-एक प्रासाद हैं।।७९।। इन प्रासादों की ऊँचाई बासठ योजन और विस्तार इकतीस योजनमात्र है। विस्तार के समान लम्बाई भी इनकी इकतीस योजन प्रमाण ही है। ये सब प्रासाद उत्तम वेदिकाओं और गोपुरद्वारों से व्याप्त हैं।।८०।। इन मणिमय प्रासादों में वनखण्डों के नामों से संयुक्त व्यन्तर देव बहुत प्रकार के परिवार से व्याप्त होकर रहते हैं।।८१।। नन्दीश्वरद्वीप की विदिशाओं में रतिकर पर्वतों के सदृश परिमाण वाले चार अंजनशैल हैं, इस प्रकार भी कोई आचार्य निरूपण करते हैं।।८२।। चारों प्रकार के देव नन्दीश्वरद्वीप में प्रत्येक वर्ष आषाढ़, कार्तिक और फाल्गुन मास में आते हैं।।८३।। इस समय दिव्य विभूति से

एरावणमारूढो दिव्वविभूदीए भूसिदो रम्मो। णालियरपुण्णपाणी सोहम्मो एदि भत्तीए।।८४।।
वरवारणमारूढो वररयणविभूसणेहिं सोहंतो। पूगफलगोच्छहत्थो ईसाणिंदो वि भत्तीए।।८५।।
वरकेसरिमारूढो णवरविसारिच्छकुंडलाभरणो। चूदफलगोच्छहत्थो सणक्कुमारो वि भत्तिजुदो।।८६।।
आरूढो वरतुरयं वरभूसणभूसिदो विविहसोहो। कदलीफलसहहत्थो माहिंदो एदि भत्तीए।।८७।।
हंसम्मि चंदधवले आरूढो विमलदेहसोहिल्लो। वरकेईकुसुमकरो भत्तिजुदो एदि बम्हिंदो।।८८।।
कोंचविहंगारूढो वरचामरविविहछत्तसोहिल्लो। पप्फुल्लकमलहत्थो एदि हु बम्हुत्तरिंदो वि।।८९।।
वरचक्काआरूढो कुंडलकेयूरपहुदिदिप्पंतो। सयवंतियकुसुमकरो सुक्किदो भत्तिभरिदमणो।।९०।।
कीरविहंगारूढो महसुक्किंदो वि एदि भत्तीए। दिव्वविभूदिविभूसिददेहो वरविविहकुसुमदामकरो।।९१।।
णीलुप्पलकुसुमकरो कोइलवाहणविमाणमारूढो। वररयणभूसिदंगो सदरिंदो एदि भत्तीए।।९२।।
गरुडविमाणारूढो दाडिमफललुंबिसोहमाणकरो। जिणचलणभत्तिरत्तो एदि सहस्सारइंदो वि।।९३।।
विहगाहिवमारूढो पणसंफललुंबिलंबमाणकरो। वरदिव्वविभूदीए आगच्छदि आणदिंदो वि।।९४।।
पउमविमाणारूढो पाणदइंदो वि एदि भत्तीए। तुंबुरुफललुंबिकरो वरमंडणमंडियायारो।।९५।।
परिपक्कउच्छहत्थो कुमुदविमाणं विचित्तमारूढो। विविहालंकारधरो आगच्छदि आरणिंदो वि।।९६।।

विभूषित रमणीय सौधर्म इन्द्र हाथ में नारियल को लिये हुए भक्ति से ऐरावत हाथी पर चढ़कर यहाँ आता है।।८४।। उत्तम हाथी पर आरूढ़ और उत्कृष्ट रत्न-विभूषणों से सुशोभित ईशान इन्द्र भी हाथ में सुपाड़ी फलों के गुच्छे को लिये हुए भक्ति से यहाँ आता है।।८५।। नवीन सूर्य के सदृश कुण्डलों से विभूषित और हाथ में आम्रफलों के गुच्छे को लिये हुए सनत्कुमार इन्द्र भी भक्ति से युक्त होता हुआ उत्तम सिंह पर चढ़कर यहाँ आता है।।८६।। उत्तम भूषणों से विभूषित और विविध प्रकार की शोभा को प्राप्त माहेन्द्र श्रेष्ठ घोड़े पर चढ़कर हाथ में केलों को लिये हुए भक्ति से यहाँ आता है।।८७।। चन्द्र के समान धवल हंस पर आरूढ़, निर्मल शरीर से सुशोभित और भक्ति से युक्त ब्रह्मेन्द्र उत्तम केतकी पुष्प को हाथ में लेकर आता है।।८८।। उत्तम चँवर एवं विविध छत्र से सुशोभित और फूले हुए कमल को हाथ में लिये हुए ब्रह्मोत्तर इन्द्र भी क्रौंच पक्षी पर आरूढ़ होकर यहाँ आता है।।८९।। कुंडल एवं केयूर प्रभृति आभरणों से देदीप्यमान और भक्ति से पूर्ण मन वाला शुक्रेन्द्र उत्तम चक्रवाक पर आरूढ़ होकर सेवंती पुष्प को हाथ में लिये हुए यहाँ आता है।।९०।। दिव्य विभूति से विभूषित शरीर को धारण करने वाला तथा उत्तम एवं विविध प्रकार के फूलों की माला को हाथ में लिये हुए महाशुक्रेन्द्र भी तोता पक्षी पर चढ़कर भक्तिवश यहाँ आता है।।९१।। कोयल वाहन विमान पर आरूढ़, उत्तम रत्नों से अलंकृत शरीर से संयुक्त और नीलकमल पुष्प को हाथ में धारण करने वाला शतार इन्द्र भक्ति से प्रेरित होकर यहाँ आता है।।९२।। गरुड़विमान पर आरूढ़, अनार फलों के गुच्छे से शोभायमान हाथ वाला और जिनचरणों की भक्ति में अनुरक्त हुआ सहस्रार इन्द्र भी आता है।।९३।। विहगाधिप अर्थात् गरुड़ पर आरूढ़ और पनस अर्थात् कटहल फल के गुच्छे को हाथ में लिये हुए आनतेन्द्र भी उत्तम एवं दिव्य विभूति के साथ यहाँ आता है।।९४।। उत्तम आभरणों से मण्डित आकृति से संयुक्त और तुम्बरु फल के गुच्छे को हाथ में लिये हुए प्राणतेन्द्र भी भक्तिवश पद्म विमान पर आरूढ़ होकर यहाँ आता है।।९५।। पके हुए गन्ने को हाथ में धारण करने वाला और विचित्र कुमुद विमान पर आरूढ़ हुआ आरणेन्द्र भी विविध प्रकार के अलंकारों को धारण करके यहाँ आता है।।९६।। कटक, अंगद, मुकुट

आरूढो वरमोरं वलयंगदमउडहारसंजुत्तो। ससिधवलचमरहत्थो आगच्छदि अच्चुदाहिवई।।९७।।

णाणाविहवाहणया णाणाफलकुसुमदामभरिदकरा।
णाणविभूदिसहिदा जोइसवणभवण एंति भत्तिजुदा।।९८।।

आगच्छिय णंदीसरवरदीवजिणिंददिव्वभवणाइं। बहुविहथुदिमुहलमुहा पदाहिणाइं पकुव्वंति।।९९।।
पुव्वाए कप्पवासी भवणसुरा दक्खिणाए वेंतरया। पच्छिमदिसाए तेसुं जोइसिया उत्तरदिसाए।।१००।।
णियणियविभूदिजोग्गं महिमं कुव्वंति थोत्तबहलमुहा। णंदीसरजिणमंदिरजत्तासुं विउलभत्तिजुदा।।१०१।।
पुव्वण्हे अवरण्हे पुव्वणिसाए वि पच्छिमणिसाए। पहराणि दोण्णि दोण्णिं वरभत्तीए पसत्तमणा।।१०२।।
कमसो पदाहिणेणं पुण्णिमयं जाव अट्ठमीदु तदो। देवा विविहं पूजा जिणिंदपडिमाण कुव्वंति।।१०३।।
कुव्वंते अभिसेयं महाविभूदीहिं ताण देविंदा। कंचणफलसगदेहिं विमलजलेहिं सुगंधेहिं।।१०४।।
कुंकुमकप्पूरेहिं चंदणकालागरूहिं अण्णेहिं। ताणं विलेवणाइं ते कुव्वंते सुगंधेहिं।।१०५।।
कुंदेंदुसुंदरेहिं कोमलविमलेहिं सुरभिगंधेहिं। वरकलमतंडुलेहिं पूजंति जिणिंदपडिमाओ।।१०६।।
सयवंतगा य चंपयमाला पुण्णायणायपहुदीहिं। अच्चंति ताओ देवा सुरहीहिं कुसुममालाहिं।।१०७।।
बहुविहरसवंतेहिं वरभक्खेहिं विचित्तरूवेहिं। अमयसरिच्छेहिं सुरा जिणिंदपडिमाओ महयंति।।१०८।।
विप्फुरिदकिरणमंडलमंडिदभवणेहिं रयणदीवेहिं। णिक्कजलकलुसेहिं पूजंति जिणिंदपडिमाओ।।१०९।।
वासिददियंतरेहिं कालागरुपमुहविविहधूवेहिं। परिमलिदमंदिरेहिं महयंति जिणिंदबिंबाणिं।।११०।।

एवं हार से संयुक्त और चन्द्रमा के समान धवल चँवर को हाथ में लिये हुए अच्युतेन्द्र उत्तम मयूर पर चढ़कर यहाँ आता है।।९७।। नाना प्रकार की विभूति से सहित, अनेक फल व पुष्पमालाओं को हाथों में लिये हुए और अनेक प्रकार के वाहनों पर आरूढ़ ज्योतिषी, व्यन्तर एवं भवनवासी देव भी भक्ति से संयुक्त होकर यहाँ आते हैं।।९८।। इस प्रकार ये देव नन्दीश्वरद्वीप के दिव्य जिनेन्द्रभवनों में आकर नाना प्रकार की स्तुतियों से वाचालमुख होते हुए प्रदक्षिणायें करते हैं।।९९।। नन्दीश्वरद्वीपस्थ जिनमन्दिरों की यात्रा में बहुत भक्ति से युक्त कल्पवासी देव पूर्वदिशा में, भवनवासी दक्षिण में, व्यन्तर पश्चिमदिशा में और ज्योतिषी देव उत्तर दिशा में मुख से बहुत स्तोत्रों का उच्चारण करते हुए अपनी-अपनी विभूति के योग्य महिमा को करते हैं।।१००-१०१।। **ये देव आसक्तचित्त होकर अष्टमी से लेकर पूर्णिमा तक पूर्वाह्न, अपराह्न, पूर्वरात्रि और पश्चिमरात्रि में दो-दो प्रहर तक उत्तम भक्तिपूर्वक प्रदक्षिणक्रम से जिनेन्द्र प्रतिमाओं की विविध प्रकार से पूजा करते हैं।।१०२-१०३।। देवेन्द्र महान् विभूति के साथ इन प्रतिमाओं का सुवर्ण-कलशों में भरे हुए सुगन्धित निर्मल जल से अभिषेक करते हैं।।१०४।। वे इन्द्र कुंकुम, कर्पूर, चन्दन, कालागरु और अन्य सुगन्धित द्रव्यों से उन प्रतिमाओं का विलेपन करते हैं।।१०५।। ये कुन्दपुष्प व चन्द्रमा के समान सुन्दर, कोमल, निर्मल और सुगन्धित उत्तम कलम धान्य के तंदुलों से जिनेन्द्र प्रतिमाओं की पूजा करते हैं।।१०६।।** वे देव सेवंती, चम्पकमाला, पुंनाग और नाग प्रभृति सुगन्धित पुष्पमालाओं से उन प्रतिमाओं की पूजा करते हैं।।१०७।। ये देवगण बहुत प्रकार के रसों से संयुक्त, विचित्र रूप वाले और अमृत के सदृश उत्तम भोज्य पदार्थों से (नैवेद्य से) जिनेन्द्र प्रतिमाओं की पूजा करते हैं।।१०८।। देदीप्यमान किरणसमूह से जिनभवनों को विभूषित करने वाले और कज्जल एवं कलुषता से रहित ऐसे रत्नदीपकों से इन प्रतिमाओं की पूजा करते

दक्खादाडिमकदलीणारंगयमाहुलिंगचूदेहिं। अण्णेहिं वि पक्केहिं फलेहिं पूजंति जिणणाहं।।१११।।
णच्चंतचमरकिंकिणिविविहविताणादियाहिं वित्ताहिं। ओलंबिदहारेहिं अच्चंति जिणसेरं देवा।।११२।।
मद्दलमुयंगभेरीपडहप्पहुदीणि विविहवज्जाणिं। वायंति जिणवराणं देवा पूजासु भत्तीए।।११३।।
विविहाइ णच्चणाइं वररयणविभूसिदाओ दिव्वाओ।
कुव्वंते कण्णाओ अंति जिणिंदस्स चरिदाणिं।।११४।।
जिणचरियणालयं ते चउव्विहभिणयभंगिसोहिल्लं। आणंदेणं देवा बहुरसभावं पकुव्वंति।।११५।।
एवं जेत्तियमेत्ता जिणिंदणिलया विचित्तपूजाओ। कुव्वंति तेत्तिएसुं णिब्भरभत्तीए सुरसंघा।।११६।।

कुंडलवर द्वीप के जिनमंदिर

एक्कारसमो कोंडलणामो दीओ भवेदि रमणिज्जो। एदस्स य बहुमज्झे अत्थि गिरी कोंडलो णाम[१]।।११७।।
पण्णत्तरी सहस्सा उच्छेहो जोयणाणि तग्गिरिणो। एक्कसहस्सं गाढं णाणाविहरयणभरिदस्स।।११८।।
७५०००। १०००।
वासो वि माणुसुत्तरवासादो दसगुणो पमाणेणं। तग्गिरिणो मूलोवरि तडवेदीपहुदिजुत्तस्स।।११९।।
मू १०२२०। मज्झ ७२३०। सिहर ४२४०।

हैं।।१०९।। देवगण मंदिर एवं दिङ्मण्डल को सुगन्धित करने वाले कालागरु प्रभृति अनेक प्रकार के धूपों से जिनेन्द्र बिम्बों की पूजा करते हैं।।११०।। दाख, अनार, केला, नारंगी, मातुलिंग, आम्र तथा अन्य भी पके हुए फलों से वे जिननाथ की पूजा करते हैं।।१११।। वे देव विस्तीर्ण एवं लटकते हुए हारों से संयुक्त तथा नाचते हुए चँवर व किंकिंणियों से सहित अनेक प्रकार के चँदोवा आदि से जिनेश्वर की पूजा करते हैं।।११२।। देवगण पूजा के समय भक्ति से मर्दल, मृदंग, भेरी और पटहादि विविध प्रकार के बाजे बजाते हैं।।११३।। उत्तम रत्नों से विभूषित दिव्य कन्यायें विविध प्रकार के नृत्यों को करती हैं और अन्त में जिनेन्द्र भगवान् के चरितों (का अभिनय) को करती हैं।।११४।। वे चार प्रकार के देव आनन्द के साथ अभिनय के प्रकारों से शोभायमान बहुत प्रकार के रस–भाव वाले जिनचरित्र सम्बन्धी नाटक करते हैं।।११५।। इस प्रकार नन्दीश्वर द्वीपों में जितने **जिनेन्द्रमन्दिर** हैं, उन सबमें देवगण गाढ़ भक्ति से विचित्र पूजाएँ करते हैं।।११६।।

कुंडलवर द्वीप के जिनमंदिर

ग्यारहवाँ रमणीय कुण्डल नामक द्वीप है। इसके बहुमध्यभाग में कुण्डल नामक पर्वत है।।११७।। नाना प्रकार के रत्नों से भरे हुए इस पर्वत की ऊँचाई पचहत्तर हजार योजन और अवगाह एक हजार योजनमात्र है।।११८।। उत्सेध ७५०००। अवगाह १००० योजन। तटवेदी आदि से संयुक्त इस पर्वत का विस्तार मूल में व ऊपर मानुषोत्तर पर्वत के विस्तार प्रमाण से दश गुणा है।।११९।। मूलव्यास १०२२०। मध्यव्यास ७२३०। उपरिव्यास ४२४०। कुण्डलगिरि के ऊपर जो दिव्य बीस कूट हैं, उनके विन्यास को अनुक्रम से कहता हूँ।।१२०।।

---

१. तिलोयपण्णत्ति, अधिकार–५ पृ० ५४४ से ५४७ तक।

उवरिं कुंडलगिरिणो दिव्वाणि हवंति वीस कूडाणिं। एदाणं विण्णासं भासेमो आणुपुव्वीए।।१२०।।
पुव्वादिचउदिसासुं चउ चउ कूडाणि होंति पत्तेक्कं। ताणब्भंतरभागे एक्केक्को सिद्धवरकूडो।।१२१।।
वज्जं वज्जपहक्खं कणयं कणयप्पहं च पुव्वाए। दक्खिणदिसाए रजदं रजदप्पहसुप्पभा महप्पभयं।।१२२।।
अंकं अंकपहं मणिकूडं पच्छिमदिसाए मणिपभयं। उत्तरदिसाए रुचकं रुचकाभं हेमवंतमंदरया।।१२३।।
एदे सोलस कूडा णंदणवणवण्णिदाण कूडाणं। उच्छेहादिसमाणा पासादेहिं विचित्तेहिं।।१२४।।
एदेसिं कूडेसुं जिणभवणविभूसिदेसु रम्मेसुं। णिवसंति वेंतरसुरा णियणियकूडेहिं समणामा।।१२५।।
एक्कपलिदोवमाऊ बहुपरिवारा भवंति ते सव्वे। एदाणं णयरीओ विचित्तभवणाओ तेसु कूडेसुं।।१२६।।
चत्तारि सिद्धकूडा चउजिणभवणेहि ते पभासंते। णिसहगिरिकूडवण्णिदजिणपुरसमवासपहुदीहिं।।१२७।।
तग्गिरिवरस्स होंति दिसि विदिसासुं जिणिंदकूडाणिं। पत्तेक्कं एक्केक्के केई एवं परूवेंति।।१२८।।
पाठान्तरम्।
लोयविणिच्छयकत्ता कुंडलसेलस्स वण्णणपयारं। अवरेण सरूवेणं वक्खाणइ तं परूवेमो।।१२९।।
मणुसुत्तरसमवासो बादालसहस्सजोयणुच्छेहो। कुंडलगिरी सहस्संगाढो बहुरयणकयसोहो।।१३०।।
कूडाणं ताइं चिय णामाइं माणुसुत्तरगिरिस्स। कूडेहिं सरिच्छाणं णवरि सुराणं इमे णामा।।१३१।।
पुव्वदिसाए विसिट्ठो पंचसिरो महसिरो महाबाहू।
पउमो पउमुत्तरमहपउमो दक्खिणदिसाए वासुगिओ।।१३२।।

पूर्वादिक चार दिशाओं में से प्रत्येक में चार-चार कूट और उनके अभ्यन्तर भाग में एक-एक सिद्धवर कूट है।।१२१।। उन सोलह कूटों में से वज्र, वज्रप्रभ, कनक और कनकप्रभ ये चार पूर्व दिशा में; रजत, रजतप्रभ, सुप्रभ, और महाप्रभ ये चार दक्षिण दिशा में; अंक, अंकप्रभ, मणिकूट और मणिप्रभ ये चार पश्चिमदिशा में; तथा रुचक, रुचकाभ, हिमवान् और मंदर ये चार कूट उत्तरदिशा में स्थित हैं।।१२२-१२३।। ये सोलह कूट नन्दनवन में कहे हुए कूटों की ऊँचाई आदि तथा विचित्र प्रासादों से समान हैं।।१२४।। जिनभवन से विभूषित इन रमणीय कूटों पर अपने-अपने कूटों के सदृश नाम वाले व्यन्तर देव निवास करते हैं।।१२५।। वे सब देव एक पल्योपम प्रमाण आयु और बहुत प्रकार के परिवार से सहित होते हैं। उपर्युक्त कूटों पर विचित्र भवनों से संयुक्त इन देवों की नगरियाँ हैं।।१२६।। वे चार सिद्धकूट निषध पर्वत के सिद्धकूट पर कहे हुए जिनपुर के सदृश विस्तार व ऊँचाई आदि से सहित ऐसे चार जिनभवनों से शोभायमान होते हैं।।१२७।। इस श्रेष्ठ पर्वत की दिशा व विदिशाओं में से प्रत्येक में एक-एक जिनेन्द्रकूट है, इस प्रकार भी कोई आचार्य बतलाते हैं।।१२८।। पाठान्तर।

लोकविनिश्चयकर्ता कुण्डल पर्वत के वर्णनप्रकार का जो दूसरी तरह से व्याख्यान करते हैं, उसका यहाँ निरूपण किया जाता है।।१२९।। बहुत रत्नों से की गयी शोभा से सहित यह कुण्डल पर्वत मानुषोत्तर पर्वत के समान विस्तार वाला, बयालीस हजार योजन ऊँचा और एक हजार योजनप्रमाण अवगाह से सहित है।।१३०।। मानुषोत्तर पर्वत के कूटों के सदृश इस पर्वत पर स्थित कूटों के नाम तो वे ही हैं, परन्तु देवों के नाम ये हैं— पूर्वदिशा में विशिष्ठ (त्रिशिर), पंचशिर, महाशिर और महाबाहु; दक्षिणदिशा में पद्म, पद्मोत्तर, महापद्म और वासुकि; पश्चिम में स्थिर हृदय, महाहृदय, श्रीवृक्ष और स्वस्तिक; तथा उत्तर में सुन्दर, विशालनेत्र, पाण्डुक और पांडुर, इस प्रकार ये सोलह देव उक्त क्रम से उन कूटों पर स्थित हैं।।१३१-१३३।। वे नागेन्द्र देव एक

थिरहिदयमहाहिदया सिरिवच्छो सत्थिओ य पच्छिमदो। सुंदरविसालणेत्तं पंडुयपंडुरा य उत्तरए।।१३३।।
एक्कपलिदोवमाऊ वररयणविभूसिंदगरमणिज्जा। बहुपरिवारेहिं जुदा ते देवा होंति णागिंदा।।१३४।।
बहुविहदेवीहिं जुदा कूडोवरि तेसु भवणेसुं। णियणियविभूदिजोग्गं सोक्खं भुंजंति बहुभेयं।।१३५।।
पुव्वावरदिब्भायट्ठिदाण कूडाण अग्गभूमीए। एक्केक्का वरकूडा तडवेदीपहुदिपरियरिया।।१३६।।
जोयणसहस्सतुंगा पुह पुह तम्मेत्तमूलवित्थारा। पंचसयसिहररुंदा सगसयपण्णासमज्झवित्थारा।।१३७।।
१०००। ५००। ७५०।
ताणोवरिमपुरेसुं कोंडलदीवस्स अहिवई देवा। वितरया णियजोग्गं बहुपरिवारेहिं संजुत्ता।।१३८।।
अब्भंतरभागेसुं एदाणि जिणिंददिव्वकूडाणिं। एक्केक्काणं अंजणगिरिजिणमंदिरसमाणाणिं।।१३९।।
एक्केक्का जिणकूडा चेट्ठंते दक्खिणुत्तरदिसासुं। ताणिं अंजणपव्वयजिणिंदपासादसारिच्छा।।१४०।।
पाठान्तरम्।

रुचकवर द्वीप के जिनमंदिर

तेरहमो रुचकवरो दीवो चेट्ठेदि तस्स बहुमज्झे। अत्थि गिरि रुचकवरो कणयमओ चक्कवालेणं[1]।।१४१।।
सव्वस्स तस्स रुंदो चउसीदिसहस्सजोयणपमाणं। तम्मेत्तो उच्छेहो एक्कसहस्सं पि गाढत्तं।।१४२।।
मूलोवरिम्मि भागे तडवेदीउववगाइं चेट्ठंति। तग्गिरिणो वणवेदिप्पहुदीहिं अधियरम्माइं।।१४३।।

पल्योपममात्र आयु से सहित, उत्तम रत्नों से विभूषित शरीर से रमणीय और बहुत परिवारों से युक्त होते हैं।।१३४।। ये देव बहुत प्रकार की देवियों से युक्त होकर कूटों पर स्थित उन भवनों में अपनी-अपनी विभूति के योग्य बहुत प्रकार के सुख को भोगते हैं।।१३५।।

पूर्वापर दिग्भाग में स्थित कूटों की अग्रभूमि में तटवेदी आदिक से व्याप्त एक-एक श्रेष्ठ कूट हैं।।१३६।।

ये कूट पृथक्-पृथक् एक हजार योजन ऊँचे, इतने मात्र मूलविस्तार से सहित, पाँच सौ योजनमात्र शिखर विस्तार वाले और सात सौ पचास योजनप्रमाण मध्यविस्तार से संयुक्त हैं।।१३७।। उत्सेध १०००।

मूलविस्तार १०००। शिखरविस्तार ५००। मध्यविस्तार ७५०। इन कूटों के ऊपर स्थित भवनों में कुण्डल द्वीप के अधिपति व्यन्तरदेव अपने योग्य बहुत परिवार से संयुक्त होकर निवास करते हैं।।१३८।।

इन एक-एक कूटों के अभ्यन्तर भागों में अंजनपर्वतस्थ जिनमन्दिरों के समान दिव्य जिनेन्द्रकूट हैं।।१३९।। उनके उत्तर-दक्षिण भागों में अंजनपर्वतस्थ **जिनेन्द्रप्रासादों के सदृश एक-एक जिनकूट स्थित** हैं।।१४०।। पाठान्तर।

रुचकवर द्वीप के जिनमंदिर

तेरहवाँ द्वीप रुचकवर है। इसके बहुमध्यभाग में मण्डलाकार से सुवर्णमय रुचकवर पर्वत स्थित है।।१४१।। उस सब पर्वत का विस्तार चौरासी हजार योजन, इतनी ही ऊँचाई और एक हजार योजनप्रमाण अवगाह है।।१४२।। उस पर्वत के मूल व उपरिम भाग में वनवेदी आदिक से अधिक रमणीय तटवेदियाँ व उपवन स्थित

---

१. तिलोयपण्णत्ति, अधिकार-५, पृ. ५४७-५४८।

तग्गिरिउवरिमभागे चउदाला होंति दिव्वकूडाणिं। एदाणं विण्णासं भासेमो आणुपुव्वीए।।१४४।।
कणयं कंचणकूडं तवणं सत्थियदिसासुभद्दाणिं। अंजणमूलं अंजणवज्जं कूडाणि अट्ठ पुव्वाए।।१४५।।
पंचसयजोयणाइं तुंगा तम्मेत्तमूलविक्खंभा। तद्दलउवरिमरुंदा ते कूडा वेदिवणजुत्ता।।१४६।।
५००। ५००। २५०।
ताणोवरि भवणाणिं गोदमदेवस्स गेहसरिसाणिं। जिणभवणभूसिदाणिं विचित्तरूवाणि रेहंति।।१४७।।

रुचकवर पर्वत की देवियाँ तीर्थंकर के जन्मकल्याणक में आती हैं

एदेसु दिसाकण्णा णिवसंति णिरुवमेहिं रूवेहिं। विजया य वइजयंता जयंतणामा वराजिदया[१]।।१४८।।
णंदाणंदवदीओ णंदुत्तरणंदिसेण त्ति। भिंगारधारिणीओ ताओ जिणजम्मकल्लाणे।।१४९।।
दक्खिणदिसाए फलियं रजदं कुमुदं च णलिणपउमाणिं। चंदक्खं वेसमणं वेरुलियं अट्ठ कूडाणिं।।१५०।।
उच्छेहप्पहुदीहिं ते कूडा होंति पुव्वकूड व्व। एदेसु दिसाकण्णा वसंति इच्छासमाहारा।।१५१।।
सुपइण्णा जसधरया लच्छीणामा य सेसवदिणामा। तह चित्तगुत्तदेवी वसुंधरा दप्पणधराओ।।१५२।।
होंति यमोघं सत्थियमंदरहेमवदरज्जणामाणिं। रज्जुत्तमचंदसुदंसणाणिं पच्छिमदिसाए कूडाणिं।।१५३।।
पुव्वोदिदकूडाणं वासप्पहुदीहिं होंति सारिच्छा। एदेसुं कूडेसुं कुणंति वासं दिसाकण्णा।।१५४।।
इलणामा सुरदेवी पुढविपउमाओ एक्कणासा य। णवमी सीदा भद्दा जिणजणणीए छत्तधारीओ।।१५५।।

हैं।।१४३।। इस पर्वत के उपरिम भाग में जो चवालीस दिव्य कूट हैं, उनके विन्यास को अनुक्रम से कहता हूँ।।१४४।। कनक, कांचनकूट, तपन, स्वस्तिकदिशा, सुभद्र, अंजनमूल, अंजन और वज्र, ये आठ कूट पूर्वदिशा में हैं।।१४५।। वेदी व वनों से संयुक्त ये कूट पाँच सौ योजन ऊँचे और इतने मात्र मूलविस्तार व इससे आधे उपरिम विस्तार से सहित हैं।।१४६।। उत्सेध ५००। मूलविष्कम्भ ५००। उपरिमविष्कम्भ २५०। इन कूटों के ऊपर जिनभवनों से भूषित और विचित्र रूप वाले गौतम देव के भवन समान भवन विराजमान हैं।।१४७।।

रुचकवर पर्वत की देवियाँ तीर्थंकर के जन्मकल्याणक में आती हैं

इन भवनों में अनुपम रूप से संयुक्त विजया, वैजयन्ता, जयन्ता, अपराजिता, नन्दा, नन्दवती, नन्दोत्तरा और नन्दिषेणा नामक दिक्कन्यायें निवास करती हैं। ये जिनभगवान् के जन्मकल्याणक में झारी को धारण किया करती हैं।।१४८-१४९।। स्फटिक, रजत, कुमुद, नलिन, पद्म, चन्द्र, वैश्रवण और वैडूर्य, ये आठ कूट दक्षिणदिशा में स्थित हैं।।१५०।। ये सब कूट ऊँचाई आदिक में पूर्व कूटों के ही समान हैं। इनके ऊपर इच्छा, समाहारा, सुप्रकीर्णा, यशोधरा, लक्ष्मी, शेषवती, चित्रगुप्ता और वसुंधरा नाम की आठ दिक्कन्यायें निवास करती हैं। ये सब जिनजन्मकल्याणक में दर्पण को धारण किया करती हैं।।१५१-१५२।। अमोघ, स्वस्तिक, मन्दर, हैमवत, राज्य, राज्योत्तम, चन्द्र और सुदर्शन, ये आठ कूट पश्चिमदिशा में स्थित हैं।।१५३।। ये कूट विस्तारादिक में पूर्वोक्त कूटों के ही समान हैं। इनके ऊपर इला, सुरादेवी, पृथिवी, पद्मा, एकनासा, नवमी, सीता और भद्रा नामक दिक्कन्यायें निवास करती हैं। ये दिक्कन्यायें जिनजन्मकल्याणक में जिनमाता के ऊपर छत्र को धारण किया करती हैं।।१५४-१५५।। विजय, वैजयंत, जयंत, अपराजित, कुण्डलक, रुचक, रत्नकूट और सर्वरत्न, ये आठ

---

१. तिलोयपण्णत्ति, अधिकार-५ पृ० ५४८ से ५५१ तक।

विजयं च वइजयंतं जयंतमपराजिदं च कुंडलयं।
रुजगक्खरयणकूडाणि सव्वरयण त्ति उत्तरदिसाए।।१५६।।
एदे वि अट्ठ कूडा सारिच्छा होंति पुव्वकूडाणं। तेसुं पि दिसाकण्णा अलंबुसामिस्सकेसीओ।।१५७।।
तह पुंडरीकिणी वारुणि त्ति आसा य सच्चणामा य। हिरिया सिरिया देवी एदाओ चमरधारीओ।।१५८।।
एदाणं वेदीणं अब्भंतरचउदिसासु चत्तारि। महकूडा चेट्ठंते पुव्वोदिदकूडसारिच्छा।।१५९।।
णिच्चुज्जोवं विमलं णिच्चालोयं सयंपहं कूडं। उत्तरपुव्वदिसासुं दक्खिणपच्छिमदिसासु कमा।।१६०।।
सोदाविणि त्ति कणया सदपददेवी य कणयचेत्त त्ति।
उज्जोवकारिणीओ दिसासु जिणजम्मकल्लाणे।।१६१।।
तक्कूडब्भंतरए कूडा पुव्वुत्तकूडसारिच्छा। वेरुलियरुचकमणिरज्जउत्तमा पुव्वपहुदीसुं।।१६२।।
तेसुं पि दिसाकण्णा वसंति रुचका तहा रुचककित्ती। रुचकादीकंतपहा जाणंति जिणजातकम्माणिं।।१६३।।
पल्लपमाणाउठिदी पत्तेक्कं होदि सयलदेवीणं। सिरिदेवीए सरिच्छा परिवारा ताण णादव्वा।।१६४।।

रुचकवर पर्वत के जिनमंदिर

तक्कूडब्भंतरए चत्तारि हवंति सिद्धकूडाणिं। पुव्वसमाणं णिसहद्दिदजिणपुरसरिसजिणणिकेदाणिं।।१६५।।
दिसविदिसं तब्भाए चउ चउ अट्ठाणि सिद्धकूडाणिं। उच्छेदप्पहुदीए णिसहसमा केइ इच्छंति।।१६६।।
लोयविणिच्छयकत्ता रुचकवरद्दिस्स वण्णणपयारं। अण्णेण सरूवेणं वक्खाणइ तं पयासेमि।।१६७।।

कूट उत्तरदिशा में स्थित हैं।।१५६।। ये भी आठ कूट पूर्वकूटों के ही सदृश हैं। इनके ऊपर भी अलंभूषा, मिश्रकेशी, पुण्डरीकिणी, वारुणी, आशा, सत्या, ह्री और श्री नाम की आठ दिक्कन्यायें निवास करती हैं। जिनजन्मकल्याणक में ये सब चँवरों को धारण किया करती हैं।।१५७-१५८।। इन कूटों की वेदियों के अभ्यन्तर चार दिशाओं में पूर्वोक्त कूटों के सदृश चार महाकूट स्थित हैं।।१५९।। नित्योद्योत, विमल, नित्यालोक और स्वयंप्रभ ये चार कूट क्रम से उत्तर, पूर्व, दक्षिण और पश्चिम दिशा में स्थित हैं।।१६०।। सौदामिनी, कनका, शतपदा (शतह्रदा) और कनकचित्रा, ये चार देवियाँ इन कूटों पर स्थित होती हुई जिनजन्मकल्याणक में दिशाओं को निर्मल किया करती हैं।।१६१।। इन कूटों के अभ्यन्तर भाग में पूर्वोक्त कूटों के सदृश वैडूर्य, रुचक, मणि और राज्योत्तम नामक चार कूट पूर्वादिक दिशाओं में स्थित हैं।।१६२।। उन कूटों पर भी रुचका, रुचककीर्ति, रुचककांता और रुचकप्रभा, ये चार दिक्कन्यायें निवास करती हैं। ये कन्यायें जिनभगवान् के जातकर्मों को जानती हैं।।१६३।। इन सब देवियों में से प्रत्येक की आयु एक पल्यप्रमाण होती है। उनके परिवार श्रीदेवी के समान जानना चाहिये।।१६४।।

रुचकवर पर्वत के जिनमंदिर

इन कूटों के अभ्यन्तर भाग में चार सिद्धकूट हैं, जिन पर पहले के समान ही निषधपर्वतस्थ जिनभवनों के सदृश जिनमन्दिर विद्यमान हैं।।१६५।। कोई आचार्य ऊँचाई आदिक में निषध पर्वत के समान ऐसे दिशाओं में चार और विदिशाओं में चार इस प्रकार आठ सिद्धकूटों को स्वीकार करते हैं।।१६६।। लोकविनिश्चयकर्ता रुचकवर पर्वत के वर्णन प्रकार का अन्य प्रकार से व्याख्यान करते हैं, उसको यहाँ दिखलाता हूँ।।१६७।। रुचकवर पर्वत अंजनगिरि के समान ऊंचा, बयालीस हजार योजन विस्तार वाला और सर्वत्र दश के घन (एक हजार)

होदि गिरि रुचकवरो रुंदो अंजणगिरिंदसमउदओ।
बादालसहस्साणिं वासो सव्वत्थ दसधणो गाढो।।१६८।।
८४०००। ४२०००। १०००।

कूडा णंदावत्तो सत्थियसिरिवच्छवड्ढमाणक्खा। तग्गिरिपुव्वदिसाए सहस्सरुंदं तदद्धउच्छेहो।।१६९।।

एदेसु दिग्गजिंदा देवा णिवसंति एक्कपल्लाऊ। णामेहिं पउमुत्तरसुभद्दणीलंजणगिरीओ।।१७०।।

तक्कूडब्भंतरए वरकूडा चउदिसासु अट्ठट्ठा। चेट्ठंति दिव्वरूवा सहस्सरुंदा तदद्धउच्छेहा।।१७१।।

१०००। ५००।

पुव्वोदिदणामजुदा एदे बत्तीस रुचकवरकूडा। तेसु य दिसायकण्णा ताइं चिय ताण णामाणिं।।१७२।।

होंति हु ईसाणादिसु विदिसासुं दोण्णि दोण्णि वरकूडा। वेरुलियमणीणामा रुचका रयणप्पहा णामा।।१७३।।

रयणं च संखरयणा रुचकुत्तमरयणउच्चका कूडा। एदे पदाहिणेणं पुव्वोदिदकूडसारिच्छा।।१७४।।

तेसु दिसाकण्णाणं महत्तरीओ कमेण णिवसंति। रुचका विजया रुचकाभा वइजयंति रुचककंता।।१७५।।

तह य जयंती रुचकुत्तमा य अपराजिदा जिणिंदस्स। कुव्वंति जातकम्मं एदाओ परमभत्तीए।।१७६।।

विमला णिच्चालोका सयंपहा तह य णिच्चउज्जोवा। चत्तारो वरकूडा पुव्वादिपदाहिणा होंति।।१७७।।

तक्कूडब्भंतरए चत्तारि भवंति सिद्धवरकूडा। पुव्वादिसु पुव्वसमा अंजणजिणगेहसरिसजिणगेहा।।१७८।।

पाठान्तरम्।

योजनप्रमाण अवगाह से सहित है।।१६८।। उत्सेध ८४०००। व्यास ४२०००। अवगाह १०००। इस पर्वत की पूर्वदिशा से लेकर नन्द्यावर्त, स्वस्तिक, श्रीवृक्ष और वर्धमान नामक चार कूट हैं। इन कूटों का विस्तार एक हजार योजन और ऊँचाई इससे आधी है।।१६९।। इन कूटों पर एक पल्यप्रमाण आयु के धारक पद्मोत्तर, सुभद्र, नील और अंजनगिरि नामक चार दिग्गजेन्द्र देव निवास करते हैं।।१७०।। इन कूटों के अभ्यन्तर भाग में एक हजार योजन विस्तार वाले और इससे आधे ऊँचे चारों दिशाओं में आठ-आठ दिव्य रूप वाले उत्तम कूट स्थित हैं।।१७१।। विस्तार १०००। उत्सेध ५००। ये बत्तीस रुचकवरकूट पूर्वोक्त नामों से युक्त हैं। इन पर जो दिक्कन्यायें रहती हैं, उनके नाम भी वे (पूर्वोक्त) ही हैं।।१७२।। वैडूर्य, मणिप्रभ, रुचक, रत्नप्रभ, रत्न, शंखरत्न (सर्वरत्न), रुचकोत्तम और रत्नोच्चय, इन पूर्वोक्त कूटों के सदृश कूटों में दो-दो उत्तम कूट प्रदक्षिण क्रम से ईशानादि विदिशाओं में स्थित हैं।।१७३-१७४।। इन कूटों पर क्रम से रुचका, विजया, रुचकाभा, वैजयन्ती, रुचककान्ता, जयन्ती, रुचकोत्तमा और अपराजिता, ये दिक्कन्याओं की महत्तरियाँ (प्रधान) निवास करती हैं। ये सब उत्कृष्ट भक्ति से जिनेन्द्रभगवान् के जातकर्म को किया करती हैं।।१७५-१७६।। विमल, नित्यालोक, स्वयंप्रभ तथा नित्योद्योत, ये चार उत्तम कूट पूर्वादिक दिशाओं में प्रदक्षिणरूप से स्थित हैं।।१७७।। इन कूटों के अभ्यन्तर भाग में **चार सिद्धवर कूट** हैं, जिनके ऊपर पहले के ही समान अंजनपर्वतस्थ जिनभवनों के सदृश जिनालय स्थित हैं।।१७८।। पाठान्तर।

जंबूद्वीप में सुमेरु पर्वत कहाँ है ?

विदेह क्षेत्र का वर्णन[१]

निषध पर्वत के बाद इस पर्वत से दूने विस्तार वाला विदेह क्षेत्र है। विदेह क्षेत्र का विस्तार ३३६८४ योजन, (१३४७३६८४२-२/१९ मील) है।

निषध पर्वत के उत्तर भाग में दोनों पर्वतों के मध्य भाग में विदेह क्षेत्र है। इस विदेह क्षेत्र के बीचोंबीच में सुमेरु पर्वत स्थित है। इसके सुदर्शन, मेरु, मन्दर पर्वत आदि अनेकों नाम हैं। इस सुमेरु पर्वत के निमित्त से विदेह क्षेत्र के दो भेद हो गये हैं पूर्व विदेह और पश्चिम विदेह। पुनः सीता नदी और सीतोदा नदी के निमित्त से पूर्व विदेह और पश्चिम विदेह के भी दक्षिण उत्तर के भेद से दो-दो भेद हो गये हैं।

सुमेरु पर्वत का वर्णन

विदेह क्षेत्र के बीचोंबीच में दोनों कुरु क्षेत्रों के समीप से निन्यानवे हजार चालीस योजन ऊँचा सुमेरु पर्वत स्थित है। इसकी नींव एक हजार योजन नीचे है। इस मेरु का विस्तार नींव के तलभाग में १००९०-१०/११ योजन प्रमाण है। ऊपर में भद्रशाल वन के पास में इस मेरु का विस्तार दस हजार योजन है।

इस भद्रशाल वन में मेरु की परिधि ३१६२२ योजन, ३ कोस, २१२ धनुष ३ हाथ, १३ अंगुल प्रमाण है।

मेरु पर्वत के ऊपर ५०० योजन जाकर नन्दनवन स्थित है। इस नन्दनवन का विस्तार भी चारों तरफ (कटनी रूप से) ५०० योजन प्रमाण है। नन्दनवन के ६२५०० योजन ऊपर जाकर सौमनस नामक वन स्थित है। इसका विस्तार भी चारों तरफ ५०० योजन प्रमाण है। इस सौमनस वन से ३६००० योजन ऊपर जाकर मेरु के शिखर पर पांडुकवन स्थित है। इस पांडुकवन की कटनी का विस्तार ४९४ योजन प्रमाण है, इसके ठीक मध्य में ४० योजन प्रमाण ऊँची मेरु पर्वत की चूलिका स्थित है।

सुमेरु पर्वत का भद्रशाल वन के पास विस्तार	— १०००० योजन।
भद्रशाल से नंदनवन तक ऊँचाई	— ५०० योजन।
नंदनवन से सौमनस की ऊँचाई	— ६२५०० योजन।
सौमनस से पांडुक की ऊँचाई	—३६००० योजन।
चूलिका की ऊँचाई	— ४० योजन है।

यह मेरु पर्वत क्रम से हानिरूप होता हुआ पृथ्वी से ५०० योजन ऊपर जाकर उस स्थान में युगपत् ५०० योजन प्रमाण संकुचित हो गया है। इस ५०० योजन की कटनी को ही नंदनवन कहते हैं। इसके ऊपर ग्यारह योजन तक समान विस्तार है अर्थात् पाँच सौ योजन के बाद अंदर में पाँच सौ योजन की कटनी हो जाने से ११ योजन की हानि का क्रम यहाँ ११००० योजन तक नहीं रहा है। पुनः वही घटने का क्रम ५१५०० योजन तक होता गया है। इस ५१५०० योजन प्रमाण ऊपर जाने पर पुनः वह पर्वत सब ओर से युगपत् ५०० योजन संकुचित हो गया है। इस कटनी का नाम सौमनस वन है। पुनरपि इसके आगे ११००० योजन ऊपर तक सर्वत्र समान विस्तार है। फिर क्रम से हानिरूप होकर २५००० योजन जाने पर वह पर्वत युगपत् ४९४ योजन प्रमाण संकुचित हो गया

१.त्रिलोकभास्कर पृ. ९४ से ९९ तक।

है। इस प्रकार से सम्पूर्ण पर्वतों के स्वामी और उत्तम देवों के आलयस्वरूप इस अनादिनिधन मेरु पर्वत की ऊँचाई १ लाख ४० योजन प्रमाण है।

नीव नंदन समविस्तार सौमनस समविस्तार पांडुक

१००० + ५०० + ११००० + ५१५०० + ११००० + २५००० = १००००० योजन एवं इसकी चूलिका ४० योजन प्रमाण है।

सुमेरु पर्वत के वर्ण का कथन

यह सुमेरु पर्वत मूल में एक हजार प्रमाण वज्रमय, पृथ्वीतल से इकसठ हजार योजन प्रमाण उत्तम रत्नमय, आगे अड़तीस हजार योजन प्रमाण सुवर्णमय है एवं ऊपर की चूलिका नीलमणि से बनी हुई है।

सुमेरु पर्वत की हानि-वृद्धि का क्रम

मेरु का विस्तार भूमि के ऊपर भद्रशाल वन में १०००० योजन प्रमाण है। यही विस्तार ९९००० योजन ऊपर जाकर क्रमशः हीन होता हुआ १००० योजन मात्र रह गया है। अतएव 'भूमि में से मुख को कम करके शेष को ऊँचाई से भाजित करने पर हानि-वृद्धि का प्रमाण होता है।' इस नियम के अनुसार यहाँ हानि-वृद्धि का प्रमाण इस प्रकार प्राप्त होता है—नीचे के प्रमाण को 'भूमि' एवं ऊपर के प्रमाण को 'मुख' कहते हैं। यथा—१००००-१००० = ९०००, ९००० ÷ ९९००० = १/११ योजन। मेरु के विस्तार में एक योजन की ऊँचाई पर भूमि की ओर से हानि और मुख की ओर से वृद्धि होती गयी है। यहाँ मेरु पर्वत के विस्तार में मूलतः १ प्रदेश से लेकर ११ प्रदेशों पर १ प्रदेश की हानि होती हुई है इसी प्रकार से मूलतः ११ अंगुलों पर १ अंगुल की, ११ हाथ पर १ हाथ की, ११ योजन पर १ योजन की हानि होती गयी है एवं ११००० योजन की ऊँचाई पर १००० योजन घटता है अतः ९९००० योजन की ऊँचाई पर अर्थात् पांडुकवन के पास १००० योजन मात्र रह जाता है।

यथा—

चूँकि ११००० योजन में घटता है १००० योजन।

इसलिये १ योजन में घटता है १०००/११०००

इसलिये ९९००० योजन में घटता है १०००/११००० × ९९००० = ९००० योजन

चूलिका का वर्णन

इस मेरु पर्वत की चूलिका की ऊँचाई का प्रमाण ४० योजन, नीचे पांडुकवन में चौड़ाई १२ योजन, मध्य में ८ योजन एवं शिखर के अग्रभाग में ४ योजन मात्र है। एक योजन २००० कोश का है और एक कोश में दो मील मानने से यह चूलिका का अग्रभाग ४ को ४००० से गुणा करने पर १६००० मील प्रमाण है। यथा—४ × ४००० = १६००० मील। इस पर्वत की परिधि क्रमशः नीचे से हरितालमयी, वैडूर्य-मणिमयी, रत्नमयी, वज्रमयी, इसके ऊपर पद्ममयी और इससे भी ऊपर पद्मरागमयी है। मंदर पर्वत की इन ६ परिधियों में से प्रत्येक परिधि का प्रमाण १६५०० योजन मात्र है। इस पर्वत की सातवीं परिधि नाना प्रकार के वृक्ष समूहों से व्याप्त और बाहर से ग्यारह प्रकार है। ये ग्यारह भेद क्रमशः ये हैं—भद्रशाल वन में नाम से भद्रशाल, मानुषोत्तर, देवरमण, नागरमण और भूतरमण ये पाँच वन हैं। नंदनवन में नंदन और उपनंदन वन, सौमनस में सौमनस और

उपसौमनस वन, पाण्डुकवन में पांडुक और उपपांडुक वन हैं—सौमनस तथा नंदनवन मेरु पर्वत के सानुकटनी प्रदेशों में और चौथा भद्रशाल वन भूमि पर स्थित है।

मेरु पर्वत के शिखर का विस्तार

शिखर का विस्तार १००० योजन और उसकी परिधि ३१६२ योजन से कुछ अधिक है। यहाँ पांडुकवन की कटनी ४९४ योजन है अतः बीच में बचे १२ योजन जो कि चूलिका की चौड़ाई है।

सुमेरु की कटनी के स्थान का प्रमाण

सम भूमितल में भद्रशाल वन के पास विस्तार १०,००० योजन प्रमाण है, क्रम से घटते हुए नंदनवन के पास बाह्य भाग में ९९५४-६/११ योजन है। नन्दन वन के अभ्यंतर भाग में ९९५४-६/११ योजन प्रमाण है। आगे क्रम से घटते हुए सौमनस वन के पास बाह्य भाग में ४२७२-८/११ योजन एवं उसी वन के अभ्यंतर भाग में ३२७२-८/११ योजन है। आगे घटते-घटते पांडुकवन के बाह्य भाग में १००० योजन एवं अभ्यंतर भाग में ४९४ योजन की कटनी होने से १२ योजन मात्र रह गया है जो कि चूलिका का विस्तार मात्र है।

पाण्डुकवन का वर्णन

पांडुकवन में चारों ओर मार्ग एवं अट्टालिकाओं से विशाल और अनेक प्रकार की ध्वजापताकाओं से संयुक्त ऐसी अतिरमणीय दिव्य तटवेदी हैं अर्थात् पांडुकवन के तट पर चारों तरफ परकोटे के समान वेष्टित किये हुए वेदी है उसके गोपुरों पर रत्नमय देवभवन हैं। उस वेदी के मध्य में पर्वत की चूलिका को चारों ओर से वेष्टित किये हुये पांडुक नामक वनखण्ड हैं, इन वनखंडों में कर्पूर, तमाल, ताल, कदली, लवंग, दाडिम, पनस, सप्तच्छद, नील, चंपक, नारंगी, मातुलिंग, पुन्नाग, नाग, कुब्जक, अशोक आदि वृक्ष शोभायमान हैं।

इस पाण्डुकवन में चारों दिशाओं में चार चैत्यालय और चारों ही विदिशाओं में चार शिलायें स्थित हैं। इन शिलाओं के नाम क्रम से पांडुकशिला, पाण्डुकम्बला, रक्ताशिला और रक्तकंबला हैं।

इसी प्रकार सौमनस, नंदन व भद्रशाल वन में भी चार दिशाओं में **चार-चार चैत्यालय** हैं।

जंम्बूद्वीप का संक्षिप्त अवलोकन

जंबूद्वीप का सामान्य वर्णन[१]

जंबूद्वीप के भीतर दक्षिण की ओर भरतक्षेत्र है। उसके आगे हैमवत,हरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यवत और ऐरावत ये सात क्षेत्र हैं। हिमवान, महाहिमवान्, निषध, नील, रुक्मि और शिखरी ये छह पर्वत हैं।

दक्षिण में भरतक्षेत्र का विस्तार ५२६- ६/१९ योजन है। भरतक्षेत्र से दूना हिमवान पर्वत है, उससे दूना हैमवत क्षेत्र हैं। ऐसे विदेहक्षेत्र तक दूना-दूना विस्तार है पुनः आगे आधा-आधा है।

भरतक्षेत्र के मध्य में पूर्व-पश्चिम लंबा समुद्र को स्पर्श करता हुआ विजयार्ध पर्वत है।

हिमवान आदि छह कुलाचलों पर क्रम से पद्म, महापद्म, तिगिंछ, केशरी, पुंडरीक और महापुंडरीक ऐसे छह सरोवर हैं।

---

१. जम्बूद्वीप पुस्तक से पृ० १९।

इन छह सरोवरों से गंगा-सिंधु, रोहित—रोहितास्या, हरित-हरिकांता, सीता-सीतोदा, नारी-नरकांता, सुवर्णकूला-रूप्यकूला और रक्ता-रक्तोदा ये चौदह नदियां निकलती हैं जो कि एक-एक क्षेत्र में दो-दो नदी बहती हुई सात क्षेत्रों में बहती हैं।

विदेहक्षेत्र के बीचोंबीच में सुमेरु पर्वत

भरतक्षेत्र के छह खंड—हिमवान पर्वत के पद्मसरोवर से गंगा-सिंधु नदियां निकलकर नीचे कुंड में गिरकर विजयार्ध पर्वत की गुफाओं में प्रवेश करके दक्षिण भरत में आ जाती हैं और पूर्व-पश्चिम समुद्र में प्रवेश कर जाती हैं इसलिये भरतक्षेत्र के छह खंड हो जाते हैं।

इस प्रकार से जंबूद्वीप की यह सामान्य व्यवस्था है। इस जंबूद्वीप में तीन सौ ग्यारह पर्वत हैं जिनमें एक मेरु, छह कुलाचल, चार गजदंत, सोलह वक्षार, चौंतीस विजयार्ध, चौंतीस वृषभाचल, चार नाभिगिरि, चार यमकगिरि, आठ दिग्गजेंद्र और दो सौ कांचनगिरि हैं। यथा—

१+६+४+१६+३४+३४+४+४+८+२००=३११

सत्रह लाख बानवे हजार नब्बे नदियां हैं। चौंतीस कर्मभूमि, छह भोगभूमि, जम्बू- शाल्मलि ऐसे दो वृक्ष, चौंतीस आर्यखण्ड, एक सौ सत्तर म्लेच्छ खंड और पांच सौ अड़सठ कूट हैं।

तीन सौ ग्यारह पर्वत कहाँ हैं[१]

सुमेरु पर्वत विदेह के मध्य में है। छह कुलाचल-सात क्षेत्रों की सीमा करते हैं। चार गजदंत मेरु की विदिशा में हैं। सोलह वक्षार विदेह क्षेत्र में हैं। बत्तीस विजयार्ध बत्तीस विदेह देश में हैं और दो विजयार्ध, भरत और ऐरावत में एक-एक हैं अतः चौंतीस विजयार्ध हैं। बत्तीस विदेह के ३२, भरत-ऐरावत के दो ऐसे चौंतीस वृषभाचल हैं। हैमवत, हरि तथा रम्यक और हैरण्यवत में एक-एक नाभिगिरि ऐसे चार नाभिगिरि हैं।सीता नदी के पूर्व-पश्चिम तट पर एक-एक ऐसे चार यमकगिरि हैं। देवकुरु-उत्तरकुरु में दो-दो तथा पूर्व-पश्चिम भद्रसाल में दो-दो ऐसे आठ दिग्गज पर्वत हैं। सीता-सीतोदा के बीच बीस सरोवरों में प्रत्येक सरोवर के दोनों तटों पर पाँच-पाँच होने से दो सौ कांचनगिरि हैं।

विशेष—इनमें से सुमेरु के १६, कुलाचल के ६, गजदंत के ४, वक्षार के १६, विजयार्थ के ३४ ऐसे १६ + ६ + ४ + १६ + ३४ = ७६ ऐसे ७६ जिनमंदिरों में जंबू-शाल्मलि वृक्ष के २ मंदिर लेने से जंबूद्वीप के अकृत्रिम ७८ जिनमंदिर होते हैं। शेष पर्वतों के ऊपर देवभवनों में भी जिनमंदिर हैं, वे व्यंतर देवों के जिनमंदिर कहलाते हैं।

जम्बूद्वीप में ५६८ कूट हैं

उनका स्पष्टीकरण—

१. हिमवान् आदि छह कुलाचल के क्रमशः —

हिमवान-शिखरी पर्वत के ११ + ११

महाहिमवान-रुक्मी के ८ + ८

१. जम्बूद्वीप पुस्तक, पृ. ५४।

निषध-नील के ९ + ९

ये २२ + १६ + १८ = ५६ हैं।

२. विदेह क्षेत्र के ३२ विजयार्ध एवं भरत-ऐरावत के २ ऐसे ३४ विजयार्ध पर्वत के ९-९ कूट ऐसे ३४ × ९ = ३०६ हैं।

३. सोलह वक्षार पर्वत के ४ - ४ ऐसे १६ × ४ = ६४ हैं।

४. चार गजदंत के क्रमशः—९ + ७ + ९ + ७ ऐसे = ३२ हैं।

५. सुमेरुपर्वत के नंदनवन व सौमनसवन में ९ + ९ ऐसे = १८ हैं।

६. गंगा-सिंधु आदि चौदह नदियों के १४ कूट हैं जिन पर गंगा आदि देवियों के महल की छत पर जटाजूट सहित अकृत्रिम जिनप्रतिमायें हैं उन पर ही ये गंगा आदि नदियाँ अभिषेक करते हुये जैसी गिरती हैं। ऐसे गंगा आदि १४ नदियों के = १४ हैं।

७. हिमवान आदि छह पर्वतों के ऊपर पद्म, महापद्म आदि छह सरोवरों में १३ - १३ कूट हैं। ऐसे ६ × १३ = ७८ हैं।

७. हिमवान आदि छह पर्वतों के ऊपर पद्म, महापद्म आदि छह सरोवरों में १३ - १३ कूट हैं। ऐसे ६ × १३ = ७८ हैं।

ये सब कुल मिलाकर ५६ + ३०६ + ६४ + ३२ + १८ + १४ + ७८ = ५६८ कूट होते हैं।

विशेष—इनमें से छह कुलाचलों के एक-एक सिद्धकूट, चार गजदंत के एक-एक सिद्धकूट, सोलह वक्षार के एक-एक सिद्धकूट और चौंतीस विजयार्ध के एक-एक सिद्धकूट ऐसे—६ + ४ + १६ + ३४ = ६० ऐसे सिद्धकूटों पर जंबूद्वीप के ७८ जिनमंदिर में से ६० जिनमंदिर हैं। शेष सभी कूटों पर देवभवनों में जिनमंदिर हैं। उनकी गणना व्यंतर देवों के मंदिरों में होती है। इन्हीं ६० जिनमंदिरों में सुमेरु के १६ एवं जंबूवृक्ष-शाल्मलीवृक्ष के २ मिलाने से ७८ अकृत्रिम जिनमंदिर जंबूद्वीप के होते हैं।

जंबूद्वीप की संपूर्ण नदियां कितनी हैं और कहाँ कहाँ हैं?[१]

भरतक्षेत्र की गंगा-सिंधु २+ इनकी सहायक नदियां २८०००+हैमवतक्षेत्र की रोहित-रोहितास्या २+ इनकी सहायक नदियां ५६०००+ हरिक्षेत्र की हरित्-हरिकांता २+ इनकी सहायक नदियां १,१२०००+ विदेहक्षेत्र की सीता-सीतोदा २+ इनकी सहायक नदियां १६,८००० (८४०००×२) + विभंगा नदी १२ + इनकी सहायक नदियां ३३,६००० (२८०००×१२) बत्तीस विदेह देशों की गंगा-सिंधु और रक्ता-रक्तोदा नाम की ६४+ इनकी सहायक नदियां ८९६००० (१४०००×६४)। रम्यकक्षेत्र की नारी-नरकांता २ + इनकी सहायक नदियां ११,२०००+ हैरण्यवत क्षेत्र की सुवर्णकूला २+ इनकी सहायक नदियां ५६०००+ ऐरावत क्षेत्र की रक्ता-रक्तोदा २+ इनकी सहायक नदियां २८०००= १७,९२,०९०।

अर्थात् सम्पूर्ण जंबूद्वीप में सत्रह लाख, बानवे हजार, नब्बे नदियां हैं। इनमें विदेह की नदियां चौदह लाख अठहत्तर हैं। सीता-सीतोदा की जो परिवार नदियाँ हैं, वे देवकुरु-उत्तरकुरु में ही बहती हैं। आगे पूर्वविदेह-पश्चिम

१. जम्बूद्वीप पुस्तक से पृ० ५४ से ५७ तक।

विदेह में विभंगा तथा गंगा-सिंधु और रक्ता-रक्तोदा हैं। जितनी परिवार नदियां हैं वे सभी अपने-अपने कुण्डों से उत्पन्न होती हैं।

चौंतीस कर्मभूमि

भरतक्षेत्र के आर्यखंड की एक कर्मभूमि, वैसे ही ऐरावत क्षेत्र के आर्यखंड की एक कर्मभूमि तथा बत्तीस विदेहों के आर्यखंड की ३२ कर्मभूमि ऐसे चौंतीस कर्मभूमि हैं। इनमें से भरत-ऐरावत में षट्काल परिवर्तन होने से ये दो अशाश्वत कर्मभूमि हैं एवं विदेहों में सदा ही कर्मभूमि व्यवस्था होने से वे शाश्वत कर्मभूमि हैं।

छह भोगभूमि

हैमवत और हैरण्यवत में जघन्य कर्मभूमि की व्यवस्था है। वहाँ पर मनुष्यों के शरीर की ऊँचाई एक कोस है, एक पल्य आयु है और युगल ही जन्म लेते हैं, युगल ही मरते हैं। दस प्रकार के कल्पवृक्षों से भोग सामग्री प्राप्त करते हैं।

हरिवर्ष क्षेत्र और रम्यक क्षेत्र में मध्यम भोगभूमि की व्यवस्था है। वहाँ पर दो कोस ऊँचे, दो पल्य आयु वाले मनुष्य होते हैं। ये भी भोग सामग्री को कल्पवृक्षों से प्राप्त करते हैं।

देवकुरु-उत्तरकुरु क्षेत्र में उत्तम भोगभूमि की व्यवस्था है। यहाँ पर तीन कोस ऊंचे, तीन पल्य की आयु वाले मनुष्य होते हैं। ये छहों भोगभूमियां शाश्वत हैं,यहाँ पर परिवर्तन कभी नहीं होता है।

जंबूवृक्ष-शाल्मलिवृक्ष

उत्तरकुरु में ईशान दिशा में जंबूवृक्ष एवं देवकुरु में नैऋत्य दिशा में शाल्मलिवृक्ष हैं।

चौंतीस आर्यखंड

एक भरत में, एक ऐरावत में और बत्तीस विदेहदेशों में बत्तीस ऐसे आर्यखंड चौंतीस हैं।

एक सौ सत्तर म्लेच्छखंड

भरत क्षेत्र के पाँच, ऐरावत क्षेत्र के पाँच और बत्तीस विदेह के प्रत्येक के पाँच-पाँच ५+५+ (३२×५) =१७० म्लेच्छ खंड हैं।

वेदी और वनखंड

जंबूद्वीप में ३११ पर्वत हैं,उनके आजू-बाजू या चारों तरफ मणिमयी वेदियां हैं और वनखंड हैं।

नब्बे कुंड प्रमुख हैं—गंगादि १४ नदियां जहां गिरती हैं वहाँ के १४, विभंगा नदियों की उत्पत्ति के १२, विदेह की गंगादि-रक्तादि ६४ नदियों की उत्पत्ति के ६४ ऐसे १४+ १२+ ६४=९० कुंड हैं। इनके चारों तरफ उतनी ही वेदी और वनखंड हैं।

२६ सरोवर हैं—कुलाचल के ६ + सीता-सीतोदा के २०=२६। इनके चारों तरफ ही वनखंड हैं। जितनी नदियां हैं उनके दोनों पार्श्व भागों में अर्थात् १७९२०९०×२ =३५८४१८० मणिमयी वेदिका हैं और उतने ही वनखंड हैं।

इन वेदियों की ऊँचाई आधा योजन और विस्तार पाँच सौ धनुष प्रमाण है। सर्वत्र वनखंड आधा योजन चौड़े हैं।

जंबूद्वीप के अठहत्तर जिनचैत्यालय

सुमेरु के चार वन संबंधी १६ + छह कुलाचल के ६ + चार गजदंत के ४+ सोलह वक्षार के १६+ चौंतीस विजयार्ध के ३४ +जंबू शाल्मलि वृक्ष के २ =७८। ये जंबूद्वीप के अठहत्तर चैत्यालय हैं। इनमें प्रत्येक में १०८-१०८ जिनप्रतिमायें विराजमान हैं उनको मेरा मन, वचन, काय से नमस्कार होवे।

इस जंबूद्वीप में हम कहाँ हैं ?

यह भरतक्षेत्र जंबूद्वीप के १९० वें भाग (५२६-६/१९ योजन) प्रमाण है। इसके छह खंड में जो आर्यखंड है उसका प्रमाण लगभग निम्न प्रकार है।

दक्षिण का भरतक्षेत्र २३८-३/१९ योजन का है। पद्मसरोवर की लम्बाई १००० योजन है तथा गंगा-सिंधु नदियां ५-५ सौ योजन पर्वत पर पूर्व-पश्चिम बहकर दक्षिण में मुड़ती हैं। यह आर्यखंड उत्तर-दक्षिण में २३८ योजन चौड़ा है। पूर्व-पश्चिम में १०००+ ५००+५००=२०००योजन लम्बा है। इनको आपस में गुणा करने से २३८×२००० = ४७,६००० योजन प्रमाण आर्यखंड का क्षेत्रफल हो जाता है। इसके मील बनाने से ४७,६००० × ४००० = १९०,४०,००,००० (एक सौ नब्बे करोड़ चालीस लाख) मील प्रमाण क्षेत्रफल हो जाता है।

इस आर्यखण्ड के मध्य में अयोध्या नगरी है। इस अयोध्या के दक्षिण में ११९ योजन की दूरी पर लवण समुद्र की वेदी है और उत्तर की तरफ इतनी ही दूर पर विजयार्ध पर्वत की वेदिका है। अयोध्या से पूर्व में १००० योजन की दूरी पर गंगानदी की तटवेदी है अर्थात् आर्यखंड की दक्षिण दिशा में लवण समुद्र, उत्तर दिशा में विजयार्ध, पूर्व दिशा में गंगा नदी एवं पश्चिम दिशा में सिंधु नदी हैं,ये चारों आर्यखण्ड की सीमारूप हैं।

अयोध्या से दक्षिण में ४,७६००० मील (चार लाख छिहत्तर हजार मील) जाने से लवण समुद्र है और उत्तर में, ४,७६००० मील जाने से विजयार्ध पर्वत है। उसी प्रकार अयोध्या से पूर्व में ४०,००००० (चालीस लाख) मील दूर पर गंगानदी तथा पश्चिम में इतनी ही दूर पर सिंधु नदी है।

आज का सारा विश्व इस आर्यखंड में है। हम और आप सभी इस आर्यखंड में ही भारतवर्ष में रहते हैं।

जिणसिद्धाणं पडिमा, अकिट्टिमा किट्टिमा दु अदिसोहा।
रयणमया हेममया रूप्पमया, ताणि वंदामि।।१।।

मानुषोत्तर पर्वत

(लोकविभाग से[1])

पुष्करद्वीप के बीच में जो मानुषोत्तर नामक सुवर्णमय उत्तम पर्वत स्थित है वह कोट के घेरे के समान है।।६६ वह पर्वत सत्रह सौ इक्कीस (१७२१) योजन ऊँचा है। उसका अभ्यन्तर तट टांकी से छेदे गये के समान और बाह्य पार्श्वभाग क्रम से ऊँचा है।।६७।। इस पर्वत का विस्तार मूल में एक हजार बाईस (१०२२) योजन, ऊपर शिखर पर चार सौ चौबीस (४२४) योजन और मध्य में उन दोनों के अर्धभाग अर्थात् सात सौ तेईस (१०२२ - ४२४ = ७२३) योजन प्रमाण माना गया है।।६८।। मानुषोत्तर पर्वत की परिधि अंकक्रम से तीन, एक, सात, छह, तीन, दो, चार और एक (१४२३६७१३) इतने योजन से कुछ अधिक है।।६९।। परिधि की इस अधिकता का प्रमाण एक हजार तीन सौ तीस धनुष, एक हाथ, दस अंगुल और पाँच जौ है–दण्ड १३३०, हाथ १, अंगुल १०, जौ ५।।७०।। इस पर्वत के शिखर पर जो वेदिका स्थित है वह आधा योजन ऊँची और पाव कोस से सहित एक कोस (दण्ड २५००) विस्तृत है। यह पर्वत चौदह गुफाओं से संयुक्त है।।७१।। पुष्करार्ध द्वीप में स्थित बाह्य चौदह नदियाँ इन गुफाओं में से जाकर पुष्करोद समुद्र को प्राप्त हुई हैं और शेष चौदह नदियाँ कालोदक समुद्र को प्राप्त हुई हैं।।७२।।

इस पर्वत के ऊपर चारों दिशाओं में से प्रत्येक दिशा में तीन-तीन तथा पूर्व दो विदिशाओं (ईशान व आग्नेय) में भी तीन-तीन कूट स्थित हैं। इस प्रकार उसके ऊपर सब अठारह (१८) कूट स्थित हैं।।७३।। उन सब कूटों के ऊपर गरुडेन्द्र के नगर हैं जिनमें गरुडवंशीय गिरिकन्यायें और गिरिकुमार रहते हैं।।७४।। उनमें से अग्नि और ईशान कोण के कूटों पर सुपर्ण (गरुड) कुल में उत्पन्न हुए कुमार (सुपर्णकुमार) तथा शेष कूटों के ऊपर दिक्कुमारियाँ रहती हैं।।७५।। उक्त पर्वत की चारों दिशाओं में चार अर्हदायतन (जिनभवन) स्थित हैं जो विस्तारादिक में निषध पर्वत के ऊपर जिनभवनों के समान हैं। इसी प्रकार के जिनभवन इष्वाकार पर्वतों के ऊपर भी स्थित हैं।।७६।।

द्वीप-समुद्रों के अधिपति देवों के नाम

इस प्रथम द्वीप तथा लवणसमुद्र का स्वामी क्रम से अनादर नाम का व्यन्तर देव और सुस्थिर (सुस्थित) देव ये दो व्यन्तर देव हैं। (धातकीखण्ड द्वीप के अधिपति) प्रभास और प्रियदर्शन नाम के दो व्यन्तर देव हैं।।२४।। दक्षिण व उत्तर भाग में स्थित काल और महाकाल नामक व्यन्तर देव कालोद समुद्र के तथा पद्म और पुण्डरीक नामक दो देव पुष्करद्वीप के अधिपति हैं।।२५।। चक्षुष्मान् और सुचक्षु नाम के दो व्यन्तर देव मानुषोत्तर पर्वत के अधिपति हैं। इस प्रकार दो-दो देव आगे के द्वीप और समुद्र में भी जानना चाहिये। श्रीप्रभ और श्रीधर नाम के दो व्यन्तर देव पुष्करवर समुद्र के, वरुण और वरुणप्रभ नाम के दो व्यन्तर देव वारुणीवर द्वीप के तथा मध्य और मध्यम नाम के दो देव वारुणीवर समुद्र के अधिपति हैं।।२६-२७।। पाण्डुर और पुष्पदन्त, विमल और विमलप्रभ, घृतद्वीप के दक्षिण में सुप्रभ और उत्तर में महाप्रभ, आगे कनक और कनकाभ, पूर्ण और पूर्णप्रभ, गन्ध

१. लोकविभाग पृ. ६९, ७०।

और महागन्ध, नन्दी और नन्दिप्रभ, भद्र और सुभद्र तथा अरुण और अरुणप्रभ; (ये दो-दो देव क्रम से क्षीरवर द्वीप, क्षीरवर समुद्र, घृतवर द्वीप, घृतवर समुद्र, इक्षुरस (क्षौद्रवर) द्वीप, इक्षुरस (क्षौद्रवर) समुद्र, नन्दीश्वर द्वीप, नन्दीश्वर समुद्र और अरुण द्वीप; इन द्वीप-समुद्रों के अधिपति हैं।) सुगन्ध और सर्वगन्ध नाम के दो व्यन्तरदेव अधिपति माने गये हैं। इनमें यहाँ प्रथम कहा गया देव दक्षिण दिशा का तथा दूसरा देव उत्तर दिशा का अधिपति है।।३१।।[१]

नन्दीश्वर द्वीप

नन्दीश्वर द्वीप के विस्तार का प्रमाण एक सौ तिरेसठ करोड़ चौरासी लाख (१६३,८४०००००) योजन है।।३२।। विद्वान् गणधर आदि उसकी अभ्यन्तर सूची का प्रमाण तीन सौ सत्ताईस करोड़ पैंसठ लाख योजन बतलाते हैं—१६३८४००००० × २ - ३००००० = ३२७६५०००००।।३३।। उसकी अभ्यन्तर परिधि अंकक्रम से तीन, पाँच, सात, दो, शून्य, दो, एक, छह, तीन, शून्य और एक (१०३६१२०२७५३) अर्थात् एक हजार छत्तीस करोड़ बारह लाख दो हजार सात सौ तिरेपन योजन प्रमाण कही गई है।।३४।। उस द्वीप की बाह्य सूची का प्रमाण छह सौ पचपन करोड़ तेतीस लाख योजन है—१६३८४००००० × ४ - ३००००० = ६५५३३०००००।।३५।। उसकी बाह्य परिधि अंकक्रम से शून्य, नौ, एक, चार, पाँच, तीन, तीन, दो, सात, शून्य और दो (२०७२३३५४१९०) इतने योजन प्रमाण कही जाती है।।३६।।

उस द्वीप के मध्य में चारों दिशाओं में चार अंजन पर्वत हैं। इन पर्वतों की ऊँचाई चौरासी हजार (८४०००) योजन प्रमाण है।।३७।। इन पर्वतों का विस्तार मूल, मध्य और शिखर पर भी ऊँचाई के बराबर (८४०००) तथा अवगाह एक हजार (१०००) योजन मात्र है। इनका मूलभाग वज्रमय कहा गया है।।३८।।

पूर्वदिशागत अंजनगिरि की पूर्वादिक दिशाओं में क्रम से नन्दा, नन्दवती, नन्दोत्तरा और नन्दिषेणा (नन्दिघोषा) नाम की चार वापिकायें हैं।।३९।। इन वापियों का विस्तार मूल में, मध्य में और अन्त में एक लाख (१०००००) योजन प्रमाण है। उक्त वापियाँ अनेक रत्नों से खचित और वज्रमय भूमि पर प्रतिष्ठित हैं।।४०।। दक्षिण अंजन पर्वत की पूर्वादि दिशाओं में अरजा, विरजा, अशोका और वीतशोका नाम की चार वापिकायें स्थित हैं।।४१।। पश्चिम अंजन पर्वत की पूर्वादिक दिशाओं में क्रम से विजया, वैजयन्ती, जयन्ती और अपराजिता नाम की चार वापिकायें स्थित हैं।।४२।। उत्तर दिशागत अंजनपर्वत के आश्रित पूर्वादि क्रम से रम्या, रमणीया, सुप्रभा और सर्वतोभद्रा नाम की चार वापिकायें हैं।।४३।। दिङ्मण्डल को सुवासित करने वाले कमल, कल्हार और कुमुद पुष्पों से युक्त वे सब वापिकायें सदा जलचर जीवों से रहित हैं।।४४।।

वापियों के प्रत्येक किनारे पर चारों दिशाओं में अशोक, सप्तपर्ण, चम्पक और आम्र ये चार वन स्थित हैं।।४५।। सब ही वन आधा लाख (५००००) योजन विस्तृत, एक लाख (१०००००) योजन आयत और अन्त में सब ओर वेदिकाओं से संयुक्त कहे जाते हैं।।४६।।

सोलह वापियों के मध्य में दस हजार (१००००) योजन ऊँचे और सब जगह उतने (१००००) ही योजन विस्तृत दधिमुख पर्वत स्थित हैं।।४७।। एक हजार (१०००) योजन अवगाह के भीतर वज्रमय वे पर्वत वर्ण से शुक्ल व गोल आकार से संयुक्त हैं। उनके ऊपर वेदियाँ और अनेक प्रकार के वन हैं।।४८।।

---

१. लोकविभाग पृ. ७५, ७६।

वापिकाओं के बाह्य कोनों में दधिमुख पर्वतों के समान सुवर्णमय रतिकर पर्वत देखे गये हैं। वे सब पर्वत बत्तीस (३२) ही हैं।।४९।। कहा भी है—

रतिकर पर्वतों में से प्रत्येक एक हजार (१०००) योजन विस्तृत, उतने (१००० यो.) मात्र ऊँचे और अढ़ाई सौ (२५०) योजन प्रमाण अवगाह से संयुक्त हैं।।२।। वे रतिकर पर्वत नियम से प्रत्येक वापी के चार-चार कोनों में चार हैं, ऐसा लोकविनिश्चय ग्रन्थ के कर्ता बतलाते हैं।।३।।

नन्दीश्वर द्वीप की विदिशाओं में अन्य चार अंजनपर्वत हैं। वे भी रतिकर पर्वतों के समान है, ऐसा सर्वज्ञ का दर्शन है।।५०।।

उन सब पर्वतों के ऊपर बावन जिनालय हैं जो प्रमाण में भद्रसाल वन में स्थित जिनालयों के समान हैं। मैं सदा उन जिनालयों की भक्तिपूर्वक स्तुति करता हूँ।।५१।। प्रतिवर्ष यहाँ आषाढ़, कार्तिक और फाल्गुन मास में (शुक्ल पक्ष में) अष्टमी से लेकर पूर्णिमा तक अर्थात् अष्टाह्निक पर्व में अन्य देवों के साथ सौधर्म, चमर, ईशान और वैरोचन ये चार इन्द्र हर्षित होकर क्रम से पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशा में महाविभूति के साथ भक्तिपूर्वक प्रदक्षिणक्रम से दो-दो पहर तक जिनेन्द्रों की महामह पूजा को करते हैं[१]।।५२-५४।।

कुंडलवर द्वीप के जिनमंदिर

आगे कुण्डल नामक ग्यारहवें द्वीप के मध्य में कुण्डल पर्वत स्थित है। वह महापर्वत पचहत्तर हजार (७५०००) योजन ऊँचा है। विस्तार उसका मानुषोत्तर पर्वत से दस गुणा है। (मूल विस्तार १०२२ × १० = १०२२०, मध्य विस्तार ७२३ × १० = ७२३०, शिखर विस्तार (४२४ × १० = ४२४० योजन)। उसके ऊपर सोलह कूट हैं जो निम्न क्रम से प्रतिदिशा में चार-चार हैं—वज्र, वज्रप्रभ, कनक, कनकप्रभ, रजत, रजताभ, सुप्रभ, महाप्रभ, अंक, अंकप्रभ, मणिकूट, मणिप्रभ तथा रुचक, रुचकाभ, हिमवान् और मन्दर।।६०-६३।। ये कूट विस्तारादि के प्रमाण में नन्दनवन में स्थित कूटों के समान हैं। यहाँ जो भवन हैं वे भी नन्दनवन के भवनों के समान हैं। उनका वर्णन दूसरे जंबूद्वीप में स्थित विजय देव के नगरों के समान है।।६४।।

उक्त कूटों के मध्य में दिशाओं में **अनादिसिद्ध चार जिनभवन** हैं जो निषध पर्वतस्थ जिनभवनों के समान हैं। इनकी अनादिता ऐसी है जैसी कि संसार और मोक्ष की।।६५।।

उनके मध्य में दिशाओं में चार सिद्धकूट हैं जो प्रमाण में निषध पर्वत के ऊपर स्थित सिद्धकूट के समान हैं। उनके ऊपर चार जिनालय हैं।।६६।। पाठान्तर।

उस महापर्वत की दिशाओं में चार और विदिशाओं में चार, इस प्रकार आठ जिनायतन हैं जो प्रमाण में निषध पर्वतस्थ जिनभवन के समान हैं।।६७।। कहा भी है—

उस गिरीन्द्र की दिशाओं और विदिशाओं में प्रत्येक में एक-एक जिनेन्द्रकूट हैं, ऐसा कितने ही आचार्य निरूपण करते हैं [२]।।४।।

---

१. लोकविभाग पृ. ७६ से ७८ तक। २. लोकविभाग पृ. ७९-८०।

रुचकवरद्वीप के जिनमंदिर

तेरहवाँ द्वीप रुचक नाम का है। उसके मध्य में तपाये हुये सुवर्ण के समान कान्ति वाला वलयाकार रुचक नाम का पर्वत स्थित है।।६८।। वह विस्तार और ऊँचाई में महान् अंजनगिरि के समान (८४००० यो.) है। उसके शिखर के ऊपर पूर्व दिशा में ये आठ कूट माने गये हैं—कनक, कांचन, तपन, स्वस्तिक, सुभद्र, अंजन, अंजनमूल और वज्र।।६९-७०।। ये कूट सहस्र के आधे अर्थात् पाँच सौ (५००) योजन ऊँचे और मूल में उतने (५०० यो.) ही विस्तृत हैं। शिखर पर उनका विस्तार उससे आधा (२५०) है। इनके ऊपर जो प्रासाद स्थित हैं वे गौतमदेव के प्रासादों के समान हैं। इन कूटों के ऊपर उक्त प्रासादों में विजया आदि (वैजयन्ती, जयन्ती और अपराजिता) चार तथा नन्दा, नन्दवती, नन्दोत्तरा और नन्दिषेणा ये आठ दिक्कुमारी देवियाँ रहती हैं।।७२।।

स्फटिक, रजत, कुमुद, नलिन, पद्म, शशी नामक (चन्द्र), वैश्रवण और वैडूर्य ये आठ कूट पूर्वदिशागत कूटों के ही समान होकर दक्षिण दिशा में स्थित हैं। इन कूटों के ऊपर निम्न दिक्कुमारी देवियाँ स्थित हैं—इच्छा, समाहार, सुप्रतिज्ञा, यशोधरा, लक्ष्मी, शेषवती, चित्रगुप्ता और वसुंधरा।।७३-७५।।

अमोघ, स्वस्तिक, तीसरा मन्दर, हैमवत, राज्य, राज्योत्तम, चन्द्र और सुदर्शन; ये आठ कूट रुचक पर्वत के मध्य में पश्चिम दिशा में स्थित जानना चाहिये। उनके ऊपर ये दिक्कुमारिकायें निवास करती हैं—इलादेवी, सुरादेवी, पृथिवी, पद्मवती, एकनासा, नवमिका, सीता और आठवीं भद्रा।।७६-७८।।

विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित, कुण्डल, रुचक, रत्नवान् और सर्वरत्न; ये आठ कूट उसके ऊपर उत्तर दिशा में स्थित हैं।।७९।। इनके ऊपर ये आठ दिक्कुमारी देवियाँ रहती हैं—अलंबूसा, मिश्रकेशी, तृतीय पुण्डरीकिणी, वारुणी, आशा, सत्या, ह्री और श्री।।८०।।

इनमें से पूर्व दिशा में स्थित उक्त आठ दिक्कुमारिकायें झारियों को, दक्षिणदिशागत आठ देवियाँ उत्तम दर्पणों को, पश्चिमदिशावासिनी छत्रों को तथा उत्तरदिशा की आठ दिक्कन्यायें चामरों को ग्रहण कर; इस प्रकार वे सुसज्जित बत्तीस (३२) दिक्कुमारिकायें तीर्थंकरों के जन्मकल्याणकों में सविनय सेवा करने के लिये उपस्थित होती हैं।।८१-८२।।

उक्त कूटों के अभ्यन्तर भाग में पूर्व (आदि दिशाओं में क्रम से) में विमल कूट, नित्यालोक, स्वयंप्रभ और नित्योद्योत ये चार कूट स्थित हैं। वे सब गृहमानों से समान हैं।।८३।।

इनमें से विमल कूट के ऊपर कनका, दक्षिण कूट के ऊपर शतह्रदा, पश्चिम कूट के ऊपर कनकचित्रा और उत्तर कूट के ऊपर सौदामिनी देवियाँ स्थित हैं।।८४।।

वे देवियाँ तीर्थंकरों के जन्मकालों में दिशाओं को उद्योतित करती हैं। ये सब देवियाँ परिवार आदि में श्रीदेवी के समान मानी गई हैं।।८५।।

उनके भी अभ्यन्तर भाग में वैडूर्य, रुचककूट, मणिकूट और अन्तिम राज्योत्तम ये चार कूट स्थित हैं। इनका प्रमाण पूर्व कूटों के समान है।।८६।।

उनके ऊपर रुचका, रुचककीर्ति, रुचककान्ता और रुचकप्रभा ये चार दिक्कुमारिकायें रहती हैं जो तीर्थंकरों के जातकर्म को समाप्त किया करती हैं।।८७।।

उन कूटों के अभ्यन्तर भाग में पूर्वादिक दिशाओं में चार सिद्धकूट स्थित हैं। इनके ऊपर पूर्वोक्त जिनभवनों के समान प्रमाण वाले चार जिनभवन हैं।।८८।। इसकी दिशाओं में, विदिशाओं में और आठ अन्तर्दिशाओं में भी सोलह चैत्यालय स्वीकार किये गये हैं जो प्रमाण में निषधपर्वतस्थ जिनभवनों के समान हैं।।८९।। कहा भी है—

रुचक पर्वत के ऊपर दिशाओं में चार, विदिशाओं में चार और अन्तदिशाओं में आठ इस प्रकार सोलह सिद्धकूट स्थित हैं जो ऊँचाई आदि में निषध पर्वत के सिद्धकूट के समान हैं; ऐसा कुछ आचार्य स्वीकार करते हैं।।५।।

अन्तिम द्वीप स्वयम्भूरमण है। उसके मध्य में एक हजार योजन अवगाह वाला स्वयंप्रभ पर्वत स्थित है।।९०।। रत्नकिरणों से दिशाओं को प्रकाशित करने वाले एवं वेदी से संयुक्त उस पर्वत के विस्तार, ऊँचाई और कूटों का प्रमाण जितना जिनेन्द्रों के द्वारा देखा गया है उतना जानना चाहिये। अभिप्राय यह है कि उसका उपदेश नष्ट हो चुका है।।९१।। मानुषोत्तर शैल, कुण्डलगिरि, रुचक पर्वत और स्वयंप्रभाचल ये चार पर्वत वर्तुलाकार माने गये हैं[१]।।९२।।

जिनवाणी वंदना

श्रुतदेवी बारह अंगों से, निर्मित जिनवाणी मानी है।
सम्यग्दर्शन है तिलक किया, चारित्र वस्त्र परिधानी है।।
चौदह पूर्वों के आभरणों से, सुंदर सरस्वती माता।
इस विध से द्वादशांग कल्पित, जिनवाणी सरस्वती माता।।1।।

श्रुत 'आचारांग' कहा मस्तक, मुख 'सूत्रकृतांग' सरस्वति का।
ग्रीवा है 'स्थानांग' कहा, श्री जिनवाणी श्रुतदेवी का।।
'समवाय अंग' 'व्याख्या प्रज्ञप्ती', माँ की उभय भुजाएं हैं।
द्वय 'ज्ञातृकथांग' 'उपासकाध्ययनांग' स्तन कहलाये हैं।।2।।

नाभी है 'अंतकृद्दशांग' वर नितंब 'अनुत्तरदशांग' है।
वर 'प्रश्नव्याकरण अंग' मात का, जघनभाग कहते श्रुत हैं।।
पादद्वय 'विपाकसूत्रअंग' 'दृष्टिवादांग' कहें श्रुत में।
'सम्यक्त्व' तिलक हैं अलंकार, चौदह पूरब मानें सच में।।3।।

'चौदहों प्रकीर्णक' श्रुत वस्त्रों में, बने बेल-बूटे सुंदर।
ऐसी ये सरस्वती माता, जो द्वादशांगवाणी सुखकर।।
संपूर्ण पदार्थों के ज्ञाता, तीर्थंकर की जो दिव्यध्वनी।
सब द्रव्यों के पर्यायों की, 'श्रुतदेवी' अधिष्ठात्रि मानी।।4।।

-गणिनी ज्ञानमती

१. लोकविभाग पृ. ८० से ८२ तक।

नंदीश्वरद्वीप के ५२ जिनमंदिर

(तत्त्वार्थवार्तिक से[१])

एवं द्विगुणाद्विगुणावलयविष्कम्भेषु द्वीपसमुद्रेषु गतेष्वष्टमो नन्दीश्वरो द्वीपः। तस्य वलयविष्कम्भः कोटिशतं त्रिषष्टिकोट्यः चतुरशीतिश्च योजनशतसहस्राणि। तत्परिधिः द्वे कोटिसहस्रे द्विसप्ततिकोटयः त्रयस्त्रिंश्च्छतसहस्राणि चतुःपञ्चाशतसहस्राण्येकशतं नवतियोजनानि गव्यूतं च साधिकम्। तद्बहुमध्यदेशभाविनश्चतसृषु दिक्षु चत्वारोऽञ्जनगिराय: योजनसहस्रावगाहाश्चतुरशीतियोजनसहस्रोत्सेधाः मूलमध्याग्रेषूत्सेधसमायामविष्कम्भाः पटहाकाराः। तेषां चतसृषु दिक्षु तिर्यगेकं योजनशतसहस्रमतीत्य प्रत्येकं चतस्रो वाप्यो भवन्ति। तत्र पौरस्त्याञ्जनगिरेः नन्दा-नन्दवती-नन्दोत्तरा-नन्दिघोषासंज्ञा योजनसहस्रावगाहा योजनशतसहस्रायामविष्कम्भाश्च-तुष्कोणा मत्स्य कच्छपादिजलचरविरहिताः पद्मोत्पलादिजलरुहकुसुमच्छादितस्फटिकमणिस्वच्छगम्भीर नीराः। प्राच्यां दिशि नन्दा शक्रस्य, अपाच्यां नन्दावती ऐशानस्य, प्रतीच्यां नन्दोत्तरा चमरस्य, उदीच्यां नन्दिघोषा वैरोचनस्य।

दाक्षिणात्याञ्जनगिरेर्विजया वैजयन्ती जयन्ती अपराजिता चेति चतस्रो वाप्यः पूर्वोक्तप्रमाणवर्णनाः शक्रलोकपालानाम्। प्राच्यां दिशि विजया वरुणस्य, अपाच्यां वैजयन्ती यमस्य, प्रतीच्यां जयन्ती सोमस्य,

---

नंदीश्वरद्वीप के ५२ जिनमंदिर

(तत्त्वार्थवार्तिक से)

इस प्रकार द्विगुण-द्विगुण वलय और विष्कम्भ वाले द्वीप और समुद्रों के बीत जाने पर आठवाँ नन्दीश्वर द्वीप आता है। उसका वलय और विष्कम्भ एक सौ त्रेसठ करोड़ चौरासी लाख योजन प्रमाण है। इस द्वीप की परिधि दो हजार बहत्तर करोड़ तेतीस लाख, चौवन हजार, एक सौ नब्बे योजन और एक कोस अधिक है। इसके मध्य में चारों दिशाओं में चौरासी हजार योजन ऊँचे, एक हजार योजन भूतल में गहरे चार अञ्जनगिरि हैं। ये चारों पर्वत मूल, मध्य और अग्रभाग में चौरासी हजार लम्बे-चौड़े हैं तथा ढोल के आकार के हैं। इन पर्वतों से तिरछे एक लाख योजन दूर चारों दिशाओं में चार वापिकायें (बावड़ी) हैं। उनमें पूर्व दिशा के अञ्जनगिरि की चारों दिशाओं में नन्दा, नंदावती, नन्दोत्तरा और नन्दिघोषा ये चार वापिकायें हैं। इन वापिकाओं की गहराई एक हजार योजन है। इन वापिकाओं की लम्बाई एवं विस्तार एक-एक लाख योजन प्रमाण है। ये वापिकायें चतुष्कोण हैं। इनमें मत्स्य, कच्छप आदि जलचर जीव नहीं होते। ये पद्म, कमल आदि जलपुष्पों से आच्छादित और स्फटिकमणि के समान निर्मल नीर से भरी हुई हैं। अञ्जनगिरि की पूर्व दिशा में नन्दा नामक वापिका सौधर्मेन्द्र की है। दक्षिण दिशा की नन्दावती ऐशान इन्द्र है। पश्चिम दिशा की नन्दोत्तरा चमरेन्द्र की है और उत्तरदिशा की नन्दिघोषा नामक वापिका वैरोचन देव की है अर्थात् इन वापिकाओं के ये स्वामी हैं।

दक्षिणदिशा के अञ्जनगिरि की पूर्वादि दिशा में क्रमशः विजया, वैजयन्ती, जयन्ती और अपराजिता ये चार वापिकायें पूर्वोक्त वापिकाओं के समान गहरी आदि हैं। इनके स्वामी इन्द्र के लोकपाल हैं। जैसे—दक्षिणदिशा के

---

१. तत्त्वार्थवार्तिक पृ. ५४८ से ५५१ तक।

उदीच्यामपराजिता वैश्रवणस्य। पाश्चात्याञ्जनगिरेरशोका सुप्रबुद्धा कुमुदा पुण्डरीकिणी चेति चतस्रो वाप्यः पूर्वोक्तप्रमाणवर्णनाः। पूर्वस्यां दिशि अशोका वेणुदेवस्य, दक्षिणस्यां सुप्रबुद्धा वेणुतालेः, अपरस्यां कुमुदा वरुणस्य, उत्तरस्यां पुण्डरीकिणी भूतानन्दस्य। उदीच्याञ्जनगिरेः प्रभङ्करा, सुमना, आनन्दा, सुदर्शना चेति चतस्रो वाप्यः पूर्वोक्तप्रमाणवर्णना ऐशानलोकपालानाम्। प्राच्यां दिशि प्रभङ्करा वरुणस्य, अपाच्यां सुमना यमस्य, प्रतीच्याम् आनन्दा सोमस्य, उदीच्यां सुदर्शना वैश्रवणस्य।

षोडशानामप्यासामभ्यन्तरान्तराणि पञ्चषष्टिसहस्राणि योजनानां पञ्चशतानि पञ्चचत्वारिंशानि। मध्यान्तराणि एकं शतसहस्रं योजनानां चत्वारिंशत्सहस्राणि षट् च शतानि द्वियोजनोत्तराणि। बाह्यान्तराणि द्वे शतसहस्रे योजनानां त्रयोविंशतिसहस्राणि षट् च शतान्येकषष्ट्युत्तराणि। षोडशानामपि तासां मध्येषु सहस्रावगाहा मूलमध्याग्रेषु दशयोजनसहस्रायामविष्कम्भाः तावदुत्सेधाः पटहाकाराः जाम्बूनदमयाः, अर्जुनसुवर्णशिखरत्वाद् दधिमुखा इति कृत्वा अन्वर्थसंज्ञाः षोडश नगवराः। परितस्ता वापीः चत्वारि वनानि प्रत्येकमशोक-सप्तपर्ण-चम्पक-चूतनामानि वापीसमायामानि तदर्धविष्कम्भाणि।

अञ्जनगिरि की पूर्व दिशा में विजया नामक वापिका वरुण लोकपाल की है, दक्षिण दिशा की वैजयन्ती वापिका यम लोकपाल की है, पश्चिम दिशा की जयन्ती नामक वापिका सोम नामक लोकपाल की है और उत्तरदिशा में अपराजिता नामक वापिका वैश्रवण (कुबेर) लोकपाल की है। पश्चिमदिशा के अञ्जनगिरि की पूर्वादि दिशाओं में क्रमशः अशोका, सुप्रबुद्धा, कुमुदा और पुण्डरीकिणी ये चार वापिकायें हैं। इनकी रचना भी पूर्वोक्त वापिकाओं के समान है। इस पश्चिम दिशा के अञ्जनगिरि की पूर्व दिशा की अशोका वापिका वेणुदेव की है दक्षिण दिशा की सुप्रबुद्धा वापिका वेणुतालदेव की है। पश्चिम दिशा में कुमुदा वापिका वरुणदेव की है और उत्तर दिशा की पुण्डरीकिणी वापिका भूतानन्द की है। उत्तर दिशा के अञ्जनगिरि की पूर्वादि चारों दिशाओं में क्रमशः प्रभंकरा, सुमना, आनन्दा और सुदर्शना ये चार वापिकायें हैं। इनका विस्तार आदि पूर्वोक्त वापिकाओं के समान है तथा इनके स्वामी ऐशान स्वर्ग के लोकपाल है। उत्तर दिशा के अञ्जनगिरि की पूर्व दिशा की प्रभंकरा नामक वापिका ऐशान स्वर्ग के वरुण लोकपाल की है। दक्षिण दिशा की सुमना नामक वापिका ऐशान स्वर्ग के यम लोकपाल की है। पश्चिम दिशा की आनन्दा नामक वापिका ऐशान स्वर्ग के सोम नामक लोकपाल की है और उत्तर दिशा की सुदर्शना नाम की वापिका ऐशान स्वर्ग के वैश्रवण लोकपाल की है।

उपर्युक्त सोलह वापिकाओं का अभ्यन्तर अन्तर पैंसठ हजार पाँच सौ पैंतालीस योजन प्रमाण है। मध्यम अन्तर एक लाख चालीस हजार छह सौ दो योजन है और बाह्य अन्तर दो लाख तेईस हजास छह सौ इकसठ योजन प्रमाण है। उन सोलहों वापिकाओं के मध्य में एक हजार योजन प्रमाण अवगाह वाले, मूल, मध्य और अग्रभाग में दस-दस हजार योजन लम्बे-चौड़े और दस-दस हजार योजन ऊँचे पर्वत हैं। वे ढोल के समान गोल हैं, सुवर्णमय हैं। उनके शिखर रजत (चाँदी) और सुवर्णमय हैं अतः उनका नाम दधिमुख है। इस प्रकार दधिमुख (दही के समान श्वेत वर्ण के मुख वाले) इस सार्थक नाम के धारी सोलह पर्वत उन वापिकाओं के मध्य में स्थित हैं। उन वापिकाओं के चारों तरफ सप्तपर्ण, चम्पक, अशोक और चूत नामक चार वन हैं। ये चारों उपवन वापिकाओं के समान एक लाख योजन प्रमाण लम्बे और उनसे आधे विष्कम्भ वाले हैं।

पूर्वेणाऽशोकवनं दक्षिणतः सप्तपर्णवनमाहुः।
अपरेण चम्पकवनमुत्तरतश्चूतवृक्षवनम्।।१।।

एतद्वापीकोणसमीपस्थाः प्रत्येकं चत्वारो नगा रतिकराख्या अर्धतृतीययोजनशतावगाहा एकयोजनसहस्रोत्सेधा मूलमध्याग्रेषु तावदायामविष्कम्भाः पटहाकाराः काञ्चनमणिपरिणामाः। सर्वे ते समुदिताश्चतुःषष्टिः। तत्र ये अभ्यन्तरकोणस्था द्वात्रिंशन्नगादेवानामाक्रीडनस्थानैरलङ्कृताः। ये बाह्यकोणस्थाः द्वात्रिंशद्रतिकरा अञ्जनाद्रयो दधिमुखाश्च तेषां द्विपञ्चाशदुपरि बहुमध्यदेशभावीनि प्राङ्मुखानि योजनशता-यातमदर्धविष्कम्भाणि पञ्चसप्त-तियोजनोत्सेधानि अष्टयोजनोत्सेधतदर्धविस्तारतावत्प्रवेश-पूर्वोत्तरदक्षिणाद्वाराणि द्विपञ्चाशदर्हदायतनानि अर्हदायतनवर्णानोपेतानि चातुर्मासिकमहामहितार्हाणि। पूर्वोक्तचतुःषष्टिवनषण्डबहुमध्यदेशभाविनो द्विषष्टियोजनोत्सेधा एकत्रिंशद्योजनायामविष्कम्भा अष्टयोजनोत्सेधतदर्धविस्तारद्वाराश्चतुःषष्टिरेव प्रासादाः। एतेष्वशोकवनावतंसकादयः पल्योपमायुषः दशकार्मूकोत्सेधाः स्वभवन नामानो देवा निवसन्ति।

पूर्व में अशोकवन, दक्षिण में सप्तपर्णवन, पश्चिम में चम्पक वन और उत्तरदिशा में आम्र वन हैं।।१।।

प्रत्येक वापिका के कोनों में रतिकर नामक चार-चार पर्वत हैं। ये सर्व पर्वत ढाई-ढाई सौ योजन अवगाहन वाले हैं अर्थात् दो सौ पचास योजन जल में गहरे हैं, एक हजार योजन ऊँचे हैं। मूल में, मध्य में और मुख (अग्रभाग) में एक हजार योजन लम्बे-चौड़े एवं ढोल के आकार के हैं, सुवर्ण और रत्नमय हैं। सर्व वापिकाओं के कुल पर्वत चौंसठ हैं। उन चौंसठ पर्वतों में जो वापिकाओं के अभ्यन्तर कोण में स्थित बत्तीस पर्वत हैं, वे देवों के क्रीडास्थानों से अलंकृत हैं। उन वापिकाओं के बाह्य कोनों में स्थित बत्तीस रतिकर, चार अञ्जनगिरि और सोलह दधिमुख इस प्रकार बावन पर्वतों पर बहुमध्यभाग में पूर्व मुख वाले, सौ योजन लम्बे, पचास योजन चौड़े और पचहत्तर योजन ऊँचे जिनमन्दिर हैं। इन जिनमंदिरों के आठ योजन ऊँचे, चार योजन चौड़े तथा चार योजन प्रमाण प्रवेश-मार्ग के धारक पूर्व, उत्तर और दक्षिण दिशा में प्रवेशद्वार हैं। ये सर्व बावन जिनमन्दिर हैं। इन जिनालयों की प्रतिमा, वेदिका, धूपघट, प्रातिहार्य, प्रेक्षागृह आदि की रचना पूर्वोक्त कुलाचल आदि के जिनालयों के समान है। ये सर्व जिनालय चातुर्मासिक महामहिमा से व्याप्त रहते हैं (कार्तिक, फाल्गुन और आषाढ़ के अन्त के आठ दिनों को चातुर्मासिक या अष्टाह्निक कहते हैं। चार महीने के बाद आने से चातुर्मासिक और आठ दिन के होने से अष्टाह्निक कहलाते हैं)। इन दिनों में चतुर्निकाय के देव इस नन्दीश्वर द्वीप में जाकर महामह पूजा करते हैं इसलिये चातुर्मासिक महामहिमा के योग्य कहलाते हैं। पूर्वोक्त चौंसठ वनखण्डों के ठीक मध्य भागों में बासठ योजन ऊँचे, इकतीस योजन लम्बे-चौड़े चौंसठ प्रासाद हैं। उन प्रासादों के आठ योजन ऊँचे और चार योजन चौड़े द्वार हैं। उन प्रासादों में अपने-अपने वनखण्डों के नामों के धारक अशोक, अवतंस आदि देव रहते हैं जो दस धनुष ऊँचे शरीर वाले हैं तथा एक पल्य प्रमाण आयु वाले हैं।

कुण्डलवर द्वीप में ४ जिनमंदिर

(तत्त्वार्थवार्तिक से)

एवं द्विगुणवलयविष्कम्भेषु द्वीपसमुद्रेषु गतेष्वेकादशमः कुण्डलवरद्वीपः। तद्बहुमध्यदेशभाविवलयाकारः सम्पूर्णायवराश्युपमानः कुण्डलनगः योजनसहस्रावगाहः द्विचत्वारिंशद्योजनसहस्रोत्सेधः द्वाविंशदशसहस्रयोजनमूलविस्तारः त्रेयाविंशप्तसहस्रयोजनमध्यविस्तारः चतुर्विंशचतुर्योजनसहस्राग्रविस्तारः[१]।

तस्योपरि पूर्वादिदिग्विभावीनि वज्र-वज्रप्रभ कनक-कनकप्रभ-रजत-रजतप्रभ-सुप्रभ-महाप्रभ-अङ्क-अङ्कप्रभ-मणि-मणिप्रभ-स्फटिक-स्फटिकप्रभ-हिमवत्-महेन्द्रकूटसंज्ञानि षोडश कूटानि मानुषोत्तककूटतुल्यप्रमाणानि एकैकस्यां दिशि चत्वारि चत्वार्यवसेयानि। पूर्वस्यां दिशि वज्रे त्रिशराः, वज्रप्रभे पञ्चशिराः, कनके महाशिराः, कनकप्रभे महाभुजः। अपाच्यां रजते पद्मः रजतप्रभे पद्मोत्तरः, सुप्रभे महापद्म, महाप्रभे वासुकिः। अपरस्यामङ्के स्थिरहृदयः, अङ्कप्रभे महाहृदयः, मणिकूटे श्रीवृक्षः, मणिप्रभे स्वस्तिकः। उदीच्यां स्फटिके सुन्दरः, स्फटिकप्रभे विशालाक्षः, हिमवति पाण्डुरः, महेन्द्रे पाण्डुकः। एते त्रिशिरः प्रभृतयः पाण्डुकान्ताः षोडशापि नागेन्द्राः। पल्योपमायुषः। पूर्वापरयोर्दिशोः कुण्डलनगे एकयोजनसहस्रोत्सेधे तावन्मूलविष्कम्भे अर्धाष्टमशतमध्यविष्कम्भे पञ्चशताग्रविष्कम्भे कुण्डलवरद्वीपाधिपतेरावासौ द्वे कूटे। तस्यैवचोपरि पूर्वादिषु दिक्षु चत्वार्यर्हदायतनानि अञ्जनाद्रिजिनायतनतुल्यप्रमाणानि।

कुण्डलवर द्वीप में ४ जिनमंदिर

(तत्त्वार्थवार्तिक से)

इस प्रकार द्विगुण-द्विगुण वलय विष्कम्भ वाले द्वीप-समुद्रों के व्यतीत होने पर ग्यारहवाँ कुण्डलवर द्वीप आता है। इसके ठीक मध्य में वलयाकार और अखण्ड यवों की राशि के समान कुण्डल नाम का पर्वत है। यह पर्वत एक हजार योजन प्रमाण पृथ्वीतल में गहरा है और बयालीस हजार योजन प्रमाण ऊँचा है। इस पर्वत का भूमिगत पर (मूल में) विस्तार दस हजार बावीस योजन है, मध्य भाग में विस्तार सात हजार तेबीस योजन है और ऊपर के भाग का विस्तार चार हजार चौबीस योजन प्रमाण है।

उस कुण्डल पर्वत के ऊपर पूर्व आदि दिशाओं में क्रमशः वज्र, वज्रप्रभ, कनक, कनकप्रभ, रजत, रजतप्रभ, सुप्रभ, महाप्रभ, अंक, अङ्कप्रभ, मणि, मणिप्रभ, स्फटिक, स्फटिकप्रभ, हिमवत्, और महेन्द्र नाम के सोलह कूट हैं। इनकी ऊँचाई आदि मानुषोत्तर पर्वत के कूटों के समान है। ये कूट एक-एक दिशा में चार-चार जानने चाहिए। इन सोलह कूटों पर सोलह नागेन्द्र रहते हैं। जैसे—पूर्व दिशा में वज्र नामक कूट पर त्रिशिरा, वज्रप्रभ कूट पर पञ्चशिरा, कनक कूट पर महाशिरा और कनकप्रभकूट पर महाभुज नामक नागेन्द्र निवास करता है। दक्षिण दिशा में रजत नामक कूट पर पद्म, रजतप्रभकूट पर पद्मोत्तर, सुप्रभकूट पर महापद्म और महाप्रभकूट पर वासुकी नागेन्द्र वास करता है। पश्चिम दिशा में अङ्क नामक कूट पर स्थितहृदय, अंकप्रभकूट पर महाहृदय, मणिकूट पर श्रीवृक्ष और मणिवृक्ष कूट पर स्वस्तिक नागेन्द्र का वास है। उत्तरदिशा में स्फटिक कूट पर सुन्दर, स्फटिकप्रभ कूट पर विशालाक्ष, हिमवत कूट पर पाण्डुर और महेन्द्र कूट पर पाण्डुक नागेन्द्र निवास करता है। त्रिशिरा से लेकर पाण्डुक तक सर्व सोलह नागेन्द्रों की आयु एक पल्य प्रमाण है। कुण्डलगिरि के ऊपर पूर्व और पश्चिम दिशा में एक-एक हजार योजन ऊँचे, मूल में एक-एक हजार योजन चौड़े, मध्य में साढ़े सात सौ योजन और ऊपर के भाग में पाँच सौ-पाँच सौ योजन विष्कम्भ वाले दो कूट हैं। उनमें कुण्डलवर द्वीप के अधिपति निवास करते हैं। **उस कुण्डलगिरि पर पूर्वादि (पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर) दिशाओं में चार जिनालय हैं।** उन जिनालयों की ऊँचाई आदि का सर्व वर्णन अञ्जनगिरि के जिनालयों के समान है।

---

१. तत्त्वार्थवार्तिक, पृ. ५५१, ५५२।

रुचकवर द्वीप में ४ जिनमंदिर

(तत्त्वार्थवार्तिक से[१])

कुण्डलवरद्वीपद्विगुणवलयविष्कम्भः कुण्डलवरोदः, तद्द्विगुणवलयविष्कम्भः शङ्खवरद्वीपः, तद्द्विगुणवलयविष्कम्भः शङ्खवरोदः तद्द्विगुणवलयविष्कम्भः रुचकवरद्वीपः। तद्बहुमध्यदेशभावी वलयाकार रुचकवरनगः एकयोजनसहस्त्रावगाहश्चतुरशीतियोजनसहस्त्रोत्सेधः, मूलमध्याग्रेषु द्विचत्वारिंशद्योजनसहस्त्राविस्तारः। तस्योपरि पूर्वादिषु दिक्षु चत्वारि कूटानि नन्द्यावर्त-स्वस्तिक-श्रीवृक्ष-वर्धमानसंज्ञानि पञ्चयोजनशतोत्सेधानि मूलमध्याग्रेषु योजनसहस्त्रायामविष्कम्भाणि। प्राच्यां दिशि नन्द्यावर्ते पद्मोत्तरः, अपाच्यां स्वस्तिके सुहस्ती, प्रतीच्यां श्रीवृक्षे नीलः, उदीच्यां वर्धमानेऽञ्जनगिरिः। त एते पद्मोतरादयः चत्वारो दिग्गजेन्द्राः पल्योपमायुषः। तस्यैवोपरि पूर्वस्यां दिशि वैडूर्य-काञ्चन-कनक-अरिष्ट-दिक्स्वस्तिक-नन्दन-अञ्जनमूलकनामान्यष्टौ कूटानि पूर्वोक्तकूटतुल्यप्रमाणानि।

वैडूर्ये विजया, काञ्जने वैजयन्ती, कनके जयन्ती, अरिष्टेऽपराजिता, दिक्स्वस्तिके नन्दा, नन्दने नन्दोतरा, अञ्जने आनन्दा, अञ्जनमूलके नान्दीवर्धना। एता दिक्कुमार्यः तीर्थकरजन्मकाले इहाऽगत्यार्हन्मातृसमीपे भृङ्गारान् गृहीत्वाऽवतिष्ठन्ते। दक्षिणास्याममोघ-सुप्रबुद्ध-मन्दिर-विमल-रुचक-रुचकोत्तर-चन्द्र-सुप्रतिष्ठसंज्ञान्यष्टौ

रुचकवर द्वीप में ४ जिनमंदिर

(तत्त्वार्थवार्तिक से)

कुण्डलवर द्वीप से द्विगुण वलय और विष्कम्भ वाला कुण्डलवरोद समुद्र है, उससे दूने वलय और विष्कम्भ वाला शङ्खवरद्वीप है। उससे दूने वलय और विष्कम्भ वाला शंखवर समुद्र है, उससे दूने वलय और विष्कम्भ वाला रुचकवर द्वीप है। रुचकवर द्वीप के ठीक मध्य में वलयाकार रुचक पर्वत है, जो चौरासी हजार योजन ऊँचा है, एक हजार योजन जमीन में गहरा है और बयालीस हजार योजन विस्तृत है। इसका मूल, मध्य और अग्रभाग समान विस्तार वाला (बयालीस हजार योजन) है। उस पर्वत के ऊपर पूर्वादि दिशाओं में क्रमशः नन्द्यावर्त, स्वस्तिक, श्रीवृक्ष और वर्धमान नामक चार कूट हैं। ये कूट पाँच-पाँच सौ योजन प्रमाण ऊँचे, मूल, मध्य और अग्रभाग में एक-एक हजार योजन लम्बे-चौड़े हैं। पूर्व दिशा में नंद्यावर्त कूट पर पद्मोत्तर नाम का दिग्गजेन्द्र, दक्षिण दिशा में स्वस्तिक कूट पर सुहस्ती, पश्चिम दिशा में श्रीवृक्षकूट पर नील और उत्तरदिशा में वर्द्धमानकूट पर अञ्जनगिरि दिग्गजेन्द्र रहता है। ये चारों ही दिग्गजेन्द्र एक पल्य प्रमाण आयु वाले हैं अर्थात् इन सबकी आयु एक-एक पल्य की है। उसी रुचक पर्वत के ऊपर पूर्वदिशा में वैडूर्य, काञ्चन, कनक, अरिष्ट, दिक्, स्वस्तिक, नन्दन, अञ्जन और अञ्जनमूलक ये आठ कूट हैं। ये सब कूट नंद्यावर्त कूट के समान ऊँचे, लम्बे और चौड़े हैं।

वैडूर्यकूट पर विजया, काञ्चनकूट पर वैजयन्ती, कनककूट पर जयन्ती, अरिष्टकूट पर अपराजिता, दिक्स्वस्तिक पर नन्दा, नन्दनकूट पर नन्दोत्तरा, अञ्जनकूट पर आनन्दा और अञ्जनमूलक कूट पर नान्दीवर्धना नाम की दिक्कुमारी रहती हैं। ये सर्व आठों दिक्कुमारियाँ तीर्थंकर के जन्मकाल में इस मध्यलोक में आकर हाथ

---

१. तत्त्वार्थवार्तिक पृ.५५२ से ५५५ तक।

कूटानि पूर्वोक्तकूटतुल्यप्रमाणानि। अमोघे सुस्थिता, सुप्रबुद्धे सुप्रणिधिः, मन्दिरे सुप्रबृद्धाः, विमले यशोधरा, रुचके लक्ष्मीमती, रुचकोत्तरे कीर्तिमती, चन्द्रे वसुन्धरा, सुप्रतिष्ठे चित्रा। एता दिक्कुमार्यः इहाऽऽगत्याऽर्हन्मातृ-समीपे आदर्शधारिण्योऽवतिष्ठन्ते।

अपरस्यां लोहिताक्ष-जगत्कुसुम-पद्म-नलिन-कुमुद-सौमनस-यशोभद्राख्यान्यष्टौ कूटानि पूर्वोक्तकूटतुल्य-प्रमाणानि। लोहिताक्षे इलादेवी, जगत्कुसुमे सुरादेवी, पद्मे पृथिवी, नलिने-पद्मावती, कुमुदे कानना, सौमनसे नवमिका, यशसि-यशस्विनी, भद्रकूटे भद्रा। एता दिक्कुमार्य इहाऽऽगत्याऽर्हन्मातृसमीपे छत्राणि धारयन्त्यो गायन्त्य आसते। उदीच्यां स्फटिक-अङ्क-अञ्जन-काञ्जन-रजत-कुण्डल-रुचिर-सुदर्शनसंज्ञान्यष्टौ कूटानि पूर्वोक्तकूटतुल्यप्रमाणानि। स्फटिके अलंभूषा, अङ्के मिश्रकेशी, अञ्जने पुण्डरीकिणी, काञ्चने वारुणी, रजत आशा, कुण्डले ह्री, रुचिरे श्रीः, सुदर्शने धृतिरिति। एता दिक्कुमार्यः प्रगृहीचामरा अर्हन्मातृः सेवन्ते। पूर्वादिषु दिक्षु पुनरपराणि चत्वारि कूटानि विमल-नित्यालोक-स्वयंप्रभ-नित्योद्योतसंज्ञानि। पूर्वस्यां दिशि विमले चित्रा, दक्षिणास्यां नित्यालोके कनकचित्रा, अपरस्यां स्वयंप्रभे विशिराः, उत्तरस्यां नित्योद्योते सूत्रमणिः। एता विद्युकुमार्यः इहाऽऽगत्य जिनमातृसमीपे भास्करवदुद्योतं कुर्वन्त्यः आसते।

में झारी लेकर तीर्थंकर माता के समीप खड़ी रहती हैं। उस रुचक पर्वत की दक्षिण दिशा में अमोघ, सुप्रबुद्ध, मन्दिर, विमल, रुचक, रुचकोत्तर, चन्द्र और सुप्रतिष्ठ नामक आठ कूट हैं। ये कूट पूर्वोक्त कूटों के समान प्रमाण वाले हैं। अमोघकूट पर सुस्थिता, सुप्रबुद्धकूट पर सुप्रणिधि, मन्दिरकूट पर सुप्रबुद्धा, विमलकूट पर यशोधरा, रुचककूट पर लक्ष्मीमती, रुचकोत्तर पर कीर्तिमती, चन्द्रकूट पर वसुन्धरा और सुप्रतिष्ठकूट पर चित्रा नाम की दिक्कुमारी रहती हैं। ये सर्व आठों दिक्कुमारियाँ तीर्थंकर के जन्मकाल में यहाँ आकर हाथ में दर्पण लेकर तीर्थंकर माता के समीप खड़ी रहती हैं, माता की सेवा करती हैं।

पश्चिम दिशा में लोहिताक्ष, जगत्कुसुम, पद्म, नलिन, कुमुद, सौमनस, यश और भद्र ये आठ कूट हैं। इन कूटों की ऊँचाई, विस्तार और आयाम नन्द्यावर्त कूट के समान है। इन कूटों में लोहिताक्ष कूट पर इलादेवी, जगत्कुसुम कूट पर सुरादेवी, पद्म कूट पर पृथिवीदेवी, नलिन कूट पर पद्मावतीदेवी, कुमुद कूट पर काननादेवी, सौमनस कूट पर नवमिकादेवी, यशः कूट पर यशस्विनीदेवी और भद्र कूट पर भद्रादेवी—ये आठ दिक्कुमारियाँ निवास करती हैं। ये आठों दिक्कुमारियाँ तीर्थंकर के जन्म-समय में यहाँ आकर जिन-जननी के समीप छत्र लेकर मंगल गीत गाते हुए खड़ी रहती हैं। इस रुचक पर्वत के ऊपर उत्तरदिशा में स्फटिक, अङ्क, अञ्जन, काञ्चन, रजत, कुण्डल, रुचिर और सुदर्शन ये आठ कूट हैं। इनका उत्सेध, विष्कम्भ और आयाम पूर्वोक्त नन्द्यावर्त कूट के समान है। इन कूटों में स्फटिककूट पर अलंभूषा, अङ्ककूट पर मिश्रकेशी, अञ्जनकूट पर पुण्डरीकिणी,काञ्चनकूट पर वारुणी, रजतकूट पर आशा, कुण्डलकूट पर ह्री, रुचिकरकूट पर श्री और सुदर्शनकूट पर धृतिदेवी निवास करती हैं। ये आठों दिक्कुमारी देवियाँ तीर्थंकर के जन्म समय में यहाँ आकर हाथ में चामर लेकर जिन-जननी की सेवा करती हैं। इन कूटों के सिवाय पूर्वादि दिशाओं में क्रमशः विमल, नित्यालोक, स्वयम्प्रभ और नित्योद्योत ये चार कूट और हैं। इन कूटों पर पूर्वदिशा में विमलकूट पर चित्रादेवी, दक्षिणदिशा में नित्यालोक कूट पर कनकचित्रादेवी, पश्चिमदिशा में स्वयम्प्रभकूट पर त्रिशिरादेवी और उत्तरदिशा में नित्योद्योतकूट पर सूत्रमणिदेवी

विदिक्षु चत्वारि कूटानि वैडूर्य-रुचक-मणिप्रभ-रुचकोत्तमनामानि। पूर्वोत्तरस्यां वैडूर्ये रुचका, पूर्वदक्षिणास्यां रुचके रुचकाभा, अपर दक्षिणास्यां मणिप्रभे रुचकान्ता, अपरोत्तरस्यां रुचकोत्तमे रुचकप्रभा एता दिक्कुमारीमहत्तरिकाः। विदिक्षु पुनरपराणि चत्वारि कूटानि रत्न-रत्नप्रभ-सर्वरत्न-रत्नोच्चयाख्यानि। पूर्वोत्तरस्यां रत्ने विजया, पूर्वदक्षिणास्यां रत्नप्रभे वैजयन्ती, अपरदक्षिणास्यां सर्वरत्ने जयन्ती, अपरोत्तरस्यां रत्नोच्चये अपराजिता। एता विदिक्कुमारी महत्तरिकाः। एता अष्टावपि महत्तरिका इह आगत्य तीर्थकराणां जातकर्माणि कुर्वन्ति। तान्येतानि विदिक्कुमारीणां महत्तरिकाणां च कूटानि। द्वादशाप्येकयोजनसहस्रोत्सेधानि मूलमध्याग्रेषु एकसहस्राऽर्धाष्टमशतपञ्चशतविस्ताराणि। रुचकनगस्योपरि चतसृषु दिक्षु चत्वार्यर्हदायतनानि प्राङ्मुखान्यञ्जनाद्रि-जिनालयतुल्यप्रमाणानि। एवं द्विगुणद्विगुणवलयविष्कम्भा असंख्येया द्वीपसमुद्रा वेदितव्याः।

निवास करती हैं। ये सब विद्युत्कुमारियाँ यहाँ आकर जिनजन्मकाल में जिनमाता के समीप सूर्य के समान प्रकाश करती तिष्ठती हैं।

रुचकवर पर्वत की विदिशाओं में भी चार कूट हैं—वैडूर्य, रुचक, मणिप्रभ और रुचकोत्तम। उनमें पूर्वोत्तर (ईशानकोण) दिशा के वैडूर्यकूट में रुचका नाम की दिक्कुमारियों की महत्तरिका रहती हैं। पूर्व दक्षिण (आग्नेय) दिशा के रुचककूट में रुचकाभा, पश्चिमदक्षिण (नैऋत्य) दिशा के मध्य में मणिप्रभ कूट पर रुचकान्ता देवी और पश्चिम उत्तर के रुचकोत्तम कूट पर रुचकप्रभा नाम की दिक्कुमारियों की महत्तरिका निवास करती हैं। विदिशाओं में रत्न, रत्नप्रभ, सर्वरत्न और रत्नोच्चय ये चार कूट और भी हैं। पूर्वोत्तर दिशा के रत्न नामक कूट पर विजया नामक विद्युत्कुमारियों की महत्तरिका रहती हैं। पूर्वदक्षिण दिशा के रत्नप्रभकूट पर वैजयन्ती, पश्चिम दक्षिणदिशा के मध्य स्थित सर्वरत्नकूट पर जयन्ती और पश्चिमोत्तर दिशा के रत्नोच्चय कूट पर अपराजिता नाम की विद्युत्कुमारियों की महत्तरिका निवास करती हैं। ये आठों विदिक्कुमारी महत्तरिका यहाँ आकर तीर्थंकरों का जातकर्म करती हैं। दिक्कुमारियों के ये बारहों कूट एक-एक हजार योजन ऊँचे हैं; मूल में एक हजार योजन, मध्य में साढ़े सात सौ योजन और अग्रभाग में पाँच सौ योजन प्रमाण विस्तृत हैं। रुचक पर्वत पर चारों दिशाओं में चार जिनालय हैं, जिनका मुख पूर्व दिशा की ओर है। इनका सारा वर्णन अञ्जनगिरि के जिनालयों के समान है। इस प्रकार दूने-दूने वलय और विष्कंभ (विस्तार) वाले असंख्यात द्वीप-समुद्र जानने चाहिये।

जम्बूद्वीप वंदना

मेरु सुदर्शन के सोलह जिनगृह गजदंत गिरी के चार।
कुलगिरि के छह कहे, विदेह क्षेत्र के सोलह गिरि वक्षार।।
रचताचल के चौंतीस जिनगृह, जंबू-शाल्मलि के दो जान।
ये शाश्वत अठत्तर जिनगृह उनको नमूँ सदा सुखदान।।1।।

जंबूद्वीप में जितने भी तीर्थंकर गणधर और यतिगण।
सिद्ध हुए होते औ होंगे उन्हें उन क्षेत्रों को भी नमन।।
पंचकल्याणक भूमि तथा अतिशययुत क्षेत्र सभी प्रणमूँ।
कृत्रिम अकृत्रिम जिनप्रतिमा जिनगृह को भी नित्य नमूँ।।2।।

-गणिनी ज्ञानमती

कूटादि के जिनमंदिर

सुमेरु के सौमनसवन में ९ कूट हैं।

(तिलोयपण्णत्ति से)

सोमणसब्भंतरए पुव्वादिचउदिसासु चत्तारो। पुव्वं व सयलवण्णणवित्थारो तेसु णादव्वो[1]।।१९६८।।
पत्तेक्कं जिणमंदिरसालाणं बाहिरम्मि चेट्ठंति। दोपासेसुं दोद्दो कूडा णामा वि ताण इमे।।१९६९।।
णंदणणामा मंदरणिसहहिमा रजदरुजगणामा य। सायरचित्ता वज्जो पुव्वादिकमेण अक्खादा।।१९७०।।
पणवीसब्भहियसयं वासो सिहरम्मि दुगुणिदो मूले। मूलसमो उच्छेहो पत्तेक्कं ताण कूडाणं।।१९७१।।
१२५। २५०। २५०।
कूडाणं मूलोवरिभागेसुं वेदियाओ दिव्वाओ। वररयणविरइदाओ पुव्वं पिव वण्णणजुदाओ।।१९७२।।
कूडाण उवरिभागे चउवेदीतोरणेहिं रमणिज्जा। णाणाविहपासादा चेट्ठंते णिरुवमायारा।।१९७३।।
पण्णरससया दंडा उदओ रुंदं पि कोसचउभागो। तद्दुगुणं दीहत्तं पुह पुह सव्वाण भवणाणं।।१९७४।।
१५००। को १। १।
४ २
वासो पणघणकोसा तद्दुगुणा मंदिराण उच्छेहो। लोयविणिच्छयकत्ता एवं माणे णिरूवेदि।।१९७५।।
१२५। २५०। (पाठान्तरम्)

सुमेरु के सौमनसवन में ९ कूट हैं।

(तिलोयपण्णत्ति से)

सौमनसवन के भीतर पूर्वादिक **चारों दिशाओं में चार (जिनमंदिर)** हैं। इनका सम्पूर्ण वर्णन विस्तारपूर्वक ही समान जानना चाहिए।।१९६८।। प्रत्येक जिनमंदिर सम्बन्धी कोटों के बाहर दोनों पार्श्व भागों में जो दो-दो कूट स्थित हैं, उनके नाम ये हैं—नन्दन, मन्दर, निषद, हिमवान, रजत, रुचक, सागरचित्र और वज्र। ये कूट पूर्वादिक्रम से कहे गए हैं।।१९६९-१९७०।। उन प्रत्येक कूटों का विस्तार शिखर पर एक सौ पच्चीस योजन और मूल में इससे दुगुणा है। मूल विस्तार के समान ही ऊँचाई भी दो सौ पचास योजन प्रमाण है।।१९७१।। शिखरव्यास १२५। मूलव्यास २५०। उत्सेध २५०। कूटों के मूल व उपरिम भागों में उत्तम रत्नों से रचित और पूर्व के समान वर्णन से सहित दिव्य वेदियाँ हैं।।१९७२।। कूटों के ऊपरिम भाग में चार वेदी तोरणों से रमणीय अनुपम आकार वाले नाना प्रकार के प्रासाद स्थित हैं।।१९७३।। सब भवनों की ऊँचाई पृथक्-पृथक् पन्द्रह सौ धनुष, विस्तार एक कोस का चतुर्थ भाग और दीर्घता इससे दुगुनी अर्थात् आधा कोस प्रमाण है।।१९७४।। उत्सेध ध. १५००। विस्तार को. १/४। दीर्घता १/२। मन्दिरों का विस्तार पाँच के घन अर्थात् एक सौ पच्चीस कोस प्रमाण और ऊँचाई इससे दुगुणी है। इस प्रकार लोकविनिश्चय के कर्ता प्रमाण का निरूपण करते हैं।।१९७५।। व्यास १२५। उत्सेध २५०। (पाठान्तर) पूर्वादिक कूटों पर क्रम से मेघंकरा, मेघवती, सुमेघा, चतुर्थ मेघमालिनी,

---

१. तिलोयपण्णत्ति, चतुर्थ महाधिकार पृ. ३९७, ३९८।

कूडेसुं देवीओ कण्णकुमारीओ दिव्वरूवाओ। मेघंकरमेघवदी सुमेधया मेघमालिणी तुरिमा।।१९७६।।
तोअंधरा विचित्त पुप्फयमाला यणिंदिदा चरिमा। पुव्वादिसु कूडेसुं कमेण चेट्ठंति एदाओ।।१९७७।।
बलभद्दणामकूडो ईसाणादिसाए तव्वणे होदि। जोयणसयमुत्तुंगो मूलम्मि व तत्तिओ वासो।।१९७८।।
१००। १००।
पण्णासजोयणाइं सिहरे कूडस्स वासवित्थारो। मुहभूमीमिलिदद्धं मज्झिमवित्थारपरिमाणं।।१९७९।।
एस बलभद्दकूडो सहस्सजोयणपमाणउच्छेहो। तेत्तियरुंदपमाणो दिणयरबिंबं व समवट्टो।।१९८०।।
१०००। १०००।
सोमणसस्स य वासं णिस्सेसं रुंभिदूण सो सेलो। पंचसयजोयणाइं तत्तो रुंभेदि याकासं।।१९८१।।
दसविंदं भूवासो पंचसया जोयणाणि मुहवासो। एवं लोयविणिच्छयमग्गायणिएमुदीरेदि।।१९८२।।
१०००। ५००। पाठान्तरम्।

सुमेरु के नंदनवन में बलभद्र आदि ९ कूट हैं

बलभद्दणामकूडो ईसाणदिसाए णंदणवणम्मि। तस्सुच्छेहप्पहुदी सरिसा सोमणसकूडेणं[१]।।१९९७।।
जिणमंदिरकूडाणं वावीपासाददेवदाणं च। णामाइं विण्णासो सोहम्मीसाणदिसविभागो य।।१९९८।।
इयपहुदि णंदणवणे सोमणसवणं व होदि णिस्सेसं।
णवरि विसेसो एक्को वासप्पमुहाणि दुगुणाणिं।।१९९९।।

तोयंधरा, विचित्रा, पुष्पमाला और अन्तिम अनिन्दिता, इस प्रकार ये दिव्य रूप वाली कन्याकुमारी देवियाँ स्थित हैं।।१९७६-१९७७।। सौमनसवन के भीतर ईशान दिशा में एक सौ योजनप्रमाण ऊँचा और मूल में इतने ही विस्तार वाला बलभद्र नामक कूट है।।१९७८।। उत्सेध १००। व्यास १००। उस कूट का विस्तार शिखर पर पचास योजन और मध्य में मुख एवं भूमि के सम्मिलित विस्तारप्रमाण से आधा है।।१९७९।। यह बलभद्रकूट हजार योजनप्रमाण ऊँचा और इतने ही विस्तारप्रमाण से सहित होता हुआ सूर्यमण्डल के समान समवृत्त है।।१९८०।। उत्सेध १०००। विस्तार १०००। वह शैल सौमनसवन के सम्पूर्ण विस्तार को रोककर पुनः पाँच सौ योजनप्रमाण आकाश को रोकता है।।१९८१।। उसका भूविस्तार दश के घनरूप अर्थात् एक हजार योजन और मुखविस्तार पाँच सौ योजनप्रमाण है। इस प्रकार लोकविनिश्चय व मग्गायणी में कहते हैं।।१९८२।। १०००। ५००। (पाठान्तर।

सुमेरु के नन्दन वन में बलभद्र आदि ९ कूट हैं

नन्दनवन के भीतर ईशानदिशा में बलभद्र नामक कूट है। इस कूट की ऊँचाई आदि सौमनस सम्बन्धी कूट के सदृश है।।१९९७।। **जिनमन्दिर,** कूट, वापी, प्रासाद व देवताओं के नाम, विन्यास और सौधर्म व ईशानेन्द्र की दिशाओं का विभाग, इत्यादिक सब नन्दनवन में सौमनस वन के ही समान है। विशेषता केवल एक यह है कि उनके विस्तारादिक दुगुणे हैं।।१९९८-१९९९।।

---

१. तिलोयपण्णत्ति-अधिकार-४, पृ. ४००।

हिमवान के पद्मसरोवर में तेरह कूट

हिमवंतयस्स मज्झे पुव्वावरमायदो य पउमदहो। पणसयजोयणरुंदो तद्दुगुणायामसोहिल्लो[1]।।१६५८।।
५००। १०००।
दसजोयणाणि गहिरो चउतोरणवेदिणंदणवणेहिं।
सहिदो वियसिअकुसुमेहिं सुहसंचयरयणरचिदेहिं।।१६५९।।
वेसमणणामकूडो ईसाणे होदि पंकयदहस्स। सिरिणिचयणामकूडो सिहिदिसभागम्हि णिद्दिट्ठो।।१६६०।।
खुल्लहिमवंतकूडो णइरिदिभागम्मि तस्स णिद्दिट्ठो। पच्छिमउत्तरभागे कूडो एरावदो णाम।।१६६१।।
सिरिसंचयकूडो तह भाए पउमद्दहस्स उत्तरए। एदेहिं कूडेहिं हिमवंतो पंचसिहरिणामजुदो।।१६६२।।
उववणवेदीजुत्ता वेंतरणयरेहिं होंति रमणिज्जा। सव्वे कूडा एदे णाणाविहरयणणिम्मविदा।।१६६३।।
उत्तरदिसाविभागे जलम्मि पउमद्दहस्स जिणकूडो।
सिरिणिचयं वेरुलियं अंकमयं अच्छरीय रुचगं च।।१६६४।।
सिहरीउप्पलकूडा पदाहिणा होंति तस्स सलिलम्मि। तडवणवेदीहिं जुदा वेंतरणयरेहिं सोहिल्ला।।१६६५।।

महाहिमवान के महापद्म सरोवर में तेरह कूट

महहिमवंते दोसुं पासेसुं वेदिवणाणि रम्माणिं। गिरिसमदीहत्ताणिं वासादीणं च हिमवगिरिं[2]।।१७२३।।
सिद्धमहाहिमवंता हेमवदो रोहिदो य हरिणामो। हरिकंता हरिवरिसो वेरुलिओ अड इमे कूडा।।१७२४।।

हिमवान के पद्मसरोवर में तेरह कूट

हिमवान् पर्वत के मध्य में पूर्व-पश्चिम लंबा, पाँच सौ योजन विस्तार से सहित और इससे दुगुणी अर्थात् एक हजार योजनप्रमाण लंबाई शोभायमान पद्म नामक द्रह है।।१६५८।। विष्कंभ ५००। आयाम १०००। यह पद्म द्रह दश योजन गहरा तथा चार तोरण, वेदियों, नन्दनवनों और शुभसंचययुक्त रत्नों से रचे गए विकसित फूलों से सहित है।।१६५९।। इस पंकजद्रह के ईशानकोण में वैश्रवण नामक कूट और आग्नेय दिशा में श्रीनिचय नामक कूट निर्दिष्ट किया गया है।।१६६०।। उसके नैऋत्य भाग में क्षुद्रहिमवान् कूट और पश्चिमोत्तरभाग में ऐरावत नामक कूट कहा गया है।।१६६१।। पद्मद्रह के उत्तर भाग में श्रीसंचय नामक कूट स्थित है। इन पाँच कूटों से हिमवान् पर्वत 'पंचशिखरी' इस नाम से संयुक्त है।।१६६२।। नाना प्रकार के रत्नों से निर्मित ये सब कूट उपवन-वेदियों से सहित और व्यन्तरों के नगरों से रमणीय हैं।।१६६३।। पद्मद्रह के जल में उत्तरदिशा की ओर से प्रदक्षिणरूप में जिनकूट, श्रीनिचय, वैडूर्य, अंकमय, आश्चर्य, रुचक, शिखरी और उत्पलकूट, ये कूट उसके जल में तटवेदियों और वन-वेदियों से सहित होते हुए व्यन्तर-नगरों से शोभायमान हैं।।१६६४-१६६५।।

महाहिमवान के महापद्म सरोवर में तेरह कूट

महाहिमवान् पर्वत के दोनों पार्श्वभागों में रमणीय वेदी और वन हैं। इनकी लम्बाई इसी पर्वत के बराबर और विस्तारादिक हिमवान् पर्वत के समान है।।१७२३।। इस पर्वत के ऊपर सिद्ध, महाहिमवान्, हैमवत, रोहित्, हरि, हरिकान्त, हरिवर्ष और वैडूर्य, इसप्रकार ये आठ कूट हैं।।१७२४।। हिमवान् पर्वत के कूटों से इन कूटों की ऊँचाई और विस्तारप्रभृति सब दुगुणा-दुगुणा है।।१७२५।। जिन नामों के वे कूट हैं, उन्हीं नाम वाले व्यन्तरदेव उन कूटों पर रहते हैं। ये देव अनुपम

---

१. तिलोयपण्णत्ति चतुर्थ महाधिकार पृ. ३६०। २. तिलोयपण्णत्ति, महाधिकार-४ पृ. ३६८, ३६९।

हिमवंतपव्वदस्स य कूडादो उदयवासपहुदीणिं। एदाणं कूडाणं दुगुणसरूवाणि सव्वाणिं।।१७२५।।
जंणामा ते कूडा तंणामा वेंतरा सुरा होंति। अणुवमरूवसरीरा बहुविहपरिवारसंजुत्ता।।१७२६।।
पउमदहाउ दुगुणो वासायमोहि गहिरभावेणं। होदि महाहिमवंते महपउमो णाम दिव्वदहो।।१७२७।।
वा १०००। आ २०००। गा २०।
तद्दहपउमस्सोवरि पासादे चेट्ठदे य हिरिदेवी। बहुपरिवारेहिं जुदा सिरियादेवि व्व वण्णिजगुणोहा।।१७२८।।
णवरि विसेसो एसो दुगुणा परिवारपउमपरिसंखा। जेत्तियमेत्तपसादा जिणभवणा तत्तिया रम्मा।।१७२९।।
ईसाणदिसाभाए वेसमणो णाम सुंदरो कूडो। दक्खिणदिसाविभागे कूडो सिरिणिचयणामो य।।१७३०।।
णइरिदिभागे कूडं महहिमवंतो विचित्तरयणमओ। पच्छिमउत्तरभागे कूडो एरावदो णाम।।१७३१।।
सिरिसंचयं ति कूडो उत्तरभागे दहस्स चेट्ठेदि। एदेहि कूडेहिं महहिमवंतो य पंचसिहरो त्ति।।१७३२।।
एदे सव्वे कूडा वेंतरणयरेहिं परमरमणिज्जा। उववणवेदीजुत्ता उत्तरपासे जलम्मि जिणकूडो।।१७३३।।
सिरिणिचयं वेरुलियं अंकमयं अच्छरीयरुजगाइं। उप्पलसिहरी कूडा सलिलम्मि पदाहिणा होंति।।१७३४।।

निषध पर्वत के नौ कूट

कूडो सिद्धो णिसहो हरिवस्सो तह विदेहहरिविजया। सीदोदपरविदेहा रुजगो य हवेदि णिसहउवरिम्मि[1]।।१७५८।।
ताणं उदयप्पहुदी सव्वे हिमवंतसेलकूडादो। चउगुणिया णवरि इमे कूडोवरि जिणपुरा सरिसा।।१७५९।।
जंणामा ते कूडा तंणामा वेंतरा सुरा तेसुं। बहुपरिवारेहिं जुदा पल्लाऊ दसधणुत्तुंगा।।१७६०।।

रूपयुक्त शरीर के धारक और बहुत प्रकार के परिवार से संयुक्त हैं।।१७२६।। महाहिम्वान् पर्वत पर स्थित महापद्म नामक द्रह पद्मद्रह की अपेक्षा दुगुणे विस्तार, लंबाई व गहराई से सहित है।।१७२७।। विस्तार १०००। आयाम २०००। गहराई २०। उन तालाब में कमल के ऊपर स्थित प्रासाद में बहुत से परिवार से संयुक्त तथा श्रीदेवी के सदृश वर्णनीय गुणसमूह से परिपूर्ण ह्री देवी रहती है।।१७२८।। यहाँ विशेषता केवल यह है कि ह्रीदेवी के परिवार और पद्मों की संख्या श्रीदेवी की अपेक्षा दूनी है। **इस तालाब में जितने प्रासाद हैं उतने ही रमणीय जिनभवन भी हैं**।।१७२९।। इस तालाब के ईशानदिशाभाग में सुन्दर वैश्रवण नामक कूट, दक्षिणदिशाभाग में श्रीनिचय नामक कूट, नैऋत्यदिशाभाग में विचित्र रत्नों से निर्मित महाहिमवान् कूट, पश्चिमोत्तरभाग में ऐरावत नामक कूट और उत्तरभाग में श्रीसंचय नामक कूट स्थित है। इन कूटों से महाहिमवान् पर्वत पंचशिखर कहलाता है।।१७३०-१७३२।। ये सब कूट व्यन्तर नगरों से परम रमणीय और उपवनवेदियों से संयुक्त हैं। तालाब के उत्तरपार्श्व भाग में जल में जिनकूट है।।१७३३।। श्रीनिचय, वैडूर्य, अंकमय, आश्चर्य, रुचक, उत्पल और शिखरी, ये कूट जल में प्रदक्षिण रूप से स्थित हैं।।१७३४।।

निषध पर्वत के नौ कूट

निषधपर्वत के ऊपर सिद्ध, निषध, हरिवर्ष, विदेह, हरि, विजय, सीतोदा, अपरविदेह और रुचक ये नौ कूट स्थित हैं।।१७५८।। इन कूटों की ऊँचाई आदि सब हिमवान् पर्वत के कूटों से चौगुणी है। विशेषता केवल यह है कि **कूटों पर स्थित ये जिनपुर हिमवान् पर्वत सम्बन्धी जिनपुरों के सदृश हैं**।।१७५९।। जिस नाम के धारक ये कूट हैं, उसी नाम के धारक व्यन्तरदेव उन कूटों पर निवास करते हैं। ये देव बहुत परिवारों से युक्त, एक पल्य प्रमाण आयु वाले और दश धनुष ऊँचे हैं।।१७६०।।

---

१. तिलोयपण्णत्ति अधिकार-४ पृ. ३७३।

निषधपर्वत के तिगिंछ सरोवर में तेरह कूट

पउमद्दहाउ चउगुणरुंदप्पहुदी भवेदि दिव्वदहो। तीगिच्छो विक्खादो बहुमज्झे णिसहसेलस्स[१]।।१७६१।।
वा २०००, आ ४०००, गा ४०, पउ ४२, संखा ५६०४६४,
वा १, मु ३, प ४, मज्झि ४, अं ४ वा २।
तद्दहपउमस्सोवरि पासादे चेट्ठदे य धिदिदेवी। बहुपरिवारेहिं जुदा णिरुवमलावण्णसंपुण्णा।।१७६२।।
इगिपल्लपमाणाऊ णाणाविहरयणभूसियसरीरा। अइरम्मा वेंतरिया सोहम्मिंदस्स सा देवी।।१७६३।।
जेत्तियमेत्ता तस्सिं पउमगिहा तेत्तिया जिणिंदपुरा। भव्वाणाणंदयरा सुरकिण्णरमिहुणसंकिण्णा।।१७६४।।
ईसाणदिसाभाए वेसमणो णाम मणहरो कूडो। दक्खिणदिसाविभागे कूडो सिरिणिचयणामो य।।१७६५।।
णइरदिदिसाविभागे णिसहो णामेण सुंदरो कूडो। अइरावदो त्ति कूडो तीगिच्छीपच्छिमुत्तविभागे।।१७६६।।
उत्तरदिसाविभागे कूडो सिरिसंचवो त्ति णामेण। एदेहिं कूडेहिं णिसहगिरी पंचसिहरि त्ति।।१७६७।।
वरवेदियाहिं जुत्ता वेंतरणयरेहिं परमरमणिज्जा। एदे कूडा उत्तरपासे सलिलम्मि जिणकूडो।।१७६८।।
सिरिणिचयं वेरुलियं अंकमयं अंबरीयरुजगाइं। सिहिरी उप्पलकूडो तिंगिञ्छदहस्स सलिलम्मि।।१७६९।।

निषधपर्वत के तिगिंछ सरोवर में तेरह कूट

निषध पर्वत के बहुमध्यभाग में पद्मद्रह की अपेक्षा चौगुणे विस्तारादि से सहित और तिगिंछ नाम से प्रसिद्ध एक दिव्य तालाब है।।१७६१।। व्यास २०००, आयाम ४०००, अवगाह ४०, नाल की ऊँचाई ४२, संख्या ५६०४६४, बाहल्य १, मृणाल ३, पद्म ४, मध्यव्यास ४, अंतव्यास २ वा ४ योजन। उस द्रहसम्बन्धी पद्म के ऊपर स्थित भवन में बहुत परिवार से संयुक्त और अनुपम लावण्य से परिपूर्ण धृति देवी निवास करती है।।१७६२।। एक पल्यप्रमाण आयु की धारक और नाना प्रकार के रत्नों से भूषित शरीर वाली अतिरमणीय वह व्यन्तरिणी सौधर्म इन्द्र की देवी है।।१७६३।। **उस तालाब में जितने पद्मगृह हैं, उतने ही भव्यजनों को आनन्दित करने वाले किन्नरदेवों के युगलों से संकीर्ण जिनेन्द्रपुर हैं।**।।१७६४।। तिगिंछ तालाब के ईशान दिशाभाग में मनोहर वैश्रवण नामक कूट, दक्षिण दिशाभाग में श्रीनिचय नामक कूट, नैऋत्य दिशाभाग में सुन्दर निषध नामक कूट, पश्चिमोत्तरकोण में ऐरावत कूट और उत्तरदिशा भाग में श्रीसंचय नामक कूट है। इन कूटों से निषधपर्वत 'पंचशिखरी' इस प्रकार प्रसिद्ध है।।१७६५-१७६७।। ये कूट उत्तम वेदिकाओं से सहित और व्यन्तरनगरों से अतिशय रमणीय हैं। **उत्तरपार्श्वभाग में जल में जिनकूट है**।।१७६८।। तिगिंछ तालाब के जल में श्रीनिचय, वैडूर्य, अंकमय, अंबरीक (अच्छरीय = आश्चर्य), रुचक, शिखरी और उत्पल कूट स्थित हैं।।१७६९।।

गजदंत पर्वत पर कूट

सौमनस गजदंत पर्वत पर ७ कूट हैं

इन गजदन्तों की गहराई अपनी-अपनी ऊँचाई प्रमाण के चतुर्थांश मात्र है। सौमनस पर्वत के ऊपर सिद्ध, सौमनस, देवकुरु, मंगल, विमल, कांचन और वशिष्ट, ये सात कूट मेरु से लेकर निषधपर्वत पर्यन्त स्थित

---

१. तिलोयपण्णत्ति अधिकार पृ. ३७३, ३७४।

हैं।२०३०-२०३१।। सौमनस पर्वत की ऊँचाई में चार का भाग देने पर जो लब्ध आवे उतनी इन कूटों की ऊँचाई है। इन कूटों के विस्तार और लम्बाई के विषय में उपदेश नहीं है।।२०३२।। भूमि में से मुख को कम करके उदय का भाग देने पर जो लब्ध आवे उतना भूमि की अपेक्षा हानि और मुख की अपेक्षा वृद्धि का प्रमाण होता है। यहाँ मुख का प्रमाण सौ योजन, भूमि का पाँच के घनप्रमाण अर्थात् एक सौ पच्चीस योजन और उदय एक कम कूटसंख्याप्रमाण है।।२०३३।। १०० । १२५। ६। वह क्षय-वृद्धि का प्रमाण छह से भाजित पच्चीस योजन है। इसको भूमि में से कम करने और मुख में जोड़ने पर कूटों की ऊँचाई का प्रमाण आता है।।२०३४।। २५/६। अथवा, इच्छा से गुणित क्षय-वृद्धि को भूमि में से कम करने और मुख में मिला देने पर कूटों की ऊँचाई होती है। इनमें से प्रथम कूट की ऊँचाई पाँच के घनप्रमाण अर्थात् एक सौ पच्चीस योजन है।।२०३५।। १२५। द्वितीय कूट की ऊँचाई एक सौ बीस योजन और छह से विभक्त पाँच कलाप्रमाण तथा तृतीय की ऊँचाई एक सौ सोलह योजन और तीन से भाजित दो कलाप्रमाण है।।२०३६।। १२०-५/६। ११६-२/३। चतुर्थ कूट की ऊँचाई एक सौ साढ़े बारह योजन और पाँचवें कूट की ऊँचाई एक सौ आठ योजन तथा एक योजन के तीसरे भाग से अधिक है।।२०३७।। ११२-१/२ ।१०८-१/३। छठे कूट की ऊँचाई एक सौ चार योजन और छह से भाजित एक कलाप्रमाण तथा सातवें कूट की ऊँचाई एक सौ योजनमात्र है।।२०३८।। १०४-१/६। १००। सौमनस नामक पर्वत की लम्बाई में सात का भाग देने पर जो लब्ध आवे उतना प्रत्येक कूटों के अन्तराल का प्रमाण होता है।।२०३९।। यह अन्तराल प्रमाण चार हजार तीन सौ पन्द्रह योजन और एक सौ तेतीस से भाजित व्यासी कला है।।२०४०।। ४३१५-८२/१३३। **प्रथम कूट के ऊपर एक जिनभवन है। इसके विस्तार, ऊँचाई और लम्बाई आदि का वर्णन पाण्डुकवन सम्बन्धी जिनपुर के सदृश है।**।२०४१।। शेष कूटों पर वेदी एवं तोरण से सहित और उत्तम रत्नों से खचित ऐसे व्यन्तर देवों के सुवर्णमय प्रासाद हैं।।२०४२।। कांचन कूट पर एक पल्यप्रमाण आयु से युक्त सुवत्सा देवी (सुमित्रा देवी) और विमल नामक श्रेष्ठ कूट पर श्रीवत्समित्रा देवी निवास करती है।।२०४३।। शेष चार कूटों पर अपने कूट के सदृश नाम वाले व्यन्तरदेव विविध प्रकार के विनोद से क्रीड़ा करते हैं[१]।।२०४४।।

विद्युत्प्रभ गजदंत पर्वत पर ९ कूट

विद्युत्प्रभ पर्वत के ऊपर सिद्ध, विद्युत्प्रभ नामक, देवकुरु, पद्म, तपन, स्वस्तिक, शत उज्ज्वल (शतज्वाल), सीतोदा और हरि, इन नामों से भुवन में विख्यात और अनुपम आकार वाले नौ कूट हैं। इन कूटों की ऊँचाई अपने पर्वत की ऊँचाई के चतुर्थ भागप्रमाण है।।२०४५-२०४६।। उन कूटों की लम्बाई और विस्तारविषयक उपदेश इस समय नष्ट हो चुका है। इनमें से प्रथम कूट की ऊँचाई एक सौ पच्चीस योजन और अन्तिम कूट की ऊँचाई का प्रमाण एक सौ योजन है। प्रथम कूट की ऊँचाई में से अन्तिम कूट की ऊँचाई को घटाकर शेष पाँच के वर्ग में आठ का भाग देने से हानि-वृद्धि का प्रमाण निकलता है।।२०४७-२०४८।। इच्छा से गुणित हानि-वृद्धि के प्रमाण को भूमि में से कम करने अथवा मुख में जोड़ देने पर क्रम से कूटों की ऊँचाई होती है।।२०४९।। प्रथम कूट की ऊँचाई एक सौ पच्चीस योजनप्रमाण जानना चाहिये तथा शेष कूटों की ऊँचाई जानने के लिये उत्तरोत्तर उत्पन्न प्रमाण में से आठ से भाजित पच्चीस योजन कम करते जाना चाहिये।।२०५०।। विद्युत्प्रभ नामक पर्वत की लम्बाई

---

१. तिलोयपण्णत्ति पृ. ४०४ से ४०८ तक।

में नौ का भाग देने पर जो लब्ध आवे उतना प्रत्येक कूटों का अन्तराल प्रमाण होता है।।२०५१।। यह अन्तराल प्रमाण तीन हजार तीन सौ छप्पन योजन और एक सौ इकहत्तर से भाजित एक सौ एक कलामात्र है।।२०५२।। ३३५६-१०१/१७१। **इस पर्वत पर जिनभवनादिक सौमनस पर्वत के ही समान हैं**। विशेष केवल यह है कि यहाँ देवियों के नाम अन्य है।।।२०५३।। स्वस्तिक कूट पर बला नामक व्यन्तरदेवी और कनककूट पर वारिषेणा नामक उत्तम देवी रहती है।।२०५४।। मन्दरपर्वत से आधा योजन जाकर विद्युत्प्रभ पर्वत में पर्वत के विस्तार समान लम्बी रमणीय गुफा स्थित है।।२०५५।। इसके दोनों पार्श्वभागों में अपने योग्य ऊँचाई व विस्तार से सहित तथा नाना उत्तम रत्नों से रमणीय अकृत्रिमरूप द्वार हैं[१]।।२०५६।।

गन्धमादन गजदंत पर्वत पर ७ कूट

गन्धमादन पर्वत के ऊपर सात कूट स्थित हैं। सिद्ध नामक, गन्धमादन, देवकुरु, गन्धव्यास (गन्धमालिनी), लोहित, स्फटिक और आनन्द, ये उन कूटों के सात नाम हैं। इन कूटों की ऊँचाई आदिक सौमनसपर्वत के समान ही जानना चाहिये।।२०५७-२०५८।। विशेष यह है कि लोहित कूट पर भोगवती और स्फटिक नामक कूट पर भोगंकृति या भोगंकरा नामक देवी निवास करती है[२]।।२०५९।।

माल्यवान् गजदंत पर नौ कूट हैं

माल्यवान् पर्वत के ऊपर नौ कूट स्थित हैं। सिद्ध नामक, माल्यवान्, उत्तरकुरु, कच्छ, सागर, रजत नामक, पूर्णभद्र, सीता और हरिसह, ये इन कूटों के नाम हैं। इनका विस्तार व ऊँचाई आदिक विद्युत्प्रभपर्वत के कूटों के सदृश समझना चाहिये।।२०६०-२०६१।। विशेषता केवल यह है कि सागर कूट पर भोगवती और रजतकूट पर भोगमालिनी नामक देवी निवास करती है।।२०६२।। मन्दर पर्वत से आधा योजन आगे जाकर इस पर्वत के ऊपर पर्वतीय विस्तार के सदृश लंबी गुफा कही जाती है।।२०६३।। उसके दोनों पार्श्वभागों में अपने योग्य उदय व विस्तार से सहित तथा प्रकाशमान उत्तम रत्नकिरणों से संयुक्त वे अकृत्रिम एवं अनुपम द्वार हैं[३]।।२०६४।।

सीतोदा नदी कुण्ड

निषधपर्वत के ऊपर तिगिंछद्रह के उत्तरद्वार से भुवनविख्यात सीतोदा महानदी निकलती है।।२०६५।। यह सीतोदा नदी उत्तरमुख होकर सात हजार चौर सौ इक्कीस योजन से कुछ अधिक निषधपर्वत के ऊपर जाती है।।२०६६।। पश्चात् वह नदी पर्वत पर से आकर और प्रतिसीतोद नामक कुण्ड में गिरकर उसके उत्तर तोरणद्वार से निकलती हुई उत्तम मार्ग से मेरुपर्वत पर्यन्त जाती है। पुनः दो कोसों से मेरु पर्वत को न पाकर अर्थात् मेरुपर्वत से दो कोस इधर ही रहकर उक्त नदी पश्चिम की ओर मुड़ जाती है।।२०६७-२०६८।। अनन्तर वह नदी उतने मात्र (दो कोस) अंतर से सहित हो कुटिलरूप से विद्युत्प्रभ पर्वत की गुफा के उत्तरमुख से भद्रशालवन में प्रवेश करती है।२०६९।। मेरु के बहुमध्यभाग को अपना मध्यप्रणिधि करके वह नदी पश्चिममुख से विदेहक्षेत्र के बहुमध्य में होकर जाती है।।२०७०।। देवकुरुक्षेत्र में उत्पन्न हुई नदियाँ चौरासी हजार हैं। इनमें से बयालीस हजार नदियाँ सीतोदा के दोनों तीरों में से प्रत्येक तीर में प्रवेश करती हैं।।२०७१।। ८४०००। अपरविदेह क्षेत्र में उत्पन्न हुई सम्पूर्ण नदियाँ चार लाख अड़तालीस हजार अड़तालीस हैं, जो सीतोदा में प्रवेश करती हैं।।२०७२।। ४४८०३८। पश्चात् जम्बूद्वीप की जगती के

---

१. तिलोयपण्णत्ति ४०६। २. तिलोयपण्णत्ति पृ० ४०७-४०८। ३. तिलोयपण्णत्ति पृ० ४०८।

कच्छा विदेहक्षेत्र में विजयार्ध पर्वत के ९ कूट

परचक्कभीदिरहिदो अण्णायपयट्टणेहिं परिहीणो। अइवट्ठिअणावट्ठीपरिचत्तो सव्वकालेसुं।।२२५१।।
अवदुंबरफलसरिसा धम्माभासा ण तत्थ सुव्वंति। सिववम्मविण्हुचंडीरविससिबुद्धाण ण पुराणिं।।२२५२।।
पासंडसमयचत्तो सम्माइट्ठीजणोधसंछण्णो। णवरि विसेसो केसिं पयट्टदे भावमिच्छत्तं।।२२५३।।
मागधवरतणुवेहि य पभासदीवेहिं कच्छविजयस्स। सोहेदि उवसमुद्दो वेदीचउतोरणेहिं जुदो।।२२५४।।
अंतोमुहुत्तमवरं कोडी पुव्वाण होदि उक्कस्सं। आउस्स य परिमाणं णराण णारीण कच्छम्मि।।२२५५।।
पुव्व १००००००१।
उच्छेहो दंडाणिं पंचसया विविहवण्णमावण्णं। चउसट्ठी पुट्ठट्ठी अंगेसु णराण णारीणं।।२२५६।।
५००। ६४।
कच्छस्स य बहुमज्झे सेलो णामेण दीहविजयड्ढो। जोयणसयद्धवासो समदीहो देसवासेणं।।२२५७।।
५०। २२१२। ७।
८
सव्वाओ वण्णणाओ भणिदा वरभरहखेत्तविजड्ठो। एदस्सिं णादव्वं णवरि विसेसं णिरूवेमो।।२२५८।।
विज्जाहराण तस्सिं पत्तेक्कं दोतडेसु णयराणिं। पंचावण्णा होंति हु कूडाण य अण्णणामाणिं।।२२५९।।
सिद्धक्खकच्छखंडा पुण्णाविजयड्ढमाणितिमिसगुहा। कच्छो वेसमणो णव णामा एदस्स कूडाणं।।२२६०।।

बिलद्वार में से जाकर वह नदी परिवार नदियों से युक्त होती हुई लवणसमुद्र में प्रवेश करती हैं।।२०७३।। दो तटवेदियों और उपवन खण्डों से अभिराम उस सीतोदा नदी का विस्तार व गहराई आदि हरिकान्ता नदी से दूनी है[१]।।२०७४।।

कच्छा विदेहक्षेत्र में विजयार्ध पर्वत के ९ कूट

यह देश सदा परचक्र की भीति से रहित, अन्याय प्रवृत्तियों से विहीन और अतिवृष्टि-अनावृष्टि से परित्यक्त है।।२२५१।। उदुम्बरफलों के सदृश धर्माभास वहाँ सुने नहीं जाते। शिव, ब्रह्मा, विष्णु, चण्डी, रवि, शशि व बुद्ध के मंदिर वहाँ नहीं हैं।।२२५२।। वह देश पाषण्ड सम्प्रदायों से रहित और सम्यग्दृष्टि जनों के समूह से व्याप्त है। विशेष इतना है कि यहाँ किन्हीं जीवों के भावमिथ्यात्व विद्यमान रहता है।।२२५३।। वेदी और चार तोरणों से युक्त कक्षादेश का उपसमुद्र मागध, वरतनु एवं प्रभास द्वीपों से शोभायमान है।।२२५४।। कच्छादेश में नर-नारियों की आयु का प्रमाण जघन्यरूप से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टरूप से पूर्वकोटिमात्र है।।२२५५।। पूर्व १००००००। वहाँ पर विविध वर्णों से युक्त नर-नारियों के शरीर की ऊँचाई पाँच सौ धनुष और पृष्ठभाग की हड्डियाँ चौंसठ होती हैं।।२२५६।। ५००। ६४। कच्छादेश के बहुमध्यभाग में पचास योजन विस्तार वाला और देशविस्तार समान लंबा दीर्घ विजयार्द्ध नामक पर्वत है।।२२५७।। ५०। २२१२-७/८। उत्तम भरतक्षेत्र सम्बन्धी विजयार्द्ध के विषय में जिस प्रकार सम्पूर्ण वर्णन किया गया है उसी प्रकार इस विजयार्द्ध का भी वर्णन समझना चाहिए। उक्त पर्वत की अपेक्षा यहाँ जो कुछ विशेषता है उसका निरूपण किया जाता है।।२२५८।। इस पर्वत के

---

१. तिलोयपण्णत्ति, चतुर्थमहाधिकार पृ. ४०८-४०९।

सव्वेसुं कूडेसुं मणिमयपासादसोहमाणेसुं। चेट्ठंति अट्ठकूडे ईसाणिंदस्स वाहणा देवा।।२२६१।।
णीलाचलदक्खिणदो उववणवेदीए दक्खिणे पासे। कुंडाणि दोण्णि वेदीतोरणजुत्ताणि चेट्ठंति।।२२६२।।
ताणं दक्खितोरणदारेणं णिग्गदा दुवे सरिया। रत्तारत्तोदक्खा पुह पुह गंगाय सारिच्छा।।२२६३।।
रत्तारत्तोदाहिं वेयड्ढणगेण कच्छविजयम्मि। सव्वत्थ समाणाओ छक्खंडा णिम्मिदा एदे।।२२६४।।
रत्तारत्तोदाओ जुदाओ चोद्दससहस्समेत्ताहिं। परिवारवाहिणीहिं णिच्चं पविसंति सीदोदं।।२२६५।।
१४०००।
सीदाए उत्तरदो विजयड्ढगिरिस्स दक्खिणे भागे। रत्तारत्तोदाणं अज्जाखंडं भवेदि विच्चाले।।२२६६।।
णाणाजणवदणिहिदो अट्ठारसदेसभाससंजुत्तो। कुंजरतुरगादिजुदो णरणारीमंडिदो रम्मो[१]।।२२६७।।

ऊपर दोनों तटों में से प्रत्येक तट पर विद्याधरों के पचपन नगर हैं, और कूटों के नाम भिन्न-भिन्न हैं।।२२५९।। सिद्ध, कच्छा, खण्डप्रपात, पूर्णभद्र, विजयार्द्ध, माणिभद्र, तिमिश्रगुह, कच्छा और वैश्रवण, ये क्रमशः इस विजयार्द्ध के ऊपर स्थित नौ कूटों के नाम हैं।।२२६०।। मणिमय प्रासादों से शोभायमान इन सब कूटों में से आठ कूटों पर ईशानेन्द्र के वाहनदेव रहते हैं।।२२६१।। नीलपर्वत से दक्षिण की ओर उपवनवेदी के दक्षिणपार्श्व भाग में वेदी तोरणयुक्त दो कुण्ड स्थित हैं।।२२६२।। इन कुण्डों के दक्षिण तोरणद्वार से गंगानदी के सदृश पृथक्-पृथक् रक्ता और रक्तोदा नामक दो नदियाँ निकली हैं।।२२६३।। रक्ता-रक्तोदा और विजयार्द्ध पर्वत से कच्छादेश में सर्वत्र समान ये छह खण्ड निर्मित हुए हैं।।२२६४।। चौदह हजारप्रमाण परिवार नदियों से युक्त ये रक्ता-रक्तोदा नदियाँ नित्य सीतानदी में प्रवेश करती हैं।।२२६५।। १४०००। सीतानदी के उत्तर और विजयार्द्धगिरि के दक्षिण भाग में रक्ता-रक्तोदा के मध्य आर्यखण्ड है।।२२६६।। यह आर्यखण्ड अनेक देशों से सहित, अठारह देशभाषाओं से संयुक्त, हाथी व अश्वादिकों से युक्त और नर-नारियों से मण्डित हुआ रमणीय है।।२२६७।।

उपसर्गविजयि श्रीपार्श्वनाथ वंदना

-उपजातिछंद-

परीषहैर्वातकृतैस्तदासौ,
महामना धीरगभीरपार्श्वः।
अकम्पचित्तः कनकाचलो वै,
तं पार्श्वनाथं त्रिविधं प्रवंदे।।5।।

वायु भयंकर उपसर्गों से, महामना पारस प्रभु धीर।
अचलितमना मेरु सम पारस, त्रयविधि वंदूं महागभीर।।

-गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी

---

१. तिलोयपण्णत्ति अधिकार-४, पृ. ४२९-४३०।

कूटादि के जिनमंदिर

सुमेरू के नन्दनवन में बलभद्र आदि ९ कूट हैं।

(त्रिलोकसार से)

अथ नन्दनवनस्थव्यन्तरं सपरिकरमाह—

बलभद्दणामकूडे णंदणगे मेरुपव्वदीसाणे। उदयमहियसयदलगो तण्णामो वेंतरो वसई[1]।।६२४।।

बलभद्रनामकूटे नन्दनगे मेरुपर्वतैशान्याम्। उदयमहीकशतदलकः तन्नामा व्यन्तरो वसति।।६२४।।

बलभद्द। मेरुपर्वतैशान्यां दिशि नन्दनस्थे शतोदयशतभूव्यासे तद्दलाग्रे बलभद्रनामकूटे बलभद्रनामा व्यन्तरो वसति।।६२४।।

अथ नन्दनवनस्थवसतीनामुभयपार्श्वस्थकूटादीन् गाथात्रयेणाह—

णंदण मंदर णिसहा हिमवं रजदो य रुजयसायरया। वज्जो कूडा कमसो णंदणवसईण पासदुगे।।६२५।।

हेममया तुंगधरा पंचसयं तद्दलं मुहस्स पमा। सिहिरगिहे दिक्कण्णा वसंति तासिं च णाममिणं।।६२६।।

मेहंकरमेहवदी सुमेहमेहादिमालिणी तत्तो। तोयंधरा विचित्ता पुप्फादिममालिणिंदिदया।।६२७।।

नन्दनो मन्दरः निषधः हिमवान् रजतश्च रुचकसागरकौ। वज्रः कूटाः क्रमशः नन्दनवसतीनां पार्श्वद्विके।।६२५।।

हेममयाः तुङ्गधराः पञ्चशतं तद्दलं मुखत्य प्रमा। शिखरगृहे दिक्कन्याः वसन्ति तासांच नामानीमानि।।६२६।।

मेघङ्करा मेघवती सुमेघा मेघादिमालिनी ततः। तोयन्धरा विचित्रा पुष्पादिममाला अनिन्दितका।।६२७।।

णंदण। नन्दनो मन्दरो निषधो हिमवान् रजतश्च रुचकः सागरो वज्राख्याः एते कूटाः क्रमशो नन्दनस्थवसतीनामुभयपार्श्वे तिष्ठन्ति।।६२५।।

हेममया। ते कूटा हेममयाः तेषामुदयभूव्यासौ प्रत्येकं पञ्चशतयोजनानि ५०० तद्दलं २५० मुखव्यासप्रमाणं तेषां शिखरगृहेषु दिक्कन्या वसन्ति। तासां चेमानि नामान्यग्रे वक्ष्यमाणानि।।६२६।।

मेहंकर। मेघङ्करा मेघवती सुमेघा मेघमालिनी ततस्तोयन्धरा विचित्रा पुष्पमाला अनिन्दिताख्याः स्युः।।६२७।।

सुमेरू के नन्दनवन में बलभद्र आदि ९ कूट हैं।

(त्रिलोकसार से)

नन्दनवन में रहने वाले व्यन्तर देव एवं उसके परिकर का कथन करते हैं—

गाथार्थ—मेरु पर्वत की ऐशान दिशा स्थित नन्दनवन में सौ योजन ऊँचा तथा भूमि पर सौ योजन चौड़ा और ऊपर ५० योजन चौड़ा बलभद्र नाम का कूट है जिसमें बलभद्र नाम का व्यन्तर देव निवास करता है।।६२४।।

नन्दनवन में स्थित भवनों के दोनों पार्श्व भागों में जो कूटादिकों की अवस्थिति है उन्हें तीन गाथाओं द्वारा कहते हैं—

गाथार्थ—१ नन्दन, २ मन्दर, ३ निषध, ४ हिमवान्, ५ रजत, ६ रुचक, ६ सागर और ८ वज्र ये आठ कूट क्रम से नन्दनवन में स्थित चार भवनों के दोनों पार्श्व भागों में स्थित हैं। ये आठों कूट स्वर्णमयी हैं, इनकी ऊँचाई पाँच सौ योजन, नीचे भूमि व्यास (चौड़ाई) पाँच सौ योजन तथा ऊपर मुख व्यास ढ़ाई सौ योजन है। इन कूटों के शिखरों पर स्थित भवनों में दिक्कुमारियाँ रहती हैं जिनके मेघङ्करा, मेघवती, सुमेघा, मेघमालिनी, तोयन्धरा, विचित्रा, पुष्पमाला और अनिन्दिता नाम हैं।।६२५,६२६,६२७।।

---

१. त्रिलोकसार पृ. ५२६ से ५२७ तक।

हिमवान आदि छह पर्वत एवं विजयार्ध पर्वत के कूटों का वर्णन

एक्कारसट्ठणवणव अट्ठे क्कारस हिमादिकूलाणि। वेयड्ढाणं णवणव पुव्वगकूलम्हि जिणभवणं[1]।।७२०।।

एकादशाष्ट नव नव अष्टैकादश हिमादिकूटानि। विजयार्धानां नव नव पूर्वगकूटे जिनभवनानि।।७२०।।

एक्का। एकादश ११ अष्ट ८ नव ९ नव ९ अष्ट ८ एकादश ११ प्रमितानि यथासंख्यं हिमवदादि-कुलपर्वतोह्यपरि स्थितकूटानि विजयार्धानां तूपरि नव ९ नव ९ कूटानि। तत्र पूर्वदिग्गतकूटे जिनभवनानि सन्ति।।७२०।।

अर्थ उक्तकूटानां नामादिकं गाथादशकेन निगदति—

कमसो सिद्धायदणं हिमवं भरहं इला य गंगा य। सिरिकूडरोहिदस्सा सिंधु सुरा हेमवदय वेसवणं।।७२१।।

पढमे जिणिंदगेहं देवीओ जुवदिणामकूडेसु। सेसेसु कूडणामा वेंतरदेवावि णिवसंति।।७२२।।

वट्टा सव्वे कूटा रयणमया सगणगस्स तुरियुदया। तत्तिय भूवित्थारा तदद्धवदणा हु सव्वत्थ।।७२३।।

क्रमशः सिद्धायतनं हिमवान् भरतं इला च गङ्गा च। श्रीकूटं रोहितास्या सिन्धुः सुरा हैमवतकं वैश्रवणं।।७२१।।

प्रथमे जिनेन्द्रगेहं देव्यो युवतिनामकूटेषु। शेषेषु कूटनामाना व्यन्तरदेवा अपि निवसन्ति।।७२२।।

वृत्ताः सर्वे कूटा रत्नमयाः स्वकनगस्य तुर्योदयाः। तावद्भूविस्ताराः तदर्धवदनाः हि सर्वत्र।।७२३।।

हिमवान आदि छह पर्वत एवं विजयार्ध पर्वत के कूटों का वर्णन

अब हिमवन् आदि कुलाचल और विजयार्धों के ऊपर स्थित कूटों की संख्यादि कहते हैं—

गाथार्थ—हिमवदादि पर्वतों पर क्रमशः ग्यारह, आठ, नौ, नौ, आठ और ग्यारह कूट हैं तथा विजयार्ध पर्वतों के ऊपर नौ-नौ कूट हैं। पूर्व दिशा सम्बन्धी कूटों पर **जिनभवन** हैं।।७२०।

विशेषार्थ—हिमवन् पर्वत के ऊपर ११, महाहिमवन् पर ८, निषध पर ९, नील कुलाचल पर ९, रुक्मी कुलाचल पर ८ और शिखरिन् कुलाचल पर ११ कूट अवस्थित हैं। प्रत्येक विजयार्ध पर्वत पर ९, ९ कूट हैं। ये कूट पर्वतों के ऊपर और गोल आकार के होते हैं। ये नीचे बहुत चौड़े और उपरिम भाग में कम चौड़े होते हैं। **पूर्व दिशागत सिद्धायतन नामा कूटों के ऊपर जिनमन्दिर हैं।**

उपर्युक्त कूटों के नामादिक दश गाथाओं द्वारा कहते हैं—

गाथार्थ—(हिमवन् कुलाचल के ऊपर स्थित ११ कूटों के नाम) क्रम से १ सिद्धायतन, २ हिमवान्, ३ भरत, ४ इला, ५ गङ्गा, ६ श्रीकूट, ७ रोहितास्या, ८ सिन्धु, ९ सुराकूट, १० हैमवतक, और वैश्रवण हैं। इनमें प्रथम कूट पर जिनेन्द्र भवन, स्त्री लिङ्ग नामधारी कूटों पर व्यन्तर देवियाँ और शेष कूटों पर कूट नामधारी व्यन्तर देव निवास करते हैं वे सर्व कूट गोल और रत्नमय हैं। सर्व कूटों की ऊँचाई अपने-अपने पर्वतों की ऊँचाई का चतुर्थ भाग है। भू व्यास भी इतना ही है तथा मुखव्यास भूव्यास का अर्ध प्रमाण है।।७२१, ७२२, ७२३।।

विशेषार्थ—क्रम से सिद्धायतन, हिमवान्, भरत, इला, गंगा, श्रीकूट, रोहितास्या, सिन्धु, सुरा, हैमवतक और वैश्रवण ये ११ कूट हिमवन् कुलाचल के ऊपर स्थित हैं। इनमें से प्रथम सिद्धायतन कूट के ऊपर जिन मन्दिर हैं, तथा स्त्री लिंग नाम धारी इला, गंगा श्रीकूट, रोहितास्या, सिन्धु और सुरा कूटों पर व्यन्तर देवांगनाएँ

---

१. त्रिलोकसार पृ. ५७१ से ५७४ तक।

कमसो। क्रमशस्तेषां नामानि सिद्धायतनं हिमवान् भरतं इला च गङ्गा च श्रीकूटं रोहितास्या सिन्धुः सुरा हैमवतकं वैश्रवणं।।७२१।।

पढमे। तत्र प्रथमकूटे जिनेन्द्रगेहं स्त्रीलिङ्गाख्यकूटेषु व्यन्तरदेव्यो निवसन्ति। शेषेषु तत्कूटनामव्यन्तरदेवा निवसन्ति।।७२२।।

वट्टा। ते सर्वे कूटाः वृत्ताः रत्नमयाः स्वकीय स्वकीयनगस्य चतुर्थांशोदयाः तावन्मात्रभूविस्तारास्तदर्धवदनाः सर्वत्र खलु भवन्ति।।७२३।।

तो सिद्ध महाहिमवं हेमवदं रोहिदा हिरीकूडं। हरिकंता हरिवरिसं वेलुरियं पच्छिमं कूडं।।७२४।।

ततः सिद्ध महाहिमवान् हैमवतं रोहिता ह्रीकूटं। हरिकान्ता हरिवर्ष वैडूर्यं पश्चिमं कूटं।।७२४।।

तो। पश्चिमं चरमं इत्यर्थः। शेषं छायामात्रमेवार्थः।।७२४।।

सिद्धं णिसहं च हरिवरिसं पुव्वविदेह हरिधिदीकूडं। सीतोदा णाममदो अवरविदेहं च रुजगंतं।।७२५।।

सिद्धं निषधं च हरिवर्ष पूर्वविदेहं हरिधृतिकूटं। सीतोदा नाम अतः अपरविदेहं च रुचकान्तम्।।७२५।।

सिद्धं। सिद्धं निषधं च हरविर्षं पूर्वविदेहं हरिकूटं धृतिकूटं सीतोदा नाम अतोऽपरविदेहं चान्तं रुचकं।।७२५।।

सिद्धं णीलं पुव्वविदेहं सीदा य कित्ति णरकंता। अवरविदेहं रम्मगमपदंसणमंतिमं णीले।।७२६।।

सिद्धं नीलं पूर्वविदेहं सीता च कीर्तिः नरकान्ता। अपरविदेहं रम्यकं अपदर्शनं अन्तिमं नीले।।७२६।।

सिद्धं। छायामात्रमेवार्थः।।७२६।।

निवास करती हैं और अवशेष कूटों पर अपने-अपने कूटनामधारी व्यन्तर देव रहते हैं। वे सर्व कूट रत्नमय और गोल आकार वाले हैं। इन कूटों की ऊँचाई अपने पर्वत की ऊँचाई के चौथाई भाग प्रमाण हैं, ऊँचाई प्रमाण सदृश ही भू-व्यास और भू-व्यास के अर्धभाग प्रमाण मुख व्यास है। हिमवन् पर्वत १०० योजन ऊँचा है, अतः कूटों की ऊँचाई १००/४ = २५ योजन, जमीन पर चौड़ाई २५ योजन और ऊपर की चौड़ाई १२-१/२ योजन प्रमाण है।

गाथार्थ—(महाहिमवन् पर्वत पर) १ सिद्धकूट २ महाहिमवन् ३ हैमवत ४ रोहिता ५ ह्रीकूट ६ हरिकान्ता ७ हरिवर्ष ८ वैडूर्य नामके कूट हैं।।७२४।।

विशेषार्थ—उपर्युक्त आठ कूटों में से सिद्ध कूट पर जिनभवन है। स्त्रीलिंगधारी कूटों पर (व्यन्तर) देवांगनाएँ और शेष कूटों पर व्यन्तर देवों का निवास है। इन सभी कूटों की ऊँचाई ५० योजन, भूव्यास ५० योजन और मुखव्यास २५ योजन है।

गाथार्थ—१ सिद्धकूट, २ निषध, ३ हरिवर्ष, ४ पूर्वविदेह, ५ हरिकूट, ६ धृतिकूट, ७ सीतोदा कूट, ८ अपर विदेह कूट और अन्तिम रुचक कूट निषध पर्वत पर हैं।।७२५।।

विशेषार्थ—जिनगृह और देवों के निवास आदि पूर्वोक्त प्रकार ही हैं किन्तु यहाँ के कूटों की ऊँचाई १०० योजन, भूव्यास १०० योजन और मुखव्यास ५० योजन है।

गाथार्थ—१ सिद्ध २ नील ३ पूर्वविदेह ४ सीता ५ कीर्ति ६ नरकान्ता ७ अपरविदेह ८ रम्यक और अन्तिम ९ अपदर्शन ये ९ कूट नील पर्वत के ऊपर हैं।।७२६।।

विशेषार्थ—इनका सर्व विशेष वर्णन निषध पर्वत स्थित कूटों के समान ही है।

सिद्धं रुम्मी रम्मग णारी बुद्धी य रुप्पकूलक्खा। हेरण्णं कूडमदो मणिकंचणमट्ठमं होदि।।७२७।।

सिद्धं रुक्मी रम्यकं नारी बुद्धिश्च रूप्यकूलाख्या। हैरण्यं कूटमतो मणिकाञ्चनमष्टमं भवति।।७२७।।

सिद्धं। छायामात्रमेवार्थः।।७२७।।

सिद्धं सिहरि य हेरण्णं रसदेवी तदो य रत्तक्खा। लच्छी सुवण्ण रत्तवदी गंधवदीय कूडमदो।।७२८।।

एरावदमणिकंचणकूडं सिहरिम्हि सव्वसेलाणं। मूले सिहरेवि हवे दहेवि वणसंडमेदस्स।।७२९।।

गिरिदीहो जोयणदलवासो वेदी दुकोसतुंगजुदा। धणुपणसयवासा णगवणणदिदहपहदिएसु समा।।७३०।।

सिद्धं शिखरी च हैरण्यं रसदेवी ततश्च रक्ताख्या। लक्ष्मीः सुवर्णं रक्तवती गन्धवती कूटमतः।।७२८।।

ऐरावतमणिकाञ्चनकूटं शिखरे सर्वशैलानाम्। मूले शिखरेऽपि भवेत् ह्रदेऽपि वनखण्डमेतस्य।।७२९।।

गिरिदैर्घ्यं योजनदलव्यासं वेदी द्विक्रोशतुङ्गयुता। धनुः पञ्चशतव्यासा नगवननदीह्रदप्रभुतिषु समाः।।७३०।।

सिद्धं। छायामात्रमेवार्थः।।७२८।।

एरावद। ऐरावतं मणिकाञ्चनकूटं ११ शिखरे पर्वते सर्वेषां शैलानां मूले शिखरेऽपि ह्रदेऽपि वनखण्डं भवेत्। एतस्य वनखण्डत्य।।७२९।।

गिरि। गिरिदैर्घ्यमेव दैर्घ्यं योजनार्धव्यासं तस्यवेदी तु धनुः पञ्चशतव्यासा क्रोशद्वयोत्तुङ्गयुता स्यात्। सा वेदी नगवननदीह्रदप्रभुतिषु सर्वत्र समाना।।७३०।।

गाथार्थ—१ सिद्ध २ रुक्मी ३ रम्यक ४ नारी ५ बुद्धि ६ रुप्यकूला ७ हैरण्यकूट और ८ मणिकाञ्चन ये आठ कूट रुक्मी कुलाचल के ऊपर हैं।।७२७।।

विशेषार्थ—इनका सभी वर्णन महाहिमवन् पर्वत पर स्थित कूटों के समान ही है।

गाथार्थ—१ सिद्धायतन २ शिखरी ३ हैरण्य ४ रसदेवी ५ रक्तानाम ६ लक्ष्मी ७ सुवर्ण ८ रक्तवती ९ गन्धवती १० ऐरावत ११ मणिकाञ्चन, ये ११ कूट शिखरिन पर्वत पर स्थित है। सभी पर्वतों के मूल में, शिखर पर और ह्रदों के चारों ओर वन हैं। इन वनखण्डों की लम्बाई अपने-अपने पर्वतों की लम्बाई प्रमाण है, तथा व्यास (चौड़ाई) अर्ध योजन प्रमाण है। वनखण्डों की वेदी दो कोश ऊँची और ५०० धनुष चौड़ी है। पर्वत, वन नदी और ह्रद आदि सभी की वेदियों का प्रमाण समान है।।७२८, ७२९, ७३०।।

विशेषार्थ—शिखरिन् पर्वत स्थित उपर्युक्त ११ कूटों की ऊँचाई आदि का तथा उनमें निवास करने वाले व्यन्तर आदि देवों का वर्णन हिमवन् शैल स्थित कूटों के सदृश ही है। समस्त कुलाचलों के मूल भाग में और शिखर अर्थात् उपरिम भाग में तथा द्रहों के चारों ओर भी वन हैं। इन वन खण्डों की लम्बाई कुलाचलों की लम्बाई प्रमाण और चौड़ाई अर्ध योजन है। वन खण्डों की वेदी दो कोश ऊँची और ५०० धनुष चौड़ी है। पर्वत, वन, नदी और ह्रद आदि सभी की वेदियों का प्रमाण (ऊँचाई और चौड़ाई) सदृश ही है।

विशेषार्थ—जम्बूद्वीप में ३११ पर्वतों की ३११ ही मणिमय वेदियाँ हैं तथा ९० कुण्डों की ९० और २६ द्रहों की २६ ही मणिमय वेदियाँ हैं। नदियों के अपने प्रमाण से वेदियों का प्रमाण दूना है।

इसी कहे हुए अर्थ का विशेष वर्णन करते हैं—जम्बूद्वीप में १ सुदर्शन मेरु, ६ कुलाचल, ४ यमकगिरि, २००

भरत-ऐरावत के विजयार्ध के कूटों के नाम

अथ भरतैरावस्थविजयार्धकूटान् तत्रस्थदेवांश्च गाथाचतुष्टयेनाह—

सिद्धं दक्खिणअद्धादिमभरहं खंडयप्पवादमदो। तो पुण्णभद्द वेयड्ढकुमारं माणिभद्दक्खं[१]।।७३२।।

काञ्चन पर्वत, ८ दिग्गज पर्वत, १६ वक्षार पर्वत, ४ गजदन्त, ३४ विजयार्ध पर्वत, ३४ वृषभाचल और ४ नाभिगिरि हैं, इन सबका योग करने पर (१ + ६ + ४ + २०० + ८ + १६ + ४ + ३४ + ३४ + ४)=३११ पर्वत होते हैं।

गङ्गा, सिन्धु, रोहित्, रोहितास्या आदि चौदह महानदियाँ कुलाचल पर्वतों से जहाँ नीचे गिरती हैं वहाँ (नीचे) कुण्ड हैं जिनकी संख्या १४ है। बारह विभङ्गा नदियों के उत्पत्ति कुण्डों की संख्या १२, बत्तीस विदेह देशों में से प्रत्येक देश में गंगा सिन्धु समान दो-दो नदियाँ कुण्डों से निकलती हैं, अतः वहाँ के कुण्डों का प्रमाण ६४ है, इस प्रकार ये सब (१४ + १२ + ६४) = ९० कुण्ड होते हैं।

छह कुलाचलों पर ६ ह्रद, सीता नदी में १० और सीतोदा नदी में भी १० इस प्रकार कुल ह्रदों की संख्या (६ + १० + १०) = २६ है।

भरतैरावत क्षेत्र स्थित गंगा-सिन्धु, रक्ता और रक्तोदा इन चार महानदियों में से प्रत्येक की परिवार नदियाँ १४००० हैं अतः अपने गुणकार का गुणा करने पर कुल प्रमाण (१४००० × ४) = ५६००० हुआ। हैमवत और हैरण्यवत क्षेत्र स्थित रोहित् रोहितास्या, स्वर्णकूला और रूप्यकूला, इन प्रत्येक की सहायक २८००० नदियाँ हैं अतः परिवार नदियों का कुल प्रमाण (२८००० × ४) = १,१२००० हुआ। हरि और रम्यक क्षेत्र स्थित हरित् हरिकान्ता, नारी और नरकान्ता, इन प्रत्येक की परिवार नदियाँ ५६००० हैं अतः उनका कुछ प्रमाण (५६००० × ४) = २,२४००० हुआ। देवकुरु उत्तरकुरु स्थित सीता-सीतोदा में प्रत्येक की परिवार नदियाँ ८४००० हैं अतः उनका कुल प्रमाण (८४००० × २) = १,६८००० हुआ। बारह विभङ्गा नदियों में प्रत्येक की परिवार नदियाँ २८००० हैं अतः २८००० × १२ = ३,३६००० परिवार नदियों का प्रमाण हुआ। बत्तीस विदेह देशों में गंगा-सिन्धु, रक्ता और रक्तोदा नाम की ६४ नदियाँ हैं तथा प्रत्येक की परिवार नदियाँ १४००० हैं अतः इनकी परिवार नदियों का कुल प्रमाण (१४००० × ६४) = ८,९६००० हुआ। इन सम्पूर्ण परिवार नदियों का योग करने पर (५६००० + ११२००० + २२४००० + १६८००० + ३३६००० + ८९६०००) = १७,९२००० कुल प्रमाण प्राप्त हुआ। यहाँ गुणकारस्वरूप मुख्य नदियों का प्रमाण (४ + ४ + ४ + २ + १२ + ६४) = ९० है। परिवार नदियों के प्रमाण में इन मुख्य नदियों का प्रमाण मिला देने पर (१७,९२००० + ९००) = १७,९२,०९० जम्बूद्वीप स्थित सम्पूर्ण नदियों का प्रमाण प्राप्त हुआ।

भरत-ऐरावत के विजयार्ध के कूटों के नाम

भरतैरावत स्थित विजयार्धों के कूट और उन पर अवस्थित देवों का वर्णन चार गाथाओं द्वारा करते हैं—

गाथार्थ—१. सिद्धकूट, २. दक्षिणार्ध भरतकूट, ३. खण्डप्रपात, ४. पूर्णभद्र, ५. विजयार्धकुमार, ६. मणिभद्र नामा कूट, ७. तमिस्रगुह कूट, ८. उत्तरभरत कूट और अन्तिम ९ वैश्रवण कूट ये भरतक्षेत्र स्थित विजयार्ध पर्वत पर ९ कूट हैं, तथा १ सिद्धकूट, २ उत्तरार्ध ऐरावत कूट, ३ तमिस्रगुह, ४ मणिभद्र, ५ विजयार्धकुमार,

---

१. त्रिलोकसार पृ. ५७७ से ५७९ तक।

तामिस्सगुहगमुत्तरभारहकूडं च वेसवण चरिमं। सिद्धुत्तरद्धतामिस्सादिमगुहगं च माणिभद्दमदो।।७३३।।

तो वेयड्ढकुमारं पुण्णादीभद्द खंडयपवादं। दक्खिणरेवतअद्धं वेसवणं पुव्वदो दुवेयड्ढे।।७३४।।

सिद्धं दक्षिणार्धादिमभरतं खण्डप्रपातमतः। ततः पूर्णभद्रं विजयार्धकुमारं माणिभद्राख्यं।।७३२।।

तामिश्रगुहमुत्तरभरतकूटं च वैश्रवणं चरमं। सिद्धोत्तरार्धतामिश्रादिमगुहं च माणिभद्रमतः।।७३३।।

ततो विजयार्धकुमारं पूर्णादिभद्रं खण्डप्रपातं। दक्षिणैरावतार्धं वैश्रवणं पूर्वतः द्विविजयार्धे।।७३४।।

सिद्धं। सिद्धकूटं दक्षिणार्धभरतं खण्डप्रपातं, ततः पूर्णभद्रं विजयार्धकुमारं माणिभद्राख्यं।।७३२।।

तामिस्स। तामिस्रगुहं उत्तरभरतकूटं चरमं वैश्रवणं। इत उपर्यैरावतविजयार्धकूटानि सिद्धकूटं उत्तरार्धैरावतं तमिस्रगुहं माणिभद्रमतः।।७३३।।

तो। ततो विजयार्धकुमारं पूर्णभद्रं खण्डप्रपातं दक्षिणैरावतार्धं वैश्रवणं ९ एतानि कूटानि १८ भरतैरावतस्थयोर्विजयार्धयोः भवन्ति।।७३४।।

कंचणयाणि खंडप्पवादए णट्टमाल तामिस्से। कदमालो छक्कूडे वसंति सगणामवाणसुरा।।७३५।।

क्रञ्चनमयानि खण्डप्रपाते नृत्यमालः तमिस्रे। कृतमालः षट्कुटेषु वसंति स्वकनामवानसुराः।।७३५।।

कंचण। तानि कूटानि काञ्चनमयानि, तत्र खण्डप्रपातकूटे नृत्यमालाख्यो व्यन्तरदेवोस्ति। तमिस्रकूटे कृतमालाख्यः इतरेषु षट्सु कूटेषु स्वकीयस्वकीयकूटनाम व्यन्तरदेवा वसन्ति।।७३५।।

अथ उक्तानां विजयार्धजिनालयानामुदयादित्रयमाह—

कोसायामं तद्दलवित्थारं तुरियहीणकोसुदयं। जिणगेहं कूडुवरिं पुव्वमुहं संठियं रम्मं।।७३६।।

क्रोशायामं तद्दलविस्तारं तुरीयहीनक्रोशोदयं। जिनगेहं कूटोपरि पूर्वमुखं संस्थितं रम्यं।।७३६।।

कोसा। सिद्धकूटस्योपरि क्रोशायामं २००० तदर्धविस्तारं १०००। चतुर्थांश ५०० हीनक्रोशोदयं १५०० पूर्वमुखं रम्यं जिनेन्द्रगेहं संस्थितं।।७३६।।

---

६ पूर्णभद्र, ७ खण्डप्रपात, ८ दक्षिणैरावतार्ध और ९ वैश्रवण ये ऐरावत क्षेत्र स्थित विजयार्ध पर्वत पर पूर्व दिशा से लगाकर क्रमपूर्वक हैं।।७३२, ७३३, ७३४।।

विशेषार्थ—उपर्युक्त ९ कूट भरतैरावत स्थित विजयार्ध पर्वतों पर हैं। ये पूर्व दिशा से प्रारम्भ कर क्रम से स्थित हैं।

गाथार्थ—भरतैरावत स्थित विजयार्धों के सभी १८ कूट काञ्चनमय हैं। इनमें से खण्डप्रपात नामक कूट पर नृत्यमाल और तमिस्र कूट पर कृतमाल तथा अन्य अवशेष कूटों पर अपने-अपने कूट नामधारी व्यन्तर देव निवास करते हैं।।७३५।।

उक्त विजयार्ध स्थित जिनालयों के उदय आदि तीन (उदय, व्यास और लम्बाई) कहते हैं—सिद्ध कूटों पर एक कोश लम्बे, अर्ध कोश चौड़े तथा चतुर्थ भाग हीन अर्थात् पौन कोश ऊँचे, पूर्वाभिमुख **अतिरमणीक जिन मन्दिर** हैं।।७३६।।

विशेषार्थ—भरतैरावत क्षेत्रों के दोनों विजयार्धों पर स्थित सिद्धकूटों के ऊपर २००० धनुष (१ कोश) लम्बे, १००० धनुष (१/२ कोस) चौड़े और १५०० धनुष (३/४ कोश) ऊँचे, पूर्वाभिमुख रमणीक जिनमन्दिर हैं।

चार गजदंत के कूटों के नाम

अथ गजदन्ताख्यानां वक्षाराणामितरवक्षाराणां च कूटसंख्यातान्नामादिकं गाथाष्टकेनाह—

णवसत्तय णवसत्तय ईसाणदिसा दुदंतसेलाणं। वक्खाराणं चउचउकूडं तण्णाममणुकमसो[1]।।७३७।।

नव सप्त च नव सप्त च ईशानदिशः द्विदन्तशैलानां। वक्षाराणां चत्वारि चत्वारि कूटानि तन्नामानि अनुक्रमशः।।७३७।।

णव। ईशानदिशः आरभ्य गजदन्तशैलानां क्रमेण कूटसंख्या नव ९ सप्त ७ नव सप्त च स्युः। इतरवक्षाराणां चत्वारि ४ चत्वारि कूटानि तेषां नामान्यनुक्रमशः कथयति।।७३७।।

सिद्धं मल्लवमुत्तरकउरव कच्छं च सागरं रजदं। पुण्णादिभद्द सीदा हरिसहकूडं हवे णवमे।।७३८।।

तो सिद्धं सोमणसं कूडं देवकुरु मङ्गलं विमलं। कंचण वसिट्ठमंते सिद्धं विज्जुप्पहं तत्तो।।७३९।।

देवकुरु पउम तवणं सोत्थियकूडं सदञ्जलं तत्तो। सीतोदा हरि चरिमं तो सिद्धं गंधमादणयं।।७४०।।

उत्तकुरु गंधादीमालिणि तो लोहिदक्खफलिहंते।
आणंदं सायरदुग तिया सुभोगा य भोगमालिणिया।।७४१।।
विमलदुगे वच्छादीमित्त सुमित्ता य वारिसेण बला।
तवणदुगे भोगंकर भोगवदी फलिहलोहिदे देवी।।७४२।।

सिद्धं माल्यवान् उत्तरकौरवं कच्छं च सागरं रजतं। पूर्णादिभद्रं सीता हरिसहकूटं भवेत् नवमं।।७३८।।

ततः सिद्धं सौमनसं कूटं देवकुरु मङ्गलं विमलं। काञ्चनं अवशिष्टमन्ते सिद्धं विद्युत्प्रभं ततः।।७३९।।

चार गजदंत के कूटों के नाम

अब गजदन्त हैं नाम जिनके, ऐसे चार वक्षार और अन्य १६ वक्षार पर्वतों पर स्थित कूटों की संख्या और उनके नामादिक आठ गाथाओं द्वारा कहते हैं—

गाथार्थ—ऐशान दिशा से प्रारम्भ कर चारों गजदन्त पर्वतों पर क्रम से नव, सात, नव और सात कूट हैं तथा सोलह वक्षार पर्वतों पर चार, चार कूट हैं उनके नाम अनुक्रम से (निम्न प्रकार) हैं।।७३७।।

विशेषार्थ—ऐशान दिशा से प्रारम्भ कर चार गजदन्त पर्वतों के ऊपर क्रम से कूटों की संख्या ९, ७, ९ और ७ है तथा अन्य १६ वक्षार पर्वतों के ऊपर चार-चार कूट हैं। उन कूटों के नाम अनुक्रम से कहते हैं।

गाथार्थ—१ सिद्धकूट, २ माल्यवान्, ३ उत्तर कौरव, ४ कच्छ, ५ सागर, ६ रजत, ७ पूर्णभद्र, ८ सीता और ९ हरिसहकूट हैं। ये नौ कूट ऐशान दिशागत माल्यवान् गजदन्त पर स्थित हैं।

गाथार्थ—इसके बाद १ सिद्धकूट, २ सौमनस, ३ देवकुरु, ४ मङ्गल, ५ विमल, ६ काञ्चन और अन्तिम ७ वशिष्ट नाम के सात कूट दूसरे सौमनस गजदन्त पर्वत के ऊपर स्थित हैं। इसके बाद १ सिद्धकूट, २ विद्युत्प्रभ, ३ देवकुरु, ४ पद्म, ५ तपन, ६ स्वस्तिककूट, ७ शतज्वाल, ८ सीतोदा और अन्तिम ९ हरिकूट, ये ९ कूट तीसरे विद्युतप्रभ गजदन्त के ऊपर अवस्थित हैं। इसके बाद १ सिद्धकूट, २ गन्धमादन, ३ उत्तरकुरु, ४ गन्धमालिनी, ५ लोहिताक्ष, ६ स्फटिक और अन्तिम ७ आनन्द ये सात कूट चौथे गन्धमादन गजदन्त के ऊपर अवस्थित हैं। इन उपर्युक्त कूटों में से सागर एवं रजतकूटों पर सुभोगा और भोगमालिनी व्यन्तर देवियाँ निवास

---

१. त्रिलोकसार पृ. ५७९ से ५८१ तक।

देवकुरुः पद्मं तपनं स्वस्तिककूटं शतज्वालं ततः। सीतोदा हरि चरमं ततः सिद्धं गन्धमादनकं।।७४०।।

उत्तकुरुः गन्धादिमालिनी ततो लोहिताक्षं स्फटिकमन्ते। आनन्दं सागरद्विके स्त्रियौ सुभोगा च भोगमालिनी।।७४१।।

विमलद्विके वत्सादिमित्रा सुमित्रा च वारिषेणा बला। तपनद्विके भोगङ्करी भोगवती स्फटिकलोहितयोः देव्यौ।।७४२।।

सिद्धं। सिद्धकूटं माल्यवान् उत्तरकौरवं कच्छं च सागरं रजतं पूर्णभद्रं सीता हरिसहकूटं नवमं भवेत्।।७३८।।

तो। ततः सिद्धकूटं सौमनसकूटं देवकुरुकूटं मङ्गलं विमलं काञ्चनं अन्ते अवशिष्टं ७ ततः सिद्धकूटं विद्युत्प्रभं।।७३९।।

देव। देवकुरुः पद्मं तपनं स्वस्तिककूटं शतज्वालं ततः सीतोदा चरिमं हरिकूटं ९ ततः सिद्धकूटं गन्धमादनं।।७४०।।

उत्तर। उत्तरकुरुः गन्धमालिनी ततो लोहिताक्षं स्फटिकं अन्ते आनन्दं ७ तेषां मध्ये सागर-रजतकूटयोः सुभोगाभोगमालिन्याख्ये व्यन्तरदेव्यौ स्थिते।।७४१।।

विमल। विमलकाञ्चनकूटयोः वत्समित्रासुमित्राख्ये व्यन्तरदेव्यौ स्तः, तपनस्वस्तिककूटयोर्वारिषेणबलाख्ये व्यन्तरदेव्यौ स्तः, स्फटिकलोहितकूटयोर्भोगङ्करीभोगवत्याख्ये व्यन्तरदेव्यौ स्तः।।७४२।।

सोलह वक्षार के कूटों के नाम

सिद्धं वक्खारक्खं हेट्ठु वरिमदेसणामकूडदुगं। दुगणव पण सोलं दुगकला य वक्खारदीहत्तं[१]।।७४३।।

सिद्धं वक्षाराख्यं अधस्तनोपरिमदेशनामकूटद्वयं। द्विनव पञ्च षोडश द्विककला च वक्षारदीर्घत्वम्।।७४३।।

सिद्धं। इत उपरि वक्षारकूटानि, सिद्धकूटं वक्षाराख्यं सर्ववक्षाराणामधस्तनोपरिमदेशनाम कच्छासुकच्छादि-कूटद्वयमित्येतान्येव चत्वारि सर्ववक्षाराणां कूटनामानि भवन्ति। वक्षाराणां दैर्घ्यं तु द्विनव पञ्च षोडशयोजनानि एकोनविंशतिद्विकलाधिकानि भवन्ति। कथमेतत्? 'चुलसीदिछत्तेत्तीसा चत्तारिकिलेति' गाथोक्तविदेहविष्कम्भे ३३६८४-४/१९ सीतासीतोदयोः विवक्षितनदीव्यास ५०० मपनीय ३३१८४-४/१९ अर्धीकृते १६५९२-२/१९ वक्षारदैर्घ्यमायाति।।७४३।।

करती हैं। विमल और काञ्चन कूटों पर वत्समित्रा और सुमित्रा, तपन और स्वस्तिक कूटों पर वारिषेणा और अबला तथा स्फटिक और लोहित कूटों पर भोगङ्करा और भोगवती नाम की व्यन्तर देवियाँ निवास करती हैं।।७३८-७४२।।

सोलह वक्षार के कूटों के नाम

गाथार्थ—प्रत्येक वक्षार पर चार-चार कूट हैं जिनमें एक कूट का नाम सिद्ध, दूसरे का अपने-अपने वक्षार का जो नाम है वही नाम कूट का है तथा शेष दो कूटों के नाम वक्षार पर्वतों के दोनों पार्श्व भागों में स्थित देशों के जो नाम हैं, वह हैं। प्रत्येक वक्षार पर्वतों की लम्बाई सोलह हजार पाँच सौ बान्नवे योजन और २/१९ भाग अर्थात् १६५९२-२/१९ योजन है।।७४३।।

विशेषार्थ—सोलह वक्षार पर्वत हैं और प्रत्येक पर चार-चार कूट हैं, उन कूटों के नाम निम्न-लिखित हैं—

---

१. त्रिलोकसार पृ. ५८१ से ५८५ तक।

कुलगिरिसमीवकूडे दिक्कण्णाओ वसंति सेसेसु। वाणा कूडपमाहिद णगदीहो कूडअंतरयं।।७४४।।

कुलगिरिसमीपकूटे दिक्कन्याः वसन्ति शेषेषु। वानाः कूटप्रमाहितं नगदैर्घ्यं कूटान्तरं।।७४४।।

कुल। कुलगिरिसमीपस्थवक्षारो २० परिमकूटे दिक्कन्या वसन्ति, शेषेषु कूटेषु ७।५।२ व्यन्तरदेवास्तिष्ठन्ति स्वस्वकूटप्रमाणैः ९।७।४ तत्तन्नगदैर्घ्ये गजदन्तदैर्घ्ये ३०२०९-६/१९ इतरवक्षारदैर्घ्ये च १६५९२-२/१९ हृते स्वस्वकूटान्तरं स्यात्। नवकूटान्तराणामेतावति गजदन्तक्षेत्रे ३०२०९-६/१९ एककूटान्तरस्य कियत्क्षेत्रमिति सम्पात्यांशिनि ३०२०९ अंशे च ६/१९ भक्ते ३३५६ उभयांशे ५/९ । ६/१९। १/९ समच्छेदेन ९५/१७५। ६/१७१ मेलने १०१/१७१ एककूटान्तरक्षेत्रं स्यात्। एतदेव नवकूटान्तरं। एवं सप्तकूटान्तरस्या त्रैराशिकविधिर्द्रष्टव्यः प्र ७ फ ३०२०९-६/१९ इ १ लब्धं सप्तकूटान्तरं ४३१५-८२/१३३ चतुः कूटान्तराणामेतावति वक्षारक्षेत्रे १६५९२-२/१९ एककूटान्तरस्य किमिति सम्पात्यांशिनांशे च भक्ते तन्मेलने एककूटान्तरं स्यात् ४१४८-१/३८ एतदेव चतुः कूटान्तरं स्यात्।।७४४।।

क्रमांक	वक्षार पर्वतों के नाम	१ ले कूटों के नाम	२ रे कूटों के नाम	३ रे कूटों के नाम	४ थे कूटों के नाम
१	चित्रकूट	सिद्धकूट	चित्रकूट	कच्छा	सुकच्छा
२	पद्मकूट	सिद्धकूट	पद्मकूट	महाकच्छा	कच्छावती
३	नलिन	सिद्धकूट	नलिन	आवर्ता	लाङ्गलावती
४	एकशैल	सिद्धकूट	एकशैल	पुष्कला	पुष्कलावती
५	त्रिकूट	सिद्धकूट	त्रिकूट	वत्सा	सुवत्सा
६	वैश्रवण	सिद्धकूट	वैश्रवण	महावत्सा	वत्सकावती
७	अञ्जनात्मा	सिद्धकूट	अञ्जनात्मा	रम्या	सुरम्यका
८	अञ्जन	सिद्धकूट	अञ्जन	रमणीया	मङ्गलावती
९	श्रद्धावान्	सिद्धकूट	श्रद्धावान्	पद्मा	सुपद्मा
१०	विजटावान्	सिद्धकूट	विजटावान्	महापद्मा	पद्मकावती
११	आशीविष	सिद्धकूट	आशीविष	शङ्खा	नलिनी
१२	सुखावह	सिद्धकूट	सुखावह	कुमुद	सरित
१३	चन्द्रमाल	सिद्धकूट	चन्द्रमाल	वप्रा	सुवप्रा
१४	सूर्यमाल	सिद्धकूट	सूर्यमाल	महावप्रा	वप्रकावती
१५	नागमाल	सिद्धकूट	नागमाल	गन्धा	सुगन्धा
१६	देवमाल	सिद्धकूट	देवमाल	गन्धिला	गन्धमालिनी

गाथार्थ—कुलाचलों के समीपवर्ती कूटों पर दिक्कुमारियाँ और शेष कूटों पर व्यन्तर देव निवास करते हैं। जिन पर्वतों पर जितने कूट हैं, उन कूटों के प्रमाण से अपने-अपने पर्वतों की लम्बाई के प्रमाण को भाजित करने पर एक कूट से दूसरे कूट का अन्तर प्राप्त होता है।७४४।।

विशेषार्थ—चार गजदन्त और १६ वक्षारों को मिलाकर २० वक्षार पर्वत हैं। इनके ऊपर क्रम से गजदंतों पर ९, ७, ९, ७ कूट हैं और १६ वक्षरों पर ४, ४ कूट हैं। इन ९६ कूटों में से जो एक-एक कूट कुलाचलों के समीपवर्ती हैं उन (२० कूटों) पर जिनभवन हैं और अवशेष दो गजदन्तों के सात, सात, दो गजदन्तों के पाँच-पाँच और १६

अथ वक्षाराणामुन्नतिं तत्रस्थाकृत्रिमचैत्यालयस्थाननिर्देशं च करोति—

वक्खारसयाणुदओ कुलगिरिपासम्हि चउसयं णुड्ढा। णइमेरुस्स य पासे पंचसया तत्थ जिणगेहा।।७४५।।

वक्षारशतानामुदयः कुलगिरिपार्श्वे चतुःशतं वृद्ध्या। नदीमेरोश्च पार्श्वे पञ्चशतानि तत्र जिनगेहाः।।७४५।।

वक्खार शतवक्षारपर्वतानामुदयः कुलगिरिपार्श्वे चतुःशत ४०० योजनानि, ततः परमनुक्रमेण वृद्ध्या विदेहगतानां नदीपार्श्वे गजदन्तानां मेरुपार्श्वे पञ्चशत ५०० योजनान्युत्सेधः तत्र पञ्चशतयोजनोत्सेधस्थकूटे जिनगेहाः सन्ति।।७४५।।

वक्षार पर्वतों के दो-दो इस प्रकार ५६ कूटों पर व्यन्तर देवों का निवास है। शेष कूटों पर देवियों के निवास हैं।

गजदन्त पर्वतों की लम्बाई ३०२०९-६/१९ योजन तथा वक्षार पर्वतों की लम्बाई का प्रमाण १६५९२-२/१९ योजन है। इनको अपने-अपने कूट प्रमाण ९, ७ और ४ से भाग देने पर एक कूट से दूसरे कूट के अन्तर का प्रमाण प्राप्त होता है। यथा—जबकि ९ कूटों के अन्तराल पर ३०२०९-६/१९ योजन क्षेत्र प्राप्त होता है, तो एक कूट के अन्तर पर कितना क्षेत्र प्राप्त होगा ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर (३०२०९-६/१९)=३३५६ योजन प्राप्त हुये और ५/९ योजन अवशेष रहे । ६/१९ योजन में ९ का भाग देकर ५/९ मिला देने पर (५/९ + ६/१९ × १/९)) = १०१/१७१ अर्थात् गजदन्त स्थित कूटों में एक कूट से दूसरे कूट का अन्तर ३३५६-१०१/१७१ योजन है। ९ कूटों के परस्पर अन्तराल का प्रमाण भी इतना ही है।

इसी प्रकार जबकि ७ कूटों के अन्तराल पर ३०२०९-६/१९ योजन क्षेत्र है तो एक कूट के अन्तर पर कितना क्षेत्र प्राप्त होगा ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर (३०२०९-६/१९)/७ = ४३१५-८२/१३३ योजन द्वितीय गजदन्त के ऊपर एक कूट से दूसरे कूट का अन्तर है। इसी प्रकार सातों कूटों का जानना चाहिए।

एक-एक वक्षार पर्वतों की लम्बाई १६५९२-२/१९ योजन है और एक-एक वक्षार के ऊपर चार-चार कूट हैं। जबकि ४ कूटान्तरों पर १६५९२-२/१९ योजन क्षेत्र है तब १ कूटान्तर पर कितना क्षेत्र होगा ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर (१६५९२-२/१९/४) = ४१४८-१/३८ योजन वक्षार स्थित कूटों में एक कूट से दूसरे कूट का अन्तर है। इसी प्रकार चारों कूटों में जानना चाहिए।

वक्षार पर्वतों की ऊँचाई एवं वहाँ स्थित अकृत्रिम चैत्यालयों के स्थान का निर्देश करते हैं-

गाथार्थ—(पञ्चमेरु सम्बन्धी गजदन्त सहित) वक्षार पर्वतों का कुल प्रमाण १०० है। कुलाचलों के पार्श्व भागों में उनकी ऊँचाई ४०० योजन है। इसके आगे क्रमिक वृद्धि से युक्त होते हुए सीता-सीतोदा के निकट और मेरु के पार्श्व भागों में ५०० योजन ऊँचे हैं और **उन पर जिनमन्दिर** हैं।।७४५।।

विशेषार्थ—गजदन्त सहित एक मेरु के २० वक्षार पर्वत हैं अतः पञ्चमेरु सम्बन्धी कुल वक्षार पर्वतों का प्रमाण १०० है अर्थात् वक्षार पर्वत १०० हैं। जिनकी ऊँचाई कुलाचलों के पार्श्व भागों में ४०० योजन है। इसके बाद अनुक्रम से वृद्धि होते हुए विदेहगत सीता-सीतोदा नदी के निकट और मेरु के पार्श्व भागों में गजदन्तों की ऊँचाई ५०० योजन है। जो वक्षार ५०० योजन ऊँचे हैं, उनके ऊपर स्थित कूटों पर जिनमन्दिर हैं।

मध्यलोक में नदी, पर्वत, वेदिका, तोरणद्वार एवं गंगादि के गिरने के स्थान पर जिनप्रतिमाएँ

गंगाकूट पर जिनप्रतिमा
(गंगा नदी अभिषेक करती है)
(तिलोयपण्णत्ति से)

वरवेदीपरिखत्ते चउगोउरमंदिरम्मि पासादे। रम्मुज्जाणे तस्सिं गंगादेवी सयं वसइ[१]।।२२८।।
भवणोवरि कूडम्मि य जिणिंदपडिमाओ सासदरिधीओ। चेट्ठंति किरणमंडलउज्जोइदसयलआसाओ।।२२९।।
आदिजिणप्पडिमाओ ताओ जडमउढसेहरिल्लाओ। पडिमोवरिम्मि गंगा अभिसित्तुमणा व सा पडदि।।२३०।।
पुप्फिदपंकजपीढा कमलोदरसरिसण्णवरदेहा। पढमजिणप्पडिमाओ भरंति जे ताणं देंति णिव्वाणं।।२३१।।
कुंडस्स दक्खिणेणं तोरणदारेण णिग्गदा गंगा। भूमिविभागे वक्का होदूण गदा य रजदगिरिं।।२३२।।
रम्मायारा गंगा संकुलिदूणं पि दूरदो एसा। विजयड्ढगिरिगुहाए पविसदि मोदिणिबिले भुजंगी व।।२३३।।
गंगातरंगिणीए उभयत्तडवेदियाण वणसंडा। अत्तुट्टसरूवेणं संपत्ता रजदसेलंतं।।२३४।।
वरवज्जकवाडाणं संवरणपवेसणाइं मुत्तूणं। सेसगुहब्भंतरयं गंगातडवेदिवणसंडा।।२३५।।
रुप्पगिरिस्स गुहाए गमणपदेसम्मि होदि वित्थारो। गंगातरंगिणीए अट्ठं चिय जोयणाणि पुढं।।२३६।।

गंगाकूट पर जिनप्रतिमा
(गंगा नदी अभिषेक करती है)
(तिलोयपण्णत्ति से)

उत्तम वेदी से वेष्टित, चार गोपुर एवं मन्दिर से सुशोभित और रमणीय उद्यान से युक्त उस भवन में स्वयं गंगादेवी रहती है।।२२८।। उस भवन के ऊपर कूट पर किरणसमूह से सम्पूर्ण दिशाओं को प्रकाशित करने वाली और शाश्वत ऋद्धि को प्राप्त, ऐसी जिनेन्द्रप्रतिमाएँ स्थित हैं।।२२९।। वे आदि जिनेन्द्र की प्रतिमाएँ जटामुकुटरूप शेखर से सहित हैं। इन प्रतिमाओं के ऊपर वह गंगा नदी मानो मन में अभिषेक की भावना को रखकर ही गिरती है।।२३०।। वे आदिजिनेन्द्र की प्रतिमाएँ फूले हुए कमलासन पर विराजमान और कमल के उदर अर्थात् मध्यभाग के सदृश वर्ण वाले उत्तम शरीर से युक्त हैं। जो भव्य जीव इनका स्मरण करते हैं उन्हें ये निर्वाण प्रदान करती हैं।।२३१।। गंगानदी इस कुण्ड के दक्षिण तोरणद्वार से निकलकर भूमिप्रदेश से मुड़ती हुई रजतगिरि अर्थात् विजयार्द्ध पर्वत को प्राप्त हुई है।।२३२।। यह रम्याकार गंगा नदी दूर से ही संकुचित होकर विजयार्द्ध पर्वत की गुफा में इस प्रकार प्रवेश करती है जैसे भुजंगी मेदिनीबिल में।।२३३।। गंगा नदी की दोनों ही तटवेदियों पर स्थित वनखंड अत्रुटितरूप से विजयार्द्ध पर्वत तक चले गए हैं।।२३४।। गंगातटवेदीसंबंधी ये वनखंड उत्तम वज्रमय कपाटों के संवरण और प्रवेशभाग को छोड़कर शेष गुफा के भीतर हैं।।२३५।। रूपाचल की गुफा में प्रवेश करने के स्थान पर गंगा नदी का विस्तार आठ योजन प्रमाण हो जाता है।।२३६।।

---

१. तिलोयपण्णत्ति, चतुर्थ महाधिकार-पृ० १७०।

सीदा नदी के लवणसमुद्र के प्रवेश की तरफ देवारण्यवन में जिनमंदिर

सीदाए उत्तरदो दीओववणस्स वेदिपच्छिमदो। णीलाचलदक्खिणदो पुव्वंते पोक्खलावदीविसए[१]।।२३१५।।
चेट्ठदि देवारण्णं णाणातरुसंडमंडिदं रम्भं। पोक्खरणीवावीहिं कमलुप्पलपरिमिलिल्लाहिं।।२३१६।।
तस्सिं देवारण्णे पासादा कणयरयणरजदमया। वेदीतोरणधयवडपहुदीहिं मंडिदा विउला।।२३१७।।
उप्पत्तिमंचियाइं अहिसेयपुरा य मेहुणगिहाइं। कीडणसालाओ सभासालाओ जिणणिकेदेसुं।।२३१८।।
चउविदिसासुं गेहा ईसाणिंदस्स अंगरक्खाणं। दिप्पंतरयणदीवा बहुविहधुव्वंतधयमाला।।२३१९।।
दक्खिणदिसाविभागे तिप्परिसाणं पुराणि विविहाणिं। सत्ताणमणीयाणं पासादा पच्छिमदिसाए।।२३२०।।
किब्बिसअभियोगाणं सम्मोहसुराण तत्थ दिब्भागे। कंदप्पाण सुराणं होंति विचित्ताणि भवणाणिं।।२३२१।।
एदे सव्वे देवा तेसुं कीडंति बहुविणोदेहिं। रम्मेसु मंदिरेसुं ईसाणिंदस्स परिवारा।।२३२२।।
सीदाय दक्खिणतडे दीवोववणस्स वेदिपच्छिमदो। णिसहाचलउत्तरदो पुव्वाय दिसाए वच्छस्स।।२३२३।।
देवारण्णं अण्णं चेट्ठदि पुव्वस्स सरिसवण्णणयं। णवरि विसेसो देवा सोहम्मिंदस्स परिवारा।।२३२४।।

भूतारण्य वन में जिनमंदिर हैं

सीदोदादुतडेसुं दीओववणस्स वेदिपुव्वाए। णीलणिसहद्दिमज्झे अवरविदेहस्स अवरदिब्भाए।।२३२५।।
बहुतरुरमणीयाइं भूदारण्णाइं दोण्णि सोहंति। देवारण्णसमाणं सव्वं चिय वण्णणं ताणं।।२३२६।।

सीदा नदी के लवणसमुद्र के प्रवेश की तरफ देवारण्यवन में जिनमंदिर

सीतानदी के उत्तर, द्वीपोपवनसंबन्धी वेदी के पश्चिम, नील पर्वत के दक्षिण और पुष्कलावती देश के पूर्वान्त में नाना वृक्षों के समूहों से मण्डित तथा कमल व उत्पलों की सुगन्ध से संयुक्त ऐसी पुष्करिणी एवं वापिकाओं से रमणीय देवारण्य नामक वन स्थित है।।२३१५-२३१६।। उस देवारण्य में सुवर्ण, रत्न व चाँदी से निर्मित तथा वेदी, तोरण और ध्वजपटादिकों से मण्डित विशाल प्रासाद हैं।।२३१७।। इन प्रासादों में उत्पत्तिमंचिका (उपपाद शय्या), अभिषेकपुर, मैथुनगृह, क्रीडनशाला, सभाशाला और **जिननिकेत (जिनमंदिर)** स्थित हैं।।२३१८।। चारों विदिशाओं में प्रदीप्त रत्नदीपकों से सहित और बहुत प्रकार की फहराती हुई ध्वजाओं के समूहों से सुशोभित ईशानेन्द्र के अंगरक्षक देवों के गृह हैं।।२३१९।। दक्षिण दिशा भाग में तीनों पारिषद देवों के विविध भवन और पश्चिम दिशा में सात अनीकदेवों के प्रासाद हैं।।२३२०।। उसी दिशा में किल्विष, आभियोग्य, संमोहसुर और कन्दर्प देवों के विचित्र भवन हैं।।२३२१।। द्वीपोपवनसम्बन्धी वेदी के पश्चिम, निषधाचल के उत्तर और वत्सादेश की पूर्वदिशा में सीता नदी के दक्षिण तट पर पूर्वोक्त देवारण्य के सदृश वर्णन वाला दूसरा देवारण्य भी स्थित है। विशेष केवल इतना है कि इस वन में सौधर्म इन्द्र के परिवार देव क्रीडा करते हैं।।२३२३-२३२४।।

भूतारण्य वन में जिनमंदिर हैं

द्वीपोपवनसम्बन्धी वेदी के पूर्व और अपरविदेह के पश्चिम दिग्भाग में नील-निषधपर्वत के मध्य सीतोदा के दोनों तटों पर बहुत से वृक्षों से रमणीय भूतारण्य नामक दो वन शोभित हैं। इनका समस्त वर्णन देवारण्यों के समान है।।२३२५-२३२६।।

---

१. तिलोयपण्णत्ति पृ. ४३६, ४३७।

पुष्करिणी में सौधर्मेंद्र का वैभव

(पुष्करिणी में सौधर्मेन्द्र व उसके परिवार देवों के आसन)

पोक्खरणीणं मज्झे सक्कस्स हवे विहारपासादो। पणधणकोसुत्तुंगो तद्दलरुंदो णिरुवमाणो[१]।।१९४९।।

एक्कं कोसं गाढो सो णिलओ विविहकेदुकमणिज्जो। तस्सायामपमाणे उवएसो णत्थि अम्हाणं।।१९५०।।

सीहासणमइरम्मं सोहम्मिंदस्स भवणमज्झम्मि। तस्स य चउसु दिसासुं चउपीढा लोयपालाणं।।१९५१।।

सोहम्मिंदासणदो दक्खिणभायम्मि कणयणिम्मविदं।
सिंहासणं विरायदि मणिगणखचिदं पडिंदस्स।।१९५२।।

सिंहासणस्स पुरदो अट्ठाणं होंति अग्गमहिसीणं। बत्तीससहस्साणिं वियाण पवराइं पीढाइं।।१९५३।।

३२०००।

पवणीसाणदिसासुं पासे सीहासणस्स चुलसीदी। लक्खाणिं वरपीढा भवंति सामाणियसुराणं।।१९५४।।

८४०००००।

तस्सग्गिदिसाभाए बारसलक्खाणि पढमपरिसाए। पीढाणि होंति कंचणरइदाणिं रयणखचिदाणिं।।१९५५।।

१२०००००।

दक्खिणदिसाविभागे मज्झिमपरिसामराण पीढाणिं।
कंचणरयणमयाणिं चोद्दसलक्खप्पमाणाणिं।।१९५६।।

१४०००००।

णइरिदिदिसाविभागे बाहिरपरिसामराण पीढाणिं। कंचणरयणमयाणिं सोलसलक्खाणि चेट्ठंति।।१९५७।।

१६०००००।

पुष्करिणी में सौधर्मेंद्र का वैभव

(पुष्करिणी में सौधर्मेन्द्र व उसके परिवार देवों के आसन)

पुष्करिणियों के बीच में पाँच के घन अर्थात् एक सौ पच्चीस कोस ऊँचा और इससे आधे विस्तार वाला सौधर्म इन्द्र का अनुपम विहारप्रासाद है।।१९४९।। वह प्रासाद एक कोस गहरा और विविध प्रकार की ध्वजाओं से रमणीय है उसकी लम्बाई के प्रमाण का उपदेश हमारे पास नहीं है।।१९५०।। भवन के मध्य में अतिरमणीय सौधर्म इन्द्र का सिंहासन और इसके चारों ओर चार सिंहासन लोकपालों के हैं।।१९५१।। सौधर्म इन्द्र के आसन से दक्षिण भाग में सुवर्ण से निर्मित और मणिसमूह से खचित प्रतीन्द्र का सिंहासन विराजमान है।।१९५२।। सिंहासन के आगे आठ अग्रमहिषियों के सिंहासन होते हैं। इसके अतिरिक्त बत्तीस हजार प्रवर पीठ जानना चाहिए।।१९५३।। ३२०००। सिंहासन के पास वायव्य और ईशान दिशा में चौरासी लाख सामानिक देवों के उत्तम आसन हैं।।१९५४।। ८४०००००। उस सिंहासन के अग्निदिशाभाग में सुवर्ण से रचित और रत्नों से खचित बारह लाख प्रथम पारिषद देवों के आसन हैं।।१९५५।। १२०००००। दक्षिणदिशाभाग में मध्यम पारिषद देवों के सुवर्ण एवं रत्नमय चौदह लाखप्रमाण आसन स्थित हैं।।१९५६।। १४०००००। नैऋत्यदिशाविभाग में बाह्य पारिषद देवों के सुवर्ण एवं रत्नमय सोलह लाख प्रमाण आसन स्थित हैं।।१९५७।। १६०००००। उसी दिशाविभाग में

---

१. तिलोयपण्णत्ति पृ. ३९५, ३९६।

तत्थ य दिसाविभागे तेत्तीससुराण होंति तेत्तीसा। वरपीढाणि णिरंतरफुरंतमणिकिरणणियराणिं।।१९५८।।

३३।

सिंहासणस्स पच्छिमभागे चेट्ठंति सत्त पीढाणिं। छक्कं महत्तराणं महत्तरीए हवे एक्कं।।१९५९।।

७।

सिंहासणस्स चउसु वि दिसासु चेट्ठंति अंगरक्खाणं। चउरासीदिसहस्सा पीडाणि विचित्तरूवाणिं।।१९६०।।

८४०००।

सिंहासणम्मि तस्सिं पुव्वमुहे पइसिदूण सोहम्मो। विविहविणोदेण जुदो पेच्छइ सेवागदे देवे।।१९६१।।

भिंगा भिंगणिहक्खा कज्जलया कज्जलप्पहा तत्थ। णइरिदिदिसाविभागे पुव्वपमाणादिवावीओ।।१९६२।।

चउवावीमज्झपुरे सोहम्मो भत्तिउवगदे देवे। पेच्छइ अत्थाणिरदे चामरछत्तादिपरियरिदो।।१९६३।।

सिरिभद्दा सिरिकंता सिरिमहिदा मरुदिसाए सिरिणिलया।
पुक्खरणीओ होंति हु तेसिं मज्झम्मि पासादो।।१९६४।।

तस्सिं पासादवरे ईसाणिंदो सुहाणि भुंजेदि। बहुछत्तचमरजुत्तो विविहविणोदेण कीडंतो।।१९६५।।

णलिणा य णलिणगुम्मा कुमुदा कुमुदप्पह त्ति वावीओ। ईसाणदिसाभाए तेसुं मज्झम्मि पासादो।।१९६६।।

मानस्तम्भों में नीचे व ऊपर प्रतिमाएँ हैं

तप्फलिहवीहिमज्झे वेरुलियमयाणि माणथंभाणिं। वीहिं पडि पत्तेयं विचित्तरूवाणि रेहंति[१]।।१९३१।।

चामरघटाकिंकिणिकेतणपहुदीहिं उवरि संजुत्ता। सोहंति माणथंभा चउवेदीदारतोरणेहिं जुदा।।१९३२।।

त्रायस्त्रिंश देवों के निरन्तर प्रकाशमान मणिकिरणसमूह से सहित तेतीस उत्तम आसन हैं।।१९५८।। ३३। सिंहासन के पश्चिमभाग में महत्तरों के छह और महत्तरी का एक, इस प्रकार सात आसन स्थित हैं।।१९५९।। ७। सिंहासन के चारों तरफ अंगरक्षक देवों के विचित्र रूप वाले चौरासी हजार आसन स्थित हैं।।१९६०।। ८४०००। सौधर्म इन्द्र उस पूर्वाभिमुख सिंहासन पर प्रवेश करके (आरूढ़ होकर) विविध प्रकार के विनोद से युक्त होता हुआ सेवार्थ आए हुए देवों की ओर देखता है।।१९६१।। सौमनसवन के भीतर नैऋत्यदिशाविभाग में भृंगा, भृंगनिभा, कज्जला और कज्जलप्रभा, ये चार वापिकाएँ पूर्व वापिकाओं के समान प्रमाणादि से संयुक्त हैं।।१९६२।। इन चार वापिकाओं के मध्य में स्थित पुर में (भवन में) चँवर-छत्रादि से वेष्टित सौधर्म इन्द्र भक्ति से समीप आए हुए व आस्था अर्थात् आदर में निरत देवों को देखता है।।१९६३।। वायव्य दिशा में श्रीभद्रा, श्रीकान्ता, श्रीमहिता और श्रीनिलया, ये चार पुष्करिणी तथा उनके मध्य में प्रासाद हैं।।१९६४।। उस उत्कृष्ट भवन में बहुत छत्र एवं चँवरों से युक्त ईशानेन्द्र विविध प्रकार के विनोद से क्रीड़ा करता हुआ सुखों को भोगता है।।१९६५।। ईशानदिशाभाग में नलिना, नलिनगुल्मा, कुमुदा और कुमुदप्रभा, ये चार वापियाँ हैं और उनके मध्य में प्रासाद हैं।।१९६६।।

मानस्तम्भों में नीचे व ऊपर प्रतिमाएँ हैं

उन स्फटिकमणिमय वीथियों के मध्य में से प्रत्येक वीथी के प्रति विचित्र रूप वाले वैडूर्यमणिमय मानस्तम्भ सुशोभित हैं।।१९३१।। चार वेदीद्वार और तोरणों से युक्त ये मानस्तम्भ ऊपर चँवर, घंटा, किंकिणी

---

१. तिलोयपण्णत्ति चउत्थो महाधियारो, पृ. ३९३।

ताणं मूले उवरिं जिणिंदपडिमाओ चउदिसंतेसुं। वररयणणिम्मिदाओ जयंतु जयथुणिदचरिदाओ।।१९३३।।
कप्पमहिं परिवेढिय साला वररयणणियरणिम्मविदा। चेट्ठदि चरियट्टालयणाणाविहधयवडाडोवा।।१९३४।।
चूलियदक्खिणभाए पच्छिमभायम्मि उत्तरविभागे। एक्केक्कं जिणभवणं पुव्वंहि व वण्णणेहिं जुदं।।१९३५।।

जंबूद्वीप के परकोटे का एवं जिनमंदिर का वर्णन

माणुसजगबहुमज्झे विक्खादो होदि जंबुदीओ त्ति। एक्कज्जोयणलक्खव्विक्खंभजुदो सरिसवट्टो[1]।।११।।
जगदीविण्णासाइं भरहक्खिदी तम्मि कालभेदं च। हिमगिरिहेमवदा महहिमवंहरिवरिसणिसहद्दी।।१२।।
विजओ विदेहणामो णीलगिरी रम्मवरिसरुम्मिगिरी। हेरण्णवदो विजओ सिहरी एरावदो त्ति वरिसो य।।१३।।
एवं सोलसभेदा जंबूदीवम्मि अंतरहियारा। एण्हं ताण सरूवं वोच्छामो आणुपुव्वीए।।१४।।
वेढेदि तस्स जगदी अट्ठं चिय जोयणाणि उत्तुंगा। दीवं तं मणिबंधस्सरिसं होदूण वडयणिहा।।१५।।
। जो ८।
मूले बारस मज्झे अट्ठ च्चिय जोयणाणि णिद्दिट्ठो। सिहरे चत्तारि पुढं जगदीरुंदस्स परिमाणं।।१६।।
१२। ८। ४।
दो कोसा अवगाढा तेत्तियमेत्ता हुवेदि वज्जमयी। मज्झे बहुरयणमयी सिहरे वेरुलियपरिपुण्णा।।१७।।
कोस २।

और ध्वजा इत्यादि से संयुक्त होते हुए शोभायमान होते हैं।।१९३२।। **इन मानस्तम्भों के नीचे और ऊपर चारों दिशाओं में विराजमान, उत्तम रत्नों से निर्मित और जग से कीर्तित चरित्र से संयुक्त जिनेन्द्र प्रतिमाएँ जयवन्त होवें**।।१९३३।। मार्ग व अट्टालिकाओं से युक्त, नाना प्रकार की ध्वजापताकाओं के आटोप से सुशोभित और श्रेष्ठ रत्नसमूह से निर्मित कोट इस कल्पमही को वेष्टित करके स्थित है।।१९३४।। चूलिका के दक्षिण, पश्चिम और उत्तर भाग में भी पूर्वदिशावर्ती जिनभवन के समान वर्णनों से संयुक्त एक-एक जिनभवन है।।१९३५।।

जंबूद्वीप के परकोटे का एवं जिनमंदिर का वर्णन

मनुष्यक्षेत्र के बहुमध्यभाग में एक लाख योजन विस्तार से युक्त, सदृश गोल और जम्बूद्वीप इस नाम से प्रसिद्ध पहला द्वीप है।।११।। उस जम्बूद्वीप के वर्णन करने में जगती (वेदिका), विन्यास, भरतक्षेत्र, उस (भरत) क्षेत्र में होने वाला कालों का भेद, हिमवान् पर्वत, हैमवत क्षेत्र, महाहिमवान् पर्वत, हरि क्षेत्र, निषध पर्वत, विदेह क्षेत्र, नील पर्वत, रम्यक क्षेत्र, रुक्मि पर्वत, हैरण्यवत क्षेत्र, शिखरी पर्वत और ऐरावत क्षेत्र, इस प्रकार सोलह अंतराधिकार हैं। अब उनके स्वरूप को अनुक्रम से कहते हैं।।१२-१४।। आठ योजन ऊँची उसकी जगती मणिबंध के सदृश उस द्वीप को वलय अर्थात् कड़े के सदृश होकर वेष्टित करती है।।१५।। यो. ८। जगती के विस्तार का प्रमाण मूल में बारह, मध्य में आठ और शिखर पर चार योजन कहा गया है।।१६।। जगती विस्तार—मूल में १२, मध्य में ८, शिखर पर ४ यो.। उक्त जगती की गहराई अर्थात् नींव दो कोस है, जो सब ही वज्रमय है। यह मध्य में बहुत रत्नों से निर्मित और शिखर पर वैडूर्यमणियों से परिपूर्ण है।।१७।। कोस २। उस जगती के मूल

---

१. तिलोयपण्णत्ति, चतुर्थ महाधिकार, पृ. १४३ से १४६ तक।

तीए मूलपएसे पुव्वावरदो य सत्त सत्त गुहा। वरतोरणाहिरामा अणाइणिधणा विचित्तयरा।।१८।।
जगदीउवरिमभाए बहुमज्झे कणयवेदिया दिव्वा। वे कोसा उत्तुंगा वित्थिण्णा पंचसयदंडा।।१९।।
को २। दंड ५००।
जगदीउवरिमरुंदो वेदीरुंदं खु सोधियद्धकदो। जं लद्धमेक्कपासे तं विक्खंभस्स परिमाणं।।२०।।
पण्णरससहस्साणिं सत्तसया धणूणि पण्णासा। अब्भंतरविक्खंभा बाहिरवासो वि तम्मेत्ता।।२१।।
१५७५०।
वेदीदोपासेसुं उववणसंडा हवंति रमणिज्जा। वरवावीसंजुत्ता विचित्तमणिआरपरिपुण्णा।।२२।।
जेट्ठा दोसयदंडा विक्खंभजुदा हवेदि मज्झिमया।
पण्णासब्भहियसयं जघण्णवावी वि सयमेक्कं।।२३।।
दं २००। १५०। १००।
तिविहाओ वावीओ णियरुंददसंसमेत्तमवगाढा। कइआरकमलकुवलयकुमुदामोदेहिं परिपुण्णा।।२४।।
२०। १५। १०।
पायारपरिगदाइं वरगोउरदारतोरणाइं पि। अब्भंतरम्मि भागे महोरगाणं च चेट्ठंति।।२५।।
पाठान्तरम्।
णयरेसुं रमणिज्जा पासादा होंति विविहविण्णासा। अब्भंतरचेत्तरया णाणावररयणणियरमया।।२६।।
दिप्पंतरयणदीवा समंतदो विविहधूवधडजुत्ता। वज्जमयवरकवाडा वेदीगोउरदुवारजुदा।।२७।।
पणुहत्तरि चावाणिं उत्तुंगा सयधणूणि दीहजुदा। पण्णासदंडरुंदा होंति जहण्णम्मि पासादा।।२८।।
७५। १००। ५०।

प्रदेश में पूर्व-पश्चिम की ओर सात-सात गुफाएँ हैं, जो उत्कृष्ट तोरणों से रमणीय, अनादिनिधन एवं अत्यन्त विचित्र हैं।।१८।। इस जगती के उपरिम भाग पर ठीक बीच में दिव्य सुवर्णमय वेदिका है। यह दो कोस ऊँची और पाँच सौ धनुषप्रमाण चौड़ी है।।१९।। ऊँचाई को. २, विस्तार दंड ५००। जगती के उपरिम विस्तार में से वेदी के विस्तार को घटाकर शेष को आधा करने पर जो प्राप्त हो उतना वेदी के एक पार्श्वभाग में जगती के विस्तार है।।२०।। ३२०००-५००/२ = १५७५० धनुष। जगती का अभ्यन्तर विस्तार पन्द्रह हजार सात सौ पचास धनुष और इतना ही उसका बाह्य विस्तार भी है।।२१।। १५७५०। वेदी के दोनों पार्श्व भागों में उत्तम वापियों से संयुक्त और विचित्र मणिगृहों से परिपूर्ण रमणीय उपवनों के समूह हैं।।२२।। इनमें से उत्कृष्ट बावड़ियों का विस्तार दो सौ धनुष, मध्यमों का एक सौ पचास धनुष और जघन्यों का एक सौ धनुषप्रमाण है।।२३।। उत्कृष्ट २००, मध्य. १५०, ज. १०० धनुष। तीनों ही तरह की बावड़ियाँ अपने-अपने विस्तार के दशवें भागप्रमाण गहरी और कैरव (सफेद कमल), कमल, नीलकमल एवं कुमुदों की सुगन्ध से परिपूर्ण हैं।।२४।। वेदी के अभ्यन्तर भाग में प्राकार से वेष्टित एवं उत्तम गोपुरद्वार व तोरणों से संयुक्त ऐसे महोरग देवों के भवन स्थित हैं।।२५।। पाठान्तर। नगरों में विविध प्रकार की रचनाओं से युक्त, अनेक उत्तमोत्तम रत्नसमूहों से निर्मित, अभ्यन्तर भाग में चैत्यतरुओं से सहित, चारों ओर प्रदीप्त रत्नदीपकों से सुशोभित, विविध प्रकार के धूपघटों से युक्त, वज्रमय कपाटों से संयुक्त

पासादावारेसुं बारस चावाणि होंति उच्छेहो। पत्तेक्कं छण्णाहं अवगाढं तं पि चत्तारि।।२९।।

१२। ६। ४।

पणुवीसं दोण्णि सया उच्छेहो होदि जिट्ठपासादा। दीहं तिसयधणूणिं पत्तेक्कं सद्ध विक्खंभो।।३०।।

२२५। ३००। १५०।

ताण दुवारुच्छेहो दंडा छत्तीस होदि पत्तेक्कं। अट्ठारस विक्खंभो बारस णियमेण अवगाढं।।३१।।

दं. ३६। १८। १२।

मज्झिमपासादाणं हुवेदि उदओ दिवड्ढसयदंडा। दोण्णि सया दीहत्तं पत्तेक्कं एक्कसय रुंदं।।३२।।

१५०। २००। १००।

चउवीसं चावाणिं ताण दुवारेसु होदि उच्छेहो। बारह अट्ठ कमेणं दंडा वित्थारअवगाढा।।३३।।

२४। १२। ८।

सामण्णचित्तकदलीगब्भलदाणादआसणगिहाओ। गेहा होंति विचित्ता वेंतरणयरेसु रमयारा।।३४।।
मेहुणमंडणओलगवंदणअभिसेयणच्चणाणं पि। णाणाविहसालाओ वररयणविणिम्मिदा होंति।।३५।।
करिहरिसुकमोराणं मयरपवालाण गरुडहंसाणं। सारिच्छाइं तेसुं रम्मेसुं आसणाणि चेट्ठंते।।३६।।
वररयणविरइदाणि विचित्तसयणाणि मउव्वपासाइं। रेहंति मंदिरेसुं दोपासठिदोवधाणाणि।।३७।।
कणय व्व णिरुवलेवा णिम्मलकंती सुगंधणिस्सासा। वरविविहभूसणयरा रविमंडलसरिसमउडसिरा।।३८।।
रोगजरापरिहीणा पत्तेक्कं दसधणूणि उत्तुंगा। वेंतरदेवा तेसुं सुहेण कीडंति सच्छंदा।।३९।।

और वेदी व गोपुरद्वारों से सहित रमणीय प्रासाद हैं।।२६-२७।। ये प्रासाद जघन्यरूप से पचहत्तर धनुष ऊँचे, सौ धनुष लंबे और पचास धनुषप्रमाण विस्तारयुक्त हैं।।२८।। ऊँचाई ७५; लंबाई १००; विस्तार ५० धनुष। इन प्रासादों के द्वारों में प्रत्येक की ऊँचाई बारह धनुष, व्यास छह धनुष और अवगाढ़ चार धनुषप्रमाण है।।२९।। ऊँचाई १२; व्यास ६; अवगाढ़ ४ धनुष। उत्कृष्ट प्रासादों में प्रत्येक की ऊँचाई दो सौ पच्चीस धनुष, लम्बाई तीन सौ धनुष और विष्कंभ इससे आधा अर्थात् एक सौ पचास धनुषप्रमाण है।।३०।। ऊँचाई २२५, लम्बाई ३००; वि. १५० धनुष। उत्कृष्ट प्रासादों के द्वारों में प्रत्येक द्वार की ऊँचाई छत्तीस धनुष, विष्कंभ अठारह धनुष और अवगाढ़ नियम से बारह धनुषप्रमाण है।।३१।। ऊँचाई ३६; वि. १८; अव. १२ धनुष। मध्यम प्रासादों में प्रत्येक की ऊँचाई डेढ़ सौ धनुष, लम्बाई दो सौ धनुष और चौड़ाई एक सौ धनुषप्रमाण है।।३२।। ऊँचाई १५०; लम्बाई २००; चौड़ाई १०० धनुष। इन प्रासादों के प्रत्येक के द्वार की ऊँचाई चौबीस धनुष, चौड़ाई बारह धनुष और अवगाढ़ आठ धनुषमात्र है।।३३।। ऊँचाई २४; चौड़ाई १२; अव. ८ धनुष। व्यंतरों के नगरों में सामान्यगृह, चित्तगृह (चित्रशाला या चैत्यगृह), कदलीगृह, गर्भगृह, लतागृह, नादगृह और आसनगृह; ये रम्य आकार वाले विचित्र गृहविशेष होते हैं।।३४।। इसके अतिरिक्त वहाँ पर मैथुनशाला, मण्डनशाला, ओलगशाला, वंदनशाला, अभिषेकशाला और नृत्यशाला, इस प्रकार उत्तम रत्नों से निर्मित नाना प्रकार की शालाएँ होती हैं।।३५।। इन रमणीय प्रासादों में हाथी, सिंह, शुक, मयूर, मगर, व्याल, गरुड़ और हंस, इनके सदृश आसन रखे हुए हैं।।३६।। महलों में उत्तम रत्नों से निर्मित, मृदुल स्पर्श वाले और दोनों पार्श्व भाग में स्थित तकियों से युक्त विचित्र शय्याएँ शोभायमान हैं।।३७।। सुवर्ण के समान निर्लेप, निर्मल कान्ति के धारक, सुगन्धमय निश्वास से युक्त, उत्तमोत्तम

जिणमंदिरजुत्ताइं विचित्तविण्णासभवणपुण्णाइं। सददं अकिट्टिमाइं वेंतरणयराणि रेहंति।।४०।।

विजयद्वार का एवं उनमें जिनप्रतिमाओं का वर्णन

विजयंतवेजयंतं जयंतअपराजयंतणामेहिं।। चत्तारि दुवाराइं जंबूदीवे चउदिसासुं[१]।।४१।।
पुव्वदिसाए विजयं दक्खिणआसाय वइजयंतं हि। अवरदिसाय जयंतं अवराजिदमुत्तरासाए।।४२।।
एदाणं दाराणं पत्तेक्कं अट्ठ जोयणा उदओ। उच्छेहद्धं रुंदं होदि पवेसो वि वाससमं।।४३।।
८। ४। ४।
वरवज्जकवाडजुदा णाणाविहरयणदामरमणिज्जा। णिच्चं रक्खिज्जंते वेंतरदेवेहिं चउदारा।।४४।।
दारोवरिमपएसे पत्तेक्कं होदि दारपासादा। सत्तारहभूमिजुदा णाणावरमत्तवारणया।।४५।।
दिप्पंतरयणदीवा विचित्तवरसालभंजिअत्थंभा। धुव्वंतधयवडाया विविहालोच्चेहिं रमणिज्जा।।४६।।
उब्भंतरयणसाणू समंतदो विविहरूवपुढजुत्ता। देवच्छराहिं भजिदा पट्टंसुयपहुदिकयसोहा।।४७।।
उच्छेहवासपहुदिसु दारब्भवणाण जेत्तिया संखा। तप्परिमाणपरूवणउवएसो संपहि पणट्ठो।।४८।।
सीहासणछत्तत्तयभामंडलचामरादिरमणिज्जा। रयणमया जिणपडिमा गोउरदारेसु सोहंति।।४९।।

विविध प्रकार के भूषणों को धारण करने वाले, सिर पर सूर्यमण्डल के समान मुकुट के धारक, रोग एवं जरा से रहित और प्रत्येक दश धनुष ऊँचे, ऐसे व्यन्तर देव उन नगरों में सुखपूर्वक स्वच्छंद क्रीड़ा करते हैं।।३८-३९।। **जिनमन्दिरों से संयुक्त, विचित्र रचना वाले भवनों से परिपूर्ण और अकृत्रिम वे व्यन्तर नगर सदैव शोभायमान होते हैं।।४०।।**

विजयद्वार का एवं उनमें जिनप्रतिमाओं का वर्णन

जम्बूद्वीप की चारों दिशाओं में विजयन्त (विजय), वैजयन्त, जयन्त और अपराजयन्त (अपराजित) इन नामों से प्रसिद्ध चार द्वार हैं।।४१।। इनमें से विजय पूर्व दिशा में, वैजयन्त दक्षिण दिशा में, जयन्त पश्चिम दिशा में और अपराजित द्वार उत्तर दिशा में हैं।।४२।। उपर्युक्त द्वारों में से प्रत्येक द्वार की ऊँचाई आठ योजन, विस्तार ऊँचाई से आधा अर्थात् चार योजन और प्रवेश भी विस्तार के समान चार योजन है।।४३।। ऊँचाई ८; व्यास ४; प्रवेश ४ योजन। उत्कृष्ट वज्रमय कपाटयुक्त और नाना प्रकार के रत्नों की मालाओं से रमणीय ये चारों द्वार व्यन्तर देवों से सदा रक्षित हैं।।४४।। प्रत्येक द्वार के उपरिम भाग में सत्रह भूमियों से युक्त, अनेकानेक उत्तम बरामदों से सुशोभित, प्रदीप्त रत्नदीपकों से सहित, नाना प्रकार की उत्तम पुत्तलिकाओं से युक्त स्तम्भों वाले, लहलहाती हुई ध्वजापताकाओं से युक्त, विविध प्रकार के दृश्यों से रमणीय, उत्तुंग रत्नशिखरों से संयुक्त, सब ओर नाना प्रकार के स्पष्ट रूपों से युक्त, देवों व अप्सराओं से सेवित और पट्टांशुक आदि से शोभायमान द्वार प्रासाद हैं।।४५-४७।। इन द्वारभवनों की ऊँचाई तथा विस्तार का जितना प्रमाण है, उस प्रमाण के प्ररूपण का उपदेश इस समय नष्ट हो चुका है।।४८।। गोपुरद्वारों पर सिंहासन, तीन छत्र, भामण्डल और चामरादि से रमणीय रत्नमय जिनप्रतिमाएँ शोभायमान होती हैं।।४९।।

---

१. तिलोयपण्णत्ति, चतुर्थ महाधिकार, पृ. १४७ से १४८ तक।

पूर्व के विजयद्वार का वर्णन

विजयादिदुवाराणं पंचसया जोयणाणि वित्थारो। पत्तेक्कं उच्छेहो सत्त सयाणिं च पण्णासा[१]।।७३।।
जो ५००। ७५०।
दारोवरिमपुराणं रुंदा दो जोयणाणि पत्तेक्कं। उच्छेहो चत्तारिं केई एवं परूवंति।।७४।।
२। ४। पाठान्तरम्।
एदेसिं दाराणं अहिवइदेवा हुवंति विंतरया। जंणामा ते दारा तंणामा ते वि रक्खादो।।७५।।
एक्कपलिदोवमाऊ दसदंडसमाणतुंगवरदेहा। दिब्वामलमउडधरा सहिदा देवीसहस्सेहिं।।७६।।

आकाश में अधर—विजयदेव का नगर–उसमें जिनमंदिर

दारस्स उवरिदेसे विजयस्स पुरं हवेदि गयणम्मि। बारससहस्सजोयणदीहं तस्सद्धविक्खंभं।।७७।।
१२०००। ६०००।
चउगोउरसंजुत्ता तडवेदी तम्मि होदि कणयमई। चरियट्टालयचारू दारोवरि जिणपुरेहिं रमयारा।।७८।।
विजयपुरम्मि विचित्ता पासादा विविहरयणकणयमया।समचउरस्सा दीहा अणेयसंठाणसोहिल्ला।।७९।।
कुंदेंदुसंखधवला मरगयवण्णा सुवण्णसंकासा। वरपउमरायसरिसा विचित्तवण्णंतरा पउरा।।८०।।
ओलग्गमंतभूसणअभिसेउप्पत्तिमेहुणादीणं। सालाओ विसालाओ रयणमईओ विराजंति।।८१।।

पूर्व के विजयद्वार का वर्णन

विजयादिक द्वारों में से प्रत्येक का विस्तार पाँच सौ योजन और ऊँचाई सात सौ पचास योजनप्रमाण है।।७३।। विस्तार यो. ५००, उत्सेध ७५०। द्वारों पर स्थित पुरों में से प्रत्येक का विस्तार दो योजन और ऊँचाई चार योजनमात्र है, ऐसा कितने ही आचार्य प्ररूपण करते हैं।।७४।। विस्तार २, उत्सेध ४ योजन। पाठान्तर। इन द्वारों के अधिपति व्यन्तर देव हैं। द्वारों के जो नाम हैं, वे ही नाम रक्षा के निमित्त से इन देवों के भी हैं।।७५।। ये देव एक पल्योपम प्रमाण आयु के भोक्ता, दश धनुष प्रमाण उन्नत उत्तम शरीर वाले, दिव्य निर्मल मुकुट के धारक और हजारों देवियों से सहित हैं।।७६।।

आकाश में अधर—विजयदेव का नगर–उसमें जिनमंदिर

द्वार के ऊपर आकाश में बारह हजार योजन लंबा और इससे आधे विस्तार वाला विजयदेव का नगर है।।७७।। लंबाई १२०००; विस्तार ६००० योजन। **उस विजयपुर में चार गोपुरों से संयुक्त सुवर्णमयी तटवेदी है, जो मार्ग व अट्टालिकाओं से सुन्दर और द्वारों के ऊपर स्थित जिनपुरों से रमणीय है**।।७८।। विजयपुर में नाना प्रकार के रत्नों और सुवर्ण से निर्मित, समचतुरस्र दीर्घ और अनेक आकृतियों से शोभायमान विचित्र प्रासाद हैं।।७९।। वे प्रासाद कुन्दपुष्प, चन्द्रमा एवं शंख के समान धवल, मरकत मणियों जैसे वर्ण वाले, सुवर्ण के सदृश, उत्तम पद्मरागमणियों के समान व बहुत से अन्य विचित्र वर्णों वाले हैं।।८०।। उपर्युक्त प्रासादों में ओलगशाला, मंत्रशाला, भूषणशाला, अभिषेकशाला, उत्पत्तिशाला और मैथुनशाला, इत्यादिक रत्नमयी विशाल

---

१. तिलोयपण्णत्ति पृ. १५१-१५२।

ते पासादा सव्वे विचित्तवणसंडमंडणा रम्मा। दिप्पंतरयणदीवा वरधूवधडेहिं संजुत्ता।।८२।।
सत्तट्ठणवदसादियविचित्तभूमीहिं भूसिदा विउला। धुव्वंतधयवडाया अकट्टिमा सुट्ठु सोहंति।।८३।।
पासरसवण्णवररणिगंधेहिं बहुविधेहिं कदसरिसा। उज्जलविचित्तबहुविधसयणासणणिवहसंपुण्णा।।८४।।
एदस्सिं णयरवरे बहुविहपरिवारपरिगदो णिच्चं। देवीजुत्तो भुंजदि उवचारसुहाइं विजयसुरो।।८५।।
एवं अवसेसाणं देवाणं पुरवराणि रम्माणि। दारोवरिमपदेसे णहम्मि जिणभवणजुत्ताणि।।८६।।
जगदीए अब्भंतरभागे वेकोसवाससंजुत्ता। भूमितले वणसंडा वरतरुणियरा विराजंति।।८७।।
तं उज्जाणं सीयलछायं वरसुरहिकुसुमपरिपुण्णं। दिव्वामोदसुगंधं सुरखेयरमिहुणमणहरणं।।८८।।
वे कोसा उव्विद्धा उज्जाणवणस्स वेदिया दिव्वा। पंचसयचावरुंदा कंचणवररयणणियरमई[१]।।८९।।

वापिकाओं में जिनमंदिर

पुरदो महाधयाणं मकरप्पमुहेहिं मुक्कसलिलाओ। चत्तारो वावीओ कमलुप्पलकुमुदछण्णाओ[१]।।१९१४।।
पण्णासकोसउदया कमसो पणुवीस रुंददीहत्ता। दस कोसा अवगाढा वावीओ वेदियादिजुत्ताओ।।१९१५।।
को ५० । १०० । गा १० ।
वावीणं बहुमज्झे चेट्ठदि एक्को जिणिंदपासादो। विप्फुरिदरयणकिरणो किं बहुसो सो णिरुवमाणो।।१९१६।।
तत्तो दहाउ पुरदो पुव्वुत्तरदक्खिणेसु भागेसुं। पासादा रयणमया देवाणं कीडणा होंति।।१९१७।।

शालाएँ शोभायमान हैं।।८१।। वे सब भवन विचित्र वनसमूहों से सुशोभित, रमणीय, प्रदीप्त रत्नदीपकों से युक्त, श्रेष्ठ धूपघटों से संयुक्त; सात, आठ, नौ और दश इत्यादि विचित्र भूमियों से विभूषित; विशाल, फहराती हुई ध्वजापताकाओं से सहित और अकृत्रिम होते हुए अच्छी तरह शोभायमान हैं।।८२-८३।। उपर्युक्त भवन नाना प्रकार के स्पर्श, रस, वर्ण, उत्तम ध्वनि एवं गन्ध से सदृशता को प्राप्त और उज्ज्वल एवं विचित्र बहुत प्रकार के शयन तथा आसनों के समूह से परिपूर्ण हैं।।८४।। इस श्रेष्ठ नगर में बहुत प्रकार के परिवार से परिपूर्ण विजयदेव अपनी देवियों से युक्त होकर सर्वदा उपचार सुखों को भोगता है।।८५।। इसी प्रकार अन्य द्वारों के उपरिम भाग पर आकाश में जिनभवनों से युक्त अवशिष्ट देवों के रमणीय उत्तम नगर हैं।।८६।। जगती के अभ्यन्तर भाग में पृथ्वीतल पर दो कोस विस्तार से युक्त और उत्तम वृक्षों के समूहों से परिपूर्ण वनसमूह शोभायमान हैं।।८७।। वह उद्यान शीतल छाया से युक्त, उत्तम सुगन्धित पुष्पों से परिपूर्ण, दिव्य सुगन्ध से सुगन्धित और देव एवं विद्याधरयुगलों के चित्त को हरने वाला है।।८८।। सुवर्ण एवं उत्तमोत्तम रत्नों के समूह से निर्मित उस उद्यानवन की दिव्य वेदिका दो कोस ऊँची और पाँच सौ धनुषप्रमाण चौड़ी है।।८९।।

वापिकाओं में जिनमंदिर

महाध्वजाओं के आगे मगर आदि जलजन्तुओं से रहित जल वाली और कमल, उत्पल व कुमुदों से व्याप्त चार वापिकायें हैं ।। १९१४ ।। वेदिकादि से सहित वापिकायें प्रत्येक पचास कोस प्रमाण विस्तार से युक्त, इससे दुगुनी अर्थात् सौ कोस लम्बी और दश कोस गहरी हैं।।१९१५।। को. ५० । १००। ग. १० । **वापियों के बहुमध्य भाग में प्रकाशमान रत्नकिरणों से सहित एक जिनेन्द्रप्रासाद स्थित है।** बहुत कथन से क्या, वह जिनेन्द्र–

---

१. तिलोयपण्णत्ति, चतुर्थ महाधिकार, पृ. ३९१।

पण्णासकोसउदया कमसो पणुवीस रुंददीहत्ता। धूवधडेहिं जुत्ता ते णिलया विविहवण्णधरा।।१९१८।।

को ५० । २५ । २५ ।

वरवेदियाहिं रम्मा वरकंचणतोरणेहिं परियरिया। वरवज्जणीलमरगयणिम्मिदभित्तीहिं सोहंते।।१९१९।।

ताण भवणाण पुरदो तेत्तियमाणेण दोण्णि पासादा। धुव्वंतधयवदाया फुरंतवररयणकिरणोहा।।१९२०।।

५० । २५ । २५ ।

जंबूद्वीप की समस्त नदियों के निर्गमन व प्रवेश स्थान के तोरणद्वारों पर जिनप्रतिमाएँ

अंबरपणएक्कचऊणवछप्पण्णसुण्णणवयसत्तं च। अंककमे परिमाणं जंबूदीवस्स खेत्तफलं[१]।।२३७९।।

७९०५६९४१५०।

अट्ठावीससहस्सं भरहस्स तरंगिणीओ दुगसहिदा। दुगुणा दुगेण रहिदा हेमवदक्खेत्तसरिया णं।।२३८०।।

२८००२। ५६००२।

हेमवदवाहिणीणं दुगुणियसंखा य दुगविहीणा य। हरिवरिसम्मि पमाणं तरंगिणीणं च णादव्वं।।२३८१।।

११२००२।

एदाण तिखेत्ताणं सरियाओ मेलिदूण दुगुणकदा। ....।।२३८२।।

३९२०१२।

प्रासाद निरूपम है।।१९१६।। अनन्तर वापियों के आगे पूर्व, उत्तर और दक्षिण भागों में देवों के रत्नमय क्रीडाभवन हैं।।१९१७।। विविध वर्णों को धारण करने वाले वे भवन पचास कोस ऊंचे, क्रम से पच्चीस कोस विस्तृत और पच्चीस ही कोस लम्बे तथा धूपघटों से संयुक्त हैं।।१९१८।। को. ५०। २५ । २५ । उत्तम वेदिकाओं से रमणीय और उत्तम सुवर्णमय तोरणों से युक्त वे भवन उत्कृष्ट वज्र, नीलमणि और मरकत मणियों से निर्मित भित्तियों से शोभायमान हैं।।१९१९।। उन भवनों के आगे इतने ही प्रमाण से संयुक्त फहराती हुई ध्वजापताकाओं से सहित और प्रकाशमान उत्तम रत्नों के किरणसमूह से सुशोभित दो प्रासाद हैं।।१९२०।। ५० । २५ । २५ ।

जंबूद्वीप की समस्त नदियों के निर्गमन व प्रवेश स्थान के तोरणद्वारों पर जिनप्रतिमाएँ

शून्य, पाँच, एक, चार, नौ, छह, पाँच, शून्य, नौ और सात, इन अंकों के क्रम से जो संख्या हो, उतने योजनप्रमाण जम्बूद्वीप का क्षेत्रफल है।।२३७९।। ७९०५६९४१५०। भरतक्षेत्र की नदियां अट्ठाईस हजार दो और हैमवतक्षेत्र की नदियाँ दो कम इससे दूनी अर्थात् छप्पन हजार दो हैं।।२३८०।। २८००२ ।५६००२। हरिवर्षक्षेत्र में भी नदियों का प्रमाण हैमवतक्षेत्र की नदियों से दो कम दुगुणित संख्यारूप अर्थात् एक लाख बारह हजार दो जानना चाहिए।।२३८१।। ११२००२। इन तीन क्षेत्रों की नदियों को मिलाकर दूना करने से (तीन लाख बानवे हजार बारह होता है।) देवकुरु और उत्तकुरु में इन नदियों की संख्या एक लाख अड़सठ हजार प्रमाण

---

१. तिलोयपण्णत्ति पृ. ४४३, ४४४।

अट्ठासट्ठिसहस्सब्भहियं एक्कं तरंगिणीलक्खं। देवकुरुम्मि य खेत्ते णादव्वं उत्तरकुरुम्मि।।२३८३।।
१६८०००।
अट्ठत्तरिसंजुत्ता चोद्दसलक्खाणि होंति दिव्वाओ। सव्वाओ पुव्वावरविदेहविजयाण सरियाओ।।२३८४।।
१४०००७८।
सत्तरससयसहस्सा बाणउदिसहस्सया य णउदिजुदा।
सव्वाओ वाहिणीओ जंबूदीवम्मि मिलिदाओ।।२३८५।।
१७९२०९०।
णदीसंखा–विदे० सीतासीतोदा २, क्षेत्रनदी ६४, विभंगा १२, सीतासीतोदापरिवार १६८०००, क्षे. न. प. ८९६०००, वि. परि. ३३६०००, एकत्र १४०००७८। भरतादि ३९२०१२। १७९२०९०।
सरियाओ जेत्तियाओ चेट्ठंते तेत्तियाणि कुंडाणिं। विक्खादाओ ताओ णियणियकुंडाण णामेहिं।।२३८६।।
वेंतरदेवा बहुओ णियणियकुंडाण णामविदिदाओ। पल्लाउपमाणाओ णिवसंता ताण दिव्वगिरिभवणे।।२३८७।।
जेत्तिय कुंडा जेत्तिय सरियाओ जेत्तियाओ वणसंडा। जेत्तिय सुरणयरीओ जेत्तिय जिणणाहभवणाणिं।।२३८८।।
जेत्तिय विज्जाहरसेढियाओ जेत्तियाओ पुरियाओ। अज्जाखंडे जेत्तिय णयरीओ जेत्तियद्दिदहा।।२३८९।।
वेदीओ तेत्तियाओ णियणियजोग्गाओ ताण पत्तेक्कं। जोयणदलमुच्छेहो रुंदा चावाणि पंचसया।।२३९०।।
$\frac{१}{२}$ । दंड ५००।
णवरि विसेसो एसो देवारण्णस्स भूदरण्णस्स। जोयणमेक्कं उदओ दंडसहस्सं च वित्थारो।।२३९१।।
कुंडवणसंडसरियासुरणयरीसेलतोरणद्दारा। विज्जाहरवरसेढीणयरज्जाखंडणयरीओ।।२३९२।।

है।।२३८२-२३८३।। पूर्वापर विदेहक्षेत्रों की सब दिव्य नदियाँ चौदह लाख अठहत्तर हैं।।२३८४।।१४०००७८। इस प्रकार सब मिलकर जम्बूद्वीप में सत्रह लाख बानवे हजार नब्बे नदियाँ हैं।।२३८५।। ७९२०९०। नदीसंख्या—विदेह में सीता-सीतोदा २, क्षेत्रनदी ६४, विभंगा १२, सीता-सीतोदा-परिवार १६८०००, क्षे. न. परिवार ८९६०००, विभंगापरिवार ३,३६०००, एकत्र १४०००७८। भरतादिक शेष छह क्षेत्र ३९२०१२। समस्त—१७९२०९०। जितनी नदियाँ हैं उतने ही कुण्ड भी स्थित हैं। वे नदियाँ अपने-अपने कुण्डों के नामों से विख्यात हैं।।२३८६।। अपने कुण्डों के नामों से विदित बहुत से व्यन्तरदेव एक पल्यप्रमाण आयु से सहित होते हुए उन कुण्डों के दिव्य गिरिभवन में निवास करते हैं।।२३८७।। जितने कुण्ड, जितनी नदियाँ, जितने वनसमूह, जितनी देवनगरियाँ, जितने जिनेन्द्रभवन, जितनी विद्याधरश्रेणियाँ, जितने नगर, आर्यखण्डों की जितनी नगरियाँ, जितने पर्वत और जितने द्रह हैं, उनमें से प्रत्येक के अपने-अपने योग्य उतनी ही वेदियाँ हैं। इन वेदियों की ऊँचाई आधा योजन और विस्तार पाँच सौ धनुषप्रमाण है।।२३८८-२३९०।। वेदियों की ऊँचाई १/२ यो.। विस्तार ५०० धनुष। विशेष यह है कि देवारण्य और भूतारण्य की जो वेदियाँ हैं, उनकी ऊँचाई एक योजन व विस्तार एक हजार धनुषप्रमाण है।।२३९१।। **कुण्ड, वनसमूह, नदियाँ, देवनगरियाँ, पर्वत, तोरणद्वार, विद्याधरश्रेणियों के नगर, आर्यखण्डों की नगरियाँ, द्रहपंचक (पाँच-पाँच द्रह), पूर्वापरविदेहों के ग्रामादिक, शाल्मलीवृक्ष और जम्बूवृक्ष**

दहपंचयपुव्वावरविदेहगामादिसम्मलीरुक्खा।जेत्तियमेत्ता जंबूरुक्खाइं य तेत्तिया जिणणिकेदा।।२३९३।।
छक्कुलसेला सव्वे विजयड्ढा होंति तीस चउजुत्ता। सोलस वक्खारगिरी वारणदंताइ चत्तारो।।२३९४।।
६।३४।१६।४।
तह अट्ठ दिग्गइंदा णाभिगिरिंदा हवंति चत्तारि। चोत्तीस वसहसेला कंचणसेला सयाण दुवे।।२३९५।।
८। ४। ३४। २००।

नदी के तट पर जिनप्रतिमाएँ

पत्तेक्कं पुव्वावरविदेहविजएसु अज्जखंडम्मि। सीदासीदोदाणं दुतडेसुं जिणिंदपडिमाओ[1]।।२३०५।।
चेट्ठंति तिण्णि तिण्णि य पणमियचलणा तियंसणिवहेहिं।
सव्वाओ छण्णउदी तित्थट्ठाणाणि मिलिदाओ।।२३०६।।

नदियों के तोरणद्वारों पर जिनप्रतिमाएं

रोहीए समा बारसविभंगसरियाओ वासपहुदीहिं। परिवारणईओ तह दोसु विदेहेसु पत्तेक्कं[2]।।२३१२।।
२८०००।
कंचणसोवाणाओ सुगंधविमलेहिं सलिलभरिदाओ। उववणवेदीतोरणजुदाओ णच्चंतउम्मीओ।।२३१३।।
तोरणदाराणुवरिमठाणट्ठिदजिणणिकेदणिचिदाओ।
सोहंति णिरुवमाणा सयलाओ विभंगसरियाओ।।२३१४।।

जितने हैं उतने ही जिनभवन भी हैं।।२३९२-२३९३।। जम्बूद्वीप में सब कुलपर्वत छह, विजयार्द्ध चौंतीस, वक्षारगिरि सोलह और गजदन्त चार हैं।।२३९४।। कुलशैल ६। विजयार्ध ३४। वक्षारगिरि १६। गजदन्त पर्वत ४। दिग्गजेन्द्रपर्वत आठ, नाभिगिरीन्द्र चार, वृक्षभशैल चौंतीस तथा कांचनशैल दो सौ हैं।।२३९५।। दिग्गजेन्द्र ८। नाभिगिरि ४। वृषभशैल ३४। कांचनशैल २००।

नदी के तट पर जिनप्रतिमाएँ

पूर्वापर विदेह क्षेत्रों में से प्रत्येक क्षेत्र के आर्यखण्ड में सीता-सीतोदा के दोनों किनारों पर, जिनके चरणों में देवों के समूह नमस्कार करते हैं ऐसी **तीन-तीन जिनेन्द्रप्रतिमाएँ** स्थित हैं। ये सर्व तीर्थस्थान मिलकर छियानबे हैं।।२३०५-२३०६।।

नदियों के तोरणद्वारों पर जिनप्रमिताएं

दोनों विदेहों में से रोहित् के समान विस्तारादि से सहित बारह विभंग नदियाँ हैं। इनमें से प्रत्येक नदी की परिवार नदियाँ रोहित् के ही समान अट्ठाईस हजार प्रमाण हैं।।२३१२।। सम्पूर्ण विभंग नदियाँ सुवर्णमय सोपानों से सहित, सुगंधित निर्मल जल से परिपूर्ण, उपवन, वेदी एवं तोरणों से संयुक्त, नृत्य करती हुई लहरों से सहित, तोरणद्वारों के उपरिम प्रदेश में स्थित **जिनभवनों से युक्त** और उपमा से रहित होती हुई शोभायमान होती हैं।।२३१३-२३१४।।

---

१. तिलोयपण्णत्ति पृ० ४३५। २. तिलोयपण्णत्ति, चतुर्थमहाधिकार, पृ० ४३५, ४३६।

रूप्यकूल कुंड पर महल की छत पर जिनप्रतिमा हैं

पुंडरियदहाहिंतो उत्तरदारेण रुप्पकूलणई। णिस्सरिदूणं णिवददि कुंडे सा रुप्पकूलम्मि[१]।।२३५२।।
तस्सुत्तरदारेणं णिस्सरिदूणं च उत्तरमुही सा। णाभिगिरिं कादूणं पदाहिणं रोहिसरिय व्व।।२३५३।।
पच्छिममुहेण गच्छिय परिवारतरंगिणीहिं संजुत्ता। दीवजगदीबिलेणं पविसदि कल्लोलिणीणाहं[२]।।२३५४।।

सुवर्णकूल कुण्ड पर महल की छत पर जिनप्रतिमा

तद्दहदक्खिणतोरणदारेण सुवण्णकूलणामणदी[३]।
णिस्सरिय दक्खिणमुही णिवदेदि सुवण्णकूलकुंडम्मि।।२३६२।।
तद्दक्खिणदारेणं णिस्सरिदूणं च दक्खिणमुही सा। णाभिगिरिं कादूणं पदाहिणं रोहिसरिय व्व।।२३६३।।
हेरण्णवदब्भंतरभागे गच्छिय दिसाण पुव्वाए। दीवजगदीबिलेणं पविसेदि तरंगिणीणाहं।।२३६४।।

रूप्यकूल कुंड पर महल की छत पर जिनप्रतिमा हैं

पुण्डरीक द्रह के उत्तरद्वार से वह रूप्यकूलानदी निकलकर रूप्यकूल नामक कुंड में गिरती है।।२३५२।।

भावार्थ—यहाँ पर भी कुंड में पर्वत पर महल की छत पर जटाजूट सहित जिनप्रतिमा है।

तत्पश्चात् वह इस कुण्ड के उत्तरद्वार से निकलकर उत्तर की ओर गमन करती हुई रोहित् नदी के समान नाभिगिरि की प्रदक्षिण करके पश्चिम की ओर जाती है। पुन: परिवार नदियों से संयुक्त होकर वह नदी जम्बूद्वीप की जगती के बिल में होकर लवणसमुद्र में प्रवेश करती है।।२३५३-२३५४।।

सुवर्णकूल कुण्ड पर महल की छत पर जिनप्रतिमा

उस द्रह के दक्षिण तोरणद्वार से निकलकर सुवर्णकूला नामक नदी दक्षिणमुखी होकर सुवर्णकूलकुण्ड में गिरती है।।२३६२।।

भावार्थ—यहाँ पर भी कुंड में पर्वत पर महल की छत पर जटाजूट सहित जिनप्रतिमा है।

तत्पश्चात् उस कुण्ड के दक्षिणद्वार से निकलकर वह नदी दक्षिणमुखी होकर रोहित् नदी के समान नाभिगिरि की प्रदक्षिणा करती हुई हैरण्यवतक्षेत्र के अभ्यन्तर भाग में से पूर्व दिशा की ओर जाकर जम्बूद्वीप सम्बन्धी जगती के बिल में से समुद्र में प्रवेश करती है।।२३६३-२३६४।।

यमकशैल पर देवभवन एवं पांडुकवन में जिनमंदिर

निषधपर्वत के उत्तर में एक हजार योजन जाकर सीतोदा नदी के दोनों किनारों पर यमकशैल स्थित हैं[३]।।२०७५।। नदी के पूर्व में प्रकाशमान उत्तम रत्नों के किरणसमूह से सहित यमकूट और पश्चिम में मेघकूट है।।२०७६।। इन दोनों पर्वतों का अन्तराल पाँच सौ योजन मात्र है। प्रत्येक पर्वत की ऊँचाई दो हजार योजन और विस्तार मूल में एक हजार योजन प्रमाण है।।२०७७।। ५००। २०००। १०००। उन प्रत्येक पर्वतों का मध्य विस्तार सात सौ पचास योजन और शिखरतल में विस्तार का प्रमाण पाँच सौ योजन है।।२०७८।। ७५०। ५००।

---

१. तिलोयपण्णत्ति पृ० ४३९-४४०। २. तिलोयपण्णत्ति, चतुर्थमहाधिकार, पृ० ४४०, ४४१। ३. तिलोयपण्णत्ति पृ. ४०९ से ४१६ तक।

इनकी परिधियाँ तिगुणे विस्तार से अधिक हैं। यमक पर्वतों की गहराई अपनी ऊँचाई के चतुर्थ भाग प्रमाण है।।२०७९।। प्रत्येक यमक पर्वत के ऊपर बहुमध्यभाग में पाँच के घन अर्थात् एक सौ पच्चीस कोस विस्तार से सहित और इससे दूनी ऊँचाई से सम्पन्न दिव्य प्रासाद हैं।।२०८०।। १२५। २५०। सुवर्ण, चाँदी एवं रत्नों से निर्मित, फहराती हुई ध्वजापताकाओं से संयुक्त और उत्तम तोरण द्वारों से रमणीय ये सब प्रासाद अपनी ऊँचाई के अर्धभागप्रमाण विस्तार से सहित हैं।।२०८१।। १२५। यमक पर्वतों के ऊपर और भी दिव्य प्रासाद हैं। उनकी ऊँचाई व विस्तारादि का उपदेश नष्ट हो गया है।।२०८२।। उपवनखण्डों से सहित, पुष्करिणी, कूप व वापिकाओं से रमणीय और प्रकाशमान उत्तम रत्नदीपकों से संयुक्त वे प्रासाद विराजमान हैं।।२०८३।। इन प्रासादों में पर्वतों के सदृश नाम वाले व्यन्तरदेव निवास करते हैं, इनमें से प्रत्येक दश धनुष ऊँचे और एक पल्यप्रमाण आयु से सहित हैं।।२०८४।। उनमें से प्रत्येक के सामानिक, तनुरक्ष, सप्तानीक, तीनों पारिषद, किल्विषिक, आभियोग्य और प्रकीर्णक देव होते हैं।।२०८५।। सुवर्ण, चाँदी एवं रत्नों से निर्मित सामानिकप्रभृति देवों के प्रासाद और अनुपम आकार वाले उनकी देवियों के भवन शोभायमान हैं।।२०८६।। यमक और मेघ सुरों के भवनों से पूर्वदिशा में **पाण्डुकवन के जिनमन्दिर सदृश एक-एक जिनभवन** हैं।।२०८७।। पहले पाण्डुकवन में स्थित जिनभवनों के मुखमण्डपादिक का जो सब वर्णन किया गया है, वही वर्णन इन जिनभवनों का भी समझना चाहिये।।२०८८।। भद्रशालवन में सीतोदा नदी के दक्षिण किनारे पर कुमुदशैल और उत्तर किनारे पर पलाशगिरि स्थित है।।२११२।। ये सम्पूर्ण वर्णनायें दिग्गजेन्द्र पर्वतों के सदृश हैं। विशेष केवल यह है कि यहाँ उत्तरेन्द्र के लोकपाल वरुण का निवास है।।२११३।। इसके आगे पश्चिम भाग में नील व निषध पर्वत की उपवन वेदी से संलग्न सुवर्णमय भद्रशालवनवेदी है।।२११४।। वेदी की लम्बाई तेतीस हजार छह सौ चौरासी योजन और उन्नीस से भाजित चार कलाप्रमाण है।।२११५।। नीलपर्वत के ऊपर केसरी नाम से प्रसिद्ध दिव्य द्रह है। उसके दक्षिणद्वार से सीता नामक उत्तम नदी निकलती है।।२११६।। सीता नदी सीतोदा के समान ही सीताकुंड में गिरकर दक्षिणमुख होती हुई उसके दक्षिणद्वार से निकलती है।।२११७।। कुंड से निकलकर वह नदी मेरुपर्वत तक दक्षिण की ओर से जाती हुई दो कोसों से उस मेरु पर्वत को न पाकर उतने मात्र अन्तर सहित पूर्व की ओर मुड़ जाती है।।२११८।। उक्त नदी माल्यवंत पर्वत की दक्षिणमुख वाली गुफा में प्रवेश करती है। पश्चात् उस गुफा में से निकलकर कुटिल रूप से मेरुपर्वत के मध्यभाग तक जाती है।।२११९।। उस पर्वत के मध्यभाग को अपना मध्यप्रदेशप्रणिधि करके वह सीता नदी पूर्वविदेह के ठीक बीच में पूर्व की ओर जाती है।।२१२०।। अनन्तर जम्बूद्वीप की जगती के बिलद्वार में से जाकर वह सीतानदी परिवारनदियों से युक्त होती हुई लवणसमुद्र में प्रवेश करती है।।२१२१।। सीतानदी का विस्तार व गहराई आदि तथा उसकी वेदी और उपवनादि सब सीतोदा के सदृश ही जानना चाहिये।।२१२२।। नील पर्वत के दक्षिण में एक हजार योजन जाकर सीता के दोनों पार्श्वभागों में दो यमकगिरि स्थित हैं।।२१२३।। १०००। सीता के पूर्व में चित्रनग और पश्चिम भाग में विचित्रकूट है। इनका सब वर्णन यमक और मेघगिरि के सदृश ही समझना चाहिये।।२१२४।।

सीतानदी के सरोवर में जिनमंदिर

यमक पर्वतों के आगे पाँच सौ योजन जाकर पाँच द्रह हैं, जिनमें से प्रत्येक अर्ध सहस्र अर्थात् पाँच सौ योजनप्रमाण दूरी पर हैं।।२१२५।। ५००।। नील, कुरु (उत्तरकुरु), चन्द्र, ऐरावत और माल्यवन्त, ये उन दिव्य

द्रहों के नाम हैं। ये दिव्य द्रह निषधद्रहादिक के उत्तम वर्णनों से युक्त हैं।।२१२६।। अन्तिम द्रह से दो हजार बानवे योजन और उन्नीस से भाजित दो भागप्रमाण जाकर दक्षिण भाग में उत्तम वेदी है।।२१२७।। वह वेदी पूर्व–पश्चिम भागों में गजदन्त पर्वतों से संलग्न, एक योजन ऊँची और योजन के आठवें भाग प्रमाण विस्तार से सहित है।।२१२८।। यो. १। दं. १०००। प्रचुर मार्ग व अट्टालिकाओं से सहित और नाना प्रकार की ध्वजापताकाओं से संयुक्त वह वेदी द्वारों के उपरिम भागों में स्थित **जिनेन्द्र भवनों** से रमणीय है।।२१२९।।

दिग्गज पर्वत पर जिनमंदिर

उत्तम भद्रशालवन के मध्य में सीता नदी के दोनों किनारों पर स्वस्तिक (व अंजन) गिरि के समान वर्णनों से युक्त रोचक व अवतंसकूट नामक दिग्गजेन्द्रगिरि हैं।।२१३०।। विशेषता केवल एक यही है कि उन भवनों में ईशानेन्द्र का वैश्रवण नामक वाहनदेव लीला से निवास करता है।।२१३१।। गजदन्त के अभ्यन्तर भाग में सीता नदी के पूर्व और मन्दरपर्वत के उत्तर पार्श्व भाग में **जिनेन्द्रप्रासाद स्थित** है।।२१३२।। भद्रशालवन के मध्य में सीता के दक्षिण और मन्दर की पूर्वदिशा में पूर्वोक्त वर्णना से सहित **जिनभवन** हैं।।२१३३।। इसके आगे सीता नदी के उत्तर और दक्षिण किनारों पर पूर्वोक्त क्रम से युक्त पद्मोत्तर और नील नामक दिग्गजेन्द्र पर्वत स्थित हैं।।२१३४।। यहाँ विशेषता एक यह है कि उन पर्वतों पर सौधर्म इन्द्र के सोम और यम नामक वाहनदेव रहते हैं।।२१३५।। कितने ही आचार्य मेरुपर्वत के पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर, इनमें से प्रत्येक दिशा में सीता तथा सीतोदा नदी के पाँच द्रहों को स्वीकार करते हैं।।२१३६।। उनके उपदेश से एक–एक द्रह के दोनों किनारों में से प्रत्येक किनारे पर नियम से पाँच–पाँच कांचनशैल हैं।।२१३७।। पाठान्तर।

उपसर्गविजयि श्रीपार्श्वनाथ वंदना

-उपजातिछंद-

पुण्यप्रभावाद् विचलासनाच्च,
यातः फणीन्द्रश्चकितः सभार्यः।
फणातपत्रैरुपसर्गकाले,
भक्तिं व्यधात् यस्य नमोऽस्तु तस्मै।।6।।

पुण्योदय से फणपति आसन, कंपा पद्मावति के साथ।
आकर फण का छत्र किया प्रभु, शिर पर वंदूं पारसनाथ।।

-गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी

गंगा आदि नदियों के गिरने के स्थान पर महल की छत पर जिनप्रतिमाएँ

(त्रिलोकसार से)

गंगादु रोहिदस्सा पउमे रत्तदु सुवण्णमंतदहे। सेसे दो द्दो जोयणदलमंतरिदूण णाभिगिरिं[1]।।५८१।।

गङ्गाद्वे रोहितास्या पद्मे रक्ताद्वे सुवर्णा अन्तह्रदे। शेषेषु द्वे द्वे योजनदलमन्तरित्वा नाभिगिरिम्।।५८१।।

गंगा। गङ्गा सिन्धुः रोहितास्या च पद्महदे उत्पन्नाः, रक्ता रक्तोदा सुवर्णकूला चान्तह्रदे पुण्डरीकाख्ये उत्पन्नाः। शेषेषु सरस्सु द्वे द्वे नद्यौ उत्पन्ने, तत्र गङ्गा सिन्धू रक्ता रक्तोदेति चतुर्नदीः परित्यज्य शेषा नद्यो नाभिगिरिं योजनार्धमन्तरित्वा गताः तत्र गंगासिन्धुरक्तारक्तोदानां नाभिगिरेरभावादेवावर्जिताः।।५८१।।

अथ तत्र गंगाया उत्पत्तिं तद्गमनप्रकारं च गाथात्रयेणाह—

वज्जमुहदो जणित्ता गंगा पंचसयमेत्थ पुव्वमुहं। गत्ता गंगाकूडं अविपत्ता जोयणद्धेण।।५८२।।

दक्खिणमुहं बलित्ता जोयणतेवीससहियपंचसयं। साहियकोसद्धजुदं गत्ता जा विविहमणिरूवा।।५८३।।

कोसदुगदीहबहला वसहायारा य जिब्भियारुंदा। छज्जोयणं सकोसं तिस्से गंतूण पडिदा सा।।५८४।।

वज्रमुखतः जनित्वा गंगा पञ्चशतमत्र पूर्वमुखं। गत्वा गंगाकूटं अप्राप्य योजनार्धेन।।५८२।।

दक्षिणमुखं बलित्वा योजनत्रयोविंशतिसहितपञ्चशतम् साधिकक्रोशार्धयुतं गत्वा या विविधमणिरूपा।।५८३।।

क्रोशद्वयदीर्घबाहल्या वृषभाकारा च जिह्विकारुन्द्रा। षड्योजनं सकोशं तस्यां गत्वा पतिता सा।।५८४।।

गंगा आदि नदियों के गिरने के स्थान पर महल की छत पर जिनप्रतिमाएँ

(त्रिलोकसार से)

गाथार्थ :— गंगादि दो और रोहितास्या ये तीन नदियाँ पद्म द्रह से, सुवर्णकूला, रक्ता और रक्तोदा ये तीन नदियाँ अन्तिम पुण्डरीक ह्रद से तथा शेष द्रहों से दो-दो नदियाँ उत्पन्न हुई हैं। नदियों का बहाव नाभिगिरि को आधा योजन छोड़कर है।।५८१।।

विशेषार्थ :— पद्म ह्रद से गंगा, सिन्धु और रोहितास्या ये तीन, महापद्म ह्रद से रोहित और हरिकांता, तिगिञ्छ ह्रद से हरित् और सीतोदा, केसरी ह्रद से सीता और नरकान्ता, महापुण्डरीक से नारी और रूप्यकूला तथा अन्तिम पुण्डरीक ह्रद से सुवर्णकूला, रक्ता और रक्तोदा ये तीन नदियाँ निकली हैं। गङ्गा, सिन्धु, रक्ता और रक्तोदा इन चार नदियों को छोड़कर शेष नदियाँ नाभिगिरि को आधा योजन छोड़ कर जाती हैं।

भरतैरावत क्षेत्रों में नाभिगिरि का अभाव है अतः गंगा, सिन्धु, रक्ता और रक्तोदा इन चार नदियों को छोड़कर शेष नदियाँ नाभिगिरि को आधा योजन दूर से छोड़कर प्रदक्षिणारूप जाती हैं। यथा—

हैमवत क्षेत्र में विजटावान् और हरिक्षेत्र में पद्मवान् पर्वत हैं, जो नाभिगिरि नाम से प्रसिद्ध हैं अतः रोहित्, रोहितास्या और हरित्, हरिकांता ये दो-दो महानदियाँ इन दोनों नाभिपर्वतों से आधा योजन इधर रहकर प्रदक्षिणा रूप से जाती हैं। विदेह क्षेत्र में सुमेरु (नाभिगिरि) है ही। रम्यक क्षेत्र में जो गंधवान् और हैरण्यवत क्षेत्र में विजयार्ध नाम के पर्वत हैं वे भी नाभिगिरि नाम से प्रसिद्ध हैं अतः सीता-सीतोदा सुमेरु से, नारी-नरकांता गन्धवान् से और सुवर्णकूला-रूप्यकूला विजयार्ध (नाभिगिरि) से आधा योजन इधर रहकर अर्ध प्रदक्षिणारूप से

---

१. त्रिलोकसार-पृ. ४९२ से ४९७ तक।

वज्ज। पद्मसरोवरस्थवज्रद्वाराज्जनित्वा गङ्गा पञ्चशतयोजनान्यत्र हिमवति पूर्वमुखं गत्वा योजनार्द्धेन गंगाकूटमप्राप्य।।५८२।।

दक्खिण। तस्माद्दक्षिणमुखं वलित्वा व्यावृत्य त्रयोविंशतिसहितपञ्चशतयोजनानि साधिकक्रोशार्धयुतानि गत्वा। अस्य वासना—भरतप्रमाणं यो० ५२६-६/१९ द्विगुणीकृत्य १०५२-१२/१९ तत्र नदीव्यासं यो ६ क्रो १ अपनीय १०४६ अर्धयित्वा ५२३ शेषयोजनं १२/१९ चतुर्भिः क्रोशं कृत्वा ४८/१९ भक्त्वा २-१०/१९ आगते लब्धे क्रो २ एकं क्रोशं नदीव्यासाय दद्यात् ।अवशिष्टं शेषं १०/१९ लब्धैकक्रोशं चार्धयेत्।५/१९।१/२। एवं सति योजणतेवीसेत्याद्युक्तमङ्कं व्यक्तं भवति। या जिह्विका प्रणालिका विविधमणिरूपा।।५८३।।

कोस। क्रोशद्वयदीर्घबाहल्या वृषभाकारा कोशसहितषड्योजनरुन्द्रा तस्यां प्रणालिकायां गत्वा सा गंगा नदी पतिता।।५८४।।

जाती हैं।

गंगा नदी की उत्पत्ति और उसके गमन का प्रकार तीन गाथाओं द्वारा कहते हैं—

गाथार्थ :— गङ्गा नदी वज्रमय मुख से (उत्पन्न) निकलकर पाँच सौ योजन पूर्व की ओर जाती हुई गङ्गाकूट को न पाकर अर्धयोजन पूर्व से दक्षिण की ओर मुड़कर साधिक अर्ध कोश अधिक पाँच सौ तेईस योजन आगे जाकर नाना प्रकार के मणियों से रचित, दो कोस लम्बी, दो कोस मोटी और सवा छह योजन चौड़ी वृषभाकार जिह्विका (नाली) में जाकर (हिमवान् पर्वत से) नीचे गिरती है।।५८२-५८४।।

विशेषार्थ :—गङ्गा नदी पद्मद्रह की पूर्व दिशा में स्थित वज्रद्वार से निकल कर इसी पर्वत के ऊपर ५०० योजन पूर्व दिशा की ओर जाकर इसी हिमवान् पर्वत पर स्थित गंगाकूट को न पाकर अर्ध योजन पहिले ही अर्थात् अर्ध योजन गंगाकूट को छोड़कर दक्षिण की ओर मुड़कर दक्षिण दिशा में ही (इसी हिमवान् पर्वत पर) साधिक अर्धकोश से अधिक पाँच सौ तेईस (५२३) योजन आगे जाती है। इसकी वासना कहते हैं :—भरतक्षेत्र का प्रमाण ५२३-६/१९ योजन है, इसको दूना करने से ५२६-६/१९ × २ =१०५२-१२/१९ योजन हिमवान् पर्वत का विस्तार प्राप्त हुआ। इस पर्वत के ठीक बीच में पद्मद्रह है और गंगा भी पर्वत के ठीक मध्य से जाती है अतएव पर्वत के विस्तार में नदी का व्यास ६-१/४ यो० घटाकर आधा करने पर १०५२-१२/१९—६-१/४ = ५२३ योजन हुए। अवशिष्ट १२/१९ योजन के कोश बनाने के लिये ४ से गुणा करने पर १२/१९×४/१ =४८/१९ अर्थात् २१०/१९ कोश प्राप्त हुए। इसमें से एक कोश नदी के व्यास में दे देने पर १-१०/१९ अर्थात् २९/१९ अवशेष रहे, इन्हें आधा करने पर २१/१९ × २ = २९ / ३८ अर्थात् ५२३-२९/३८ योजन (गंगा नदी) दक्षिण दिशा में जाती है। जहाँ गंगा नदी मुड़ी है वहाँ हिमवान् पर्वत के व्यास में से नदी का व्यास घटाकर अवशिष्ट का आधा करने पर आधा भाग उत्तर में और आधा दक्षिण में रहा अतः दक्षिण के उस अर्ध भाग (५२३-२९/३८योजन) को पार करने के बाद ही गंगा को हिमवान् का तट प्राप्त हो गया। हिमवान् के इसी तट पर नाना मणियों के परिणामरूप जिह्विका नाम की प्रणालिका (नाली) है, जो दो कोस लम्बी, दो कोस मोटी और ६-१/४ योजन चौड़ी है। यह वृषभाकार (गोमुखाकार) है। गंगा नदी इसी नाली में जाकर हिमवन् पर्वत से नीचे गिरती है।

जहाँ नदियां गिरती हैं वहां भगवान की जिनप्रतिमाएँ हैं

अथ प्रणालिकायाः वृषभाकारत्वमन्वर्थयति—

केसरिमुहसुदिजिब्भादिट्ठी भूसीसपहुदिणो सरिसा।तेणिह पणालिया सा बसहायारेत्ति णिद्दिट्ठा।।५८५।।

केशरिमुखश्रुतिजिह्वादृष्टयः भूशीर्षप्रभृतयः गोसदृशाः। तेनेह प्रणालिका सा वृषभाकारा इति निर्दिष्टा।।५८५।।

केसरि। मुखश्रुतिजिह्वादृष्टयः केसरिसदृक्षाः भूशीर्षप्रभृतयः गोसदृक्षास्तेन कारणेनेह सा प्रणालिका वृषभाकारेति निर्दिष्टा।।५८५।।

अथ पतितायास्तस्याः पतनस्वरूपं गाथापञ्चकेनाह—

भरहे पणकदिमचलं मुच्चा कहलोवमा दहव्वासा। गिरिमूले दहगाहं कुंडं वित्थारसट्ठिजुदं।।५८६।।

मज्झे दीओ जलदो जोयणदलमुग्गओ दुघणवासो। तम्मज्झे वज्जमओ गिरी दसुस्सेहओ तस्स।।।५८७।।

भूमज्झग्गो वासो चदुदुगि सिरिगेहमुवरि तव्वासो। चावाणं तिदुगेक्कं सहस्समुदओ दु दुसहस्सं।।५८८।।

पणसयदलं तदंतो तद्दारं ताल वास दुगुणुदयं। सव्वत्थ धणू णेयं दोण्णि कवाला य वज्जमया।।५८९।।

सिरिगिहसीसट्ठियंबुजकण्णियसिंहासणं जडामउलं। जिणमभिसेत्तुमणा वा ओदिण्णा मत्थए गंगा।।५९०।।

जहाँ नदियां गिरती हैं वहां भगवान की जिनप्रतिमाएँ हैं

प्रणाली के वृषभाकारत्व को सार्थक करते हैं :—

गाथार्थ :— उस प्रणालिका अर्थात् कूट का मुख, कान, जिह्वा और नेत्रों का आकार तो सिंह के सदृश है किन्तु भौंह और मस्तक का आकार गौ के सदृश है; इसी कारण उस नाली को (मुख्य रूप से) वृषभाकार कहा गया है।।५८५।।

अब गिरी हुई नदी और उसके गिरने का स्वरूप पाँच गाथाओं द्वारा कहते हैं—

गाथार्थ—भरत क्षेत्र में पञ्चकृति—(पच्चीस योजन) हिमवान् पर्वत को छोड़कर काहला (एक प्रकार का बाजा) के आकार को धारण करने वाली तथा दश योजन है विस्तार जिसका, ऐसी गंगा हिमवान् पर्वत के मूल में दश योजन गहरे और साठ योजन चौड़े गोल कुण्ड में गिरती है। उस कुण्ड के मध्य में जल से ऊपर अर्ध योजन ऊँचा द्विघन—आठ योजन चौड़ा गोल द्वीप (टापू) है। उस द्वीप के मध्य में वज्रमयी—दश योजन ऊँचा पर्वत है। उस पर्वत का व्यास अर्थात् नीचे, मध्य में एवं ऊपर क्रमशः चार, दो और एक योजन है। उस पर्वत के ऊपर श्रीदेवी का गृह है। वह गृह (भू. मध्य और अग्र में क्रमशः) तीन हजार, दो हजार और एक हजार धनुष व्यास वाला है तथा उसकी ऊँचाई दो हजार धनुष है। उस श्रीदेवी के गृह का अभ्यन्तर व्यास पाँच सौ और उसके आधे भाग को मिलाकर अर्थात् (५०० + २५०) =साढ़े सात सौ धनुष प्रमाण है तथा उस गृह के द्वार का व्यास चालीस धनुष और ऊँचाई अस्सी धनुष है जिसके दोनों किवाड़ वज्रमयी हैं। इस प्रकार श्रीगृह का प्रमाण सर्वत्र धनुष प्रमित है। **श्रीगृह के अग्र भाग पर कमलकर्णिका में सिंहासन पर स्थित जटा ही है मुकुट जिनका, ऐसे जिनबिम्ब पर मानों अभिषेक करने का ही है मन जिसका ऐसी गंगा मस्तक पर गिरती है।**।५८६-५९०।।

विशेषार्थ—भरतक्षेत्र में हिमवान् पर्वत को २५ योजन छोड़कर काहला की उपमा को धारण करती हुई दश योजन व्यास वाली गंगा नदी, गोल कुण्ड में स्थित जिनमस्तक पर गिरती है। हिमवान् पर्वत के मूल में जो

भरते पञ्चकृतिमचलं मुक्त्वा काहलोपमा दशव्यासा। गिरिमूले दशगाधं कुण्डं विस्तारषष्टियुतम्।।५८६।।

मध्ये द्वीपः जलतः योजनदलमुद्गतः द्विघनव्यासः। तन्मध्ये वज्रमयः गिरिः दशोत्सेधः तस्य।।५८७।।

भूमध्याग्रो व्यासः चतुः द्विकं एकं श्रीगेहमुपरि तद्व्यासः। चापानां त्रिद्विकैकं सहस्रमुदयस्तु द्विसहस्रम्।।५८८।।

पञ्चशतदलं तदन्तरं तद्द्वारं चत्वारिंशत् व्यासं द्विगुणोदयं। सर्वत्र धनुः ज्ञेयं द्वौ कपाटौ च वज्रमयौ।।५८९।।

श्रीगृहशीर्षस्थिताम्बुजकर्णिकासिंहासनं जटामुकुटं। जिनमभिषेक्तु मना वा अवतीर्णा मस्तके गंगा।।५९०।।

भरहे। भरते पञ्चकृति २५ योजनमचलं मुक्त्वा काहलोपमा दशयोजनव्यासा सती गिरिमूले दशयोजनावगाधषष्टियोजनविस्तारयुतं कुण्डमस्ति।।५८६।।

मज्झे। तन्मध्ये जलादुपरि योजनार्धमुद्गतः द्विघन ८ व्यासः द्वीपोस्ति। तन्मध्ये वज्रमयो दशयोजनोत्सेधो गिरिरस्ति तस्य।।५८७।।

भूम। भूव्यासो मध्यव्यासो अग्रव्यासश्च यथासंख्यं योजनानि चत्वारि द्वि एकं स्युः। तस्य गिरेरुपरि श्रीगृहमस्ति। तद्भूमध्याग्रव्यासश्चापानां त्रिसहस्रं द्विसहस्रमेकसहस्रं उदयस्तु द्विसहस्रं स्यात्।।५८८।।

पण। श्रीगृहाभ्यन्तरविस्तारः पञ्चशततद्दलयोर्मिलितप्रमाणं स्यात्। तस्य श्रीगृहस्यद्वारं चत्वारिंशद्व्यासं ४० तद्द्विगुणो ८० दयं स्यात्। सर्वत्र श्रीगृहमानं धनुः प्रमितं ज्ञेयं, तस्य द्वौ कपाटौ वज्रमयौ।।५८९।।

सिरि। श्रीगृहशीर्षस्थिताम्बुजकर्णिकासिंहासनं जटामुकुटं जिनमभिषिक्तुमना इव जिनमस्तके गङ्गावतीर्णा।।५९०।।

तोरणद्वारों पर जिनप्रतिमाएँ हैं

णदिणिग्गमे पवेसे कुंडे अण्णत्थ चावि तोरणयं। विंबजुदं उवरिं तु दिक्कण्णावाससंजुत्तं[1]।।६०१।।

---

१० योजन गहरा, ६० योजन चौड़ा गोल कुण्ड है, उसके मध्य में जल से ऊपर अर्ध योजन ऊँचा और ८ योजन चौड़ा गोल टापू (द्वीप) है। उस द्वीप के मध्य में वज्रमयी १० योजन ऊँचा पर्वत है। उस पर्वत का व्यास नीचे चार योजन, मध्य में दो योजन और ऊपर एक योजन प्रमाण है, उस पर्वत के ऊपर श्रीदेवी का गृह अर्थात् गंगा कूट है, जिसका व्यास नीचे ३००० धनुष, मध्य में २००० धनुष और ऊपर १००० धनुष है। इसकी ऊँचाई का प्रमाण २००० धनुष है तथा इस गृह (गंगाकूट) का अभ्यन्तर व्यास पाँच सौ और उसके अर्ध भाग को मिलाकर अर्थात् (५०० + २५०) = ७५० धनुष है। इस श्रीगृह के द्वार का व्यास ४० धनुष और उदय ८० धनुष है जिसके दोनों किवाड़ वज्रमयी हैं। श्रीगृह का प्रमाण सर्वत्र धनुष प्रमित जानना चाहिए। इस श्रीगृह अर्थात् गंगाकूट के अग्रभाग पर स्थित कमलकर्णिका में जो सिंहासन है उस पर है अवस्थिति जिनकी तथा जटा ही है मुकुट जिनका ऐसे जिनेन्द्र प्रभु के अभिषेक करने की इच्छा रखने वाली गंगा नदी उनके मस्तक पर गिरती है।

तोरणद्वारों पर जिनप्रतिमाएँ हैं

गाथार्थ—नदी, समुद्र एवं कुण्ड के निर्गम स्थानों पर, प्रवेश स्थानों पर एवं अन्यत्र भी जिनबिम्ब हैं ऊपर जिनके, ऐसे दिक्कन्याओं के आवासों से संयुक्त तोरण द्वार हैं।।६०१।।

---

१. त्रिलोकसार पृ. ५०६।

नदीनिर्गमे प्रवेशे कुण्डे अन्यत्र चापि तोरणकम्। बिम्बयुतं उपरि तु दिक्कन्यावाससंयुक्तम्।।६०१।।

णदि। नदीनिर्गमे प्रवेशे कुण्डे अन्यत्रापि च उपरि जिनबिम्बयुतं दिक्कन्यावाससंयुक्तम् तोरणमस्ति।।६०१।।

सभी पर्वत, नदी आदि के दोनों पार्श्व भागों में वेदिकायें हैं

साम्प्रतं पर्वतादिषु सर्वत्र वेदिका संख्यामाह—

तिसदेक्कारससेले णउदीकुडे दहाण छव्वीसे। तावदिया मणिवेदी णदीसु सगमाणदो दुगुणा[1]।।७३१।।

त्रिशतैकादशशैलेषु नवतिकुण्डेषु ह्रदानां षड्विंशतौ। तावन्त्यः मणिवेद्यः नदीषु स्वकमानतः द्विगुणाः।।७३१।।

तिस। जम्बूद्वीपस्य त्रिशतैकादश ३११ शैलेषु तावन्त्यो मणिमयवेद्यः नवतिकुण्डेषु ९० तावन्त्यो मणिमयवेद्यः ह्रदानां षड्विंशतौ २६ तावन्त्यो मणिमयवेद्यः नदीषु स्वकीयप्रमाणतो द्विगुणा मणिमयवेद्यः स्युः।। इत उक्तार्थं विवृणोति—तत्रैको मन्दरः १ षट् कुलाचलाः ६ चत्वारो यमकगिरयः ४ द्विशतं काञ्चनपर्वता २०० अष्टौ दिग्गजपर्वताः ८ षोडश वक्षाराः १६ चत्वारो गजदन्ताः ४ चतुस्त्रिंशद्विजयार्धाः ३४ चतुस्त्रिंशद् वृषभाचलाः ३४ चत्वारो नाभिनगाः ४ एतेषु मिलितेषु त्रिशतैकादश ३११ शैलसंख्या भवति। गङ्गादिमहानदीपतनकुण्डानि चतुर्दश १४ विभङ्गनद्युत्पत्तिकुण्डानि द्वादश १२ गंगासिन्धुसमाननद्युत्पत्तिकुण्डानि

विशेषार्थ—नदी के निर्गम स्थान अर्थात् द्रहों और कुण्डों के द्वार पर तथा जम्बूद्वीप के कोट के जिनद्वारों से होकर नदी समुद्र में जाती है उन द्वारों पर तथा अन्यत्र भी गुफा आदि के द्वारों पर जिनबिम्ब हैं ऊपर जिनके, ऐसे दिक्कुमारियों के आवासों से युक्त तोरणद्वार हैं।

सभी पर्वत, नदी आदि के दोनों पार्श्व भागों में वेदिकायें हैं

अब पर्वत आदि पर सर्वत्र वेदिकाओं की संख्या कहते हैं—

गाथार्थ—जम्बूद्वीप में तीन सौ ग्यारह पर्वत, ९० कुण्ड और छब्बीस ह्रद हैं। इनकी इतनी-इतनी ही मणिमय वेदियाँ हैं तथा नदियों का जितना प्रमाण है, मणिमय वेदियाँ उससे दूने प्रमाण वाली हैं। (क्योंकि नदियों के दोनों पार्श्व भागों में वेदियाँ होती हैं)।।७३१।।

विशेषार्थ—जम्बूद्वीप में ३११ पर्वतों की ३११ ही मणिमय वेदियाँ हैं। तथा ९० कुण्डों की ९० और २६ द्रहों की २६ ही मणिमय वेदियाँ हैं। नदियों के अपने प्रमाण से वेदियों का प्रमाण दूना है।

इसी कहे हुए अर्थ का विशेष वर्णन करते हैं —जम्बूद्वीप में १ सुदर्शन मेरु, ६ कुलाचल, ४ यमकगिरि, २०० काञ्चन पर्वत, ८ दिग्गज पर्वत, १६ वक्षार पर्वत, ४ गजदन्त, ३४ विजयार्ध पर्वत, ३४ वृषभाचल और ४ नाभिगिरि हैं, इन सबका योग करने पर (१ + ६ + ४ + २०० + ८ + १६ + ४ + ३४ + ३४ + ४) = ३११ पर्वत होते हैं।

गङ्गा, सिन्धु, रोहित्, रोहितास्या आदि चौदह महानदियाँ कुलाचल पर्वतों से जहाँ नीचे गिरती हैं, वहाँ (नीचे) कुण्ड हैं जिनकी संख्या १४ है। बारह विभङ्गा नदियों के उत्पत्ति कुण्डों की संख्या १२, बत्तीस विदेह देशों में से प्रत्येक देश में गंगा सिन्धु समान दो-दो नदियाँ कुण्डों से निकलती हैं अतः वहाँ के कुण्डों का प्रमाण ६४ है, इस प्रकार ये सब (१४ + १२ + ६४) = ९० कुण्ड होते हैं।

छह कुलाचलों पर ६ ह्रद, सीता नदी में १० और सीतोदा नदी में भी १० इस प्रकार कुल ह्रदों की संख्या

---

१. त्रिलोकसार पृ० ५७५, ५७६।

चतुः षष्टिः ६४ एतेषु मिलितेषु नवतिकुण्डानि ९० भवन्ति। कुलगिरिह्लदाः षट् ६ सीताह्लदा दश १० सीतोदा ह्लदा दश १० एतेषु मिलितेषु षड्विंशति ह्लदा २६ भवन्ति। गंगासिन्धुरक्तारक्तोदानां ४ प्रत्येकं परिवारनदी १४००० स्वगुणकारेण ४ गुणयित्वा ५६००० रोहिद्रोहितास्यासुवर्णरूप्यकूलानां ४ प्रत्येकं परिवारनदीः २८००० स्वगुणकारेण ४ गुणयित्वा ११२००० हरिद्धरिकान्तानारीनरकान्तानां ४ प्रत्येकं परिवारनदीः ५६००० स्वगुणकारेण ४ गुणयित्वा २२४००० देवोत्तरकुरुस्थयोः सीतासीतोदयोः २ प्रत्येकं परिवारनदीः ८४००० तथा २ गुणायित्वा १६८००० विभङ्गनदीनां १२ प्रत्येकं परिवारनदीः २८००० तथा १२ गुणयित्वा ३३६००० गंगासिन्धुरक्तारक्तोदानां विदेहस्थनदीनां ६४ प्रत्येकं परिवादनदीः १४००० तथा ६४ गुणयित्वा ८९६००० एतानि सर्वाण्येकानि मेलयित्वा १७९२०००। अत्र गुणकारमुख्यनदीः ९० मेलने १७९२०९० जम्बूद्वीपसर्वनदीसंख्या। अत्र स्वप्रमाणतो १७९२०९० द्विगुणा ३५८४१८० मणिमयवेद्यो ज्ञातव्याः।।७३१।।

नन्दनवन के वापी में सौधर्मेन्द्र प्रासाद

अथ तन्मध्यप्रासादस्वरूपं गाथाद्वयेनाह—

दक्खिणउत्तरवावीमज्झे सोहम्मजुगलपासादा। पणघणदलचरणुच्छ्रयवासा दलगाढचउरस्सा[1]।।६३१।।

(६ + १० + १०) = २६ है।

भरतैरावत क्षेत्र स्थित गंगा सिन्धु, रक्ता और रक्तोदा इन चार महानदियों में से प्रत्येक की परिवार नदियाँ १४००० हैं अतः अपने गुणकार का गुणा करने पर कुल प्रमाण (१४००० × ४) = ५६००० हुआ। हैमवत और हैरण्यवत क्षेत्र स्थित रोहित–रोहितास्या, स्वर्णकूला और रूप्यकूला, इन प्रत्येक की सहायक २८००० नदियां हैं अतः परिवार नदियों का कुल प्रमाण (२८००० × ४) = १,१२००० हुआ। हरि और रम्यक क्षेत्र स्थित हरित्, हरिकान्ता, नारी और नरकान्ता, इन प्रत्येक की परिवार नदियाँ ५६००० हैं अतः उनका कुल प्रमाण (५६००० × ४) = २,२४००० हुआ। देवकुरु उत्तरकुरु स्थित सीता–सीतोदा में प्रत्येक की परिवार नदियाँ ८४००० हैं, अतः उनका कुल प्रमाण (८४००० × २) = १६८००० हुआ। बारह विभङ्गा नदियों में प्रत्येक की परिवार नदियाँ २८००० हैं, अतः २८००० × १२ = ३,३६००० परिवार नदियों का प्रमाण हुआ। बत्तीस विदेह देशों में गंगा–सिन्धु, रक्ता और रक्तोदा नाम की ६४ नदियाँ हैं तथा प्रत्येक की परिवार नदियाँ १४००० हैं अतः इनकी परिवार नदियों का कुल प्रमाण (१४००० × ६४) = ८९६००० हुआ। इन सम्पूर्ण परिवार नदियों का योग करने पर (५६००० + ११२००० + २२४००० + १६८००० + ३३६००० + ८९६०००) = १७९२००० कुल प्रमाण प्राप्त हुआ। यहाँ गुणकारस्वरूप मुख्य नदियों का प्रमाण (१४००० × ६४) = ८९६००० हुआ। इन (४ + ४ +४ + २ + १२ + ६४) = ९० है। परिवार नदियों के प्रमाण में इन मुख्य नदियों का प्रमाण मिला देने पर (१७९२००० + ९०) = १७९२०९० जम्बूद्वीप स्थित सम्पूर्ण नदियों का प्रमाण प्राप्त हुआ।

नन्दनवन के वापी में सौधर्मेन्द्र प्रासाद

उन बावड़ियों के मध्य स्थित प्रासादों का स्वरूप दो गाथाओं द्वारा कहते हैं—

गाथार्थ :—दक्षिण और उत्तर दिशा की वापियों के मध्य में क्रमशः सौधर्मैशान इन्द्रों के प्रासाद हैं। उनकी पञ्च के घन का अर्ध प्रमाण ऊँचाई, उसके चौथाई प्रमाण व्यास और अर्ध योजन प्रमाण गाढ (नींव) है। ये सभी

---

१. त्रिलोकसार–पृ. ५२९ से ५६० तक।

दक्षिणोत्तरवापीमध्ये सौधर्मयुगलप्रासादाः। पञ्चघनदलचरणोच्छ्रयव्यासाः दलगाढचतुरस्राः।।६३१।।

दक्खिण। मेरोरपेक्षया दक्षिणोत्तरवापीमध्ये सौधर्मैशानयोः प्रासादाः पञ्चघन १२५ दल ६२-१/२ पञ्चघनचतुर्थांशो ३१-१/४ च्छ्रयव्यासाः अर्धयोजनगाधाः चतुरस्राः सन्ति।।६३१।।

सोचिदठाणासिदपरिवारेणिंदो ठिदो सपासादे। सव्वमिणं कहियव्वं सोमणसवणेवि सविसेसं।।६३२।।

स्वोचितस्थानासितपरिवारेण इन्द्रः स्थितः स्वप्रासादे। सर्वमिदं कथितव्यं सौमनसवनेऽपि सविशेषं।।६३२।।

सोचिद। सुधर्मसभायामिव स्वोचितस्थानासितपरिवारेण सह स्वप्रासादे इन्द्रस्तिष्ठति सौमनसवनेऽपि सर्वमिदं सविशेषं कथितव्यम्।।६३२।।

जम्बूद्वीप में कुल नदियाँ

इदानीं भरतादिक्षेत्राश्रयेण परिवारनदीप्रमाणं गाथाचतुष्केणाह—

भरहइरावदसरिदा विदेहजुगले च चोद्दससहस्सा। णइपरिवारा तत्तो दुगुणा हरिरम्मगखिदित्ति[1]।।७४७।।

भरतैरावतसरितः विदेहयुगले च चतुर्दशसहस्राणि। नदीपरिवाराः ततः द्विगुणा हरिरम्यकक्षेत्रान्तं।।७४७।।

भरह। भरतैरावतयोः सरितां ४ पूर्वापरविदेहयोर्गङ्गादिसरितां च ६४ प्रत्येकं चतुर्दशसहस्राणि १४००० परिवारनद्यः ततः परं भरताद्धरिवर्षपर्यन्तं ऐरावताद्रम्यकक्षेत्रपर्यन्तं द्विगुणद्विगुणक्रमो ज्ञातव्यः।।७४७।।

प्रासाद चौकोर हैं।।६३१।।

विशेषार्थ :—मेरु की अपेक्षा दक्षिणोत्तर बावड़ियों के मध्य में सौधर्मैशान इन्द्रों के भवन हैं अर्थात् मेरु के दक्षिण की ओर आग्नेय और नैऋत्य दिशा स्थित बावड़ियों में सौधर्म इन्द्र के प्रासाद और उत्तर की ओर अर्थात् वायव्य और ऐशान दिशा स्थित बावड़ियों में ऐशान इन्द्र के प्रासाद हैं। ये प्रासाद पञ्चघन के अर्धप्रमाण अर्थात् ६२-१/२ योजन ऊँचे, ३१-१/४ योजन चौड़े और अर्ध योजन प्रमाण गहरी नींव से संयुक्त एवं चौकोर हैं।

गाथार्थ :—अपने योग्य स्थानों पर स्थित अपने परिवार सहित इन्द्र अपने प्रासाद में ठहरता है। कूटादि का जैसा वर्णन यहाँ नन्दनवन में किया है वैसा ही सविशेष वर्णन सौमनस वन में करना चाहिए।।६३२।।

विशेषार्थ :—इन्द्र जब नन्दनादि वनों में आता है तब स्वर्ग की सुधर्मा सभा के समान अपने-अपने योग्य स्थानों में परिवार सहित अपने प्रासाद में ठहरता है। नन्दन वन स्थित भवनों के पार्श्वभागों में कूटादिक का, आग्नेयादि दिशाओं में बावड़ियों का तथा बावड़ियों के मध्य स्थित प्रासाद आदि का जैसा वर्णन यहाँ किया है वैसा ही सर्व वर्णन विशेषता सहित सौमनस वन में भी करना चाहिए।

जम्बूद्वीप में कुल नदियाँ

गाथार्थ :—भरतैरावत क्षेत्र में पूर्व और पश्चिम विदेह युगल स्थित प्रत्येक नदी की चौदह-चौदह हजार परिवार नदियाँ हैं तथा भरत से हरि और ऐरावत से रम्यक क्षेत्र पर्यन्त परिवार नदियों का प्रमाण दूना-दूना है।।७४७।।

विशेषार्थ :—भरतैरावत दो क्षेत्रों में गङ्गा सिन्धु और रक्ता रक्तोदा इस प्रकार ४ नदियाँ हैं। पूर्व पश्चिम दोनों विदेह के ३२ देशों में गङ्गा, सिन्धु रोहित और रोहितास्या ये ६४ नदियाँ हैं। इन (६४ + ४) = ६८ नदियों में प्रत्येक नदी की सहायक नदियाँ १४००० हैं, अतः इन ३४ देशों की कुल परिवार नदियों की संख्या (१४०००

---

१. त्रिलोकसार पृ. ५८६ से ५८९ तक।

विदेह क्षेत्र की सम्पूर्ण नदियाँ

बादालसहस्सं पुह कुरुदुणदी दुगुदुपासजादणदी। चोद्दसलक्खडसदरी विदेहदुगसव्वणइसंखा।।७४८।।

द्वाचत्वारिंशत्सहस्राणि पृथक् कुरुद्वयनद्यः द्विकद्विपार्श्वजातनद्यः। चतुर्दशलक्षाष्टसप्ततिः विदेहद्विकसर्वनदीसंख्या।।७४८।।

बादाल। देवोत्तरकुर्वोः नदीद्वयोभयपार्श्वजाता नद्यः पृथक्-पृथक् द्वाचत्वारिंशत्सहस्राणि देवकुरुजा नद्यः ४८००० उत्तरकुरुजा नद्यः ८४००० विदेहद्वयगतसर्वनदीसंख्या अष्टसप्तत्युत्तरचतुर्दशलक्षाणि १४०००७८। तत्कथं ? विदेहगतगङ्गासिन्धुसमनदीनां ६४ प्रत्येकं परिवारनद्यः १४००० विभङ्गनदीनां १२ प्रत्येकं परिवारनद्यः २८००० देवोत्तरकुर्वोः सीतासीतोदयोः २ प्रत्येकं परिवारनद्यः ८४००० एतासु स्वस्वगुणकारेण गुणयित्वा तत्र तत्र मुख्यनदी ७८ सहितं सर्वासु मिलितासु विदेहद्वयगतसर्वनदीसंख्या।।७४८।।

लक्खतियं बाणउदीसहस्स बारं च सव्वणइसंखा। भरहेरावदपहुदी हरिरम्मगखेत्तओत्ति णादव्वा।।७४९।।

लक्षत्रयं द्वानवतिसहस्रं द्वादश च सर्वनदीसंख्या। भरतैरावतप्रभृति हरिरम्यकक्षेत्रान्तं ज्ञातव्या।।७४९।।

लक्ख। लक्षत्रयं द्वानवतिसहस्राणि द्वादश च ३९२०१२ भरतैरावतप्रभृतिहरिरम्यकक्षेत्रपर्यन्तं सर्वनदीसंख्या

× ६८) = ९,५२००० है। भरत से हरिवर्ष पर्यन्त और ऐरावत से रम्यक क्षेत्र पर्यन्त परिवार नदियाँ दुगुने-दुगुने क्रम से हैं अर्थात् हैमवत और हैरण्यवत दो क्षेत्र सम्बन्धी चार नदियों में प्रत्येक की सहायक २८ हजार हैं अतः दोनों क्षेत्रों की कुल परिवार नदियों का प्रमाण (२८००० × ४) = १,१२००० है। इसी प्रकार हरि और रम्यक इन दो क्षेत्र सम्बन्धी चार नदियों में प्रत्येक की परिवार नदियाँ ५६००० हैं, अतः दोनों क्षेत्रों में चारों नदियों की कुल परिवार नदियों का प्रमाण (५६००० × ४) = २,२४००० है।

विदेह क्षेत्र की सम्पूर्ण नदियाँ

गाथार्थ :—देवकुरु, उत्तरकुरु दोनों क्षेत्रों की दो नदियों के दोनों पार्श्व भागों पर पृथक्-पृथक् ४२ हजार, ४२ हजार परिवार नदियाँ हैं तथा दोनों विदेहों की सम्पूर्ण नदियों की संख्या चौदह लाख अठत्तर है।।७४८।।

विशेषार्थ :—देवकुरु क्षेत्र में सीतोदा नदी के दोनों पार्श्व भागों से उत्पन्न पृथक्-पृथक् ४२००० परिवार नदियाँ और उत्तर कुरुक्षेत्र में सीता नदी के दोनों पार्श्व भागों से पृथक्-पृथक् उत्पन्न ४२००० परिवार नदियाँ हैं। इस प्रकार देवकुरुगत सीतोदा की सहायक ८४००० और उत्तर कुरुगत सीता की परिवार नदियाँ भी ८४००० हैं। दोनों विदेह क्षेत्रों में सम्पूर्ण नदियों का प्रमाण १४०००७८ है। वह कैसे ? विदेहस्थ ६४ गङ्गा सिन्धु और रोहित-रोहितास्या की कुल परिवार नदियाँ (१४००० × ६४)= ८९६०००, १२ विभङ्गा की कुल परिवार नदियाँ (२८००० × २) = ३३६०००, देवकुरु उत्तरकुरुगत सीता-सीतोदा की परिवार नदियां (८४००० × २) = १६८००० तथा मुख्य नदियाँ (६४ + १२ +२) = ७८ हैं। इन सम्पूर्ण नदियों का कुल योग (८९६००० + ३३६००० + १६८००० + ७८) = १४०००७८ है अर्थात् पूर्व-पश्चिम दोनों विदेह क्षेत्र गत सम्पूर्ण नदियों का प्रमाण १४०००७८ है।

गाथार्थ :—भरतक्षेत्र से हरिक्षेत्र पर्यन्त और ऐरावत क्षेत्र से रम्यक क्षेत्र पर्यन्त की सम्पूर्ण नदियों का प्रमाण तीन लाख, बान्नवे हजार, बारह है।।७४९।।

विशेषार्थ :—भरत से हरिक्षेत्र पर्यन्त और ऐरावत से रम्यक पर्यन्त के समस्त क्षेत्रों की सम्पूर्ण नदियों का प्रमाण तीन लाख बान्नवे हजार बारह (३,९२,०१२) है वह कैसे ? भरतक्षेत्र में गंगा-सिन्धु प्रत्येक की परिवार

ज्ञातव्या। तत्कथं ? भरते गङ्गासिन्ध्वोः २ प्रत्येकं परिवानद्यः १४००० हैमवते रोहिद्रोहितास्ययोः २ प्रत्येकं परिवरनद्यः २८००० हरिक्षेत्रे हरिद्धरिकान्तयोः २ प्रत्येकं परिवारनद्यः ५६००० एवमैरावते रक्तारक्तोदयोः १४०० हैरण्यवते सुवर्णरूप्यकूलयोः २८०० रम्यकक्षेत्रे नारीनरकान्तयोः ५६००० स्वस्वगुणकारेण गुणयित्वा मिलिते आयान्ति।।७४९।।

सत्तरसं बाणउदी णभणवसुण्णं णईण परिमाणं। गंगासिंधुमुखाणं जंबूद्दीवप्पभूदाणं।।७५०।।

सप्तदश द्वानवतिः नभोनवशून्यं नदीनां परिमाणं। गङ्गासिन्धुमुखानां जम्बूद्वीपप्रभृतानाम्।।७५०।।

सत्तरसं। सप्तदश द्वानवतिर्नभोनव शून्यं १७९२०९० जम्बूद्वीपोद्भूतानां गङ्गासिन्धुप्रमुखानां सर्वनदीनां प्रमाणं स्यात्। एतच्चोक्तगाथयोरङ्कानां मेलने स्यात्।।७५०।।

नदियाँ १४००० हैं अतः (१४००० × २) = २८००० कुल प्रमाण हुआ। हैमवत क्षेत्र गत रोहित-रोहितास्या में प्रत्येक की परिवार नदियाँ २८००० हैं अतः (२८००० × २) = ५६०००, हरिक्षेत्र गत हरित् हरिकान्ता प्रत्येक की सहायक ५६००० हैं अतः (५६००० × २) = १,१२०००, ऐरावत में रक्ता-रक्तोदा प्रत्येक की परिवार नदियाँ १४००० हैं अतः (१४००० × २) = २८००० हैं। हैरण्यवत में सुवर्णकूला-रुप्यकूला प्रत्येक की २८००० परिवार नदियाँ हैं अतः (२८००० × २) = ५६००० हैं तथा रम्यक क्षेत्र में नारी-नरकान्ता प्रत्येक की सहायक नदियाँ ५६००० हैं, अतः (५६००० × २) = १,१२००० हैं। इस प्रकार विदेह क्षेत्र को छोड़कर शेष छह क्षेत्रों की सम्पूर्ण नदियों का कुल योग (२८००० + ५६००० + १,१२००० + २८००० + ५६००० + १,१२००० + १२) = ३,९२,०१२ है।

गाथार्थ :—जम्बूद्वीप में उत्पन्न गङ्गा सिन्धु हैं प्रमुख जिनमें ऐसी सम्पूर्ण नदियों का प्रमाण सत्रह लाख बानवे हजार नब्बे है।।७५०।।

विशेषार्थ :—पूर्वापरविदेह क्षेत्रोत्पन्न १४०००७८ नदियाँ और भरतादि छह क्षेत्रोत्पन्न ३९२०१२ नदियाँ मिलाकर १७९२०९० नदियाँ जम्बूद्वीप में हैं।

केवलज्ञानप्राप्त श्रीपार्श्वनाथ वंदना

-उपजातिछंद-

श्री पार्श्वनाथः स्वपरात्मविज्ञः,
श्रेणीं श्रितः स्वात्मजशुक्लयोगैः।
घातीनिहत्वा जगदेकसूर्यः,
कैवल्यमाप्नोत् तमहं स्तवीमि।।7।।

स्वपरभेदवित् पारस स्वात्मज, ध्यानशुक्ल श्रेणी पर चढ़।
घात घातिया केवल पायो, त्रिभुवनसूर्य नमूँ शुचि कर।।

-गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी

गंगाकूट पर भगवान की प्रतिमाएँ
(गंगा नदी द्वारा अभिषेक)
(जंबूदीवपण्णत्ती से)

पउमस्स सिहरिजस्स य तिण्णेव महाणदी समुद्दिट्ठा। अवसेसाण दहाणं सरियाओ होंति दो दो दु[1]।।१४६।।
गंगा पउमदहादो णिस्सरिदूणं तु तोरणदुवारे। पुव्वाभिमुहेण गया पंचेव य जोयणसदाणि।।१४७।।
गंगाकूडमपत्ता जोयणअद्धेण दक्खिणे वलिया। पंचेव जोयणसया तेवीसा अद्धकोसधिया।।१४८।।
हिमवंतअंतमणिमयवरकूडमुहम्मि वसहरूवम्मि। पविसित्तु पडइ धारा सयजोयणतुंगससिधवला।।१४९।।
छज्जोयण सक्कोसा पणालिया वित्थडा मुणेयव्वा। आयामेण य णेया वे कोसा तेत्तिया बहला।।१५०।।
सिंगमुहकण्णजीहाणयणाभूयादिएहि गोसारिसा। वसह त्ति तेण णामा णाणामणिरयणपरिणामा।।१५१।।
तत्तो दुगुणा दुगुणा पणालिया वसहरूवसंठाणा। ताव गया णायव्वा जाव दु णिसहगिरिसिहरे।।१५२।।
तत्तो अद्धद्धखया वज्जपणालीण रयणणिवहाणं। विक्खंभा आयामा बहलपमाणा समुद्दिट्ठा।।१५३।।
गंगा जम्हि दु पडिदा वंसधरादो तहिं हवे कुंडं। दसजोयणावगाहं धरणियले सव्वदो वट्टं।।१५४।।

गंगाकूट पर भगवान की प्रतिमाएँ
(गंगा नदी द्वारा अभिषेक)
(जंबूदीवपण्णत्ती से)

पद्म द्रह और शिखरी पर्वत पर स्थित महापुण्डरीक द्रह से निकली हुई तीन-तीन महानदियाँ तथा शेष द्रहों से निकली हुई दो-दो नदियाँ कही गई हैं।।१४६।। गंगानदी पद्म द्रह के पूर्व तोरणद्वार से निकलकर पाँच सौ योजन प्रमाण पूर्व की ओर जाकर गंगाकूट को न पाकर अर्ध योजन पूर्व से दक्षिण की ओर मुड़ जाती है। पुनः पाँच सौ तेईस योजन और अर्ध कोश से अधिक आगे जाकर हिमवान् पर्वत के अन्त में वृषभाकार मणिमय उत्तम कूट (नालि) के मुख से प्रवेश करके सौ योजन ऊँचे से चन्द्र के समान धवल गंगानदी की धारा नीचे गिरती है।। १४७-१४९।।

विशेषार्थ—यहाँ पर्वत के ऊपर दक्षिण की ओर जो गंगा नदी का ५२३-१/८ योजन प्रमाण जाना बतलाया गया है उसका कारण यह है कि गंगा नदी पर्वत के ठीक मध्य में से जाती है। अतएव पर्वत के विस्तार (१०५२-१२/१९ यो.) में से नदी के विस्तार (६-१/४ यो.) को घटाकर शेष को आधा करने पर दक्षिण की ओर जाने का उपर्युक्त प्रमाण प्राप्त हो जाता है—१०५२-१२/१९ — ६-१/४ ÷ २ = ५२३-२९/१५२। नाली का विस्तार छह योजन एक कोश, आयाम दो कोश और इतना ही उसका बाहल्य भी जानना चाहिए।।१५०।। नाना मणियों एवं रत्नों के परिणामरूप यह नाली चूँकि सींग, मुख, कान, जिह्वा, नयन और भ्रू आदिकों से गौ के सदृश है, इस कारण उसका नाम 'वृषभ' है।।१५१।। इसके आगे निषध पर्वत पर्यन्त उक्त वृषभाकार नाली का विस्तारादि उत्तरोत्तर दुगुणा-दुगुणा जानना चाहिए।।१५२।। निषध पर्वत से आगे रत्नसमूह से निर्मित उक्त नालियों के विष्कम्भ, आयाम और बाहल्य का प्रमाण उत्तरोत्तर आधा-आधा हीन कहा गया है।।१५३।। गंगानदी हिमवान्

---

१. जम्बूद्वीवपण्णत्ति अधिकार-३, पृ० ४६ से ४८ तक।

सरिमुखदसगुणविउला तस्स दु बहुदेसमज्झभागम्मि। दीवो रयणविचित्तो वित्थिण्णो जोयणा अट्ठ।।१५५।।
वज्जमयमहादीवे बेकोससमुट्ठिदे सिदजलादो। तम्हि बहुमज्झभागे णगोत्तमो होइ णिद्दिट्ठो।।१५६।।
दसजोयणउव्विद्धो मूले चत्तारि जोयणायामो। वे जोयण मज्झम्मि य उवरिं एगो समुद्दिट्ठो।।१५७।।
तस्स दु मज्झे दिव्वो पासादो कणयरयणपरिणामो। मणिगणजलंतखंभो गंगाकूडो त्ति णामेण।।१५८।।
बेधणुसहस्सतुंगो अड्ढादिज्जा धणूणि वित्थिण्णो। णवचंपयगंधड्ढो संपुण्णमियंककिरणोहो।।१५९।।
रयणमय वरदुवारो चालीसधणुप्पमाणवित्थिण्णो। आइच्चमंडलणिभो असीदिधणुउण्णओ दिव्वो।।१६०।।
वरवेदियपरिखित्ते चउगोउरमंडिए परमरम्मे। दिव्ववणसंडजुत्ते गंगादेवी तहिं वसइ।।१६१।।
जिणपडिमासंछण्णो भवणोवरि तुंगकूडसिहरम्मि। पणुवीसवित्थडा सा गंगाधारा तहिं पडइ।।१६२।।
वरकुंडकुंडदीवा कुंडणगा कुंडविउलपासादा। दुगुणा दुगुणा णेया णिसधो त्ति धराचलो जाम।।१६३।।
ये कोसा बासट्ठा पणवीस सदं दुअद्धपंचसदा। गंगादियकुंडाणं विण्णेया जोयणा होंति।।१६४।।

पर्वत से जहाँ गिरी है वहाँ पृथ्वीतल पर सब ओर से गोल दश योजन गहरा कुण्ड है।१५४।। गंगा नदी की धारा से दशगुणे (६–१/४ × १० = ६२–१/२ यो.) विस्तार वाले उक्त कुण्ड के ठीक बीच में रत्नों से विचित्र आठ योजन विस्तृत द्वीप है।।१५५।।

धवल जल से ऊपर दो कोश ऊँचे उस महाद्वीप के बहुमध्य भाग में उत्तम वज्रमय पर्वत कहा गया है।।१५६।।

यह पर्वत दश योजन ऊँचा और मूल में चार योजन, मध्य में दो योजन तथा ऊपर एक योजन आयाम (विस्तार) वाला कहा गया है।।१५७।।

उसके मध्य भाग में सुवर्ण व रत्नों के परिणामस्वरूप एवं मणिगणों से प्रकाशमान खम्भों से सहित गंगाकूट नामक दिव्य प्रासाद है।।१५८।।

नवीन चम्पक की गन्ध से व्याप्त और सम्पूर्ण चन्द्रमा के समान किरणसमूह से सहित वह प्रासाद दो हजार धनुष ऊँचा व अढ़ाई (हजार) धनुष विस्तीर्ण है (ति. प. ४–२२५ और त्रि. सा. ५८८ में इसका विस्तार मूल में ३०००, मध्य में २००० और ऊपर १००० धनुष प्रमाण बतलाया गया है)।।१४९।।

सूर्यमण्डल के सदृश उसका रत्नमय उत्तम दिव्य द्वार चालीस धनुष प्रमाण विस्तीर्ण और अस्सी धनुष उन्नत है।।१६०।।

उत्तम वेदी से वेष्टित, चार गोपुरों से मण्डित और दिव्य वनखण्डों से युक्त उस अतिशय रमणीय प्रासाद में गंगादेवी निवास करती है।।१६१।।

वहाँ भवन के ऊपर स्थित जिनप्रतिमा से युक्त उन्नत कूटशिखर पर वह गंगानदी की धारा पच्चीस योजन विस्तृत होकर गिरती है।।१६२।।

निषधपर्वत पर्यन्त उत्तम कुण्ड, कुण्डद्वीप, कुण्डनग और विशाल कुण्डप्रासाद, ये सब दूने–दूने जानने चाहिए।।१६३।। उक्त गंगादिक कुण्डों का विस्तार क्रम से बासठ योजन दो कोश, एक सौ पच्चीस योजन, दो सौ व अर्ध सौ (अढ़ाई सौ) तथा पाँच सौ योजन प्रमाण जानना चाहिए।।१६४।। कुण्डस्थ द्वीपों का विस्तार क्रमशः आठ, सोलह, बत्तीस और चौसठ योजन; तथा उनमें स्थित शैलों की ऊँचाई क्रमशः दश, बीस, चालीस और

अड सोला बत्तीसा चउसट्ठा जोयणा हवे दीवा। दस वीसा चालीसा असीदि तुंगा तहा सेला।।१६५।।
चत्तारि अट्ठ सोलस बत्तीसा वित्थडा य मूलेसु। दोण्णि चदुरट्ठ सोलस मज्झेसु हवंति सेलाणं।।१६६।।
एय दुय चदुर अट्ठ य वित्थारा होंति तुंगसिहरेसु। सरिकुंडणगाण तहा णिद्दिट्ठा होंति णियमेण।।१६७।।
पणुवीसा पण्णासा जोयणसद बेसदा समुद्दिट्ठा। गंगादीसरियाणं णेया धारा हवे रुंदा।।१६८।।
जोयणसदेक्क वे चउ हिमकुंदमुणालसंखसंकासा। दीहा धारावडणा गंगादीणं सरीणं तु।।१६९।।
सव्वे वि वेदिणिवहा वरतोरणमंडिया परमरम्भा। पवरच्छरेहि भरिया अच्छेरयरूवसाराहि।।१७०।।

कांचनपर्वत पर जिनमंदिर

कप्पतरुसंकुलाणि य पासादा बलहि तोरणादीणि। कंचणणगाण णेया सिहरेसु हवंति णगराणि[१]।।४९।।
तेसु णगरेसु राया कंचणदेवा हवंति णामेण। पलिदोवमाउगा ते दसधणुउत्तुंगवरदेहा।।५०।।
पजलंतरयणमाला णाणामणिविप्फुरंतवरमउडा। केऊरभूसियकरा मणिकुंडलमंडियागंडा।।५१।।
सेदादवत्तचिण्हा सिंहासणसंठिया महासत्ता। बहुदेवदेविसहिया कंचणसिहरेसु णिद्दिट्ठा।।५२।।
सव्वेसु णगेसु तहा कंचणणामेसु रयणणिवहेसु। जिणभवणा णिद्दिट्ठा मणितोरणमंडिया रम्भा।।५३।।
धुव्वंतधयवडाया णाणाकुसुमोवहारकयसोहा। जिणसिद्धबिंबणिवहा बहुकोदुगमंगलसणाहा।।५४।।

अस्सी योजन प्रमाण है।।१६५।। उक्त शैलों का मूल विस्तार क्रम से चार, आठ, सोलह और बत्तीस योजन; तथा मध्य विस्तार दो, चार, आठ और सोलह योजन है।।१६६।। नदीकुण्डस्थ उक्त पर्वतों का विस्तार उन्नत शिखरों पर नियम से एक, दो, चार और आठ योजन प्रमाण कहा गया है।।१६७।। गंगादिक नदियों की धारा का विस्तार क्रम से पच्चीस, पचास, सौ और दो सौ योजन प्रमाण जानना चाहिए। १६८।। हिम, कुन्दपुष्प, मृणाल और शंख जैसे वर्ण वाले गंगादिक नदियों के धारापतनों की दीर्घता उत्तरोत्तर एक सौ, दो सौ और चार सौ योजन प्रमाण है।।१६९।। नदीकुण्डस्थ पर्वतों के ऊपर स्थित सब ही प्रासाद वेदीसमूह से सहित, उत्तम तोरणों से मण्डित, अतिशय रमणीय हैं।।१७०।।

कांचनपर्वत पर जिनमंदिर

कल्पवृक्षों से व्याप्त और प्रासाद, बलभी एवं तोरणादिकों से सहित नगर हैं; ऐसा जानना चाहिए।।४९।।

उन नगरों में अधिपतिस्वरूप जो कंचनदेव हैं वे पल्योपम प्रमाण आयु के धारक और दश धनुष उन्नत उत्तम देह से संयुक्त होते हैं।।५०।। कंचनशिखरों पर स्थित उक्त देव चमकती हुई रत्नमालाओं से सहित, नाना मणियों से प्रकाशमान उत्तम मुकुट से विभूषित, केयूरों से भूषित हाथों वाले, मणिमय कुण्डलों से मण्डित कपोलों के धारक, अधिपतित्व के चिह्नस्वरूप, धवल आतपत्र से संयुक्त, सिंहासनों पर स्थित, महाबलवान् और बहुत देव-देवियों से सहित कहे गए हैं।।५१-५२।। रत्नसमूह से संयुक्त उन कंचन नामक सब पर्वतों पर मणिमय तोरणों से मण्डित रमणीय **जिनभवन** निर्दिष्ट किए गए हैं।।५३।। ये जिनभवन फहराती हुई ध्वजापताकाओं से सहित, नाना कुसुमों के उपहार से की गई शोभा से संयुक्त, जिनों व सिद्धों के बिम्बसमूह से युक्त और बहुत कौतुक एवं मंगलों से सनाथ हैं।।५४।।

---

१. जम्बूद्वीवपण्णत्ति अधिकार-६, पृ० १०५।

मानस्तम्भों के मूलभाग में जिनप्रतिमाएँ

(आदिपुराण से)

हिरण्मयीर्जिनेन्द्रार्च्यास्तेषां बुध्नप्रतिष्ठिताः। देवेन्द्राः पूजयन्ति स्म क्षीरोदाम्भोऽभिषेचनैः[१]।।९८।।
नित्यातोद्य महावाद्यैर्नित्यसंगीतमङ्गलैः। नृत्तैर्नित्यप्रवृत्तैश्च मानस्तम्भाः स्म भान्त्यमी।।९९।।
पीठिका जगतीमध्ये तन्मध्ये च त्रिमेखलम्। पीठं तन्मूर्ध्नि सद्बुध्ना मानस्तम्भाः प्रतिष्ठिताः।।१००।।
हिरण्मयाङ्गाः प्रोत्तुङ्गा मूर्ध्निच्छत्रत्रयाङ्किताः। सुरेन्द्रनिर्मितत्वाच्च प्राप्तेन्द्र ध्वजरूढिकाः।।१०१।।
मानस्तम्भान्महामान योगात्त्रैलोक्यमाननात्। अन्वर्थसञ्ज्ञया तज्ज्ञैर्मानस्तम्भाः प्रकीर्तिताः।।१०२।।
स्तम्भपर्यन्तभूभागमलंचक्रुः सहोत्पलाः। प्रसन्नसलिला वाप्यो भव्यानामिव शुद्धयः।।१०३।।
वाप्यस्ता रेजिरे फुल्लकमलोत्पलसंपदः। भक्त्या जैनीं श्रियं द्रष्टुं भुवेवोद्घाटिता दृशः।।१०४।।
निलीनालिकुलै रेजुरुत्पलैस्ता विकस्वरैः। महोत्पलैश्च संछन्नाः साञ्जनैरिव लोचनैः।।१०५।।
दिशं प्रति चतस्रस्ता स्रस्ताः काञ्चीरिवाकुलाः। दधति स्म शकुन्तानां सन्ततीः स्वतटाश्रिताः।।१०६।।

मानस्तम्भों के मूलभाग में जिनप्रतिमाएँ

(आदिपुराण से)

समवसरण में उन **मानस्तम्भों के मूल भाग में जिनेन्द्र भगवान् की सुवर्णमय प्रतिमाएँ विराजमान थीं** जिनकी इन्द्र लोग क्षीरसागर के जल से अभिषेक करते हुए पूजा करते थे।।९८।। वे मानस्तम्भ निरन्तर बजते हुए बड़े-बड़े बाजों से निरन्तर होने वाले मङ्गलमय गानों और निरन्तर प्रवृत्त होने वाले नृत्यों से सदा सुशोभित रहते थे।।९९।। ऊपर जगती के बीच में जिस पीठिका का वर्णन किया जा चुका है उसके मध्य भाग में तीन कटनीदार एक पीठ था। उस पीठ के अग्रभाग पर ही वे मानस्तम्भ प्रतिष्ठित थे, उनका मूल भाग बहुत ही सुन्दर था, वे सुवर्ण के बने हुए थे, बहुत ऊँचे थे, उनके मस्तक पर तीन छत्र फिर रहे थे, इन्द्र के द्वारा बनाए जाने के कारण उनका दूसरा नाम इन्द्रध्वज भी रूढ़ हो गया था। उनके देखने से मिथ्यादृष्टि जीवों का सब मान नष्ट हो जाता था, उनका परिमाण बहुत ऊँचा था और तीन लोक के जीव उनका सम्मान करते थे इसलिए विद्वान् लोग उन्हें सार्थक नाम से मानस्तम्भ कहते थे।।१००-१०२।। जो अनेक प्रकार के कमलों से सहित थीं, जिनमें स्वच्छ जल भरा हुआ था और जो भव्य जीवों की विशुद्धता के समान जान पड़ती थीं ऐसी बावड़ियाँ उन मानस्तम्भों के समीपवर्ती भूभाग को अलंकृत कर रही थीं।।१०३।। जो फूले हुए सफेद और नीले कमलरूपी सम्पदा से सहित थीं ऐसी वे बावड़ियाँ इस प्रकार सुशोभित हो रही थीं मानो भक्तिपूर्वक जिनेन्द्रदेव की लक्ष्मी को देखने के लिए पृथ्वी ने अपने नेत्र ही उघाड़े हों।।१०४।। जिन पर भ्रमरों का समूह बैठा हुआ है ऐसे फूले हुए नीले और सफेद कमलों से ढँकी हुई वे बावड़ियाँ ऐसी सुशोभित हो रही थीं मानो अंजन सहित काले और सफेद नेत्रों से ही ढँक रही हों।।१०५।। वे बावड़ियाँ एक-एक दिशा में चार-चार थीं और उनके किनारे पर पक्षियों की शब्द करती हुई पंक्तियाँ बैठी हुई थीं जिनसे वे ऐसी जान पड़ती थीं मानो उन्होंने शब्द करती हुई ढीली करधनी ही धारण की हो।।१०६।।

---

१. आदिपुराण पर्व-२२, पृ. ५१६।

सुमेरु के नन्दनवन में वापिकाएँ एवं जिनमंदिर
(तत्त्वार्थवार्तिक से[१])

मेरोर्दक्षिणपूर्वस्यां दिशि उत्पल गुल्मा-नलिना-उत्पला-उत्पलोज्वलाख्याश्चतस्रो वाप्यः। दक्षिणापरस्यां भृङ्गा-भृङ्गनिभा-कज्जला-कज्जलप्रभाश्चतस्त्रः पुष्करिण्यः। अपरोत्तरस्यां दिशि श्रीकान्ता-श्रीचन्द्रा-श्रीनिलया-श्रीमहिताश्चतस्रो वाप्यः। उत्तरपूर्वस्यां दिशि पद्मा-पद्मगुल्मा-कुमुदा-कुमुदप्रभावश्चतस्रो वाप्यः। ताः सर्वाः पञ्चाशद्योजनायामतदर्धविष्कम्भ-दशयोजनावगाहाः चतुष्कोणा आयतचतुरस्राः। तासां मध्ये प्रत्येकमेकैकः प्रासादः द्विषष्टियोजनार्धयोजनोत्सेधः सगव्यूतैकत्रिंशद्योजनविष्कम्भस्तावत्प्रवेशः। तत्र दक्षिणस्यां दिशि विदिशोः प्रासादाः शक्रस्य भौमविहाराः। उत्तरस्यां दिशि विदिशोरैशानस्य भौमविहाराः। मेरोश्चतसृषु दिक्षु नन्दनवने चत्वारि जिनायतनानि षट्त्रिंशद्योजनोत्सेधानि पञ्चाशद्योजनायामतदर्धविष्कम्भाणि तावत्प्रवेशानि अष्टयोज-नोच्छ्रायतदर्धविष्कम्भायाम प्रागुदगपाग्द्वाराणि अर्हदायतनवर्णनोपेतानि।

सुमेरु के नन्दनवन में वापिकाएँ एवं जिनमंदिर
(तत्त्वार्थवार्तिक से)

मेरु की दक्षिणपूर्व आग्नेय दिशा में उत्पलगुल्मा, नलिना, उत्पला और उत्पलोज्वला नामक चार वापिकाएँ हैं। नन्दनवन के भीतर मेरु के नैऋत्य दिशाविभाग में भृंगा, भृंगनिभा, कज्जला और कज्जलप्रभा ये चार वापिकाएँ हैं। नन्दनवन में मेरु की वायव्यदिशा में श्रीकान्ता, श्रीचन्द्रा, श्रीनिलया और श्रीमहिता ये चार वापिकाएँ हैं। नन्दनवन में मेरु के ईशानदिशा विभाग में पद्मा, पद्मगुल्मा, कुमुदा और कुमुदप्रभा ये चार वापिकाएँ हैं। ये सर्व वापिकाएँ पचास योजन लम्बी, पच्चीस योजन चौड़ी और दस योजन गहरी हैं। ये सर्व वापिकाएँ चतुष्कोण हैं और चारों ओर विशाल हैं। प्रत्येक वापिका के मध्य में बासठ योजन दो कोस ऊँचा, इकतीस योजन एक कोस चौड़ा तथा उतने ही प्रमाण वाले प्रवेश द्वार से युक्त एक-एक प्रासाद है। यहाँ पर दक्षिणदिशा की विदिशाओं के प्रासादों में सौधर्म इन्द्र के अनुपम भौमविहार हैं और उत्तरदिशा की विदिशाओं में ऐशान इन्द्र के भौमविहार हैं। मेरु की चारों दिशाओं में नन्दनवन में चार **जिनमन्दिर** हैं। वे मन्दिर छत्तीस योजन ऊँचे, पचास योजन लम्बे और पच्चीस योजन विस्तार वाले (चौड़े) तथा पच्चीस योजन प्रमाण प्रवेश मार्ग के धारक हैं तथा पूर्व, उत्तर और दक्षिणदिशा में आठ योजन ऊँचे, चार योजन चौड़े और चार योजन ही लम्बे द्वारों के धारक हैं। उन जिनालयों की शोभा का वर्णन उपर्युक्त जिनमन्दिरों के समान है। उन जिनभवनों में स्थित देवच्छन्द, मुखमण्डप, प्रेक्षागृह, स्तूप, चैत्यवृक्ष आदि का वर्णन भद्रसाल वन के समान है परन्तु इनका विस्तार लम्बाई आदि दुगुनी है तथा जिनप्रतिमा का वर्णन पूर्वोक्त प्रतिमा के समान है।

---

१. तत्त्वार्थवार्तिक पृ. ४९०, ४९१।

जम्बूद्वीप के परकोटे के चारों द्वारों के अग्रभाग में जिनप्रतिमायें हैं

(तत्त्वार्थवृत्ति से)

तन्मध्ये मेरुनाभिर्वृत्तो योजनशतसहस्रविष्कम्भो जम्बूद्वीपः[१]।।९।।

तेषां द्वीपसमुद्राणां मध्यस्तन्मध्यः तस्मिन् तन्मध्ये सर्वद्वीपसमुद्राणां मध्यप्रदेशे जम्बूद्वीपो वर्तत इत्यर्थः। कथम्भूतो जम्बूद्वीपः ? मेरुनाभिः, मेरुः सुदर्शननामा कनक पर्वतः एकसहस्रयोजनभूमिमध्ये स्थितः नवनवतिसहस्रयोजनबहिरुन्नतः। श्रीभद्रशालवनादुपरि पञ्चशतयोजनलभ्यनन्दनवनः, नन्दनवनात्रिषष्टियोजनसहस्रं सम्प्राप्य सौमनसवनः। सौमनसवनात् सार्द्धपञ्चत्रिंशत्सहस्रयोजनगम्यपाण्डुकवनः। चत्वारिंशद्योजनोन्नतचूलिकः, सा चूलिका सार्द्धपञ्चत्रिंशत्सहस्रयोजनमध्य एव गणनीया। स एवंविधो मेरुनाभिर्मध्यप्रदेशो यस्य जम्बूद्वीपस्य मेरुनाभिः। पुनरपि कथम्भूतो जम्बूद्वीपः ? वृत्तः वर्तुलः। आदित्यबिम्बवद्वर्तुलाकार इत्यर्थः। पुनरपि कथम्भूतो जम्बूद्वीपः ? योजनशतसहस्रविष्कम्भः। शतानां सहस्रं शतसहस्रम् , योजनानां शतसहस्रं योजनशतसहस्रम् , योजनशतसहस्रं विष्कम्भो विस्तारो यस्य जम्बूद्वीपस्य स भवति योजनशतसहस्रविष्कम्भः, एकलक्षयोजनविस्तार इत्यर्थः। उपरिस्थितवेदिकेन सालेन सह लक्षयोजनविष्कम्भः इति भावः। स जम्बूद्वीपसालः अष्टयोजनोच्चः,

---

जम्बूद्वीप के परकोटे के चारों द्वारों के अग्रभाग में जिनप्रतिमायें हैं

(तत्त्वार्थवृत्ति से)

उन असंख्यात द्वीप-समुद्रों के मध्य में मेरु है नाभि जिसकी ऐसा वर्तुलाकार (गोल) एक लाख योजन विस्तार वाला जम्बूद्वीप है ।।९।।

उन द्वीप-समुद्रों के मध्य को तन्मध्य कहते हैं। उन असंख्यात द्वीप-समुद्रों के मध्य में जम्बूद्वीप कैसा है ? मेरु है नाभि जिसकी ऐसा जम्बूद्वीप है । मेरु—एक हजार योजन भूमि के मध्य में स्थित निन्यानवे हजार योजन उन्नत कनक (सुवर्ण) मय सुदर्शन नामक मेरु है। उस मेरु की भूमि पर भद्रशालवन है, उस भद्रशालवन से पाँच सौ योजन ऊपर जाने पर नन्दनवन है, नन्दनवन से त्रेसठ हजार योजन ऊपर सौमनसवन है और सौमनसवन से साढ़े पैंतीस हजार योजन ऊपर पाण्डुकवन है, उसके ऊपर चालीस योजन ऊँची मेरु की चूलिका है । वह चूलिका साढ़े पैंतीस हजार पाण्डुकवन में गर्भित है। इस प्रकार का मेरु जिस जम्बूद्वीप की नाभि है, वह मेरुनाभि कहलाता है । वह जम्बूद्वीप सूर्य बिम्ब के समान गोल है और एक लाख योजन विस्तार वाला है। एक लाख योजन है विष्कम्भ जिसका उसको योजन शतसहस्र विष्कम्भ कहते हैं। इस जंबूद्वीप को घेरे हुए एक वेदिका (परकोटा या जगती) है, जो आठ योजन ऊँची, मूल में १२ योजन, मध्य में आठ योजन और उपरिभाग में आठ योजन विस्तार वाली है। इसका १२ योजन का विस्तार जंबूद्वीप के एक लाख योजन में गर्भित है । उस परकोटा के ऊपर दोनों पार्श्वभागों में रत्न और सुवर्ण निर्मित वेदिका है । वह वेदिका दो कोस ऊँची है और उसका विस्तार (विष्कम्भ) एक योजन एक कोस एक हजार साढ़े सात सौ धनुष है। उस वेदिका के मध्य में

---

१. तत्त्वार्थवृत्ति-पृ. २६४ से २६६ तक।

मूले द्वादशयोजनविस्तारः, मध्येऽष्टयोजनविस्तारः, उपरि चाष्टयोजनविस्तारः। तत्सालोपरि रत्नसुवर्णमयी वेदिका चोभयपार्श्वे वर्त्तते। सा वेदिका क्रोशद्वयोन्नता वर्त्तते। तस्या वेदिकाया विस्तारो योजनमेकं क्रोशश्चैकः धनुषां सहस्रं सप्तशतानि पञ्चाशद्युतानि च। तद्वेदिकाद्वयमध्ये सालस्योपरि महोरगदेवप्रासादाः सन्ति। ते प्रासादाः रत्नमया वनवृक्षवापीतडागजिनभवनमण्डिता अनादिनिधनास्तिष्ठन्ति। तस्य दुर्गस्य पूर्व दक्षिणपश्चिमोत्तरेषु चत्वारि द्वाराणि वर्त्तन्ते। तन्नामानि—विजयवैजयन्तजयन्तापराजितानि क्रमाद्विज्ञेयानि। तद्द्वारोच्चत्वमष्टयोजनानि, विस्तारश्चतुर्योजनानि, चतुर्द्वाराग्रे जिनप्रतिमा अष्टप्रातिहार्यसंयुक्ता वर्तन्ते। तस्य जम्बूद्वीपस्य परिक्षेपस्त्रीणि योजनलक्षाणि सप्तविंशत्यग्रे द्वे शते च योजनानां त्रयः क्रोशा अष्टाविंशत्यग्रं धनुःशतं च अङ्गुलयस्त्रयोदश च किञ्चिदधिकमर्द्धाङ्गुलं च।

साल के ऊपर महोरग देव के महल (प्रासाद) हैं। **वे प्रासाद रत्नों से निर्मित हैं, वन, वृक्ष, वापिका, तालाब और जिनभवनों से मंडित तथा अनादिनिधन हैं।** उस जगती के पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर में चार द्वार हैं—क्रमशः उनके नाम विजय, वैजयन्त , जयन्त और अपराजित जानने चाहिये । उन द्वारों की ऊँचाई आठ योजन और विष्कम्भ चार योजन है । **चारों द्वारों के अग्रभाग में आठ प्रातिहार्यों से युक्त जिनप्रतिमा है** । उस जंबूद्वीप की परिधि तीन लाख दो सौ सत्ताईस योजन तीन कोस एक सौ अठ्ठाईस धनुष साढ़े १३ अंगुल से कुछ अधिक है ।

जिनवाणी वंदना

जो परमब्रह्मपथ अवलोकन, इच्छुक हैं भव्यात्मा उनको।
स्याद्वाद रहस्य बता करके, भुक्ती मुक्ती देती सबको।।
चिन्मयज्योती मोहांधकार, हरिणी हे जिनवाणी माता।
रवि उदय पूर्वदिशी जेत्री, त्रिभुवन द्योतित करणी माता।।1।।

जो अनादि से दुर्लभ अचिन्त्य, आनन्त्य मोक्षसुख है जग में।
हे सरस्वती मातः! वह भी, तव प्रसाद से अतिसुलभ बने।।
आश्चर्यकारि स्वर्गादिक सब, ऐश्वर्य प्राप्त हों भक्तों को।
मेरे सब वाञ्छित पूर्ण करो, हे मातः! नमस्कार तुमको।।2।।

संपूर्ण स्त्री की सृष्टी में, चूड़ामणि हो हे सरस्वती!
तुम से ही दयाधर्म की औ, संपूर्ण गुणों की उत्पत्ती।।
मुक्ती के लिए प्रमुख कारण, माँ सरस्वती! मैं नमूँ तुम्हें।
तव चरण कमल में शीश धरूँ, भक्तीपूर्वक नित नमूँ तुम्हें।।3।।

पद्यानुवाद-गणिनी ज्ञानमती

अकृत्रिम वृक्षों पर जिनमंदिर

मंगलाचरण

जंबूवृक्षादिशाखासु, परिवारद्रुमेष्वपि।
जिनालया जिनार्चाश्च, तांस्ता नौमि शिवाप्तये।।१।।

शंभु छंद

जंबूवृक्षादिक दश तरु हैं, इनके परिवार वृक्ष भी हैं।
छत्तीस लाख तेतालिस सहस, एक सौ बीस सर्व तरु हैं।।
दश तरु में अकृत्रिम मंदिर, परिवारवृक्ष में देवभवन।
इस सब में जिनगृह जिनप्रतिमा, इन सबको मैं नित करूँ नमन।।२।।

जंबूद्वीप में बीचोंबीच में सुदर्शनमेरु पर्वत है। इसके दक्षिण और उत्तर में देवकुरु और उत्तरकुरु नाम से दो उत्तम भोगभूमि हैं। पूर्व और पश्चिम में विदेह क्षेत्र हैं।

उत्तरकुरु भोगभूमि में जंबूवृक्ष है। यह अनादिनिधन पृथ्वीकायिक रत्नमयी है। फिर भी इनके पत्ते रत्नमयी होते हुए भी हवा के झकोरे से हिलते हैं। इस वृक्ष की बड़ी-बड़ी चार शाखाएँ हैं। इस जंबूवृक्ष की उत्तर की शाखा पर अकृत्रिम जिनमंदिर है।

जंबूद्वीप में अकृत्रिम जिनमंदिर अठत्तर हैं। उन्हीं में इनकी गणना है। इसके चारों ओर बारह वेदिकाओं के अंतराल में जंबूवृक्ष के परिवार वृक्ष हैं। इन वृक्षों में भी शाखाओं पर देवों के भवन बने हुए हैं, उनके गृहों में भी जिनमंदिर हैं अतः एक जंबूवृक्ष के परिवार वृक्ष १,४०,११९ हैं तो उतने ही व्यंतर देवों के गृह में जिनमंदिर हैं। इसी प्रकार 'देवकुरु' भोगभूमि में शाल्मली वृक्ष है। उसका भी वर्णन इसी के समान है। इनके प्रमुख व्यंतर देवों के नाम आदरदेव एवं अनादरदेव हैं।

धातकीखण्ड में धातकी—धात्री अर्थात् आंवले के वृक्ष हैं। धातकीखंड में दक्षिण-उत्तर में इष्वाकार पर्वत के निमित्त से पूर्वधातकी एवं पश्चिमधातकी ऐसे दो भेद हो गए हैं। पूर्वधातकीखंड में विजयमेरु व पश्चिम धातकी खंड में अचलमेरु पर्वत हैं अतः वहाँ दो धातकीवृक्ष व दो शाल्मली वृक्ष हैं। इनके परिवार वृक्षों की संख्या दूनी-दूनी है।

इसी प्रकार पुष्करार्धद्वीप में दक्षिण-उत्तर में इष्वाकार पर्वत के निमित्त से पूर्व पुष्करार्ध व पश्चिम पुष्करार्ध ऐसे दो खंड हो गए हैं। इनमें भी मंदरमेरु व विद्युन्मालीमेरु पर्वत हैं। वहाँ पर भी उत्तरकुरु व देवकुरु भोगभूमि में पुष्करवृक्ष व शाल्मलीवृक्ष हैं। धातकीवृक्ष से वहाँ के वृक्ष के परिवार वृक्ष दूने-दूने हो गए हैं।

इस प्रकार—१. जंबूवृक्ष, २. शाल्मलीवृक्ष, ३. धातकीवृक्ष, ४. शाल्मलीवृक्ष, ५. धातकीवृक्ष, ६.शाल्मलीवृक्ष, ७. पुष्करवृक्ष, ८. शाल्मलीवृक्ष, ९. पुष्करवृक्ष व १०. शाल्मलीवृक्ष। इन दस वृक्षों की एक-एक **शाखा पर अकृत्रिम जिनमंदिर** हैं। इनकी संख्या मध्यलोक के ४५८ अकृत्रिम मंदिरों में आ जाती है तथा इनके जो परिवार वृक्ष हैं उन पर जो परिवार देव रहते हैं उनके भवनों में जो जिनमंदिर हैं, उनकी गणना व्यंतरदेवों के जिनमंदिरों में आती है, इस बात का हमें और आपको ध्यान रखना है।

जंबूवृक्ष की उत्तर शाखा पर मंदिर है। शेष तीन दिशाओं की शाखाओं पर आदर और अनादर नाम के व्यंतर देवों के भवन हैं। परिवार वृक्षों में इन्हीं देव के परिवार देव हैं । 'सिद्धांतसारदीपक' आदि ग्रन्थों में जंबूवृक्ष का

स्वामी अनावृत नाम का व्यंतर देव माना है। शाल्मलीवृक्ष की दक्षिण शाखा पर सिद्धायतन—जिनमंदिर है व शेष तीन दिशा की शाखाओं पर वेणु एवं वेणुधारी देव रहते हैं। परिवार वृक्षों में इन्हीं देवों के परिवार देव रहते हैं। इसी प्रकार धातकीवृक्ष व शाल्मलीवृक्ष के अधिपति प्रियदर्शन व प्रभास नाम के व्यंतर देव हैं। पुष्करार्धद्वीप में पुष्करवृक्ष व शाल्मलीवृक्षों के अधिपति व्यंतर देव हैं। इनके नाम पद्म व पुण्डरीक हैं। इन वृक्षों की उत्तर व दक्षिण शाखा पर जिनमंदिर तथा शेष तीन शाखाओं पर एवं परिवार वृक्षों पर व्यंतर देव रहते हैं।

इन वृक्षों के पत्ते-पत्ते या डाल-डाल पर भगवान की प्रतिमाएँ नहीं हैं यह बात ध्यान में रखना है।

इन सभी दश सिद्धायतन अकृत्रिम जिनमंदिरों को, उनमें विराजमान प्रतिमाओं को मेरा कोटि-कोटि नमस्कार होवे तथा ढाई द्वीप के इन दश वृक्षों की तथा परिवारवृक्षों के देवभवनों की कुल संख्या छत्तीस लाख तेतालिस हजार एक सौ बीस है, उनमें से दश मुख्य वृक्षों के दश मंदिर की संख्या घटाकर शेष ३६,४३,११० परिवार वृक्षों के जिनमंदिर और जिनप्रतिमाओं को भी मेरा कोटि-कोटि नमस्कार होवे।

जम्बूद्वीप में जम्बूवृक्ष पर जिनमंदिर

(त्रिलोकसार से)

नील कुलाचल के समीप, सीता नदी के पूर्व तट पर सुदर्शन मेरु की ईशान दिशा में उत्तर कुरुक्षेत्र में जम्बूवृक्ष की स्थली है जिसका तलव्यास पाँच सौ योजन है ।।६३९।।[1] वह स्थली अन्त में आधा योजन ऊँची,बीच में आठ योजन ऊँची , गोल आकार वाली और स्वर्णमयी है। उसके बीच में आठ योजन ऊँचा , बारह योजन भूव्यास एवं चार योजन मुख व्यास वाला एक पीठ या पीठिका है।।६४०।। उस स्थली के उपरिम भाग में बारह-बारह एक दूसरे को वेष्टित करती हुई स्वर्ण वलय सदृश आधे योजन ऊँची और ऊँचाई के आठवें भाग प्रमाण अर्थात् १/१६ योजन चौड़ी बारह अम्बुज वेदिकाएँ हैं ।।६४१।। वे १२ वेदियां चार-चार गोपुरों (दरवाजों) से युक्त हैं। बाह्य वेदिका की ओर से प्रारम्भ करके प्रथम और द्वितीय अन्तराल में शून्य अर्थात् परिवार वृक्षादि कुछ नहीं हैं । तीसरे अन्तराल की आठों दिशाओं में उत्कृष्ट यक्षदेवों के १०८ वृक्ष हैं।।६४२।। चौथे अन्तराल में पूर्व दिशा में यक्षी देवाङ्गनाओं के चार जम्बूवृक्ष हैं। पाचवें अन्तराल में वन हैं और उन वनों में चौकोर और गोल आकार वाली बावड़ियाँ हैं । छठे अन्तराल में किसी तरह की रचना नहीं है, वहाँ शून्य है।।६४३।। सातवें अन्तराल की चारों दिशाओं में (प्रत्येक दिशा में चार-चार हजार) सोलह हजार वृक्ष तनुरक्षकों के हैं तथा आठवें अन्तराल में ईशान, उत्तर और वायव्य दिशाओं में सामानिक देवों के चार हजार वृक्ष हैं।।६४४।। सातवें अन्तराल में चारों दिशाओं के मिलाकर कुल सोलह हजार वृक्ष उन्हीं उपर्युक्त यक्षों के अङ्गरक्षक देवों के वृक्ष हैं। नवमत्रये अर्थात् नौवें, दसवें और ग्यारहवें अन्तराल में आग्नेय, दक्षिण और नैऋत्य दिशाओं में अभ्यन्तर, मध्यम और बाह्य पारिषद देवों के क्रमशः बत्तीस हजार, चालीस हजार और अड़तालीस हजार जम्बूवृक्ष है।।६४५।।

विशेषार्थ :—नवम अन्तराल की आग्नेय दिशा में अभ्यन्तर पारिषद देवों के ३२००० वृक्ष, दसवें अन्तराल की दक्षिण दिशा में मध्यम पारिषद देवों के चालीस हजार वृक्ष और ग्यारहवें अन्तराल की वायव्य दिशा

१. त्रिलोकसार पृ.-५३४ से ५३९ तक।

में बाह्य पारिषद देवों के ४८००० जम्बूवृक्ष हैं। बारहवें अन्तराल की पश्चिम दिशा में सेना महत्तरों के सात वृक्ष हैं। एक मुख्य वृक्ष सहित सर्व परिवार वृक्षों का प्रमाण पद्म के परिवार पद्मों के प्रमाण से पाँच अधिक हैं।।६४६।।

विशेषार्थ :— बारहवें अन्तराल में पश्चिम दिशा में सेना महत्तरों के सात ही जम्बूवृक्ष हैं । इस प्रकार एक मुख्य जम्बूवृक्ष से युक्त सम्पूर्ण परिवार जम्बूवृक्षों का प्रमाण पद्मद्रह में स्थित श्रीदेवी के पद्म परिवारों के प्रमाण से पाँच अधिक हैं। यहाँ चौथे अन्तराल में चार अग्र देवांगनाओं के चार और एक मुख्य जम्बूवृक्ष इस प्रकार पाँच अधिक है। **इस प्रकार— १+१०८ + ४ + १६००० + ४००० + ३२००० + ४०००० + ४८००० + ७ = १,४०,१२० अर्थात् सम्पूर्ण जम्बूवृक्षों का प्रमाण एक लाख चालीस हजार एक सौ बीस है।**

अर्ध योजन गहरी और एक कोश चौड़ी जड़ से युक्त तथा पीठ से दो योजन ऊँचे मरकत मणिमय, सुदृढ़ स्कन्ध से सहित जम्बूवृक्ष है। अपने स्कन्ध से ऊपर वज्रमय, अर्ध योजन चौड़ी और आठ योजन लम्बी उसकी चार शाखाएँ हैं।।६४७।।

विशेषार्थ :— पीठ के बहुमध्य भाग में पादपीठ सहित मुख्य जम्बूवृक्ष है, जिसका मरकत मणिमय सुदृढ़ स्कन्ध पीठ से दो योजन ऊँचा, एक कोस चौड़ा और अर्ध योजन अवगाह (नींव) सहित है। स्कन्ध से ऊपर वज्रमय, अर्ध योजन चौड़ी और आठ योजन लम्बी उसकी चार शाखाएँ हैं।

वह जम्बूवृक्ष नाना प्रकार की रत्नमयी उपशाखाओं से युक्त, प्रवाल (मूँगा) सदृश वर्ण वाले पुष्प और मृदङ्ग सदृश फल से संयुक्त पृथ्वीकायमय है (वनस्पतिकाय नहीं) उसकी सम्पूर्ण ऊंचाई दस योजन है। मध्य भाग की इसकी चौड़ाई ६ योजन और अग्रभाग की चौड़ाई चार योजन प्रमाण है।।६४८।। उस जम्बूवृक्ष की जो शाखा उत्तरकुरुगत नील कुलाचल की ओर गई है, **उस पर जिनमन्दिर है।** अवशेष तीन शाखाओं पर यक्षकुलोत्पन्न आदर-अनादर नामक देवों के आवास हैं।।६४९।।

परिवारवृक्षों का प्रमाण और उनका स्वामित्व कहते हैं—

जम्बूवृक्ष का जो प्रमाण कहा गया है, उसका अर्धप्रमाण परिवार जम्बूवृक्षों का कहा गया है। ये सभी परिवार जम्बूवृक्ष **आदर-अनादर देवों के परिवारों के आवासस्वरूप हैं**।।६५०।।

विशेषार्थ :— परिवार जम्बूवृक्षों का प्रमाण मुख्य जम्बूवृक्ष के प्रमाण का आधा है तथा परिवार जम्बूवृक्षों की जो शाखाएँ हैं उन पर आदर-अनादर यक्ष परिवारों के आवास बने हुए हैं।

जम्बूद्वीप में शाल्मलीवृक्ष पर जिनमंदिर

सीतोदा नदी के पश्चिम तट पर, निषध कुलाचल के समीप, सुदर्शन मेरु की नैऋत्य दिशागत देवकुरुक्षेत्र में शाल्मली वृक्ष की मनोहारिणी रूप्यमयी स्थली है । **वहाँ अपने १,४०,११९ परिवार शाल्मली वृक्षों सहित मुख्य शाल्मली वृक्ष है**।।६५१।। शाल्मली वृक्ष का वर्णन भी जम्बूवृक्ष सदृश ही है। शाल्मली की दक्षिण शाखा पर जिनभवन और शेष तीन शाखाओं पर गरुड़कुमारों के स्वामी वेणु और वेणुधारी देवों के भवन हैं।।६५२।।

जम्बूद्वीप में जम्बूवृक्ष एवं शाल्मली वृक्ष की परिवार वृक्षों सहित संख्या

(१) जम्बूवृक्ष संबंधी कुल वृक्ष = १,४०,१२०

(२) शाल्मली वृक्ष संबंधी कुल वृक्ष = १,४०,१२०

जम्बूद्वीप के कुल वृक्ष = २,८०,२४० (दो लाख अस्सी हजार दो सौ चालीस)

धातकीखण्ड द्वीप में धातकीवृक्ष एवं शाल्मली वृक्षों पर जिनमंदिर

(तिलोयपण्णत्ति ग्रंथ से)

धातकीखण्डद्वीप के भीतर उत्तरकुरु और देवकुरु क्षेत्रों में धातकीवृक्ष स्थित हैं, इसी कारण इस द्वीप का 'धातकीखण्ड' यह सार्थक नाम है।।२६००।। **इस द्वीप में उन धातकी वृक्षों के परिवार वृक्ष पांच लाख साठ हजार चार सौ अस्सी हैं।।**२६०१।। ५,६०,४८०। उन वृक्षों पर सम्यक्त्वरूपी रत्न से संयुक्त और उत्तम भूषणों से भूषित आकृति को धारण करने वाले प्रियदर्शन और प्रभास नामक दो अधिपति देव निवास करते हैं।।२६०२।। इन दोनों देवों के परिवार देव आदर और अनादर देवों के परिवारदेवों की अपेक्षा दुगुणे हैं जो पूर्वोक्त वर्णन से संयुक्त हैं[१]।।२६०३।।

अढ़ाई द्वीप में जम्बूवृक्ष आदि दस ही महावृक्ष हैं

(लोकविभाग से)

अढ़ाई द्वीप में मेरु पर्वत को छोड़कर शेष जो पर्वत, वृक्ष , वक्षार और वेदिकायें स्थित हैं उनका अवगाढ अपनी ऊंचाई के चतुर्थ भाग १/४ प्रमाण है।।१३।। कुण्डों का विस्तार अपने अवगाह से छह गुणा (जैसे **१०×६=६०, २०×६=१२०, ४०×६=२४०)** तथा द्रह और नदियों का विस्तार अपने अवगाह से पचास गुणा है।।१४।।

चैत्यवृक्ष की ऊँचाई अपने अवगाह से डेढ़ सौ गुणी होती है। **अढ़ाई द्वीपों में स्थित दस ही महावृक्ष जंबूवृक्ष के समान कहे गये हैं** ।।१५।।

तालाब, कुण्ड, महानदियां तथा पद्महृद भी, ये अवगाह की अपेक्षा पूर्व अर्थात् जंबूद्वीपस्थ तालाब आदि के समान हैं **परन्तु विस्तार में वे जंबूद्वीप के तालाब आदि से दूने-दूने हैं**[२]।।१६।।

धातकीखण्ड द्वीप में वृक्षों की संख्या

पूर्व धातकीखण्ड द्वीप

(१) धातकी वृक्ष संबंधी कुल वृक्ष = २,८०,२४०

(२) शाल्मलि वृक्ष संबंधी कुल वृक्ष = २,८०,२४०

कुल मिलाकर = २,८०, २४० + २,८०,२४० = ५,६०,४८० वृक्ष

पश्चिम धातकीखण्ड द्वीप

(१) धातकी वृक्ष संबधी कुल वृक्ष = २,८०,२४०

(२) शाल्मलि वृक्ष संबंधी कुल वृक्ष =२,८०,२४०

कुल मिलाकर = २,८०, २४० + २,८०,२४० = ५,६०,४८० वृक्ष

धातकीखण्डद्वीप संबंधी कुल वृक्ष =२,८०,२४० + २,८०,२४० + २,८०,२४०+ २,८०,२४० = ११,२०,९६० (ग्यारह लाख बीस हजार नौ सौ साठ)

१. तिलोयपण्णत्ति पृ. ४७०। २. लोकविभाग पृ. ६२।

पुष्करार्धद्वीप में

पुष्करवृक्ष एवं शाल्मली वृक्षों पर जिनमंदिर

(जम्बूद्वीपपण्णत्ति से)

दोण्हं गिरिरायाजणं दोण्हं इसुगारणामसेलाणं।
सामलितरूण दोण्हं दोण्हं वरपउमरुक्खाणं[१]।।७५।।

पुष्करवरद्वीप सम्बन्धी दो मेरु, दो इष्वाकार नामक शैल, दो शाल्मली वृक्ष, दो श्रेष्ठपद्म (पुष्कर) वृक्ष हैं।।७५।।

पुष्करार्ध द्वीप में पुष्कर वृक्ष

(तत्त्वार्थवार्तिक से)

सूत्र—पुष्करार्धे च[२]।।३४।।

यत्र जम्बूवृक्षस्तत्र पुष्करं सपरिवारं वेदितव्यम्। तन्निवासी द्वीपाधिपतिः, तत एव तस्य द्वीपस्य नाम रूढं पुष्करद्वीप इति।

सूत्रार्थ—आधे पुष्करद्वीप में भी भरतादिक्षेत्र एवं हिमवन् आदि पर्वत दो-दो हैं।।३४।।

जम्बूद्वीप में जिस प्रकार जम्बूवृक्ष हैं उसी प्रकार परिवार, ऊँचाई आदि वाला पुष्करार्ध में पुष्कर नामक वृक्ष है। उस वृक्ष पर पुष्करद्वीप का अधिपति देव रहता है। पुष्करवृक्ष की अपेक्षा या रूढ़ि से इस द्वीप को पुष्कर कहते हैं।।५।।

पुष्करार्ध द्वीप में पुष्करवृक्ष एवं शाल्मली वृक्ष के परिवार वृक्षों सहित संख्या

पूर्व पुष्करार्ध द्वीप

(१) पुष्करवृक्ष संबंधी कुल वृक्ष = ५,६०,४८०
(२) शाल्मलिवृक्ष संबंधी कुल वृक्ष = ५,६०,४८०
कुल योग = ११,२०,९६०

पश्चिम पुष्करार्ध द्वीप

(१) पुष्करवृक्ष संबंधी कुल वृक्ष = ५,६०,४८०
(२) शाल्मलिवृक्ष संबंधी कुल वृक्ष = ५,६०,४८०
कुल योग = ११,२०,९६०

पुष्करार्धद्वीप संबंधी कुल वृक्ष = ५,६०,४८०+ ५,६०,४८०+ ५,६०,४८० + ५,६०,४८० = २२,४१,९२० (बाईस लाख इकतालीस हजार नौ सौ बीस)

ढाई द्वीप के कुल वृक्षों की संख्या

२,८०,२४० +११,२०,९६०+ २२,४१,९२० =३६,४३,१२०

(छत्तीस लाख तैतालीस हजार एक सौ बीस वृक्ष)

ये जितने वृक्ष हैं उतने ही जिनमंदिर हैं। इन सभी अकृत्रिम जिनमंदिर और उनमें विराजमान जिन-प्रतिमाओं को मेरा कोटि-कोटि नमस्कार होवे।

१. जम्बूद्वीपपण्णत्ति पृ. १९२। २. तत्त्वार्थवार्तिक पृ. ५४२, ५४५।

अकृत्रिम कमलों में जिनमंदिर

-मंगलाचरण-

श्र्यादिदेवीकमलेषु, परिवारकंजेष्वपि।
जिनालया जिनार्चाश्च, तांस्ताः स्वात्मश्रियै नुमः।।१।।

श्री आदि—श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि और लक्ष्मी इनके कमलों में तथा इनके परिवार कमलों में भी जिनमंदिर हैं और जिनप्रतिमाएँ हैं। उन सभी जिनमंदिर व जिनप्रतिमाओं को हम अपनी आत्मा की श्री—लक्ष्मी—गुणसंपत्ति को प्राप्त करने के लिए नमस्कार करते हैं।।१।।

-शंभु छंद-

कमलों कमलों में जिनमंदिर, इनमें जिनप्रतिमाएँ सुंदर।
छह करोड़ उन्नीस लाख इकतीस हजार दो सौ बाहत्तर।।
मुनिगण सुरगण से वंदित ये, शाश्वत रत्नों की प्रतिमाएँ।
हम इनका वन्दन कर करके, शाश्वत अनुपम सुख पा जायें।।२।।

जम्बूद्वीप में हिमवान, महाहिमवान, निषध, नील, रुक्मी और शिखरी ऐसे छह कुलाचल पर्वत हैं। इनके ऊपर पद्म, महापद्म, तिगिंछ, केसरी, महापुण्डरीक और पुण्डरीक नाम के छह सरोवर हैं। उन सरोवरों में क्रम से श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि और लक्ष्मी नाम की देवियाँ अपने परिवार सहित रहती हैं।

ये श्री आदि देवियाँ जम्बूद्वीप के भरत, ऐरावत व विदेह क्षेत्र के तीर्थंकरों की माता की सेवा के लिए आती हैं।

उन सरोवरों में इन देवियों के जितने परिवार कमल हैं, उन **सबमें जिनमंदिर हैं और सभी जिनमंदिरों में जिनप्रतिमाएँ विराजमान हैं।**

इसी प्रकार 'त्रिलोकसार' ग्रंथ के अनुसार जम्बूद्वीप में सीता-सीतोदा नदी के पूर्व, पश्चिम व दक्षिण तथा उत्तर में पाँच-पाँच सरोवर ऐसे २० सरोवर हैं। उनमें भी नागकुमारी देवियों के कमल हैं। उनके परिवार कमल भी श्रीदेवी के परिवारकमल प्रमाण हैं। उन सभी २६ सरोवरों के कमलों में जिनमंदिर हैं, उन सभी में जिनप्रतिमाएँ विराजमान हैं।

जम्बूद्वीप के समान पूर्व धातकीखण्ड में श्री आदि देवियों के छह सरोवर व सीता-सीतोदा नदी के बीस सरोवर तथा पश्चिम धातकीखण्ड के भी छह और बीस सरोवर, ऐसे ही पूर्व पुष्करार्ध व पश्चिम पुष्करार्ध के छब्बीस-छब्बीस सरोवर सभी मिलकर २६×५=१३० सरोवर हो जाते हैं।

धातकीखण्ड द्वीप में कमलों की संख्या

तिलोयपण्णत्ति, त्रिलोकसार व लोकविभाग आदि ग्रंथों में धातकीखण्ड द्वीप के हिमवान आदि पर्वतों का विस्तार आदि दूना-दूना कहने से स्पष्ट हो जाता है कि वहाँ पर सरोवरों के विस्तार भी दूने-दूने हैं तथा श्री, ह्री आदि देवियों के परिवार कमल भी दूने-दूने हैं।

ऐसे ही सीता-सीतोदा के परिवार कमलों की संख्या भी दूनी-दूनी हैं।

कमलों में जिनमंदिर

(तिलोयपण्णत्ति से)

दहमज्झे अरविंदयणालं बादालकोसमुव्विद्धं। इगिकोसं बादल्लं तस्स मुणालं ति रजदमयं[1]।।१६६७।।

को ४२, बा को १।

कंदो यदिट्ठरयणं णालो वेरुलियरयणणिम्मविदो। तस्सुवरिं दरवियसियपउमं चउकोसमुव्विद्धं।।१६६८।।

को ४।

चउकोसरुंदमज्झं अंते दोकोसमहव चउकोसा। पत्तेक्कं इगिकोसं उस्सेहायामकण्णिया तस्स।।१६६९।।

को ४ । २ । को ४ । को १ ।

अहवा दोहो कोसा एक्कारसहस्सपत्तसंजुत्ता। तक्कण्णिकाय उवरिं वेरुलियकवाडसंजुत्तो।।१६७०।।

को २ को २।

कूडागारमहारिहभवणो वरफलिहरयणणिम्मविदो। आयामवासतुंगा कोसं कोसद्धतिचरणा कमसो।।१६७१।।

को १ । १ । ३।
२ ४

ऐसे ही पुष्करार्ध द्वीप में भी हिमवान पर्वत व पद्म सरोवर आदि का विस्तार भी दूना-दूना कहा गया है अत: श्री देवी आदि के परिवारकमलों की संख्या तथा सीता-सीतोदा नदियों के परिवार कमलों की संख्या भी धातकीखण्ड की अपेक्षा दूनी-दूनी है, ऐसा समझना चाहिए।

पूर्व धातकी व पश्चिम धातकी में भरत-ऐरावत व विदेह क्षेत्रों के तीर्थंकर की माता की सेवा के लिए वहीं-वहीं की श्री आदि देवियाँ आती हैं, ऐसे ही पूर्व व पश्चिम पुष्करार्ध के तीर्थंकरों की माता की सेवा के लिए वहीं-वहीं की देवियाँ आती हैं।

इन सबके कमलों की संख्या छह करोड़, उन्नीस लाख, इकतीस हजार दो सौ बहत्तर—६,१९,३१,२७२ हो जाती है। इन कमलों में अकृत्रिम जिनमंदिर हैं एवं सभी मंदिरों में रत्नमयी जिनप्रतिमाएँ विराजमान हैं।

कमलों में जिनमंदिर

(तिलोयपण्णत्ति से)

तालाब के मध्य में बयालीस कोस ऊँचा और एक कोस मोटा कमल का नाल है। इसका मृणाल रजतमय और तीन कोस बाहल्य से युक्त है।।१६६७।। उत्सेध को. ४२, बा. को. १। उस कमल का कन्द अरिष्टरत्नमय और नाल वैडूर्यमणि से निर्मित है। इसके ऊपर चार कोस ऊँचा किंचित् विकसित पद्म है।।१६६८।। उसके मध्य में चार कोस और अन्त में दो अथवा चार कोस विस्तार है। उसकी कर्णिका की ऊँचाई और आयाम में से प्रत्येक एक कोसमात्र है।।१६६९।। को. ४। २। ४। को. १। अथवा कर्णिका की ऊँचाई और लम्बाई दो-दो कोस मात्र है। यह कमलकर्णिका ग्यारह हजार पत्तों से संयुक्त है। इस कर्णिका के ऊपर वैडूर्यमणिमय कपाटों से संयुक्त और

---

१. तिलोयपण्णति पृ. ३६१ से ३६४ तक।

तस्सिं सिरियादेवी भवणे पलिदोवमप्पमाणाऊ। दस चावाणिं तुंगा सोहम्मिंदस्स सहदेवी।।१६७२।।
सिरिदेवीए होंति हु देवा सामाणिया य तणुरक्खा। परिसत्तिदयाणीया पइण्णअभियोगकिव्विसिया।।१६७३।।
ते सामाणियदेवा विविहंजणभूसणेहिं कयसोहा। सुपसत्थविउलकाया चउस्सहस्सयपमाणा य।।१६७४।।
४०००।
ईसाणसोममारुददिसाण भागेसु पउमउवरिम्मि। सामाणियाण भवणा होंति सहस्साणि चत्तारि।।१६७५।।
४०००।
सिरिदेवीतणुरक्खा देवा सोलससहस्सया ताणं। पुव्वादिसु पत्तेक्कं चत्तारिसहस्सभवणाणि।।१६७६।।
१६०००।
अब्भंतरपरिसाए आइच्चो णाम सुरवरो होदि। बत्तीससहस्साणं देवाणं अहिवई धीरो।।१६७७।।
पउमदहपउमोवरि अग्गिदिसाए भवंति भवणाइं। बत्तीससहस्साइं ताणं वररयणरइदाइं।।१६७८।।
३२०००।
पउमम्मि चंदणामो मज्झिमपरिसाए अहिवई देओ। चालीससहस्साणं सुराण बहुयाणसत्थाणं।।१६७९।।
४००००।
अडदालसहस्साणं सुराण सामी समुग्गयपयाओ। बाहिरपरिसाए जदुणामो सेवेदि सिरिदेविं।।१६८०।।
४८०००।
णइरिदिसाए ताणं अडदालसहस्ससंखपासादा। पउमद्दहमज्झम्मि य सुतुंगतोरणदुवाररमणिज्जा।।१६८१।।
४८०००।

उत्तम स्फटिकमणि से निर्मित कूटागारों में श्रेष्ठ भवन है। इसकी लम्बाई एक कोस, विस्तार अर्ध कोस प्रमाण और ऊँचाई एक कोस के चार भागों में से तीन भागमात्र है।।१६७०-१६७१।। को १। १/२ । ३/४। इस भवन में पल्योपम प्रमाण आयु की धारक और दश धनुष ऊँची श्री नामक सौधर्म इन्द्र की सहदेवी निवास करती है।।१६७२।। श्रीदेवी के सामानिक, तनुरक्ष, तीनों प्रकार के पारिषद, अनीक, प्रकीर्णक, आभियोग्य और किल्विषिक जाति के देव हैं।।१६७३।। विविध प्रकार के अंजन और भूषणों से शोभायमान तथा सुप्रशस्त एवं विशालकाय वाले वे सामानिक देव चार हजार प्रमाण हैं।।१६७४।। ४०००। ईशान, सोम (उत्तर) और वायव्य दिशाओं के भागों में पद्मों के ऊपर उन सामानिक देवों के चार हजार भवन हैं।।१६७५।। ४०००। श्रीदेवी के तनुरक्षक देव सोलह हजार हैं। इनके पूर्वादिक दिशाओं में से प्रत्येक दिशा में चार हजार भवन हैं।।१६७६।। ४ × ४००० = १६०००। अभ्यन्तर परिषद् में बत्तीस हजार देवों का अधिपति धीर आदित्य नामक उत्तम देव है।।१६७७।। पद्मद्रह के कमलों के ऊपर आग्नेय दिशा में उन देवों के उत्तम रत्नों से रचित बत्तीस हजार भवन हैं।।१६७८।। ३२०००। पद्मद्रह पर मध्यम परिषद् के बहुत यान और शस्त्रयुक्त चालीस हजार देवों का अधिपति चन्द्र नामक देव है।।१६७९।। ३२०००। (यहाँ भवनों की दिशा और संख्यासूचक गाथा त्रुटित प्रतीत होती है) बाह्य परिषद् के अड़तालीस हजार देवों का स्वामी प्रतापशाली जतु नामक देव श्रीदेवी की सेवा करता है।।१६८०।। ४८०००। नैऋत दिशा में उन देवों के उन्नत तोरणद्वारों से रमणीय अड़तालीस हजार भवन पद्मद्रह के मध्य में स्थित हैं।।१६८१।। ४८०००। कुंजर, तुरंग, महारथ, बैल, गन्धर्व, नर्तक और दास, इनकी सात सेनाएँ हैं। इनमें से

कुंजरतुरयमहारहगोवइगंधव्वणट्टदासाणं। सत्त यणीया सत्तहि कच्छाहिं तत्थ संजुत्ता।।१६८२।।
पढमाणीयपमाणं सरिसं सामणियाण सेसेसुं। विउणा विउणा संखा छस्सु वणीएसु पत्तेयं।।१६८३।।
कुंजरपहुदितणूहिं देवा विकिरंति विमलसत्तिजुदा। मायालोहविहीणा णिच्चं सेवंति सिरिदेविं।।१६८४।।
सत्ताणीयाण धरा पउमद्दहपच्छिमप्पएसम्मि।
कमलकुसुमाण उवरिं सत्त च्चिय कणयणिम्मविदा।।१६८५।।
अट्ठुत्तरसयमेत्तं पडिहारा मंतिणो य दूदा य। बहुविहवरपरिवारा उत्तमरूवाइं विणयजुत्ताइं।१६८६।।
अट्ठुत्तरसयसंखा पासादा ताण पउमगब्भेसुं। दिसविदिसविभागठिदा दहमज्झे अधियरमणिज्जा।।१६८७।।
होंति पइण्णयपहुदी ताणं चउण्णं वि पउमपुप्फेसुं। उच्छिण्णो कालवसा तेसुं परिमाणउवएसो।।१६८८।।
कमला अकिट्टिमा ते पुढविमया सुंदरा य इगिलक्खं। चालीससहस्साणिं एक्कसयं सोलसेहिं जुदं।।१६८९।।
एवं महापुराणं परिमाणं ताण होदि कमलेसुं। खुल्लयपुरसंखाणं को सक्कइ कादुमखिलेणं।।१६९०।।
पउमदहे पुव्वमुहा उत्तरगेहा हवंति सव्वे वि। ताणभिमुहा वि सेसा खुल्लयगेहा जहाजोग्गं।।१६९१।।
कमलकुसुमेसु तेसुं पासादा जेत्तिया समुद्दिट्ठा। तेत्तियमेत्ता होंति हु जिणगेहा विविहरयणमया।।१६९२।।
भिंगारकलसदप्पणबुब्बुदघंटाधयादिसंपुण्णा। जिणवरपासदा ते णाणाविहतोरणदुवारा।।१६९३।।
वारचामरभामंडलछत्तत्तयकुसुमवरिसपहुदीहिं। संजुत्ताओ तेसुं जिणवरपडिमाओ राजंति।।१६९४।।

प्रत्येक सात कक्षाओं से सहित हैं।।१६८२।। प्रथम अनीक का प्रमाण सामानिक देवों के सदृश है। शेष छह सेनाओं से प्रत्येक का प्रमाण उत्तरोत्तर दूना-दूना है।।१६८३।। निर्मल शक्ति से संयुक्त देव हाथी आदि के शरीरों की विक्रिया करते हैं और माया एवं लोभ से रहित होकर नित्य ही श्रीदेवी की सेवा करते हैं।।१६८४।। सात अनीक देवों के सात घर पद्मद्रह के पश्चिम प्रदेश में कमलकुसुमों के ऊपर सुवर्ण से निर्मित हैं।।१६८५।। उत्तम रूप व विनय से संयुक्त और बहुत प्रकार के उत्तम परिवार से सहित ऐसे एक सौ आठ प्रतीहार, मंत्री एवं दूत हैं।।१६८६।। उनके अतिशय रमणीय एक सौ आठ भवन द्रह के मध्य में कमलों पर दिशा और विदिशा के विभागों में स्थित हैं।।१६८७।। पद्मपुष्पों पर स्थित जो प्रकीर्णक आदिक देव हैं, उन चारों के प्रमाण का उपदेश कालवश नष्ट हो गया है।।१६८८।। वे सब अकृत्रिम पृथिवीमय सुन्दर कमल **एक लाख चालीस हजार एक सौ सोलह हैं।।१४०११६।।** १६८९।।

इस प्रकार कमलों के ऊपर स्थित उन महानगरों का प्रमाण (एक लाख चालीस हजार एक सौ सोलह) है। इनके अतिरिक्त क्षुद्रपुरों की पूर्णरूप से गिनती करने के लिए कौन समर्थ हो सकता है?।।१६९०।। पद्मद्रह में सब ही उत्तम गृह पूर्वाभिमुख हैं और शेष क्षुद्रगृह यथायोग्य उनके सन्मुख स्थित हैं।।१६९१।। **उन कमलपुष्पों पर जितने भवन कहे गए हैं, उतने ही वहाँ विविध प्रकार के रत्नों से निर्मित जिनगृह भी हैं**।।१६९२।। वे जिनेन्द्रप्रासाद नाना प्रकार के तोरणद्वारों से सहित और झारी, कलश, दर्पण, बुदबुद्, घंटा एवं ध्वजा आदि से परिपूर्ण हैं।।१६९३।। उन जिनभवनों में उत्तम चमर, भामण्डल, तीन छत्र और पुष्पवृष्टि आदि से संयुक्त **जिनेन्द्र प्रतिमाएँ विराजमान** हैं।।१६९४।।

रोहितास्या नदी का वर्णन

पउमद्दहादु उत्तरभागेणं रोहिणामवरसरिया। उग्गच्छइ छावत्तरि जोयणदुसयाइं अदिरित्ता[1]।।१६९५।।
२७६। ६। १९
रुंदावगाढतोरणअंतरकूडप्पणालियाठाणा। धारारुंदं कुंडद्दीवाचलकूडरुंदपहुदीओ।।१६९६।।
तत्थ य तोरणदारे तोरणथंभा अ तीए सरिदाए। गंगाणइए सरिसा णवरिं वासादिएहि ते विगुणा।।१६९७।।

महापद्म सरोवर में कमलों पर जिनमंदिर

पउमद्दहाउ दुगुणो वासायमोहि गहिरभावेणं। होदि महाहिमवंते महपउमो णाम दिव्वदहो[2]।।१७२७।।
वा १०००। आ २०००। गा २०।
तद्दहपउमस्सोवरि पासादे चेट्ठदे य हिरिदेवी। बहुपरिवारेहिं जुदा सिरियादेवि व्व वण्णिजगुणोहा।।१७२८।।
णवरि विसेसो एसो दुगुणा परिवारपउमपरिसंखा। जेत्तियमेत्तपसादा जिणभवणा तत्तिया रम्मा।।१७२९।।
ईसाणदिसाभाए वेसमणो णाम सुंदरो कूडो। दक्खिणदिसाविभागे कूडो सिरिणिचयणामो य।।१७३०।।
णइरिदिभागे कूडं महहिमवंतो विचित्तरयणमओ। पच्छिमउत्तरभागे कूडो एरावदो णाम।।१७३१।।
सिरिसंचयं ति कूडो उत्तरभागे दहस्स चेट्ठेदि। एदेहि कूडेहिं महहिमवंतो य पंचसिहरो त्ति।।१७३२।।
एदे सव्वे कूडा वेंतरणयरेहिं परमरमणिज्जा। उववणवेदीजुत्ता उत्तरपासे जलम्मि जिणकूडो।।१७३३।।
सिरिणिचयं वेरुलियं अंकमयं अच्छरीयरुजगाइं। उप्पलसिहरी कूडा सलिलम्मि पदाहिणा होंति।।१७३४।।

रोहितास्या नदी का वर्णन

पद्मद्रह के उत्तर भाग से रोहितास्या नामक उत्तम नदी निकलकर दो सौ छियत्तर योजन से कुछ अधिक दूर तक (पर्वत के ऊपर) जाती है।।१६९५।। २७६-६/१९। इस नदी का विस्तार, गहराई, तोरणों का अन्तर, कूट, प्रणलिकास्थान, धारा का विस्तार, कुण्ड, द्वीप, अचल और कूट का विस्तार इत्यादि तथा वहाँ पर तोरणद्वार में तोरणस्तम्भ इन सबका वर्णन गंगानदी के सदृश ही जानना चाहिये। विशेष यह है कि यहाँ पर इन सबका विस्तार गंगानदी की अपेक्षा दूना है।।१६९६-१६९७।।

महापद्म सरोवर में कमलों पर जिनमंदिर

महाहिमवान् पर्वत पर स्थित महापद्म नामक द्रह पद्मद्रह की अपेक्षा दुगुणे विस्तार, लंबाई व गहराई से सहित है।।१७२७।।विस्तार १०००। आयाम २०००। गहराई २०। उन तालाब में कमल के ऊपर स्थित प्रासाद में बहुत से परिवार से संयुक्त तथा श्रीदेवी के सदृश वर्णनीय गुणसमूह से परिपूर्ण ह्री देवी रहती है।।१७२८।। यहाँ विशेषता केवल यह है कि ह्री देवी के परिवार और पद्मों की संख्या श्रीदेवी की अपेक्षा दूनी है। इस तालाब में जितने प्रासाद हैं उतने ही रमणीय **जिनभवन भी हैं**।।१७२९।। इस तालाब के ईशानदिशाभाग में सुन्दर वैश्रवण नामक कूट, दक्षिणदिशाभाग में श्रीनिचय नामक कूट, नैऋत्यदिशाभाग में विचित्र रत्नों से निर्मित महाहिमवान् कूट, पश्चिमोत्तरभाग में ऐरावत नामक कूट और उत्तरभाग में श्रीसंचय नामक कूट स्थित है। इन कूटों से

---

१. तिलोयपण्णत्ति पृ. ३६४। २. तिलोयपण्णत्ति पृ० ३६८-३६९।

तद्दहदक्खिणदारे रोहिणदी णिस्सरेदि विउलजला।
दक्खिणमुहेण वच्चदि पणहदइगिवीसतिसयमदिरित्तं।।१७३५।।
१६०५।५। १९
रोहीए रुंदादी सरिच्छा होंति रोहिदासाए। णाभिप्पदाहिणेणं हेमवदे जादि पुव्वमुहा।।१७३६।।
तक्खिदिबहुमज्झेणं गच्छिय दीवस्स जगदिबिलदारे।
पविसेदिलवणजलधिं अडवीससहस्सवाहिणीसहिदा।।१७३७।।
२८०००।

तिगिंछ सरोवर के कमलों में जिनमंदिर

पउमद्दहाउ चउगुणरुंदप्पहुदी भवेदि दिव्वदहो। तीगिच्छो विक्खादो बहुमज्झे णिसहसेलस्स[1]।।१७६१।।
वा २०००, आ ४०००, गा ४०, पउ ४२, संखा ५६०४६४, वा १, मु ३, प ४,
मज्झि ४, अं ४ वा २।
तद्दहपउमस्सोवरि पासादे चेट्ठदे य धिदिदेवी। बहुपरिवारेहिं जुदा णिरुवमलावण्णसंपुण्णा।।१७६२।।
इगिपल्लपमाणाऊ णाणाविहरयणभूसियसरीरा। अइरम्मा वेंतरिया सोहम्मिंदस्स सा देवी।।१७६३।।
जेत्तियमेत्ता तस्सिं पउमगिहा तेत्तिया जिणिंदपुरा। भव्वाणाणंदयरा सुरकिण्णरमिहुणसंकिण्णा।।१७६४।।

महाहिमवान् पर्वत पंचशिखर कहलाता है।।१७३०-१७३२।। ये सब कूट व्यन्तरनगरों से परम रमणीय और उपवनवेदियों से संयुक्त हैं। **तालाब के उत्तरपार्श्व भाग में जल में जिनकूट** है।।१७३३।। श्रीनिचय, वैडूर्य, अंकमय, आश्चर्य, रुचक, उत्पल और शिखरी, ये कूट जल में प्रदक्षिण रूप से स्थित हैं।।१७३४।। इस तालाब के दक्षिणद्वार से प्रचुर जलसंयुक्त रोहित् नदी निकलती है और पर्वत पर पाँच से गुणित तीन सौ इक्कीस योजन से अधिक दक्षिण की ओर जाती है।।१७३५।। ३२१ × ५ = १६०५-५/१९। रोहित् नदी का विस्तार आदि रोहितास्या के समान है। यह नदी हैमवतक्षेत्र में नाभिगिरि की प्रदक्षिणा करती हुई पूर्वाभिमुख होकर आगे जाती है।।१७३६।।

इस प्रकार यह नदी उस हैमवतक्षेत्र के बहुमध्यभाग से द्वीप की वेदी के बिलद्वार में जाकर अट्ठाईस हजार नदियों सहित लवणसमुद्र में प्रवेश करती है।।१७३७।। २८०००।

तिगिंछ सरोवर के कमलों में जिनमंदिर

निषधपर्वत के बहुमध्यभाग में पद्मद्रह की अपेक्षा चौगुणे विस्तारादि से सहित और तिगिंछ नाम से प्रसिद्ध एक दिव्य तालाब है।।१७६१।। व्यास २०००, आयाम ४०००, अवगाह ४०, नाल की ऊँचाई ४२, संख्या ५६०४६४, बाहल्य १, मृणाल ३, पद्म ४, मध्यव्यास ४, अंतव्यास २ वा ४ योजन। उस द्रहसम्बन्धी पद्म के ऊपर स्थित भवन में बहुत परिवार से संयुक्त और अनुपम लावण्य से परिपूर्ण धृति देवी निवास करती है।।१७६२।। एक पल्यप्रमाण आयु की धारक और नाना प्रकार के रत्नों से भूषित शरीर वाली अतिरमणीय वह व्यन्तरिणी सौधर्म इन्द्र की देवी है।।१७६३।। उस तालाब में जितने पद्मगृह हैं, उतने ही भव्यजनों को आनन्दित करने वाले

---

१. तिलोयपण्णत्ति-अधिकार-४, पृ. ३७३-३७४।

ईसाणदिसाभाए वेसमणो णाम मणहरो कूडो। दक्खिणदिसाविभागे कूडो सिरिणिचयणामो य।।१७६५।।
णइरदिदिसविभागे णिसहो णामेण सुंदरो कूडो। अइरावदो त्ति कूडो तीगिच्छीपच्छिमुत्तरविभागे।।१७६६।।
उत्तरदिसाविभागे कूडो सिरिसंचवो त्ति णामेण। एदेहिं कूडेहिं णिसहगिरी पंचसिहरि त्ति।।१७६७।।
वरवेदियाहिं जुत्ता वेंतरणयरेहिं परमरमणिज्जा। एदे कूडा उत्तरपासे सलिलम्मि जिणकूडो।।१७६८।।
सिरिणिचयं वेरुलियं अंकमयं अंबरीयरुजगाइं। सिहिरी उप्पलकूडो तिंगिच्छिदहस्स सलिलम्मि।।१७६९।।

पुण्डरीक सरोवर में कमलों में जिनमंदिर

रुम्मिगिरिंदस्सोवरि बहुमज्झे होदि पुंडरीयदहो। फुल्लंतकमलपउरो तिगिंछद्दहस्स परिमाणो[१]।।२३४४।।
तद्दहकमलणिकेदे देवी णिवसेदि बुद्धिणामेणं। तीए हवेदि अद्धो परिवारो कित्तिदेवीदो।।२३४५।।
णिरुवमलावण्णतणू वररयणविभूसणेहिं रमणिज्जा। विविहविणोदाकीडण ईसाणिंदस्स सा देवी।।२३४६।।
तद्दक्खिणतोरणदारेणं णिग्गदा णई णारी। णारीणामे कुंडे णिवददि गंतूण थोवमुही।।२३४७।।
तद्दक्खिणदारेणं णिस्सरिदूणं च दक्खिणमुही सा।
पत्ता णाभिगिरिंदं कादूण पदाहिणं हरिणइं वा।।२३४८।।
रम्मकभोगखिदीए बहुमज्झेणं पयादि पुव्वमुही। पविसेदि लवणजलहिं परिवारतरंगिणीहिं जुदा।।२३४९।।

किन्नरदेवों के युगलों से संकीर्ण **जिनेन्द्रपुर** हैं।।१७६४।। तिगिंछ तालाब के ईशानदिशाभाग में सुन्दर निषध नामक कूट, पश्चिमोत्तरकोण में ऐरावतकूट और उत्तरदिशा भाग में श्रीसंचय नामक कूट है। इन कूटों से निषधपर्वत 'पंचशिखरी' इस प्रकार प्रसिद्ध है।।१७६५-१७६७।। ये कूट उत्तम वेदिकाओं से सहित और व्यन्तरनगरों से अतिशय रमणीय है। उत्तरपार्श्वभाग में **जल में जिनकूट** है।।१७६८।। तिगिंछ तालाब के जल में श्रीनिचय, वैडूर्य, अंकमय, अंबरीक (अच्छरीय = आश्चर्य), रुचक, शिखरी और उत्पल कूट स्थित हैं।।१७६९।।

पुण्डरीक सरोवर में कमलों में जिनमंदिर

रुक्मिपर्वत के ऊपर बहुमध्यभाग में फूले हुए प्रचुर कमलों से संयुक्त तिगिंछद्रह के समान प्रमाण वाला पुण्डरीक द्रह है।।२३४४।। उस द्रहसम्बन्धी कमल-भवन में बुद्धि नामक देवी निवास करती है। इसका परिवार कीर्तिदेवी की अपेक्षा आधा है।।२३४५।। अनुपम लावण्यमय शरीर से संयुक्त, उत्तम रत्नों के भूषणों से रमणीय और विविध प्रकार के विनोद से क्रीड़ा करने वाली वह ईशानेन्द्र की देवी है।।२३४६।। उस द्रह के दक्षिण तोरणद्वार से निर्गत नारी नदी स्तोकमुखी (अल्प-विस्तार) होकर नारी नामक कुण्ड में गिरती है।।२३४७।। पश्चात् वह कुण्ड के दक्षिण तोरणद्वार से निकलकर दक्षिणमुख होती हुई नाभिगिरि को पाकर और उसे हरित् नदी के समान ही प्रदक्षिण करके रम्यक भोगभूमि के बहुमध्य भाग में से पूर्व की ओर जाती हुई परिवार नदियों से युक्त होकर लवणसमुद्र में प्रवेश करती है।।२३४८-२३४९।।

---

१. तिलोयपण्णत्ति अधिकार-४, पृ. ४३९।

नीलगिरि के केसरी सरोवर में कमलों में जिनमंदिर

उवरिम्मि णीलगिरिणो केसरिणामद्दहम्मि दिव्वम्मि। चेट्ठेदि कमलभवणे देवी कित्ति त्ति विक्खादा[१]।।२३३२।।
धिदिदेवीय समाणो तीए सोहेदि सव्वपरिवारो। दसचावाणिं तुंगा णिरुवमलावण्णसंपुण्णा।।२३३३।।
आदिमसंठाणजुदा वररयणविभूसणेहिं विविहेहिं। सोहिदसुंदरमुत्ती ईसाणिंदस्स सा देवी[१]।।२३३४।।

महापुण्डरीक सरोवर के कमलों में जिनमंदिर

महपुंडरीयणामा दिब्वदहो सिहरिसेलसिहरम्मि। पउमद्दहसारिच्छा वेदीपहुदेहिं कयसोहा[२]।।२३६०।।
तस्स सयवत्तभवणे लच्छियणामेण णिवसदे देवी। सिरिदेवीए सरिसा ईसाणिंदस्स सा देवी।।२३६१।।

नीलगिरि के केसरी सरोवर में कमलों में जिनमंदिर

नीलगिरि के ऊपर स्थित केसरी नामक दिव्य द्रह के मध्य में रहने वाले कमल-भवन पर कीर्ति नाम से विख्यात देवी स्थित है।।२३३२।। उस देवी का सब परिवार धृतिदेवी के समान ही शोभित है। यह देवी दश धनुष ऊँची और अनुपम लावण्य से परिपूर्ण है।।२३३३।। आदिम संस्थान अर्थात् समचतुरस्र संस्थान से सहित, विविध प्रकार के उत्तम रत्नों के भूषणों से सुशोभित सुन्दरमूर्ति वह ईशानेन्द्र की देवी है।।२३३४।।

महापुण्डरीक सरोवर के कमलों में जिनमंदिर

इस शिखरी शैल के शिखर पर पद्मद्रह के सदृश वेदी आदि से शोभायमान महापुण्डरीक नामक दिव्य द्रह है।।२३६०।। इस तालाब के कमल भवन में श्रीदेवी के सदृश जो लक्ष्मी नामक देवी निवास करती है, वह ईशानेन्द्र की देवी है।।२३६१।।

सात शतक मुनि वंदना

हस्तिनापुरि में श्री अकंपनाचार्य आदि मुनिगण आये।
बलि ने उपसर्ग किया इन पर तब विष्णु कुमार मुनि आये।।
इन सात शतक मुनियों का मुनि उपसर्ग दूर कर हर्षाये।
आचार्य प्रवर को सब मुनिवर को नमन करें हम गुण गायें।।1।।

-गणिनी ज्ञानमती

---

१. तिलोयपण्णत्ति अधिकार-४, पृ. ४३७, ४३८। २. तिलोयपण्णत्ति अधिकार-४, पृ. ४४०।

सीता-सीतोदा के सरोवरों में जिनमंदिर

(त्रिलोकसार से)

णीलुत्तरकुरुचंदा एरावदमल्लवंतणिसहा य। देवकुरुसूरसुलसाविज्जू सीददुगदहणामा[1]।।६५७।।

नीलोत्तर कुरुचन्द्रा ऐरावत माल्यवन्तौ निषधश्च। देवकुरुसूरसुलसविद्युतः सीताद्विकछदनामानि।।६५७।।

णीलु। नीलोत्तरकुरुचन्द्रैरावतमाल्यवन्त इत्येताः पञ्च निषधदेवकुरुसूरसुल-सविद्युतः इत्येताः पञ्च सीतासीतोदयोः ह्रदनामानि।।६५७।।

णइणिग्गम्मदारजुदा ते तप्परिवारवण्णणं चेसिं। पउमव्व कमलगेहे णागकुमारीउ णिवसंति।।६५८।।

नदीनिर्गमद्वारयुतानि तानि तत्परिवारवर्णनं चैषां। पद्ममिव कमलगेहेषु नागकुमार्यो निवसन्ति।।६५८।।

णइ। तानि सरांसि नदीप्रवेशनिर्गमद्वारयुतानि। एतेषां तत्परिवारवर्णनं च पद्मसर इव तत्रस्थकमलोपरिमगृहेषु सपरिवाराः नागकुमार्यो निवसन्ति।।६५८।।

दुतडे पण पण कंचणसेला सयसयतदद्धमुदयतियं। ते दहमुहा णगक्खा सुरा वसंतीह सुगवण्णा।।६५९।।

द्वितटे पञ्च पञ्च काञ्चनशैलाः शतशततदर्धमुदयत्रयम्। ते ह्रदमुखा नगाख्याः सुरा वसन्ति इह शुकवर्णाः।।६५९।।

दुतडे। तेषां सरसां द्वितटे पञ्च पञ्च काञ्चनशैलाः तेषामुदयभूमुखव्यासा यथासंख्यं शत १०० शत १०० पञ्चाश ५० द्योजनानि च शैला ह्रदसम्मुखाः। कथमेतत्। तदुपरिस्थनगरद्वाराणां ह्रदाभिमुखत्वात्। शुकवर्णास्तत्तन्नगाख्याः सुरास्तेषामुपरि वसन्ति।।६५९।।

सीता-सीतोदा के सरोवरों में जिनमंदिर

(त्रिलोकसार से)

गाथार्थ—नील, उत्तरकुरु, चन्द्र, ऐरावत और माल्यवन्त ये पाँच द्रह सीता नदी के हैं तथा निषध, देवकुरु, सूर, सुलस और विद्युत ये पाँच सीतोदा नदी के द्रहों के नाम हैं।।६५७।।

गाथार्थ—ये सभी सरोवर नदी के प्रवेश एवं निर्गम द्वारों से सहित हैं तथा **इन सरोवरों के परिवार आदि कमलों का वर्णन पद्मद्रह के सदृश ही है किन्तु सरोवर स्थित कमलों के गृहों में नागकुमारी देवियाँ निवास करती हैं।**।६५८।।

विशेषार्थ—दोनों नदियों के प्रवाह के बीच में सरोवर हैं और इन सरोवरों की वेदिकाएँ हैं, जो नदी के प्रवेश और निर्गम द्वारों से युक्त हैं। **इन सरोवरों के परिवार कमलों का वर्णन पद्मद्रह के परिवार कमलों के सदृश** ही है। विशेषता केवल इतनी है कि इन कमलों पर स्थित गृहों में नागकुमारी देवियाँ सपरिवार निवास करती हैं।

गाथार्थ—उन सरोवरों के दोनों तटों पर पाँच-पाँच काञ्चन पर्वत हैं जिनका उदय, भूव्यास और मुखव्यास क्रमशः सौ योजन, सौ योजन और पचास योजन प्रमाण है। ये सभी पर्वत ह्रदाभिमुख अर्थात् ह्रदों के सम्मुख हैं। इन पर्वतों के शिखरों पर पर्वत सदृश नाम एवं शुक सदृश कान्ति वाले देव निवास करते हैं।।६५९।।

---

१. त्रिलोकसार पृ० ५४१-५४२।

हिमवन आदि कुलाचलों पर स्थित सरोवरों के नाम

इदानीं हिमवदादिकुलपर्वतानामुपरिस्थितह्लदानां नामान्याह—

पउममहापउमा तिगिंछा केसरि महादिपुंडरिया। पुंडरिया य दहाओ उवरिं अणुपव्वदायामा[१]।।५६७।।

पद्मो महापद्मः तिगिञ्छः ह्रदा केसरिः महादिपुण्डरीकः। पुण्डरीकश्च ह्रदा उपरि अनुपर्वतायामाः।।५६७।।

पउम। पद्मो महापद्मस्तिगिञ्छः केसरी महापुण्डरीकः पुण्डरीक इत्येते ह्रदास्तेषामुपरि पर्वतानुवर्त्यायामास्तिष्ठन्ति।।५६७।।

अथ तेषां ह्रदानां व्यासादिकं प्रतिपादयन्-तत्रस्थाम्बुजानां स्वरूपं निरूपयति—

वासायामोगाढं पणदासदसमहदपव्वदुदयं खु। कमलस्सुदओ वासो दोविय गाहस्स दसभागो।।५६८।।

व्यासायामागाधाः पञ्चदशदशमहतपर्वतोदयाः खलु। कमलस्योदयः व्यासः द्वावपि गाधस्य दशभागौ।।५६८।।

वासा। तेषां ह्रदानां व्यासायामागाधा यथासंख्यं पञ्चगुणितदशगुणितदशमभाग हततत्तत्पर्वतोदयाः १००। २००। ४००। ४००। २००। १०० खलु। व्या० ५०० = आ० १००० वे १० तत्रस्थकमलस्योदयव्यासौ तु द्वावपि तत्तद्ध्रदानां गाधदशमभागौ ज्ञातव्यौ।।५६८।।

हिमवन आदि कुलाचलों पर स्थित सरोवरों के नाम

हिमवत् आदि कुलाचलों पर स्थित सरोवरों के नाम कहते हैं—

गाथार्थ—हिमवत् आदि पर्वतों पर क्रमशः पद्म, महापद्म, तिगिञ्छ, केसरी, महापुण्डरीक और पुण्डरीक ये छह सरोवर पर्वतों के सदृश हीनाधिक आयाम वाले हैं।।५६७।।

उन सरोवरों के व्यासादिक का प्रतिपादन करते हुए वहाँ स्थित कमलों का स्वरूप कहते हैं—

गाथार्थ—पर्वतों के (अपने-अपने) उदय (ऊँचाई) को पाँच से गुणित करने पर द्रहों का व्यास, दस से गुणित करने पर द्रहों का आयाम और दस से भाजित करने पर द्रहों की गहराई प्राप्त होती है। द्रहों में रहने वाले कमलों का व्यास एवं उदय ये दोनों भी द्रहों की गहराई के दसवें भाग प्रमाण हैं।।५६८।।

विशेषार्थ—उन सरोवरों का व्यास, आयाम और गहराई का प्रमाण अपने-अपने पर्वतों की ऊँचाई के प्रमाण को क्रमशः ५ और १० से गुणित करने पर तथा १० से भाजित करने पर प्राप्त होता है तथा सरोवरों में स्थित कमलों का व्यास और उदय भी सरोवरों की गहराई के दशवें भाग प्रमाण है यथा—हिमवान् पर्वत की ऊँचाई १०० योजन है अतः उस पर स्थित पद्मद्रह की लम्बाई (१०० × १०) = १००० योजन, चौड़ाई (१०० × ५) = ५०० योजन और गहराई (१०० ÷ १०) = १० योजन प्रमाण है। इस पद्मद्रह में रहने वाले कमल की ऊँचाई एवं चौड़ाई दोनों (१० ÷ १०)= एक-एक योजन प्रमाण है। (२) महाहिमवान् पर्वत की ऊँचाई २०० योजन है अतः उस पर स्थित महापद्म सरोवर की लम्बाई (२०० ÷ १०) = २० योजन, प्रमाण है। इस द्रह में रहने वाले कमल की ऊँचाई और व्यास दोनों (२० ÷ १०) = २-२ योजन प्रमाण है। निषध पर्वत की ऊँचाई ४०० योजन है अतः उस पर रहने वाले तिगिञ्छ द्रह की लम्बाई (४०० × १०) = ४००० योजन चौड़ाई (४०० × ५) = २००० योजन और गहराई (४०० ÷ १०) = ४० योजन प्रमाण है। इसमें स्थित कमल की ऊँचाई और

---

१. त्रिलोकसार पृ० ४८२ से ४८७ तक।

कमलों का वर्णन

अथ तेषां कमलानां विशेषस्वरूपं गाथाद्वयेनाह—

णियगंधवासियदिसं वेलुरियविणिम्मिउच्चणालजुदं। एक्कारसहस्सदलं णववियसियमत्थि दहमज्झे।।५६९।।

निजगन्धवासितदिशं वैडूर्यविनिर्मितोच्चनालयुतम्। एकादशसहस्रदलं नवविकसितमस्ति ह्रदमध्ये।।५६९।।

णिय। निजगन्धवासितदिशं वैडूर्यविनिर्मितोच्चनालयुतं एकादशोत्तरसहस्रदलं नवविकसितं पृथ्वीसाररूपं कमलं तेषां ह्रदानां मध्ये अस्ति।।५६९।।

कमलदलजलविणिग्गयतुरियुदयं वास कण्णियं तत्थ।
सिरिरयणगिहं दिग्घति कोसं तस्सद्धमुभयजोगदलं।।५७१।।

कमलदलजलविनिर्गततुर्योदयः व्यासः कर्णिकायाः तत्र। श्रीरत्नगृहं दैर्घ्यत्रिकं क्रोशः तस्यार्धमुभययोगदलं।।५७१।।

व्यास दोनों (४०÷१०) = ४-४ योजन प्रमाण है।

कुलाचलों का उदय एवं सरोवरों के व्यास आदि का प्रमाण—

क्रमांक	कुलाचल	ऊँचाई		सरोवर	लम्बाई		चौड़ाई		गहराई	
		योजन	मीलों में		योजन	मीलों में	योजन	मीलों में	योजन	मीलों में
१	हिम.	१००	४०००००	पद्म	१०००	४००००००	५००	२००००००	१०	४००००
२	महा.	२००	८०००००	महापद्म	२०००	८००००००	१०००	४००००००	२०	८००००
३	निषध	४००	१६००००	तिगिञ्छ	४०००	१६०००००००	२०००	८००००००	४०	१६००००
४	नील	४००	१६०००००००	केशरी	४०००	१६०००००००	२०००	८००००००	४०	१६००००
५	रुक्मी	२००	८०००००	महापुण्डरीक	२०००	८००००००	१०००	४००००००	२०	८००००
६	शिखरिन्	१००	४०००००	पुण्डरीक	१०००	४००००००	५००	२००००००	१०	४०००००

कमलों का वर्णन

दो गाथाओं द्वारा उन कमलों के विशेष स्वरूप को कहते हैं—

गाथार्थ—अपनी सुगन्ध से सुवासित की हैं दिशाएँ जिसने तथा जो वैडूर्यमणि से निर्मित ऊँची नाल से संयुक्त है ऐसा एक हजार ग्यारह पत्रों से युक्त नवविकसित कमल के सदृश पृथ्वीकायिक कमल सरोवर के मध्य में है।।५६९।।

विशेषार्थ—प्रथम पद्म सरोवर के मध्य में जो कमल है वह पृथ्वीस्वरूप है, उसकी नाल ऊँची और वैडूर्यमणि से बनी हुई है। उसके पत्रों की संख्या १०११ है और उसका आकार नवविकसित कमल के सदृश है।

गाथार्थ—कमल का अर्ध उत्सेध जल के बाहर निकला हुआ है। कमल की कर्णिका की ऊँचाई और चौड़ाई कमल के उदय और व्यास का चतुर्थांश है। उस कर्णिका पर श्रीदेवी का रत्नमय गृह है, उसकी दीर्घता, व्यास और उदय ये तीनों क्रमशः एक कोश, अर्ध कोश और दोनों के योग का अर्धभाग अर्थात् (१ + १/२ = ३/२ ÷ २) = पौन कोश प्रमाण है।।५७१।।

कमल। कमलोत्सेधार्धमेव नालस्य जलविनिर्गतिः कमलचतुर्थांश एव उदयव्यासौ कर्णिकायाः। तत्र श्रीदेवतायाः रत्नमयं गृहमस्ति तस्य दैर्घ्यत्रिकं दैर्घ्यव्यासोदयाः यथासंख्यं क्रोशप्रमाणं तस्यार्धं तयोरुभययोर्योगार्धं च स्यात्।।५७१।।

अथ एतदनुगुणं प्रक्षेपगाथामाह—

दहमज्झे अरविंदयणालं बादालकोसमुव्विद्धं। इगिकोसं बाहल्लं तस्स मुणालं ति रजदमयं।।५७०।।

हृदमध्ये अरविन्दकनालं द्वाचत्वारिंशत्क्रोशोत्सेधम्। एकक्रोशं बाहल्यं तस्य मृणालं त्रिः रजतमयम्।।५७०।।

दह। हृदमध्येरविन्दस्य नालं द्वाचत्वारिंशत्क्रोशोत्सेधं एकक्रोशबाहल्यं तस्य मृणालं तु त्रिक्रोशबाहल्यं रजतमयं स्यात्।।५७०।।

विशेषार्थ—कमल के उत्सेध का अर्ध प्रमाण अर्थात् १/२ योजन नाल जल से ऊपर निकली हुई है। कर्णिका का उदय और व्यास कमल के उदय और व्यास का चतुर्थांश है अर्थात् कमल का उदय और व्यास एक-एक योजन प्रमाण है अतः कर्णिका का उदय और व्यास (१ ÷ ४) = १/४ = एक-एक कोश प्रमाण है। इसी कर्णिका पर श्रीदेवी का रत्नमय गृह है जिसकी लम्बाई एक कोश, चौड़ाई १/२ कोश और ऊँचाई ३/४ (पौन) कोश प्रमाण है।

कमल का विस्तार बताने वाली प्रक्षेप गाथा—

गाथार्थ—पद्मद्रह के मध्य में कमलनाल की ऊँचाई ४२ कोस और मोटाई एक कोस प्रमाण है। उसका मृणाल तीन कोस मोटा और रजतवर्ण का है।।५७०।।

विशेष—पद्मद्रह की गहराई १० योजन है। गाथा ५७० में कहा गया है कि कमलनाल जल से अर्ध योजन प्रमाण ऊपर है, इसी से यह सिद्ध होता है कि कमल नाल की कुल ऊँचाई १०-१/२ योजन है, तभी तो वह सरोवर की १० योजन की गहराई को पार करती हुई आधा योजन जल से ऊपर है। यही बात प्रक्षेप गाथा (५७०) कह रही है। इस गाथा में नाल की ऊँचाई ४२ कोश कही गई है जिसके १०-१/२ योजन होते हैं।

कमल, कमलनाल एवं कमलकर्णिका का उत्सेधादि—

क्रमांक	सरोवरों के कमल	कमलों का		नाल		कर्णिका का		मृणाल का बाहुल्य
		उत्सेध	व्यास	जलमग्न	जल के ऊपर	उत्सेध	व्यास	
१	पद्म द्रह का कमल	१ योजन	१ योजन	१० योजन	१/२ योजन	१ कोश	१ कोश	३ कोश
२	महापद्म द्रह का ,,	२ योजन	२ योजन	२० योजन	१ योजन	२ कोश	२ कोश	६ कोश
३	तिगिञ्छ ,, ,, ,,	४ योजन	४ योजन	४० योजन	२ योजन	४ कोश	४ कोश	१२ कोश
४	केसरी ,, ,, ,,	४ योजन	४ योजन	४० योजन	२ योजन	४ कोश	१ कोश	१२ कोश
५	महापुण्डरीक ,, ,,	२ योजन	२ योजन	२० योजन	१ योजन	२ कोश	२ कोश	६ कोश
६	पुण्डरीक ,, ,,	१ योजन	१ योजन	१० योजन	१/२ योजन	१ को	१ कोश	३ कोश

कमलों पर निवास करने वाली देवियाँ एवं परिवार कमल की संख्या

अथ तन्निवासिनीनां देवीनां नामानि तासां स्थितिपूर्वकं तत्परिवारं चाह—

सिरिहिरिधिदिकित्तीवि य बुद्धीलच्छी य पल्लठिदिगाओ।
लक्खं चत्तसहस्सं सयदहपण पउमपरिवारा।।५७२।।

श्री ह्री धृतिः कीर्तिः अपि च बुद्धिः लक्ष्मीः च पल्यस्थितिकाः। लक्षं चत्वारिंशत्सहस्रं शतदशपञ्च पद्मपरिवारः।।५७२।।

सिरि।श्रीह्रीधृतिकीर्तिबुद्धिलक्ष्म्याख्या देव्यः पल्यस्थितिकाः एकं लक्षं चत्वारिंशत्सहस्राणि शतं दश पञ्च प्रमाणानि कमलस्य परिवारपद्मानि १४०११५।।५७२।।

पद्मसरोवर में प्रत्येक कमल में जिनमंदिर हैं

(जंबूद्वीवपण्णत्ति से)

वरकण्णिया दुकोसा कोसपमाणा हवंति तह पत्ता। णालाण रुंद कोसा दसजोयण सहिया दीहा[१] ।।१२५।।
वेरुलियरयणणाला कंचणवरकण्णिया य णायव्वा। विद्दुमपत्तेयारससहस्सगुणिदा समुद्दिट्ठा।।१२६।।
दिव्वामोदसुगंधा णववियसियपउमकुसुमसंकासा। पउम त्ति तेण णामा जिणिंदइंदेहिं णिद्दिट्ठा।।१२७।।
एयं च सयसहस्सं चालीसा तह सहस्ससंगुणिदा। एयं च सयं सोलस पउमाणं होंति परिसंखा।।१२८।।
सत्तेव सयसहस्सा पंचसया तह असीदा य। पंचण्हं तु दुहाणं परिमाणं हुंति पउमाणं।।१२९।।

कमलों पर निवास करने वाली देवियाँ एवं परिवार कमल की संख्या

कमलों पर निवास करने वाली देवियों के नाम, आयु और उनके परिवार के सम्बन्ध में कहते हैं—

गाथार्थ—श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि और लक्ष्मी ये छहों देवाङ्गनाएँ (देवियाँ) एक-एक पल्य की आयु वाली हैं। ये देवांगनाएँ पद्मादि द्रह सम्बन्धी कमलों पर निवास करती हैं। **उन्हीं पद्मादि द्रहों में एक-एक कमल के १, ४०, ११५ परिवार कमल हैं।**

पद्मसरोवर में प्रत्येक कमल में जिनमंदिर हैं

(जंबूद्वीपपण्णत्ति से)

इनकी उत्तम कर्णिका दो कोश और पत्र एक कोश प्रमाण हैं। नालों का विस्तार एक कोश और दीर्घता दश योजन से अधिक है।।१२५।। इनके नाल वैडूर्यमणिमय और कर्णिकाएँ सुवर्णमय जानना चाहिए। उनके विद्रुममय पत्ते ग्यारह हजार कहे गए हैं।।१२६।। चूँकि उक्त (पार्थिव) कमल दिव्य आमोद से सुगंधित और नवीन विकसित पद्म कुसुम के सदृश हैं इसीलिए जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा इनके नाम पद्म निर्दिष्ट किए गए हैं।।१२७।। पद्मों की संख्या एक लाख चालीस हजार एक सौ सोलह (१,४०,११६) है।।१२८।।

पाँचों द्रहों के कमलो का प्रमाण सात लाख पाँच सौ अस्सी (१,४०,११६ × ५ = ७,००,५८०) है।।१२९।।

---

१. जम्बूद्वीवपण्णत्ति अधिकार–६, पृ. ११२।

जिणइंदवरगुरूणं सुरिंदवरधिट्ठमउडचलणाणं। रयणमया वरपडिमा पउमिणिपुप्फेसु णिद्दिट्ठा।।१३०।।
तेसु पउमेसु णेयं कंचणमणिरयणसंधैसंछण्णा। लंबंतकुसुममाला कालागरुकुसुमगंधड्ढा।।१३१।।
धुव्वंतधयवडाया मुत्तादामेहिं सोहिया रम्मा। गोउरकबाडजुत्ता मणिवेदिविहूसिया दिव्वा।।१३२।।
गाउअदलविक्खंभा गाउवदीहा दहाण पउमेसु। गाउयवउभागूणा उत्तुंगा होंति पासादा।।१३३।।
णिसधकुमारी णेया तह चेव य देवकुरुकुमारी य। सूरकुमारी सुलसा विज्जुप्पह तह कुमारी य।।१३४।।

सीता-सीतोदा नदी के सरोवरों में कमलों में जिनमंदिर

अरहंताणं पडिमा पंचधणुस्सयसमुच्छिदा दिव्वा। पलियंकासणबद्धा णाणामणिरयणपरिणामा[१]।।११३।।
लक्खणवंजणकलिया संपुण्णमियंकसोम्ममुहकमला। उदयक्कमंडलणिभा विबुद्धसवत्तकरकमला।।११४।।
आरत्तकमलचरणा भिण्णंजणसंणिहा हवे केसा। आरत्तकमलणेत्ता विद्दुमसमतेयवरअहरा।।११५।।
सीहासणछत्तत्तयभामंडलधवलचामराजुत्ता। मणिकंचणरयणमया पासादवरेसु ते होंति।।११६।।
चित्तविचित्तकुमारा ते देवा होंति तेसु सेलेसु। भोगोवभोगजुत्ता बहुअच्छरपरिउडा धीरा।।११७।।
उत्तरदिसाविभागं गंतूणं जोयणाणि पंचसदा। जमगेहिंतो परदो महादहा होंति सरिमज्झे।।११८।।

पद्मिनी पुष्पों पर, जिनके चरणों में श्रेष्ठ सुरेन्द्रों ने अपने मुकुट को घिसा है अर्थात् नमस्कार किया है, ऐसी श्रेष्ठ जिनेन्द्रदेव की रत्नमय उत्तम प्रतिमाएँ निर्दिष्ट की गई हैं।।१३०।। द्रहों के उन कमलों पर सुवर्ण, मणि एवं रत्नों के समूह से व्याप्त, लटकती हुई कुसुममालाओं से सहित, कालागरु व कुसुमों की गन्ध से युक्त, फहराती हुई ध्वजा-पताकाओं से संयुक्त, मुक्तामालाओं से शोभित, रमणीय, गोपुरकपाटों (गोपुरद्वारों) से युक्त मणिमय वेदियों से विभूषित, दिव्य, अर्ध कोश विस्तृत, एक कोश दीर्घ और चतुर्थ भाग से हीन एक (३/४) कोश ऊँचे प्रासाद हैं।।१३१-१३३।।

निषधकुमारी, देवकुरुकुमारी, सूरकुमारी, सुलसाकुमारी तथा विद्युत्प्रभकुमारी नामक ये नागकुमारों की उत्तम कुमारियाँ हैं।।१३४।।

सीता-सीतोदा नदी के सरोवरों में कमलों में जिनमंदिर

उन श्रेष्ठ प्रासादों में पाँच सौ धनुष ऊँची दिव्य पल्यंकासन से युक्त, नाना मणियों एव रत्नों के परिणाम रूप, लक्षण एवं व्यंजनों से सहित, सम्पूर्ण चन्द्र के समान सौम्य मुख-कमलवाली, उदयकालीन सूर्यमण्डल के सदृश, विकसित कमल के समान कर-कमलों से संयुक्त, किंचित् लाल कमल के समान चरणों वाली, भिन्न अंजन के सदृश केशों से संयुक्त, किंचित् लाल कमल के समान नेत्रों से सहित, विद्रुम के समान कान्ति वाले उत्तम अधरोष्ठों से विभूषित तथा सिंहासन, तीन छत्र, भामण्डल एवं धवल चामरों से युक्त; ऐसी मणि, सुवर्ण एवं रत्नों के परिणामरूप अरहन्तों की प्रतिमायें हैं।।११३-११६।। उन शैलों पर भोगोपभोग से युक्त और बहुत अप्सराओं से वेष्टित वे धैर्यशाली चित्रकुमार और विचित्रकुमार देव रहते हैं।।११७।। यमक पर्वतों से आगे उत्तर दिशाविभाग में पाँच सौ योजन जाकर सीता नदी के मध्य में पाँच महाद्रह हैं।।११८।। उत्तम वेदियों से युक्त,

---

१. जम्बूद्वीवपण्णत्ति अधिकार-६ पृ. १११ से ११३ तक।

वरवेदिएहिं जुत्ता तोरणदारेहि मंडिया दिव्वा। अक्खयअगाहतोया पंचेव य होंति णायव्वा।।११९।।
एक्केक्काणं अंतर पंचेव हवंति जोयणसयाणि। तेवीसा बादाला बे चेव कला य मेरुस्स।।१२०।।
तेसीदा बादाला बे चेव कला य होइ परिमाणं। दहमेरूणं अंतर णादव्वं होइ जिणदिट्ठं।।१२१।।
पुव्वावरवित्थिण्णा पंचेव हवंति जोयणसयाणि। उत्तरदक्खिणभागे सहस्समेयं वियाणाहि।।१२२।।
पायालम्मि पइट्ठे दसजोयण वण्णिया समासेण। पप्फुल्लकमलकुवलयणीलुप्पलकुमुदसंछण्णा।।१२३।।
तेसु वरपउमपुप्फा विक्खंभायाम जोयणपमाणा। बाहल्लेण य कोसा जलादु बे उण्णया कोसा।।१२४।।
वरकण्णिया दुकोसा कोसपमाणा हवंति तह पत्ता। णालाण रुंद कोसा दसजोयण साहिया दीहा।।१२५।।
वेरुलियरयणणाला कंचणवरकण्णिया य णायव्वा। विद्दुमपत्तेयारससहस्सगुणिदा समुद्दिट्ठा।।१२६।।
दिव्वामोदसुगंधा णववियसियपउमकुसुमसंकासा। पउम त्ति तेण णामा जिणिंदइंदेहिं णिद्दिट्ठा।।१२७।।
एयं च सयसहस्सं चालीसा तह सहस्ससंगुणिदा। एयं च सयं सोलस पउमाणं होंति परिसंखा।।१२८।।
सत्तेव सयसहस्सा पंचसया तह असीदा य। पंचण्हं तु दहाणं परिमाणं हुंति पउमाणं।।१२९।।
जिणइंदवरगुरूणं सुरिंदवरघिट्ठमउडचलणाणं। रयणमया वरपडिमा पउमिणिपुप्फेसु णिद्दिट्ठा।।१३०।।
तेसु पउमेसु णेयं कंचणमणिरयणसंवैसंछण्णा। लंबंतकुसुममाला कालागरुकुसुमगंधड्ढा।।१३१।।
धुव्वंतधयवडाया मुत्तादामेहिं सोहिया रम्मा। गोउरकबाडजुत्ता मणिवेदिविहूसिया दिव्वा।।१३२।।

तोरणद्वारों से मण्डित दिव्य और अक्षय अगाध जल से परिपूर्ण वे द्रह पाँच ही होते हैं, ऐसा जानना चाहिए।।११९।। एक-एक द्रह का अन्तर पाँच सौ योजन है। तेईस ब्यालीस व दो कला मेरु का है।।१२०।। तेरासी ब्यालीस व दो कला प्रमाण, यह जिन भगवान के द्वारा देखा गया द्रह और मेरु का अन्तर जानना चाहिए।।१२१।। उक्त द्रह पूर्व-पश्चिम में पाँच सौ योजन प्रमाण विस्तीर्ण हैं। उत्तर-दक्षिण भाग में इनका विस्तार एक हजार योजन प्रमाण जानना चाहिए।।१२२।। प्रफुल्लित कमल, कुवलय, नीलोत्पल और कुमुदों से व्याप्त वे द्रह पाताल में प्रविष्ट होने पर दश योजन अवगाह से युक्त हैं। इस प्रकार संक्षेप से उनका वर्णन किया गया है।।१२३।। उनमें एक योजन प्रमाण विष्कम्भ व आयाम तथा एक कोश बाहल्य से सहित और जल से दो कोश ऊँचे उत्तम कमल पुष्प हैं।।१२४।।

इनकी उत्तम कर्णिका दो कोश और पत्र एक कोश प्रमाण हैं। नालों का विस्तार एक कोश और दीर्घता दश योजन से अधिक है।।१२५।। इनके नाल वैडूर्यमणिमय और कर्णिकाएँ सुवर्णमय जानना चाहिए। उनके विद्रुममय पत्ते ग्यारह हजार कहे गये हैं।।१२६।।

चूँकि उक्त (पार्थिव) कमल दिव्य आमोद से सुगंधित और नवीन विकसित पद्म कुसुम के सदृश हैं, इसीलिए जिनेन्द्र भगवान के द्वारा इनके नाम पद्म निर्दिष्ट किये गये हैं।।१२७।। पद्मों की संख्या एक लाख चालीस हजार एक सौ सोलह (१४०११६) है।।१२८।।

पाँचों द्रहों के कमलों का प्रमाण सात लाख पाँच सौ अस्सी (१४०११६× ५=७००५८०) है।।१२९।। पद्मिनि पुष्पों पर, जिनके चरणों में श्रेष्ठ सुरेन्द्रों ने अपने मुकुट को घिसा है अर्थात् नमस्कार किया है, ऐसी श्रेष्ठ जिनेन्द्र गुरुओं की रत्नमय उत्तम प्रतिमाएँ निर्दिष्ट की गई हैं।।१३०।।

द्रहों के उन कमलों पर सुवर्ण, मणि एवं रत्नों के समूह से व्याप्त, लटकती हुई कुसुममालाओं से सहित, कालागरु व कुसुमों की गंध से युक्त, फहराती हुई ध्वजा-पताकाओं से संयुक्त, मुक्तामालाओं से शोभित, रमणीय, गोपुर कपाटों (गोपुरद्वारों) से युक्त, मणिमय वेदियों से विभूषित, दिव्य, अर्ध कोश विस्तृत, एक कोश दीर्घ और

गाउअदलविक्खंभा गाउवदीहा दहाण पउमेसु। गाउयवउभागूणा उत्तुंगा होंति पासादा।।१३३।।
णिसधकुमारी णेया तह चेव य देवकुरुकुमारी य। सूरकुमारी सुलसा विज्जुप्पह तह कुमारी य।।१३४।।
एदाओ णामाओ णागकुमाराण वरकुमारीओ। एगपल्लाउगाओ दसधणुउत्तुंगदेहाओ।।१३५।।
णिच्चं कुमारियाओ आहिणवलावण्णरूवजुत्ताओ। आहरणभूसियाओ मिदुकोमलसहुरवयणाओ।।१३६।।
तेसु भवणेसु णेया देवीओ होंति चारुरूवाओ। धम्मेणुप्पण्णाओ विसुद्धसीलस्सभावाओ।।१३७।।
देवीण तिण्णि परिसा सत्ताणीया हवंति णायव्वा। तह आदरक्खअसुरा सामाणीया य सुरसंघा।।१३८।।
तिण्णेव य परिसाणं धूमदिसे सीहसाणभागेसु। होंति भवणाणि णेया पफुल्लपउमेसु सव्वेसु।।१३९।।
बत्तीसा चालीसा अडदाला तह सहस्ससंगुणिदा। परिसंखा णिद्दिट्ठा समासदो ताण सव्वाणं।।१४०।।
धयसीहवसहगयवरदिसासु पउमाणि होंति रक्खाणं। पत्तेयं पत्तेयं चदुरो चदुरो सहस्साणि।।१४१।।
सामाणियाण वि तहा खरगजढंखेसु चदुसहस्साणि। सत्त पउमाणि णेया सत्ताणीयाण वसहम्मि।।१४२।।
धयधूमसिंहमंडलगोवइखरणागढंखआसासु। होंति पउमाणि णेया सदं च अट्ठाणि देवाणं।।१४३।।
एक्केक्काण दहाणं दोदोपासेसु पुव्वपच्छिमदो। कंचणसेला दस दस णायव्वा होंति रमणीया।।१४४।।

सीतोदा नदी के सरोवर में जिनमंदिर

सोमणसस्स य अवरे विज्जुप्पहणामयस्स पुव्वेण। मंदरदक्खिणपासे देवकुरू होइ णायव्वा[1]।।८१।।
एक्को य चित्तकूडो विचित्तकूडो य पव्वदो पवरो। एक्कं च कंचणसयं णियमा तत्थ दु मुणेयव्वा।।८२।।

चतुर्थ भाग से हीन एक (३/४) कोश ऊँचे प्रासाद हैं।।१३१-१३३।। निषधकुमारी, देवकुरुकुमारी, सूरकुमारी, सुलसाकुमारी तथा विद्युत्प्रभकुमारी नामक ये नागकुमारों की उत्तम कुमारियाँ एक पल्य प्रमाण आयु वाली और दस धनुष उन्नत देह की धारक हैं।।१३४।। उन भवनों में सदा कुमारी रहने वाली ये देवियाँ अभिनव लावण्यमय रूप से संयुक्त, आभरणों से भूषित, मृदु, कोमल एवं मधुर वचनों को बोलने वाली, सुन्दर रूप से सहित और विशुद्ध शील व स्वभाव से सम्पन्न होती हैं।।१३६-१३७।। इन देवियों के तीन पारिषद, सात अनीक तथा आत्मरक्षक देवों एवं सामानिक देवों के समूह होते हैं, ऐसा जानना चाहिए।।१३८।। तीनों पारिषद देवों के भवन आग्नेय, दक्षिण और ईशान भागों में स्थित सब विकसित पद्मों के ऊपर होते हैं।।१३९।। उन सबकी संख्या संक्षेप से क्रमशः बत्तीस हजार, चालीस हजार और अड़तालीस हजार निर्दिष्ट की गई है।।१४०।। ध्वजा, सिंह, वृषभ और गज दिशाओं (पूर्वादिक चारों) में से प्रत्येक दिशा में आत्मरक्षक देवों के चार-चार हजार कमल हैं।।१४१।। तथा सामानिक जाति के देवों के भी चार हजार कमल खर, गज और ढंख अर्थात् काक (ईशान, उत्तर व वायव्य) दिशाओं में है। सात अनीकों के सात कमल वृषभ (पश्चिम) दिशा में जानना चाहिए।।१४२।। ध्वजा, धूम, सिंह, मण्डल, गोपति (वृषभ), खर, नाग (गज) और ढंख (ध्वाङ्क्ष) इन आठ दिशाओं में (प्रतीहार, मंत्री व दूत) देवों के एक सौ आठ पद्म जानना चाहिए।।१४३।। प्रत्येक द्रह के पूर्व व पश्चिम दो-दो पार्श्वभागों में रमणीय दस-दस कंचन शैल जानना चाहिए।।१४४।।

सीतोदा नदी के सरोवर में जिनमंदिर

सौमनस के पश्चिम में विद्युत्प्रभ नामक गजदंत के पूर्व और मन्दरगिरि के दक्षिण-पार्श्व भाग में देवकुरु स्थित है।।८१।। वहाँ नियम से एक चित्रकूट व दूसरा विचित्रकूट ये दो श्रेष्ठ यमक पर्वत तथा एक सौ कंचन पर्वत

---

१. जम्बूद्वीवपण्णत्ति पृ. १०८।

णिसधद्दहो य पढमो देवकुरुदहो तहेव बिदिओ य। सूरद्दहो य णेया सुरसद्दह विज्जुतेओ य।।८३।।
पंचेव जोयणसदा वित्थिण्णा दस य होंति उव्वेधा। जोयणसहसायामा सव्वदहा होंति णायव्वा।।८४।।
सीतोदापणदीए तत्थ दहा पंच होति णायव्वा। मेरुस्स सामलीओ दक्खिणपच्छिमे होइ।।८५।।

सीता-सीतोदा नदी के २० सरोवरों में नागकुमारी देवियों के कमलों में जिनमंदिर

(लोकविभाग से)

दक्षिणापरतो मेरोः सीतोदापश्चिमे तटे। आसन्नं निषधस्यैव स्थलं रूप्यमयं शुभम[1]।।१४२।।
तत्र शाल्मलिराख्याता जम्बूसदृशवर्णना। तस्या दक्षिणशाखायां सिद्धायतनमुत्तमम्।।१४३।।
शेषासु दिक्षु वेश्मानि त्रीणि तत्र सुरावपि। वेणुश्च वेणुधारी च देवकुर्वधिवासिनौ।।१४४।।
नीलतो दक्षिणस्यां तु सहस्रे कूटयुग्मकम्। सीतायाः प्राक्तटे चित्रं विचित्रमपरे तटे।।१४५।।
।१०००।
निषधस्योत्तरस्यां च सीतोदायास्तटद्वये। पुरस्ताद्यमकं कूटं मेघकूटं तु पश्चिमम्।।१४६।।
सहस्रं विस्तृतं मूले मध्ये तत्तुर्यहीनकम्। शिखरेऽर्धसहस्रं तु सहस्रं शुद्धमुच्छ्रितम्।।१४७।।
।१०००। ७५०। ५००।

जानना चाहिए।।८२।। प्रथम निषध द्रह, द्वितीय देवकुरु द्रह, सूर द्रह, सुरस (सुलस) द्रह और विद्युत्तेज, ये पाँच द्रह जानना चाहिए। सब द्रह पाँच सौ योजन विस्तीर्ण, दश योजन उद्वेध से सहित और एक हजार योजन आयत जानना चाहिए।।८३-८४।। ये पाँच द्रह वहाँ सीतोदा के प्रणिधि भाग में जानना चाहिए। मेरु के दक्षिण-पश्चिम (नैऋत्य) में शाल्मलि वृक्ष है।।८५।।

सीता-सीतोदा के २० सरोवरों में नागकुमारी देवियों के कमलों में जिनमंदिर

(लोकविभाग से)

मेरु के दक्षिण-पश्चिम में सीतोदा के पश्चिम तट पर निषध पर्वत के समीप में उत्तम रजतमय स्थल है।।१४२।। वहाँ पर शाल्मलि वृक्ष का अवस्थान बतलाया गया है। उसका वर्णन जंबूवृक्ष के समान है। उसकी दक्षिण शाखा पर उत्तम सिद्धायतन है।।१४३।। शेष दिशागत शाखाओं पर तीन भवन हैं। उनमें देवकुरु अधिवासी वेणु और वेणुधारी देव रहते हैं।।१४४।। नील पर्वत से दक्षिण की ओर हजार (१०००) योजन जाकर सीता महानदी के पूर्व तट पर चित्र और पश्चिम तट पर विचित्र नामक दो कूट हैं।।१४५।। निषध पर्वत की उत्तर दिशा में भी सीतोदा महानदी के दोनों तटों में से पूर्व तट पर यमककूट और पश्चिम तट पर मेघकूट स्थित है।।१४६।। इन कूटों का विस्तार मूल में एक हजार (१०००) योजन, मध्य में उससे चतुर्थ भाग हीन अर्थात् साढ़े सात सौ (७५०) योजन और शिखर पर अर्ध सहस्र (५००) योजन प्रमाण है। ऊँचाई उनकी शुद्ध एक हजार योजन मात्र है।।१४७।। इस प्रकार महर्षिजन उक्त कूटों में से प्रत्येक कूट का प्रमाण बतलाते हैं। उनके ऊपर सदा सुखी रहने

---

१. लोकविभाग ग्रंथ, पृ. १७, १८, २१।

प्रमाणेनैवमेकैकं कूटमाहुर्महर्षयः। कूटसंज्ञासुरास्तत्र मोदन्ते सुखिनः सदा।।१४८।।

सार्धे सहस्रे नीलाद् द्वे नीलनामा ह्रदस्ततः। कुरुनामा च चन्द्रश्च तस्मादैरावतः परम्।।१४९।।

।२५००।

माल्यवान् दक्षिणो (णे) नद्यां सहस्रार्धान्तराश्च ते। पद्मह्रदसमा मानैरायता दक्षिणोत्तरम्।।१५०।।

।५००।

निषधादुत्तरस्यां च नद्यां तु निषधो ह्रदः। कुरुनामा च सूर्यश्च सुलसो विद्युदेव च्[१]।।१५१।

रत्नचित्रतटा वज्रमूलाश्च विपुला ह्रदाः। वसन्ति तेषु नागानां कुमार्यः पद्मवेश्मसु।।१५२।।

अर्धयोजनमुद्विद्धं योजनोच्छ्रयविस्तृतम्। पद्मं गव्यूतिविपुला कर्णिका तावदुच्छ्रिता।।१५३।।

चत्वारिंशच्छतं चैव सहस्राणामुदाहृतम्। शतं पञ्चदशाग्रं च परिवारोऽम्बुजस्य सः।।१५४।।

।१४०११५।

तटद्वये ह्रदानां च प्रत्येकं दशसंख्यकाः। काञ्चनाख्याचलाः सन्ति ते ह्रदाभिमुखस्थिताः।।१५५।।

उक्तं च - (ति. प. ४-२०४९)

एक्केक्कस्स दहस्स य पुव्वदिसाये य अवरदिब्भागे। दह दह कंचणसेला जोयणसयमेत्तउच्छेहा।।१।।

।१००।

शतं मूलेषु विपुला मध्ये पञ्चकृतेर्विना। त्वग्रे पञ्चाशतं रुन्द्राः शतोच्छ्रायाश्च ते समाः।।१५६।।

।१००। ७५। ५०। १००।

आक्रीडावासकेष्वेषां शिखरेषु शुकप्रभाः। देवा काञ्चनका नाम वसन्ति मुदिताः सदा।।१५७।।

वाले कूट नामधारी देव आनंदपूर्वक रहते हैं।।१४८।। नील पर्वत के दक्षिण में सार्ध दो हजार अर्थात् अढ़ाई हजार (२५००) योजन जाकर नील, कुरु, चन्द्र, उसके आगे ऐरावत और माल्यवान् ये पाँच द्रह सीता नदी के मध्य में हैं। **ये प्रमाण में पद्मद्रह के समान होते हुए दक्षिण-उत्तर आयत** हैं।।१५९-१५०।। निषध पर्वत के उत्तर में सीतोदा नदी के मध्य में निषध, कुरु, सूर्य, सुलस और विद्युत् नाम के पाँच द्रह हैं।१५१।। इन विशाल द्रहों के तट रत्नों से विचित्र हैं। मूल भाग इनका वज्रमय है। उनके भीतर पद्मभवनों में नागकुमारियाँ रहती हैं।।१५२।। जल से पद्म की ऊँचाई आधा योजन है। वह एक योजन ऊँचा और उतना ही विस्तृत है। उसकी कर्णिका का विस्तार एक कोस तथा ऊँचाई भी उतनी ही है।।१५३।। **उस पद्म के परिवार का प्रमाण एक लाख चालीस हजार एक सौ पन्द्रह (१,४०,११५) कहा गया** है।।१५४।। द्रहों के दोनों तटों में से प्रत्येक तट पर दस कांचन पर्वत हैं जो उक्त द्रहों के अभिमुख स्थित हैं।।१५५।।

कहा भी है—

प्रत्येक द्रह के पूर्व दिग्भाग और पश्चिम दिग्भाग में एक सौ (१००) योजन मात्र ऊँचे दस-दस कांचन पर्वत हैं।।१।। वे पर्वत मूल में सौ (१००) योजन, मध्य में पाँच के वर्गस्वरूप पच्चीस से रहित अर्थात् पचहत्तर (७५) योजन और अग्रभाग में पचास (५०) योजन विस्तृत तथा सौ (१००) योजन ऊँचे हैं। यह प्रमाण समान रूप से उन सभी पर्वतों का है।।१५६।। क्रीडा के आवासरूप इन पर्वतों के शिखरों पर तोता के समान कान्ति वाले कांचन देव निवास करते हैं। जो सदा प्रमुदित रहते हैं।।१५७।।

उक्तं च द्वयम् (ति. प. ४-२१३६-३७)

मेरुगिरिपुव्वदक्खिणपच्छिमये उत्तरम्मि पत्तेक्कं। सीदासीदोदाये पंच दहा केइ इच्छंति।।४।।

ताणं उवदेसेण य एक्केक्कदहस्स दोसु तीरेसु। पण पण कंचणसेला पत्तेक्कं होंति णियमेण।।५।।

यहाँ दो गाथायें कही गई हैं—

मेरु पर्वत के पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर इनमें से प्रत्येक दिशा में सीता और सीतोदा नदियों के आश्रित पाँच द्रह हैं, ऐसा कितने ही आचार्य मानते हैं। उनमें उपदेश के अनुसार प्रत्येक द्रह के दोनों किनारों पर नियम से पाँच-पाँच कांचन पर्वत स्थित हैं।।४-५।। अर्थात् इस आधार से सीता-सीतोदा नदी के २० द्रह होते हैं।

धातकीखण्ड द्वीप में धातकी वृक्ष के परिवार वृक्ष एवं कमलों की संख्या

(तिलोयपण्णत्ति से)

धातकीखण्डद्वीप के भीतर उत्तरकुरु और देवकुरु क्षेत्रों में धातकीवृक्ष स्थित हैं, इसी कारण इस द्वीप का "धातकीखण्ड" यह सार्थक नाम है[१]।।२६००।।

इस द्वीप में उन धातकी वृक्षों के परिवारवृक्ष पाँच लाख साठ हजार चार सौ अस्सी हैं।।२६०१।। ५६०४८०।

उन वृक्षों पर सम्यक्त्वरूपी रत्न से संयुक्त और उत्तम भूषणों से भूषित आकृति को धारण करने वाले प्रियदर्शन और प्रभास नामक दो अधिपति देव निवास करते हैं।।२६०२।।

इन दोनों देवों के परिवारदेव आदर और अनादर देवों के परिवार देवों की अपेक्षा दुगुणे हैं, जो पूर्वोक्त वर्णन से संयुक्त हैं।।२६०३।।

विशेष—इससे यह सिद्ध होता है कि धातकीखण्ड में पद्मसरोवर में श्री देवी के परिवार कमलों की संख्या जम्बूद्वीप से दूनी है। आगे निषध तक दूनी-दूनी है, ऐसे ही पुष्करार्ध द्वीप में भी हिमवान के पद्मसरोवर में श्रीदेवी के परिवार कमलों की संख्या धातकीखण्ड से दूनी है, आगे महापद्म व तिगिंछ सरोवर के कमलों की दूनी-दूनी है।

धातकीखण्डद्वीप व पुष्करार्धद्वीप में पर्वत, नदी, सरोवर, कुण्ड आदि

(लोकविभाग से)

दूसरा द्वीप धातकीखण्ड कहा जाता है। यहाँ मेरु (सुदर्शन) के पूर्व और पश्चिम में दो मेरु कहे गये हैं[२]।।१।। यहाँ पर मेरु के उत्तर और दक्षिण में दो इष्वाकार पर्वत स्थित हैं। ये एक हजार योजन विस्तृत और द्वीप के विस्तार के बराबर (४ लाख योजन) आयत हैं।।२।। ये दोनों इष्वाकार पर्वत अवगाढ़ और ऊँचाई में निषध पर्वत के समान माने गये हैं। यहाँ पर सब पर्वत अपने-अपने अवगाढ़ और ऊँचाई में जम्बूद्वीपस्थ पर्वतों के समान हैं।।३।।धातकीखण्डद्वीप में क्षेत्र के अभिमुख (सामने) क्षेत्र और पर्वतों के अभिमुख पर्वत स्थित हैं। किन्तु चार (दो धातकीखण्ड और दो पुष्करार्ध द्वीप के) इष्वाकार पर्वत भरत और ऐरावत क्षेत्रों के अन्तर में स्थित हैं।।४।। हिमवान् आदिक बारह कुलपर्वतों का विस्तार पूर्व (जम्बूद्वीपस्थ हिमवान् आदि) से दूना माना जाता है। उसी प्रकार पुष्करार्ध नामक द्वीप में भी इन पर्वतों का विस्तार धातकीखण्ड की अपेक्षा दूना है।।५।। धातकीखण्ड में

---

१. तिलोयपण्णत्ति पृ. ४७०-४७१ तक। २. लोकविभाग पृ. ६० से ६२ तक।

स्थित पर्वतों का विस्तार संक्षेप में अंक क्रम से दो, चार, आठ, आठ, सात और एक (१,७८,८४२) अर्थात् एक लाख अठत्तर हजार आठ सौ बयालीस योजन माना जाता है।।६।। अढ़ाई द्वीप में मेरु पर्वत को छोड़कर शेष जो पर्वत, वृक्ष, वक्षार और वेदिकाएँ स्थित हैं, उनका अवगाढ़ अपनी ऊँचाई के चतुर्थ भाग (१/४) प्रमाण है।।१३।। कुण्डों का विस्तार अपने अवगाह से छह गुणा (जैसे-१०×६=६०, २०×६=१२०, ४०×६=२४०) तथा द्रह और नदियों का विस्तार अपने अवगाह से पचास गुणा है।।१४।। **चैत्यवृक्ष की ऊँचाई अपने अवगाह से डेढ़ सौ गुणी होती है। अढ़ाई द्वीपों में स्थित दस ही महावृक्ष जंबूवृक्ष के समान कहे गये हैं।।१५।। तालाब, कुण्ड, महानदियाँ तथा पद्मह्रद भी अवगाह की अपेक्षा पूर्व अर्थात् जम्बूद्वीपस्थ तालाब आदि के समान हैं। परन्तु विस्तार में वे जम्बूद्वीप के तालाब आदि से दूने-दूने हैं।।१६।।**

जम्बूद्वीप संबंधी कुल कमलों की संख्या

(१) छह कुलाचलों के सरोवरों संबंधी

'श्री' देवी के कुल कमल	-१,४०,११६
'ह्री' देवी के कुल कमल	-२,८०,२३२
'धृति' देवी के कुल कमल	-५,६०,४६४
'कीर्ति' देवी के कुल कमल	-५,६०,४६४
'बुद्धि' देवी के कुल कमल	-२,८०,२३२
'लक्ष्मी' देवी के कुल कमल	-१,४०,११६
कुल कमल	**-१९,६१,६२४**

(२) सीता-सीतोदा नदियों के सरोवरों संबंधी कमल

१,४०,११६×२०=२८,०२,३२०

जम्बूद्वीप संबंधी कुल कमल	**-१९,६१,६२४**
	-२८,०२,३२०
	-४७,६३,९४४

सैंतालिस लाख तिरेसठ हजार नौ सौ चौवालिस कमल

धातकीखण्डद्वीप संबंधी कुल कमलों की संख्या

पूर्व धातकीखण्ड संबंधी कमल

(१) छह कुलाचलों के सरोवरों संबंधी

'श्री' देवी के कुल कमल	-२,८०,२३२
'ह्री' देवी के कुल कमल	-५,६०,४६४
'धृति' देवी के कुल कमल	-११,२०,९२८

'कीर्ति' देवी के कुल कमल	–११,२०,९२८
'बुद्धि' देवी के कुल कमल	–५,६०,४६४
'लक्ष्मी' देवी के कुल कमल	–२,८०,२३२
कुल कमल	**—३९,२३,२४८**

(२) सीता-सीतोदा नदियों के सरोवरों संबंधी कमल

२,८०,२३२×२०=५६,०४,६४०

पूर्व धातकीखण्ड संबंधी कुल कमल	**-३९,२३,२४८**
सीता सीतोदा नदी के सरोवरों संबंधी कमल	**-५६,०४,६४०**
	=९५,२७,८८८
पूर्व धातकीखण्ड द्वीप के कुल कमल	**-९५,२७,८८८**
पश्चिम धातकीखण्ड द्वीप के कुल कमल	**-९५,२७,८८८**
धातकीखण्ड द्वीप के कुल कमल	**-१,९०,५५,७७६**

(एक करोड़ नब्बे लाख पचपन हजार सात सौ छियत्तर)

पुष्करार्ध द्वीप संबंधी कुल कमलों की संख्या

पूर्व पुष्करार्ध द्वीप संबंधी कमल

(१) छह कुलाचलों के सरोवरों संबंधी

'श्री' देवी के कुल कमल	–५,६०,४६४
'ह्री' देवी के कुल कमल	–११,२०,९२८
'धृति' देवी के कुल कमल	–२२,४१,८५६
'कीर्ति' देवी के कुल कमल	–२२,४१,८५६
'बुद्धि' देवी के कुल कमल	–११,२०,९२८
'लक्ष्मी' देवी के कुल कमल	–५,६०,४६४
कुल कमल	**-७८,४६,४९६**

(२) सीता-सीतोदा नदियों के सरोवरों संबंधी कमल

५,६०,४६४,×२०=१,१२,०९,२८०

पूर्व पुष्करार्ध द्वीप सम्बन्धी कमल	**-७८,४६,,४९६**
सीता सीतोदा दी के सरोवरों संबंधी कमल	**-१,१२,०९,२८०**
पूर्व पुष्करार्धद्वीप के कुल कमल	**-१,९०,५५,७७६**

पूर्व पुष्करार्धद्वीप के कुल कमल	**-१,९०,५५,७७६**
पश्चिम पुष्करार्ध द्वीप के कुल कमल	**-१,९०,५५,७७६**
पुष्करार्ध द्वीप के कुल कमल	**-३,८१,११,५५२**

(तीन करोड़ इक्यासी लाख ग्यारह हजार पाँच सौ बावन)

ढाई द्वीप के कुल कमलों की संख्या

जम्बूद्वीप के कुल कमल	**=४७,६३,९४४**
धातकीखण्ड द्वीप के कुल कमल	**=१,९०,५५,७७६**
पुष्करार्ध द्वीप के कुल कमल	**=३,८१,११,५५२**
	=६,१९,३१,२७२

सर्व कमल ६ करोड़ उन्नीस लाख इकतीस हजार दो सौ बाहत्तर हैं।

इन सभी कमलों के जिनमंदिर-जिनप्रतिमाओं को मेरा कोटि-कोटि नमस्कार होवे।

तीर्थंकर माता की सेवा करने वाली श्री आदि देवियाँ कहाँ से आती हैं ?

जम्बूद्वीप के हिमवान आदि छह कुलाचलों के पद्म आदि सरोवरों में रहने वाली श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि और लक्ष्मी देवियाँ जम्बूद्वीप के भरत-ऐरावत व विदेह क्षेत्रों में होने वाले तीर्थंकरों की माता की सेवा के लिए आती हैं। ऐसे ही पूर्वधातकीखण्ड के सरोवरों की श्री आदि देवियाँ वहाँ के भरत, ऐरावत और विदेह क्षेत्र में होने वाले तीर्थंकरों की माता की सेवा करती हैं। पश्चिमधातकीखण्ड में वहीं के सरोवरों के कमलों में रहने वाली श्री आदि देवियाँ वहीं के भरत-ऐरावत व विदेह क्षेत्रों में जन्म लेने वाले तीर्थंकरों की माता की सेवा करने जाती हैं। इसी प्रकार पूर्वपुष्करार्ध द्वीप में वहीं के हिमवान आदि पर्वतों के सरोवरों में रहने वाली श्री आदि देवियाँ वहीं पर भरत-ऐरावत व विदेह क्षेत्रों में होने वाले तीर्थंकरों की माता की सेवा करने जाती हैं। ऐसे ही पश्चिमपुष्करार्ध द्वीप में कुलाचलों के कमलों की श्री आदि देवियाँ वहीं पर भरत-ऐरावत व विदेहों में जन्म लेने वाले तीर्थंकरों की माता की सेवा के लिए जाती हैं। जम्बूद्वीप की देवियाँ धातकीखण्ड व पुष्करार्ध द्वीप में सेवा करने नहीं जाती हैं।

कुछ विद्वान् पंचकल्याणक प्रतिष्ठा में कह देते हैं कि ये देवियाँ स्वर्गों से आई हैं यह गलत हैं। ये श्री आदि देवियाँ मध्यलोक से ही आती हैं। यह ध्यान रखना है।

लवण समुद्र में जिनमंदिर

समुद्र के मध्य में पाताल

(त्रिलोकभास्कर से)

लवण समुद्र के मध्य भाग में चारों ओर उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य ऐसे १००८ पाताल हैं। ज्येष्ठ पाताल ४, मध्यम ४ और जघन्य १००० हैं। उत्कृष्ट पाताल चार दिशाओं में ४ हैं। मध्यम पाताल ४ विदिशाओं में ४ एवं उत्कृष्ट मध्यम के मध्य में ८ अन्तर दिशाओं में १००० जघन्य पाताल हैं[१]।

४ उत्कृष्ट पाताल

उस समुद्र के मध्य भाग में पूर्वादि दिशाओं के क्रम से पाताल, कदम्बक, वडवामुख और यूपकेसर नामक चार पाताल हैं। इन पातालों का विस्तार मूल में और मुख में १०००० योजन प्रमाण है। इनकी गहराई (ऊँचाई) और मध्यविस्तार मूल विस्तार से दस गुणा—१००००० योजन प्रमाण है। पातालों की वज्रमय भित्तिका ५०० योजन मोटी है। ये पाताल जिनेन्द्र भगवान द्वारा अरंजन—घट विशेष के समान कहे गये हैं। पाताल के उपरिम त्रिभाग में सदा जल रहा है, उनके मूल के त्रिभाग में घनीवायु और मध्य त्रिभाग में क्रम से जल, वायु दोनों रहते हैं। सभी पातालों के पवन सर्वकाल शुक्ल पक्षों में स्वभाव से बढ़ते हैं एवं कृष्ण पक्ष में स्वभाव से घटते हैं। शुक्ल पक्ष में पूर्णिमा तक प्रतिदिन २२२२-२/९ योजन पवन की वृद्धि हुआ करती है। पूर्णिमा के दिन पातालों के अपने-अपने तीन भागों में से नीचे के दो भागों में वायु और ऊपर के तृतीय भाग में केवल जल रहता है। अमावस्या के दिन अपने-अपने तीन भागों में से क्रमशः ऊपर के दो भागों में जल और नीचे के तीसरे भाग में केवल वायु स्थित रहता है। पातालों के अंत में अपने-अपने मुख विस्तार को ५ गुणा करने पर जो प्राप्त हो, उतने प्रमाण आकाश में अपने-अपने पार्श्व भागों में जलकण जाते हैं। 'तत्त्वार्थराजवार्तिक' ग्रंथ में जलवृद्धि का कारण किन्नरियों का नृत्य बतलाया है। यथा—'रत्नप्रभाखरपृथ्वी-भागसन्निवेशिभवनालयवातकुमारतद्वनिताक्रीड़ा जनितानिलसंक्षोभकृतपातालोन्मीलन निमीलनहेतुकौ वायुतोयनिष्क्रमप्रवेशौ भवतः। तत्कृता दशयोजनसहस्रविस्तार मुखजलस्योपरि पंचाशद्योजनावधृता जलवृद्धिः। तत उभयत आरत्नवेदिकायाः सर्वत्र द्विगव्यूतिप्रमाण जलवृद्धिः। पातालोन्मीलन-वेगोपशमेन हानिः।

अर्थ—रत्नप्रभा पृथ्वी के खरभाग में रहने वाली वातकुमार देवियों की क्रीडा से क्षुब्ध वायु के कारण ५०० योजन जल की वृद्धि होती है अर्थात् वायु और जल का निष्क्रम और प्रवेश होता है और दोनों तरफ रत्नवेदिका पर्यंत सर्वत्र दो गव्यूति प्रमाण जलवृद्धि होती है। पाताल के उन्मीलन के वेग शांति से जल की हानि होती है। इन पातालों का तीसरा भाग १००००० ÷ ३ = ३३३३३-१/३ योजन प्रमाण है।

ज्येष्ठ पाताल सीमंत बिल के उपरिम भाग से संलग्न है अर्थात् ये पाताल ऊभी (खड़ी) मृदंग के आकार जैसा गोल है, समभूमि से नीचे की गहराई का जो प्रमाण है वह इन पातालों की ऊँचाई है। यदि प्रश्न यह होवे कि १ लाख योजन तक इनकी गहराई समतल से नीचे कैसी होगी ? तो उसका समाधान यह है कि रत्नप्रभा पृथ्वी एक लाख अस्सी हजार मोटी है, वहाँ खरभाग, पंकभाग पर्यंत ये पाताल पहुँचे हुए ऊँडे (गहरे) हैं।

---

१. त्रिलोकभास्कर पृ. १५६, १५७।

लवण समुद्र में जिनमंदिर

(तिलोयपण्णत्ति से)

उवरिमजलस्स जोयण उणवीससयाणि सत्तहरिदाणिं।
खयवड्ढीण पमाणं णादव्वं लवणजलणिहिम्मि[1]।।२४०५।।

१९००।
७

पत्तेक्कं दुतडादो पविसिय पण्णउदिजोयणसहस्सा। गाढा तस्स सहस्सं एवं सोधिज्ज अंगुलादीणं।।२४०६।।

९५०००। १०००। १।
९५

दुतडादो जलमज्झे पविसिय पण्णउदिजोयणसहस्सा। सत्तसयाइं उदओ एवं सोहेज्ज अंगुलादीणं।।२४०७।।

९५०००। ७००। ७।
९५०

---

४ मध्यम पाताल

विदिशाओं में भी इनके समान चार पाताल हैं, उनका मुख विस्तार और मूल विस्तार १००० योजन तथा मध्य में और ऊँचाई (गहराई) में १०००० योजन है, इनकी वज्रमय भित्ति ५० योजन प्रमाण है। इन पातालों के उपरिम तृतीय भाग में जल, नीचे के तृतीय भाग में वायु, मध्य के तृतीय भाग में जल और वायु दोनों रहते हैं। पातालों की गहराई-ऊँचाई १०००० योजन है, १०००० ÷ ३ = ३३३३-१/३। पातालों का तृतीय भाग तीन हजार तीन सौं तेतीस से कुछ अधिक है। इनमें प्रतिदिन होने वाली जलवायु की हानि-वृद्धि का प्रमाण २२२-२/९ योजन प्रमाण है।

१००० जघन्य पाताल

उत्तम, मध्यम पातालों के मध्य में आठ अंतर दिशाओं में एक हजार जघन्य पाताल हैं। इनके विस्तार आदि का प्रमाण मध्यम पातालों की अपेक्षा दसवें भाग मात्र है अर्थात् मुख और मूल में ये पाताल १००० योजन हैं। मध्य में चौड़े और गहरे १००० योजन प्रमाण हैं। इनमें भी उपरिम त्रिभाग में जल, नीचे में वायु और मध्य में जलवायु दोनों हैं। इनका त्रिभाग ३३३-१/३ योजन है और प्रतिदिन जलवायु की हानि-वृद्धि २२-२/९ योजन मात्र है।

लवण समुद्र में जिनमंदिर

(तिलोयपण्णत्ति से)

लवणसमुद्र में उपरिम (समतल भूमि के ऊपर स्थित) जल की क्षय-वृद्धि का प्रमाण सात से भाजित उन्नीस सौ योजनमात्र है।।२४०५।। (२००००० - १००००) ÷ ७०० = १९००/७ । दोनों में से प्रत्येक किनारे से पंचान्नवे हजार योजन प्रवेश करने पर उसकी गहराई एक हजार योजनमात्र है। इसी प्रकार अंगुलादिक को शोध लेना चाहिए।।२४०६।। ९५००० । १०००। १/९५ = १०००० / ९५००००। दोनों तटों से जल के मध्य में पंचानवे

---

१. तिलोयपण्णत्ति पृ. ४४६, ४५१ से ४५४।

जलसिहरे विक्खंभो जलणिहिणो जोयणा दससहस्सा। एवं संगाइणिए लोयविभाए विणिद्दिट्ठं।।२४४८।।

१००००। पाठान्तरम्।

दुतडाए सिहरम्मि य वलयायारेण दिब्वणयरीओ।
जलणिहिणो चेट्ठंते बादालसहस्सएक्कलक्खाणिं।।२४४९।।

१४२०००।

अब्भंतरवेदीदो सत्तसयं जोयणाणि उवहिम्मि। पविसिय आयासेसुं बादालसहस्सणयरीओ।।२४५०।।

७०० खे। ४२०००।

लवणोवहिबहुमज्झे सत्तसया जोयणाणि दो कोसा। गंतूण होंति गयणे अडवीससहस्सणयरीओ।।२४५१।।

७००। २। २८०००।

णयरीण तडा बहुविहवररयणमया हवंति समवट्टा। एदाणं पत्तेक्कं विक्खंभो जोयणदससहस्सा।।२४५२।।

१००००।

पत्तेक्कं णयरीणं तडवेदीओ हवंति दिव्वाओ। धुव्वंतधयवडाओ वरतोरणपहुदिजुत्ताओ।।२४५३।।

ताणं वरपासादा पुरीण वररयणणियररमणिज्जा। चेट्ठंति हु देवाणं वेलंधरभुजगणामाणं।।२४५४।।

जिणमंदिररम्माओ पोक्खरणीउववणेहिं जुत्ताओ। को वण्णिदुं समत्थो अणाइणिहणाओ णयरीओ।।२४५५।।

वण्णिदसुराण णयरीपणिधीए जलहिदुतडसिहरेसुं।
वज्जपुढवीए उवरिं तेत्तियणयराणि के वि भासंति।।२४५६।।

पाठान्तरम्।

हजार योजन प्रमाण प्रवेश करने पर सात सौ योजन मात्र ऊँचाई है। इसी प्रकार अंगुलादिकों को शोध लेना चाहिए।।२४०७।। ९५०००। ७००। ७/९५० = ७००/९५०००।

जलशिखर पर समुद्र का विस्तार दश हजार योजन है इस प्रकार संगाइणी में लोकविभाग में बतलाया गया है।।२४४८।। १०००००। पाठान्तरम्। **समुद्र के दोनों किनारों तथा शिखर पर वलय के आकार से एक लाख बयालीस हजार दिव्य नगरियाँ स्थित हैं।**।२४४९।। १,४२०००। [उनमें से बाह्य वेदी से ऊपर सात सौ योजन जाकर आकाश में समुद्र पर बहत्तर हजार नगरियाँ हैं।।२४४९ १।। ७००। ७२०००।] अभ्यन्तर वेदी से ऊपर सात सौ योजन जाकर आकाश में समुद्र पर बयालीस हजार नगरियाँ हैं।।२४५०।। ७०० यो. आकाश में । ४२०००। लवणसमुद्र के बहुमध्य भाग में सात सौ योजन और दो कोसप्रमाण ऊपर जाकर आकाश में अट्ठाईस हजार नगरियाँ हैं।।२४५१।। यो. ७०० को. २। २८०००। नगरियों के तट बहुत प्रकार के उत्तम रत्नों से निर्मित समान गोल हैं। इनमें से प्रत्येक का विस्तार दश हजार योजनप्रमाण है।।२४५२।। १००००। प्रत्येक नगरियों में फहराती हुई ध्वजापताकाओं से सहित और उत्तम तोरणादिक से संयुक्त दिव्य तटवेदियाँ हैं।।२४५३।। उन नगरियों में उत्कृष्ट रत्नों के समूहों से रमणीय वेलंधर और भुजग नामक देवों के प्रासाद स्थित हैं।।२४५४।। **जिनमंदिरों से रमणीय और वापिकाओं व उपवनों से संयुक्त इन अनादिनिधन नगरियों का वर्णन करने के लिए कौन समर्थ हो सकता है ?** ।।२४५५। समुद्र के दोनों किनारों और शिखर पर बतलाई गई देवों की नगरियों के पार्श्वभाग में वज्रमय पृथिवी के ऊपर भी इतनी ही नगरियाँ हैं, ऐसा कितने ही आचार्य वर्णन करते हैं।।२४५६।। (पाठान्तर)।

बादालसहस्साणिं जोयणया जलहिदोतडाहिंतो। पविसिय खिदिविवराणं पासेसुं होंति अट्ठगिरी।।२४५७।।

४२०००।

सोलससहस्सअधियं जोयणलक्खं च तिरियविक्खंभो।

पत्तेक्काणं जगदीगिरीणि मिलिदूण दोलक्खा।।२४५८।।

११६०००। ८४०००। २०००००।

ते कुंभद्धसरिच्छा सेला जोयणसहस्समुत्तुंगा। एदाणं णामाइं ठाणविभागं च भासेमि।।२४५९।।

१०००।

पादालस्स दिसाए पच्छिमए कोत्तुभो असदि सेलो। पुव्वाए कोत्थुभासो दोण्णि वि ते वज्जमयमूला।।२४६०।।

मज्झिमरजदंरजिदा अग्गेसुं विविहदिव्वरयणमया। चरिअट्टालयचारू तडवेदीतोरणेहिं जुदा।।२४६१।।

ताणं हेट्ठिममज्झिमउवरिमवासाणि संपइ पणट्ठा। तेसुं वरपासादा विचित्तरूवा विरायंति।।२४६२।।

वेलंधरवेंतरया पव्वदणामेहिं संजुदा तेसुं। कीडंति मंदिरेसुं विजयो व्व णिआउपहुदिजुदा।।२४६३।।

उदको णामेण गिरी होदि कदंबस्स उत्तरदिसाए। उदकाभासो दक्खिणदिसाए ते णीलमणिवण्णा।।२४६४।।

सिवणामा सिवदेओ कमेण उवरिम्मि ताण सेलाणं। कोत्थुभदेवसरिच्छा आउप्पहुदीहिं चेट्ठंति।।२४६५।।

वडवामुहपुव्वाए दिसाए संख त्ति पव्वदो होदि। पच्छिमए महसंखो दिसाए ते संखसमवण्णा।।२४६६।।

उदगो उदगावासो कमसो उवरिम्मि ताण चेट्ठंति। देवा आउप्पहुदिसु उदगाचलदेवसारिच्छा।।२४६७।।

समुद्र के दोनों किनारों से बयालीस हजार योजनप्रमाण प्रवेश करके पातालों के पार्श्वभागों में आठ पर्वत हैं।।२४५७।। ४२०००। प्रत्येक पर्वत का तिरछा विस्तार एक लाख सोलह हजार योजन प्रमाण है। इस प्रकार जगती से पर्वतों तक तथा पर्वतों का विस्तार मिलाकर दो लाख योजन होता है।।२४५८।। पर्वत विस्तार १,१६०००। जगती से पर्वत का अंतराल ४२००० + ४२००० = ८४०००। १,१६००० + ८४००० = २,०००००। अर्धघट के सदृश वे पर्वत एक हजार योजन ऊँचे हैं। इनके नाम और स्थान विभाग को कहते हैं।।२४५९।। १०००। पाताल की पश्चिम दिशा में कौस्तुभ और पूर्वदिशा में कौस्तुभास पर्वत स्थित है। वे दोनों पर्वत वज्रमय मूलभाग से संयुक्त हैं।।२४६०।। ये पर्वत मध्य में रजत से रचित, अग्रभागों में विविध प्रकार के दिव्य रत्नों से निर्मित, मार्ग व अट्टालयों से सुन्दर तथा तटवेदी एवं तोरणों से युक्त हैं।।२४६१।। इन पर्वतों का नीचे, मध्य में और ऊपर जो कुछ विस्तार है, उसका प्रमाण इस समय नष्ट हो गया है। इनके ऊपर विचित्र रूप वाले उत्तम प्रासाद विराजमान हैं।।२४६२।। इन प्रासादों में विजयदेव के समान अपनी आयु आदिक से सहित और पर्वतों के नामों से संयुक्त बेलंधर व्यन्तरदेव क्रीडा करते हैं।।२४६३।। कदंबपाताल की उत्तरदिशा में उदक नामक पर्वत और दक्षिण दिशा में उदकाभास नामक पर्वत स्थित है। ये दोनों पर्वत नीलमणि जैसे वर्ण वाले हैं।।२४६४।। उन पर्वतों के ऊपर क्रम से शिव और शिवदेव नामक देव निवास करते हैं। इनकी आयुप्रभृति कौस्तुभदेव के समान है।।२४६५।। वड़वामुख पाताल की पूर्वदिशा में शंख और पश्चिम दिशा में महाशंख नामक पर्वत है। ये दोनों ही

दकणामो होदि गिरि दक्खिणभागम्मि जूवकेसरिणो।
दकवासो उत्तरए भाए वेरुलियमणिमया दोण्णि।।२४६८।।

उवरिम्मि ताण कमसो लोहिदणामो य लोहिदंकक्खो।
उदयगिरिस्स सरिच्छा आउप्पहुदीसु होंति सुरा।।२४६९।।

एदाणं देवाणं णयरीओ अवरजंबुदीवम्मि। होंति णियणियदिसाए अवराजिदणयरसारिच्छा।।२४७०।।

बादालसहस्साइं जोयणया जंबुदीवजगदीदो। गंतूण अट्ठ दीवा णामेणं सूरदीउ त्ति।।२४७१।।
४२०००।

पुव्वपवण्णिदकोत्थुहपहुदीणं हवंति दोसु पासेसुं। एदे दीवा मणिमयणिग्गच्छियदीआ पभासंति।।२४७२।।

एरावदविजओदिदरत्तोदावाहिणीए पणिधीए। मागधदीवसरिच्छो होदि समुद्दम्मि मागधो दीओ।।२४७३।।

अवराजिददारस्सप्पणिधीए होदि लवणजलहिम्मि। वरतणुणामो दीओ वरतणुदीवोवमो अण्णो।।२४७४।।

एरावदखिदिणिग्गदरत्तापणिधीए लवणजलहिम्मि। अण्णो पभासदीओ पभासदीओ व चेट्ठेदि।।२४७५।।

मागधदीवसमाणं सव्वं चिय वण्णणं पभासस्स। चेट्ठदि परिवारजुदो पभासणामो सुरो तस्सिं।।२४७६।।

जे अब्भंतरभागे लवणसमुद्दस्स पव्वदा दीवा। ते सव्वे चेट्ठंते णियमेणं बाहिरे भागे।।२४७७।।

दीवा लवणसमुद्दे अडदाल कुमाणुसाण चउवीसं। अब्भंतरम्मि भागे तेत्तियमेत्ताए बाहिरए।।२४७८।।

शंख के समान वर्ण वाले हैं।।२४६६।। इनके ऊपर क्रम से उदक और उदकावास नामक देव स्थित हैं। ये दोनों देव आयु आदिकों में उदक पर्वत पर स्थित देव के सदृश हैं।।२४६७।। यूपकेशरी के दक्षिण भाग में दक नामक पर्वत और उत्तर भाग में दकवास नामक पर्वत स्थित है। ये दोनों ही पर्वत वैडूर्यमणिमय हैं।।२४६८।। उनके ऊपर क्रम से लोहित और लोहितांक नामक देव निवास करते हैं। ये देव आयु आदिकों में उदकपर्वत पर रहने वाले देव के समान हैं।।२४६९।। इन देवों की नगरियाँ अपर जम्बूद्वीप में अपनी-अपनी दिशा में अपराजित नगर के समान हैं।।२४७०।। जम्बूद्वीप की जगती से बयालीस हजार योजन जाकर 'सूर्यद्वीप' नाम से प्रसिद्ध आठ द्वीप हैं।।२४७१।। ४२०००। ये द्वीप पूर्व में बतलाए हुए कौस्तुभादिक पर्वतों के दोनों पार्श्वभाग में स्थित होकर निकले हुए मणिमय दीपकों से युक्त प्रकाशमान हैं।।२४७२।। ऐरावत क्षेत्र में कही हुई रक्तोदा नदी के पार्श्वभाग में मागधद्वीप के सदृश समुद्र में मागधद्वीप है।।२४७३।। अपराजितद्वार के पार्श्वभाग में वरतनुद्वीप के सदृश अन्य वरतनु नामक द्वीप लवणसमुद्र में स्थित है।।२४७४।। लवणसमुद्र में ऐरावत क्षेत्र में से निकली हुई रक्तानदी के पार्श्वभाग में प्रभासद्वीप के सदृश अन्य प्रभासद्वीप स्थित है।।२४७५।। प्रभासद्वीप का सम्पूर्ण वर्णन मागधद्वीप के समान है। इस द्वीप में परिवार से युक्त होकर प्रभास नामक देव रहता है।।२४७६।। लवण समुद्र के अभ्यन्तर भाग में जो पर्वत और द्वीप हैं, वे सब नियम से उसके बाह्य भाग में भी स्थित हैं।।२४७७।। **लवणसमुद्र में अड़तालीस कुमानुषों के द्वीप हैं। इनमें से चौबीस द्वीप तो अभ्यन्तर भाग में और इतने ही बाह्य भाग में भी हैं।।२४७८।।**
२४ + २४ = ४८।

लवण समुद्र में अधर नगर
(त्रिलोकसार से)

अनन्तर लवणोदकपरिपालकानां भुजगानां विमानसंख्यां स्थानत्रयाश्रयेणाह—

बेलंधर भुजगविमाणाण सहस्साणि बाहिरे सिहरे। अंते बावत्तरि अडवीसं बादालयं लवणे[1]।।९०३।।

बेलन्धरभुजगविमानानां सहस्राणि बाह्ये शिखरे। अन्ते द्वासप्ततिः अष्टविंशतिः द्वाचत्वारिंशत् लवणे।।९०३।।

बेलं। जम्बूद्वीपापेक्षया लवणसमुद्रस्य बाह्ये शिखरे अभ्यन्तरे च यथासंख्यं वेलंधरभुजगानां विमानानि द्वासप्ततिसहस्राणि ७२००० अष्टाविंशतिसहस्राणि २८००० द्वाचत्वारिंशत्सहस्राणि ४२००० स्युः।।९०३।।

अथ तद्विमानानामवस्थानविशेषं तद्व्या चाह—

दुतडादो सत्तसयं दुकोसअहियं च होइ सिहरादो।

णयराणि हु गयणतले जोयणदसगुणसहस्सवासाणि।।९०४।।

द्वितटात् सप्तशत द्विक्रोशाधिकं च भवति शिखरात्। नगराणि हि गगनतले योजनदशगुणसहस्रव्यासानि।।९०४।।

दुतडा। लवणसमुद्रस्योभयतटात्सप्तशतयोजनानि ७०० तच्छिखराच्च द्विक्रोशाधिकानि सप्तशतयोजनानि ७०० क्रो २ त्यक्त्वा गगनतले दशसहस्रयोजनव्यासानि १०००० नगराणि सन्ति।।९०४।।

लवण समुद्र में अधर नगर
(त्रिलोकसार से)

अब लवणोदक समुद्र के प्रतिपालक नागकुमार देवों के विमानों की संख्या को तीन स्थानों के आश्रय से कहते हैं—

गाथार्थ :—लवण समुद्र के बाह्य में, शिखर में और अभ्यन्तर में बेलन्धर जाति के नागकुमार देवों के विमान क्रम से बहत्तर हजार, अट्ठाईस हजार और बयालीस हजार हैं।।९०३।।

विशेषार्थ :—जम्बूद्वीप की अपेक्षा लवण समुद्र के बाह्य में, बेलन्धर जाति के नागकुमार देवों के ७२००० विमान हैं। शिखर में (१६००० ऊँची जलराशि के ऊपर) २८००० और अभ्यन्तर में ४२००० विमान हैं।

अब उन विमानों का अवस्थानविशेष और व्यास कहते हैं—

गाथार्थ :—लवण समुद्र के दोनों (बाह्य, अभ्यन्तर) तटों से सात-सात सौ योजन और शिखर से दो कोस अधिक सात सौ योजन ऊपर जाकर अर्थात् जल से ऊपर मात्र आकाश में दस-दस हजार (प्रत्येक) योजन व्यास वाले नगर हैं।।९०४।।

---

१. त्रिलोकसार, पृ. ६९२-६९३।

लवण समुद्र में अभ्यन्तर द्वीप

लवणसमुद्राभ्यन्तरद्वीपान् तद्व्यासादिकं च गाथाचतुष्टयेनाह—

तडदो गत्ता तेत्तियमेत्तियवासा हु विदिस अंतरगा। अडसोलस ते दीवा वट्टा सूरक्खचंदक्खा[1]।।९०९।।

तडतः गत्वा तावन्मात्रव्यासा हि विदिक्षु अन्तरकाः। अष्टषोडश ते द्वीपा वृत्ताः सूर्याख्यचन्द्राख्याः।।९०९।।

तडदो। उभयतटात्तावन्मात्राणि योजनानि ४२००० गत्वा तावन्मात्रव्यासा ४२०००। विदिक्ष्वन्तरदिक्षु च यथासंख्यं अष्ट षोडशसंख्या सूर्याख्यचन्द्राख्यास्ते द्वीपाः वृत्ताः स्युः।।९०९।।

गौतम द्वीप

तडदो बारसहस्सं गंतूणिह तेत्तियुदयवित्थारो। गोदमदीओ चिट्ठदि वायव्वदिसम्हि वट्टुलओ।।९१०।।

तटतो द्वादशसहस्रं गत्वेह तावदुदयविस्तारः। गौतमद्वीपः तिष्ठति वायव्यदिशि वर्तुलः।।९१०।।

तड। इह लवणे अभ्यन्तरतटात् द्वादशसहस्र १२००० योजनानि गत्वा तावन्मात्रोदयः १२००० तावन्मात्रविस्तारः १२००० वृत्ताकारो वायव्यां दिशि गौतमाख्यो द्वीपस्तिष्ठति।।९१०।।

बहुवण्णणपासादा वणवेदीसहिय तेसु दीवेसु। तस्सामी वेलंधरणागा सगदीवणामा ते।।९११।।

बहुवर्णनप्रासादाः वनवेदीसहितेषु तेषु द्वीपेषु। तत्स्वामिनो बेलन्धरनागाः स्वकद्वीपनामानस्ते।।९११।।

बहु। वनैर्वेदिकाभिः सहितेषु तेषु द्वीपेषु सर्वेषु बहुवर्णनोपेताः प्रासादाः सन्ति। तद्द्वीपस्वामिनो ये बेलंधरनागास्ते स्वकीयस्वकीयद्वीपनामानः।।९११।।

लवण समुद्र में अभ्यन्तर द्वीप

लवण समुद्र के अभ्यन्तर द्वीपों और उनके व्यासादिक को चार गाथाओं द्वारा कहते हैं—

गाथार्थ :—जितने योजन व्यास वाले द्वीप हैं दोनों तटों से उतने ही योजन दूर जाकर विदिशा और अन्तर दिशाओं में सूर्य नामक आठ और चन्द्र नामक सोलह वृत्ताकार द्वीप हैं।।९०९।।

विशेषार्थ :—अभ्यन्तर तट से बाहर की ओर और बाह्य तट से भीतर की ओर बयालीस-बयालीस हजार योजन दूर जाकर विदिशाओं और अन्तर दिशाओं में ४२००० योजन व्यास वाले द्वीप हैं। वहाँ चारों विदिशाओं के दोनों पार्श्वभागों में आठ सूर्य नाम के द्वीप हैं तथा अन्तर दिशाओं के दोनों पार्श्व भागों में सोलह चन्द्र नाम के द्वीप हैं। ये सर्व द्वीप गोल आकार वाले हैं।

गौतम द्वीप

गाथार्थ :—जितने योजन विस्तार और ऊँचाई वाला द्वीप है, लवण समुद्र के अभ्यन्तर तट से बाहर की ओर उतने ही योजन दूर जाकर वायव्य दिशा में गोल आकार वाला गौतम नाम का द्वीप है।।९१०।।

विशेषार्थ :—लवण समुद्र के अभ्यन्तर तट से बाहर की ओर वायव्य दिशा में १२००० योजन दूर जाकर १२००० योजन ऊँचा और १२००० योजन चौड़ा गोल आकार वाला गौतम नाम का द्वीप है।

गाथार्थ :—वे सब द्वीप वनों और वेदिकाओं से युक्त हैं, उनमें महान् विभूतियुक्त प्रासाद हैं, उन द्वीपों के स्वामी अपने-अपने द्वीप सदृश नाम वाले वेलन्धर जाति के नागकुमार देव हैं।।९११।।

---

१. त्रिलोकसार पृ. ६९५-६९६।

मागध, वरतनु, प्रभासद्वीप

मागहतिदेवदीवत्तिदयं संखेज्जजोयणं गत्ता। तीरादो दक्खिणदो उत्तरभागेवि होदित्ति।।९१२।।

मागधत्रिदेवद्वीपत्रितयं संख्यातयोजनं गत्वा। तीरात् दक्षिणतः उत्तरभागेऽपि भवतीति।।९१२।।

मागह। भरतक्षेत्रे दक्षिणतस्तीरात् संख्यातयोजनानि गत्वा मागधवरतनुप्रभासाख्यामराणां त्रयाणां देवानां तत्तन्नामद्वीपत्रयमस्ति, ऐरावतोत्तरभागेऽपि तथा द्वीपत्रयमस्ति।।९१२।।

लवणसमुद्र में पर्वतों पर जिनमंदिर

(जंबूद्वीवपण्णत्ति से)

बादालीस सहस्सा गंतूणं जोयणाणि वेदीदो। बेलंधरदेवाणं अट्ठेव य पव्वदा होंति[1]।।२७।।
जोयणसहस्सतुंगा कलसद्धसमाणभासुरा विउला। वणवेदिएहिं जुत्ता वरतोरणमंडिया दिव्वा।।२८।।
वलयामुहाण णेया दो दो पासेसु होंति णायव्वा। अक्खयअणाइणिहणा णाणामणिरयणपरिणामा।।२९।।
पुव्वेण होंति णेया कोत्थुभणामा णगा हु कणयमया। कोत्थुभणामसुरिंदा वसंति वेलंधरा तेसु।।३०।।
दक्खिणदिसेण णेया दगभासा अंकरयणमयसेला। दगभासदेवसहिया बहुविहपासादसंछण्णा।।३१।।
पच्छिमदिसेण सेला रुप्पमया संखजुवलवरणामा। संखजुगलाभिधाणा वसंति वेलंधरा देवा।।३२।।

मागध, वरतनु, प्रभासद्वीप

गाथार्थ :—समुद्र के दक्षिण तट से संख्यात योजन आगे जाकर मागध आदि तीन देव हैं और इन्हीं नाम के धारी तीन द्वीप हैं। उत्तर भाग अर्थात् ऐरावत क्षेत्र में भी तीन द्वीप हैं।।९१२।।

विशेषार्थ :—भरत क्षेत्र की गङ्गा सिन्धु नदियों के प्रवेशद्वार और एक जम्बूद्वीप का द्वार इन तीनों द्वारों के सम्मुख संख्यात योजन आगे जाकर मागध, वरतनु और प्रभास नामक तीन देवों के इसी नाम वाले तीन द्वीप हैं। इसी प्रकार उत्तर भाग अर्थात् ऐरावत क्षेत्र में भी तीन द्वीप हैं।

लवणसमुद्र में पर्वतों पर जिनमंदिर

(जंबूद्वीवपण्णत्ति से)

वेदी से बयालीस हजार योजन जाकर बेलंधर देवों के आठ पर्वत हैं।।२७।। एक हजार योजन ऊँचे, अर्ध कलश के समान भासुर, विशाल, वनवेदियों से युक्त, दिव्य और उत्तम तोरणों से मण्डित वे पर्वत वलयमुख (वडवामुख) प्रभृति पातालों के दो पार्श्व भागों में दो-दो हैं, ऐसा जानना चाहिए। ये पर्वत अक्षय, अनादिनिधन और नाना मणियों एवं रत्नों के परिणामरूप हैं।।२८-२९।। इनमें से पूर्व की ओर कौस्तुभ (और कौस्तुभास) नामक सुवर्णमय पर्वत हैं। उनके ऊपर कौस्तुभ (और कौस्तुभास) नामक वेलंधर सुरेन्द्र रहते हैं।।३०।। दक्षिण दिशा की ओर (उदक और) उदकभास देवों से सहित तथा बहुत प्रकार के प्रासादों से व्याप्त अंकरत्नमय (उदक और) उदकभास नामक शैल जानना चाहिए।।३१।। पश्चिम दिशा में उत्तम शंखयुगल (शंख व महाशंख) नाम वाले रजतमय शैल जानना चाहिए। इनके ऊपर शंखयुगल (शंख व महाशंख) नामक बेलंधर

---

१. जम्बूद्वीवपण्णत्ति, अधिकार-१०, पृ. १७७-१७८।

उत्तरदिसेण णेया वेरुलियमर्या हवंति वरसेला। दगसीमदेवसहिया दससीमा होंति णामेण।।३३।।
सव्वे वि वेदिसहिया वरतोरणमंडिया मणभिरामा। धुव्वंतधयवडाया जिणभवणविहूसिया दिव्वा।।३४।।
पायालाणं णेया उभये पासेसु तह य सिहरेसु। आयासे णिद्दिट्ठा पण्णगदेवाण णगराणि।।३५।।
बावत्तरिं सहस्सा बाहिरमब्भंतरं च बाचत्ता। अग्गोदगं धरंता अट्ठावीसं सहस्साणि।।३६।।
एयं च सयसहस्सा भुजग सहस्साणि चेव बाचत्ता। वेलासु दोसु अग्गोदगे य लवणम्हि अच्छंता।।३७।।
तत्तो वेदीदो पुण बादालसहस्स जोयणा गंतुं। विदिसासु होंति दीवा बादालसहस्सवित्थिण्णा।।३८।।
दीवेसु तेसु णेया णगराणि हवंति रयणणिवहाणि। णागाणं णिद्दिट्ठा गोउरपायारणिवहाणि।।३९।।

लवणसमुद्र में गौतमद्वीप में जिनमंदिर

वेदीदो गंत्तूणं बारह तह जोयणसहस्साणि। वायव्वदिसेण पुणो होइ समुद्दम्मि वरदीवो।।४०।।
बारहसहस्सतुंगो वित्थिण्णायामतेत्तिओ चेव। कंचणवेदीसाहिओ मरगयवरतोरणुत्तुंगो।।४१।।
ससिकंतसूरकंतो कक्केयणपउमरायमणिणिवहो। वरवज्जकणयविद्दुममरगयपासादसंजुत्तो।।४२।।
गोदुमणामो दीवो णाणातरुगहणसंकुलो रम्भो। पोक्खरणिवाविपउरो जिणभवणबिहूसिओ दिव्वो।।४३।।

देव निवास करते हैं।।३२।। उत्तर दिशा में वैडूर्यमणिमय उदकसीम (उदक और उदवास) नाम उत्तम शैल हैं। इनके ऊपर उदकसीम (उदक और उदवास) नाम देव हैं।।३३।। **सब ही दिव्य पर्वत वेदी से सहित, उत्तम तोरणों से मण्डित, मन को अभिराम, फहराती हुई ध्वजापताकाओं से सहित और जिनभवन से विभूषित हैं**।।३४।। पातालों के उभय पार्श्व भागों में तथा शिखरों पर आकाश में पन्नग (नागकुमार) देवों के नगर निर्दिष्ट किए गए हैं।।३५।।

लवण समुद्र की बाह्य (धातकीखंड की ओर) वेला को धारण करने वाले बहत्तर हजार, अभ्यन्तर (जम्बूद्वीप की ओर) वेला को धारण करने वाले बयालीस हजार और अग्रोदक (जलशिखा) को धारण करने वाले अट्ठाईस हजार इस प्रकार लवण समुद्र में दोनों वेलाओं के ऊपर व अग्रोदक (शिखर) पर एक लाख बयालीस हजार (७२००० + ४२००० + २८०००) नागकुमार देव स्थित हैं।।३६-३७।। पुनः उस वेदी से बयालीस हजार योजन जाकर विदिशाओं में बयालीस हजार योजन विस्तीर्ण (आठ) द्वीप हैं।।३८।। उन द्वीपों में रत्नसमूहों से युक्त और गोपुर एवं प्राकार समूह से संयुक्त नागकुमारों के नगर निर्दिष्ट किए गए जानना चाहिए।।३९।।

लवणसमुद्र में गौतमद्वीप में जिनमंदिर

वेदी से वायव्य दिशा की ओर बारह हजार योजन जाकर समुद्र में गौतम नामक उत्तम द्वीप है। यह दिव्य द्वीप बारह हजार योजन ऊँचा, इतने ही विस्तार व आयाम से संयुक्त, सुवर्णमय वेदी से सहित, मरकत मणिमय उत्तम तोरणों से उन्नत; चन्द्रकान्त, सूर्यकान्त, कर्केतन एवं पद्मराग मणियों के समूह से सहित; उत्तम वज्र, सुवर्ण, विद्रुम एवं मरकत मणिमय प्रासादों से संयुक्त; नाना वृक्षों के वनों से व्याप्त, रम्य, प्रचुर पुष्करिणियों एवं वापिकाओं से युक्त और **जिनभवनों से विभूषित** है।।४०-४३।।

लवण समुद्र के अंदर लंका नगरी में जिनमंदिर

(पद्मपुराण से[1])

उस धार्मिक रुचि के कारण दोनों को जाति-स्मरण भी हो गया। तदनन्तर श्रद्धा से भरे मेघवाहन और सहस्रनयन अजितनाथ भगवान् की इस प्रकार स्तुति करने लगे।।१४२।। हे भगवन् ! जो बुद्धि से रहित हैं तथा जिनका कोई नाथ-रक्षक नहीं है ऐसे संसारी प्राणियों का आप बिना कारण ही उपकार करते हैं इससे अधिक आश्चर्य और क्या हो सकता है।।१४३।। आपका रूप उपमा से रहित है तथा आप अतुल्य वीर्य के धारक हैं। हे नाथ! इन तीनों लोकों में ऐसा कौन पुरुष है जो आपके दर्शन से सन्तृप्त हुआ हो।।१४४।। हे भगवन्! यद्यपि आप प्राप्त करने योग्य समस्त पदार्थ प्राप्त कर चुके हैं, कृतकृत्य हैं, सर्वदर्शी हैं, सुखस्वरूप हैं, अचिन्त्य हैं, और जानने योग्य समस्त पदार्थ जान चुके हैं तथापि जगत् का हित करने के लिए उद्यत है।।।१४५।। हे जिनराज! संसाररूपी अन्धकूप में पड़ते हुए जीवों को आप श्रेष्ठ धर्मोपदेशरूपी हस्तावलम्बन प्रदान करते हैं।।१४६।। इस प्रकार जिनकी वाणी गद्गद् हो रही थी और नेत्र आँसुओं से भर रहे थे ऐसे परम हर्ष को प्राप्त हुए मेघवाहन और सहस्रनयन विधिपूर्वक स्तुति और नमस्कार कर यथास्थान बैठ गये।।१४७।। सिंहवीर्य आदि मुनि, इन्द्र आदि देव और सगर आदि राजा परम आश्चर्य को प्राप्त हुए।।१४८।।

अथानन्तर—श्री अजितनाथ जिनेन्द्र भगवान् के समवसरण में राक्षसों के इन्द्र भीम और सुभीम प्रसन्न होकर मेघवाहन से कहने लगे कि हे विद्याधर के बालक ! तू धन्य है जो सर्वज्ञ अजित जिनेन्द्र की शरण में आया है, हम दोनों तुझ पर सन्तुष्ट हुए हैं अतः जिससे तेरी सर्वप्रकार से स्वस्थता हो सकेगी वह बात हम तुझसे इस समय कहते हैं सो तू ध्यान से सुन, तू हम दोनों की रक्षा का पात्र है।।१४९-१५१।। बहुत भारी मगरमच्छों से भरे हुए इस लवणसमुद्र में अत्यन्त दुर्गम्य तथा अतिशय सुन्दर हजारों महाद्वीप हैं।।१५२।। उन महाद्वीपों में कहीं गन्धर्व, कहीं किन्नरों के समूह, कहीं यक्षों के झुण्ड और कहीं किंपुरुषदेव क्रीड़ा करते हैं।।१५३।। उन द्वीपों के बीच एक ऐसा द्वीप है जो राक्षसों की शुभ क्रीड़ा का स्थान होने से राक्षस द्वीप कहलाता है और सात सौ योजन लम्बा तथा उतना ही चौड़ा है।।१५४।। उस राक्षस द्वीप के मध्य में मेरु पर्वत के समान त्रिकूटाचल नामक विशाल पर्वत है। वह पर्वत अत्यन्त दुःप्रवेश है और उत्तमोत्तम गुहारूपी गृहों से सबको शरण देने वाला है।।१५५।। उसकी शिखर सुमेरु पर्वत की चूलिका के समान महामनोहर है, वह नौ योजन ऊँचा और पचास योजन चौड़ा है।।१५६।। उसके सुवर्णमय किनारे नाना प्रकार के रत्नों की कान्ति के समूह से सदा आच्छादित रहते हैं तथा नाना प्रकार की लताओं से आलिंगित कल्पवृक्ष वहाँ संकीर्णता करते रहते हैं।।१५७।। उस त्रिकूटाचल के नीचे तीस योजन विस्तारवाली लंका नगरी है, उसमें राक्षस वंशियों का निवास है, और उसके महल नाना प्रकार के रत्नों एवं सुवर्ण से निर्मित हैं।।१५८।। मन को हरण करने वाले बाग बगीचों, कमलों से सुशोभित सरोवरों और बड़े-बड़े जिन-मन्दिरों से वह नगरी इन्द्रपुरी के समान जान पड़ती है।।१५९।। वह लंका नगरी दक्षिण दिशा की मानों आभूषण ही है। हे विद्याधर ! तू अपने बन्धुवर्ग के साथ उस नगरी में जा और सुखी हो।।१६०।। ऐसा कहकर राक्षसों के इन्द्र भीम ने उसे देवाधिष्ठित एक हार दिया। वह हार अपनी करोड़ों किरणों से चाँदनी उत्पन्न

१. पद्मपुराण भाग १ पृ. ७७ से ७९ तक।

कर रहा था।।१६१।। जन्मान्तर सम्बन्धी पुत्र की प्रीति के कारण उसने वह हार दिया था और कहा था कि हे विद्याधर! तू चरमशरीरी तथा युग का श्रेष्ठ पुरुष है इसलिए तुझे यह हार दिया है।।१६२।। उस हार के सिवाय उसने पृथ्वी के भीतर छिपा हुआ एक ऐसा प्राकृतिक नगर भी दिया जो छह योजन गहरा तथा एक सौ साढ़े इकतीस योजन और डेढ़ कलाप्रमाण चौड़ा था।।१६३।। उस नगर में शत्रुओं का शरीर द्वारा प्रवेश करना तो दूर रहा मन से भी प्रवेश करना अशक्य था। उसमें बड़े-बड़े महल थे, अलंकारोदय उसका नाम था और शोभा से वह स्वर्ग के समान जान पड़ता था।।१६४।। यदि तुझ पर कदाचित् परचक्र का आक्रमण हो तो इस नगर में खड्ग का आश्रय ले सुख से रहना। यह तेरी वंश-परम्परा के लिए रहस्य-सुरक्षित स्थान है।।१६५।। इस प्रकार राक्षसों के इन्द्र भीम और सुभीम ने पूर्णधन के पुत्र मेघवाहन से कहा जिसे सुनकर वह परम हर्ष को प्राप्त हुआ। वह अजितनाथ भगवान् को नमस्कार कर उठा।।१६६।। राक्षसों के इन्द्र भीम ने उसे राक्षसी विद्या दी। उसे लेकर इच्छानुसार चलने वाले कामग नामक विमान पर आरूढ़ हो वह लंकापुरी की ओर चला।।१६७।। ''राक्षसों के इन्द्र ने इसे वरदानस्वरूप लंका नगरी दी है'' यह जानकर मेघवाहन के समस्त भाई बान्धव इस प्रकार हर्ष को प्राप्त हुए जिस प्रकार कि प्रातःकाल के समय कमलों के समूह विकास भाव को प्राप्त होते हैं।।१६८।।

इस प्रकार लवण समुद्र की शोभा देखते हुए मेघवाहन ने त्रिकूटाचल के शिखर के नीचे स्थित लंकापुरी में प्रवेश किया। वह लंका बहुत भारी प्राकार और गोपुरों से सुशोभित थी, अपनी लाल-कान्ति के द्वारा संध्या के समान आकाश को लिप्त कर रही थी, कुन्द के समान सफेद, ऊँचे पताकाओं से सुशोभित, कोट और तोरणों से युक्त जिनमन्दिरों से मण्डित थी। लंकानगरी में प्रविष्ट हो सर्वप्रथम उसने जिनमंदिर में जाकर जिनेन्द्रदेव की वन्दना की और तदनन्तर मंगलोपकरणों से युक्त अपने योग्य महल में निवास किया।।१७५-१७७।। रत्नों की शोभा से जिनके नेत्र और नेत्रों के पंक्तियाँ आकर्षित हो रही थी ऐसे अन्य भाई-बन्धु भी यथायोग्य महलों में ठहर गये।।१७८।।

विशेष—यह जिनमंदिर अकृत्रिम हो सकता है।

लवण समुद्र में वानर द्वीप है।[१]

श्रीकण्ठ से ऐसा कहकर कीर्तिधवल ने अपने पितामह के क्रम से आगत महाबुद्धिमान् आनन्द नामक मन्त्री को बुलाकर कहा।।५८।। कि तुम चिरकाल से मेरे नगरों की सारता और असारता को अच्छी तरह जानते हो अतः श्रीकण्ठ के लिए जो नगर सारभूत हो सो कहो।।५९।। इस प्रकार कहने पर वृद्ध मन्त्री कहने लगा। जब वह वृद्ध मन्त्री कह रहा था तब उसकी सफेद दाढ़ी वक्षःस्थल पर हिल रही थी और उससे ऐसा जान पड़ता था मानो हृदय में विराजमान स्वामी को चमर ही ढोर रहा हो।।६०।। उसने कहा कि हे राजन्! यद्यपि आपके नगरों में ऐसा एक भी नगर नहीं है जो सुन्दर न हो तथापि श्रीकण्ठ स्वयं ही खोजकर इच्छानुसार—जो इन्हें रुचिकर हो, ग्रहण कर लें।।६१।। इस समुद्र के बीच में ऐसे बहुत से द्वीप हैं जहाँ कल्पवृक्षों के समान आकार वाले वृक्षों से दिशाएँ व्याप्त हो रही हैं।।६२।। इन द्वीपों में ऐसे अनेक पर्वत हैं जो नाना प्रकार के रत्नों से व्याप्त हैं, ऊँचे-ऊँचे शिखरों से सुशोभित हैं, महादेदीप्यमान हैं और देवों की क्रीड़ा के कारण हैं।।६३।। राक्षसों के इन्द्र भीम, अतिभीम तथा

१. पद्मपुराण भाग १ पृ. १०१ से १०५ तक।

उनके सिवाय अन्य सभी देवों ने आपके वंशजों के लिए वे सब द्वीप तथा पर्वत दे रखे हैं ऐसा पूर्व परम्परा से सुनते आते हैं।।६४।। उन द्वीपों में सुवर्णमय महलों से मनोहर और किरणों से सूर्य को आच्छादित करने वाले महारत्नों से परिपूर्ण अनेक नगर हैं।।६५।। उन नगरों के नाम इस प्रकार हैं–सन्ध्याकार, मनोह्लाद, सुवेल, कांचन, हरि, योधन, जलधिध्वान, हंसद्वीप, भरक्षम, अर्धस्वर्गोत्कट, आवर्त, विघट, रोधन, अमल, कान्त, स्फुटतट, रत्नद्वीप, तोयावली, सर, अलंघन, नभोभानु और क्षेम इत्यादि अनेक सुन्दर-सुन्दर स्थान हैं। इन स्थानों में देव भी उपद्रव नहीं कर सकते हैं।।६६-६८।। जो बहुत भारी पुण्य से प्राप्त हो सकते हैं और जहाँ की वसुधा नाना प्रकार के रत्नों से प्रकाशमान है ऐसे वे समस्त नगर इस समय आपके आधीन हैं।।६९।। यहाँ पश्चिमोत्तर भाग अर्थात् वायव्य दिशा में समुद्र के बीच तीन सौ योजन विस्तार वाला बड़ा भारी वानर द्वीप है। यह वानरद्वीप तीनों लोकों में प्रसिद्ध है और उसमें महामनोहर हजारों अवान्तर द्वीप हैं।।७०-७१।। यह द्वीप कहीं तो पुष्पराग मणियों की लाल-लाल प्रभा से ऐसा जान पड़ता है मानो जल ही रहा हो, कहीं हरे मणियों की किरणों से आच्छादित होकर ऐसा सुशोभित होता है मानो धान के हरे-भरे पौधों से ही आच्छादित हो।।७२।।

उस वानरद्वीप के मध्य में रत्न और सुवर्ण की लम्बी-चौड़ी शिलाओं से सुशोभित किष्कु नाम का बड़ा भारी पर्वत है।।८२।। जैसा यह त्रिकूटाचल है वैसा ही वह किष्कु पर्वत है सो उनकी शिखररूपी लम्बी-लम्बी भुजाओं से आलिंगित दिशारूपी स्त्रियाँ परम शोभा को प्राप्त हो रही हैं।।८३।। आनन्द मन्त्री के ऐसे वचन सुनकर परम आनन्द को प्राप्त हुआ श्रीकण्ठ अपने बहनोई कीर्तिधवल से कहने लगा कि जैसा आप कहते हैं वैसा मुझे स्वीकार है।।८४।। तदनन्तर चैत्र मास के मंगलमय प्रथम दिन में श्रीकण्ठ अपने परिवार के साथ वानरद्वीप गया।।८५।। तदनन्तर समस्त दिशाओं में अपनी नीली दृष्टि चलाता हुआ श्रीकण्ठ आश्चर्य से भरे हुए उस वानरद्वीप में उतरा।।९०।।

नाना प्रकार के वृक्षों से सुशोभित वहाँ के प्रदेश नाना रंग के दिखाई देते थे। वे प्रदेश इतने सुन्दर थे कि उन्हें देखकर फिर स्वर्ग के देखने की इच्छा नहीं रहती थी।।१०१।। तोताओं के समान स्पष्ट बोलने वाले चकोर और चकोरी का जो मैनाओं के साथ वार्तालाप होता था वह उस वानर द्वीप में सबसे बड़ा आश्चर्य का कारण था।।१०१।। तदनन्तर वह श्रीकण्ठ, नाना प्रकार के वृक्षों की छाया में स्थित, फूलों की सुगन्धि से अनुलिप्त, रत्नमय तथा सुवर्णमय शिलातलों पर सेना के साथ बैठा और वहीं उसने शरीर को सुख पहुँचाने वाले समस्त कार्य किये।।१०२-१०३।। तदनन्तर–जिनमें नाना प्रकार के पुष्प फूल रहे थे, हंस और सारस पक्षी शब्द कर रहे थे, स्वच्छ जल भरा हुआ था और जो मछलियों के संचार से कुछ-कुछ कम्पित हो रहे थे ऐसे मालाओं की, तथा फूलों के समूह की वर्षा करने वाले, महाकान्तिमान् और पक्षियों की बोली के बहाने मानो जोर-जोर से जय शब्द का उच्चारण करने वाले वृक्षों की एवं नाना प्रकार के रत्नों से व्याप्त भूभागों–प्रदेशों की सुषमा से युक्त उस वानर द्वीप में श्रीकण्ठ जहाँ-तहाँ भ्रमण करता हुआ बहुत सुखी हुआ।।१०४-१०६।। तदनन्तर नन्दन वन के समान उस वन में विहार करते हुए श्रीकण्ठ ने इच्छानुसार क्रीड़ा करने वाले अनेक प्रकार के वानर देखे।।१०७।। सृष्टि की इस विचित्रता को देखकर श्रीकण्ठ विचार करने लगा कि देखो ये वानर तिर्यंच योनि में उत्पन्न हुए है फिर भी मनुष्य के समान क्यों है ?।।१०८।। ये वानर मुख, पैर, हाथ तथा अन्य अवयव भी मनुष्य के अवयवों के समान ही धारण करते हैं। न केवल अवयव ही, इनकी चेष्टा भी मनुष्यों के समान हैं।।१०९।। तदनन्तर उन

वानरों के साथ क्रीड़ा करने की श्रीकण्ठ के बहुत भारी इच्छा उत्पन्न हुई। यद्यपि वह स्थिर प्रकृति का राजा था तो भी अत्यन्त उत्सुक हो उठा।।११०।। उसने विस्मित चित्त होकर मुख की ओर देखने वाले निकटवर्ती पुरुषों को आज्ञा दी कि इन वानरों को शीघ्र ही यहाँ लाओ।।१११।। कहने की देर थी कि विद्याधरों ने सैकड़ों वानर लाकर उनके समीप खड़े कर दिये। वे सब वानर हर्ष से कल-कल शब्द कर रहे थे।।११२।। राजा श्रीकण्ठ उत्तम स्वभाव के धारक उन वानरों के साथ क्रीड़ा करने लगा। कभी वह ताली बजाकर उन्हें नचाता था, कभी अपनी भुजाओं से उनका स्पर्श करता था और कभी अनार के फूल के समान लाल, चपटी नाक से युक्त एवं चमकीली सुनहली कनीनिकाओं से युक्त उनके मुख में उनके सफेद दाँत देखता था।।११३-११४।।

इसके बाद पहाड़ के शिखरों, लताओं, निर्झरनों और वृक्षों से जिसका मन हरा गया था ऐसा श्रीकण्ठ उन वानरों को लिवाकर किष्कु पर्वत पर चढ़ा।।१२०।। वहाँ उसने लम्बी-चौड़ी, विषमतारहित तथा अन्त में ऊँचे-ऊँचे वृक्षों से सुशोभित उत्तुंग पहाड़ों से सुरक्षित भूमि देखी।।१२१।। उसी भूमि पर उसने किष्कुपुर नाम का एक नगर बसाया। यह नगर शत्रुओं के शरीर की बात तो दूर रहे मन के लिए भी दुर्गम था।।१२२।। यह नगर चौदह योजन लम्बा-चौड़ा था और इसकी परिधि-गोलाई बयालीस योजन से कुछ अधिक थी।।१२३।। इस नगर में विद्याधरों ने महलों की ऐसी-ऐसी ऊँची श्रेणियाँ बनाकर तैयार की थीं कि जिनके सामने उत्तुंग दरवाजे थे, जिनकी दीवालें मणि और सुवर्ण से निर्मित थीं, जो अच्छे-अच्छे बरण्डों से सहित थीं, रत्नों के खम्भों पर खड़ी थी। जिनकी कपोतपाली के समीप का भाग महानील मणियों से बना था और ऐसा जान पड़ता था कि रत्नों की कान्ति ने जिस अन्धकार को सब जगह से खदेड़कर दूर कर दिया था मानो उसे यहाँ अनुकम्पावश स्थान ही दिया गया था।

लंका नगरी का वर्णन[१]

तदनन्तर अत्यन्त उत्सुकता से भरे राम ने शीघ्र ही पूछा कि हे विद्याधरों! बतलाओ कि लंका कितनी दूर है?।।९९।। हे देव! किसी तरह उच्चारण किया हुआ जिसका नाम ही भय से ज्वर उत्पन्न कर देता है उसके विषय में हम आपके सामने क्या कहें ?।।१०३।। क्षुद्र शक्ति के धारक हम लोग कहाँ और लंका का स्वामी रावण कहाँ ? अत: इस समय आप इस जानी हुई वस्तु की हठ छोड़िए।।१०४।। अथवा हे प्रभो! यह सुनना आवश्यक ही है तो सुनिए कहने में क्या दोष है ? आपके समक्ष तो कुछ कहा जा सकता है।।१०५।। दुष्ट मगरमच्छों से भरे हुए इस लवण समुद्र में अनेक आश्चर्यकारी स्थानों से युक्त प्रसिद्ध राक्षसद्वीप है।।१०६।। जो सब ओर से सात योजन विस्तृत है तथा कुछ अधिक इक्कीस योजन उसकी परिधि है।।१०७।। उसके बीच में सुमेरु पर्वत के समान त्रिकूट नाम का पर्वत है जो नौ योजन ऊँचा और पचास योजन चौड़ा है।।१०८।। सुवर्ण तथा नाना प्रकार के मणियों से देदीप्यमान एवं शिलाओं के समूह से व्याप्त है। राक्षसों के इन्द्र भीम ने मेघवाहन के लिए वह दिया था।।१०९।। तट पर उत्पन्न हुए नाना प्रकार के चित्र-विचित्र वृक्षों से सुशोभित उस त्रिकूटाचल के शिखर पर लंका नाम की नगरी है जो मणि और रत्नों की किरणों तथा स्वर्ग के विमानों के समान मनोहर महलों एवं क्रीड़ा आदि के योग्य सुन्दर प्रदेशों से अत्यन्त शोभायमान है।।११०-१११।। जो सब ओर से तीस योजन चौड़ी है तथा

१. पद्मपुराण भाग १ पृ. २८८ से २८९ तक।

बहुत बड़े प्राकार और परिखा से युक्त होने के कारण दूसरी पृथिवी के समान जान पड़ती है।।११२।। लंका के समीप में और भी ऐसे स्वाभाविक प्रदेश हैं तो रत्न, मणि तथा स्वर्ण से निर्मित हैं।।११३।। वे सब प्रदेश उत्तमोत्तम नगरों से युक्त हैं, राक्षसों की क्रीड़ा-भूमि हैं तथा महाभोगों से युक्त विद्याधरों से सहित हैं।।११४।। सन्ध्याकार, सुवेल, कांचन, ह्लादन, योधन, हंस, हरिसागर और अर्द्ध स्वर्ग आदि अन्य द्वीप भी वहाँ विद्यमान हैं जो समस्त ऋद्धियों तथा भोगों को देने वाले हैं, वन-उपवन आदि से विभूषित हैं तथा स्वर्ग प्रदेशों के समान जान पड़ते हैं।।११५-११६।। लंकाधिपति रावण भृत्यवर्ग से आवृत हो मित्रों, भाइयों, पुत्रों, स्त्रियों तथा अन्य इष्टजनों के साथ उन प्रदेशों में क्रीड़ा किया करता है।।११७।। क्रीड़ा करते हुए उस विद्याधरों के अधिपति को देखकर मैं समझता हूँ कि इन्द्र भी आशंका को प्राप्त हो जाता है।।११८।। जिसका भाई विभीषण लोक में अत्यधिक बलवान् है, युद्ध में बड़े-बड़े लोगों के द्वारा भी अजेय है और राजाओं में श्रेष्ठ है।।११९।। बुद्धि द्वारा उसकी समानता करने वाला देव भी नहीं है फिर मनुष्य तो निश्चित ही नहीं है। जगत्प्रभु रावण को उसी एक भाई का संसर्ग प्राप्त होना पर्याप्त है।।१२०।। उसका गुणरूपी आभूषणों से सहित एक छोटा भाई भी है जो कुम्भकर्ण इस नाम से प्रसिद्ध है तथा त्रिशूल नामक महाशस्त्र से सहित है।।१२१।।

लवण समुद्र में लंका नगरी में अनेकों जिनमंदिर एवं श्री शांतिनाथ मंदिर[१]

अथानन्तर राक्षसों का अधीश्वर रावण अपने दूत के वचन सुनकर क्षणभर मन्त्र के जानकार मन्त्रियों के साथ मन्त्रणा करता रहा। उसने विचार किया कि मैं बहुरूपिणी नाम से प्रसिद्ध वह विद्या सिद्ध करता हूँ कि जिसमें सदा तत्पर रहने वाले देव भी विघ्न उत्पन्न नहीं कर सकते।।६।। ऐसा विचार कर उसने शीघ्र ही किंकरों को बुलाकर आदेश दिया कि शान्तिजिनालय की उत्तम तोरण आदि से सजावट करो।।७।। तथा सब प्रकार के उपकरणों से युक्त सर्व मन्दिरों में जिनभगवान् की पूजा करो। किङ्करों को ऐसा आदेश दे उसने पूजा की व्यवस्था का सब भार उत्तमचित्त की धारक मन्दोदरी के ऊपर रखा।।८।। गौतम स्वामी कहते हैं कि वह सुर और असुरों द्वारा वन्दित बीसवें मुनिसुव्रत भगवान् का महाभ्युदयकारी समय था। उस समय लम्बे-चौड़े समस्त भरत क्षेत्र में यह पृथ्वी अर्हन्तभगवान् की पवित्र प्रतिमाओं से अलंकृत थी।।९-१०।। देश के अधिपति राजाओं तथा गाँवों का उपभोग करने वाले सेठों के द्वारा जगह-जगह देदीप्यमान जिनमन्दिर खड़े किये गये थे।।११।। वे मन्दिर, समीचीन धर्म के पक्ष की रक्षा करने में निपुण, कल्याणकारी, भक्तियुक्त शासनदेवों से अधिष्ठित थे।।१२।। देशवासी लोग सदा वैभव के साथ जिनमें अभिषेक तथा पूजन करते थे और भव्य जीव सदा जिनकी आराधना करते थे, ऐसे वे जिनालय स्वर्ग के विमानों के समान सुशोभित होते थे।।१३।। हे राजन्! उस समय पर्वत पर्वत पर, अतिशय सुन्दर गाँव-गाँव में वन-वन में पत्तन पत्तन में, महल महल में, नगर नगर में, संगम संगम में, तथा मनोहर और सुन्दर चौराहे चौराहे पर महाशोभा से युक्त जिनमन्दिर बने हए थे।।१४-१५।। वे मन्दिर शरद् ऋतु के चन्द्रमा के समान कान्ति से युक्त थे, संगीत की ध्वनि से मनोहर थे, तथा नाना वादित्रों के शब्द से उनमें क्षोभ को प्राप्त हुए समुद्र के समान शब्द हो रहे थे।।१६।। वे मन्दिर तीनों संध्याओं में वन्दना के लिए उद्यत साधुओं के समूह से व्याप्त रहते थे, गम्भीर थे, नाना आचार्यों से सहित थे और विविध प्रकार के पुष्पों के उपहार से सुशोभित

१. पद्मपुराण भाग-३ पृ. ९ से ११ तक।

थे।।१७।। परम विभूति से युक्त थे, नाना रङ्गके मणियों की कान्ति से जगमगा रहे थे, अत्यन्त विस्तृत थे, ऊँचे थे और बड़ी-बड़ी ध्वजाओं से सहित थे।।१८।। उन मन्दिरों में सुवर्ण, चाँदी आदि की बनी छत्रत्रय चमरादि परिवार से सहित पाँच वर्ण की जिनप्रतिमाएँ अत्यन्त सुशोभित थीं।।१९।। विद्याधरों के नगर में स्थान-स्थान पर बने हुए अत्यन्त सुन्दर जिनमन्दिरों के शिखरों से विजयार्ध पर्वत उत्कृष्ट हो रहा था।।२०।। इस प्रकार यह समस्त संसार बाग बगीचों से सुशोभित, नाना रत्नमयी, शुभ और सुन्दर जिनमन्दिरों से व्याप्त हुआ अत्यधिक सुशोभित था।।२१।। इन्द्र के नगर के समान वह लङ्का भी भीतर और बाहर बने हुए पापापहारी जिनमन्दिरों से अत्यन्त मनोहर थी।।२२।।

गौतम स्वामी कहते हैं कि वर्षा ऋतु के मेघसमूह के समान जिसकी कान्ति थी, हाथी की सूँड़ के समान जिसकी लम्बी-लम्बी भुजाएँ थीं पूर्णचन्द्र के समान जिसका मुख था दुपहरिया के फूल के समान जिसके लाल लाल ओंठ थे, जो स्वयं सुन्दर था, जिसके बड़े-बड़े नेत्र थे, जिसकी चेष्टाएँ स्त्रियों के मन को आकृष्ट करने वाली थीं, लक्ष्मीधर-लक्ष्मण के समान जिसका आकार था और जो दिव्यरूप से सहित था, ऐसा दशानन, कमलिनियों के साथ सूर्य के समान अपनी अठारह हजार स्त्रियों के साथ क्रीड़ा करता था।।२३-२५।। **जिस पर सब लोगों के नेत्र लग रहे थे, जो अन्य महलों की पंक्ति से घिरा था, नाना रत्नों से निर्मित था और चैत्यालयों से सुशोभित था, ऐसे दशानन के घर में सुवर्णमयी हजारों खम्भों से सुशोभित, विस्तृत, मध्य में स्थित, देदीप्यमान और अतिशय ऊँचा वह शान्ति जिनालय था जिसमें शान्ति जिनेन्द्र विराजमान थे**।।२६।। गौतम स्वामी कहते हैं कि उत्तम भाग्यशाली मनुष्य, धर्म में दृढ़ बुद्धि लगाकर तथा संसार के सब पदार्थों को अस्थिर जानकर जगत् में उन जिनेन्द्र भगवान् के कान्ति सम्पन्न, उत्तम मन्दिर बनवाते हैं जो सबके द्वारा वन्दनीय हैं तथा इन्द्र के मुकुटों के शिखर में लगे रत्नों की देदीप्यमान किरणों के समूह से जिनके चरणनखों की कान्ति अत्यधिक वृद्धिंगत होती रहती है।२७।। बुद्धिमान् मनुष्य कहते हैं कि प्राप्त हुए विशाल धन का फल पुण्य की प्राप्ति करना है और इस समस्त संसार में एक जैनधर्म ही उत्कृष्ट पदार्थ है, यही इष्ट पदार्थ को सूर्य के समान प्रकाशित करने वाला है।।२८।।

श्री रामचंद्र ने लंका में शांतिनाथ मंदिर के दर्शन किये[१]
(एक हजार खंभों सहित मन्दिर)

अथानंतर समागमरूपी सूर्य से जिसका मुखकमल खिल उठा था ऐसी सीता का हाथ अपने हाथ से पकड़ श्रीराम उठे और इच्छानुकूल चलने वाले ऐरावत के समान हाथी पर बैठाकर स्वयं उस पर आरूढ़ हुए। महातेजस्वी तथा सम्पूर्ण कान्ति को धारण करने वाले श्रीराम हिलते हुए घंटों से मनोहर हाथी रूपी मेघ पर सीतारूपी रोहिणी के साथ बैठे हुए चन्द्रमा के समान सुशोभित हो रहे थे।।१-३।। जिनकी बुद्धि स्थिर थी, जो अत्यधिक उन्नत प्रीति को धारण कर रहे थे, बहुत भारी जनसमूह जिनके साथ था, जो चारों ओर से बहुत बड़ी सम्पदा से घिरे थे, बड़े-बड़े अनुरागी विद्याधरों से अनुगत, उत्तम कान्तियुक्त चक्रपाणि लक्ष्मण से जो सहित थे तथा अतिशय निपुण थे ऐसे श्रीराम, सूर्य के विमान समान जो रावण का भवन था उसमें जाकर प्रविष्ट हुए।।४-

१. पद्मपुराण भाग-३ पृ. ९३ से ९४ तक।

६।। वहाँ उन्होंने भवन के मध्य में स्थित **श्रीशान्तिनाथ भगवान्** का परम सुन्दर मन्दिर देखा। वह मन्दिर योग्य विस्तार और ऊँचाई से सहित था, **स्वर्ण के हजार खम्भों से निर्मित** था, विशाल कान्ति का धारक था, उसकी दीवालों के प्रदेश नाना प्रकार के रत्नों से युक्त थे, वह मन को आनन्द देने वाला था, विदेह क्षेत्र के मध्य में स्थित मेरुपर्वत के समान था, क्षीर समुद्र के फेनपटल के समान कान्तिवाला था, नेत्रों को बाँधने वाला था, रुणझुण करने वाली किङ्किणियों के समूह एवं बड़ी-बड़ी ध्वजाओं से सुशोभित था, मनोज्ञरूप से युक्त था तथा उसका वर्णन करना अशक्य था।।७-१०।।

तदनन्तर जो मत्तगजराज के समान पराक्रमी थे, निर्मल नेत्रों के धारक थे तथा श्रेष्ठ लक्ष्मी से सहित थे, ऐसे श्रीराम ने हाथी से उतरकर सीता के साथ उस मन्दिर में प्रवेश किया।।११।। तत्पश्चात् कायोत्सर्ग करने के लिए जिन्होंने अपने दोनों हाथ नीचे लटका लिये थे और जिनका हृदय अत्यन्त शान्त था, ऐसे श्रीराम ने सामायिक कर सीता के साथ दोनों करकमलरूपी कुड्मलों को जोड़कर श्रीशान्तिनाथ भगवान का पापभञ्जक पुण्यवर्धक स्तोत्र पढ़ा।।१२-१३।। स्तोत्र पाठ करते हुए उन्होंने कहा कि जिनके जन्म लेते ही संसार में सर्वत्र ऐसी शान्ति छा गई कि जो सब रोगों का नाश करने वाली थी तथा दीप्ति को बढ़ाने वाली थी।।१४।।

जिनके आसन कम्पायमान हुए थे तथा जो उत्तम विभूति से युक्त थे ऐसे हर्ष से भरे भक्तिमन्त इन्द्रों ने आकर जिनका मेरु के शिखर पर अभिषेक किया था।।१५।। जिन्होंने राज्य अवस्था में बाह्यचक्र के द्वारा बाह्यशत्रुओं के समूह को जीता था और मुनि होने पर ध्यानरूपी चक्र के द्वारा अन्तरङ्ग शत्रुसमूह को जीता था।।१६।। जो जन्म, जरा, मृत्यु भयरूपी खड्ग आदि शस्त्रों से चञ्चल संसाररूपी असुर को नष्ट कर कल्याणकारी सिद्धिपुर-मोक्ष को प्राप्त हुए थे।।१७।।

जिन्होंने उपमा रहित, नित्य, शुद्ध, आत्माश्रय, उत्कृष्ट और अत्यन्त दुरासद निर्वाण का साम्राज्य प्राप्त किया था, जो तीनों लोकों की शान्ति के कारण थे, जो महा ऐश्वर्य से सहित थे तथा जिन्होंने अनन्त शान्ति प्राप्त की थी ऐसे श्रीशान्तिनाथ भगवान् के लिए मन, वचन, काय से नमस्कार हो।।१८-१९।। हे नाथ! आप समस्त चराचर विश्व से अत्यन्त स्नेह करने वाले हैं, शरणदाता हैं, परम रक्षक हैं, समाधिरूप तेज तथा रत्नत्रयरूपी बोधि को देने वाले हैं।।२०।।

तुम्हीं एक गुरु हो, बन्धु हो, प्रणेता हो, परमेश्वर हो, इन्द्र सहित चारों निकायों के देवों से पूजित हो।।२१।। हे भगवन्! आप उस धर्मरूपी तीर्थ के कर्ता हो जिससे भव्य जीव अनायास ही समस्त दुःखों से छुटकारा देने वाला परम स्थान-मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं।।२२।।

हे नाथ! आप देवों के देव हो इसलिये आपको नमस्कार हो, आप कल्याणरूप कार्य के करने वाले हो इसलिए आपको नमस्कार हो, आप कृतकृत्य हैं अतः आपको नमस्कार हो और आप प्राप्त करने योग्य समस्त पदार्थों को प्राप्त कर चुके हैं इसलिये आपको नमस्कार हो।।२३।। हे भगवन्! प्रसन्न होइये और हम लोगों के लिये महाशान्तिरूप स्वभाव में स्थित, सर्वदोष रहित, उत्कृष्ट तथा नित्यपद—मोक्षपद प्रदान कीजिये।।२४।। इस प्रकार स्तोत्र पाठ पढ़ते हुए कमलायतलोचन तथा पुण्य कर्म में दक्ष श्रीराम ने शान्तिजिनेन्द्र की तीन प्रदक्षिणाएँ दी।।२५।। जिसका शरीर नम्र था, जो स्तुति पाठ करने में तत्पर थी तथा जिसने हस्तकमल जोड़ रखे थे ऐसी भाव भीनी सीता श्रीराम के पीछे खड़ी थी।।२६।।

श्री रामचंद्र ने लंका में पद्मप्रभ भगवान के मंदिर के दर्शन किये[१]
(एक हजार खंभों सहित मंदिर)

अथानन्तर हाथी से उतरकर, जिनका रत्नों के अर्घ आदि से सत्कार किया गया था ऐसे सीता सहित राम लक्ष्मण ने विभीषण के सुन्दर भवन में प्रवेश किया।।६२।। विभीषण के विशाल भवन के मध्य में श्री पद्मप्रभ जिनेन्द्र का वह मन्दिर था जो रत्नमयी तोरणों से सहित था, स्वर्ण के समान देदीप्यमान था, समीप में स्थित महलों के समूह से मनोहर था, शेष नामक पर्वत के मध्य में स्थित था, प्रेम की उपमा को प्राप्त था, **स्वर्णमयी हजार खम्भों से युक्त था,** उत्तम देदीप्यमान था, योग्य लम्बाई और विस्तार से सहित था, नाना मणियों के समूह से शोभित था, चन्द्रमा के समान चमकती हुई नाना प्रकार की वल्लभियों से युक्त था, झरोखों के समीप लटकती हुई मोतियों की जाली से सुशोभित था, अनेक अद्‌भुत रचनाओं से युक्त प्रतिसर आदि विविध प्रदेशों से सुन्दर था, और पाप को नष्ट करने वाला था।।६३-६७।। इस प्रकार के उस मन्दिर में श्री पद्मप्रभ जिनेन्द्र की पद्मराग मणि निर्मित वह अनुपम प्रतिमा विराजमान थी, जो अपनी प्रभा से मणिमय भूमि में कमल-समूह की शोभा प्रकट कर रही थी। सब लोग उस प्रतिमा की स्तुति वन्दना कर यथायोग्य बैठ गये।।६८-६९।। तदनन्तर विद्याधर राजा, हृदय में राम और लक्ष्मण को धारण करते हुए जहाँ जिसके लिए जो स्थान बनाया गया था वहाँ यथायोग्य रीति से चले गये।।७०।।

अकृत्रिम-कृत्रिम जिन वंदना

जय जय त्रिभुवन के जिनमंदिर आठ कोटि गुणराशी।
छप्पन लाख हजार सत्यानवे चार शतक इक्यासी।।
जय जय जय जिनगृह में प्रतिमा नव सौ पच्चिस कोटी।
त्रेपन लाख, हजार सताइस नवसौ अड़तालिस ही।।17।।

जय जय अकृत्रिम जिनमंदिर अकृत्रिम जिन प्रतिमा।
मणिमय रत्नमयी पद्मासन नमूँ नमूँ जिनमहिमा।।
जय जय जय कृत्रिम जिनमंदिर जय कृत्रिम जिनप्रतिमा।
इक सौ सत्तर कर्मभूमि में त्रयकालिक जिन महिमा।।18।।

-गणिनी ज्ञानमती

१. पद्मपुराण भाग-३ पृ. ९७।

मध्यलोक में चैत्यवृक्षों में जिनप्रतिमाएँ

जम्बूद्वीप के परकोटे में चैत्यवृक्ष

(तिलोयपण्णत्ति से)

पायारपरिगदाइं वरगोउरदारतोरणाइं पि। अब्भंतरम्मि भागे महोरगाणं च चेट्ठंति[१]।।२५।।

पाठान्तरम् ।

णयरेसुं रमणिज्जा पासादा होंति विविहविण्णासा। अब्भंतरचेत्तरया णाणावररयणणियरमया।।२६।।

दिप्पंतरयणदीवा समंतदो विविहधूवधडजुत्ता। वज्जमयवरकवाडा वेदीगोउरदुवारजुदा।।२७।।

पणुहत्तरि चावाणिं उत्तुंगा सयधणूणि दीहजुदा। पण्णासदंडरुंदा होंति जहण्णम्मि पासादा।।२८।।

७५। १००। ५०।

पासादावारेसुं बारस चावाणि होंति उच्छेहो। पत्तेक्कं छण्णाहं अवगाढं तं पि चत्तारि।।२९।।

१२। ६। ४।

पणुवीसं दोण्णि सया उच्छेहो होदि जिट्ठपासादा। दीहं तिसयधणूणिं पत्तेक्कं सद्ध विक्खंभो।।३०।।

२२५। ३००। १५०।

ताण दुवारुच्छेहो दंडा छत्तीस होदि पत्तेक्कं। अट्ठारस विक्खंभो बारस णियमेण अवगाढं[१]।।३१।।

दं. ३६। १८। १२।

जम्बूद्वीप के परकोटे में चैत्यवृक्ष

(तिलोयपण्णत्ति से)

वेदी के अभ्यन्तर भाग में प्राकार से वेष्टित एवं उत्तम गोपुरद्वार व तोरणों से संयुक्त ऐसे महोरग देवों के (भवन) स्थित हैं।।२५।। पाठान्तर। नगरों में विविध प्रकार की रचनाओं से युक्त, अनेक उत्तमोत्तम रत्नसमूहों से निर्मित, अभ्यन्तरभाग में **चैत्य तरूओं से सहित**, चारों ओर प्रदीप्त रत्नदीपकों से सुशोभित, विविध प्रकार के धूपघटों से युक्त, वज्रमय कपाटों से संयुक्त और वेदी व गोपुरद्वारों से सहित रमणीय प्रासाद हैं।।२६-२७।। ये प्रासाद जघन्यरूप से पचहत्तर धनुष ऊँचे, सौ धनुष लंबे और पचास धनुषप्रमाण विस्तारयुक्त हैं।।२८।। ऊँचाई ७५; लंबाई १००; विस्तार ५० धनुष। इन प्रासादों के द्वारों में प्रत्येक की ऊँचाई बारह धनुष, व्यास छह धनुष और अवगाढ़ चार धनुषप्रमाण है।।२९।। ऊँचाई १२; व्यास ६; अवगाढ़ ४ धनुष। उत्कृष्ट प्रासादों में प्रत्येक की ऊँचाई दो सौ पच्चीस धनुष, लम्बाई तीन सौ धनुष और विष्कंभ इससे आधा अर्थात् एक सौ पचास धनुषप्रमाण है।।३०।। ऊँचाई २२५; लम्बाई ३००; वि. १५० धनुष। उत्कृष्ट प्रासादों के द्वारों में प्रत्येक द्वार की ऊँचाई छत्तीस धनुष, विष्कंभ अठारह धनुष और अवगाढ़ नियम से बारह धनुष प्रमाण है।।३१।। ऊँचाई ३६; वि. १८, अव. १२ धनुष।

भावार्थ—चैत्यवृक्ष का अर्थ है कि जिनवृक्षों की कटनी पर चैत्य अर्थात् जिनप्रतिमाएँ हैं उन्हें ही चैत्यतरु-चैत्यवृक्ष कहते हैं।

---

१. तिलोयपण्णत्ति, चतुर्थमहाधिकार, पृ. १४५, १४३।

अकृत्रिम जिनमंदिर के परकोटे में चैत्यवृक्ष, सिद्धार्थवृक्ष आदि में जिनप्रतिमाएँ

पीढस्स चउदिसासुं बारसवेदीओ होंति भूमियले। वरगोउराओ तेत्तियमेत्ताओ पीढउड्ढम्मि[१]।।१९०३।।

पीढस्सुवरिमभागे सोलसगव्वूदिमेत्तउच्छेहो। सिद्धंतो णामेणं चेत्तदुमो दिव्ववरतेओ ।।१९०४।।

को १६ ।

खंधुच्छेहो कोसा चत्तारो बहलमेक्कगव्वूदी। बारसकोसा साहादीहत्तं चेय विच्चालं।।१९०५।।

को ४ । १ । १२ । १२ ।

इगिलक्खं चालीसं सहस्सया इगिसयं च वीसजुदं। तस्स परिवाररुक्खा पीढोवरि तप्पमाणधरा।।१९०६।।

१४०१२० ।

विविहवररयणसाहा मरगयपत्ता य पउमरायफला। चामीयररजदमयाकुसुमजुदा सयलकालं ते।।१९०७।।

सव्वे अणाइणिहणा पुढविमया दिव्वचेत्तवररूक्खा। जीवुप्पत्तिलयाणं कारणभूदा सइं भवंति।।१९०८।।

रुक्खाण चउदिसासुं पत्तेक्कं विविहरयणरइदाओ। जिणसिद्धप्पडिमाओ जयंतु चत्तारि चत्तारि।।१९०९।।

चेत्ततरूणं पुरदो दिव्वं पीढं हवेदि कणयमयं। उच्छेहदीहवासा तस्स य उच्छण्णउवएसा।।१९१०।।

पीढस्स चउदिसासुं बारस वेदी य होंति भूमियले। चरिअट्टालयगोउरदुवारतोरणविचित्ताओ ।।१९११।।

अकृत्रिम जिनमंदिर के परकोटे में चैत्यवृक्ष, सिद्धार्थवृक्ष आदि में जिनप्रतिमाएँ

पीठ के चारों ओर उत्तम गोपुरों से युक्त बारह वेदियां भूमितल पर और इतनी ही पीठ के ऊपर हैं।।१९०३।।

पीठ के उपरिम भाग पर सोलह कोस प्रमाण ऊंचा दिव्य व उत्तम तेज को धारण करने वाला सिद्धार्थ नामक चैत्यवृक्ष है ।। १९०४ ।। को. १६ । चैत्यवृक्ष के स्कन्ध की ऊँचाई चार कोस, बाहल्य एक कोस और शाखाओं की लम्बाई व अन्तराल बारह कोस प्रमाण है।।१९०५।। को. ४ । १। १२। १२। पीठ के ऊपर इसी प्रमाण को धारण करने वाले **एक लाख चालीस हजार एक सौ बीस इसके परिवार वृक्ष हैं।**।।१९०६।। १४०१२०। ये वृक्ष विविध प्रकार के उत्तम रत्नों से निर्मित शाखाओं, मरकतमणिमय पत्तों, पद्मरागमणिमय फलों और सुवर्ण एवं चाँदी से निर्मित पुष्पों से सदैव संयुक्त रहते हैं।।१९०७।।

ये सब उत्तम दिव्य चैत्यवृक्ष अनादिनिधन और पृथ्वीरूप होते हुए जीवों की उत्पत्ति और विनाश के स्वयं कारण होते हैं ।। १९०८ ।। **इन वृक्षों में प्रत्येक वृक्ष के चारों ओर विविध प्रकार के रत्नों से रचित चार-चार जिन और सिद्धों की प्रतिमायें विराजमान हैं**। ये प्रतिमायें जयवन्त होवें ।। १९०९ ।।

चैत्यवृक्षों के आगे सुवर्णमय दिव्य पीठ है। इसकी ऊँचाई, लम्बाई और विस्तारादिक का उपदेश नष्ट हो गया है ।।१९१०।। पीठ के चारों ओर भूमितल पर मार्ग व अट्टालिकाओं, गोपुरद्वारों और तोरणों से विचित्र बारह वेदियां हैं।।१९११।।

---

१. तिलोयपण्णत्ति पृ. ३९० से ३९३ तक।

चउजोयणउच्छेहा उवरिं पीढस्स कणयवरखंभा। विविहमणिणियरखचिदा चामरघंटापयारजुदा।।१९१२।।
सव्वेसुं थंभेसुं महाधया विविहवण्णरमणिज्जा। णामेण महिंदधया छत्तत्तयसिहरसोहिल्ला।।१९१३।।
पुरदो महाधयाणं मकरप्पमुहेहिं मुक्कसलिलाओ। चत्तारो वावीओ कमलुप्पलकुमुदछण्णाओ।।१९१४।।
पण्णासकोसउदया कमसो पणुवीस रुंददीहत्ता। दस कोसा अवगाढा वावीओ वेदियादिजुत्ताओ।।१९१५।।
को ५० । १०० । गा १० ।
वावीणं बहुमज्झे चेट्ठदि एक्को जिणिंदपासादो। विप्फुरिदरयणकिरणो किं बहुसो सो णिरुवमाणो।।१९१६।।
तत्तो दहाउ पुरदो पुव्वुत्तरदक्खिणेसु भागेसुं। पासादा रयणमया देवाणं कीडणा होंति ।। १९१७
पण्णासकोसउदया कमसो पणुवीस रुंददीहत्ता। धूवधडेहिं जुत्ता ते णिलया विविहवण्णधरा।।१९१८।।
को ५० । २५ । २५ ।
वरवेदियाहिं रम्मा वरकंचणतोरणेहिं परियरिया। वरवज्जणीलमरगयणिम्मिदभित्तीहिं सोहंते।।१९१९।।
ताण भवणाण पुरदो तेत्तियमाणेण दोण्णि पासादा। धुव्वंतधयवदाया फुरंतवररयणकिरणोहा।।१९२०।।
५० । २५ । २५ ।
तत्तो विचित्तरूवा पासादा दिव्वरयणणिम्मविदा।
कोससयमेत्तउदया कमेण पण्णासदीहवित्थिण्णा।।१९२१।।
जे जेट्ठदारपुरदो दिव्वमुहमंडवादि कहिदा य। ते खुल्लयदारेसुं हवंति अद्धप्पमाणेंहि ।।१९२२।।
तत्तो परदो वेदी एदाणिं वेढिदूण सव्वाणिं। चेट्ठदि चरिअट्टालयगोउरदोरहिं कणयमई।।१९२३।।

पीठ के ऊपर विविध प्रकार के मणिसमूह से खचित और अनेक प्रकार के चमर व घंटाओं से युक्त चार योजन ऊँचे सुवर्णमय खम्भे हैं।।१९१२।। सब खम्भों के ऊपर अनेक प्रकार के वर्णों से रमणीय और शिखर पर तीन छत्रों से सुशोभित महेन्द्र नामक महाध्वजायें हैं।।१९१३।। महाध्वजाओं के आगे मगर आदि जलजन्तुओं से रहित जल वाली और कमल, उत्पल व कुमुदों से व्याप्त चार वापिकायें हैं।।१९१४।। वेदिकादि से सहित वापिकायें प्रत्येक पचास कोस प्रमाण विस्तार से युक्त, इससे दुगुणी अर्थात् सौ कोस लम्बी और दश कोस गहरी हैं।।१९१५।। को. ५० । १०० । ग. १०। **वापियों के बहुमध्य भाग में प्रकाशमान रत्नकिरणों से सहित एक जिनेन्द्रप्रासाद स्थित** है। बहुत कथन से क्या, वह जिनेन्द्रप्रासाद (जिनमंदिर) निरूपम है।।१९१६।। अनन्तर वापियों के आगे पूर्व, उत्तर और दक्षिण भागों में देवों के रत्नमय क्रीडाभवन हैं।।१९१७।। विविध वर्णों को धारण करने वाले वे भवन पचास कोस ऊँचे, क्रम से पच्चीस कोस विस्तृत और पच्चीस ही कोस लम्बे तथा धूपघटों से संयुक्त हैं।।१९१८।। को. ५० । २५ । २५। उत्तम वेदिकाओं से रमणीय और उत्तम सुवर्णमय तोरणों से युक्त वे भवन उत्कृष्ट वज्र, नीलमणि और मरकत मणियों से निर्मित भित्तियों से शोभायमान हैं।।१९१९।। उन भवनों के आगे इतने ही प्रमाण से संयुक्त फहराती हुई ध्वजापताकाओं से सहित और प्रकाशमान उत्तम रत्नों के किरणसमूह से सुशोभित दो प्रासाद हैं।।१९२०।। ५० ।। २५ । २५ । इसके आगे सौ कोस ऊंचे और क्रम से पचास कोस लम्बे-चौड़े दिव्य रत्नों से निर्मित विचित्र रूप वाले प्रासाद हैं।।१९२१।। ज्येष्ठ द्वार के आगे जो दिव्य मुखमण्डपादिक कहे जा चुके हैं, वे आधे प्रमाण से सहित क्षुद्र द्वारों में भी हैं।।१९२२।। इसके आगे मार्ग, अट्टालिकाओं और गोपुरद्वारों से सहित सुवर्णमयी वेदी इन सबको वेष्टित करके स्थित है।।१९२३।। इस वेदी के आगे चारों

तीए परदो वरिया तुंगेहिं कणयरयणथंभेहिं। चेट्ठंति चउदिसासुं दसप्पयारा धयणिबंधा।।१९२४।।

हरिकरिवसहखगाहिवसिहिससिरविहंसकमलचक्कधया।

अट्ठुत्तरसयसंखा पत्तेक्कं तेत्तिया खुल्ला।।१९२५।।

चामीयरवरवेदी एदाणिं वेढिदूण चेट्ठेदि। विप्फुरिदरयणकिरणा चउगोउरदाररमणिज्जा।।१९२६।।

बे कोसाणिं तुंगा वित्थारेणं धणूणि पंचसया। विप्फुरिदधयवदाया फडिहमयाणेयवरभित्ती।।१९२७।।

को २ । दं ५०० ।

तीए परदो दसविहकप्पतरू ते समंतदो होंति । जिणभवणेसुं तिहुवणविम्हयजणणेहिं रूवेहिं ।।१९२८।।

गोमेदयमयखंधा कंचणमयकुसुमणियररमणिज्जा।

मरगयमयपत्तधरा विद्दुमवेरुलियपउमरायफला।।१९२९।।

सव्वे अणाइणिहणा अकट्टिमा कप्पपायवपयारा। मूलेसु चउदिसासुं चत्तारि जिणिंदपडिमाओ।।१९३०।।

तप्फलिहवीहिमज्झे वेरुलियमयाणि माणथंभाणिं। वीहिं पडि पत्तेयं विचित्तरूवाणि रेहंति।।१९३१।।

चामरघंटाकिंकिणिकेतणपहुदीहिं उवरि संजुत्ता। सोहंति माणथंभा चउवेदीदारतोरणेहिं जुदा।।१९३२।।

ताणं मूले उवरिं जिणिंदपडिमाओ चउदिसंतेसुं। वररयणणिम्मिदाओ जयंतु जयथुणिदचरिदाओ।।१९३३।।

कप्पमहिं परिवेढिय साला वररयणणियरणिम्मविदा। चेट्ठदि चरियट्टालयणाणाविहधयवडाडोवा।१९३४।।

चूलियदक्खिणभाए पच्छिमभायम्मि उत्तरविभागे। एक्केक्कं जिणभवणं पुव्वम्मि वण्णणेहिं जुदं।।१९३५।।

दिशाओं में सुवर्ण एवं रत्नमय उन्नत खम्भों से सहित दश प्रकार की श्रेष्ठ ध्वजपंक्तियाँ स्थित हैं ।।१९२४।। **सिंह, हाथी, बैल, गरुड़, मोर, चन्द्र, सूर्य, हंस, कमल और चक्र, इन चिह्नों से युक्त ध्वजाओं में से प्रत्येक एक सौ आठ और इतनी ही क्षुद्रध्वजायें हैं** ।।१९२५।। प्रकाशमान रत्नकिरणों से संयुक्त और चार गोपुरद्वारों से रमणीय सुवर्णमय उत्तम वेदी इनको वेष्टित करके स्थित है।।१९२६।। यह वेदी दो कोस ऊँची, पांच सौ धनुष चौड़ी, फहराती हुई ध्वजापताकाओं से सहित और स्फटिक मणिमय अनेक उत्तम भित्तियों से संयुक्त है।।१९२७।। को. २ । द. ५००। इसके आगे जिनभवनों में चारों ओर तीनों लोकों को आश्चर्य उत्पन्न करने वाले स्वरूप से संयुक्त वे दश प्रकार के कल्पवृक्ष हैं।।१९२८।। सब प्रकार के कल्पवृक्ष गोमेदमणिमय स्कन्ध से सहित, सुवर्णमय कुसुमसमूह से रमणीय, मरकतमणिमय पत्तों को धारण करने वाले, मूंगा, नीलमणि एवं पद्मरागमणिमय फलों से संयुक्त, अकृत्रिम और अनादिनिधन हैं। **इनके मूल में चारों ओर चार जिनेन्द्रप्रतिमायें विराजमान** हैं।। १९२९-१९३०।। उन स्फटिक मणिमय वीथियों के मध्य में से प्रत्येक वीथी के प्रति विचित्र रूप वाले वैडूर्यमणिमय मानस्तम्भ सुशोभित हैं।।१९३१।। चार वेदीद्वार और तोरणों से युक्त ये मानस्तम्भ ऊपर चँवर, घंटा, किंकिणी और ध्वजा इत्यादि से संयुक्त होते हुए शोभायमान होते हैं।।१९३२।। **इन मानस्तम्भों के नीचे और ऊपर चारों दिशाओं में विराजमान, उत्तम रत्नों से निर्मित और जग से कीर्तित चरित्र से संयुक्त जिनेन्द्रप्रतिमाएँ जयवन्त होवें**।।१९३३।। मार्ग व अट्टालिकाओं से युक्त, नाना प्रकार की ध्वजापताकाओं के आटोप से सुशोभित और श्रेष्ठ रत्नसमूह से निर्मित कोट इस कल्पमही को वेष्टित करके स्थित है।।१९३४।। चूलिका के दक्षिण, पश्चिम और उत्तर भाग में भी **पूर्वदिशावर्ती जिनभवन के समान वर्णनों से संयुक्त एक-एक जिनभवन** है उपर्युक्त वर्णन पांडुकवन के जिनमंदिर का है।।१९३५।। इस प्रकार यहां संक्षेप से

एवं संखेवेणं पंडुगवणवण्णणाओ भणिदाओ। वित्थारवण्णणेसुं सक्को वि ण सक्कदे तस्स।।१९३६।।
पंडुगवणस्स हेट्ठे छत्तीससहस्सजोयणा गंतुं। सोमणसं णाम वणं मेरुं परिवेढिदूण चेट्ठेदे।।१९३७।।
३६०००।
पणसयजोयणरुंदं चामीयरवेदियाहिं परियरियं। चउगोउरसंजुत्तं खुल्लयदारेहिं रमणिज्जं।।१९३८।।
चत्तारि सहस्साणिं बाहत्तरिजुत्तदुसयजोयणया। एक्करसहिदट्ठकला विक्खंभो बाहिरो तस्स[१]।।१९३९।।
४२७२। ८।
११

समवसरण में चैत्यवृक्ष व सिद्धार्थवृक्ष पर जिनप्रतिमाएँ

तत्तो चउत्थउववणभूमीए असोयसत्तवण्णवणं। चंपयचूदवणाणं पुव्वादिदिसासु राजंति[१]।।८०३।।
विविहवणसंडमंडणविविहणईपुलिणकीडणगिरीहिं। विविहवरवाविआहिं उववणभूमीउ रम्माओ।।८०४।।
एक्केक्काए उववणखिदिए तरवो यसोयसत्तदला। चंपयचूदा सुंदरभूदा चत्तारि-चत्तारि।।८०५।।
चामरपहुदिजुदाणं चेत्ततरूणं हवंति उच्छेहा। णियणियजिणउदएहिं बारसगुणिदेहिं सारिच्छा।।८०६।।
६०००।५४००।४८००।४२००।३६००।३०००।२४००।१८००।१२००।१०८०। ९६०। ८४०। ७२०।
६००। ५४०। ४८०। ४२०। ३६०। ३००। २४०। १८०। १२०। २७। २१।
मणिमयजिणपडिमाओ अट्ठमहापाडिहेरसंजुत्ता। एक्केक्कस्सिं चेत्तद्दुमम्मि चत्तारि चत्तारि।।८०७।।
उववणवाविजलेणं सित्ता पेच्छंति एक्कभवजाइं। तस्स णिरिक्खणमेत्ते सत्तभवातीदभाविजादीओ।।८०८।।

पाण्डुकवन का वर्णन किया गया है। उसका विस्तार से वर्णन करने के लिये तो इन्द्र भी समर्थ नहीं हो सकता है।।१९३६।। पाण्डुकवन के नीचे छत्तीस हजार योजन जाकर सौमनस नामक वन मेरु को वेष्टित करके स्थित है।।१९३७।। ३६०००। यह सौमनस वन पाँच सौ योजनप्रमाण विस्तार से सहित, सुवर्णमय वेदिकाओं से वेष्टित, चार गोपुरों से संयुक्त और क्षुद्रद्वारों से रमणीय है।।१९३८।। उसका बाह्यविस्तार चार हजार दो सौ बहत्तर योजन और ग्यारह से भाजित आठ कलाप्रमाण है।।१९३९।। ४२७२-८/११।

समवसरण में चैत्यवृक्ष व सिद्धार्थवृक्ष पर जिनप्रतिमाएँ

इसके आगे चौथी उपवन भूमि होती है, जिसमें पूर्वादिक दिशाओं के क्रम से अशोकवन, सप्तपर्णवन, चम्पकवन और आम्रवन ये चार वन शोभायमान होते हैं।।८०३।। ये उपवनभूमियाँ विविध प्रकार के वनसमूहों से मण्डित, विविध नदियों के पुलिन और क्रीडापर्वतों से तथा अनेक प्रकार की उत्तम वापिकाओं से रमणीय होती हैं।।८०४।। एक-एक उपवनभूमि में **अशोक, सप्तच्छद, चम्पक और आम्र** ये चार-चार सुन्दर वृक्ष होते हैं।।८०५।। चामरादि (चँवर) से सहित चैत्यवृक्षों की ऊँचाई बारह से गुणित अपने-अपने तीर्थंकरों की ऊँचाई के सदृश होती है।।८०६।। एक-एक चैत्यवृक्ष के आश्रित आठ महाप्रातिहार्यों से संयुक्त **चार-चार मणिमय जिनप्रतिमाएँ होती हैं**।।८०७।। उपवन की वापिकाओं के जल से अभिषिक्त जनसमूह एक भवजाति को देखते हैं और उसके निरीक्षण मात्र के होने पर अर्थात् वापी के जल में निरीक्षण करने पर सात अतीत व अनागत

---

१. तिलोयपण्णत्ति पृ. २४८, २५३।

सालत्तयपरिअरिया पीढत्तयउवरि माणथंभा य। चत्तारो चत्तारो एक्केक्के चेत्तरुक्खम्मि।।८०९।।
चत्तारो चत्तारो पुव्वादिसु महा णमेरुमंदारा। संताणपारिजादा सिद्धत्था कप्पभूमीसुं।।८३३।।
सव्वे सिद्धत्थतरू तिप्पायारा तिमेहलसिरत्था। एक्केक्कस्स य तरुणो मूले चत्तारि चत्तारि।।८३४।।
सिद्धाणं पडिमाओ विचित्तपीढाओ रयणमइयाओ। वंदणमेत्तणिवारियदुरंतसंसारभीदीओ।।८३५।।
सालत्तयपरिवेढियतिपीढउवरम्मि माणथंभा य। चत्तारो चत्तारो सिद्धत्थतरुम्मि एक्केक्के।।८३६।।
कल्पतरू सिद्धत्था कीडणसालाओ तासु पासादा।
णियणियजिणउदयेहिं बारसगुणिदेहिं समउदया।।८३७।।
६०००। ५४००। ४८००। ४२००। ३६००। ३०००। २४००। १८००। १२००। १०८०। ९६०। ८४०। ७२०। ६००। ५४०। ४८०। ४२०। ३६०। ३००। २४०। १८०। १२०। २७। २१।

पांडुकवन में जिनमंदिर में चैत्यवृक्ष

पीढस्स चउदिसासुं बारस वेदीओ होंति भूमियले। वरगोउराओ तेत्तियमेत्ताओ पीढउड्ढम्मि[1]।।१९०३।।
पीढस्सुवरिमभागे सोलसगव्वूदिमेत्तउच्छेहो। सिद्धंतो णामेणं चेत्तदुमो दिव्ववरतेओ ।।१९०४।।
को १६ ।
खंधुच्छेहो कोसा चत्तारो बहलमेक्कगव्वूदी। बारसकोसा साहादीहत्तं चेय विच्चालं।।१९०५।।
को ४ । १ । १२ । १२ ।

भवजातियों को देखते हैं।।८०८।। एक-एक चैत्यवृक्ष के आश्रित तीन कोटों से वेष्टित व तीन पीठों के ऊपर चार-चार मानस्तम्भ होते हैं।।८०९।। कल्पभूमियों के भीतर पूर्वादिक दिशाओं में **नमेरु, मंदार, संतानक और पारिजात,** ये चार-चार महान् सिद्धार्थ वृक्ष होते हैं।। ८३३।। ये सब सिद्धार्थ वृक्ष तीन कोटों से युक्त और तीन मेखलाओं के ऊपर स्थित होते हैं। इनमें से प्रत्येक वृक्ष के मूल भाग में विचित्र पीठों से संयुक्त और **वन्दना करने मात्र से ही दुरन्त संसार के भय को नष्ट करने वाली ऐसी रत्नमय चार-चार सिद्धों की प्रतिमाएँ होती हैं**।। ८३४-८३५।। एक-एक सिद्धार्थवृक्ष के आश्रित, तीन कोटों से वेष्टित पीठत्रय के ऊपर चार-चार मानस्तम्भ होते हैं।।८३६।। कल्पभूमियों में स्थित सिद्धार्थ कल्पवृक्ष, क्रीडनशालाएँ और प्रासाद बारह से गुणित अपने-अपने जिनेन्द्र की ऊँचाई के समान ऊँचाई वाले होते हैं।। ८३७।।

पांडुकवन में जिनमंदिर में चैत्यवृक्ष

पीठ के चारों ओर उत्तम गोपुरों से युक्त बारह वेदियां भूमितल पर और इतनी ही पीठ के ऊपर हैं।।१९०३।। पीठ के उपरिम भाग पर सोलह कोस प्रमाण ऊंचा दिव्य व उत्तम तेज को धारण करने वाला सिद्धार्थ नामक चैत्यवृक्ष है ।। १९०४ ।। को. १६ । चैत्यवृक्ष के स्कन्ध की ऊँचाई चार कोस, बाहल्य एक कोस और शाखाओं की लम्बाई व अन्तराल बारह कोस प्रमाण है।।१९०५।। को. ४ । १। १२। १२। पीठ के ऊपर इसी प्रमाण को

---

१. तिलोयपण्णत्ति, पृ. ३९०, ३९१।

इगिलक्खं चालीसं सहस्सया इगिसयं च वीसजुदं। तस्स परिवाररुक्खा पीढोवरि तप्पमाणधरा।।१९०६।।
१४०१२० ।
विविहवररयणसाहा मरगयपत्ता य पउमरायफला। चामीयररजदमयाकुसुमजुदा सयलकालं ते।।१९०७।।
सव्वे अणाइणिहणा पुढविमया दिव्वचेत्तवररुक्खा। जीवुप्पत्तिलयाणं कारणभूदा सइं भवंति।।१९०८।।
रूक्खाण चउदिसासुं पत्तेक्कं विविहरयणरइदाओ। जिणसिद्धप्पडिमाओ जयंतु चत्तारि चत्तारि।।१९०९।।
चेत्ततरूणं पुरदो दिव्वं पीढं हवेदि कणयमयं। उच्छेहदीहवासा तस्स य उच्छण्णउवएसा।।१९१०।।

धारण करने वाले **एक लाख चालीस हजार एक सौ बीस इसके परिवार वृक्ष हैं**।।१९०६।। १,४०,१२०। ये वृक्ष विविध प्रकार के उत्तम रत्नों से निर्मित शाखाओं, मरकतमणिमय पत्तों, पद्मरागमणिमय फलों और सुवर्ण एवं चाँदी से निर्मित पुष्पों से सदैव संयुक्त रहते हैं।।१९०७ ।। ये सब उत्तम दिव्य चैत्यवृक्ष अनादिनिधन और पृथ्वीरूप होते हुए जीवों की उत्पत्ति और विनाश के स्वयं कारण होते हैं।।१९०८।। **इन वृक्षों में प्रत्येक वृक्ष के चारों ओर विविध प्रकार के रत्नों से रचित चार-चार जिन और सिद्धों की प्रतिमायें विराजमान हैं। ये प्रतिमायें जयवन्त होवें**।।१९०९।। चैत्यवृक्षों के आगे सुवर्णमय दिव्य पीठ है। इसकी ऊँचाई, लम्बाई और विस्तारादिक का उपदेश नष्ट हो गया है।।१९१०।।

मध्यलोक जिनालय वंदना

जय जय मध्यलोक के जिनगृह चार शतक अट्ठावन।
जय जय अकृत्रिम मणिमय जिनमंदिर जन मन भावन।।
जय जय पाँचमेरु के अस्सी जिनमंदिर सुखकारी।
जय जंबूशाल्मलि तरु आदिक दश जिनगृह दुःख हारी।।5।।

जय जय कुलपर्वत के जिनगृह तीस अकृत्रिम शोभें।
जय जय गजदंतों के जिनगृह बीस भव्य मन लोभें।।
जय जय जय वक्षार गिरी के अस्सी जिनगृह सुंदर।
जय जय जय विजयार्ध अचल के जिनगृह इक सौ सत्तर।।6।।

जय जय इष्वाकार अचल के चार जिनालय शाश्वत।
जयजय मनुजोत्तर पर्वत के चार जिनालय भास्वत।।
जय जय नंदीश्वर के बावन जिनमंदिर अभिरामा।
जय जय कुंडलगिरि रुचक गिरी के चार-चार जिनधामा।।7।।

-गणिनी ज्ञानमती

अकृत्रिम जिनमन्दिर के परकोटे में चैत्यवृक्ष-सिद्धार्थ वृक्ष एवं ध्वजाएँ
(स्तूप व चैत्यवृक्षों में जिनप्रतिमायें हैं)
(जंबूदीवपण्णत्ती से[1])

ताणं सभाधराणं पुरदो थूहाणि होंति रम्माणि। जिणवरपडिमच्छण्णा णाणामणिरयणपरिणामा।।४१।।
रयणमयविउलपीढं उत्तुंगं जोयणाणि चालीसं। थूहस्स दु चउवीसाकंचणवेदीसमाजुत्तं।।४२।।
पीढस्सुवरि विचित्तं तिमेहलापरिउडं महाथूहं। आयामं विक्खंभं उच्छेहं होइ चउसट्ठी।।४३।।
थूहादो पुव्वदिसं गंतूणं होइ कणयमयपीढं। विक्खंभायामेण य सहस्स तह जोयणाणेया।।४४।।
वारसवेदिसमग्गं वरतोरणमंडियं परमरम्मं। मणिगणजलंतणिवहं बहुतरुगणसंकुलं दिव्वं।।४५।।
तस्स दु पीढस्सुवरिं सोलस तह जोयणा समुत्तुंगा। चेदियरुक्खा णेया णाणामणिरयणपरिणामा।।४६।।
एगं च सयसहस्सं चालीसा तह सहस्स परिसंखा। एगसयं वीसहिया सिद्धत्थतरूण परिसंखा।।४७।।
उड्ढं गंतूण पुणो धरणीदो जोयणाणि चत्तारि। चदुसु वि दिसाविभागे साहाओ होंति णिद्दिट्ठा।।४८।।
बारहजोयण दीहा सिद्धत्थयणामधेयरुक्खाणं। विक्खंभेण य जोयण णिद्दिट्ठा सव्वदरिसीहिं।।४९।।
अट्ठेव जोयणेसु य रुंदेसु महादुमेसु णिद्दिट्ठा। जिणइंदाणं पडिमा अकिट्टिमा सासयसभावा।।५०।।
पलियंकासणबद्धा रयणमया पाडिहेरसंजुत्ता। सव्वाणं रुक्खाणं चदुसु वि भागेसु ते होंति।।५१।।

अकृत्रिम जिनमन्दिर के परकोटे में चैत्यवृक्ष-सिद्धार्थ वृक्ष एवं ध्वजाएँ
(स्तूप व चैत्यवृक्षों में जिनप्रतिमायें हैं)
(जम्बूद्वीप पण्णत्ति से)

उन सभागृहों के आगे जिनेन्द्रप्रतिमाओं से युक्त नाना मणि एवं रत्नों के परिणामरूप रमणीय स्तूप होते हैं।।४१।। स्तूप का रत्नमय विशाल पीठ चौबीस सुवर्णमय वेदियों से संयुक्त तथा चालीस योजन ऊँचा होता है।।४२।। पीठ के ऊपर तीन मेखलाओं से वेष्टित महास्तूप होता है। इसका आयाम, विष्कम्भ और उत्सेध चौंसठ योजन प्रमाण होता है।।४३।।स्तूप से आगे पूर्व दिशा में जाकर एक हजार योजन प्रमाण विष्कम्भ व आयाम से सहित सुवर्णमय पीठ जानना चाहिये।।४४।। यह दिव्य पीठ बारह वेदियों से परिपूर्ण, उत्तम तोरणों से मण्डित, अतिशय रमणीय, देदीप्यमान मणिगणों के समूहों से युक्त और बहुत से तरुगणों से व्याप्त होता है।।४५।। उस पीठ के ऊपर स्थित सोलह ऊँचे नाना मणियों एवं रत्नों के परिणामरूप चैत्यवृक्ष जानना चाहिये।।४६।। **सिद्धार्थ वृक्षों की संख्या एक लाख चालीस हजार एक सौ बीस है**।।४७।।पृथिवी से चार योजन ऊपर जाकर चारों ही दिशा विभागों में उनकी शाखायें निर्दिष्ट की गई हैं।।४८।। सर्वदर्शियों द्वारा सिद्धार्थ नामक वृक्षों की (शाखाएँ) बारह योजन दीर्घ और एक योजन विष्कम्भ से युक्त निर्दिष्ट की गई हैं।।४९।। आठ योजन रुंद वाले **उन महाद्रुमों पर अकृत्रिम और शाश्वतिक स्वभाव वाली जिनेन्द्रों की प्रतिमाएँ** निर्दिष्ट की गई हैं।।५०।। पल्यंकासन से विराजमान और प्रातिहार्यों से संयुक्त वे **रत्नमय जिनप्रतिमायें** सब वृक्षों के चारों ही भागों में होती हैं।।५१।।उस वृक्षसमूह से पुनः पूर्व दिशाभाग में जाकर बारह वेदियों से संयुक्त ध्वजासमूहों का

---

१. जम्बूद्वीवपण्णत्ति पृ. ९१ से ९३ तक।

तत्तो दुमसंडादो गंतूण पुणो वि पुव्वदिसभागे। धयणिवहाणं पीढं वारसवेदीहिं संजुत्तं।।५२।।
तम्मि वरपीढसिहरे सोलस तह जोजणा समुत्तुंगा। कोसेग होंति रुंदा वेरुलियमया महाखंभा।।५३।।
खंभेसु होंति दिव्वा महाधया विविहवण्णसंजुत्ता। छत्तत्तयवरसिहरा अणोवमा रूवसंपण्णा।।५४।।
धयणिवहाणं पुरदो वावीओ होंति सलिलपुण्णाओ। सययोजणदीहाओ पण्णासाओ य रुंदाओ।।५५।।
दसजोजणउंडाओ कंचणमणिवेदिएहि जुत्ताओ। मणितोरणणिवहाओ कमलुप्पलकुसुमछण्णाओ।।५६।।
एवं पुव्वदिसाए जिणभवणं मंदरस्स णिद्दिट्ठं। अवसेसाण दिसाणं एमेव कमो मुणेयव्वो।।५७।।
तत्तो दहादु परदो पुव्वुत्तरदक्खिणेसु भागेसु। पासादा णायव्वा देवाणं कीडणा होंति।।५८।।
कणयमया पासादा पण्णासा जोयणा समुत्तुंगा। विक्खंभायामेण य पणवीसा होंति णिद्दिट्ठा।।५९।।
कणयमया पासादा वेरुलियमया य मरगयमया य। ससिकंतसूरकंताकक्केयणपुस्सरागमया।।६०।।
वरवेदिएहिं जुत्ता कंचणमणिरयणजालपरियरियं। अक्खइअणाइणिहणा को सक्कइ वण्णिउं सयलं।।६१।।
तेहिंतो गंतूणं पुव्वदिसाए पुणो वि णायव्वो। वरतोरणं विचित्तं मणिकंचणरयणसंछण्णं।।६२।।
जोयणसयद्धतुंगं तदद्धवित्थार भासुरं दिव्वं। मुत्तादामेणड्ढं वरघंटाजालरमणीयं।।६३।।
तत्तो परं विचित्ता पासादा गोउराण पासेसु। जोयणसयउव्विद्धा दो दो दु हवंति णायव्वा।।६४।।
तत्तो परं विचित्ता धयणिवहा विविहवण्णजादीया। असिदी सहस्स संखा णिद्दिट्ठा होंति णायव्वा।।६५।।
तोरणसयसंजुत्ता वरवेदीपरिउडा समुत्तुंगा। सायरतरंगभंगा सोहंति महाधया रम्मा।।६६।।
तत्तो परं वियाणह वणसंडं विविहपायवाइण्णं। वणवेदिएहि जुत्तं णाणामणिरयणपरिणामं।।६७।।

पीठ होता है ।।५२।। उस उत्तम पीठ के शिखर पर सोलह योजन ऊँचे और एक कोश विस्तार वाले वैडूर्यमणिमय विशाल खम्भ होते हैं।।५३।।खम्भा पर विविध वर्णों से संयुक्त, शिखर पर उत्तम तीन छत्रों से सुशोभित और अनुपम रूप से सम्पन्न दिव्य महाध्वजायें होती हैं।।५४।। ध्वजासमूहों के आगे सौ योजन दीर्घ, पचास योजन विस्तृत, दश योजन गहरी, सुवर्ण एवं मणिमय वेदिकाओं से युक्त, मणिमय तोरण समूह से संयुक्त, कमल व उत्पल कुसुमों से व्याप्त और जल से परिपूर्ण वापियां होती हैं ।। ५५-५६ ।। इस प्रकार मन्दर पर्वत की पूर्व दिशा में स्थित **जिनभवन** का स्वरूप निर्दिष्ट किया है । शेष दिशाओं के जिनभवनों का भी यही क्रम होना चाहिये।।५७।। उस द्रह के आगे पूर्व, उत्तर और दक्षिण भागों में देवों के क्रीडाप्रासाद हैं ।। ५८।। ये सुवर्णमय प्रासाद पचास योजन ऊंचे और पच्चीस योजन प्रमाण विष्कम्भ व आयाम से सहित निर्दिष्ट किये गये हैं।।५९।। उक्त प्रासाद सुवर्ण, वैडूर्यमणि, मरकतमणि, चन्द्रकान्त, सूर्यकान्त, कर्केतन एवं पुखराज मणियों से निर्मित, उत्तम वेदिकाओं से युक्त, सुवर्ण, मणि एवं रत्नों के समूह से व्याप्त, अक्षयी व अनादिनिधन हैं। उनका सम्पूर्ण वर्णन करने के लिये कौन समर्थ है ?।।६०-६१।। उनसे आगे फिर भी पूर्व दिशा में जाकर मणि, सुवर्ण, रत्नों से व्याप्त विचित्र उत्तम तोरण जानना चाहिये।।६२।। यह तोरण पचास योजन ऊंचा, इससे आधे (२५ यो.) विस्तार से सहित, भासुर, दिव्य, मुक्तामाला से संयुक्त और उत्तम घंटा समूह से रमणीय है।।६३।। इसके आगे गोपुरों से पार्श्व भागों में सौ योजन ऊंचे दो-दो विचित्र प्रासाद जानना चाहिये।।६४।। इसके आगे विविध वर्ण व जाति के **एक हजार अस्सी** (१८० × १०) संख्या प्रमाण विचित्र **ध्वजाओं के समूह** निर्दिष्ट किये गये हैं।।६५।। सौ तोरणों से संयुक्त व उत्तम वेदी से वेष्टित वे ऊंची रमणीय महाध्वजायें समुद्र की तरंगों के भंग के समान शोभायमान होती हैं।।६६।। इसके आगे विविध पादपों से व्याप्त, वनवेदिकाओं से युक्त, नाना मणियों व रत्नों के परिणामरूप, रत्नमय पीठ से सुशोभित, मणिमय तोरणों से मण्डित,

रयणमयपीढसोहं मणितोरणमंडियं मणभिरामं। कणयमयकुसुमसोहं मरगयवरपत्तसंछण्णं।।६८।।
चंपयअसोयगहणं सत्तच्छयअंबकप्पतरुणिवहं। वेरुलियफलसमिद्धं विद्दुमसाहाउलसिरीयं।।६९।।
ताणं कप्पदुमाणं मूलेसु हवंति चदुसु वि दिसासु। जिणइंदाणं पडिमा सपाडिहेरा विरायंति।।७०।।
सीद्दासणछत्तत्तयभामंडलचामरादिसंजुत्ता। पलियंकासणसंगद अणोवमा रूवसंठाणा।।७१।।

सिद्धार्थ वृक्षों में जिनप्रतिमायें

(आदिपुराण से)

पुष्पपल्लवोज्ज्वलेषु कल्पपादपोरुकाननेषु हारिषु
श्रीमदिन्द्रवन्दिताः स्वबुध्नसुस्थितेद्धसिद्धबिम्बका द्रुमाः।
सन्ति तानपि प्रणौम्यमूं नमामि च स्मरामि च प्रसन्नधीः
स्तूपपंक्तिमप्यमूं समग्ररत्नविग्रहां जिनेन्द्रबिम्बिनीम्[१]।।१९०।।

समवसरण में उपवनभूमि में चैत्यवृक्षों में जिनप्रतिमायें

बभासे वनमाशोकं शोकापनुदमङ्गिनाम्। रागं वमदिवात्मीयमारक्तैः पुष्पपल्लवैः[२]।।१८०।।
पर्णानि सप्त विभ्राणं वनं सप्तच्छदं बभौ। सप्तस्था नानि बाभर्तुर्दर्शयत्प्रति पर्व यत्।।१८१।।
चाम्पकं वनमत्राभात् सुमनोभरभूषणम्। वने दीपाङ्गवृक्षाणां विभुं भक्तुमिवागताम्।।१८२।।
कम्रमाम्रवनं रेजे कलकण्ठीकलस्वनैः। स्तुवानमिव भक्त्यैनमीशानं पुण्यशासनम्।।१८३।।

मनोहर, सुवर्णमय कुसुमों से शोभित, मरकत मणिमय उत्तम पत्तों से व्याप्त, चंपक व अशोक वृक्षों से गहनः, सप्तच्छद व आम्र कल्पवृक्षों से परिपूर्ण, वैडूर्यमय फलों से समृद्ध और मूंगामय शाखाओं की शोभा से संयुक्त वनखण्ड जानना चाहिये।।६७-६९।। उन कल्पवृक्षों के मूल भागों में चारों ही दिशाओं में प्रातिहार्य सहित **जिनेन्द्रों की प्रतिमायें** विराजमान हैं।।७०।। **ये प्रतिमायें सिंहासन, तीन छत्र, भामण्डल और चामरादि से संयुक्त, पल्यंकासन से स्थित और अनुपम रूप व संस्थान से युक्त** हैं।।७१।।

सिद्धार्थ वृक्षों में जिनप्रतिमायें

(आदिपुराण से)

फूल और पल्लवों से देदीप्यमान और अतिशय मनोहर कल्पवृक्षों के बड़े-बड़े वनों में लक्ष्मीधारी इन्द्रों के द्वारा वन्दनीय तथा जिनके **मूलभाग में सिद्ध भगवान् की देदीप्यमान प्रतिमाएँ विराजमान हैं** ऐसे जो सिद्धार्थ वृक्ष हैं, मैं प्रसन्नचित होकर उन सभी की स्तुति करता हूँ, उन सभी को नमस्कार करता हूँ और उन सभी का स्मरण करता हूँ, इसके सिवाय जिनका समस्त शरीर रत्नों का बना हुआ है और जो जिनेन्द्र भगवान् की प्रतिमाओं से सहित हैं ऐसे स्तूपों की पंक्ति का भी मैं प्रसन्नचित होकर स्तवन, नमन तथा स्मरण करता हूँ।।१९०।।

समवसरण में उपवनभूमि में चैत्यवृक्षों में जिनप्रतिमायें

उन चारों वनों में से पहला अशोक वन जो कि प्राणियों के शोक को नष्ट करने वाला था, लाल रंग के फूल और नवीन पत्तों से ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो अपने अनुराग (प्रेम) का ही वमन कर रहा हो।।१८०।। प्रत्येक गाँठ पर सात-सात पत्तों को धारण करने वाले सप्तच्छद वृक्षों का दूसरा वन भी सुशोभित हो रहा था जो कि ऐसा जान पड़ता था मानो वृक्षों के प्रत्येक पर्व पर भगवान् के सज्जातित्व, सद्गृहस्थत्व, पारिव्राज्य आदि

---

१. आदिपुराण पृ. ५७०। २. आदिपुराण पर्व-२२, पृ. ५२४ से ५२६ तक।

अशोकवनमध्येऽभूदशोकानोकहो महान्। हैमं त्रिमेखलं पीठं समुत्तुङ्गमधिष्ठितः।।१८४।।
चतुर्गोपुरसंबद्धत्रिसालपरिवेष्टितः। छत्रचामरभृङ्गारकलशाद्यैरुपस्कृतः।।१८५।।
जम्बूद्वीपस्थलीमध्ये भाति जम्बूद्रुमो यथा। तथा वनस्थलीमध्ये स बभौ चैत्यपादपः।।१८६।।
शाखाग्रव्याप्तविश्वाशः स रेजेऽशोकपादपः। अशोकमयमेवेदं जगत्कर्तुमिवोद्यतः।।१८७।।
सुरभीकृतविश्वाशैः कुसुमैः स्थगिताम्बरः। सिद्धाध्वानमिवारुन्धन् रेजेऽसौ चैत्यपादपः।।१८८।।
गारुडोपलनिर्माणैः पत्रैश्चित्रैश्चितोऽमितः। पद्मरागमयैः पुष्पस्तबकैः परितो वृतः।।१८९।।
हिरण्मयमहोदग्रशाखो वज्रेद्धबुध्नकः। कलालिकुलझङ्कारैस्तर्जयन्निव मन्मथम् ।।१९०।।
सुरासुरनरेन्द्रान्तरक्षेमालानविग्रहः। स्वप्रभापरिवेषेण द्योतिताखिलदिङ्मुखः।।१९१।।
रणदालम्बिघण्टाभिर्बधिरीकृतविश्वभूः। भूर्भुवः स्वर्जयं भर्तुः प्रतोषादिव घोषयन् ।।१९२।।
ध्वजांशुकपरा मृष्टनिर्मेघघनपद्धतिः। जगज्जनाङ्गसंलग्नमार्गः परिमृजन्निव।।१९३।।
मूर्ध्ना छत्रत्रयं बिभ्रन्मुक्तालम्बनभूषितम् । विभोस्त्रिभुवनैश्वर्यं विना वाचेव दर्शयन् ।।१९४।।

सात परम स्थानों को ही दिखा रहा हो।।१८१।। फूलों के भार से सुशोभित तीसरा चम्पक वृक्षों का वन भी सुशोभित हो रहा था और वह ऐसा जान पड़ता था मानो भगवान की सेवा करने के लिए दीपांग जाति के कल्पवृक्षों का वन ही आया हो।।१८२।। तथा कोयलों के मधुर शब्दों से मनोहर चौथा आम के वृक्षों का वन भी ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो पवित्र उपदेश देने वाले भगवान् की भक्ति से स्तुति ही कर रहा हो।।१८३।। अशोक वन के मध्य भाग में एक बड़ा भारी अशोक का वृक्ष था जो कि सुवर्ण की बनी हुई तीन कटनीदार ऊँची पीठिका पर स्थित था।।१८४।। वह वृक्ष, जिनमें चार-चार गोपुर द्वार बने हुए हैं ऐसे तीन कोटों से घिरा हुआ था तथा उसके समीप में ही छत्र, चमर, भृङ्गार और कलश आदि मंगलद्रव्य रखे हुए थे। १८५।। जिस प्रकार जम्बूद्वीप की मध्य भूमि में जम्बूवृक्ष सुशोभित होता है उसी प्रकार उस अशोक वन की मध्य भूमि में वह अशोक नामक चैत्यवृक्ष सुशोभित हो रहा था।।१८६।। जिसने अपनी शाखाओं के अग्रभाग से समस्त दिशाओं को व्याप्त कर रखा है ऐसा वह अशोक वृक्ष ऐसा शोभायमान हो रहा था मानो समस्त संसार को अशोकमय अर्थात् शोकरहित करने के लिए ही उद्यत हुआ हो।।१८७।। समस्त दिशाओं को सुगन्धित करने वाले फूलों से जिसने आकाश को व्याप्त कर लिया है ऐसा वह चैत्यवृक्ष ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो सिद्ध-विद्याधरों के मार्ग को ही रोक रहा हो।।१८८।। वह वृक्ष नीलमणियों के बने हुए अनेक प्रकार के पत्तों से व्याप्त हो रहा था और पद्मराग मणियों के बने हुए फूलों के गुच्छों से घिरा हुआ था।।१८९।। सुवर्ण की बनी हुई उसकी बहुत ऊँची-ऊँची शाखाएँ थीं, उसका देदीप्यमान भाग वज्र का बना हुआ था तथा उस पर बैठे हुए भ्रमरों के समूह जो मनोहर झंकार कर रहे थे उनसे वह ऐसा जान पड़ता था मानो कामदेव की तर्जना ही कर रहा हो।।१९०।। वह चैत्यवृक्ष सुर, असुर और नरेन्द्र आदि के मनरूपी हाथियों के बाँधने के लिए खंभे के समान था तथा उसने अपने प्रभामण्डल से समस्त दिशाओं को प्रकाशित कर रखा था।।१९१।। उस पर जो शब्द करते हुए घंटे लटक रहे थे उनसे उसने समस्त दिशाएँ बहरी कर दी थीं और उनसे वह ऐसा जान पड़ता था कि भगवान् ने अधोलोक, मध्यलोक और स्वर्गलोक में जो विजय प्राप्त की है सन्तोष से मानो वह उसकी घोषणा ही कर रहा हो।।१९२।। वह वृक्ष ऊपर लगी हुई ध्वजाओं के वस्त्रों से पोंछ-पोंछकर आकाश को मेघरहित कर रहा था और उनसे ऐसा जान पड़ता था मानो संसारी जीवों की देह में लगे हुए पापों को ही पोंछ रहा हो।।१९३।। वह वृक्ष मोतियों की झालर से सुशोभित तीन छत्रों को अपने सिर पर धारण कर

भ्रेजिरे बुध्नभागेऽस्य प्रतिमा दिक्चतुष्टये। जिनेश्वराणामिन्द्राद्यैः समवाप्ताभिषेचनाः।।१९५।।
गन्धस्रग्धूपदीपार्घ्यैः फलैरपि सहाक्षतैः। तत्र नित्यार्चनं देवा जिनार्चानां वितेनिरे।।१९६।।
क्षीरोदोदकधौताङ्गीरमलास्ता हिरण्मयीः। प्रणिपत्यार्हतामर्चाः प्रानर्चुर्नृसुरासुराः।।१९७।।
स्तुवन्ति स्तुतिभिः केचिदर्थ्याभिः प्रणमन्ति च। स्मृत्वावधार्य गायन्ति केचित्स्म सुरसत्तमाः।।१९८।।
यथाशोकस्तथान्येऽपि विज्ञेयाश्चैत्यभूरुहाः। वने स्वे स्वे सजातीया जिनबिम्बेद्धबुध्नकाः।।१९९।।
अशोकः सप्तपर्णश्च चम्पकश्चूत एव च। चत्वारोऽमी वनेष्वासन् प्रोत्तुङ्गाश्चैत्यपादपाः।।२००।।
चैत्याधिष्ठितबुध्नत्वादूढतन्नामरूढयः। शाखिनोऽमी विभान्ति स्म सुरेन्द्रैः प्राप्तपूजनाः।।२०१।।
फलैरलंकृता दीप्राः स्वपादाक्रान्तभूतलाः। पार्थिवाः सत्यमेवैते पार्थिवाः पत्रसंभृताः।।२०२।।
प्रव्यञ्जितानुरागाः स्वैः पल्लवैः कुसुमोत्करैः। प्रसादं दर्शयन्तोऽन्तर्विभुं भेजुरिमे द्रुमाः।।२०३।।
तरूणामेव तावच्चेदीदृशो विभवोदयः। किमस्ति वाच्यमीशस्य विभवेऽनीदृशात्मनः।।२०४।।

रहा था और उनसे ऐसा जान पड़ता था मानो भगवान् के तीनों लोकों के ऐश्वर्य को बिना वचनों के ही दिखला रहा हो।।१९४।। **उस चैत्यवृक्ष के मूलभाग में चारों दिशाओं में जिनेन्द्रदेव की चार प्रतिमाएँ थीं जिनका इन्द्र स्वयं अभिषेक करते** थे।।१९५।। **देव लोग वहाँ पर विराजमान उन जिनप्रतिमाओं की गन्ध, पुष्पों की माला,धूप, दीप, फल और अक्षत आदि से निरन्तर पूजा किया करते** थे।।१९६।। क्षीरसागर के जल से जिनके अंगों का प्रक्षालन हुआ है और जो अतिशय निर्मल हैं ऐसी सुवर्णमयी अरहंत की उन प्रतिमाओं को नमस्कार कर मनुष्य, सुर और असुर सभी उनकी पूजा करते थे।।१९७।। कितने ही उत्तम देव अर्थ से भरी हुई स्तुतियों से उन प्रतिमाओं की स्तुति करते थे, कितने ही उन्हें नमस्कार करते थे और कितने ही उनके गुणों का स्मरण कर तथा चिन्तवन कर गान करते थे।।१९८।। **जिस प्रकार अशोक वन में अशोक नाम का चैत्यवृक्ष है उसी प्रकार अन्य तीन वनों में भी अपनी-अपनी जाति का एक-एक चैत्यवृक्ष था और उन सभी के मूलभाग जिनेन्द्र भगवान् की प्रतिमाओं से देदीप्यमान थे।**।१९९।। इस प्रकार ऊपर कहे हुए चारों वनों में क्रम से अशोक, सप्तपर्ण, चम्पक और आम्र नाम के चार बहुत ही ऊँचे चैत्यवृक्ष थे।।२००।। मूलभाग में जिनेन्द्र भगवान् की प्रतिमा विराजमान होने से जो 'चैत्यवृक्ष' इस सार्थक नाम को धारण कर रहे हैं और इन्द्र जिनकी पूजा किया करते हैं ऐसे वे चैत्यवृक्ष बहुत ही अधिक सुशोभित हो रहे थे।।२०१।। पार्थिव अर्थात् पृथ्वी से उत्पन्न हुए वे वृक्ष सचमुच ही पार्थिव अर्थात् पृथ्वी के स्वामी—राजा के समान जान पड़ते थे क्योंकि जिस प्रकार राजा अनेक फलों से अलंकृत होते हैं उसी प्रकार वे वृक्ष भी अनेक फलों से अलंकृत थे, राजा जिस प्रकार तेजस्वी होते हैं उसी प्रकार वे वृक्ष भी तेजस्वी (देदीप्यमान) थे, राजा जिस प्रकार अपने पाद अर्थात् पैरों से समस्त पृथ्वी को आक्रान्त किया करते हैं (समस्त पृथ्वी में अपना यातायात रखते हैं) उसी प्रकार वे वृक्ष भी अपने पाद अर्थात् जड़ भाग से समस्त पृथ्वी को आक्रान्त कर रहे थे (समस्त पृथ्वी में उनकी जड़ें फैली हुई थीं) और राजा जिस प्रकार पत्र अर्थात् सवारियों से भरपूर रहते हैं उसी प्रकार वे वृक्ष भी पत्र अर्थात् पत्तों से भरपूर थे।।२०२।। वे वृक्ष अपने पल्लव अर्थात् लाल-लाल नयी कोंपलों से ऐसे जान पड़ते थे मानो अन्तरंग का अनुराग (प्रेम) ही प्रकट कर रहे हों और फूलों के समूह से ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो हृदय की प्रसन्नता ही दिखला रहे हों। इस प्रकार वे वृक्ष भगवान् की सेवा कर रहे थे।।२०३।। जबकि उन वृक्षों का ही ऐसा बड़ा भारी माहात्म्य था तब उपमारहित भगवान् वृषभदेव के केवलज्ञानरूपी विभव के विषय में कहना ही क्या है—वह तो सर्वथा अनुपम ही था।।२०४।।

द्वितीय जंबूद्वीप

इसमें भी जिनमंदिर व चैत्यवृक्ष हैं

(तिलोयपण्णत्ति से)

जंबूद्वीवाहिंतो संखेज्जाणिं पयोधिदीवाणिं। गंतूण अत्थि अण्णो जंबूदीओ परमरम्मो[1]।।१७९।।

तत्थ वि विजयप्पहुदिसु भवंति देवाण दिव्वणयरीओ। उवरिं वज्जखिदीए चित्तामज्झम्मि पुव्वपहुदीसुं।।१८०।।

उच्छेहजोयणेणं पुरीओ बारससहस्सरुंदाओ। जिणभवणभूसिदाओ उववणवेदीहिं जुत्ताओ।।१८१।।

पण्णत्तरिदलतुंगा पायारा जोयणद्धमवगाढा। सव्वाणं णयरीणं णच्चंतविचित्तधयमाला।।१८२।।

कंचणपायाराणं वररयणविणिम्मियाण भूवासो। जोयणपणुवीसदलं तच्चउभागो य मुहवासो।।१८३।।

२५ २५
२ । ४

एक्केक्काए दिसाए पुरीण पणुवीसगोउरदुवारे। जंबूणदणिम्मविदा मणितोरणथंभरमणिज्जा।।१८४।।

बासट्ठि जोयणाणिं ताणं हवंति पुरोवरिपुराणं। उदओ तदलमेत्तो रुदो गाढो दुबे कोसा।।१८५।।

६२। ३१। को २।

मज्झे चेट्ठदि रायं विचित्तबहुभवणएहि अदिरम्मं। जोयणसदाणि बारस वासजुदं एक्ककोसउच्छेहो।।१८६।।

१२००। को १।

द्वितीय जंबूद्वीप

इसमें भी जिनमंदिर व चैत्यवृक्ष हैं

(तिलोयपण्णत्ति से)

जम्बूद्वीप से आगे संख्यात समुद्र व द्वीपों के पश्चात् अतिशय रमणीय दूसरा जम्बूद्वीप है।।१७९।। वहाँ पर भी वज्रा पृथिवी के ऊपर चित्रा के मध्य में **पूर्वादिक दिशाओं में विजय प्रभृति देवों की दिव्य नगरियाँ** हैं।।१८०।। ये नगरियाँ उत्सेध योजन से बारह हजार योजनप्रमाण विस्तार से सहित, **जिनभवनों से विभूषित और उपवनवेदियों से संयुक्त हैं**।।१८१।। विस्तार १२०० यो.। इन सब नगरियों के प्राकार पचहत्तर के आधे (साढ़े सैंतीस) योजन ऊँचे, अर्ध योजन प्रमाण अवगाह से सहित और फहराती हुई विचित्र ध्वजाओं के समूह से संयुक्त हैं।।१८२।। उत्सेध ७५/२। अवगाह १/२। उत्तम रत्नों से निर्मित इन सुवर्णप्राकारों का भूविस्तार पच्चीस के आधे (साढ़े बारह) योजन और मुखविस्तार पच्चीस का चतुर्थ भाग अर्थात् सवा छह योजनमात्र है।।१८३।। भूविस्तार २५/४। मुखविस्तार २५/४। इन नगरियों की एक-एक दिशा में सुवर्ण से निर्मित और मणिमय तोरण स्तम्भों से रमणीय पच्चीस गोपुरद्वार हैं।।१८४।। इन नगरियों के उत्तम भवनों की ऊँचाई बासठ योजन, इससे आधा विस्तार और अवगाह दो कोशमात्र है।।१८५।। उत्सेध ६२। विस्तार ३१। अवगाह को. २। नगरियों के मध्य में विचित्र, बहुत भवनों से अतिशय रमणीय, बारह सौ योजनप्रमाण विस्तार से सहित और एक

---

१. तिलोयपण्णत्ति, भाग-२ पृ. ५५१ से ५६० तक।

तस्स य थलस्स उवरिं समंतदो दोण्णि कोस उच्छेहं। पंचसयचावरुंदं चउगोउरसंजुदं वेदी।।१८७।।
को २ । दंड ५००।
रायंगणबहुमज्झे कोससयं पंचवीसमब्भहियं। विक्खंभो तद्दुगुणो उदओ गाढं दुवे कोसा।।१८८।।
१२५। २५०। को २।
पासादो मणितोरणसंपुण्णो अट्ठजोयणुच्छेहो। चउवित्थारो दारो वज्जकवाडेहिं सोहिल्लो।।१८९।।
८।४।
एदस्स चउदिसासु चत्तारो होंति दिव्वपासादा। उप्पण्णुप्पण्णाणं चउ चउ वड्ढंति जाव छक्कंतं।।१९०।।
एत्तो पासादाणं परिमाणं मंडले पडिभणामो। एक्को हवेदि मुक्खो चत्तारो मंडलम्मि पढमम्मि।।१९१।।
१। ४।
सोलस विदिए तदिए चउसट्ठी बेसदं च छप्पण्णं। तुरिमे तं चउपहदं पंचमिए मंडलम्मि पासादा।।१९२।।
१६। ६४। २५६। १०२४।
चत्तारि सहस्साणिं छण्णउदिजुदाणि होंति छट्ठीए। एत्तो पासादाणं उच्छेहादिं परूवेमो।।१९३।।
४०९६।
सव्वब्भंतरमुक्खप्पासादुस्सेहवासगाडसमा। आदिमदुगमंडलए तस्स दलं तदिय-तुरिमम्मि।।१९४।।
पंचमिए छट्ठीए तद्दलमेत्तं हुवेदि उदयादी। एक्केक्के पासादे एक्केक्का वेदिया विचित्तयरा।।१९५।।
वेकोसुच्छेहादिं पंचसयाणिं धणूणि वित्थिण्णा। आदिल्लयपासादे पढमे विदियम्मि तम्मेत्ता।।१९६।।

कोश ऊँचा राजांगण स्थित है।।१८६।। विस्तार १२००। उत्सेध को. १। इस स्थल के ऊपर चारों ओर दो कोश ऊँची, पांच सौ धनुष विस्तीर्ण और चार गोपुरों से युक्त वेदी स्थित है।।१८७।। उत्सेध २ को. । विस्तार ५०० धनुष। राजांगण के बहुमध्य भाग में एक सौ पच्चीस कोश विस्तार वाला, इससे दूना ऊँचा, दो कोश मात्र अवगाह से सहित और मणिमय तोरणों से परिपूर्ण प्रासाद है। इसका वज्रमय कपाटों से सुशोभित द्वार आठ योजन ऊँचा और चार योजन मात्र विस्तार से सहित है।।१८८-१८९।। प्रासाद विस्तार १२५। उत्सेध २५०। अवगाह २ को.। द्वारोत्सेध ८। विस्तार ४ यो.। इसकी चारों दिशाओं में चार दिव्य प्रासाद हैं। (?) उनसे आगे छठे मण्डल तक उत्तरोत्तर चार-चार गुणे प्रासाद हैं।।१९०।। यहाँ से प्रत्येक मण्डल के प्रासादों के प्रमाण को कहते हैं। एक (मध्य का) प्रासाद मुख्य है। प्रथम मण्डल में चार प्रासाद हैं।।१९१।। द्वितीय मण्डल में सोलह, तृतीय में चौंसठ, चतुर्थ में दो सौ छप्पन और पांचवें मण्डल में इससे चौगुणे अर्थात् दश सौ चौबीस प्रासाद हैं।।१९२।। द्वि. मं. १६। तृ. मं. ६४। च. मं. २५६। पं. मं. १०२४। छठे मण्डल में चार हजार छियानवे प्रासाद हैं। अब यहाँ से आगे भवनों की ऊँचाई आदि का निरूपण किया जाता है।।१९३।। षष्ठ मं. ४०९६। आदि के दो मंडलों में स्थित प्रासादों की ऊँचाई, विस्तार और अवगाह सबके बीच में स्थित मुख्य प्रासाद की ऊँचाई, विस्तार और अवगाह के समान है। तृतीय और चतुर्थ मंडल के प्रासादों की ऊँचाई आदि उससे आधी है। इससे भी आधी पंचम और छठे मण्डल के प्रासादों की ऊँचाई आदिक है। प्रत्येक प्रासाद के विचित्रतर एक-एक वेदिका है।। १९४-१९५।। प्रथम प्रासाद के आश्रित वेदी दो कोश, ऊँचाई आदि से सहित और पाँच सौ धनुष विस्तीर्ण है। प्रथम और द्वितीय मंडल में स्थित प्रासादों की वेदियाँ भी इतनी मात्र ऊँचाई आदि से सहित हैं।।१९६।। तृतीय व

पुव्विल्लवेदिअद्धं तदिए तुरिमम्मि होंति मंडलए। पंचमिए छट्ठीए तस्सद्धपमाणवेदीओ।।१९७।।

गुणसंकमणसरूवट्ठिदाण सव्वाण होदि परिसंखा। पंचसहस्सा चउसयसंजुत्ता एक्कसट्ठी य।।१९८।।

५४६१।

आदिमपासादादो उत्तरभागे ट्ठिदा सुधम्मसभा। दलिदपणुवीसजोयणदीहा तस्सद्धवित्थारा।।१९९।।

२५/२। २५/४।

णवजोयणउच्छेहा गाउदगाढा सुवण्णरयणमई। तीए उत्तरभागे जिणभवणं होदि तम्मेत्तं।।२००।।

९। को १।

पवणदिसाए पढमप्पासादादो जिणिंदगेहसमा। चेट्ठदि उववादसभा कंचणवररयणणिवहमई।।२०१।।

२५/२ ।२५/४। ९। को १।

पुव्वदिसाए पढमप्पासादादो विचित्तविण्णासा। चेट्ठदि अभिसेयसभा उववादसभाए सारिच्छा।।२०२।।

तत्थ च्चिय दिब्भाए अभिसेयसभासरिच्छवासादी। होदि अलंकारसभा मणितोरणदाररमणिज्जा।।२०३।।

तस्सिं चिय दिब्भाए पुव्वसभासरिसउदयवित्थारा। मंतसभा चामीयररयणमई सुंदरदुवारा।।२०४।।

एदे छप्पासादा पुव्वेहिं मंदिरेहि मेलविदा। पंच सहस्सा चउसयअब्भहिया सत्तसट्ठीहिं।।२०५।।

५४६७।

ते सव्वे पासादा चउदिम्मुहविप्फुरंतकिरणेहिं। वररयणपईवेहिं णिच्चच्चियणिच्चउज्जोवा।।२०६।।

पोक्खरणीरम्मेहिं उववणसंडेहिं विविहरुक्खेहिं। कुसुमफलसोहिदेहिं सुरमिहुणजुदेहि सोहंति।।२०७।।

चतुर्थ मण्डल के प्रासादों की वेदिका की ऊँचाई व विस्तार का प्रमाण पूर्वोक्त वेदियों से आधा और इससे भी आधा प्रमाण पाँचवें व छठे मण्डल के प्रासादों की वेदिकाओं का है।।१९७।। गुणित क्रम से स्थित इन सब भवनों की संख्या पाँच हजार चार सौ इकसठ है।।१९८।। ५४६१। प्रथम प्रासाद के उत्तर भाग में पच्चीस योजन के आधे अर्थात् साढ़े बारह योजन लम्बी और इससे आधे विस्तार वाली सुधर्म सभा स्थित है।।१९९।। लम्बाई २५/२। विस्तार २५/४ योजन। **सुवर्ण और रत्नमयी यह सभा नौ योजन ऊँची और एक गव्यूति अर्थात् कोशमात्र अवगाह से सहित है। इसके उत्तरभाग में इतने मात्र प्रमाण से संयुक्त जिनभवन है**।।२००।। उत्सेध ९ यो.। अवगाह को.। प्रथम प्रासाद से वायव्यदिशा में जिनेन्द्र भवन के समान सुवर्ण एवं उत्तम रत्नसमूहों से निर्मित उपपाद सभा स्थित है।।२०१।। लम्बाई २५/४। विस्तार २५/४। उत्सेध ९ योजन। अवगाह १ को. १। प्रथम प्रासाद के पूर्व में उपपाद सभा के समान विचित्र रचना से संयुक्त अभिषेक सभा स्थित है।।२०२।। इसी दिशा भाग में अभिषेक सभा के समान विस्तारादि से सहित और मणिमय तोरणद्वारों से रमणीय अलंकार सभा है।।२०३।। इसी दिशाभाग में पूर्व सभा के सदृश ऊँचाई व विस्तार से सहित, सुवर्ण एवं रत्नों से निर्मित और सुन्दर द्वारों से संयुक्त मंत्रसभा है।।२०४।। **इन छह प्रासादों को पूर्व मन्दिरों में मिला देने पर भवनों की समस्त संख्या पाँच हजार चार सौ सड़सठ होती है**।।२०५।। ५४६७। जिनकी किरणें चारों दिशाओं में प्रकाशमान हो रही हैं ऐसे उत्तम रत्नमयी प्रदीपों से वे सब भवन नित्य अर्चित और नित्य उद्योतित रहते हैं।।२०६।। पुष्करिणिओं से रमणीय, फल-फूलों से सुशोभित, अनेक प्रकार के वृक्षों से सहित और देवयुगलों से

विद्दुमवण्णा केई केई कप्पूरकुंदसंकासा। कंचणवण्णा केई केई वज्जिंदणीलणिहा।।२०८।।
तेसुं पासादेसुं विजओ देवीसहस्ससोहिल्लो। णिच्चजुवाणा देवा वररयणविभूसिदसरीरा।।२०९।।
लक्खणवंजणजुत्ता धादुविहीणा य वाहिपरिचत्ता। विविहसुहेसुं सत्ता कीडंते बहुविणोदेणं।।२१०।।
सयणाणि आसणाणिं रयणमयाणिं भवंति भवणेसुं। मउवाणि णिम्मलाणिं मणणयणाणंदजणणाणिं।।२११।।
आदिमपासादस्स य बहुमज्झे होदि कणयरणमयं। सिहासणं विसालं सपादपीढं परमरम्मं।।२१२।।
सिंहासणमारूढो विजओ णामेण अहिवई तत्थ। पुव्वमुहे पासादे तत्थाणंदेदि लीलाए।।२१३।।
तस्स य सामाणीया चेट्ठंते छस्सहस्सपरिमाणा। उत्तरदिसाविभागे विदिसाए विजयपीढादो।।२१४।।
चेट्ठंति णिरुवमाणा छ च्चिय विजयस्स अग्गदेवीओ। ताणं पीढा रम्मा सिंहासणपुव्वदिब्भाए।।२१५।।
परिवारा देवीओ तिण्णि सहस्सा हुवंति पत्तेक्कं। साहियपल्लं आऊ णियणियठाणम्मि चेट्ठंति।।२१६।।
बारस देवसहस्सा बाहिरपरिसाए विजयदेवस्स। णइरिदिदिसाए ताणं पीढाणिं सामिपीढादो।।२१७।।
१२०००।
दस देवसहस्साणिं मज्झिमपरिसाए होंति विजयस्स। दक्खिणदिसाविभागे तप्पीढा णाहपीढाहो।।२१८।।
१००००।
अब्भंतरपरिसाए अट्ठ सहस्साणि विजयदेवस्स। अग्गिदिसाए होंति हु तप्पीढा णाहपीढादो।।२१९।।
८०००।

संयुक्त ऐसे उपवन खण्डों से वे प्रासाद शोभायमान होते हैं।।२०७।। इनमें से कितने ही भवन मूंगे जैसे वर्ण वाले, कितने ही कपूर और कुंदपुष्प के सदृश, कितने ही सुवर्ण वर्ण और कितने ही वज्र एवं इन्द्रनीलमणि के सदृश हैं।।२०८।। उन भवनों में हजारों देवियों से सुशोभित विजय नाम के देव शोभायमान हैं और वहाँ नित्ययुवक, उत्तम रत्नों से विभूषित शरीर से संयुक्त, लक्षण व व्यंजनों से सहित, धातुओं से विहीन, व्याधि से रहित तथा विविध प्रकार के सुखों में आसक्त देव बहुत विनोद के साथ क्रीडा करते हैं।।२०९-२१०।। इन भवनों में मृदुल, निर्मल और मन एवं नेत्रों को आनन्ददायक रत्नमय शय्याएँ व आसन विद्यमान हैं।।२११।। प्रथम प्रासाद के बहुमध्य भाग में अतिशय रमणीय और पादपीठ सहित सुवर्ण एवं रत्नमय विशाल सिंहासन है।।२१२।। वहाँ पूर्वमुख प्रासाद में सिंहासन पर आरूढ़ विजय नामक अधिपति देव लीला से आनन्द को प्राप्त होता है।।२१३।। विजय के सिंहासन से उत्तरदिशा और विदिशा में उसके छह हजार प्रमाण सामानिक देव स्थित रहते हैं।।२१४।। मुख्य सिंहासन के पूर्व दिशाभाग में विजयदेव की अनुपम छहों अग्रदेवियाँ स्थित रहती हैं। उनके सिंहासन रमणीय हैं।।२१५।। इनमें से प्रत्येक अग्रदेवी की परिवार देवियाँ तीन हजार हैं जिनकी आयु एक पल्य से अधिक होती है। ये परिवार देवियाँ भी अपने-अपने स्थान में स्थित रहती हैं।।२१६।। विजयदेव की बाह्य परिषद् में बारह हजार देव हैं। उनके सिंहासन स्वामी के सिंहासन से नैऋत्य दिशाभाग में स्थित रहते हैं।।२१७।। १२०००। विजयदेव की मध्य परिषद् में दश हजार देव होते हैं। उनके सिंहासन स्वामी के सिंहासन से दक्षिण दिशाभाग में स्थित रहते हैं।।२१८।। १००००। विजयदेव की अभ्यन्तर परिषद् में जो आठ हजार देव रहते हैं, उनके सिंहासन

सेणामहत्तराणं सत्ताणं होंति दिव्वपीढाणिं। सिंहासणपच्छिमदो वरकंचणरयणरइदाइं।।२२०।।
तणुरक्खा अट्ठारससहस्ससंखा हवंति पत्तेक्कं। ताणं चउसु दिसासुं चेट्ठंते चंदपीढाणिं।।२२१।।
१८०००। १८०००। १८०००। १८०००।

सत्तसरमहुरगीयं गायंता पलहवंसपहुदीणि। वायंता णच्चंता विजयं रंजंति तत्थ सुरा।।२२२।।

रायंगणस्स बाहिर परिवारसुराण होंति पासादा। विप्फुरिदधयवडाया वररयणजोइअधियंता।।२२३।।

बहुविहरइकरणेहिं कुसलाओ णिच्चजोव्वणजुदाओ। णाणाविगुव्वणाओ मायालोहादिरहिदाओ।।२२४।।

उल्लसिदविब्भमाओ चित्तसहावेण पेम्मवंताओ। सव्वाओ देवीओ लग्गंते विजयदेवस्स।।२२५।।

णियणयराणि णिविट्ठा देवा सव्वे वि विणयसंपुण्णा। णिब्भरभत्तिपसत्ता सेवंते विजयमणवरदं।।२२६।।

तण्णयरीए बाहिर गंतूणं जोयणाणि पणवीसं। चत्तारो वणसंडा पत्तेक्कं चेत्ततरुजुत्ता।।२२७।।

होंति हु ताणि वणाणिं दिब्वाणि असोयसत्तवण्णाणं। चंपयचूदवणा तह पुव्वादिपदाहिणक्कमेणं।।२२८।।

बारससहस्सजोयणदीहा ते होंति पंचसयरुंदा। पत्तेक्कं वणसंडा बहुविहरुक्खेहिं परिपुण्णा।।२२९।।
१२०००। ५००।

एदेसुं चेत्तदुमा भावणचेत्तप्पमाणसारिच्छा। ताण चउसु दिसासुं चउचउजिणणाहपडिमाओ।।२३०।।

देवासुरमहिदाओ सपाडिहेराओ रयणमइयाओ। पल्लंकआसणाओ जिणिंदपडिमाओ विजयंते।।२३१।।

स्वामी के सिंहासन से अग्निदिशा में स्थित रहते हैं।।२१९।। ८०००। सात सेना महत्तरों के उत्तम सुवर्ण एवं रत्नों से रचित दिव्य पीठ मुख्य सिंहासन के पश्चिम में होते हैं।।२२०।। विजयदेव के जो अठारह हजार प्रमाण शरीररक्षक देव हैं, उन प्रत्येक के चन्द्रपीठ चारों दिशाओं में स्थित हैं।।२२१।। पूर्व १८०००। दक्षिण १८०००। पश्चिम १८०००। उत्तर १८०००। वहाँ देव सात स्वरों से परिपूर्ण मधुर गीत को गाते और पटह एवं बांसुरी आदिक बाजों को बजाते व नाचते हुए विजयदेव का मनोरंजन करते हैं।।२२२।। राजांगण से बाहर फहराती हुई ध्वजापताकाओं से सहित और उत्तम रत्नों की ज्योति से अधिक रमणीय परिवार देवों के प्रासाद हैं।।२२३।। जो बहुत प्रकार की रति के करने में कुशल हैं, नित्य यौवन से युक्त हैं, नाना प्रकार की विक्रिया को करती हैं, माया एवं लोभादि से रहित हैं, उल्लासयुक्त विलास सहित हैं और स्वभाव से ही प्रेम करने वाली हैं ऐसी समस्त देवियाँ विजयदेव की सेवा करती हैं।।२२४-२२५।। अपने नगरों में रहने वाले सब ही देव विनय से परिपूर्ण और अतिशय भक्ति में आसक्त होकर निरन्तर विजयदेव की सेवा करते हैं।।२२६।। उस नगरी के बाहर पच्चीस योजन जाकर चार वनखण्ड स्थित हैं, जो प्रत्येक चैत्यवृक्षों से संयुक्त हैं।।२२७।। अशोक, सप्तवर्ण, चम्पक और आम्र वृक्षों के ये वन पूर्वादिक दिशाओं में प्रदक्षिणक्रम से हैं।।२२८।। बहुत प्रकार के वृक्षों से परिपूर्ण वे प्रत्येक वनखण्ड बारह हजार योजन लम्बे और पाँच सौ योजन चौड़े हैं।।२२९।। दीर्घ १२०००। विस्तीर्ण ५०० योजन। **इन वनों में भावनलोक के चैत्यवृक्षों के प्रमाण से सदृश जो चैत्यवृक्ष स्थित हैं उनकी चारों दिशाओं में चार जिनेन्द्र प्रतिमाएँ हैं।।२३०।। देव व असुरों से पूजित, प्रातिहार्यों से सहित और पद्मासन से स्थित वे रत्नमय जिनेन्द्र प्रतिमाएँ जयवंत हैं।।२३१।।** प्रत्येक चैत्यवृक्ष के ईशानदिशाभाग में एक कोश अधिक इकतीस

चेत्तदुमस्सीसाणे भागे चेट्ठेदि दिव्वपासादो। इगितीसजोयणाणिं कोसब्भहियाणि वित्थिण्णो।।२३२।।

३१। को १।

वासादि दुगुणउदओ दुकोस गाढा विचित्तमणिखंभो। चउ-अट्ठजोयणाणिं रुंदुच्छेहा दु तद्दारे।।२३३।।

६२। को २। ४। ८

सुजलंतरयणदीओ विचित्तसयणासणेहिं परिपुण्णो। सद्दरसरूवगंधप्पासेहिं सुरमणारम्मो।।२३४।।

कणयमयकुड्डविरचिदविचित्तचित्तप्पबंधरमणिज्जो।

अच्छरियजणणरूवो किं बहुणा सो णिरुवमाणो।।२३५।।

तस्सिं असोयदेओ रमेदि देवीसहस्ससंजुत्तो। वररयणमउडधारी चामरछत्तादिसोहिल्लो।।२३६।।

सेसम्मि वइजयंतत्तिदए विजयं व वण्णणं सयलं। दक्खिणपच्छिमउत्तरदिसासु ताणं पि णयराणिं।।२३७।।

योजन प्रमाण विस्तार वाला दिव्य प्रासाद स्थित है।।२३२।। योजन ३१, को. १। विचित्र मणिमय खम्भों से संयुक्त इस प्रासाद की ऊँचाई विस्तार से दुगुणी अर्थात् साढ़े बासठ योजन और अवगाह दो कोशप्रमाण है। उसके द्वार का विस्तार चार योजन और ऊँचाई आठ योजन है।।२३३।। ऊँचाई योजन ६२, को. २। (अवगाह को. २)। विस्तार ४। ऊँचाई ८ योजन। उपर्युक्त प्रासाद देदीप्यमान रत्नदीपकों से सहित, विचित्र शय्याओं व आसनों से परिपूर्ण और शब्द-रस-गन्ध एवं स्पर्श से देवों के मन को आनन्दजनक, सुवर्णमय भीतों पर रचे गए विचित्र चित्रों के सम्बन्ध से रमणीय और आश्चर्यजनक स्वरूप से संयुक्त हैं। बहुत कहने से क्या ? वह प्रासाद अनुपम है।।२३४-२३५।। उस प्रासाद में उत्तम रत्नमुकुट को धारण करने वाला और चमर-छत्रादि से सुशोभित वह अशोक देव हजारों देवियों से युक्त होकर रमण करता है।।२३६।। शेष वैजयन्तादि तीन देवों का सम्पूर्ण वर्णन विजय देव के ही समान है। इनके भी नगर क्रमशः दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशा में स्थित हैं।।२३७।।

सप्तर्षि वंदना

सुरमन्यु, श्रीमन्यु ऋषिवर, श्री निचय, सर्वसुंदर स्वामी।
जयवान, विनयलालस गुरुवर जयमित्र सप्तऋषि जगनामी।।
ये मथुरानगरी में आये, महामारी व्याधी हुई शांत।
मैं नमूँ सहस्रों बार इन्हें, ये रोग शोक का करें अन्त।।1।।

-गणिनी ज्ञानमती

ढाईद्वीप में कृत्रिम जिनमंदिर

मंगलाचरण

दोहा- त्रैकालिक कृत्रिम सभी, जिनप्रतिमा जिनधाम।
कहे अनंतानंत ही, तिन्हें अनंत प्रणाम।।१।।

युग की आदि में इंद्र ने अयोध्या में सर्वप्रथम पाँच जिनमंदिर बनाये

(आदिपुराण से)

श्रुत्वेति तद्वचो दीनं करुणाप्रेरिताशयः। मनः प्रणिदधावेवं भगवानादिपूरुषः[१]।।१४२।।
पूर्वापरविदेहेषु या स्थितिः समवस्थिता। साद्य प्रवर्त्तनीयात्र ततो जीवन्त्यमूः प्रजाः।।१४३।।
षट्कर्माणि यथा तत्र यथा वर्णाश्रमस्थितिः। यथा ग्रामगृहादीनां संस्त्यायाश्च पृथग्विधाः।।।१४४।।
तथात्राप्युचिता वृत्तिरुपायैरेभिरङ्गिनाम्। नोपायान्तरमस्त्येषां प्राणिनां जीविकां प्रति।।१४५।।
कर्मभूरद्य जातेयं व्यतीतौ कल्पभूरुहाम्। ततोऽत्र कर्मभिः षड्भिः प्रजानां जीविकोचिता।।१४६।।
इत्याकलय्य तत्क्षेमवृत्त्युपायं क्षणं विभुः। मुहुराश्वासयामास भा भैष्टेति तदा प्रजाः।।१४७।।
अथानुध्यानमात्रेण विभो शक्रः सहामरैः। प्राप्तस्तज्जीवनोपायानित्यकार्षी द्विभागतः।।१४८।।
शुभे दिने सुनक्षत्रे सुमुहूर्त्ते शुभोदये। स्वोच्चस्थेषु ग्रहेषूच्चैरानुकूल्ये जगद्गुरोः।।१४९।।

युग की आदि में इंद्र ने अयोध्या में सर्वप्रथम पाँच जिनमंदिर बनाये

(आदिपुराण से)

इस प्रकार प्रजाजनों के दीन वचन सुनकर जिनका हृदय दया से प्रेरित हो रहा है ऐसे भगवान आदिनाथ अपने मन में ऐसा विचार करने लगे।।१४२।। कि पूर्व और पश्चिम विदेह क्षेत्र में जो स्थिति वर्तमान में है वही स्थिति आज यहाँ प्रवृत्त करने योग्य है उसी से यह प्रजा जीवित रह सकती है।१४३।। वहाँ जिस प्रकार असि, मषी आदि छह कर्म हैं, जैसी क्षत्रिय आदि वर्णों की स्थिति है और जैसी ग्राम-घर आदि की पृथक्-पृथक् रचना है उसी प्रकार यहाँ पर भी होनी चाहिए। इन्हीं उपायों से प्राणियों की आजीविका चल सकती है। इनकी आजीविका के लिए और कोई उपाय नहीं है।।१४४-१४५।। कल्पवृक्षों के नष्ट हो जाने पर अब यह कर्मभूमि प्रकट हुई है इसलिए यहाँ प्रजा को असि, मषी आदि छह कर्मों के द्वारा ही आजीविका करना उचित है।।१४६।। इस प्रकार स्वामी वृषभदेव ने क्षण भर प्रजा के कल्याण करने वाली आजीविका का उपाय सोचकर उसे बार-बार आश्वासन दिया कि तुम भयभीत मत होओ।।१४७।। अथानन्तर भगवान् के स्मरण करने मात्र से देवों के साथ इन्द्र आया और उसने नीचे लिखे अनुसार विभाग कर प्रजा की जीविका के उपाय किये।।।१४८।। शुभ दिन, शुभ नक्षत्र, शुभ मुहूर्त और शुभ लग्न के समय तथा सूर्य आदि ग्रहों के अपने-अपने उच्च स्थानों में स्थित रहने और जगद्गुरु भगवान् के हर एक प्रकार की अनुकूलता होने पर इन्द्र ने प्रथम ही मांगलिक कार्य किया और **फिर उसी अयोध्यापुरी के बीच में जिनमन्दिर की रचना की। इसके बाद पूर्व, दक्षिण, पश्चिम तथा उत्तर**

---

१. आदिपुराण पर्व-१६, पृ. ३५९।

कृतप्रथमाङ्गल्ये सुरेन्द्रो जिनमन्दिरम्। न्यवेशयत् पुरस्यास्य मध्ये दिक्ष्वप्यनुक्रमात्।।१५०।।
कोसलादीन् महादेशान् साकेतादिपुराणि च। सारामसीमनिगमान् खेटादींश्च न्यवेशयत्।।१५१।।

कैलाशपर्वत पर भरतचक्री द्वारा बनवाये गये मंदिर

(उत्तरपुराण से)

राज्ञाप्याज्ञापिता यूयं कैलासे भरतेशिना। गृहाः कृता महारत्नैश्चतुर्विंशतिरर्हताम्[१]।।१०७।।
तेषां गङ्गां प्रकुर्वीध्वं परिखां परितो गिरिम्। इति तेऽपि तथा कुर्वन् दण्डरत्नेन सत्वरम्।।१०८।।

इस प्रकार चारों दिशाओं में भी यथाक्रम से जिनमन्दिरों की रचना की।।१४९-१५०।। तदनन्तर कौशल आदि महादेश, अयोध्या आदि नगर, वन और सीमा सहित गाँव तथा खेटों की रचना की थी।।१५१।।

कैलाशपर्वत पर भरतचक्री द्वारा बनवाये गये मंदिर

(उत्तरपुराण से)

आत्मशुद्धि से भरे सगर चक्रवर्ती के पुत्रों ने कहा कि यदि आप हम लोगों को कोई कार्य नहीं देते हैं तो हम भोजन भी नहीं करते हैं।।१०५।। पुत्रों का निवेदन सुनकर राजा कुछ चिन्ता में पड़ गये। वे सोचने लगे कि इन्हें कौन सा कार्य दिया जावे। अकस्मात् उन्हें याद आ गई कि अभी धर्म का एक कार्य बाकी है। उन्होंने हर्षित होकर आज्ञा दी कि **भरत चक्रवर्ती ने कैलाश पर्वत पर महारत्नों से अरहन्तदेव के चौबीस मन्दिर बनवाये हैं,** तुम लोग उस पर्वत के चारों ओर गङ्गा नदी को उन मन्दिरों की परिखा बना दो।' उन राजपुत्रों ने भी पिता की आज्ञानुसार दण्डरत्न से वह काम शीघ्र ही कर दिया।।१०६-१०८।।

कैलाशपर्वत पर भरत चक्रवर्ती ने जिनमंदिर बनवाये थे

(पद्मपुराण से[२])

अथानन्तर एक बार दशानन नित्यालोक नगर में राजा नित्यालोक की श्रीदेवी से समुत्पन्न रत्नावली नाम की पुत्री को विवाह कर बड़े हर्ष के साथ आकाशमार्ग से अपनी नगरी की ओर आ रहा था। उस समय उसके मुकुट में जो रत्न लगे थे उनकी किरणों से आकाश सुशोभित हो रहा था।।१०२-१०३।। जिस प्रकार बड़ा भारी वायुमण्डल मेरु के तट को पाकर सहसा रुक जाता है उसी प्रकार मन के समान चंचल पुष्पक विमान सहसा रुक गया।।१०४।। जब पुष्पक विमान की गति रुक गयी और घण्टा आदि से उत्पन्न होने वाला शब्द भंग हो गया तब ऐसा जान पड़ता था मानो तेजहीन होने से लज्जा के कारण उसने मौन ही ले रखा था।।१०५।। विमान को रुका देख दशानन ने क्रोध से दमकते हुए कहा कि अरे यहाँ कौन है ? कौन है ?।।१०६।। तब सर्व वृत्तान्त को जानने वाले मारीचि ने कहा कि हे देव ! सुनो, यहाँ कैलास पर्वत पर एक मुनिराज प्रतिमा योग से विराजमान हैं।।१०७।। ये सूर्य के सम्मुख विद्यमान हैं और अपनी किरणों से सूर्य की किरणों को इधर-उधर प्रक्षिप्त कर रहे हैं। समान शिलातल पर ये रत्नों के स्तम्भ के समान अवस्थित हैं।।१०८।। घोर तपश्चरण को धारण करने वाले ये कोई महान् वीर पुरुष हैं और शीघ्र ही मोक्ष प्राप्त करना चाहते हैं। इन्हीं से वह वृत्तान्त हुआ है।।१०९।। इन मुनिराज के प्रभाव से जब तक विमान खण्ड-खण्ड नहीं हो जाता है, तब तक शीघ्र की इस स्थान से विमान को

---

१. उत्तरपुराण पर्व ४८, पृ. १०। २. पद्मपुराण, पर्व ९, पृ. २१४ से २२१।

लौटा लेता हूँ।।११०।। अथानन्तर मारीच के वचन सुनकर अपने पराक्रम के गर्व से गर्वित दशानन ने कैलास पर्वत की ओर देखा।।१११।। दशानन ने उस पर्वत पर उतरकर उन महामुनि के दर्शन किये। वे महामुनि ध्यानरूपी समुद्र में निमग्न थे और तेज के द्वारा चारों ओर मण्डल बाँध रहे थे।।१२६।। दिग्गजों के शुण्डादण्ड के समान उनकी दोनों भुजाएँ नीचे की ओर लटक रही थीं और उनसे वे ऐसे जान पड़ते थे मानो सर्पों से आवेष्टित चन्दन का बड़ा वृक्ष ही हो।।१२७।। वे आतापन योग में शिलापीठ के ऊपर निश्चल बैठे थे और प्राणियों के प्रति ऐसा संशय उत्पन्न कर रहे थे कि ये जीवित हैं भी या नहीं।।१२८।। तदनन्तर 'यह बालि है' ऐसा जानकर दशानन पिछले वैर का स्मरण करता हुआ क्रोधाग्नि से प्रज्वलित हो उठा।।१२९।। जो ओंठ चबा रहा था, जिसकी आवाज अत्यन्त कर्कश थी और जो अत्यन्त देदीप्यमान आकार का धारक था ऐसा दशानन भ्रकुटी बाँधकर बड़ी निर्भयता के साथ मुनिराज से कहने लगा।।१३०।। कि अहो! तुमने यह बड़ा अच्छा तप करना प्रारम्भ किया है कि अब भी अभिमान से मेरा विमान रोका जा रहा है।।१३१।। धर्म कहाँ और क्रोध कहाँ? अरे दुर्बुद्धि ! तू व्यर्थ ही श्रम कर रहा है और अमृत तथा विष को एक करना चाहता है।।१३२।। इसलिए मैं तेरे इस उद्धत अहंकार को आज ही नष्ट किये देता हूँ। तू जिस कैलास पर्वत पर बैठा है उसे उखाड़कर तेरे ही साथ अभी समुद्र में फेंकता हूँ।।१३३।।

तदनन्तर उसने समस्त विद्याओं का ध्यान किया जिससे आकर उन्होंने उसे घेर लिया। अब दशानन ने इन्द्र के समान महाभयंकर रूप बनाया और महाबाहुरूपी वन से सब ओर सघन अन्धकार फैलाता हुआ वह पृथिवी को भेदकर पाताल में प्रविष्ट हुआ। पाप करने में वह उद्यत था ही।।१३४-१३५।। तदनन्तर क्रोध के कारण जिसके नेत्र अत्यन्त लाल हो रहे थे और जिसका मुख क्रोध से मुखरित था ऐसे प्रबल पराक्रमी दशानन ने अपनी भुजाओं से कैलास को उठाना प्रारम्भ किया।।१३६।। आखिर, पृथिवी को अत्यन्त चंचल करता हुआ कैलास पर्वत स्वस्थान से चलित हो गया।।१३७।। तदनन्तर जब समस्त संसार संवर्तक नामक वायु से ही मानो आकुलित हो गया था तब भगवान् बाली मुनिराज ने अवधिज्ञान से दशानन नामक राक्षस को जान लिया।।१४५।। यद्यपि उन्हें स्वयं कुछ भी पीड़ा नहीं हुई थी और पहले की तरह उनका समस्त शरीर निश्चल रूप से अवस्थित था तथापि वे धीर, वीर और क्रोध से रहित हो अपने चित्त में इस प्रकार विचार करने लगे कि।।१४६।।

कारितं भरतेनेदं जिनायतनमुत्तमम्। सर्वरत्नमयं तुङ्गं बहुरूपविराजितम्।।१४७।।

प्रत्यहं भक्तिसंयुक्तैः कृतपूजं सुरासरैः। भा विनाशि चलत्यस्मिन् पर्वते भिन्नपर्वणि।।१४८।।

ध्यात्वेति चरणाङ्गुष्टपीडितं गिरिमस्तकम्। चकार शोभनध्यानाददूरीकृतचेतनः।।१४९।।

चक्रवर्ती भरत ने ये नाना प्रकार के सर्वरत्नमयी ऊँचे-ऊँचे जिनमन्दिर बनवाये हैं। भक्ति से भरे सुर और असुर प्रतिदिन इनकी पूजा करते हैं सो इस पर्वत के विचलित हो जाने पर कहीं ये जिनमन्दिर नष्ट न हो जावें।।१४७।। ऐसा विचारकर शुभ ध्यान के निकट ही जिनकी चेतना थी ऐसे मुनिराज बाली नेपर्वत के मस्तक को अपने पैर के अँगूठे से दबा दिया।।१४८-१४९।। तदनन्तर जिसकी भुजाओं का वन (बल) बहुत भारी बोझ से आक्रान्त होने के कारण अत्यधिक टूट रहा था, जो दुख से आकुल था, जिसकी लाल-लाल मनोहर आँखें चंचल हो रही थींऐसा दशानन अत्यन्त व्याकुल हो गया। उसके सिर का मुकुट टूटकर नीचे गिर गया और उस नंगे सिर पर पर्वत का भारआ पड़ा। नीचे धँसती हुई पृथिवी पर उसने घुटने टेक दिये। स्थूल होने के कारण उसकी जंघाएँ मांसपेशियों में निमग्न होगयीं।।१५०-१५१।। उसके शरीर से शीघ्र ही पसीने की धारा बह निकली और उससे उसने रसातल को धो दिया। उसका सारा शरीर कछुए के समान संकुचित हो

गया।।१५२।। उस समय चूँकि उसने सर्व प्रयत्न से चिल्लाकर समस्त संसार को शब्दायमान कर दिया था इसलिए वह पीछे चलकर सर्वत्र प्रचलित 'रावण' इस नाम को प्राप्त हुआ।।१५३।। रावण की स्त्रियों का समूह अपने स्वामी के उस अश्रुतपूर्ण दीन-हीन शब्द को सुनकर व्याकुल हो विलाप करने लगा।।१५४।। मन्त्री लोग किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये। वे युद्ध के लिए तैयार हो व्यर्थ ही इधर-उधर फिरने लगे। उनके वचन बार-बार बीच में ही स्खलित हो जाते थे और हथियार उनके हाथ से छूट जाते थे।।१५५।। मुनिराज के वीर्य के प्रभाव से देवों के दुन्दुभि बजने लगे और भ्रमर सहित फूलों की वृष्टि आकाश को आच्छादित कर पड़ने लगी।।१५६।।

क्रीडा करना जिनका स्वभाव था ऐसे देवकुमार आकाश में नृत्य करने लगे और देवियों की संगीत ध्वनि वंशी की मधुर ध्वनि के साथ सर्वत्र उठने लगी।।१५७।। तदनन्तर मन्दोदरी ने दीन होकर मुनिराज को प्रणाम कर याचना की कि हे अद्भुत पराक्रम के धारी! मेरे लिए पतिभिक्षा दीजिए।१५८।। तब महामुनि ने दयावश पैर का अँगूठा ढीला कर लिया और रावण भी पर्वत को जहां का तहां छोड़ क्लेशरूपी अटवी से बाहर निकला।।१५९।।

तदनन्तर जिसने तप का बल जान लिया था ऐसे रावण ने जाकर मुनिराज को प्रणाम कर बार-बार क्षमा माँगी और इस प्रकार स्तुति करना प्रारम्भ किया।।१६०।। कि हे पूज्य! आपने जो प्रतिज्ञा की थी कि मैं जिनेन्द्रदेव के चरणों को छोड़कर अन्य के लिए नमस्कार नहीं करूँगा यह उसी की सामर्थ्य का फल है।।१६१।। हे भगवन्! आपके तप का महाफल निश्चय से सम्पन्न है इसीलिए तो आप तीन लोक को अन्यथा करने में समर्थ हैं।।१६२।। तप से समृद्ध मुनियों की थोड़े ही प्रयत्न से उत्पन्न जैसी सामर्थ्य देखी जाती है हे नाथ! वैसी सामर्थ्य इन्द्रों की भी नहीं देखी जाती है।।१६३।। इस प्रकार स्तुति कर उसने मुनिराज को प्रणाम कर तीन प्रदक्षिणाएँ दीं, अपने आपकी बहुत निन्दा की और दुःखवश मुँह से सू-सू शब्द कर रुदन किया।।१७३।। मुनिराज के समीप जो जिनमन्दिर था लज्जा से युक्त और विषयों से विरक्त रावण उसी के अन्दर चला गया।।१७४।। वहाँ उसने चन्द्रहास नामक खड्ग को अनादर से पृथिवी पर फेंक दिया और अपनी स्त्रियों से युक्त होकर जिनेन्द्रदेव की पूजा की।।१७५।। उसके भाव भक्ति में इतने लीन हो गये थे कि उसने अपनी भुजा की नाड़ीरूपी तन्त्री को खींचकर वीणा बजायी और सैकड़ों स्तुतियों के द्वारा जिनराज का गुणगान किया।।१७६।।

ऋषभाय नमो नित्यमजिताय नमो नमः। संभवाय नमोऽजस्रमभिनन्दनरूढये।।१८५।।
नमः सुमतये पद्मप्रभाय सततं नमः। सुपार्श्वाय नमः शश्वन्नमश्चन्द्रसमत्विषे।।१८६।।
नमोऽस्तु पुष्पदन्ताय शीतलाय नमो नमः। श्रेयसे वासुपूज्याय नमो लब्धात्मतेजसे।।१८७।।
विमलाय नमस्त्रेधा नमोऽनन्ताय संततम्। नमो धर्माय सौख्यानां नमो मूलाय शान्तये।।१८८।।
नमः कुन्थुजिनेन्द्राय नमोऽरस्वामिने सदा। नमो मल्लिमहेशाय नमः सुव्रतदायिने।।१८९।।
अन्येभ्यश्च भविष्यद्भ्यो भूतेभ्यश्च सुभावतः। नमोऽस्तु जिननाथेभ्यः श्रमणेभ्यश्च सर्वदा।।१९०।।
नमः सम्यक्त्वयुक्ताय ज्ञानायैकान्तनाशिने। दर्शनाय नमोऽजस्रं सिद्धेभ्योऽनारतं नमः।।१९१।।

ऋषभ, अजित, सम्भव, अभिनन्दन, सुमति, पद्मप्रभ, सुपार्श्व, चन्द्रप्रभ, पुष्पदन्त, शीतल, श्रेयोनाथ, वासुपूज्य, विमल, अनन्त, धर्म, सौख्यों के मूल कारण शान्तिनाथ, कुन्थु जिनेन्द्र, अरनाथ, मल्लि महाराज और मुनिसुव्रत भगवान् इन वर्तमान तीर्थंकरों को मन-वचन-काय से नमस्कार हो। इनके सिवाय जो अन्य भूत और भविष्यत्काल सम्बन्धी तीर्थंकर हैं उन्हें नमस्कार हो। साधुओं के लिए सदा नमस्कार हो। सम्यक्त्वसहित ज्ञान और एकान्तवाद को नष्ट करने वाले दर्शन के लिए निरन्तर नमस्कार हो तथा सिद्ध परमेश्वर के लिए सदा नमस्कार हो।।१८५-१९१।।

सुलोचना ने जिनमंदिर व जिनप्रतिमाएँ बनवाईं

(आदिपुराण से)

**कारयन्ती जिनेन्द्रार्चाश्चित्रा मणिमयीर्बहूः। तासां हिरण्मयान्येव विश्वोपकरणान्यपि[१]।।१७३।।
तत्प्रतिष्ठाभिषेकान्ते महापूजाः प्रकुर्वती। मुहुः स्तुतिभिरर्थ्याभिः स्तुवती भक्तितोऽर्हतः।।१७४।।
ददती पात्रदानानि मानयन्ती महामुनीन्। शृण्वती धर्ममाकर्ण्य भावयन्ती मुहुर्मुहुः।।१७५।।
आप्तागमपदार्थांश्च प्राप्तसम्यक्त्वशुद्धिका। अथ फाल्गुननन्दीश्वरेऽसौ भक्त्या जिनेशिनाम्।।१७६।।
विधायाष्टाह्निकीं पूजामभ्यर्च्यार्चा यथाविधि। कृतोपवासा तन्वङ्गी शेषां दातुमुपागता।।१७७।।
नृपं सिंहासनासीनं सोऽप्युत्थाय कृताञ्जलिः। तद्दत्तशेषामादाय निधाय शिरसि स्वयम्।।१७८।।
उपवासपरिश्रान्ता पुत्रिके त्वं प्रयाहि ते। शरणं पारणाकाल इति कन्यां व्यसर्जयत्।।१७९।।**

हरिषेण चक्रवर्ती ने अगणित जिनमंदिर बनवाये

(पद्मपुराण से)

**अथासावन्यदापृच्छत् सुमालिनमुदद्भुतः। उच्चैर्गगनमारूढो विनयानतविग्रहः[२]।।२७२।।
सरसीरहितेऽमुष्मिन् पूज्यपर्वतमूर्द्धनि। वनानि पश्य पद्मानां जातान्येतन्महाद्भुतम्।।२७३।।**

सुलोचना ने जिनमंदिर व जिनप्रतिमाएँ बनवाईं

(आदिपुराण से)

उस सुलोचना ने श्री जिनेन्द्रदेव की अनेक प्रकार की रत्नमयी बहुत सी प्रतिमाएँ बनवाई थीं और उनके सब उपकरण भी सुवर्ण ही के बनवाये थे। प्रतिष्ठा तथा तत्सम्बन्धी अभिषेक हो जाने के बाद वह उन प्रतिमाओं की महापूजा करती थी, अर्थपूर्ण स्तुतियों के द्वारा श्री अर्हंन्तदेव की भक्तिपूर्वक स्तुति करती थी, पात्र दान देती थी, महामुनियों का सम्मान करती थी, धर्म सुनती थी तथा धर्म को सुनकर आप्त, आगम और पदार्थों का बार-बार चिन्तवन करती हुई सम्यग्दर्शन की शुद्धता को प्राप्त करती थी। अथानन्तर—फाल्गुन महीने की अष्टान्हिका में उसने भक्तिपूर्वक श्री जिनेन्द्रदेव की अष्टाह्निकी पूजा की, विधिपूर्वक प्रतिमाओं की पूजा की, उपवास किया और वह कृशांगी पूजा के शेषाक्षत देने के लिए सिंहासन पर बैठे हुए राजा अकम्पन के पास गयी। राजा ने भी उठकर और हाथ जोड़कर उसके दिए हुए शेषाक्षत लेकर स्वयं अपने मस्तक पर रखे तथा यह कहकर कन्या को विदा किया कि हे पुत्रि, तू उपवास से खिन्न हो रही है अब घर जा, यह तेरे पारणा का समय है।।१७३ से १७९।।

हरिषेण चक्रवर्ती ने अगणित जिनमंदिर बनवाये

(पद्मपुराण से)

अथानन्तर एक दिन विनय से जिसका शरीर झुक रहा था, ऐसा दशानन आकाश में बहुत ऊँचे चढ़कर अपने दादा सुमाली से आश्चर्यचकित हो पूछता है कि हे पूज्य! इधर इस पर्वत के शिखर पर सरोवर तो नहीं है

---

१. आदिपुराण पर्व ४३, पृ. ३६८, ३६९। २. पद्मपुराण पर्व–८, पृ. १८७, १८८, १९६।

तिष्ठन्ति निश्चलाः स्वामिन् कथमत्र महीतले। पतिता विविधच्छायाः सुमहान्तः पयोमुचः।।२७४।।
नमः सिद्धेभ्य इत्युक्त्वा सुमालो तमथागमत्। नामूनि शतपत्राणि न चैते वत्स तोयदाः।।२७५।।
सितकेतुकृतच्छायाः सहस्राकारतोरणाः। शृङ्गेषु पर्वतस्यामी विराजन्ते जिनालयाः।।२७६।।
कारिता हरिषेणेन सज्जनेन महात्मना। एतान् वत्स नमस्य त्वं भव पूतमनाः क्षणात्।।२७७।।
ततस्तत्रस्थ एवासौ नमस्कृत्य जिनालयान्। उपाच विस्मयापन्नो धनदस्य विमर्दकः।।२७८।।
आसीत्किं तस्य माहात्म्यं हरिषेणस्य कथ्यताम्। प्रतीक्ष्यतम येनासौ भवद्भिरिति कीर्तितः।।२७९।।
सुमाली न्यगदच्चैवं साधु पृष्टं दशानन। चरितं हरिषेणस्य शृणु पापविदारणम्।।२८०।।
काम्पिल्यनगरे राजा नाम्ना मृगपतिध्वजः। बभूव यशसा व्याप्तसमस्तभुवनो महान्।।२८१।।
महिषी तस्य वप्राह्वा प्रमदागुणशालिनी। अभूत् सौभाग्यतः प्राप्ता पत्नीशतललामताम्।।२८२।।
हरिषेणः समुत्पन्नः स ताभ्यां परमोदयः। चतुःषष्ट्या शुभैर्युक्तो लक्षणैः क्षतदुष्कृतः।।२८३।।
वप्रया चान्यदा जैने मते भ्रमयितुं रथे। आष्टाह्निकमहानन्दे नगरे धर्मशीलया।।२८४।।
महालक्ष्मीरिति ख्याता सौभाग्यमदविह्वला। अवृत्तमवदत्तस्याः सपत्नी दुर्विचेष्टिता।।२८५।।
पूर्व ब्रह्मरथो यातु मदीयः पुरवर्त्मनि। भ्रमिष्यति ततः पश्चाद्वप्रया कारितो रथः।।२८६।।
इति श्रुत्वा ततो वप्रा कुलिशेनेव ताडिता। हृदये दुःखसंतप्ता प्रतिज्ञामकरोदिमाम्।।२८७।।

पर कमलों का वन लहलहा रहा है सो इस महाआश्चर्य को आप देखें।।२७२-२७३।। यहाँ पृथ्वीतल पर पड़े रंग-बिरंगे बड़े-बड़े मेघ निश्चल होकर कैसे खड़े हैं ?।।२७४।। तब सुमाली ने 'नमः सिद्धेभ्यः' कहकर दशानन से कहा कि हे वत्स! न तो ये कमल हैं और न मेघ ही हैं।।२७५।। किन्तु सफेद पताकाएँ जिन पर छाया कर रही हैं तथा जिनमें हजारों प्रकार के तोरण बने हुए हैं ऐसे-ऐसे ये जिनमन्दिर पर्वत के शिखरों पर सुशोभित हो रहे हैं।।२७६।। **ये सब मन्दिर महापुरुष हरिषेण चक्रवर्ती के द्वारा बनवाये हुए हैं।** हे वत्स! तू इन्हें नमस्कार कर और क्षण-भर में अपने हृदय को पवित्र कर।।२७७।। तदनन्तर वैश्रवण का मानमर्दन करने वाले दशानन ने वहीं खड़े रहकर जिनालयों को नमस्कार किया और आश्चर्यचकित हो सुमाली से पूछा कि पूज्यवर! हरिषेण का ऐसा क्या माहात्म्य था कि जिससे आपने उनका इस तरह कथन किया है ?।।२७८-२७९।। तब सुमाली ने कहा कि हे दशानन! तूने बहुत अच्छा प्रश्न किया। अब पाप को नष्ट करने वाला हरिषेण का चरित्र सुन।।२८०।। काम्पिल्य नगर में अपने यश के द्वारा समस्त संसार को व्याप्त करने वाला सिंहध्वज नाम का एक बड़ा राजा रहता था।।२८१।। उसकी वप्रा नाम की पटरानी थी जो स्त्रियों के योग्य गुणों से सुशोभित थी तथा अपने सौभाग्य के कारण सैकड़ों रानियों में आभूषणपना को प्राप्त थी।।२८२।। उन दोनों से परम अभ्युदय को धारण करने वाला हरिषेण नाम का पुत्र हुआ। वह पुत्र उत्तमोत्तम चौंसठ लक्षणों से युक्त था तथा पापों को नष्ट करने वाला था।।२८३।। किसी एक समय आष्टान्हिक महोत्सव आया सो धर्मशील वप्रा रानी ने नगर में जिनेन्द्र भगवान् का रथ निकलवाना चाहा।।२८४।। राजा सिंहध्वज की महालक्ष्मी नामक दूसरी रानी थी जो कि सौभाग्य के गर्व से सदा विह्वल रहती थी। अनेक खोटी चेष्टाओं से भरी महालक्ष्मी वप्रा की सौत थी इसलिए उसने उसके विरुद्ध आवाज उठायी कि पहले मेरा ब्रह्मरथ नगर की गलियों में घूमेगा। उसके पीछे वप्रा रानी के द्वारा बनवाया हुआ जैनरथ घूम सकेगा।।२८५-२८६।। यह सुनकर वप्रा को इतना दुःख हुआ कि मानो उसके हृदय में वज्र की ही चोट लगी हो।

भ्रमिष्यति रथोऽयं मे प्रथमं नगरे यदि। पूर्ववत्पुनराहारं करिष्येऽतोऽन्यथा तु न।।२८८।।
इत्युक्त्वा च बबन्धासौ प्रतिज्ञालक्ष्मवेणिकाम्। व्यापाररहितावस्थाशोकम्लानास्यपङ्कजा।।२८९।।
ततः काम्पिल्यमागत्य युक्तश्चक्रधरश्रिया। द्वात्रिंशता नरेन्द्राणां सहस्राणां समन्वितः।।३९४।।
शिरसा मुकुटन्यस्तमणिप्रकरभासिना। ननाम चरणौ मातुर्विनीतो रचिताञ्जलिः।।३९५।।
ततस्तं तद्विधं दृष्ट्वा पुत्रं वप्रा दशानन। संभूता न स्वगात्रेषु तोषाश्रुव्याप्तलोचना।।३९६।।
ततो भ्रामयता तेन सूर्यवर्णान् महारथान्। काम्पिल्यनगरे मातुः कृतं सफलमीप्सितम्।।३९७।।
श्रमणश्रावकाणां च जातः परमसंमदः। बहवश्च परिप्राप्ताः शासनं जिनदेशितम्।।३९८।।
तेनामी कारिता भान्ति नानावर्णजिनालयाः। भूपर्वतनदीसङ्गपुरग्रामादिधून्नताः।।३९९।।
कृत्वा चिरमसौ राज्यं प्रव्रज्य सुमहामनाः। तपः कृत्वा परं प्राप्तस्त्रिलोकशिखरं विभुः।।४००।।

दुःख से सन्तप्त होकर उसने प्रतिज्ञा की कि यदि मेरा यह रथ नगर में पहले घूमेगा तो मैं पूर्व की तरह पुनः आहार करूँगी अन्यथा नहीं।।२८७-२८८।। तदनन्तर चक्रवर्ती की लक्ष्मी से युक्त होकर वह हरिषेण पुत्र काम्पिल्यनगर आया। बत्तीस हजार मुकुटबद्ध राजा उसके साथ थे।।३९४।। उसने मुकुट में लगे मणियों के समूह से सुशोभित शिर झुकाकर तथा हाथ जोड़कर बड़ी विनय से माता के चरणों में नमस्कार किया।।३९५।। सुमाली दशानन से कहते हैं कि हे दशानन! उस समय उक्त प्रकार के हरिषेण पुत्र को देखकर वप्रा के हर्ष का पार नहीं रहा। वह अपने अंगों में नहीं समा सकी तथा हर्ष के आँसुओं से उसके दोनों नेत्र भर गये।।३९६।। तदनन्तर उसने सूर्य के समान तेजस्वी बड़े-बड़े रथ काम्पिल्यनगर में घुमाये और इस तरह अपनी माता का मनोरथ सफल किया।।३९७।। इस कार्य से मुनि और श्रावकों को परम हर्ष हुआ तथा बहुत से लोगों ने जिनधर्म धारण किया।।३९८।। **पृथिवी, पर्वत, नदियों के समागम स्थान, नगर तथा गाँव आदि में जो नाना रंग के ऊँचे-ऊँचे जिनालय शोभित हो रहे हैं वे सब उसी के बनवाये** हैं।।३९९।। उदार हृदय को धारण करने वाले हरिषेण ने चिरकाल तक राज्य कर दीक्षा ले ली और परम तपश्चरण कर तीन लोक का शिखर अर्थात् सिद्धालय प्राप्त कर लिया।।४००।।

उपसर्गविजयि श्रीपार्श्वनाथ जिनस्तुतिः

-गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी

-उपजातिछंद-

अशोकवृक्षो जनशोकहारी,
वियोगरोगार्तिविनाशकारी।
सुवीज्यमानाश्चमरीरुहाश्च,
भांतीव ते निर्झरवारिधाराः।।15।।

तरुअशोक जन शोकहरे, रोगार्ति वियोग विनाश करें।
चौंसठ चमर ढुरे निर्झरजल-सम प्रभु पर हम उन्हें नमें।।

श्री रामचन्द्र ने कुंथलगिरि पर अनेक जिनमंदिर बनवाये

(पद्मपुराण से)

तत्र वंशगिरौ राजन् रामेण जगदिन्दुना। निर्मापितानि चैत्यानि जिनेशानां सहस्रशः[१]।।२७।।
महावष्टम्भसुस्तम्भा युक्तविस्तारतुङ्गताः। गवाक्षहर्म्यवलभीप्रभृत्याकारशोभिताः।।२८।।
सतोरणमहाद्वाराः सशालाः परिखान्विताः। सितचारुपताकाढ्या बृहद्घण्टारवाचिताः।।२९।।
मृदङ्गवंशमुरजसंगीतोत्तमनिस्वनाः। झर्झरैरानकैः शङ्खभेरीभिश्च महारवाः।।३०।।
सततारब्धनिःशेषरम्यवस्तुमहोत्सवाः। विरेजुस्तत्र रामीया जिनप्रासादपङ्क्तयः।।३१।।
रेजिरे प्रतिमास्तत्र सर्वलोकनमस्कृताः। पञ्चवर्णा जिनेन्द्राणां सर्वलक्षणभूषिताः।।३२।।

उपजातिवृत्तम्

एषऽपि तुङ्गः परमो महीध्रः श्रीमन्नितम्बो बहुधानुसानुः।
विलम्पतीभिः कुकुभां समूहं भासाचकाज्जैनगृहावलीभिः।।४४।।
रामेण यस्मात्परमाणि तस्मिन् जैनानि वेश्मानि विधापितानि।
निर्नष्टवंशाद्रिवचाः स तस्माद्रविप्रभो रामगिरिः प्रसिद्धः।।४५।।

श्री रामचन्द्र ने कुंथलगिरि पर अनेक जिनमंदिर बनवाये

(पद्मपुराण से)

गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन्! उस वंशगिरि पर जगत् के चन्द्रस्वरूप **राम ने जिनेन्द्र भगवान् की हजारों प्रतिमाएँ बनवायीं** थीं।।२७।। तथा जिनमें महामजबूत खम्भे लगवाये थे, जिनकी चौड़ाई तथा ऊँचाई योग्य थी, जो झरोखे, महलों तथा छपरी आदि की रचना से शोभित थे, जिनके बड़े-बड़े द्वार तोरणों से युक्त थे, जिनमें अनेक शालाएँ निर्मित थीं, जो परिखा से सहित थे, सफेद और सुन्दर पताकाओं से युक्त थे, बड़े-बड़े घण्टाओं के शब्द से व्याप्त थे, जिनमें मृदंग, बाँसुरी और मुरज का संगीतमय उत्तम शब्द फैल रहा था, जो झाँझों, नगाड़ों, शंखों और भेरियों के शब्द से अत्यन्त शब्दायमान थे और जिनमें सदा समस्त सुन्दर वस्तुओं के द्वारा महोत्सव होते रहते थे ऐसे राम के बनवाये जिनमन्दिरों की पंक्तियां उस पर्वत पर जहाँ-तहाँ सुशोभित हो रही थीं।।२८-३१।।

उन मन्दिरों में सब लोगों के द्वारा नमस्कृत तथा सब प्रकार के लक्षणों से युक्त पंचवर्ण की जिनप्रतिमाएँ सुशोभित थीं।।३२।।

इधर जिसकी मेखलाएँ शोभा से सम्पन्न थीं तथा जिसके शिखर अनेक धातुओं से युक्त थे ऐसा यह ऊँचा उत्तम पर्वत दिशाओं के समूह को लिप्त करने वाली जिनमन्दिरों की पंक्ति से अतिशय सुशोभित होता था।।४४।। चूँकि उस पर्वत पर रामचन्द्र ने जिनेन्द्र भगवान् के उत्तमोत्तम मन्दिर बनवाये थे इसलिए उसका वंशाद्रि नाम नष्ट हो गया और सूर्य के समान प्रभा को धारण करने वाला वह पर्वत 'रामगिरि' के नाम से प्रसिद्ध हो गया।।४५।।

---

१. पद्मपुराण, पर्व ४०, पृ. १९६ से १९८ तक।

धाराशिव नगर में १००८ खम्भों का जिनमंदिर

(आराधना कथाकोष से)

आराधना कथाकोष में करकण्डु राजा की कथा में १००८ खम्भों वाले जिनमंदिर का वर्णन आया है—

मार्गे तेरपुराभ्यर्णे संस्थितः सैन्यसंयुतः। तदागत्य च भिल्लाभ्यां तं प्रणम्य प्रजल्पितम्[१]।।१४३।।
अस्मात्तेरपुरादस्ति दक्षिणस्यां दिशि प्रभो। गव्यूतिकान्तरे चारु पर्वतस्योपरिस्थितम्।।१४४।।
धाराशिवपुरं चास्ति सहस्रस्तंभसंभवम्। श्रीमज्जिनेन्द्रदेवस्य भवनं सुमनोहरम्।।१४५।।
तस्योपरि तथा शैल-मस्तके संप्रवर्त्तते। वल्मीकं तच्च सद्धस्ती शुभो भक्त्या दिनं प्रति।।१४६।।
शुण्डादण्डेन सत्तोयं गृहीत्वा कमलं सुधीः। समागत्य परीत्योच्चैः समभ्यर्च्य नमत्यलम्।।१४७।।
इत्याकर्ण्य प्रहर्षेण ताभ्यां दत्वोचितं द्रुतम्। करकण्डुर्महाराजो जिनभक्तिपरायणः।।१४८।।
गत्वा तत्र समालोक्य जिनेन्द्रभवनं शुभम्। समभ्यर्च्य जिनाधीशान्स्वर्गमोक्षसुखप्रदान्।।१४९।।
स्तुतिं चक्रे च सद्भक्त्या शर्मकोटिविधायिनीम्। प्रमादो नैव सद्दृष्टे-र्धर्मकर्मणि सर्वदा।।१५०।।
ततो दृष्ट्वा च वाल्मीकिं पूजयन्तं महाद्विपम्। अत्रास्ति कारणं किंचिच्चेतसि संविचार्य च।।१५१।।
तद्वल्मीकं समुन्मूल्य मंजूषां तत्र संस्थिताम्। दृष्ट्वोदघाट्य प्रयत्नेन वीक्ष्य रत्नमयीं च सः।।१५२।।
श्रीमत्पार्श्वजिनेन्द्रस्य प्रतिमां पापनाशिनीम्। सन्तुष्टो मानसे चारु-सद्दृष्टिर्धर्मवत्सलः।।१५३।।
तस्याश्च भवनं चारु कारयित्वा सुभक्तितः। सुधीरग्गलदेवाख्यं स्थापयामास तत्र ताम्।।१५४।।

धाराशिव नगर में १००८ खम्भों का जिनमंदिर

आराधना कथाकोष में करकण्डु राजा की कथा में १००८ खम्भों वाले जिनमंदिर का वर्णन आया है—

रास्ते में तेरपुर के पास राजा करकण्डु का पड़ाव पड़ा। इसी समय कुछ भीलों ने आकर नम्र मस्तक से इनसे प्रार्थना की –राजाधिराज, हमारे तेरपुर से दो–कोस दूरी पर एक पर्वत है। उस पर एक छोटा सा धाराशिव नाम का गाँव बसा हुआ है। इस गाँव में एक बहुत बड़ा ही सुन्दर और भव्य जिनमन्दिर बना हुआ है। उसमें विशेषता यह है कि उसमें कोई एक हजार खम्भे हैं। वह बड़ा सुन्दर है। उसे आप देखने को चलें। इसके सिवा पर्वत पर एक यह आश्चर्य की बात है कि वहाँ एक बाँवी है। एक हाथी रोज अपनी सूँड में थोड़ा सा पानी और एक कमल का फूल लिये वहाँ आता है और उस बाँवी की परिक्रमा देकर वह पानी और फूल उस पर चढ़ा देता है। इसके बाद वह उसे अपना मस्तक नवाकर चला जाता है। उसका यह प्रतिदिन का नियम है। महाराज, नहीं जान पड़ता कि इसका क्या कारण है। करकण्डु भीलों द्वारा यह शुभ समाचार सुनकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ। इस समाचार को लाने वाले भीलों को उचित इनाम देकर वह स्वयं सबको साथ लिये उस कौतुकमय स्थान को देखने गया। पहले उसने जिनमंदिर जाकर भक्तिपूर्वक भगवान की पूजा की, स्तुति की। सच है, धर्मात्मा पुरुष धर्म के कामों में कभी प्रमाद–आलस नहीं करते। बाद में वह उस बाँवी की जगह गया। उसने वहाँ भीलों के कहे माफिक हाथी को उस बाँवी की पूजा करते पाया। देखकर उसे बड़ा अचम्भा हुअ उसने सोचा कि इसका कुछ न कुछ कारण होना चाहिए। नहीं तो इस पशु में ऐसा भक्ति भाव नहीं देखा जाता। यह विचार कर उसने उस बाँवी को खुदवाया। उसमें से एक सन्दूक निकली। उसने उसे खोलकर देखा। सन्दूक में एक रत्नमयी पार्श्वनाथ भगवान की पवित्र प्रतिमा थी। उसे देखकर धर्मप्रेमी करकण्डु राजा को अतिशय प्रसन्नता हुई उसने तब वहाँ 'अग्गलदेव' नाम का एक विशाल जिनमन्दिर बनवाकर उसमें बड़े उत्सव के साथ उस प्रतिमा को विराजमान किया।[२]

---

१. आराधना कथाकोष–संस्कृत–पृ. ४४९। २. आराधना कथाकोष हिन्दी–पृ. ४८४, ४८५।

कृत्रिम जिनप्रतिमा

जिनप्रतिमा का लक्षण

(यक्ष-यक्षी समेत)

शान्तप्रसन्नमध्यस्थनासाग्रस्थाविकारकृत।
सम्पूर्णभावरूपानुविद्धांगं लक्षणान्वितम्।।
रौद्रादिदोषनिर्मुक्तप्रातिहार्यां - कयक्षयुक्।
निर्माप्य विधिना पीठे जिनबिम्बं निवेशयेत्[१]।।

अर्थ—जिसके मुख की आकृति शांत हो, प्रसन्न हो, मध्यस्थ हो, नेत्र विकाररहित हो, दृष्टि नासिका के अग्रभाग पर हो, जो केवलज्ञान के सम्पूर्ण भावों से सुशोभित हो, जिसके अंग उपांग सब सुन्दर हों, रौद्र आदि भावों से रहित हों, आठों प्रातिहार्यों से विभूषित हों, चिन्ह से सुशोभित हों, यक्ष-यक्षी सहित हों और ध्यानस्थ हों, इस प्रकार के शुभ लक्षणों से सुशोभित जिनप्रतिमा बनवाना चाहिए और प्रतिष्ठा कराकर पूजा करनी चाहिए। जिस प्रतिमा में ये लक्षण न हों, वह अरहन्त की प्रतिमा नहीं कही जा सकती।

प्रातिहार्याष्टकोपेतां यक्षयक्षीसमन्विताम्।
स्वस्वलांच्छनसंयुक्तां जिनार्चां कारयेत्सुधीः।।[२]

अर्थ—जो आठ प्रातिहार्यों से सुशोभित है, यक्ष-यक्षी सहित है और अपने-अपने चिन्हों से सुशोभित है, ऐसी प्रतिमा बुद्धिमानों को बनवानी चाहिए।

यक्षं च दक्षिणे पार्श्वे वामे शासनदेवताम्।
लाञ्छनं पादपीठाधः स्थापयेद् यस्य यद्भवेत्।।[३]

अर्थ—जिनप्रतिमा के दाईं ओर यक्ष की मूर्ति होनी चाहिए, बाईं ओर शासन देवता अर्थात् यक्षी की मूर्ति होनी चाहिए और सिंहासन के नीचे जिनकी प्रतिमा हो, उनका चिन्ह होना चहिए।

स्थापयेदर्हतां छत्रत्रयाशोकप्रकीर्णके।
पीठं भामण्डलं भाषां पुष्पवृष्टिं च दुन्दुभिम्।।
स्थिरेतरार्चयोः पादपीठस्थायौ यथायथम्।
लांच्छनं दक्षिणे पार्श्वे यक्षो यक्षी च वामके।।[४]

अर्थ—अरहन्त प्रतिमा के निर्माण के साथ-साथ तीन छत्र, अशोक वृक्ष, सिंहासन, भामण्डल, चमर, दिव्यध्वनि, दुन्दुभि, पुष्पवृष्टि ये आठ प्रातिहार्य अंकित होने चाहिए। प्रतिमा चाहे चल हों, चाहे अचल हों परन्तु उनका चिन्ह सिंहासन के नीचे होना चाहिए।

---

१. प्रतिष्ठासारोद्धार अध्याय १ पृ० ७।
२. जिनेन्द्र कल्याणाभ्युदय।
३. वसुनन्दी प्रतिष्ठापाठ।
४. प्रतिष्ठासारोद्धार अध्याय १ पृ. ९।

अथ बिम्बं जिनेन्द्रस्य कर्तव्यं लक्षणान्वितम्।
कृत्वायतनसंस्थानं तरुणांगं दिगम्बरम्।।
मूलप्रमाणपर्वाणां कुर्यादष्टोत्तरं शतम्।
अङ्गोपांगविभागश्च जिनबिम्बानुसारतः।।
प्रातिहार्याष्टकोपेतं सम्पूर्णावयवं शुभम्।
भावरूपानुविद्धांगं कारयेद्बिम्बमर्हतः।।
प्रातिहार्यं बिना शुद्धं सिद्धं बिम्बमपीदृशम्।
सूरीणां पाठकानां च साधूनां च यथागमम्।।

अर्थ—भगवान जिनेन्द्रदेव की प्रतिमा लक्षण सहित बनवानी चाहिए। जो समचतुरस्र संस्थान हो, तरुणावस्था की हो, दिगम्बर हो, उसका आकार वास्तुशास्त्र के अनुसार दशताल प्रमाण हो, उसके आकार के एक सौ आठ भाग हों, अंग-उपांगों का विभाग प्रतिमा के अनुसार ही होना चाहिए। जो आठ प्रातिहार्यों से सुशोभित हो, जिसके सम्पूर्ण अवयव हों, जो शुभ हो, उसका शरीर केवलज्ञान को प्रकाशित करने वाले भावों से परिपूर्ण हो, इस प्रकार अरहन्त की प्रतिमा बनवानी चाहिए। यदि उस प्रतिमा के साथ आठ प्रातिहार्य न हों, तो वह सिद्धों की प्रतिमा हो जाती है। आचार्य, उपाध्याय और साधुओं की प्रतिमा भी आगम के अनुसार बनवानी चाहिए।

कारयेदर्हतो बिम्बं प्रातिहार्यसमन्वितम्।
यक्षाणां देवतानां च सर्वालंकारभूषितम्।।
स्ववाहनायुधोपेतं कुर्यात्सर्वांगसुन्दरम्।

अर्थ—जिनप्रतिमा आठ प्रातिहार्य सहित होनी चाहिए तथा यक्ष-यक्षी सहित होनी चाहिए। वे यक्ष और यक्षी समस्त अलंकारों से सुशोभित होने चाहिए, अपने-अपने आयुध और वाहन सहित हों तथा सर्वांग सुन्दर हो।

सैद्धं नु प्रातिहार्यांकयक्षयुग्मोज्झितं शुभम्।

अर्थ—जिस प्रतिमा में आठ प्रातिहार्य न हों और यक्ष-यक्षी न हों, उनको सिद्ध प्रतिमा कहते हैं।

अष्टप्रातिहार्यसमन्वितार्हत्प्रतिमा तद्रहिता सिद्धप्रतिमा।

अर्थ—जिस प्रतिमा में आठ प्रातिहार्य हो, वह अरहन्त की प्रतिमा है तथा जिसमें प्रातिहार्य नहीं है वह सिद्ध प्रतिमा है।

प्रतिष्ठा के समस्त ग्रंथों में अरहन्त प्रतिमा का यही स्वरूप बतलाया है। त्रिलोकसार, राजवार्तिक में भी प्रतिमा का यही स्वरूप है। यथा—

सिंहासणादिसहिया विणीयलकुन्तल-सुवज्जमयदंता।
विद्दुम अहरा किसलयसोहायर हत्थपायतला[१]।।९८५।।
सिरि देवी सुअदेवी सव्वाण्हसणक्कुमारजक्खाणं।
रूवाणिय जिणपासे मंगलमट्ठविह मवि होई।।९८८।।

१. त्रिलोकसार पृ. ७ गाथा ९८५, ९८८।

अर्थ — जिनप्रतिमा के निकट इन चारित्र का प्रतिबिम्ब होई है। यहाँ पर प्रश्न — जो श्रीदेवी तो धनादिक रूप है और सरस्वती जिनवाणी है। इनका प्रतिबिम्ब कैसे होई है। ताका-समाधान — श्री और सरस्वती ये दोऊ लोक में उत्कृष्ट हैं तातें इनका देवांगना का आकार रूप प्रतिबिम्ब होई है। बहुरि दोऊ यक्ष विशेष भक्त हैं तातें तिनके आकार हो हैं। आठ मंगल द्रव्य हों।

शासन देव-देवी के प्रमाण

गोवदणमहाजक्खा तिमुहो जक्खेसरो य तुंबुरओ।
मादंगविजयअजिओ बम्हो बम्हेसरो य कोमारो।।९३४।।
छम्मुहओ पादालो किण्णरकिंपुरुसगरुडगंधव्वा।
तह य कुबेरो वरुणो भिउडीगोमेधपासमातंगा।।९३५।।
गुज्झकओ इदि एदे जक्खा चउवीस उसहपहुदीणं।
तित्थयराणं पासे चेट्ठंते भत्तिसंजुत्ता।।९३६।।
जक्खीओ चक्केसरिरोहिणिपण्णत्तिवज्जसिंखलया।
वज्जंकुसा य अप्पदिचक्केसरिपुरिसदत्ता य।।९३७।।
मणवेगाकालीओ तह जालामालिणी महाकाली।
गउरीगंधारीओ वेरोटी सोलसा अणंतमदी।।९३८।।
माणसिमहमाणसिया जया य विजयापराजिदाओ य।
बहुरूपिणिकुंभंडी पउमासिद्धायिणीओ त्ति[१]।।९३९।।

गोवदन, महायक्ष, त्रिमुख, यक्षेश्वर, तुम्बुरव, मातंग, विजय, अजित, ब्रह्म, ब्रह्मेश्वर, कुमार, षण्मुख, पाताल, किन्नर, किंपुरुष, गरुड, गंधर्व, कुबेर, वरुण, भृकुटि, गोमेध, पार्श्व, मातंग और गुह्यक, इस प्रकार ये भक्ति से संयुक्त चौबीस यक्ष ऋषभादिक तीर्थंकरों के पास में स्थित रहते हैं।।९३४-९३६।।

चक्रेश्वरी, रोहिणी, प्रज्ञप्ति, वज्रशृंखला, वज्रांकुशा, अप्रतिचक्रेश्वरी, पुरुषदत्ता, मनोवेगा, काली, ज्वालामालिनी, महाकाली, गौरी, गांधारी, वैरोटी, सोलसा, अनन्तमती, मानसी, महामानसी, जया, विजया, अपराजिता, बहुरूपिणी, कूष्माण्डी, पद्मा और सिद्धायिनी, ये यक्षिणियाँ भी क्रमशः ऋषभादिक चौबीस तीर्थंकरों के समीप में रहा करती हैं।।९३७-९३९।।

चमरकरणागजक्खगबत्तीसंमिहुणगेहि पुह जुत्ता।
सरिसीए पंतीए गब्भगिहे सुट्ठु सोहंति।।९८७।।
सिरिदेवी सुददेवी सव्वाण्हसणक्कुमारजक्खाणं।
रूवाणि य जिणपासे मंगलमट्ठविहमवि होदि[२]।।९८८।।

१. तिलोयपण्णत्ति पृ. २६६-३६७। २. त्रिलोकसार पृ. ७५३, ७५४।

चमर। चमरकरनागयक्षगतद्वात्रिंशन्मिथुनैः पृथक् पृथक् गर्भगृहे सदृश्या पंक्त्या युक्ताः सुष्ठु शोभन्ते।।९८७।।

सिरि। तज्जिनप्रतिमापार्श्वे श्रीदेवी श्रुतदेवी सर्वाह्नसनत्कुमारयक्षाणां रूपाणि अष्टविधानि मङ्गलानि च भवन्ति।।९८८।।

गाथार्थ—वे जिनप्रतिमाएँ, चमरधारी नागकुमारों के बत्तीस युगलों और यक्षों के बत्तीस युगलों सहित, पृथक्-पृथक् एक-एक गर्भगृह में सदृश पंक्ति से भली प्रकार शोभायमान होती हैं। उन जिनप्रतिमाओं के पार्श्वभाग में श्रीदेवी, श्रुतदेवी, सर्वाह्न यक्ष और सानत्कुमार यक्ष के रूप अर्थात् प्रतिमाएँ हैं तथा अष्टमंगल द्रव्य भी होते हैं। झारी, कलश, दर्पण, पङ्खा, ध्वजा, चामर, छत्र और ठोना ये आठ मंगल द्रव्य हैं। ये प्रत्येक मंगल द्रव्य १०८-१०८ प्रमाण होते हैं।।९८७-९८८-९८९।।

इसी प्रकार तिलोयपण्णत्ती में भी कहा है—

सिरिसुददेवीणतहासव्वाणहसणक्कुमार जक्खाणं।
रूवाणिं पत्तेक्कं पडि वररयणइरइदाणिं[1]।।१८८१।।

अर्थ—प्रत्येक प्रतिमा के प्रति उत्तम रत्नादिकों से रचित श्रीदेवी, श्रुतदेवी तथा सर्वाह्न व सानत्कुमार यक्षों की मूर्तियाँ रहती हैं।।१८८१।।

विश्वेश्वरादयो ज्ञेया देवता शांतिहेतवे।
क्रूरास्तु देवताः हेया येषां स्याद्वृत्तिरामिषैः[2]।।

अर्थ—जिनागम में विश्वेश्वर, चक्रेश्वरी, पद्मावती आदि देवता शान्ति के लिए बतलाये हैं परन्तु जिन पर बलि चढ़ाई जाती है, जीव मारकर चढ़ाये जाते हैं, ऐसे चण्डी-मुण्डी आदि देवता त्याग करने योग्य हैं। इसका भी खुलासा इस प्रकार है—

मिथ्यात्वपूरिताः क्रूराः सशस्त्राः सपरिग्रहाः।
निंद्या आमिषवृत्तित्वा-न्मद्यपानाच्च हीनकाः[3]।।१।।

कुदेवाश्च ताज्ञेया ब्रह्मोमाविष्णुकादयः।
प्रतिपत्तिश्च तासां हि मिथ्यात्वस्य च कारणम्।।२।।

तस्माद्धेयाः कुदेवास्ते मिथ्याभेषधरावहाः।
ग्राह्याः सम्यक्त्व सम्पन्ना जिनधर्मप्रभावकाः।।३।।

चक्रेश्वर्यादिदिक्पाला यक्षाश्च शांतिहेतवे।
सम्यग्दर्शनयुक्तत्वात्ते पूज्या जिनशासने।।४।।

नाप्यस्ति मूढता तत्र दृगादिपूजने यतः।

---

१. तिलोयपण्णत्ति चतुर्थअधिकार-पृ. ३८७।

२. ३. उमास्वामी श्रावकाचार-पृ. २९ पर मंत्र प्रदीप के श्लोक

अर्थ — जो देव मिथ्यात्वी, क्रूर, हिंसक हैं, शस्त्र, परिग्रह सहित हैं, मांस की वृत्ति और मद्य की वृत्ति होने से निंद्य और हीन हैं, ऐसे ब्रह्मा, विष्णु, उमा, चण्डी, मुण्डी आदि देवता कुदेवता कहाते हैं। उनकी पूजा करना मिथ्यात्व का कारण है इसलिए मिथ्या भेष को धारण करने वाले ऐसे कुदेव त्याज्य हैं परन्तु जो देव सम्यग्दृष्टि हैं, जो जिनधर्म की प्रभावना करने वाले हैं, ऐसे चक्रेश्वरी, दिक्पाल, यक्ष आदि देवता शान्ति प्रदान करने वाले हैं। ऐसे देव सम्यग्दृष्टी होने के कारण पूज्य हैं, ऐसा जैन शास्त्रों का आदेश है, उनकी पूजा करने में देवमूढ़ता नहीं होती क्योंकि सम्यग्दृष्टि जीव सदा पूज्य होता है।

पूजा के प्रकरण में प्रमाण

श्री पूज्यपाद आचार्यदेव ने अपने 'अभिषेक पाठ' के अन्त में जो यक्ष-यक्षी आदि के अर्घ्य चढ़ाने के लिए कहा है, उसका पूरा क्रम और विधि 'प्रतिष्ठातिलक' ग्रंथ में उपलब्ध है।

पूजा प्रारंभ विधि में जो क्रिया है वह सब श्री पूज्यपादस्वामी के अभिषेक पाठ के प्रारंभिक श्लोकों के अनुसार ही है सो देखिये —

आनम्यार्हंतमादावहमपि विहितस्नानशुद्धिः पवित्रैः।
तोयैः सन्मंत्रयंत्रैर्जिनपतिसवनाम्भोभिरप्यात्तशुद्धिः।।
आचम्यार्घ्यं च कृत्वा शुचिधवलदुकूलान्तरीयोत्तरीयः।
श्रीचैत्यावासमानौम्यवनतिविधिना त्रिःपरीत्य क्रमेण।।१।।

द्वारं चोद्घाट्य वक्त्राम्बरमपि विधिनेर्यापथाख्यां च शुद्धिं।
कृत्वाहं सिद्धभक्तिं बुधनुतसकलीसत्क्रियां चादरेण।।
श्री जैनेन्द्रार्चनार्थं क्षितिमपि यजनद्रव्यपात्रात्मशुद्धिं।
कृत्वा भक्त्या त्रिशुद्ध्या महमहमधुना प्रारभेयं जिनस्य[१]।।२।।

"पूजा अभिषेक के प्रारंभ में स्नान करके शुद्ध हुआ मैं अर्हंत देव को नमस्कार करके पवित्र जलस्नान से, मंत्रस्नान से और व्रतस्नान से शुद्ध होकर आचमन कर, अर्घ्य देकर, धुले हुए सफेद धोती और दुपट्टे को धारण कर, वंदना विधि के अनुसार तीन प्रदक्षिणा देकर जिनालय को नमस्कार करता हूँ।

तथा द्वारोद्घाटन कर और मुख वस्त्र पहनकर विधिपूर्वक ईर्यापथ शुद्धि करके, सिद्धभक्ति करके, सकलीकरण करके, जिनेन्द्रदेव की पूजा के लिए भूमिशुद्धि, पूजा द्रव्य की शुद्धि, पूजा पात्रों की शुद्धि और आत्मशुद्धि करके भक्तिपूर्वक मन, वचन, काय की शुद्धि से अब जिनेन्द्रदेव का महामह अर्थात् अभिषेक पूजा प्रारंभ करता हूँ।

इस कथित विधि के अनुसार आचार्य श्री नेमिचंद्र कृत प्रतिष्ठातिलक में क्रम से सर्वविधि का वर्णन है। प्रारंभ में जलस्नान के अनंतर "मंत्रस्नान" विधि का वर्णन है। अनंतर "पूजामुख विधि" शीर्षक में मंदिर में प्रवेश करने से लेकर सिद्धभक्ति तक का वर्णन है अर्थात् मंदिर में प्रवेश करना, प्रदक्षिणा देना, जिनालय की तथा जिनेन्द्रदेव की स्तुति करना, ईर्यापथ शुद्धि करके सकलीकरण करना, द्वारोद्घाटन, मुखवस्त्र उत्सारण (वेदी के

---

१. अभिषेक पाठ संग्रह पृ. १।

सामने का वस्त्र हटाना) पुनः सामायिक विधि स्वीकार कर विधिवत् कृत्य विज्ञापना करके सामायिक दंडक, कायोत्सर्ग और थोस्सामि करके लघु सिद्धभक्ति करना यहाँ तक पूजामुख विधि होती है।

पुनः विधिवत् अभिषेक करने का विधान है। अनंतर नित्य पूजा के बाद अंत में जो विधि करनी चाहिये उसके लिये "अभिषेक पाठ" में ही अंत में चार श्लोक दिये गये हैं उन्हें देखिये—

निष्ठाप्यैवं जिनानां सवनविधिरपि प्राच्र्यभूभागमन्यं।
पूर्वोक्तैर्मंत्रयंत्रैरिव भुवि विधिनाराधनापीठयंत्रम्।।
कृत्वा सच्चंदनाद्यैर्वसुदलकमलं कर्णिकायां जिनेन्द्रान्।
प्राच्यां संस्थाप्य सिद्धानितरदिशि गुरून् मंत्ररूपान् निधाय।।३७।।

जैनं धर्मागमार्चानिलयमपि विदिक्पत्रमध्ये लिखित्वा।
बाह्ये कृत्वाथ चूर्णैः प्रविशदसदकैः पंचकं मंडलानाम्।।
तत्र स्थाप्यास्तिथीशा ग्रहसुरपतयो यक्षयक्ष्यः क्रमेण।
द्वारेशा लोकपाला विधिवदिह मया मंत्रतो व्याह्वियन्ते।।३८।।

एवं पंचोपचारैरिह जिनयजनं पूर्ववन्मूलमंत्रे-
णापाद्यानेकपुष्पैरमलमणिगणैरंगुलीभिः समंत्रैः।।
आराध्यार्हंतमष्टोत्तरशतममलं चैत्यभक्त्यादिभिश्च।
स्तुत्वा श्रीशांतिमंत्रं गणधरवलयं पंचकृत्वः पठित्वा।।३९।।

पुण्याहं घोषयित्वा तदनु जिनपतेः पादपद्मार्चितां श्री-
शेषां संधार्य मूर्ध्ना जिनपतिनिलयं त्रिःपरीत्य त्रिशुद्ध्या।
आनम्येशं विसृज्यामरगणमपि यःपूजयेत् पूज्यपादं
प्राप्नोत्येवाशु सौख्यं भुवि दिवि विबुधो देवनंदीडितश्रीः।।४०।।[१]

अर्थ—इस प्रकार जिनेन्द्रदेव की पूजाविधि को पूर्ण करके पूर्वोक्त मंत्र-यंत्रों से विधिपूर्वक आराधनापीठ यंत्र की पूजा करे, पुनः चंदन आदि के द्वारा आठ दल का कमल बनाकर कर्णिका में श्री जिनेन्द्रदेव को स्थापित कर पूर्वदिशा में सिद्धों को, शेष तीन दिशा में आचार्य, उपाध्याय और साधु को विराजमान करके पुनः विदिशा के दलों में क्रम से जैनधर्म, जिनागम, जिनप्रतिमा और जिनमंदिर को लिखकर बाहर में चूर्ण से और धुले हुये उज्ज्वल चावल आदि से पंचवर्णी मंडल बना लेवे। इस कमल के बाहर पंचदश तिथिदेवता को, नवग्रहों को, बत्तीस इंद्रों को, चौबीस यक्षों को, चौबीस यक्षिणी को तथा द्वारपालों को और लोकपालों को विधिवत् मंत्रपूर्वक मैं आह्वानन विधि से बुलाता हूँ।

इस तरह पंचोपचारों से मंत्रपूर्वक जिन भगवान् का पूजन कर पूर्ववत् मूल मंत्रों द्वारा अनेक प्रकार के पुष्पों से, निर्मल मणियों की माला से या अंगुली से एक सौ आठ जाप्य करके अरहंतदेव की आराधना करे। पुनः

---

१. अभिषेक पाठ संग्रह पृ. १२-१३।

चैत्यभक्ति आदि शब्द से पंचगुरुभक्ति और शांतिभक्ति के द्वारा स्तवन करके शांतिमंत्र और गणधरवलय मंत्रों को पाँच बार पढ़कर पुण्याहवाचन की घोषणा करना, इसके बाद जिनेन्द्रदेव के चरणकमलों से पूजित श्रीशेषा/आसिका को मस्तक पर चढ़ाकर जिनमंदिर की तीन प्रदक्षिणा देकर, मन, वचन, काय की शुद्धिपूर्वक जिनेन्द्र भगवान को नमस्कार करके और अमरगण अर्थात् पूजा के लिये बुलाए गए देवों का विसर्जन करके जो व्यक्ति ''पूज्यपाद'' जिनेन्द्र भगवान् की पूजा करता है वह ''देवनन्दी'' से पूजित श्री विद्वान् मर्त्यलोक और देवलोक में शीघ्र ही सुख को प्राप्त करता है। (३७ से ४०)

पुनः प्रतिष्ठातिलक ग्रंथ में देखिए—

नित्य अभिषेक पाठ में पहले पंचकुमार पूजा व दशदिक्पाल पूजा दी है। पुनः पंचामृत अभिषेक पाठ है। अनन्तर अष्टद्रव्य से भगवान की पूजा, श्रुतपूजा, गणधरदेव पूजा दी है। अनन्तर यक्ष-यक्षी की पूजा दी है।

अथ यक्ष पूजा

-उपजाति छंद-

यक्षं यजामो जिनमार्गरक्षा-दक्षं सदा भव्यजनैकपक्षम्।
निर्दग्धनिःशेषविपक्षकक्षं, प्रतीक्ष्यमत्यक्षसुखे विलक्षम्।।१।।[१]

ॐ ह्रीं हे यक्ष! अत्र आगच्छ आगच्छ संवौषट्।

ॐ ह्रीं हे यक्ष! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।

ॐ ह्रीं हे यक्ष! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (स्थापनं)।

ॐ ह्रीं यक्षाय इदमर्घ्यं पाद्यं गंधं अक्षतं पुष्पं दीपं धूपं चरुं बलिं फलं स्वस्तिकं यज्ञभागं च यजामहे प्रतिगृह्यताम् प्रतिगृह्यताम् स्वाहा।

अथ यक्षी पूजा

-उपजाति छंद-

यक्षीं सपक्षीकृतभव्यलोकां, लोकाधिकैश्वर्यनिवासभूताम्।
भूतानुकंपादिगुणानुमोदां, मोदांचितामर्चनमातनोमि।।१।।[२]

ॐ ह्रीं हे यक्षि! अत्र आगच्छ आगच्छ संवौषट्।

ॐ ह्रीं हे यक्षि! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।

ॐ ह्रीं हे यक्षि! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (स्थापनं)।

ॐ ह्रीं हे यक्षीदेवि! इदं जलं गंधं अक्षतं पुष्पं चरुं दीपं धूपं फलं बलिं स्वस्तिकं यज्ञभागं च यजामहे प्रतिगृह्यताम् प्रतिगृह्यताम् स्वाहा।

अनंतर नवदेवता की पूजा के बाद क्रमशः चौबीय यक्ष व चौबीस यक्षी—जिनशासन देव-देवियों के भी अर्घ्य हैं। यथा—

१-२. प्रतिष्ठातिलक पृ. २७-२८।

चौबीस यक्ष पूजा

–उपजाति छंद–

यक्षाधिका रक्षितधर्ममार्गा, ये गोमुखाद्यास्त्रिगुणाष्टसंख्या:।
तृतीयसन्मंडलवर्तिनस्तान्-सपर्यया प्रीतिजुषस्तनोमि[१]।।१३।।

ॐ ह्रीं गोमुख–महायक्ष–त्रिमुख–यक्षेश्वर–तुंबरु–कुसुम–वरनंदि–विजय–अजित–ब्रह्मेश्वर–कुमार–षण्मुख–पाताल–किन्नर–किंपुरुष–गरुड–गंधर्व–खेन्द्र–कुबेर–वरुण–भृकुटि–सर्वाण्ह–धरणेन्द्र–मातंगाभिधानचतुर्विंशति–यक्षदेवता: ! अत्र आगच्छत आगच्छत संवौषट्।

ॐ ह्रीं गोमुख–महायक्ष–त्रिमुख–यक्षेश्वर–तुंबरु–कुसुम–वरनंदि–विजय–अजित–ब्रह्मेश्वरकुमार–षण्मुख–पाताल–किन्नर–किंपुरुष–गरुड–गंधर्व–खेन्द्र–कुबेर–वरुण–भृकुटि–सर्वाण्ह–धरणेन्द्र–मातंगाभिधानचतुर्विंशतियक्षदेवता: ! अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठ: ठ:।

ॐ ह्रीं गोमुख–महायक्ष–त्रिमुख–यक्षेश्वर–तुंबरु–कुसुम–वरनंदि–विजय–अजित–ब्रह्मेश्वर–कुमार–षण्मुख–पाताल–किन्नर–किंपुरुष–गरुड–गंधर्व–खेन्द्र–कुबेर–वरुण–भृकुटि–सर्वाण्ह–धरणेन्द्र–मातंगाभिधानचतुर्विंशति–यक्षदेवता: ! अत्र मम सन्निहिता भवत भवत वषट्।

ॐ ह्रीं गोमुखादिचतुर्विंशतियक्षेभ्य इदमर्घ्यं पाद्यं जलं गंधं अक्षतान् पुष्पं चरुं दीपं धूपं फलं बलिं स्वस्तिकं यज्ञभागं च यजामहे प्रतिगृह्यतां प्रतिगृह्यतां स्वाहा।

चौबीस यक्षी पूजा

–उपजाति छंद–

सम्यक्प्रभावितजिनेश्वरशासनश्री–चक्रेश्वरीप्रभृतिशासनदेवता या:।
यक्षप्रमाणकलिता गुणिसंघगृह्यास्तास्तुर्यमंडलगता बलिना धिनोमि[२]।।१४।।

ॐ ह्रीं चक्रेश्वरी–रोहिणी–प्रज्ञप्ती–वज्रशृंखला–पुरुषदत्ता–मनोवेगा–काली–ज्वालामालिनी–महाकाली–मानवी–गौरी–गांधारी–वैरोटी–अनंतमती–मानसी–महामानसी–जया–विजया–अपराजिता–बहुरूपिणी–चामुंडी–कूष्मांडिनी–पद्मावती–सिद्धायिन्यश्चेति चतुर्विंशतिदेवता: ! अत्र आगच्छत आगच्छत संवौषट्।

ॐ ह्रीं चक्रेश्वरी–रोहिणी–प्रज्ञप्ती–वज्रशृंखला–पुरुषदत्ता–मनोवेगा–काली–ज्वालामालिनी–महाकाली–मानवी–गौरी–गांधारी–वैरोटी–अनंतमती–मानसी–महामानसी–जया–विजया–अपराजिता–बहुरूपिणी–चामुंडी–कूष्मांडिनी–पद्मावती–सिद्धायिन्यश्चेति चतुर्विंशतिदेवता: ! अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठ: ठ:।

ॐ ह्रीं चक्रेश्वरी–रोहिणी–प्रज्ञप्ती–वज्रशृंखला–पुरुषदत्ता–मनोवेगा–काली–ज्वालामालिनी–महाकाली–मानवी–गौरी–गांधारी–वैरोटी–अनंतमती–मानसी–महामानसी–जया–विजया–अपराजिता–बहुरूपिणी–चामुंडी–कूष्मांडिनी–पद्मावती–सिद्धायिन्यश्चेति चतुर्विंशतिदेवता: ! अत्र मम सन्निहिता भवत भवत वषट्।

ॐ ह्रीं चक्रेश्वर्यादिशासनदेवताभ्य इदमर्घ्यं पाद्यं जलं गंधं अक्षतान् पुष्पं चरुं दीपं धूपं फलं बलिं स्वस्तिकं यज्ञभागं च यजामहे प्रतिगृह्यतां प्रतिगृह्यतां स्वाहा।

---

१. २. प्रतिष्ठातिलक पृ. ३३।

दिग्पाल पूजा

श्री पूज्यपाद स्वामी ने अभिषेक पाठ में दशदिक्पाल का अर्घ्य दिया है—

पूर्वाशादेश हव्यासन महिषगते नैर्ऋते पाशपाणे।
वायो यक्षेन्द्र चन्द्राभरण फणिपते रोहिणीजीवितेश।।
सर्वेऽप्यायात यानायुधयुवतिजनैः सार्धमों भूर्भुवः स्वः।
स्वाहा गृह्णीत चार्घ्यं चरुममृतमिदं स्वस्तिकं यज्ञभागं[१]।।११।।

ॐ ह्रीं क्रों प्रशस्तवर्णसर्वलक्षणसम्पूर्णस्वायुधवाहनवधूचिन्हसपरिवारा इन्द्राग्नियमनैर्ऋतवरुणवाहन-कुबेरेशानधरणेन्द्रसोमनामदशलोकपाला आगच्छत आगच्छत संवौषट्, स्वस्थाने तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः, ममात्र सन्निहिता भवत भवत वषट् इदमर्घ्यं पाद्यं गृह्णीध्वं गृह्णीध्वं ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा स्वधा।

इन्द्रादिदशलोकपालपरिवारदेवतार्चनम्।

बृहत्स्नपन—श्री गुणभद्रभदन्त कृत अभिषेक पाठ में—

पृ. २५ से २८ तक दश दिक्पाल के अर्घ्य एवं क्षेत्रपाल का अर्घ्य है।

श्री अभयनंदि आचार्य विरचित 'लघु स्नपनं' की टीका में श्री भावशर्मकृत संस्कृत टीका है।

उसमें पृ. ५९-६० पर दश दिक्पालों के अर्घ्य हैं। पुनः पृ. ६६ से ७४ तक दशों दिक्पालों के पृथक्-पृथक् अर्घ्य हैं। यथा—

ॐ पूर्वस्यां दिशि कुण्डलांशनिचयव्यालीढगण्डस्थलं
शक्रं मूर्धनि बद्धसाधुमुकुटं स्वारूढमैरावतम्।
पत्नीबान्धवभृत्यवर्गसहितं देवं समाह्वानये
पाद्यार्घाक्षतदीपगन्धकुसुमं दत्तं मया गृह्यताम्[२]।।१५।।

ॐ पूर्वस्यां दिशि इन्द्रदेवमाह्वानयामहे स्वाहा। अथ पूजामंत्रः—हे इन्द्र! आगच्छ। इन्द्राय स्वाहा। इन्द्रमहत्तराय स्वाहा। इन्द्रपरिजनाय स्वाहा। अग्नये स्वाहा। अनिलाय स्वाहा। वरुणाय स्वाहा। सोमाय स्वाहा। प्रजापतये स्वाहा। ॐ स्वाहा। भूः स्वाहा। भुवः स्वाहा। स्वः स्वाहा। ॐ भूर्भुवःस्वः स्वाहा। ॐ इन्द्रदिक्पालाय स्वगणपरिवृताय पाद्यं गंधं पुष्पं दीपं धूपं चरुं बलिं स्वस्तिकमक्षतं यज्ञभागं च भावान्निवेदितं यजामहे प्रतिगृह्यतां प्रतिगृह्यतां प्रतिगृह्यतामिति स्वाहा।

श्री गजांकुश कवि विरचित 'जैनाभिषेक' में श्री प्रभाचंद्र देवकृत संस्कृत टीका है। इसमें पृ. ९४ पर दशदिक्पाल का अर्घ्य है[३]।

पं. श्री आशाधर विरचित 'नित्यमहोद्योत' अभिषेक पाठ में क्षेत्रपाल की विधिवत् पूजा है। यथा—

क्षेत्रपालाय यज्ञेऽस्मिन्नेतत्क्षेत्राधिरक्षिणे।
बलिं दिशामि दिश्यग्नेर्वेद्यां विघ्नविघातिने।।३६।।[४]

---

१. अभिषेक पाठ संग्रह पृ. ५। २. अभिषेक पाठ संग्रह 'लघुस्नपनं पृ. ६६-६७। ३. अभिषेक पाठ संग्रह 'जैनाभिषेक पृ. ९४। ४. अभिषेक पाठ संग्रह-नित्यमहोद्योतम् पृ. १४० से १४४।

ॐ आँ क्रों ह्रीं अत्रस्थ क्षेत्रपाल! आगच्छागच्छ संवौषट्, तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः, मम सन्निहितो भव भव वषट्, इदं जलाद्यर्चनं गृहाण गृहाण स्वाहा।

क्षेत्रपाल पूजा

विश्वम्भरामम्बुकुशानलाभ्यां संशोध्य सन्तर्प्य फणीन् सुधाभिः।
निक्षिप्य दर्भान्निखिलासु दिक्षु श्रीक्षेत्रपालाय बलिं ददामि।।३७।।

क्षेत्रपाल का लक्षण

तमालतरुकान्तिभाक् प्रकटिताट्टहासास्यवान्,
दयागुणसमन्वितो भुजगभूषणैर्भीषणः।
कनत्कनककिंकणीकलितनूपुरारावत्रान् ,
दिगम्बरवपुर्मया जिनगृहेऽर्च्यते क्षेत्रपः।।३८।।

क्षेत्रपाल का स्नपन

सद्यस्केन सुगन्धेन स्वच्छेन बहलेन च।
स्नपनं क्षेत्रपालस्य तैलेन प्रकरोम्यहम्।।३९।।

सिन्दुरैरारुणाकारैः पीतवर्णैः सुसंभवैः।
चर्चनं क्षेत्रपालस्य सिंदूरैः प्रकरोम्यहम्।।४०।।

भोः क्षेत्रपाल! जिनपप्रतिमाङ्कभाल,
दंष्ट्राकराल जिनशासनवैरिकाल।
तैलाहिजन्मगुडचन्दन - पुष्पधूपै -
र्भोगं प्रतीच्छ जगदीश्वरयज्ञकाले।।४१।।

इदं जलादिकमर्चनं गृहाण गृहाण ॐ भूर्भुवःस्वः स्वधा स्वाहा इति क्षेत्रपालार्चनम्।

पुनः वास्तुदेव, वायुकुमार, मेघकुमार, अग्निकुमार, नागकुमार इन पंच कुमारों के आह्वानपूर्वक अर्घ्य हैं। यथा—

उत्खातपूरितसमीकृतसंस्कृतायां, पुण्यात्मनीह भगवन्मखमण्डपोर्व्याम्।
वास्त्वर्चनादिविधिलब्धमखादिभागं, वेद्यां यजामि शशिभृद्दिशि वास्तुदेवम्।।४२।।

पुनः दशदिक्पाल के पृथक्-पृथक् अर्घ्य हैं। यथा—

रूप्याद्रिस्पर्धिघंटायुगपटुटङ्कारभग्नारिशुम्भद् -
भूषासख्यातिचित्रोज्वलकुथविलसल्लक्ष्मवर्ष्मद्विपस्थम्।
दृप्यत्सामानिकादित्रिदशपरिवृतं रुच्यशच्यादिदेवी-
लोलाक्षं वज्रभूषोद्भटसुभगरुचं प्रागिहेन्द्रं यजेऽहम्[१]।।९६।।

१. त्रिलोक भास्कर, पृ. २३१।

ॐ ह्रीं क्रों इन्द्र! आगच्छ आगच्छ संवौषट्, तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः, मम सन्निहितो भव भव वषट् इन्द्राय स्वाहा। इन्द्रपरिजनाय स्वाहा, इन्द्रानुचराय स्वाहा, इन्द्रमहत्तराय स्वाहा, अग्नये स्वाहा, अनिलाय स्वाहा, वरुणाय स्वाहा, सोमाय स्वाहा, प्रजापतये स्वाहा, ॐ स्वाहा, भूः स्वाहा, भुवः स्वाहा, स्वः स्वाहा, ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा, ॐ इन्द्रदेवाय स्वगणपरिवृताय इदमर्घ्यं पाद्यं गंधं पुष्पं धूपं दीपं चरुं बलिं अक्षतं स्वस्तिकं यज्ञभागं च यजामहे प्रतिगृह्यतां प्रतिगृह्यतामिति स्वाहा।

शासन देव–देवी, क्षेत्रपाल, दिग्पाल आदि के आह्वानन–अर्घ्य–पूजा आदि के प्रमाण प्राचीन आगम ग्रंथों में तो हैं ही, वर्तमान में भी अहिच्छत्र, हस्तिनापुर आदि अनेक तीर्थों पर तथा तेरहपंथ आम्नाय के प्राचीन एवं अर्वाचीन मंदिरों में विराजमान हैं। इनकी पूजा–अर्चना भी आगमसम्मत है।

अथ वज्रपंजरस्तोत्रम्

परमेष्ठिनमस्कारं, सारं नवपदात्मकम्।
आत्मरक्षाकरं वज्र-पंजराख्यं स्मराम्यहम्।।1।।
ॐ णमो अरहंताणं, शिरस्कन्धरसं स्थितम्।
ॐ णमो सिद्धाणं, मुखे मुखपटाम्बरम्।।2।।
ॐ णमो आइरियाणं, अंगरक्षातिशायिनी।
ॐ णमो उवज्झायाणं, आयुधं हस्तोयोर्दृढम्।।3।।
ॐ णमो लोए सव्वसाहूणं, मोचके पदयोः शुभे।
एसो पंच णमोयारो, शिला वज्रमयी तले।।4।।
सव्वपावप्पणासणो, वप्रो वज्रमयो बहिः।
मंगलाणं च सव्वेसिं, खदिरांगारखातिका।।5।।
स्वाहान्तं च पदं ज्ञेयं, पढमं हवइ मंगलम्।
वप्रोपरि वज्रमयं, पिधानं देहरक्षणे।।6।।
महाप्रभावरक्षेयं, क्षुद्रोपद्रवनाशिनी।
परमेष्ठीपदोद्भूता, कथिता पूर्वसूरिभिः।।7।।
यश्चैवं कुरुते रक्षां, परमेष्ठिपदैः सदा।
तस्य न स्याद् भयं व्याधि-राधिश्चापि कदाचन।।8।।

तीर्थंकर पंचकल्याणक तीर्थ

-गणिनी आर्यिका ज्ञानमती

श्री ऋषभदेव से लेकर श्री महावीर स्वामी पर्यंत चौबीसों तीर्थंकरों की अयोध्या आदि सोलह (१६) जन्मभूमियाँ हैं।

इन चौबीस तीर्थंकरों में से प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव ने प्रयाग (इलाहाबाद) में जैनेश्वरी दीक्षा ली। वहीं पर उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हुआ है।

श्री नेमिनाथ ने गिरनार क्षेत्र पर दीक्षा ली, वहीं पर उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हुआ है।

श्री पार्श्वनाथ ने अहिच्छत्र में केवलज्ञान प्राप्त किया है।

श्री महावीर स्वामी को जृंभिका ग्राम-जमुई में केवलज्ञान प्राप्त हुआ है।

इस प्रकार चौबीस तीर्थंकरों में से श्री ऋषभदेव और नेमिनाथ के गर्भ-जन्म ऐसे दो-दो कल्याणक जन्मभूमि में एवं दो-दो कल्याणक क्रम से प्रयाग व गिरनार में हुए हैं।

भगवान पार्श्वनाथ व श्री महावीर स्वामी के गर्भ-जन्म व तप ऐसे तीन-तीन कल्याणक जन्मभूमि में हुए हैं और केवलज्ञान कल्याणक क्रमशः अहिच्छत्र एवं जमुई में हुए हैं।

शेष बीसों तीर्थंकरों के गर्भ, जन्म, दीक्षा एवं केवलज्ञान ये चार-चार कल्याणक उन-उन की जन्मभूमि में ही हुए हैं।

तीर्थंकर निर्वाण कल्याणक तीर्थ

श्री ऋषभदेव कैलाशपर्वत से, श्री वासुपूज्य भगवान अपनी जन्मभूमि चंपापुरी (भागलपुर-मंदारगिरि) से, श्री नेमिनाथ गिरनार पर्वत से एवं श्री महावीर स्वामी पावापुरी से मोक्ष गए हैं।

शेष बीस तीर्थंकर भगवन्तों ने सम्मेदशिखर से निर्वाण पद प्राप्त किया है।

इन पंचकल्याणक तीर्थों को मेरा कोटि-कोटि नमस्कार होवे।

चतुर्विंशतितीर्थेशां, षोडश जन्मभूमयः। वंद्यास्ता मंगलं कुर्युः, घ्नन्तु जन्मपरम्परां।।५।।

दीक्षाज्ञानस्थलं पूज्यं, प्रयागश्चाहिच्छत्रकं। संततं मंगलं कुर्यात्, पूर्णज्ञानर्द्धये भवेत् ।।६।।

कैलाशचंपापावोर्ज-यन्तसम्मेदशृंगिषु। निर्वाणभूमयो यास्ताः, कुर्वन्तु मम मंगलम्।।७।।

पंचकल्याणकैः पूज्या, भूमिसरोवराद्रयः। तास्तान् ज्ञानमती याचे, दद्युः सिद्धिं च मे ध्रुवम्।।८।।

मध्यलोक अन्तर्गत ज्योतिर्लोक के जिनमंदिर

भजन

-आर्यिका चन्दनामती

तर्ज–जंगल जंगल धूम मची है......

जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर से, बात सुनी है।
तीन लोक की रचना सुन्दर, वहाँ बनी है।-2
जम्बूद्वीप से पता चली है, बात सुनी है, बात सुनी है।
तीन लोक की रचना सुन्दर, वहाँ बनी है, वहाँ बनी है।।टेक.।।

ज्ञानमती, माताजी की, प्रेरणा मिली है।
इसीलिये, भक्तों में नव, चेतना खिली है।-2
मैंने टी.वी. के माध्यम से, बात सुनी है।
अरे, तीन लोक की रचना सुन्दर वहाँ बनी है।-2
तीन लोक की रचना सुन्दर, वहाँ बनी है, वहाँ बनी है।।1।।

अधोलोक में, नरक भयावह, देखो कितने।
पापकर्म, करने वाले, जाते हैं उनमें।।
मध्यलोक से मोक्षगमन की, बात सुनी है।
अरे, तीन लोक की रचना सुन्दर वहाँ बनी है।-2
तीन लोक की रचना सुन्दर, वहाँ बनी है, वहाँ बनी है।।2।।

ऊर्ध्वलोक में, स्वर्ग देखकर, मन ललचाता।
पुण्यकर्म, करने से मानव, स्वर्ग में जाता।।
अर्धचन्द्रसम सिद्धशिला की, बात सुनी है।
अरे, तीन लोक की रचना सुन्दर वहाँ बनी है।-2
तीन लोक की रचना सुन्दर, वहाँ बनी है, वहाँ बनी है।।3।।

यूँ तो सिद्धशिला से वापस, कोई न आता।
शाश्वतकाल, वहीं आत्मा, सुख-शांती पाता।।
उस सुख की तुलना संसार में, कहीं नहीं है।
तीन लोक की रचना सुन्दर वहाँ बनी है।-2
अरे, तीन लोक की रचना सुन्दर वहाँ बनी है।-2
तीन लोक की रचना सुन्दर, वहाँ बनी है, वहाँ बनी है।।4।।

कृत्रिम सिद्धशिला का भाव से, दर्शन करना।
सदा हृदय में, सिद्ध प्रभू का, सुमिरन करना।।
यही 'चंदनामती' आज, भावना बनी है।
अरे, तीन लोक की रचना सुन्दर वहाँ बनी है।-2
तीन लोक की रचना सुन्दर, वहाँ बनी है, वहाँ बनी है।।5।।

ज्योतिर्वासी देवों के जिनमंदिर

(त्रिलोकसार से)

अथ व्यन्तरलोकाधिकारं निरूप्य तदनन्तरोद्देशभाजं ज्योतिर्लोकाधिकारं निरूपयितुकामस्तदादौ ज्योतिर्बिंबसंख्याप्रदर्शनगर्भं ज्योतिर्लोकचैत्यालयवन्दनालक्षणं मङ्गलमाह—

बेसदछप्पण्णंगुलकदिहिदपदरस्स संखभागमिदे। जोइसजिणिंदगेहे गणणातीदे णमंसामि[१]।।३०२।।

द्विशतषट्पञ्चाशदङ्गुलकृतिहृतप्रतरस्य संख्यातभागमितान्। ज्योतिष्कजिनेन्द्रगेहान् गणनातीतान्नमस्यामि।।३०२।।

बेसद। छायामात्रमेवार्थ:।।३०२।।

अथ तद्गेहस्थज्योतिष्कभेदमाह—

चंदा पुण आइच्चा गह णक्खत्ता पइण्णतारा य। पंचविहा जोइगणा लोयंतघणोदहिं पुट्ठा।।३०३।।

चन्द्रा: पुन: आदित्या ग्रहा नक्षत्राणि प्रकीर्णकताराश्च। पञ्चविधा ज्योतिर्गणा लोकान्तघनोदधिं स्पृष्टवन्त:।।३०३।।

चंदा । छायामात्रमेवार्थ:।।३०३।।

ज्योतिर्वासी देवों के जिनमंदिर

(त्रिलोकसार से)

व्यन्तरलोकाधिकार का निरूपण करके उसके अनन्तर उद्देश्य को प्राप्त ज्योतिर्लोकाधिकार के निरूपण की इच्छा रखने वाले आचार्य सर्वप्रथम ज्योतिषदेवों के बिम्बों की संख्या दिखाने के लिये ज्योतिर्लोक के चैत्यालयों को नमस्कार करने रूप मंगल कहते हैं :—

गाथार्थ :— जगत्प्रतर को दो सौ छप्पन (२५६) अंगुलों के वर्ग (२५६×२५६=६५५३६) का भाग देने पर ज्योतिष देवों का प्रमाण प्राप्त होता है। ज्योतिष देवों के संख्यात भाग प्रमाण **ज्योतिर्बिम्ब एवं चैत्यालय हैं, जो असंख्यात** हैं । उन्हें मैं (नेमिचन्द्राचार्य) नमस्कार करता हूँ ।।३०२।।

विशेषार्थ :— दो सौ छप्पन अंगुलों का वर्ग करने से (२५६×२५६)=६५५३६ वर्ग अंगुल अर्थात् पण्णट्ठी प्राप्त होती है अत: जगत्प्रतर ÷ ६५५३६ वर्ग अंगुल=ज्योतिष देवों का प्रमाण । ज्योतिषदेव ÷ संख्यात=ज्योतिर्बिम्ब और चैत्यालय जिनकी संख्या असंख्यात है, उन्हें मैं नमस्कार करता हूँ।

बिम्बों में स्थित ज्योतिषी देवों के भेद कहते हैं—

गाथार्थ — चन्द्र,सूर्य ग्रह, नक्षत्र और प्रकीर्णक तारा, इस प्रकार ज्योतिष देवों के समूह पाँच प्रकार के हैं। ये पाँचों लोक के अन्त में घनोदधिवातवलय का स्पर्श करते हैं ।।३०३।।

विशेषार्थ :— पूर्व पश्चिम अपेक्षा घनोदधि वातवलय पर्यन्त ज्योतिषी देवों के बिम्ब स्थित हैं।

---

१. त्रिलोकसार पृ० २५१-२५२।

ज्योतिर्वासी देवों के जिनमंदिर

(तिलोयपण्णत्ति से)

चंदा दिवायरा गहणक्खत्ताणिं पइण्णताराओ। पंचविहा जोदिगणा लोयंतघणोवहिं पुट्ठा[1]।।७।।

णवरि विसेसो पुव्वावरदक्खिणउत्तरेसु भागेसुं। अंतरमत्थि त्ति ण ते छिवंति जोइग्ग सो वाऊ।।८।।

भजिदम्मि सेढिवग्गे बेसयछप्पण्णअंगुलकदीए। जं लद्धं सो रासी जोदिसियसुराण सव्वाणं।।११।।

अट्ठचउदुतितिसत्ता सत्त य ठाणेसु णवसु सुण्णाणिं। छत्तीससत्तदुणवअट्ठातिचउक्का होंति अंककमा।।१२।।

एदेहि गुणिदसंखेज्जरूवपदरंगुलेहिं भजिदाए। सेढिकदीए लद्धं माणं चंदाण जोइसिंदाणं।।१३।।

=४।४३८३८९२७३६०००००००००७३३२४८।

तेत्तियमेत्ता रविणो हुवंति चंदाण ते पडिंद त्ति। अट्ठासीदि गहाणिं एक्केक्काणं मयंकाणं।।१४।।

= ४। ४३८३८९२७३६०००००००००७७३३२४८।

बुहसुक्कबिहप्फइणो मंगलसणिकाललोहिदा कणओ। णीलविकाला केसो कवयवओ कणयसंठाणा।।१५।।

।१३।

दुदुंभगो रत्तणिभो णीलब्भासो असोयसंठाणो। कंसो रूवणिभक्खो कंसयवण्णो य संखपरिणामा।।१६।।

।८।

ज्योतिर्वासी देवों के जिनमंदिर

(तिलोयपण्णत्ति से)

चन्द्र, सूर्य , ग्रह, नक्षत्र और प्रकीर्णक तारा, इस प्रकार ज्योतिषी देवों के समूह पांच प्रकार के हैं । ये ज्योतिषी देव लोक के अन्त में घनोदधि वातवलय को छूते हैं।।७।। विशेष इतना है कि पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर भागों में अन्तर है इसलिये वे ज्योतिषी देव उस घनोदधि वातवलय को नहीं छूते ।।८।। दो सौ छप्पन अंगुलों के वर्ग का जगश्रेणी के वर्ग में भाग देने पर जो लब्ध आवे उतनी सम्पूर्ण ज्योतिषी देवों की राशि है—असंख्यात हैं।।११।। जगश्रेणी ÷ ६५५३६। आठ, चार, दो, तीन, तीन, सात, सात,नौ स्थानों में शून्य, छत्तीस, सात, दो, नौ, आठ, तीन, और चार, ये क्रम से अंक होते हैं । इनसे गुणित संख्यातरूप प्रतरांगुलों का जगश्रेणी के वर्ग में भाग देने पर जो लब्ध आवे उतना चन्द्र ज्योतिषियों का प्रमाण है ।।१२-१३।। ज.श्रे.÷(सं.प्र.अं. × ४३८९२७३६०००००००००७७३३२४८). इतने ही (चन्द्रों के बराबर) सूर्य भी हैं । ये चन्द्रों के प्रतीन्द्र होते हैं। प्रत्येक चन्द्र के अट्ठासी ग्रह होते हैं ।।१४।। ज.श्रे.÷(सं.प्र.अं. × ४३८९२७३६०००००००००७७३३२४८). बुध, शुक्र, बृहस्पति, मंगल, शनि, काल, लोहित, कनक, नील, विकाल, केश, कवयव, कनकसंस्थान, दुंदुभक, रक्तनिभ, नीलाभास, अशोकसंस्थान, कंस, रूपनिभ, कंसकवर्ण, शंखपरिणाम, तिलपुच्छ, शंखवर्ण, उदकवर्ण, पंचवर्ण, उत्पात, धूमकेतु, तिल, नभ , क्षारराशि, विजिष्णु, सदृश, संधि, कलेवर, अभिन्न, ग्रन्थि, मानवक, कालक, कालकेतु, निलय, अनय, विद्युज्जिह्व, सिंह,अलक, निर्दुःख,काल, महाकाल, रुद्र, महारुद्र, संतान,

---

१. तिलोयपण्णत्ति अधिकार–७, पृ. ६५८ से ६६७ तक।

तिलपुच्छसंखवण्णोदयवण्णो पंचवण्णणामक्खा। उप्पायधूमकेदू तिलो य णभछाररासी य ।।१७।।

।९।

वीयण्हसरिससंधी कलेवराभिण्णगंधिमाणवया। कालककालककेदू णियलाणयविज्जुजीहा य।।१८।।

।१२।

सिंहालकणिद्दुक्खा कालमहाकालरुद्दमहरुद्दा। संताणविउलसंभवसव्वट्ठी खेमचंदो य।।१९।

।१३।

णिम्मंतजोइमंता दिससंठियविरदवीतसोका य। णिच्चलपलंबभासुरसयंपभा विजयवइजयंते य।।२०।

।११।

सीमंकरावराजियजयंतविमलाभयंकरो वियसो। कट्ठी वियडो कज्जजलि अग्गीजालो असोकयो केदू।।२१।।

।१२।

खीरसऽघस्सवणज्जलकेदुकेदुअंतरयएक्कसंठाणा। अस्सो य ब्भावग्गह चरिमा य महग्गहा णामा।।२२।।

।१०।

छप्पण्ण छक्क छक्कं छण्णव सुण्णाणि होंति दसठाणा। दोणवपंचयछक्कं अट्ठचउपंचअंककमे।।२३।।

एदेण गुणिदसंखेज्जरूवपदरंगुलेहि भजिदूणं। सेढिकदी एक्कारसहदम्मि सव्वग्गहाण परिसंखा।।२४।।

= ११।४। ५४८६५९२०००००००००९६६६५६।

एक्केक्कससंकाणं अट्ठावीसा हुवंति णक्खत्ता। एदाणं णामाइं कमजुत्तीए परूवेमो।।२५।।

कित्तियरोहिणिमिगसिरअद्दाओ पुणव्वसु तहा पुस्सो।

असिलेसादी मघओ पुव्वाओ उत्तराओ य हत्थो य।।२६।।

चित्ताओ सादीओ होंति विसाहाणुराहजेट्ठाओ। मूलं पुव्वासाढा तत्तो वि य उत्तरासाढा।।२७।।

अभिजीसवणधणिट्ठा सदभिसणामाओ पुव्वभद्दपदा। उत्तरभद्दपदा रेवदीओ तह अस्सिणी भरणी।।२८।।

विपुल, संभव, सर्वार्थी, क्षेम, चन्द्र, निर्मन्त्र, ज्योतिष्मान् , दिशसंस्थित, विरत, वीतशोक, निश्चल, प्रलंब, भासुर, स्वयंप्रभ, विजय, वैजयन्त, सीमंकर, अपराजित, जयन्त, विमल, अभयंकर, विकस, काष्ठी, विकट, कज्जली, अग्निज्वाल, अशोक, केतु, क्षीरस, अघ, श्रवण, जलकेतु, केतु, अन्तरद, एकसंस्थान, अश्व, भावग्रह और अन्तिम महाग्रह, इस प्रकार ये अठासी ग्रहों के नाम हैं।।१५–२२।। छह, पांच, छह, छह, छह, नौ, दश स्थानों में शून्य, दो, नौ, पांच, छह, आठ, चार और पांच, इन अंकों के क्रम से जो संख्या उत्पन्न हो उससे गुणित संख्यातरूप प्रतरांगुलों का जगश्रेणी के वर्ग में भाग देने पर लब्ध आवे उसे ग्यारह से गुणा करने पर सम्पूर्ण ग्रहों की संख्या होती है ।।२३–२४।। ज.श्रे.÷(सं.प्र.अं. × ५४८६५९२०००००००००९६६६५६) × ११. एक–एक चन्द्र के अट्ठाईस नक्षत्र होते हैं। यहाँ क्रमयुक्ति से उनके नामों को कहते हैं।।२५।। कृत्तिका, रोहिणी, मृगशीर्षा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वा फाल्गुनी, उत्तरा फाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाति, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा, अभिजित् , श्रवण, घनिष्ठा, शतभिषज्, पूर्व भाद्रपदा, उत्तर भाद्रपदा, रेवती, अश्विनी और भरणी, ये उन नक्षत्रों के नाम हैं।।२६–२८।। दो, एक, तीन, तीन,तीन, नौ, एक, नौ स्थानों में शून्य, चार, आठ, एक, तीन, सात, नौ, शून्य और एक, इन अंकों के क्रम से जो संख्या उत्पन्न हो उससे गुणित संख्यातरूप

दुगइगितियतितिणवया एक्का ठाणेसु णवसु सुण्णाणिं। चउअट्ठएक्कतियसत्तणवयगयणेक्कअंककमे।।२९।।
एदेहि गुणिदसंखेज्जरूवपदरंगुलेहिं भजिदूणं। सेढिकदी सत्तहदे परिसंखा सव्वरिक्खाणं।।३०।।

= ७।४। १०९७३१८४०००००००००१९३३३१२ ।

एक्केक्कमयंकाणं हुवंति ताराण कोडिकोडीओ। छावट्ठिसहस्साणं णवसया पंचहत्तरिजुदाणिं।।३१।।

तारागणसंखा ६६९७५००००००००००००।

संपहि कालवसेणं ताराणामाण णत्थि उवदेसो। एदाणं सव्वाणं परमाणाणिं परूवेमो।।३२।।
दुगसत्तचउक्काइं एक्कारसठाणएसु सुण्णाइं। णवसत्तछद्दुगाइं अंकाण कमेण एदेणं।।३३।।
संगुणिदेहिं संखेज्जरूवपदरंगुलेहिं भजिदव्वो। सेढीवग्गो तत्तो पणसत्तत्तियचउक्कट्ठा।।३४।।
णवअट्ठपंचणवदुगअट्ठासत्तट्ठणवचउक्काणिं। अंककमे गुणिदव्वो परिसंखा सव्वताराणं।।३५।।

= ४९८७८२९५८९८४३७५।४।२६७९०००००००००००४७२।

चन्द्रमा के विमान

गंतूणं सीदिजुदं अट्ठसया जोयणाणि चित्ताए। उवरिम्मि मंडलाइं चंदाणं होंति गयणम्मि।।३६।।

।८८०।

उत्ताणावट्ठिदगोलगद्धसरिसाणि ससिमणिमयाणिं। ताणं पुह पुह बारससहस्ससिसिरयरमंदकिरणाणिं।।३७।।
तेसु ट्ठिदपुढविजीवा जुत्ता उज्जोवकम्मउदएणं। जम्हा तम्हा ताणिं फुरंतसिसिरयरमंदकिरणाणिं।।३८।।
एक्कट्ठियभागकदे जोयणए ताण होदि छप्पण्णा। उवरिमतलाण रुंदं दलिदद्धबहलं पि पत्तेक्कं।।३९।।

।५६।२८।
।६१।६१।

प्रतरांगुलों का जगश्रेणी के वर्ग में भाग देने पर जो लब्ध आवे उसे सात से गुणा करने पर सब नक्षत्रों की संख्या होती है।।२९-३०।। ज.श्रे.÷(सं.प्र.अं.×१०९७३१८४०००००००००१९३३३१२) × ७. एक-एक चन्द्र के छियासठ हजार नौ सौ पचहत्तर कोड़ीकोड़ी तारे होते हैं।।३१।। इस समय काल के वश से ताराओं के नामों का उपदेश नहीं है। इन सबके प्रमाणों को कहते हैं।।३२।। दो, सात, चार, ग्यारह स्थानों में शून्य, नौ, सात, छह और दो, इन अंकों के क्रम से जो संख्या उत्पन्न हो उससे गुणित संख्यात रूप प्रतरांगुलों का जगश्रेणी के वर्ग में भाग देने पर जो लब्ध आवे उसको पांच, सात, तीन, चार, आठ, नौ, आठ, पाँच, नौ, दो, आठ, सात, आठ, नौ और चार, इन अंकों से गुणा करने पर सब ताराओं की संख्या होती है ।।३३-३५।ज.श्रे. ÷(सं. प्र. अं. ×२६७९०००००००००००४७२)×४९८७८२९५८९८४३७५

चन्द्रमा के विमान

चित्रा पृथिवी से ऊपर आठ सौ अस्सी योजन जाकर आकाश में चन्द्रों के मण्डल हैं।।३६।।८८०।

उत्तान अर्थात् ऊर्ध्वमुखरूप से अवस्थित अर्धगोलक के सदृश चन्द्रों के मणिमय विमान हैं। उनकी पृथक्-पृथक् अतिशय शीतल एवं मंद किरणें बारह हजार प्रमाण हैं।।३७।। उनमें स्थित पृथिवी जीव चूँकि उद्योत नामकर्म के उदय से संयुक्त हैं, इसीलिये वे प्रकाशमान अतिशय शीतल मन्द किरणों से संयुक्त होते हैं।।३८।। एक योजन के इकसठ भाग करने पर छप्पन भाग प्रमाण उन चन्द्रविमानों में से प्रत्येक के उपरिम तल का विस्तार व इससे आधा बाहल्य है।।३९।। ।५६।२८।

।६१।६१।

एदाणं परिहीओ पुह पुह बे जोयणाणि अदिरेको। ताणिं अकिट्टिमाणिं अणाइणिहणाणि बिंबाणिं।।४०।।
चउगोउरसंजुत्ता तडवेदी तेसु होदि पत्तेक्कं। तम्मज्झे वरवेदीसहिदं रायंगणं रम्मं।।४१।।

ज्योतिर्वासी देवों के जिनमंदिर

रायंगणबहुमज्झे वररयणमयाणि दिव्वकूडाणिं। कूडेसु जिणपुराणिं वेदीचउतोरणजुदाइं।।४२।।
ते सव्वे जिणणिलया मुत्ताहलकणयदामकमणिज्जा। वरवज्जकवाडजुदा दिव्वविदाणेहिं रेहंति।।४३।।
दिप्पंतरयणदीवा अट्ठमहामंगलेहिं परिपुण्णा। वंदणमालाचामरकिंकिणियाजालसोहिल्ला।।४४।।
एदेसुं णट्टसभा अभिसेयसभा विचित्तरयणमई। कीडणसाला विविहा ठाणट्ठाणेसु सोहंति।।४५।।
मद्दलमुइंगपडहप्पहुदीहिं विविहदिव्वतूरेहिं। उवहिसरिच्छरवेहिं जिणगेहा णिच्चहलबोला।।४६।।
छत्तत्तयसिंहासणभामंडलचामरेहिं जुत्ताइं। जिणपडिमाओ तेसुं रयणमईओ विराजंति।।४७।।
सिरिदेवी सुददेवी सव्वाण सणक्कुमारजक्खाणं। रूवाणि मणहराणिं रेहंति जिणिंदपासेसुं।।४८।।
जलगंधकुसुमतंदुलवरभक्खप्पदीवधूवफलपुण्णं। कुव्वंति ताण पुज्जं णिब्भरभत्तीए सव्वसुरा।।४९।।
एदाणं कूडाणं समंतदो होंति चंदपासादा। समचउरस्सा दीहा णाणाविण्णासरमणिज्जा।।५०।।
मरगयवण्णा केई केई कुंदेंदुहारहिमवण्णा। अण्णे सुवण्णवण्णा अवरे वि पवालणिहवण्णा।।५१।।

इनकी परिधियां पृथक्-पृथक् दो योजन से कुछ अधिक हैं। वे बिम्ब अकृत्रिम व अनादिनिधन हैं। ।।४०।। उनमें से प्रत्येक की तटवेदी चार गोपुरों से संयुक्त होती है। उसके बीच में उत्तम वेदी सहित रमणीय राजांगण होता है ।।४१।।

ज्योतिर्वासी देवों के जिनमंदिर

राजांगण के ठीक बीच में उत्तम रत्नमय दिव्य कूट और उन कूटों पर वेदी व चार तोरणों से संयुक्त जिनपुर—जिनमंदिर होते हैं ।।४२।। वे सब जिनभवन मोती व सुवर्ण की मालाओं से रमणीय और उत्तम वज्रमय किवाड़ों से संयुक्त होते हुए दिव्य चन्दोवों से सुशोभित रहते हैं।।४३।। ये जिनभवन देदीप्यमान रत्नदीपकों से सहित, अष्ट महामंगल द्रव्यों से परिपूर्ण और वन्दनमाला, चंवर व क्षुद्र घंटिकाओं के समूह से शोभायमान होते हैं।।४४।। इन जिनभवनों में स्थान-स्थान पर विचित्र रत्नों से निर्मित नाट्यसभा, अभिषेकसभा और विविध प्रकार की क्रीड़ाशालायें सुशोभित होती हैं।।४५।। वे जिनभवन समुद्र के समान गम्भीर शब्द करने वाले मर्दल, मृदंग और पटह आदि विविध प्रकार के दिव्य वादित्रों से नित्य शब्दायमान रहते हैं।।४६।। उन जिनभवनों में तीन छत्र, सिंहासन, भामण्डल और चामरों से संयुक्त रत्नमयी जिनप्रतिमायें विराजमान हैं।।४७।।जिनेन्द्रप्रासादों में श्रीदेवी, श्रुतदेवी और सब सनत्कुमार यक्षों की मनोहर मूर्तियां शोभायमान होती हैं।।४८।। सब देव गाढ़ भक्ति से जल, गन्ध, फूल, तन्दुल, उत्तम भक्ष्य(नैवेद्य), दीप, धूप और फलों से परिपूर्ण उनकी पूजा करते हैं।।४९।। इन कूटों के चारों ओर समचतुष्कोण लंबे और नाना प्रकार के विन्यास से रमणीय चन्द्रों के प्रासाद होते हैं।।५०।। इनमें से कितने ही प्रासाद मरकतवर्ण, कितने ही कुन्दपुष्प, चन्द्र, हार एवं बर्फ जैसे वर्ण वाले; कोई सुवर्ण के समान वर्ण वाले और दूसरे मूंगे के सदृश वर्ण से सहित हैं।।५१।। इन भवनों में उपपादमंदिर, अभिषेकपुर,

उववादमंदिराइं अभिसेयपुराणि भूसणगिहाणिं। मेहुणकीडणसालाओ मंतअत्थाणसालाओ।।५२।।
ते सव्वे पासादा वरपायारा विचित्तगोउरया। मणितोरणरमणिज्जा जुत्ता बहुचित्तभित्तीहिं।।५३।।
उववणपोक्खरणीहिं विराजमाणा विचित्तरूवाहिं। कणयमयविउलथंभा सयणासणपहुदिपुण्णाणिं।।५४।।
सुद्धरसरूवगंधप्पासेहि णिरुवमेहिं सोक्खाणिं। देंति विविहाणि दिव्वा पासादा धूवगंधड्ढा।।५५।।
सत्तट्ठप्पहुदीओ भूमीओ भूसिदाओ कूडेहिं। विप्फुरिदरयणकिरणावलीओ भवणेसु रेहंति।।५६।।
तम्मंदिरमज्झेसुं चंदा सिहासणासमारूढा। पत्तेक्कं चंदाणं चत्तारो अग्गमहिसीओ।।५७।।
चंदाभसुसीमाओ पहंकरा अच्चिमालिणी ताणं। पत्तेक्कं परिवारा चत्तारिसहस्सदेवीओ।।५८।।
णियणियपरिवारसमं विक्किरियं दरिसियंति देवीओ। चंदाणं परिवारा अट्ठवियप्पा य पत्तेक्कं।।५९।।
पडिइंदा सामाणियतणुरक्खा तह हवंति तिप्परिसा। सत्ताणीयपइण्णयअभियोगा किव्विसा देवा।।६०।।
सयलिंदाण पडिंदा एक्केक्का होंति ते वि आइच्चा। सामाणियतणुरक्खप्पहुदी संखेज्जपरिमाणा।।६१।।
रायंगणबाहिरए परिवाराणं हवंति पासादा। विविहवररयणरइदा विचित्तविण्णासभूदीहिं।।६२।।
सोलससहस्समेत्ता अभिजोगसुरा हवंति पत्तेक्कं। चंदाण पुरतलाइं विक्किरियासाविणो णिच्चं।।६३।।

।१६०००।

चउचउसहस्समेत्ता पुव्वादिदिसासु कुंदसंकासा। केसरिकरिवसहाणं जडिलतुरंगाण रूवधरा।।६४।।

भूषणगृह, मैथुनशाला, क्रीडाशाला, मंत्रशाला और आस्थानशालायें (सभाभवन) स्थित रहती हैं। ।५२।। वे सब प्रासाद उत्तम कोटों से सहित, विचित्र गोपुरों से संयुक्त, मणिमय तोरणों से रमणीय, बहुत प्रकार के चित्रों वाली दीवालों से युक्त, विचित्र रूप वाली उपवन-वापिकाओं से विराजमान, सुवर्णमय विशाल खम्भों से सहित और शयनासन आदि से परिपूर्ण हैं।।५३-५४।। ये दिव्य प्रासाद धूप के गन्ध से व्याप्त होते हुए अनुपम एवं शुद्ध रस, रूप, गन्ध और स्पर्श से विविध प्रकार के सुखों को देते हैं।।५५।। भवनों में कूटों से विभूषित और प्रकाशमान रत्नकिरणपंक्ति से संयुक्त सात, आठ आदि भूमियां शोभायमान होती हैं।।५६।। इन भवनों के बीच में चन्द्र सिंहासनों पर विराजमान रहते हैं। उनमें से प्रत्येक चन्द्र के चार अग्रमहिषियां (पट्टदेवियां) होती हैं।।५७।। चन्द्राभा, सुसीमा, प्रभंकरा और अर्चिमालिनी, ये उन अग्रदेवियों के नाम हैं। इनमें से प्रत्येक की चार हजार प्रमाण परिवार देवियाँ होती हैं।।५८।। अग्रदेवियां अपनी-अपनी परिवार देवियों के समान अर्थात् चार हजार रूपों प्रमाण विक्रिया दिखलाती हैं। प्रतीन्द्र, सामानिक, तनुरक्ष, तीनों पारिषद , सात अनीक, प्रकीर्णक , आभियोग्य और किल्विष, इस प्रकार प्रत्येक चन्द्र के परिवार देव आठ प्रकार के होते हैं ।।५९-६०।। सब इन्द्रों के एक-एक प्रतीन्द्र होते हैं। वे (प्रतीन्द्र) सूर्य ही हैं। सामानिक और तनुरक्ष प्रभृति देव संख्यात प्रमाण होते हैं।।६१।। राजांगण के बाहिर विविध प्रकार के उत्तम रत्नों से रचित और विचित्र विन्यासरूप विभूति से सहित परिवार देवों के प्रासाद हैं।।६२।। प्रत्येक इन्द्र के सोलह हजार प्रमाण आभियोग्य देव होते हैं जो नित्य ही विक्रिया धारण करते हुए चन्द्रों के पुरतलों को वहन करते हैं।।६३।। १६०००। इनमें से सिंह, हाथी , बैल और जटायुक्त घोड़ों के रूप को धारण करने वाले तथा कुन्दपुष्प के सदृश सफेद चार-चार हजार प्रमाण देव क्रम से पूर्वादिक दिशाओं में चन्द्रबिंबों को वहन करते हैं।।६४।।

सूर्य के विमान

चित्तोवरिमतलादो उवरिं गंतूण जोयणट्ठसए। दिणयरणयरतलाइं णिच्चं चेट्ठंति गयणम्मि।।६५।।

८००।।

उत्ताणावट्ठिदगोलयद्धसरिसाणि रविमणिमयाणिं। ताणं पुह पुह बारससहस्सउण्हयरकिरणाणिं।।६६।।

१२०००।

तेसु ठिदपुढविजीवा जुत्ता आदावकम्मउदएणं। जम्हा तम्हा ताणिं फुरंतउण्हयरकिरणाणिं।।६७।।

इगिसट्ठियभागकदे जोयणए ताण होंति अडदालं। उवरिमतलाण रुंदं तलद्धबहलं पि पत्तेक्कं ।।६८।।

४८। २४।

६१। ६१।

एदाणं परिहीओ पुह पुह बे जोयणाणि अदिरेगा। ताणिं अकट्टिमाणिं अणाइणिहणाणि बिंबाणिं।।६९।।

पत्तेक्कं तडवेदी चउगोउरदारसुंदरा ताणं। तम्मज्झे वरवेदीसहिदं रायंगणं होदि।।७०।।

रायंगणस्स मज्झे वररयणमयाणि दिव्वकूडाणिं। तेसुं जिणपासादा चेट्ठंते सूरकंतमया।।७१।।

एदाण मंदिराणं मयंकपुरकूडभवणसारिच्छं। सव्वं चिय वण्णणयं णिउणेहिं एत्थ वत्तव्वं।।७२।।

तेसु जिणप्पडिमाओ पुव्वोदिदवण्णणप्पयाराओ। विविहच्चणदव्वेहिं ताओ पूजंति सव्वसुरा।।७३।।

एदाणं कूडाणं होंति समंतेण सूरपासादा। ताणं पि वण्णणाओ ससिपासादेहिं सरिसाओ।।७४।।

सूर्य के विमान

चित्रा पृथिवी के उपरिम तल से ऊपर आठ सौ योजन जाकर आकाश में नित्य सूर्य नगरतल स्थित हैं।।६५।। ८००।

सूर्यों के मणिमय बिंब ऊर्ध्व अवस्थित अर्ध गोलक के सदृश हैं। इनकी पृथक्-पृथक् बारह हजार प्रमाण उष्णतर किरणें होती हैं।।६६।।१२०००।

चूंकि उनमें स्थित पृथिवी जीव आताप नामकर्म के उदय से संयुक्त होते हैं इसीलिये वे प्रकाशमान उष्णतर किरणों से युक्त होते हैं।।६७।।

एक योजन के इकसठ भाग करने पर अड़तालीस भाग प्रमाण उनमें से प्रत्येक सूर्य के बिंब के उपरिम तलों का विस्तार और तलों से आधा बाहल्य भी होता है।।६८।। ४८। २४। ६१।६१। इनकी परिधियां पृथक्-पृथक् दो योजन से अधिक होती हैं। वे सूर्यबिंब अकृत्रिम एवं अनादिनिधन हैं।।६९।। उनमें से प्रत्येक तटवेदी चार गोपुरद्वारों से सुन्दर होती है। उसके बीच में उत्तम वेदी से संयुक्त राजांगण होता है।।७०।।

राजांगण के मध्य में जो उत्तम रत्नमय दिव्य कूट होते हैं उनमें सूर्यकान्त मणिमय जिनभवन स्थित हैं ।।७१।।

निपुण पुरुषों को इन मंदिरों का सम्पूर्ण वर्णन चन्द्रपुरों के कूटों पर स्थित जिनभवनों के सदृश यहां पर भी करना चाहिये।।७२।। उनमें जो **जिनप्रतिमायें** विराजमान हैं उनके वर्णन का प्रकार पूर्वोक्त वर्णन के ही समान है। समस्त देव विविध प्रकार के पूजा द्रव्यों से उन प्रतिमाओं की पूजा करते हैं।।७३।।

इन कूटों के चारों तरफ जो सूर्यप्रासाद हैं उनका भी वर्णन चन्द्रप्रासादों के सदृश है।।७४।।

तण्णिलयाणं मज्झे दिवायरा दिव्वसिंधपीढेसुं। वरछत्तचमरजुत्ता चेट्ठंते दिव्वयरतेया।।७५।।
जुदिसुदिदपहंकराओ सूरपहाअच्चिमालिणीओ वि। पत्तेक्कं चत्तारो दुमणीणं अग्गदेवीओ।।७६।।
देवीणं परिवारा पत्तेक्कं चउसहस्सदेवीओ। णियणियपरिवारसमं विक्किरियं ताओ गेण्हंति ।।७७।।
सामाणियतणुरक्खा तिप्परिसाओ पइण्णयाणीया। अभियोगा किब्बिसिया सत्तविहा सूरपरिवारा।।७८।।
रायंगणाबाहिरए परिवाराणं हुवंति पासादा। वररयणभूसिदाणं फुरंततेयाण सव्वाणं।।७९।।
णियणियरासिपमाणं एदाणं जं मयंकपहुदीणं। णियणियणयरपमाणं तेत्तियमेत्तंच कूडजिणभवणं[1]।।११४।।
जोइग्गणणयरीणं सव्वाणं रुंदमाणसारिच्छं। बहलत्तं मण्णंते लोगविभायस्स आइरिया।।११५।।

ताराओं का वर्णन

सेसाओ वण्णणाओ जंबूदीवस्स वण्णणसमाओ। णवरि विसेसो संखा अण्णण्णा खीलताराणं[2]।।६०३।।
एक्कसयं उणदालं लवणसमुद्दम्मि खीलताराओ। दसउत्तरं सहस्सा दीवम्मि य धादईसंडे।।६०४।।
१३९।१०१०।।
एक्कत्तालसहस्सा बीसुत्तरमिगिसयं च कालोदे। तेवण्णसहस्सा बेसयाणि तीसं च पुक्खरद्धम्मि।।६०५।।
४११२०।५३२३०।।

उन भवनों के मध्य में उत्तम छत्र-चँवरों से संयुक्त और अतिशय दिव्य तेज को धारण करने वाले सूर्य दिव्य सिंहासनों पर स्थित होते हैं।।७५।।

द्युतिश्रुति, प्रभंकरा, सूर्यप्रभा और अर्चिमालिनी, ये चार प्रत्येक सूर्य की अग्रदेवियां होती हैं।।७६।। इनमें से प्रत्येक अग्रदेवी की चार हजार परिवार देवियां होती हैं । वे अपने-अपने परिवार के समान अर्थात् चार हजार रूपों की विक्रिया ग्रहण करती हैं।।७७।।

सामानिक, तनुरक्ष, तीनों पारिषद, प्रकीर्णक , अनीक, आभियोग्य और किल्विषिक , इस प्रकार सूर्यों के सात प्रकार के परिवार देव होते हैं।।७८।। राजांगण के बाहिर उत्तम रत्नों से विभूषित और प्रकाशमान तेज को धारण करने वाले समस्त परिवार देवों के प्रासाद होते हैं।।७९।।

इन चन्द्रादिकों की निज-निज राशि का जो प्रमाण है उतना ही अपने-अपने नगरों, कूटों और जिनभवनों का प्रमाण है ।।११४।। 'लोकविभाग' के आचार्य समस्त ज्योतिर्गणों की नगरियों के विस्तारप्रमाण के सदृश ही उनके बाहल्य को भी मानते हैं ।।११५।। पाठान्तर ।

ताराओं का वर्णन

इनका शेष वर्णन जंबूद्वीप के वर्णन के समान है । विशेषता केवल यह है कि स्थिर ताराओं की संख्या भिन्न-भिन्न है।।६०३।। ये स्थिर तारे लवण समुद्र में एक सौ उनतालीस और धातकीखण्ड द्वीप में एक हजार दश हैं।।६०४।। १३९।१०१०।। कालोद समुद्र में इकतालीस हजार एक सौ बीस और पुष्करार्द्ध द्वीप में तिरेपन हजार दो सौ तीस स्थिर तारे हैं ।।६०५।।४११२०।५३२३०।

---

१. तिलोयपण्णत्ति अधिकार-७, पृ. ६७२। २. तिलोयपण्णत्ति अधिकार-७, पृ. ७६०।

मनुष्यलोक के चन्द्र-सूर्यों की संख्या

माणुसखेत्ते ससिणो छासट्ठी होंति एक्कपासम्मि। दोपासेसुं दुगुणा तेत्तियमेत्ताओ मत्तंडा।।६०६।।

।६६।१३२।

एक्करससहस्साणिं होंति गहा सोलसुत्तरा छसया। रिक्खा तिण्णि सहस्सा छस्सयछण्णउदिअदिरित्ता।।६०७।।

।११६१६।३६९६।

अट्ठासीदीलक्खा चालीससहस्ससगसयाणिं पि। होंति हु माणुसखेत्ते ताराणं कोडकोडीओ।।६०८।।

।८८४०७०००७००००००००००००००।

पंचाणउदिसहस्सं पंचसया पंचतीसअब्भहिया। खेत्तम्मि माणुसाणं चेट्ठंते खीलताराओ।।६०९।।

।९५५३५।।

सव्वे ससिणो सूरा णक्खत्ताणिं गहा य ताराणिं। णियणियपहपणिधीसुं पंतीए चरंति णभखंडे।।६१०।।

मनुष्यलोक के चन्द्र-सूर्यों की संख्या

मनुष्यलोक के भीतर एक पार्श्वभाग में छ्यासठ और दोनों पार्श्व भागों में इससे दूने चन्द्र तथा इतने मात्र ही सूर्य भी हैं।।६०६।। ६६।१३२।। मनुष्यलोक में ग्यारह हजार छह सौ सोलह ग्रह और तीन हजार छह सौ छियानबे नक्षत्र हैं।।६०७।। ११६१६।३६९६।। मनुष्यक्षेत्र में अठासी लाख चालीस हजार सात सौ कोड़ाकोड़ी तारे हैं।।६०८।। ८८४०७०००००००००००००००००। मनुष्यों के क्षेत्र में पंचानवे हजार पाँच सौ पैंतीस स्थिर तारा स्थित हैं।।६०९।। ९५,५३५। चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र, ग्रह और तारा, ये सब अपने-अपने पथों की प्रणिधियों में पंक्ति रूप से नभखण्डों में संचार करते हैं।।६१०।।

तीन लोक मंत्र

ॐ ह्रीं अर्हं त्रैलोक्यसंबंधिअर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय-सर्वसाधुजिनधर्मजिनागम-जिनचैत्यचैत्यालयेभ्यो नमः।

तीर्थंकरत्रय मंत्र

ॐ ह्रीं अर्हं तीर्थंकर-चक्रवर्ति-कामदेवपद-समन्वित-श्री शांतिनाथकुंथुनाथअरनाथेभ्यो नमः।

ज्योतिषी देवों के जिनमंदिर

(सिद्धान्तसार दीपक से)

—मङ्गलाचरण—

ज्योतिर्देवविमानस्थासंख्यातश्रीजिनालयान्। जिनबिम्बान्वितान् वन्दे स्तुवे नित्यान् शिवाय च[१]।।१।।

चन्द्राः सूर्या ग्रहा नक्षत्राणि प्रकीर्णतारकाः। एते पञ्चविधाः प्रोक्ता ज्योतिष्कदेवतागणाः।।२।।

दशोनाष्टशतान्यस्माद्योजनानि महीतलात्। त्यक्त्वा सन्ति विमानानि तारकाणां नभोंगणे।।३।।

ततोप्यूर्ध्वनभो मुक्त्वा दशयोजनसम्मितम्। आदित्यानां विमानानि विद्यन्ते शाश्वतान्यपि।।४।।

अशीतियोजनान्यूर्ध्वं पुनस्त्यक्त्वा भवन्ति खे। चन्द्राणं सद्विमानान्यतो योजनचतुष्टयम्।।५।।

मुक्त्वा नक्षत्रदेवानां विमानानि च सन्त्यनु। त्यक्त्वा योजनचत्त्वारि बुधानां स्युर्विमानकाः।।६।।

मुक्त्वातोयोजनत्रीणि शुक्राणां स्युर्विमानकाः। त्यक्त्वाथ योजनत्रीणि वृहस्पतिविमानकाः।।७।।

मुक्त्वानु योजनत्रीणि मङ्गलानां विमानकाः। त्यक्त्वातो योजनत्रीणि शनैश्चरविमानकाः।।८।।

ज्योतिः पटलबाहुल्यमित्थं दशोत्तरं शतम्। योजनानां भवेत्सर्वं विमानव्याप्तखाङ्गणे।।९।।

चित्रामहीतलाद्योजनानां नवशतान्तरे। सर्वज्योतिष्कदेवानां विद्यन्ते हि विमानकाः।।१०।।

ज्योतिषी देवों के जिनमंदिर

(सिद्धान्तसार दीपक से)

–मंगलाचरण–

अर्थ :—ज्योतिर्देवों के विमानों में स्थित जो असंख्यात जिनालय हैं, उन जिनालयों में स्थित जिनप्रतिमाओं के समूह की मैं मोक्ष प्राप्ति के हेतु नित्य ही वन्दना करता हूँ और उनका स्तव करता हूँ।।१।।

अब ज्योतिषी देवों के भेदों का प्ररूपण करते हैं :—

अर्थ :— चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और प्रकीर्णक तारा, इस प्रकार ज्योतिषदेवों के समूह पाँच प्रकार के कहे हैं।।२।।

अब तारा आदि ज्योतिर्देवों के स्थान का निर्देश कहते हैं :—

अर्थ :—चित्रा पृथ्वी से ७९० योजन ऊपर जाकर आकाश में ताराओं के विमान हैं।।३।।

नभ में तारागणों से दश योजन ऊपर सूर्य के शाश्वत विमान हैं, इनसे ८० योजन ऊपर आकाश में चन्द्र विमान हैं । चन्द्र से चार योजन ऊपर नक्षत्र विमान, इससे चार योजन ऊपर बुध विमान, इससे ३ योजन ऊपर शुक्र विमान, इससे तीन योजन ऊपर गुरु विमान, इससे तीन योजन ऊपर मंगल विमान और मंगल से तीन योजन ऊपर शनि का विमान हैं।।४-८।। इस प्रकार ज्योतिर्पटल के सर्व विमान आकाश में पिण्ड रूप से ११० योजन क्षेत्र को व्याप्त करके रहते हैं।।९।। समस्त ज्योतिषी देव चित्रा पृथ्वी के तल से (७९० योजन की ऊँचाई से प्रारम्भ कर) ९०० योजन (७९० + ११० = ९००) की ऊँचाई तक स्थित हैं।।१०।।

---

१. सिद्धान्तसार दीपक, अधिकार-१४, पृ० ४७३ से ४७५ तक।

चित्रा पृथ्वी से ज्योतिर्बिम्बों की ऊँचाई की तालिका

क्र.सं.	ज्योतिर्बिम्बों के नाम	पृथ्वी से योजनों में ऊँचाई	मीलों में ऊँचाई
१.	तारागण	चित्रा पृथ्वी से ७९० योजन ऊपर	३१६०००० मील ऊपर
२.	सूर्य	७९०+१०=८०० योजन ऊपर	३२००००० मील ऊपर
३.	चन्द्र	८००+८०=८८० योजन ऊपर	३५२०००० मील ऊपर
४.	नक्षत्र	८८०+४=८८४ योजन ऊपर	३५३६००० मील ऊपर
५.	बुध	८८४+४=८८८ योजन ऊपर	३५५२००० मील ऊपर
६.	शुक्र	८८८+३=८९१ योजन ऊपर	३५६४००० मील ऊपर
७.	गुरु	८९१+३=८९४ योजन ऊपर	३५७६००० मील ऊपर
८.	मंगल	८९४+३=८९७ योजन ऊपर	३५८८००० मील ऊपर
९.	शनि	८९७+३=९०० योजन ऊपर	३६००००० मील ऊपर

उत्तानगोलकार्धेन समानाकृतयः शुभाः। वृत्ताकाराविमानाः स्युः श्वेतरत्नमयोन्नताः।।११।।
मध्येऽमीषां पुराणि स्युर्भूषितानि जिनालयैः। देवीदेवभृतानि श्रीसौधानीकाङ्क्षितानि च।।१२।।

अब ज्योतिर्विमानों का स्वरूप कहते हैं–

अर्थ :— ऊर्ध्वमुख अर्ध गोल (गेंद) के आकार सदृश शुभ आकृति वाले सर्व ज्योतिर्विमान गोलाकार, श्वेतरत्नमय और उन्नत हैं।।११। इन विमानों के मध्य में जिनालयों से विभूषित, देव-देवियों से भरी हुई और लक्ष्मीयुक्त प्रासादों से अलंकृत रमणीक नगरियाँ हैं ।।१२।।

चौबीस तीर्थंकर वंदना

ऋषभ, अजित, संभव, अभिनन्दन, सुमतिनाथ का कर वंदन।
पद्मप्रभ जिन श्री सुपार्श्व प्रभु, चन्द्रप्रभ का करूँ नमन।।
सुविधि नामधर पुष्पदंत, शीतल श्रेयांस जिन सदा नमूँ।
वासुपूज्य जिन विमल अनंत, धर्मप्रभु शान्तिनाथ प्रणमूँ।।1।।
जिनवर कुन्थु अरह मल्लिप्रभु, मुनिसुव्रत नमि को ध्याऊँ।
अरिष्टनेमि प्रभु श्री पारस, वर्धमान पद शिर नाऊँ।।
इस विध संस्तुत विधुत रजोमल, जरा मरण से रहित जिनेश।
चौबीसों तीर्थंकर जिनवर, मुझ पर हों प्रसन्न परमेश।।2।।

-गणिनी ज्ञानमती

ढाई द्वीप तक सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र और ताराओं की संख्या

(तत्त्वार्थवार्तिकग्रंथ से[१])

तृतीयस्य निकायस्य सामान्यविशेषसंज्ञासंकीर्तनार्थमाह—

एकादशभिः योजनशतैकविंशैमेरुमप्राप्य ज्योतिष्काः प्रदक्षिणाश्चरन्ति।

तत्र जम्बूद्वीपे द्वौ सूर्यौ, द्वौ चन्द्रमसौ, षट्पञ्चाशन्नक्षत्राणि, षट्सप्तत्यधिकं ग्रहशतम्, एकं कोटीकोटिशतसहस्रं त्रयस्त्रिंशत् कोटीकोटिसहस्राणि नवकोटीकोटिशतानि पञ्चाशच्च कोटीकोट्यस्तारकाणाम्। लवणोदे चत्वारः सूर्याः, चत्वारश्चन्द्राः, नक्षत्राणां शतम्, द्वादशम् ग्रहणाम्, त्रीणि शतानि द्वापञ्चाशानि द्वे कोटीकोटिशतसहस्रे सप्तषष्टिकोटीकोटिसहस्राणि नव च कोटीकोटिशतानि तारकाणाम्। धातकीखण्डे द्वादशसूर्याः, द्वादश चन्द्राः, नक्षत्राणां त्रीणि शतानि षट्त्रिंशानि, ग्रहाणां सहस्रं षट्पञ्चाशम्, अष्टौ कोटीकोटिशतसहस्राणि सप्तत्रिंशच्च कोटीकोटिशतानि तारकाणाम् ।

कालोदे द्वाचत्वारिंशदादित्याः, द्वाचत्वारिंशच्चन्द्राः, एकादश नक्षत्रशतानि षट्सप्तत्यधिकानि, षट्त्रिंशत् ग्रहशतानि षण्णवत्यधिकानि, अष्टाविंशतिकोटीकोटिशत सहस्राणि द्वादशकोटीकोटिसहस्राणि नवकोटीकोटिशतानि पञ्चाशच्च कोटीकोट्यस्तारकाणाम्। पुष्करार्धे द्वासप्ततिः सूर्याः, द्वासप्ततिश्चन्द्राः, द्वे नक्षत्रसहस्रे षोडशे, त्रिषष्टिः ग्रहशतानि षट्त्रिंशानि। अष्टचत्वारिंशत्कोटीकोटिशतसहस्राणि द्वाविंशतिः कोटीकोटिसहस्राणि द्वे कोटीकोटिशते तारकाणाम्। बाह्ये पुष्करार्धे च ज्योतिषामियमेव संख्या। ततश्चतुर्गुणाः पुष्करवरोदे, ततः परा द्विगुणा द्विगुणा ज्योतिषां संख्या अवसेया।

ढाई द्वीप तक सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र और ताराओं की संख्या

(तत्त्वार्थवार्तिकग्रंथ से)

तीसरे निकाय (ज्योतिष्क) की सामान्य-विशेष संज्ञाओं का वर्णन करने के लिए सूत्र कहते हैं—

ये ज्योतिषी देव एक हजार एक सौ इक्कीस योजन दूर से मेरु की प्रदक्षिणा देते हैं।

जंबूद्वीप में दो सूर्य और दो चन्द्रमा हैं, छप्पन नक्षत्र हैं, एक सौ छिहत्तर ग्रह और एक कोड़ाकोड़ी लाख, तैंतीस कोड़ाकोड़ी हजार, नौ कोड़ाकोड़ी सैकड़ा, पचास कोड़ाकोड़ी प्रमाण तारागण हैं। लवण समुद्र में चार सूर्य, चार चन्द्रमा, एक सौ बारह नक्षत्र, तीन सौ बावन ग्रह, दो कोड़ाकोड़ी लाख सड़सठ कोड़ाकोड़ी हजार नौ सौ कोड़ाकोड़ी तारागण हैं। धातकीखण्ड में बारह सूर्य, बारह चन्द्रमा, तीन सौ छत्तीस नक्षत्र, एक हजार छप्पन ग्रह और आठ कोड़ाकोड़ी सैंतीस सौ कोड़ाकोड़ी तारा हैं।

कालोदधि समुद्र में बयालीस सूर्य, बयालीस चन्द्रमा , एक हजार एक सौ सड़सठ नक्षत्र, तीन हजार छह सौ छियानवे ग्रह, अट्ठाईस कोड़ाकोड़ी लाख बारह कोड़ाकोड़ी हजार नौ कोड़ाकोड़ी सैकड़ा पचास कोड़ाकोड़ी तारागण हैं। पुष्करार्ध में बहत्तर सूर्य, बहत्तर चन्द्रमा, दो हजार सोलह नक्षत्र, छह हजार तीन सौ छत्तीस ग्रह और अड़तालीस कोड़ाकोड़ी लाख, बावीस कोड़ाकोड़ी हजार, दो कोड़ाकोड़ी सैकड़ा तारा हैं। बाह्य पुष्करार्ध में भी इतने ही ज्योतिष्क देव हैं। पुष्करवर समुद्र में इससे चौगुनी संख्या है। उससे आगे प्रत्येक द्वीप-समुद्र में दूनी-दूनी है।

---

१. तत्त्वार्थवार्तिक पृ० ६१४-६१५।

जघन्यं तारकान्तरं गव्यूतसप्तभागः, मध्यं पञ्चाशत् गव्यूतानि, उत्कृष्टं योजनसहस्रम्। जघन्यं सूर्यान्तरं चन्द्रान्तरं च नवनवतिः सहस्राणि योजनानां षट्शतानि चत्वारिंशदधिकानि। उत्कृष्टमेकं योजनशतसहस्रं षट्शतानि षष्ट्युत्तराणि।

जम्बूद्वीपादिषु एकैकस्य चन्द्रमसः षट्षष्टिकोटीकोटिसहस्राणि नवकोटीकोटिशतानि पञ्चसप्ततिश्च कोटीकोट्यः तारकाणाम्। अष्टाशीतिर्महाग्रहाः, अष्टाविंशतिर्नक्षत्राणि परिवारः। सूर्यस्य चतुरशीतिमण्डलशतम् अशीतिः योजनशतं जम्बूद्वीपस्य अन्तरमवगाह्य प्रकाशयति। तत्र पञ्चषष्टिरभ्यन्तरमण्डलानि लवणोदस्यान्तस्त्रीणि त्रिंशानि योजनशतान्यवगाह्य प्रकाशयति। तत्र मण्डलानि बाह्यान्येकान्नविंशतिशतम्। द्वियोजनमेकैकमण्डलान्तरम्। द्वे योजने अष्टचत्वारिंशद्योजनैकषष्टिभागाश्च एकैकमुदयान्तरम। चतुश्चत्वारिंशद्योजनसहस्रैः अष्टाभिश्च शतैर्विंशेरप्राप्य मेरुं सर्वाभ्यन्तरमण्डले सूर्यः प्रकाशति।

ताराओं का जघन्य अन्तर एक कोस का सातवाँ भाग है, मध्यम अन्तर पचास गव्यूति (कोस) और उत्कृष्ट अन्तर एक हजार योजन है। सूर्य से सूर्य का और चन्द्र से चन्द्र का जघन्य अन्तर निन्यानवे हजार छह सौ चालीस योजन है।

जम्बूद्वीप आदि में एक-एक चन्द्रमा के छियासठ हजार कोड़ाकोड़ी नौ सौ कोड़ाकोड़ी और पचहत्तर कोड़ाकोड़ी तारा, अठ्यासी (८८) महाग्रह और अट्ठाईस नक्षत्र परिवार हैं। सूर्य के एक सौ चौरासी मण्डल हैं। सूर्य एक सौ अस्सी योजन जम्बूद्वीप के भीतर घुसकर प्रकाशित करता है। इसके पैंसठ अभ्यन्तर मण्डल हैं तथा लवणसमुद्र के भीतर तीन सौ तीस योजन घुसकर प्रकाशित करता है, वहाँ बाह्य मण्डल एक सौ उन्नीस हैं। एक-एक मण्डल का अन्तर दो-दो योजन है तथा इनका उदयान्तर दो योजन और अड़तालीस योजन में इकसठ का भाग देने पर जो लब्ध आता है उतना अधिक है अर्थात् २-४८/६१ भाग प्रमाण है । सबसे भीतरी मण्डल में चवालीस हजार आठ सौ बीस योजन मेरु पर्वत से दूर रहकर सूर्य प्रकाशित करता है।

卐

ॐ ह्रीं श्री ऋषभदेवाय सर्वसिद्धिकराय सर्वसौख्यं कुरु कुरु ह्रीं नमः।

सर्वसिद्धि मंत्र

ॐ ह्रीं सर्वसिद्धिकराय श्रीशांतिनाथाय नमः।

ॐ ह्रीं श्रीं वद वद वाग्वादिनि भगवति सरस्वति ह्रीं नमः।

स्वास्थ्य मंत्र

ॐ ह्रीं अर्हं णमो सव्वोसहिपत्ताणं आरोग्यलाभं कुरु कुरु स्वाहा।

ज्योतिर्लोक के जिनमंदिर

(जैन ज्योतिर्लोक से)

चित्रा पृथ्वी से ऊपर तारा, सूर्य, चन्द्र के विमान

इस चित्रा पृथ्वी से ७९० योजन के ऊपर प्रथम ही ताराओं के विमान हैं । नंतर १० योजन जाकर अर्थात् पृथ्वीतल से ८०० योजन जाकर सूर्य के विमान हैं तथा ८० योजन अर्थात् पृथ्वीतल से ८८० योजन (३५,२०००० मील) पर चन्द्रमा के विमान हैं।[१]

सूर्य, चन्द्र आदि के विमानों का प्रमाण

सूर्य का विमान ४८/६१ योजन का है । यदि १ योजन में ४००० मील के अनुसार गुणा किया जावे तो ३१४७-३३/६१ मील का होता है।

एवं चन्द्र का विमान ५६/६१ योजन अर्थात् ३६७२-८/६१ मील का है ।

शुक्र का विमान १ कोश का है । यह बड़ा कोश लघु कोश से ५०० गुणा है। अतः ५००×२ मील से गुणा करने पर १००० मील का आता है। इसी प्रकार आगे —

ताराओं के विमानों का सबसे जघन्य प्रमाण १/४ कोश अर्थात् २५० मील का है ।

इन सभी विमानों की बाहल्य (मोटाई) अपने-अपने विमानों के विस्तार से आधी-आधी मानी है।

राहु के विमान चन्द्र विमान के नीचे एवं केतु के विमान सूर्य विमान के नीचे रहते हैं अर्थात् ४ प्रमाणांगुलं (२००० उत्सेधांगुल) प्रमाण ऊपर चन्द्र-सूर्य के विमान स्थित होकर गमन करते रहते हैं। ये राहु-केतु के विमान ६-६ महीने में पूर्णिमा एवं अमावस्या को क्रम से चन्द्र एवं सूर्य के विमानों को आच्छादित करते हैं। इसे ही ग्रहण कहते हैं।

ज्योतिष्क देवों के बिम्बों का प्रमाण

बिंबों का प्रमाण	योजन से	मील से	किरणें
सूर्य	४८/६१ योजन	३१४७-३३/६१	१२०००
चन्द्र	५६/६१ ,,	३६७२-८/६१	१२०००
शुक्र	१ कोश	१०००	२५००
बुध	कुछ कम आधा कोश	कुछ कम५००मील	मंद किरणें
मंगल	कुछ कम आधा कोश	कुछकम५००मील	,,
शनि	कुछ कम आधा कोश	कुछकम५००मील	,,
गुरु	कुछ कम १ कोश	कुछ कम १०००मील	,,
राहु	कुछ कम १ कोश	कुछ कम४०००मील	,,
केतु	कुछ कम १ कोश	कुछ कम४००० मील	,,
तारे	१/४ कोश	२५० मील	,,

१. जैन ज्योतिर्लोक पृ. १८ से २३ तक।

ज्योतिष्क विमानों की किरणों का प्रमाण

सूर्य एवं चन्द्र की किरणें १२०००-१२००० हैं। शुक्र की किरणें २५०० हैं। बाकी सभी ग्रह, नक्षत्र एवं तारकाओं की मंद किरणें हैं।

वाहन जाति के देव

इन सूर्य और चन्द्र के प्रत्येक (विमानों को) आभियोग्य जाति के ४००० देव विमान के पूर्व में सिंह के आकार को धारण कर, दक्षिण में ४००० देव हाथी के आकार को, पश्चिम में ४००० देव बैल के आकार को एवं उत्तर में ४००० देव घोड़े के आकार को धारण कर (इस प्रकार १६००० हजार देव) सतत खींचते रहते हैं।

इसी प्रकार ग्रहों के ८०००, नक्षत्रों के ४००० एवं ताराओं के २००० वाहन जाति के देव होते हैं।

गमन में चन्द्रमा सबसे मंद है। सूर्य उसकी अपेक्षा शीघ्रगामी है। सूर्य से शीघ्रतर ग्रह, ग्रहों से शीघ्रतर नक्षत्र एवं नक्षत्रों से भी शीघ्रतर गति वाले तारागण हैं।

शीत एवं उष्ण किरणों का कारण

पृथ्वी के परिणामस्वरूप (पृथ्वीकायिक) चमकीली धातु से सूर्य का विमान बना हुआ है, जो कि अकृत्रिम है ।

इस सूर्य के बिंब में स्थित पृथ्वीकायिक जीवों के आतप नाम कर्म का उदय होने से उसकी किरणें चमकती हैं तथा उसके मूल में उष्णता न होकर सूर्य की किरणों में ही उष्णता होती है इसलिये सूर्य की किरणें उष्ण हैं ।

उसी प्रकार चन्द्रमा के बिंब में रहने वाले पृथ्वीकायिक जीवों के उद्योत नाम कर्म का उदय है जिसके निमित्त से मूल में तथा किरणों में सर्वत्र ही शीतलता पाई जाती है। इसी प्रकार ग्रह, नक्षत्र, तारा आदि सभी के बिंब—विमानों के पृथ्वीकायिक जीवों के भी उद्योत नाम कर्म का उदय पाया जाता है।

सूर्य-चन्द्र के विमानों में स्थित जिनमंदिर का वर्णन

सभी ज्योतिर्देवों के विमानों में बीचोंबीच में एक-एक जिनमंदिर है और चारों ओर ज्योतिर्वासी देवों के निवास स्थान बने हैं।

विशेष—प्रत्येक विमान की तटवेदी चार गोपुरों से युक्त है । उसके बीच में उत्तम वेदी सहित राजांगण है। राजांगण के ठीक बीच में रत्नमय दिव्य कूट है । उस कूट पर वेदी एवं चार तोरण द्वारों से युक्त जिनचैत्यालय (मंदिर) हैं । वे जिनमंदिर मोती व सुवर्ण की मालाओं से रमणीय और उत्तम वज्रमय किवाड़ों से संयुक्त दिव्य चन्द्रोपकों से सुशोभित हैं। वे जिनभवन देदीप्यमान रत्नदीपकों से सहित अष्ट महामंगल द्रव्यों से परिपूर्ण, वंदनमाला, चमर, क्षुद्र घंटिकाओं के समूह से शोभायमान हैं। उन जिनभवनों में स्थान-स्थान पर विचित्र रत्नों से निर्मित नाट्यसभा, अभिषेक सभा एवं विविध प्रकार की क्रीडाशालायें बनी हुई हैं ।

वे जिनभवन समुद्र के सदृश गंभीर शब्द करने वाले मर्दल, मृदंग, पटह आदि विविध प्रकार के दिव्य वादित्रों से नित्य शब्दायमान हैं । उन जिनभवनों में तीन छत्र, सिंहासन, भामंडल और चामरों से युक्त जिनप्रतिमायें विराजमान हैं।

उन जिनेन्द्रप्रासादों में श्रीदेवी व श्रुतदेवी यक्षी एवं सर्वाण्ह व सनत्कुमार यक्षों की मूर्तियां भगवान के आजू-बाजू में शोभायमान होती हैं। सब देव गाढ़ भक्ति से जल, चन्दन, तंदुल, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप और फलों से परिपूर्ण नित्य ही उनकी पूजा करते हैं ।

राहु का विमान प्रतिदिन एक-एक मार्ग में चन्द्रबिंब की १५ दिन तक एक-एक कलाओं को ढकता रहता है। इस प्रकार राहुबिंब के द्वारा चन्द्र की १ ही कला दीखती है वह अमावस्या का दिन होता है ।

फिर वह राहु प्रतिपदा के दिन से प्रत्येक गली में १-१ कला को छोड़ते हुये पूर्णिमा को पन्द्रहों कलाओं को छोड़ देता है तब चन्द्रबिंब पूर्ण दिखने लगता है, उसे ही पूर्णिमा कहते हैं। इस प्रकार कृष्णपक्ष एवं शुक्लपक्ष का विभाग हो जाता है ।

चन्द्रग्रहण-सूर्यग्रहण का क्रम[1]

इस प्रकार ६ मास में पूर्णिमा के दिन चन्द्र विमान पूर्ण आच्छादित हो जाता है उसे चन्द्रग्रहण कहते हैं तथैव छह मास में सूर्य के विमान को अमावस्या के दिन केतु का विमान ढक देता है उसे सूर्यग्रहण कहते हैं।

विशेष—ग्रहण के समय दीक्षा, विवाह आदि शुभ कार्य वर्जित माने हैं तथा सिद्धांत ग्रन्थों के स्वाध्याय का भी निषेध किया है ।

सूर्य चन्द्रादिकों का तीव्र-मन्द गमन

सबसे मन्द गमन चन्द्रमा का है । उससे शीघ्र गमन सूर्य का है । उससे तेज गमन ग्रहों का, उससे तेज गमन नक्षत्रों का एवं सबसे तीव्र गमन ताराओं का है ।

चक्रवर्ती के द्वारा सूर्य के जिनबिम्ब का दर्शन

जब सूर्य पहली गली में आता है तब अयोध्या नगरी के भीतर अपने भवन के ऊपर स्थित चक्रवर्ती सूर्य विमान में स्थित जिनबिम्ब का दर्शन करते हैं। इस समय सूर्य अभ्यंतर गली की परिधि ३१५०८९ योजन को ६० मुहूर्त में पूरा करता है। इस गली में सूर्य निषध पर्वत पर उचित होता है वहाँ से उसे अयोध्या नगरी के ऊपर आने में ९ मुहूर्त लगते हैं। अब जब वह ३१५०८९ योजन प्रमाण उस वीथो को ६० मुहूर्त में पूर्ण करता है जतब वह ९ मुहूर्त में कितने क्षेत्र को पूरा करेगा। इस प्रकार त्रैराशिक करने पर - ३१५०८९/६० × ९ = ४७२६३ ७/२० योजन अर्थात् मील होता है।

एक चन्द्र का परिवार

इन ज्योतिषी देवों में चन्द्रमा चन्द्र इन्द्र है तथा सूर्य प्रतीन्द्र है अतः एक चन्द्र (इन्द्र) के-१ सूर्य (प्रतीन्द्र), ८८ ग्रह, २८ नक्षत्र, ६६ हजार ९७५ कोड़ाकोड़ी तारे ये सब परिवार देव हैं।

कोड़ाकोड़ी का प्रमाण

१ करोड़ को १ करोड़ से गुणा करने पर कोड़ाकोड़ी संख्या आती है।

१००००००० × १००००००० = १०,००००००००००००००।

---

१. जैनज्योतिर्लोक पृ. ४४ से ४९ तक।

१ तारे से दूसरे तारे का अन्तर

एक तारे से दूसरे तारे का जघन्य अंतर १४२-६/७ मील अर्थात १/७ महाकोश है इसका लघु कोश ५०० गुणा होने से ५००/७ हुआ, उसका मील बनाने पर ५०० गुणा होने से ५००/७ हुआ, उसका मील बनाने पर ५००/७ × २ = १४२ - ६/९ हुआ।

मध्यम अन्तर—५० योजन (२,००००० मील) का है एवं

उत्कृष्ट अन्तर—१०० योजन (४,००००० मील) का है।

ढाईद्वीप एवं दो समुद्र सम्बन्धी सूर्य चन्द्रादिकों का प्रमाण

द्वीप-समुद्र में	चन्द्रमा	सूर्य
जम्बूद्वीप में	२	२
लवण समुद्र	४	४
धातकीखण्ड	१२	१२
कालोदधि समुद्र	४२	४२
पुष्करार्द्ध द्वीप	७२	७२

नोट—सर्वत्र ही १-१ सूर्य (प्रतीन्द्र) ८८-८८ ग्रह, २८-२८ नक्षत्र एवं ६६ हजार ९७५ कोड़ाकोड़ी तारे हैं इतने प्रमाण परिवार देव समझना चाहिये।

इस ढाईद्वीप के आगे-आगे असंख्यात द्वीप एवं समुद्रपर्यंत दूने-दूने सूर्य होते गये हैं।

मानुषोत्तर पर्वत के पूर्व के ही ज्योतिष्क देवों का भ्रमण

मानुषोत्तर पर्वत से इधर-उधर के ही ज्योतिर्वासी देवगण हमेशा ही मेरू की प्रदक्षिणा देते हुये गमन करते रहते हैं और इन्हीं के गमन के क्रम से दिन, रात्रि, पक्ष, मास, संवत्सर आदि का विभागरूप व्यवहारकाल जाना जाता है ।

२८ नक्षत्रों के नाम

(१) कृत्तिका (२) रोहिणी (३) मृगशीर्षा (४) आर्द्रा (५) पुनर्वसू (६) पुष्य (७) आश्लेषा (८) मघा (९) पूर्वाफाल्गुनी (१०) उत्तराफाल्गुनी (११) हस्त (१२) चित्रा (१३) स्वाति (१४) विशाखा (१५) अनुराधा (१६) ज्येष्ठा (१७) मूल (१८) पूर्वाषाढ़ा (१९) उत्तराषाढ़ा (२०) अभिजित् (२१) श्रवण (२२) घनिष्ठा (२३) शतभिषज् (२४) पूर्वा भाद्रपदा (२५) उत्तरा भाद्रपदा (२६) रेवती (२७) अश्विनी (२८) भरिणी।

नक्षत्रों की गलियां

चन्द्रमा की १५ गलियाँ हैं । उनके मध्य में २८ नक्षत्रों की ८ ही गलियाँ हैं।

चन्द्र की प्रथम गली में—अभिजित, श्रवण, घनिष्ठा, शतभिषज् , पूर्वा भाद्रपदा, रेवती, उत्तरा भाद्रपदा, अश्विनी, भरिणी, स्वाति, पूर्वा फाल्गुनी एवं उत्तरा फाल्गुनी ये १२ नक्षत्र संचार करते हैं।

तृतीय गली में पुनर्वसू एवं मघा संचार करते हैं।

छठी गली में—कृत्तिका का गमन होता है आदि।

विशेष—पुष्करार्ध द्वीप की बाह्य परिधि—१,४२,३०,२४९ योजन की है। इससे कुछ कम वहाँ के सूर्य के अन्तिम गली की परिधि होगी अतः इसमें ६० मुहूर्त का भाग देने से २,७०,५०४-१/२० योजन प्रमाण हुआ। वहां के सूर्य के एक मुहूर्त की गति का यह प्रमाण है।

अर्थात् जब सूर्य जंबूद्वीप में प्रथम गली में है तब उसका १ मुहूर्त में गमन करने का प्रमाण २१०,०५९३३-१/३ मील होता है तथा पुष्करार्ध के अंतिम वलय की अंतिम गली में वहां के सूर्य का १ मुहूर्त में गमन —६४,८६,८३,२६६-२/३ मील के लगभग है।

मनुष्य क्षेत्र का वर्णन[1]

मानुषोत्तर पर्वत के इधर-उधर ४५ लक्ष योजन तक के क्षेत्र में ही मनुष्य रहते हैं। अर्थात्—

जंबूद्वीप का विस्तार	१ लक्ष योजन
लवण समुद्र के दोनों ओर का विस्तार	४ ,, ,,
धातकी खण्ड के दोनों ओर का विस्तार	८ ,, ,,
कालोदधि समुद्र के दोनों ओर का विस्तार	१६ ,, ,,
पुष्करार्ध द्वीप के दोनों ओर का विस्तार	१६ ,, ,,

जंबूद्वीप को वेष्टित करके आगे-आगे द्वीप-समुद्र होने से दूसरी तरफ से भी लवण समुद्र आदि के प्रमाण को लेने से १+२+४+८+८+८+४+२=४५००००० योजन होते हैं।

मानुषोत्तर पर्वत के बाहर मनुष्य नहीं जा सकते हैं। आगे-आगे असंख्यात द्वीप समुद्रों तक अर्थात् अंतिम स्वयंभूरमण समुद्र पर्यन्त पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च पाये जाते हैं। वहाँ तक असंख्यातों व्यन्तर देवों के आवास भी बने हुये हैं। सभी देवगण वहां गमनागमन कर सकते हैं।

मध्यलोक १ राजू प्रमाण है। मेरु के मध्य भाग से लेकर स्वयंभूरमण समुद्र तक आधा राजू होता है अर्थात् आधे का आधा (१/४) राजू स्वयंभूरमण समुद्र की अभ्यन्तर वेदी तक होता है और १/४ राजू में स्वयंभूरमण द्वीप व सभी असंख्यात द्वीप समुद्र आ जाते हैं।

अढाई द्वीप के चन्द्र (परिवार सहित)

द्वीप, समुद्रों के नाम	चन्द्र	सूर्य	ग्रह	नक्षत्र	तारे
जंबूद्वीप में	२	२	१७६	५६	६६६७५×२ कोड़ाकोड़ी
लवण समुद्र में	४	४	३५२	११२	६६६७५×४ ,,
धातकी खंड में	१२	१२	१०५६	३३६	६६६७५×१२ ,,
कालोदधि समुद्र में	४२	४२	३६९६	११७	६६९७५×४२ ,,
पुष्करार्ध में	७२	७२	६३३६	२०१६	६६९७५×७२ ,,
कुल योग	१३२	१३२	११६१६	३६९६	८८४०७०० कोड़ाकोड़ी

१. जैनज्योतिर्लोक पृ. ६० से ६१ तक।

ढाई द्वीप के बाहर स्थित ज्योतिष्क देवों का वर्णन

मानुषोत्तर पर्वत के बाहर जो असंख्यात द्वीप और समुद्र हैं उनमें न तो मनुष्य उत्पन्न ही होते हैं और न वहां जा ही सकते हैं।

मानुषोत्तर पर्वत से परे (बाहर) आधा पुष्कर द्वीप ८ लाख योजन का है। इस पुष्करार्ध में १२६४ सूर्य एवं इतने ही (१२६४) चन्द्रमा हैं। अर्थात् मानुषोत्तर पर्वत से आगे ५०००० योजन की दूरी पर प्रथम वलय है। इस प्रथम वलय की सूची[१] का विस्तार ४६००००० योजन है। उसकी परिधि १,४५,४६,४७७ योजन प्रमाण है ।

इस प्रकार वलय (अभ्यन्तर पुष्करार्ध से ७२ से दुगुने) १४४ सूर्य एवं १४४ चन्द्रमा हैं। इस प्रथम वलय की परिधि में १४४ का भाग देने से सूर्य से सूर्य का अंतर प्राप्त होता है। यथा—१४५४६४७७÷१४४ =१०१०१७–२६/१४४ योजन है। इसमें से सूर्यबिंब और चन्द्रबिंब के प्रमाण को कम कर देने पर उनका बिंब रहित अंतर इस प्रकार प्राप्त होता है—४८ / ६१ × १४४ = ६९१२ / ८७८४, १०१०१७–२९/१४४–६६१२/ ८७८४=१०१०१६–३६४१/८७८४ योजन एक सूर्यबिंब से दूसरे सूर्य का अन्तर हैं।

इस प्रकार पुष्करार्ध में ८ वलय हैं। प्रथम वलय से १ लाख योजन जाकर दूसरा वलय है। इस दूसरे वलय में प्रथम वलय के १४४ से ४ सूर्य अधिक हैं इसी प्रकार आगे के ६ वलयों में ४–४ सूर्य एवं ४–४ चन्द्र अधिक–अधिक होते गये हैं। जिस प्रकार प्रथम वलय से १ लाख योजन दूरी पर द्वितीय वलय है । उसी प्रकार १–१ लाख योजन दूरी पर आगे–आगे के वलय हैं। इस प्रकार क्रम से सूर्य , चन्द्रों की संख्या भी बढ़ती गई है। जिस प्रकार प्रथम वलय मानुषोत्तर पर्वत से ५० हजार योजन पर है उसी प्रकार अन्तिम वलय से पुष्करार्ध की अन्तिम वेदी ५० हजार योजन पर है बाकी मध्य के सभी वलय १–१ लाख योजन के अन्तर से हैं।

प्रथम वलय में १४४, दूसरे में १४८, तीसरे में १५२, इस प्रकार ४–४ बढ़ते हुये अन्तिम वलय में १७२ सूर्य एवं १७२ चन्द्रमा हैं । इस प्रकार पुष्करार्ध के आठों वलयों के कुल मिलाकर १२६४ सूर्य एवं १२६४ चन्द्रमा हैं। ये गमन नहीं करते हैं, अपनी–अपनी जगह पर ही स्थित हैं इसलिये वहाँ दिन–रात का भेद नहीं दिखाई देता है।

पुष्करवर समुद्र के सूर्य चन्द्रादिक

पुष्करवर द्वीप को घेरे हुये पुष्करवर समुद्र ३२ लाख योजन का है इसमें प्रथम वलय पुष्करवर द्वीप की वेदी से ५०००० योजन आगे है। इस प्रथम वलय से १–१ लाख योजन की दूरी पर आगे–आगे के वलय हैं। अंतिम वलय से ५०००० योजन जाकर समुद्र की अंतिम तट वेदी है।

इस पुष्करवर समुद्र में ३२ वलय हैं। प्रथम वलय में २५२८ सूर्य एवं इतने ही चन्द्रमा हैं अर्थात् बाह्य पुष्कर द्वीप के कुल मिलकर १२६४ सूर्य थे उसके दुगुने २५२८ होते हैं। पुनः प्रत्येक वलयों में ४–४ सूर्य–चन्द्र बढ़ते गये हैं । इस प्रकार बढ़ते–बढ़ते अन्तिम बत्तीसवें वलय में २६५२ सूर्य एवं २६५२ चन्द्रमा होते हैं। पुष्करवर समुद्र के ३२ वलयों के सभी सूर्यों का जोड़ ८२,८८० है एवं चन्द्र भी इतने ही हैं।

---

१. पुष्करार्ध के प्रथम वलय के इस ओर से बीच में जम्बूद्वीप आदि को करके उस ओर तक के पूरे माप को सूची को व्यास कहते हैं। यथा—मानुषोत्तर पर्वत के इस ओर से उस ओर तक ४५ लाख एवं ५० हजार इधर व ५० हजार उधर का मिलाकर ४६ लाख होता है।

असंख्यात द्वीप समुद्रों में सूर्य-चन्द्रादिक

इसी प्रकार आगे के द्वीप में ८२,८८० से दूने सूर्य, चन्द्र प्रथम वलय में हैं और आगे के वलयों में ४-४ से बढ़ते जाते हैं। वलय भी ३२ से दूने ६४ हैं।

पुनः इस द्वीप में ६४ वलयों के सूर्यों की जो संख्या है उससे दुगने अगले समुद्र के प्रथम वलय में होंगे। पुनः ४-४ की वृद्धि से बढ़ते हुये अन्तिम वलय तक जायेंगे। वलय भी पूर्व द्वीप से दुगुने ही होंगे। इस प्रकार यही क्रम आगे के असंख्यात द्वीप समुद्रों में सर्वत्र अन्तिम स्वयंभूरमण द्वीप व समुद्र तक जानना चाहिये।

मानुषोत्तर पर्वत से आगे के (स्वयंभूरमण समुद्र तक) सभी ज्योतिर्वासी देवों के विमान अपने-अपने स्थानों पर ही स्थिर हैं, गमन नहीं करते हैं।

इस प्रकार असंख्यात द्वीप-समुद्रों में असंख्यात द्वीप-समुद्रों की संख्या से भी अत्यधिक असंख्यातों सूर्य, चन्द्र हैं एवं उनके परिवार देव—ग्रह, नक्षत्र, तारागण आदि भी पूर्ववत् एक चन्द्र की परिवार संख्या के समान ही असंख्यातों हैं। **इन सभी ज्योतिर्वासी देवों के विमानों में प्रत्येक में १-१ जिनमंदिर हैं। उन असंख्यात जिनमंदिर एवं उनमें स्थित सभी जिनप्रतिमाओं को मेरा मन, वचन, काय से नमस्कार हो।**

ज्योतिर्वासी देवों में उत्पत्ति के कारण

देवगति के ४ भेद हैं—भवनवासी, व्यन्तरवासी, ज्योतिर्वासी एवं वैमानिक। सम्यग्दृष्टि जीव वैमानिक देवों में ही उत्पन्न होते हैं। भवनत्रिक (भावन, व्यन्तर, ज्योतिष्क देव) में उत्पन्न नहीं होते हैं क्योंकि ये जिनमत के विपरीत धर्म को पालने वाले हैं, उन्मार्गचारी हैं, निदानपूर्वक मरने वाले हैं, अग्निपात, झंझावात आदि से मरने वाले हैं, अकामनिर्जरा करने वाले हैं, पंचाग्नि आदि कुतप करने वाले हैं या सदोष चारित्र पालने वाले हैं एवं सम्यग्दर्शन से रहित ऐसे जीव इन ज्योतिष्क आदि देवों में उत्पन्न होते हैं।

ये देव भी भगवान के पंचकल्याणक आदि विशेष उत्सवों के देखने से या अन्य देवों की विशेष ऋद्धि (विभूति) आदि को देखने से या जिनबिंब दर्शन आदि कारणों से सम्यग्दर्शन को प्राप्त कर सकते हैं तथा अकृत्रिम चैत्यालयों की पूजा एवं भगवान के पंचकल्याणक आदि में आकर महान पुण्य का संचय भी कर सकते हैं। अनेक प्रकार की अणिमा, महिमा आदि ऋद्धियों से युक्त इच्छानुसार अनेक भोगों का अनुभव करते हुये यत्र-तत्र क्रीड़ा आदि के लिये परिभ्रमण करते रहते हैं। ये देव तीर्थङ्कर देवों के पंच कल्याणक उत्सव में या क्रीडा आदि के लिये अपने मूल शरीर से कहीं भी नहीं जाते हैं। विक्रिया के द्वारा दूसरा शरीर बनाकर ही सर्वत्र जाते आते हैं।

यदि कदाचित् वहां पर सम्यक्त्व को नहीं प्राप्त कर पाते हैं तो मिथ्यात्व के निमित्त से मरण के ६ महीने पहले से ही अत्यंत दुःखी होने से आर्तध्यानपूर्वक मरण करके मनुष्यगति में या पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों में जन्म लेते हैं। यदि अत्यधिक संक्लेश परिणाम से मरते हैं तो एकेन्द्रिय—पृथ्वी, जल, वनस्पतिकायिक आदि में भी जन्म ले लेते हैं।

ऊर्ध्वलोक
के
जिनमंदिर

थोस्सामि स्तव

स्तवन करूँ जिनवर तीर्थंकर, केवलि अनंत जिन प्रभु का।
मनुज लोक से पूज्य कर्मरज, मल से रहित महात्मन् का।।१।।

लोकोद्योतक धर्म तीर्थंकर, श्री जिन का मैं नमन करूँ।
जिन चउवीस अर्हंत तथा, केवलि गण का गुणगान करूँ।।२।।

ऋषभ, अजित, संभव, अभिनन्दन, सुमतिनाथ का कर वंदन।
पद्मप्रभ जिन श्री सुपार्श्व प्रभु, चन्द्रप्रभ का करूँ नमन।।३।।

सुविधि नामधर पुष्पदंत, शीतल श्रेयांस जिन सदा नमूँ।
वासुपूज्य जिन विमल अनंत, धर्म प्रभु शान्तिनाथ प्रणमूँ।।४।।

जिनवर कुन्थु अरह मल्लि प्रभु, मुनिसुव्रत नमि को ध्याऊँ।
अरिष्ट नेमि प्रभु श्री पारस, वर्धमान पद शिर नाऊँ।।५।।

इस विध संस्तुत विधुत रजोमल, जरा मरण से रहित जिनेश।
चौबीसों तीर्थंकर जिनवर, मुझ पर हों प्रसन्न परमेश।।६।।

कीर्तित वंदित महित हुए ये, लोकोत्तम जिन सिद्ध महान् ।
मुझको दें आरोग्यज्ञान अरु, बोधि समाधि सदा गुणखान।।७।।

चन्द्र किरण से भी निर्मलतर, रवि से अधिक प्रभाभास्वर।
सागर सम गंभीर सिद्धगण, मुझको सिद्धी दें सुखकर।।८।।

ऊर्ध्वलोक के जिनमंदिर

वैमानिक देवों के जिनमंदिर

(त्रिलोकसार से)

अथानुक्रमेणावतीर्णवैमानिकलोकं व्यावर्णयितुकामस्तावद्विमान संख्याप्रतिपादनार्थं तेष्ववस्थितानामविनश्वराणां जिनेश्वरगृहाणां प्रमाणपूर्वकं प्रणाममाह —

चुलसीदिलक्खसत्ताणउदिसहस्से तहेव तेवीसे। सव्वे विमानसमगेजिणिंदगेहे णमंसामि[1]।।४५१।।

चतुरशीतिलक्षसप्तनवतिसहस्रान् तथैव त्रयोविंशान्। सर्वान् विमानसमानजिनेंद्रगेहान् नमस्यामि।।४५१।।

चुलसीदि। चतुरशीतिलक्षसप्तनवतिसहस्रान् तथा त्रयोविंशतिसहितान् सर्वान् विमानसमान-जिनेन्द्रगेहान्नमस्यामि।।४५१।।

तानि विमानानि कल्पकल्पातीतत्वेन विकल्प्य तावत्कल्पानां नामानि गाथाद्वयेनाह :—

सोहम्मीसाणक्कुमारमाहिंदगा हु कप्पा हु। बह्मब्बह्मुत्तरगो लांतवकापिट्ठगो छट्ठो।।४५२।।

सुक्कमहासुक्कगदो सदरसहस्सारगो हु तत्तो दु। आणदपाणदआरणअच्चुदगा होंति कप्पा हु।।४५३।।

सौधर्मैशानसनत्कुमारमाहेन्द्रका हि कल्पा हि। ब्रह्मब्रह्मोत्तरकौ लान्तवकापिष्टकौ षष्ठः।।४५२।।

शुक्रमहाशुक्रगतः शतारसहस्रारगो हि ततस्तु। आनतप्राणतारणाच्युतगा भवन्ति कल्पा हि।।४५३।।

सोहम्मी । सौधर्मैशानसनत्कुमारमाहेन्द्रकाश्चत्वारः कल्पाः ब्रह्मब्रह्मोत्तरकौ द्वौ मिलित्वा एकेन्द्रापेक्षया एक कल्पः लान्तवकापिष्ठावपि तथा षष्ठकल्पः।।४५२।।

वैमानिक देवों के जिनमन्दिर

(त्रिलोकसार से)

अब अनुक्रम प्राप्त वैमानिकलोक का वर्णन करने की इच्छा रखने वाले आचार्य सर्वप्रथम विमानों की संख्या का प्रतिपादन करने के लिए उन विमानों में अवस्थित अविनश्वर जिनमंदिरों का प्रमाणपूर्वक प्रणाम कहते हैं :—

गाथार्थ :— चौरासी लाख सत्तान्नवे हजार तेईस सर्व विमानों की संख्या प्रमाण जिनमंदिरों को (मैं नेमिचन्द्राचार्य) नमस्कार करता हूँ।।४५१।।

विशेषार्थ :— ऊर्ध्वलोक में सम्पूर्ण विमानों की संख्या ८४९७०२३ है। प्रत्येक विमान में एक-एक जिनमंदिर है अतः ऊर्ध्वलोक के सम्पूर्ण जिनमन्दिरों का प्रमाण भी ८४९७०२३ है। उन सब विमानप्रमाण सदृश जिनमंदिरों को नमस्कार करता हूँ ।

उन विमानों के कल्प और कल्पातीत स्वरूप दो भेद करके सर्वप्रथम कल्पों के नाम दो गाथाओं द्वारा कहते हैं :—

गाथार्थ :- सौधर्मैशान, सानत्कुमार-माहेन्द्र (ये चार), ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर (पाँचवाँ), लान्तव-कापिष्ठ (छठा), शुक्र-महाशुक्र (सातवाँ), शतार-सहस्रार (आठवाँ), आनत-प्राणत, आरण और अच्युत (के एक-एक) कल्प होते हैं ।।४५२,४५३।।

---

१. त्रिलोकसार पृ. ३९९ से ४०५ तक।

सुक्कमहा। शुक्रमहाशुक्रावपि तथा एकः कल्पः शतारसहस्रारकावपि तथैकः कल्पः। ततस्तु आनतप्राणतारणाच्युता इति चत्वारः कल्पा भवन्ति।।४५३।।

इदानीमिन्द्रापेक्षया कल्पसंख्यामाह —

मज्झिमचउजुगलाणं पुव्वारजुम्मगेसु सेसेसु। सव्वत्थ होंति इंदा इदि बारस होंति कप्पा हु।।४५४।।

मध्यमचतुर्युगलानां पूर्वापरयुग्मयोः शेषेषु। सर्वत्र भवन्ति इन्द्रा इति द्वादश भवन्ति कल्पा हि।।४५४।।

मज्झिम। मध्यमचतुर्युगलानां पूर्वयुग्मयोर्ब्रह्मलान्तवयोरेकैकेन्द्रौ। अपरयुग्मयोः महाशुक्रसहस्रारयोरेकैकेन्द्रौ। शेषेष्वष्टसु कल्पेषु सर्वत्रेन्द्रा भवन्ति। इतीन्द्रापेक्षया कल्पा द्वादश भवन्ति।।४५४।।

विशेषार्थ :- सौधर्म, ऐशान, सानत्कुमार और माहेन्द्र इनके एक-एक इन्द्र हैं अतः ये चार कल्प हुए । ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर दोनों का मिलकर एक इन्द्र है अतः यह एक ही (पाँचवाँ) कल्प हुआ । इसी प्रकार लान्तव-कापिष्ठ छठा, शुक्र-महाशुक्र सातवाँ और शतार-सहस्रार आठवाँ कल्प है क्योंकि इन दो-दो का मिलकर एक-एक ही इन्द्र होता है। आनत, प्राणत, आरण और अच्युत ये चार कल्प हैं क्योंकि इनके एक-एक इन्द्र होते हैं।

अब इन्द्र की अपेक्षा कल्पसंख्या कहते हैं :—

गाथार्थ :— मध्य के चार युगलों में से पूर्व और अपर के दो-दो युगलों में एक-एक इन्द्र होते हैं। शेष चार युगलों के आठ इन्द्र होते हैं। इस प्रकार बारह इन्द्रों की अपेक्षा बारह कल्प होते हैं ।।४५४।।

विशेषार्थ :— सोलह स्वर्गों के कुल आठ युगल हैं । जिसमें मध्य के चार युगलों में से पूर्व युगल ब्रह्म, लान्तव और अपर युगल महाशुक्र और सहस्रार अर्थात् ब्रह्म ब्रह्मोत्तर, लान्तव कापिष्ठ, शुक्र महाशुक्र और शतार सहस्रार इन चार युगलों अर्थात् आठ स्वर्गों के चार ही इन्द्र हैं अतः ये चार कल्प हैं । शेष ऊपर नीचे के दो-दो युगलों अर्थात् आठ स्वर्गों के आठ इन्द्र हैं अतः ये आठ कल्प हुए। इस प्रकार सोलह स्वर्गों के बारह इन्द्रों की अपेक्षा बारह कल्प हैं। यथा :—

स्वर्ग नाम	इन्द्र	इन्द्र संख्या	पटल	इन्द्र संख्या	इन्द्र	स्वर्गनाम
अच्युत	इन्द्र	१	६	१	इन्द्र	आरण
प्राणत	इन्द्र	१	.	१	इन्द्र	आनत
सहस्रार	इन्द्र	१	१	.	.	सतार
महाशुक्र	इन्द्र	१	१	.	.	शुक्र
कापिष्ठ	.	.	२	१	इन्द्र	लान्तव
ब्रह्मोत्तर	.	.	४	१	इन्द्र	ब्रह्म
माहेन्द्र	इन्द्र	१	७	१	इन्द्र	सानत्कुमार
ऐशान	इन्द्र	१	१३	१	इन्द्र	सौधर्म

अथ कल्पातीतविमाननामान्याह—

हिट्ठिममज्झिमउवरिमतित्तिय गेवेज्ज णव अणुद्दिसगा। पंचाणुत्तरगा विय कप्पादीदा हु अहमिंदा।।४५५।।

अधस्तनमध्यमोपरिमत्रित्रिकाणि ग्रैवेयाणि नव अनुदिशानि। पञ्चानुत्तरकाणि अपि च कल्पातीता हि अहमिन्द्राः।।४५५।।

हिट्ठिम। अधस्तनमध्यमोपरिमत्रित्रिकाणि ग्रैवेयकाणि नवानुदिशानि पञ्चानुत्तराणि च कल्पातीतविमानानि तेषु स्थिताः अहमिन्द्राः भवन्ति ।।४५५।।

नवानुदिशविमानानां पञ्चानुत्तरविमानानां च नामानि गाथाद्वयेनाह—

अच्चीय अच्चिमालिणि वइरे वइरोयणा अणुद्दिसगा। सोमो य सोमरूवे अंके फलिके य आइच्चे।।४५६।।

अर्चिः अर्चिमालिनी वैरो वैरोचनानि अनुदिशकानि। सोमश्च सोमरूपः अङ्कः स्फटिकः च आदित्यं।।४५६।।

अच्चीय। अर्चिरर्चिमालिनी वैरा वैरोचनाख्यानि चत्वारि श्रेणीबद्धानि दिग्गतानि। सोमसोमरूपाङ्कस्फटिकाख्यानि चत्वारि विदिग्गतानि प्रकीर्णकानि। आदित्यं मध्येन्द्रकं एतानि नवानुदिशाख्यानि।।४५६।।

विजयो दु वैजयंतो जयंत अवराजिदो य पुव्वाइं। सव्वट्ठसिद्धिणामा मज्झम्मि अणुत्तरा पंच।।४५७।।

विजयस्तु वैजयन्तः जयन्तः अपराजितश्च पूर्वादयः। सर्वार्थसिद्धिनामा मध्ये अनुत्तराः पञ्च।।४५७।।

विजयो दु। विजयो वैजयन्तो जयन्त अपराजितश्च पूर्वादिदिग्गतविमानाख्याः मध्ये सर्वार्थसिद्धिनामेन्द्रकं। एते पञ्च अनुत्तरविमानाः ।।४५७।।

अब कल्पातीत विमानों के नाम कहते हैं—

गाथार्थ :- अधस्तन, मध्यम और उपरिम तीन-तीन ग्रैवेयक अर्थात् नव ग्रैवेयक हैं। उनके ऊपर नव अनुदिश और पाँच अनुत्तर विमान हैं। ये सब कल्पातीत विमान हैं, इनमें अहमिन्द्र रहते हैं।।४५५।।

विशेषार्थ :— अधोग्रैवेयक, मध्यमग्रैवेयक और उपरिमग्रैवेयक के भेद से मुख्य में ग्रैवेयक तीन प्रकार के हैं। इनमें से प्रत्येक के ऊर्ध्व, मध्य और अधः के नाम से तीन-तीन भेद हैं, इस प्रकार नव ग्रैवेयक हैं। इनके ऊपर नव अनुदिश और उनके ऊपर पाँच अनुत्तर विमान हैं। यही सब कल्पातीत विमान हैं, इनमें अहमिन्द्र रहते हैं। इन विमानों में सभी अहमिन्द्र हैं, इन्द्र की कल्पना का अभाव है इसीलिये इन विमानों की कल्पातीत संज्ञा है।

दो गाथाओं द्वारा नव अनुदिश और पाँच अनुत्तरों के नाम कहते हैं :—

गाथार्थ :— अर्चि, अर्चिमालिनी, वैर, वैरोचन, सोम, सोमप्रभ, अङ्क, स्फटिक और आदित्य ये नव अनुदिश विमान हैं ।।४५६।।

विशेषार्थ :— अर्चि, अर्चिमालिनी, वैर और वैरोचन ये चार श्रेणीबद्ध विमान क्रम से पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशाओं में स्थित हैं। सोम, सोमप्रभ, अङ्क और स्फटिक ये चार श्रेणीबद्ध विमान क्रम से चार विदिशाओं में स्थित हैं। इन सबके मध्य में आदित्य नामक इन्द्रक विमान स्थित है। इस प्रकार ये नव अनुदिश विमान हैं।

गाथार्थ :— विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित ये चार श्रेणीबद्ध विमान क्रमशः पूर्वादि दिशाओं में (एक, एक) हैं इनके मध्य में सर्वार्थसिद्धि नामक इन्द्रक विमान है। इस प्रकार पाँच अनुत्तर विमान हैं।।४५७।।

विशेषार्थ :—सुगम है।

अथोक्तकल्पकल्पातीतविमानानामवस्थानमाह—

मेरुतलादु दिवड्ढं दिवड्ढदलछक्कएक्करज्जुम्हि। कप्पाणमट्ठजुगला गेवेज्जादी य होंति कमे।।४५८।।

मेरुतलात् द्व्यर्धं द्व्यर्धदलषट्कैकरज्जौ। कल्पानां अष्टयुगलानि ग्रैवेयादयश्च भवन्ति क्रमेण।।४५८।।

मेरुतला। मेरुतलाद् द्वितीयार्द्धरज्जौ द्वितीयार्द्धरज्जौ दलषट्करज्जौ च कल्पानामष्टयुगलानि क्रमेण भवन्ति। एकस्यां रज्जौ नवग्रैवेयकादीनि क्रमेण भवन्ति।।४५८।।

साम्प्रतं सौधर्मादिषु विमानसंख्यां गाथात्रयेण कथयति—

बत्तीसट्ठाबीसं बारस अट्ठेव होंति लक्खाणि। सोहम्मादिचउक्के लक्खचउक्कं तु बह्मदुगे।।४५९।।

तत्तो जुम्माण तिए पण्णासं ताल छस्सहस्साणं। सत्तसयाणि य आणदकप्पचउक्केसु पिंडेण।।४६०।।

एक्कारसत्तसमहियसयमेक्काणउदी णव य पञ्चेव। गेवेज्जाणं तित्तिसु अणुदिस्साणुत्तरे होंति।।४६१।।

द्वात्रिंशदष्टाविंशतिः द्वादश अष्टैव भवन्ति लक्षाणि। सौधर्मादिचतुष्के लक्षचतुष्कं तु ब्रह्मद्विके।।४५९।।

ततो युग्मानां त्रये पञ्चाशत् चत्वारिंशत् षट्सहस्राणां। सप्तशतानि च आनतकल्पचतुष्केषु पिण्डेन।।४६०।।

एकादशसप्तसमधिकशतं एकनवतिः नव च पञ्चैव। ग्रैवेयाणां त्रिस्त्रिषु अनुदिशानुत्तरे भवन्ति।।४६१।।

बत्तीसट्ठा। द्वात्रिंशल्लक्षाष्टाविंशतिलक्षद्वादशलक्षाष्टलक्षाण्येव यथासंख्यं सौधर्मादिचतुष्के विमानानि भवन्ति। ब्रह्मोत्तरे मिलित्वा लक्षचतुष्कप्रमितानि विमानानि भवन्ति।।४५९।।

तत्तो जुम्मा। ततो लान्तवादियुग्मत्रये यथासंख्यं पञ्चाशत्सहस्राणि चत्वारिंशत्सहस्राणि षट्सहस्राणि विमानानि आनतादिकल्पचतुष्के पिण्डेन सप्तशतानि विमानानि भवन्ति।।४६१।।

एक्कारसत्त। एकादशमधिकशतं सप्तसमधिकशतं एकनवतिः नव च पञ्चैव यथासंख्यं अधस्तनादिग्रैवेयकाणां त्रिस्त्रिषु अनुदिशायामनुत्तरे च विमानानि भवन्ति।।४६१।।

उक्त कल्प और कल्पातीत विमानों का अवस्थान कहते हैं—

गाथार्थ :— मेरु तल से डेढ़ राजू , डेढ़ राजू और छह अर्ध राजुओं में क्रम से कल्प स्वर्गों के आठ युगल हैं। इनके ऊपर एक राजू में कल्पातीत नवग्रैवेयक आदि विमान हैं।।४५८।।

विशेषार्थ :— मेरुतल से डेढ़ राजू में सौधर्म ऐशान, इसके ऊपर डेढ़ राजू में सानत्कुमार-माहेन्द्र, इसके ऊपर-ऊपर अर्ध-अर्ध राजू के प्रमाण में क्रम से अन्य छह युगल अवस्थित हैं। इस प्रकार छह राजू में सोलह स्वर्ग स्थित हैं। सोलह स्वर्गों के ऊपर एक राजू में नव ग्रैवेयक, नव अनुदिश और पाँच अनुत्तर विमानों का अवस्थान है।

तीन गाथाओं द्वारा सौधर्मादिकों के विमानों की संख्या कहते हैं—

गाथार्थ :— बत्तीस लाख, अट्ठाईस लाख, बारह लाख और आठ लाख क्रम से सौधर्मादिक चार कल्पों के विमानों का प्रमाण है तथा ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर इन दोनों के (मिलाकर) विमानों का प्रमाण चार लाख है। इसके बाद के तीन युगलों में क्रम से पचास हजार, चालीस हजार और छह हजार हैं तथा आनतादि चार कल्पों के विमानों का प्रमाण सम्मिलित रूप से सात सौ है। एक सौ ग्यारह, एक सौ सात, इक्यानवे, नव और पाँच ये क्रम से तीन-तीन ग्रैवेयकों, अनुदिश और अनुत्तर विमानों का प्रमाण है।।४५९,४६०,४६१।।

वैमानिकदेवों के नगर के बाहर उद्यान में चैत्यवृक्ष

साम्प्रतमिन्द्राणां नगरस्थानं विस्तारं च गाथाद्वयेनाह—

सोहम्मादिचउक्के जुम्मचउक्के य सेसकप्पे य। सगदेविजुदिंदाणं णयराणि हवंति णवयपदे[१]।।४८८।।

सौधर्मादिचतुष्के युग्मचतुष्के च शेषकल्पे च। स्वकदेवीयुतेन्द्राणां नगराणि भवन्ति नवकपदे।।४८८।।

सोहम्मादि। सौधर्मादिचतुष्के ब्रह्मादियुग्मचतुष्के आनतादिशेषकल्पे च आनतादीनां नगरेषु प्रत्येकं विंशतिसहस्रयोजनव्याससाधारणात्कल्पचतुष्टयमेकं स्थलं कृतं इति नवसु स्थानेषु स्वस्वदेवीयुतेन्द्राणां नगराणि भवन्ति।।४८८।।

(तीनों गाथाओं का) विशेषार्थ :— स्वर्गों के सम्पूर्ण विमानों की संख्या—

वैमानिकलोकाधिकार

क्रं.	स्वर्गों के नाम	विमानों की संख्या	क्रं.	स्वर्गों के नाम	विमानों की संख्या
१	सौधर्म	३२ लाख(३२०००००)	११	शतार	३०१९ (६ हजार)
२	ऐशान	२८ लाख(२८०००००)	१२	सहस्रार	२९८१ (६हजार)
३	सानत्कुमार	१२लाख(१२०००००)	१३	आनतप्राणत	४४०या४००(७००)
४	माहेन्द्र	८लाख (८०००००)	१४	आरण अच्युत	२६०या३००(७००)
५	ब्रह्म	२०००९६(४लाख)	१५	३ अधस्तनग्रैवेयक	१११
६	ब्रह्मोत्तर	१९९९०४(४लाख)	१६	३ मध्यम ,,	१०७
७	लान्तव	२५०४२(५०हजार)	१७	३उपरिम ,,	९१
८	कापिष्ट	२४९५८ (५०हजार)	१८	अनुदिश	९
९	शुक्र	२००२० (४०हजार)	१९	अनुत्तर	५
१०	महाशुक्र	१९९८०(४० हजार)			
				योगफल- ८४९७०२३ है।	

वैमानिकदेवों के नगर के बाहर उद्यान में चैत्यवृक्ष

दो गाथाओं द्वारा इन्द्रों के नगर स्थान और विस्तार का वर्णन करते हैं :—

गाथार्थ :— सौधर्मादि चार कल्पों के चार, ब्रह्मादि चार युगलों के चार और आनतादि अवशेष कल्पों का एक, इस प्रकार इन नौ स्थानों में अपनी-अपनी देवाङ्गनाओं से युक्त इन्द्रों के नगर हैं।।४८८।।

विशेषार्थ :— सौधर्मादि चार कल्पों के चार स्थान, ब्रह्मादि चार युगलों के चार स्थान और आनतादि कल्पों के नगरों में प्रत्येक नगर बीस हजार योजन व्यास की समानता वाला है अतः इनका एक स्थान, इस प्रकार कुल नौ स्थानों में अपनी-अपनी देवाङ्गनाओं से युक्त देवों के नगर हैं।

---

१. त्रिलोकसार पृ. ४२४, ४३४, ४३५।

कथमिति चेत्—

सुरपुरवहिं असोयं सत्तच्छदचंपचूदवणखण्डा। पउमद्दहसममाणा पत्तेयं चेत्तरुक्खजुदा।।५०२।।

सुरपुरबहिः अशोकं सप्तच्छदचम्पचूतवनखण्डाः। पद्मह्रदसममानाः प्रत्येकं चैत्यवृक्षयुताः।।५०२।।

सुरपुर । सुरपुराद् बहिः पूर्वादिदिक्षु अशोकवनखण्डाः सप्तच्छदवनखण्डाः चम्पकवनखण्डाश्चूत-वनखण्डाःपद्मह्रदसमप्रमाणाः सहस्रयोजनायामास्तदर्द्धव्यासा इत्यर्थः। प्रत्येकमेकैकचैत्यवृक्षयुताः।।५०२।।

अथ तद्वनमध्यस्थचैत्यवृक्षस्वरूपं निरूपयन् तच्चैत्यनमस्कारमाह—

चउचेत्तदुमा जंबूमाणा कप्पेसु ताण चउपासे। पल्लंकगजिणपडिमा पत्तेयं ताणि वंदामि।।५०३।।

चतुश्चैत्यद्रुमाः जम्बूमानाः कल्पेषु तेषां चतुःपार्श्वेषु। पल्यङ्कगजिनप्रतिमाः प्रत्येकं तानि वन्दामि ।।५०३।।

चउचेत्त । चत्वारश्चैत्यद्रुमा जम्बूवृक्षप्रमाणाः सौधर्मादिषु कल्पेषु तेषां चतुर्षु पार्श्वेषु पल्यङ्कजिनप्रतिमाः प्रत्येकं ताः वन्दे।।५०३।।

इन कोटों के अन्तराल में स्थित देवों के भेद दो गाथाओं में कहते हैं :—

गाथार्थ :— सेनापति और तनुरक्षक देव प्रथम अन्तराल में, तीनों परिषद देव दूसरे अन्तराल में, तीसरे अन्तराल में सामानिक देव तथा चौथे अन्तराल में आरोहक, आभियोग्य और किल्विषिकादि देव अपने-अपने योग्य प्रासादों में रहते हैं। पाँचवें अन्तराल से अर्धलाख (५० हजार) योजन आगे जाकर नन्दनवन हैं इनके विशेष नाम आगे कहेंगे ।।।५००-५०१।।

विशेषार्थ :— कोटों (प्राकारों) के प्रथम अन्तराल में सेनापति और तनुरक्षक देव रहते हैं । द्वितीय अन्तराल में तीनों पारिषद, तृतीय अन्तराल में सामानिक देव तथा चतुर्थ अन्तराल में वृषभ, तुरङ्गादि पर सवारी करने वाले आरोहक, आभियोग्य एवं किल्विषिकादि देव अपने-अपने योग्य भवनों में रहते हैं। पाँचवें कोट से ५० हजार योजन आगे जाकर नन्दनवन हैं, ये वन आनन्द देने वाले हैं इसलिये इन्हें नन्दनवन कहते हैं। इनके विशेष नाम आगे कहेंगे ।

वनों के विशेष नाम एवं प्रमाण :—

गाथार्थ :—देवों के नगर से बाहर पद्मसरोवर के प्रमाण को धारण करने वाले तथा एक-एक चैत्यवृक्ष से संयुक्त अशोक वनखण्ड, सप्तच्छद वनखण्ड, चम्पक वनखण्ड और आम्र वनखण्ड हैं।।५०२।।

विशेषार्थ :— देवों के नगरों से बाहर पूर्वादि चारों दिशाओं में क्रम से अशोक , सप्तच्छद, चम्पक और आम्र वनखण्ड हैं। प्रत्येक का प्रमाण—पद्मद्रह नामक सरोवर के सदृश एक हजार योजन लम्बे और पाँच सौ योजन चौड़े हैं तथा प्रत्येक वनखण्ड एक-एक चैत्यवृक्ष से संयुक्त हैं।

वन के बीच में स्थित चैत्यवृक्षों के स्वरूप का निरूपण करते हुए उन चैत्यवृक्षों को नमस्कार करते हैं—

गाथार्थ :— सौधर्मादि कल्पों में चारों वन सम्बन्धी चार चैत्यवृक्ष, जम्बूवृक्ष प्रमाण वाले हैं। **प्रत्येक चैत्यवृक्ष के चारों पार्श्वभागों में पल्यङ्कासन से एक-एक जिनप्रतिमा है**, उन्हें मैं (नेमिचन्द्राचार्य) नमस्कार करता हूँ ।।५०३।।

विशेषार्थ :—सौधर्मादि कल्पों में अशोकादि चारों वनखण्डों में जो चार चैत्यवृक्ष हैं, उनका प्रमाण जम्बूवृक्ष के प्रमाण सदृश है। उन चारों वृक्षों में से प्रत्येक वृक्ष के चारों पार्श्व भागों में **पल्यङ्कासन स्थित एक-एक जिनप्रतिमा** है, उन्हें मैं नमस्कार करता हूँ।

तीर्थंकर भगवान के लिये वस्त्राभरणादि के मानस्तंभ

इन्द्रस्यास्थानमण्डपस्वरूपमाह—

अमरावदिपुरमज्झे थंभगिहीसाणदो सुधम्मक्खं। अट्ठाणमण्डवं सयतद्दलदीहदु तदुभयदल उदयं[1]।।५१५।।

अमरावतीपुरमध्ये स्तम्भगृहैशानतः सुधर्माख्यम्। आस्थानमण्डपं शततद्दलदीर्घद्विः तदुभयदलः उदयः।।५१५।।

अमरावदि। अमरावतीपुरमध्ये इन्द्रस्यावासगृहस्येशानतः सुधर्माख्यमास्थानमण्डपं अस्ति। तस्य दैर्घ्यव्यासौ शतयोजनतद्दलौ तयोर्मिलितोभययोर्दल उत्सेधः स्यात्।।५१५।।

तन्मण्डपाग्रस्थमानस्तम्भस्वरूपमाह—

तस्सागे इगिवासो छत्तीसुदओ सबीढ वज्जमओ। माणत्थंभो गोरुद वित्थारय बारकोडिजुदो।।५१९।।

तस्याग्रे एकव्यासः षट्त्रिंशदुदयः सपीठः वज्रमयः। मानस्तम्भ क्रोशविस्तारः द्वादशकोटियुतः।।५१९।।

तस्सागा। तन्मण्डपस्याग्रे एकयोजनव्यासः षट्त्रिंशद्योजनोदयः पीठसहितो वज्रमयः क्रोश विस्तारो द्वादशधारायुक्तो मानस्तम्भोऽस्ति।।५१९।।

तीर्थंकर भगवान के लिये वस्त्राभरणादि के मानस्तंभ

इन्द्र के आस्थानमण्डप का स्वरूप कहते हैं—

गाथार्थ :—अमरावती नगर के मध्य में इन्द्र के निवासस्थान से ईशान दिशा में सुधर्मा नामक आस्थान मण्डप (सभास्थान) है। उसकी लम्बाई सौ योजन, चौड़ाई लम्बाई के अर्धभाग और ऊँचाई, लम्बाई + चौड़ाई दोनों के योग के अर्धभाग प्रमाण है।।५१५।।

विशेषार्थ :—इन्द्र अमरावती नामक नगर में रहता है। अमरावती के ठीक मध्य में उसके निवास करने का प्रासाद है। प्रासाद की ईशान दिशा में सुधर्मा नामक आस्थान मण्डप है; जिसकी लम्बाई १०० योजन (८०० मील), चौड़ाई ५० योजन (४०० मील) और ऊँचाई (१०० + ५० / २) ७५ योजन (६०० मील) प्रमाण है।

उस आस्थानमण्डप के अग्र स्थित मानस्तम्भ का स्वरूप कहते हैं—

गाथार्थ :—उस आस्थानमण्डप के आगे एक योजन विस्तीर्ण, ३६ योजन ऊँचा पाद पीठ से सहित और एक कोश विस्तार वाली बारह धाराओं से संयुक्त वज्रमय मानस्तम्भ है।।५१९।।

विशेषार्थ :—उस सभामण्डप के आगे एक योजन (८ मील) विस्तीर्ण (चौड़ा), ३६ योजन (२८८ मील) ऊँचा, पादपीठ से युक्त वज्रमय मानस्तम्भ है। इसका आकार गोल और व्यास एक योजन अर्थात् ४ कोश है। इसमें एक-एक कोश विस्तार वाली बारह धाराएँ हैं।

---

१. त्रिलोकसार, पृ. ४४२, ४४६ से ४४९ तक।

अथ तन्मानस्तम्भकरण्डकस्वरूपं गाथात्रयेणाह—

चिट्ठंति तत्थ गोरुदचउत्थवित्थार कोसदीहजुदा। तित्थयराभरणचिदा करण्डया रयणसिक्कधिया।।५२०।।

तिष्ठंति तत्र क्रोशचतुर्थविस्तारा: क्रोशदैर्घ्ययुता:। तीर्थकराभरणचिता: करण्डका रत्नशिक्यधृता:।।५२०।।

चिट्ठंति। तत्र मानस्तम्भे क्रोशचतुर्थांशविस्तारा: क्रोशदैर्घ्ययुता: तीर्थकराभरणचिता रत्नशिक्यधृता: करण्डकास्तिष्ठन्ति।।५२०।।

तुरियजुदविजुदछज्जोयणाणि उवरिं अधोवि ण करण्डा। सोहम्मदुगे भरहेरावदतित्थयरपडिबद्धा।।५२१।।

साणक्कुमारजुगले पुव्ववरविदेहतित्थयरभूसा। ठविदच्चिदा सुरेहिं कोडीपरिणाह बारंसो।।५२२।।

तुरीययुतवियुतषड्योजनानां उपरि अधोऽपि न करण्डा:। सौधर्मद्विके भरतैरावततीर्थकरप्रतिबद्धौ।।५२१।।

सानत्कुमारयुगले पूर्वापरविदेहतीर्थकरभूषा:। स्थापयित्वार्चिता: सुरै: कोटिपरिणाह: द्वादशांश:।।५२२।।

तुरिय। तन्मानस्तम्भस्योपरि योजनचतुर्थांशयुक्त १/४ षड्योजनेषु २५/४ तस्याधश्च योजनचतुर्थांश १/४ वियुक्तषड्योजनेषु २३/४ करण्डा न सन्ति। सौधर्मद्विके तौ मानस्तम्भौ भरतैरावततीर्थङ्करप्रतिबद्धौ स्याताम्।।५२१।।

साणक्कुमार । सानत्कुमारयुगले मानस्तम्भयो: पूर्वापरविदेहतीर्थकरभूषा: स्थापयित्वा सुरैरर्चिता तन्मानस्तम्भधारान्तरं परिधेद्वदिशांशो भवति।।५२२।।

उस मानस्तम्भ पर स्थित करण्डों का स्वरूप तीन गाथाओं द्वारा कहते हैं—

गाथार्थ :—उस मानस्तम्भ पर एक कोस लम्बे और पाव कोस विस्तृत रत्नमयी सींकों के ऊपर तीर्थंकरों के पहिनने योग्य अनेक प्रकार के आभरणों से भरे हुए करण्ड (पिटारे) स्थित हैं।।५२०।।

विशेषार्थ :—गाथार्थ की भाँति ही है।

गाथार्थ :- मानस्तम्भों के चतुर्थ भाग से युक्त और वियुक्त छह योजन अर्थात् पौने छह योजन नीचे और सवा छह योजन ऊपर करण्ड नहीं हैं । सौधर्मैशान कल्पों में स्थित मानस्तम्भ के ऊपर स्थापित करण्ड भरतैरावत के तीर्थंकरों के निमित्त हैं तथा सानत्कुमार-माहेन्द्र कल्पों में स्थित मानस्तम्भों पर देवों द्वारा स्थापित एवं पूजित करण्डों में पूर्व और अपरविदेह क्षेत्रों के तीर्थंकरों के आभूषण हैं । उन मानस्तम्भों की धाराओं का अन्तर परिधि के बारहवें भाग (एक कोश) प्रमाण है।।५२१,५२२।।

विशेषार्थ :—मानस्तम्भों की ऊँचाई ३६ योजन है। १/४ भाग से सहित ६ योजन अर्थात् (२५/४ योजन) ६-१/४ योजन के उपरिम भाग में और १/४ भाग रहित ६ योजन (६-१/४) =२३/४ अर्थात् पौने छह योजन नीचे के भाग में करण्ड नहीं हैं। सौधर्म कल्प में स्थित मानस्तम्भ पर स्थापित करण्डों के आभरण भरतक्षेत्र संबंधी तीर्थंकरों के लिये हैं। ऐशान कल्प में स्थित मानस्तम्भ पर स्थापित करण्डों के आभरण ऐरावत क्षेत्र के तीर्थंकरों के लिए हैं। इसी प्रकार सानत्कुमार कल्प में स्थित मानस्तम्भ के करण्डों के आभरण पूर्वविदेह क्षेत्र संबंधी तीर्थंकरों के लिये और माहेन्द्र कल्प में स्थित मानस्तम्भ पर स्थापित करण्डों के आभरण पश्चिम विदेहक्षेत्र संबंधी तीर्थंकरों के लिए हैं। ये सभी करण्ड देवों द्वारा स्थापित और पूजित हैं। इन मानस्तम्भों की धाराओं का अन्तर मानस्तम्भ की परिधि (३×४=१२ कोश) का बारहवाँ भाग अर्थात् एक कोश का है।

अथ इन्द्रोत्पत्तिगृहस्वरूपमाह—

पासे उववादगिहं हरिस्स अडवास दीहरुदयजुदं। दुगरयणसयण मज्झं वरजिणागेहं बहुकूडं।।५२३।।

पार्श्वे उपपादगृहं हरेः अष्टव्यासदैर्घ्योदययुतम्। द्विकरत्नशयनं मध्यं वरजिनगेहं बहुकूटम्।।५२३।।

पासे। तन्मानस्तम्भस्य पार्श्वे अष्टयोजनव्यासदैर्घ्योदययुतं मध्ये द्विरत्नशयनयुतं हरेरुपपाद गृहमस्ति। एतस्य पार्श्वे बहुकूटं वरजिनगेहमस्ति।।५२३।।

देवों के जन्म के समय

अथ देवानामुत्पत्तिस्वरूपमाह—

सुहसयणग्गे देवा जायंते दिणयरोव्व पुव्वणगे। अंतोमुहुत्त पुण्णा सुगंधिसुहफाससुचिदेहा[१]।।५५०।।

सुखशयनाग्रे देवा जायंते दिनकर इव पूर्वनगे। अन्तर्मुहुर्ते पूर्णाः सुगंधिसुखस्पर्शशुचिदेहाः।।५५०।।

सुहसयण। पूर्वाचले दिनकर इवान्तर्मुहूर्ते षट्पर्याप्ता पूर्णाः सुगन्धिसुखस्पर्शशुचिदेहास्ते देवास्सुखशयनाग्रे जायन्ते।।५५०।।

इन्द्र के उत्पत्तिगृह का स्वरूप कहते हैं—

गाथार्थ :— उस मानस्तम्भ के पास इन्द्र का उपपादगृह है। जो आठ योजन लम्बा, चौड़ा और ऊँचा है। उसके मध्य में रत्नों की दो शय्या हैं तथा उपपादगृह के पास ही **बहुत कूटों (शिखरों) से युक्त उत्कृष्ट जिनमन्दिर है।**।५२३।।

देवों के जन्म के समय

देवों की उत्पत्ति का स्वरूप कहते हैं—

गाथार्थ :—जिस प्रकार पूर्वाचल पर सूर्य का उदय होता है उसी प्रकार स्वर्गों में देव सुखरूप शय्या पर जन्म लेकर अन्तुर्मुहूर्त में छह पर्याप्तियों को पूर्ण कर, सुगन्धित सुखरूप स्पर्श से युक्त एवं पवित्र शरीर को धारण कर लेते हैं।।५५०।।

विशेषार्थ :— मानस्तम्भ के पार्श्व भाग में ८ योजन लम्बा, ८ योजन चौड़ा और ८ योजन ऊँचा उपपाद गृह है, जिसके मध्य भाग में रत्नमयी दो शय्या हैं तथा जिसके पास ही **बहुत कूटों (शिखरों) से सहित उत्कृष्ट जिनमन्दिर** है।

विशेषार्थ :— आनन्दस्वरूप वादित्रों के, 'जय' के और स्तुतियों के शब्दों से अपने देवजन्म को जान कर, प्राप्त हुए वैभव एवं अपने परिवार को देखकर वे देव अवधिज्ञान से अपने पूर्व भव को जानकर धर्म की प्रशंसा करते हैं तथा सरोवर में स्नान करने के बाद पट्टस्वरूप अभिषेक एवं अलंकारों को प्राप्त कर सम्यग्दृष्टि देव स्वयं जिनेन्द्र भगवान् का अभिषेक पूजन करते हैं तथा मिथ्यादृष्टि देव अन्य देवों के द्वारा सम्बोधे जाने के उपरान्त जिनपूजन करते हैं। ये (सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि) सभी देव सुखसागर में निमग्न होने के कारण अपने अतीत काल को नहीं जानते।

---

१. त्रिलोकसार पृ. ४७१।

देवों के कार्य

अथ तेषां देवानां सत्कृत्यमाह—

महपूजासु जिणाणं कल्लाणेसु य पजांति कप्पसुरा। अहमिंदा तत्थ ठिया णमंति मणिमउलिघडिदकरा[1] ।।५५४।।

महापूजासु जिनानां कल्याणेषु च प्रयान्ति कल्पसुराः। अहमिन्द्राः तत्र स्थिता नमन्ति मणिमौलिघटितकराः।।५५४।।

मह। जिनानां महापूजासु तेषां पञ्चमहाकल्याणेषु च कल्पजाः सुराः प्रयान्ति। अहमिन्द्रास्तु तत्र स्थिता एव मणिमौलिघटितकराः संतो नमन्ति।।५५४।।

अथ सुरादिसम्पत् केषां भवतीत्युक्ते आह—

विविहतवरयणभूसा णाणसुची सीलवत्थसोम्मंगा। जे तेसिमेव वस्सा सुरलच्छी सिद्धिलच्छी य।।५५५।।

विविधतपोरत्नभूषाः ज्ञानशुचयः शीलवस्त्रसौम्याङ्गाः। ये तेषामेव वश्या सुरलक्ष्मीः सिद्धिलक्ष्मीश्च।।५५५।।

विविह। ये विविधतपोरत्नभूषाः ज्ञानशुचयः शीलवस्त्रसौम्याङ्गास्तेषामेव सुरलक्ष्मीः सिद्धि लक्ष्मीश्च वश्या भवति।।५५५।।

देवों के कार्य

उन देवों के समीचीन कार्यों को कहते हैं :—

गाथार्थ :—कल्पवासी देव जिनेन्द्रों की महापूजा और उनके पञ्चकल्याणकों में जाते हैं किन्तु अहमिन्द्र देव वहीं स्थित रहकर मणिमय मुकुटों से अपने हाथों को लगाकर नमस्कार करते हैं।।५५४।।

विशेषार्थ :— कल्पवासी देव तीर्थंकरों की महापूजा और उनके पञ्चकल्याणक महोत्सवों में जाते हैं किन्तु अहमिन्द्र देव (तो) अपने ही स्थान पर स्थित रहकर मणिमय मुकुटों पर अपने हाथ रखकर नमस्कार करते हैं।

देवादिक सम्पत्ति किन जीवों को प्राप्त होती है, उसे कहते हैं—

गाथार्थ :—मोक्षलक्ष्मी एवं सुरलक्ष्मी उन्हीं जीवों के वश में होती है, जिनके अङ्ग निरन्तर नाना प्रकार के तपों से विभूषित, ज्ञान से पवित्र और शीलरूपी वस्त्र के संयोग से सौम्य रहते हैं।।५५५।।

विशेषार्थ :—जो नाना प्रकार के तप रत्नों से विभूषित, ज्ञान से पवित्र और शीलरूपी वस्त्र के सम्पर्क से सौम्य शरीर वाले हैं, वे ही जीव सुरलक्ष्मी एवं मोक्षलक्ष्मी को वश में करते हैं।

ॐ ह्रीं त्रयोदशद्वीपसंबंधिसर्वजिनप्रतिमाभ्यो नमः।

ॐ ह्रीं सर्वसिद्धिकराय श्री शांतिनाथाय नमः।

ॐ ह्रीं अक्षीणमहानसऋद्धिभ्यो नमः।

---

१. त्रिलोकसार पृ. ४७१, ४७३, ४७४।

वैमानिक देवों के जिनमंदिर

(तिलोयपण्णत्ति से)

सोहम्मीसाणसणक्कुमारमाहिंदबम्हलंतवया। महसुक्कसहस्सारा आणदपाणदयआरणच्चुदया[1]।।१२०।।
एवं बारस कप्पा कप्पातीदेसु णव य गेवेज्जा। हेट्ठिमहेट्ठिमणामो हेट्ठिममज्झिल्ल हेट्ठिमोवरिमो।।१२१।।
मज्झिमहेट्ठिमणामो मज्झिममज्झिम य मज्झिमोवरिमो।
उवरिमहेट्ठिमणामो उवरिममज्झिम य उवरिमोवरिमो।।१२२।।
आइच्चइंदयस्स य पुव्वादिसु लच्छिलच्छिमालिणिया। वइरो वइरोइणिया चत्तारो वरविमाणाइं।।१२३।।
अण्णदिस्राविदिसासुं सोमज्जं सोमरूवअंकाइं। पडिहं पइण्णयाणि च चत्तारो तस्स णादव्वा।।१२४।।
विजयंतवइजयंतं जयंतअपराजिदं च णाामाणिं। सव्वट्ठसिद्धिणामे पुव्वावरदक्खिणुत्तरदिसाए।।१२५।।
सव्वट्ठसिद्धिणामे पुव्वादिपदाहिमेण विजयादी। ते होंति वरविमाणा एवं केई परूवेंति।।१२६।।

पाठान्तरम्।

सोहम्मो ईसाणो सणक्कुमारो तहेव माहिंदो। बम्हा बम्हुत्तरयं लंतवकापिट्ठसुक्कमहसुक्का।।१२७।।
सदरसहस्साराणदपाणदआरणयअच्चुदा णामा। इय सोलस कप्पाणिं मण्णंते केइ आइरिया।।१२८।।

पाठान्तरम्।

वैमानिक देवों के जिनमंदिर

(तिलोयपण्णत्ति से)

सोलह स्वर्गों के नाम—सौधर्म, ईशान, सानत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लांतव, कापिष्ट, शुक्र, महाशुक्र, शतार, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण और अच्युत, इन सोलह स्वर्गों को कल्प एवं ऊपर के ग्रैवेयक आदि को कल्पातीत कहते हैं। सौधर्म, ईशान, सानत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्म, लांतव, महाशुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण और अच्युत, इस प्रकार ये बारह कल्प हैं। कल्पातीतों में अधस्तन-अधस्तन, अधस्तन मध्यम, अधस्तन-उपरिम, मध्यम-अधस्तन, मध्यम-मध्यम, मध्यम-उपरिम, उपरिम-अधस्तन, उपरिम-मध्यम और उपरिम-उपरिम, ये नौ ग्रैवेयक विमान हैं।।१२०-१२२।। आदित्य इन्द्रक की पूर्वादिक दिशाओं में लक्ष्मी, लक्ष्मीमालिनी, वज्र और वैरोचिनी, ये चार उत्तम श्रेणीबद्ध विमान तथा अन्य दिशा-विदिशाओं में सोमार्य, सोमरूप, अंक और स्फटिक, ये चार उसके प्रकीर्णक विमान जानना चाहिये ।।१२३-१२४।। सवार्थसिद्धि नामक इन्द्रक के पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर दिशा में विजय, वैजयंत, जयंत और अपराजित नामक विमान हैं।।१२५।। सर्वार्थसिद्धि नामक इन्द्रक की पूर्वादि दिशाओं में प्रदक्षिणरूप वे विजयादिक उत्तम विमान हैं। इस प्रकार कोई आचार्य प्ररूपण करते हैं।।१२६।। पाठान्तर। सौधर्म, ईशान, साानत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लांतव, कापिष्ट, शुक्र, महाशुक्र, शतार, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण और अच्युत नामक ये सोलह कल्प हैं, ऐसा कोई आचार्य मानते हैं।।१२७-१२८।। पाठान्तर।

---

१. तिलोयपण्णत्ति अधिकार-८ पृ. ७८७ से ७९१।

कणयद्दिचूलउवरिं किंचूणदिवड्ढरज्जुबहलम्मि। सोहम्मीसाणक्खं कप्पदुगं होदि रमणिज्जं।।१२९।।

३।

१४।

ऊणस्स य परिमाणं चालजुदं जोयणाणि इगिलक्खं। उत्तरकुरुमणुवाणं बालग्गेणादिरित्तेणं।।१३०।।

१०००४०।

सोहम्मीसाणाणं चरमिंदयकेदुदंडसिहरादो। उड्ढं असंखकोडीजोयणविरहिददिवड्ढरज्जूए।।१३१।।
चिट्ठेदि कप्पजुगलं णामेहि सणक्कुमारमाहिंदा। तच्चरिमिंदयकेदणदंडाइ असंखजोयणूणेणं।।१३२।।
रज्जूए अद्धेणं कप्पो चेट्ठेदि तत्थ बम्हक्खो। तम्मेत्ते पत्तेक्कं लंतवमहसुक्कया सहस्सारो।।१३३।।
आणदपाणदआरणअच्चुअकप्पा हुवंति उवरुवरिं। तत्तो असंखजोयणकोडीओ उवरि अंतरिदा।।१३४।।
कप्पातीदा पडला एक्करसा होंति ऊणरज्जूए। पढमाए अंतरादो उवरुवरिं होंति अधियाओ।।१३५।।
कप्पाणं सीमाओ णियणियचरिमिंदयाण धयदंडा। किंचूणयलोयंतो कप्पातीदाण अवसाणं।।१३६।।
उडुपहुदिएक्कतीसं एदेसुं पुव्वअवरदक्खिणदो। सेढीबद्धा णइरदिअणलदिसाठिदपइण्णा य।।१३७।।
सोहम्मकप्पणामा तेसुं उत्तरदिसाए सेढिगया। मरुईसाणदिसट्ठिदपइण्णया होंति ईसाणे।।१३८।।
अंजणपहुदी सत्त य एदेसिं पुव्वअवरदक्खिणदो। सेढीबद्धा णइरिदिअणलदिसट्ठिदपइण्णा य।।१३९।।
णामे सणक्कुमारो तेसुं उत्तरदिसाए सेढिगया। पवणीसाणे संठिदपइण्णया होंति माहिंदे।।१४०।।
रिट्ठादी चत्तारो एदाणं चउदिसासु सेढिगया। विदिसापइण्णयाणिं ते कप्पा बम्हणामेणं।।१४१।।

कनकाद्रि अर्थात् मेरु पर्वत की चूलिका के ऊपर कुछ कम डेढ़ राजू के बाहल्य में रमणीय सौधर्म-ईशान नामक कल्पयुगल हैं।।१२९।। रा.१-१/२ । इस ऊनता का प्रमाण उत्तर कुरु के मनुष्यों के बालाग्र से अधिक एक लाख चालीस योजन है।।१३०।। १०००४०।। सौधर्म-ईशान संबंधी अन्तिम इन्द्रक के ध्वजदण्ड के शिखर से ऊपर असंख्यात करोड़ योजनों से रहित डेढ़ राजू में सानत्कुमार-महेन्द्र नामक कल्पयुगल स्थित है। इसके अन्तिम इन्द्रक संबंधी ध्वजदण्ड के ऊपर असंख्यात योजनों से कम आधे राजू में ब्रह्म नामक कल्प स्थित है । इसके आगे इतने मात्र अर्थात् आधे-आधे राजू में ऊपर-ऊपर लान्तव,महाशुक्र, सहस्रार, आनत-प्राणत और आरण-अच्युत कल्पों में से प्रत्येक है। इसके आगे असंख्यात करोड़ योजनों के अन्तर से ऊपर कुछ कम एक राजू में शेष ग्यारह कल्पातीत पटल हैं। इनमें प्रथम के अन्तर से ऊपर-ऊपर अन्तर अधिक है।।१३१-१३५।।

कल्पों की सीमायें अपने-अपने अन्तिम इन्द्रकों के ध्वजदण्ड हैं और कुछ कम लोक का अन्त कल्पातीतों का अन्त है।।१३६।। ऋतु आदि इकतीस इन्द्रके एवं उनमें पूर्व, पश्चिम और दक्षिण के श्रेणीबद्ध; तथा नैर्ऋत्य व अग्नि दिशा में स्थित प्रकीर्णक, इन्हीं का नाम सौधर्म कल्प है । उपर्युक्त उन विमानों की उत्तर दिशा में स्थित श्रेणीबद्ध और वायु एवं ईशान दिशा में स्थित प्रकीर्णक, ये ईशान कल्प में हैं।।१३७-१३८।। अंजन आदि सात इन्द्रक एवं उनके पूर्व, पश्चिम और दक्षिण के श्रेणीबद्ध तथा नैर्ऋत्य एवं अग्नि दिशा में स्थित प्रकीर्णक, इनका नाम सनत्कुमार कल्प है। इन्हीं की उत्तर दिशा में स्थित श्रेणीबद्ध और पवन एवं ईशान दिशा में स्थित प्रकीर्णक, ये माहेन्द्र कल्प में हैं।।१३९-१४०।। अरिष्टादिक चार इन्द्रक तथा इनकी चारों दिशाओं के श्रेणीबद्ध और विदिशाओं के प्रकीर्णक, इनका नाम ब्रह्म कल्प है।।१४१।। ब्रह्महृदयादिक दो इन्द्रक और इनकी चारों दिशाओं में

बम्हहिदयादिदुदयं एदाणं चउदिसासु सेढिगया। विदिसापइण्णयाइं णाामेणं लंतओ कप्पो।।१४२।।

महसुक्कइंदओ तह एदस्स य चउदिसासु सेढिगया। विदिसापइण्णयाइं कप्पो महसुक्कणामेणं।।१४३।।

इंदयसहस्सयारा एदस्स चउदिसासु सेढिगया। विदिसापइण्णयाइं होंति सहस्सारणामेणं ।।१४४।।

आणदपहुदी छक्कं एदस्स य पुव्वअवरदक्खिणदो। सेढीबद्धा णइरिदिअणलदिसट्ठिदपइण्णाणिं।।१४५।।

आणदआरणणामा दो कप्पा होंति पाणदच्चुदया। उत्तरदिससेढिगया समीरणीसाणदिसपइण्णा य।।१४६।।

हेट्ठिमहेट्ठिमपमुहा एक्केक्क सुदंसणाओ पडलाणिं। होंति हु एवं कमसो कप्पातीदा ठिदा सव्वे।।१४७।।

जे सोलसकप्पाइं केई इच्छंति ताण उवएसे। बम्हादिचउदुगेसुं सोहम्मदुगं व दिब्भेदो।।१४८।।

।।पाठान्तरम्।।

बत्तीसट्ठावीसं बारस अट्ठं कमेण लक्खाणिं। सोहम्मादि चउक्के होंति विमाणाणि विविहाणिं।।१४९।।

३२००००००।२८०००००।१२०००००।८०००००।

चउलक्खाणिं बम्हे पण्णाससहस्सयाणि लंतवए। चालीससहस्साणिं कप्पे महसुक्कणामम्मि।।१५०।।

४०००००।५००००।४००००।

छच्चेव सहस्साणिं होंति सहस्सारकप्पणामम्मि। सत्तसयाणि विमाणा कप्पचउक्कम्मि आणदप्पमुहे।।१५१।।

।।६०००।७००।।

खगयणसत्तछण्णवचउअट्ठंककमेण इंदयादितिए। परिसंखा णादव्वा बावण्णाकप्पपडलेसुं।।१५२।।

८४९६७००।।

स्थित श्रेणीबद्ध तथा विदिशाओं के प्रकीर्णक, इनका नाम लान्तव कल्प है।।१४२।। महाशुक्र इन्द्रक तथा इसकी चारों दिशाओं में स्थित श्रेणीबद्ध व विदिशाओं के प्रकीर्णक, इनका नाम महाशुक्र कल्प है।।१४३।। सहस्रार इन्द्रक और इसकी चारों दिशाओं में स्थित श्रेणीबद्ध व विदिशाओं के प्रकीर्णक, इनका नाम सहस्रार कल्प है ।।१४४।। आनत आदि छह इन्द्रक और इनकी पूर्व, पश्चिम व दक्षिण दिशा में स्थित श्रेणीबद्ध तथा नैऋत्य एवं अग्नि दिशा में स्थित प्रकीर्णक, इनका नाम आनत और आरण दो कल्परूप है। उक्त इन्द्रकों की उत्तर दिशा में स्थित श्रेणीबद्ध तथा वायु व ईशान दिशा के प्रकीर्णक,इनका नााम प्राणत और अच्युत कल्प है।।१४५-१४६।। अधस्तन-अधस्तन आदि एक-एक में सुदर्शनादिक पटल हैं। इस प्रकार क्रम से सब कल्पातीत स्थित हैं।।१४७।। जो कोई आचार्य सोलह कल्पों को मानते हैं उनके उपदेशानुसार ब्रह्मादिक चार युगलों में सौधर्म युगल के समान दिशाभेद है।।१४८।। । पाठान्तर। सौधर्मादि चार कल्पों में तीनों प्रकार के विमान क्रम से बत्तीस लाख, अट्ठाईस लाख, बारह लाख और आठ लाख हैं।।१४९।। सौ. कल्प. ३२ लाख, ई. क. २८ला., स. क. १२ ला., मा.क.८ला.। इन्द्रकादिक तीनों प्रकार के विमान ब्रह्म कल्प में चार लाख, लान्तव कल्प में पचास हजार और महाशुक्र नामक कल्प में चालीस हजार हैं।।१५०।। ब्र.क्र.४ लाख, लां. क. ५००००, महाशुक्र ४०००० । उक्त विमान सहस्रार नामक कल्प में छह हजार और आनत प्रमुख चार कल्पों में सात सौ हैं ।।१५१।। सहस्रार ६०००, आनत प्रमुख ४ कल्प ७००। शून्य, शून्य, सात, छह , नौ, चार और आठ , इन अंकों के क्रम से अर्थात् चौरासी लाख छियानबे हजार सात सौ, यह बावन कल्पपटलों में इन्द्रादिक तीन विमानों की संख्या है।।१५२।।

एक्कारसुत्तरसयं हेट्ठिमगेवज्जतियविमाणाणिं। मज्झिमगेवज्जतिए सत्तब्भहियं सयं होदि।।१५३।।
१११।१०७।
एक्कब्भहिया णउदी उवरिमगेवज्जतियविमाणाणिं। णवपंचविमाणाणिं अणुद्दिसाणुत्तरेसु कमा।।१५४।।
९१।९।५।

सौधर्म-ईशान स्वर्ग में तीर्थंकर के वस्त्राभरण हेतु स्तंभों का वर्णन

इंदप्पहाणपासादपुव्वदिब्भागपहुदिसंठाणा। चत्तारो पासादा पुव्वोदिदवण्णणेहिं जुदा[1]।।३९६।।
वेरुलियरजदसोका मिसक्कसारं च दक्खिणिंदेसुं। रुचकं मंदरसोका सत्तच्छदयं च उत्तरिंदेसुं।।३९७।।
सक्कीसाणगिहाणं पुरदो छत्तीसजोयणुच्छेहा। जोयणबहलविखंभा बारसधारा हुवंति वज्जमया।।३९८।।
पत्तेक्कं धाराणं वासो एक्केक्ककोसपरिमाणं। माणत्थंभसरिच्छं सेसत्थंभाण वण्णणयं।।३९९।।
भरहेरावदभूगदतित्थयरबालयाणाभरणाणं। वररयणकरंडेहिं लंबंतेहिं विरायंते।।४००।।
मूलादो उवरितले पुह पुह पणवीसकोसपरिमाणा। गंतूणं सिहरादो तेत्तियमोदरिय होंति हु करंडा।।४०१।।
२५।२५।
पंचसयचावरुंदा पत्तेक्कं एक्ककोसदीहत्ता। ते होंति वरकरंडा णाणावररयणरासिमया।।४०२।।
५००।को १।

---

३२ ला. + २८ ला. + १२ ला.+ ८ लाख + ४ लाख + ५० सहस्र. +४० स. + ६ स. + ७०० = ८४९६७००। अधस्तन तीन ग्रैवेयकों के विमान एक सौ ग्यारह और मध्यम तीन ग्रैवेयकों में एक सौ सात विमान हैं।।१५३।। अध. ग्रै.१११, म.ग्रै.१०७ । उपरिम तीन ग्रैवेयकों के विमान इक्यानवे और अनुदिश व अनुत्तरों में क्रम से नौ और पांच ही विमान हैं।।१५४।। **जिनमंदिर—ये जितने विमान हैं उतने ही जिनमंदिर हैं।**

सौधर्म-ईशान स्वर्ग में तीर्थंकर के वस्त्राभरण हेतु स्तंभों का वर्णन

इन्द्रों के प्रधान प्रासाद के पूर्व दिशा भागादि में स्थित और पूर्वोक्त वर्णनों से युक्त चार प्रासाद होते हैं।।३९६।। दक्षिण इन्द्रों में वैडूर्य, रजत, अशोक और मृषत्कसार तथा उत्तर इन्द्रों में रुचक, मन्दर, अशोक और सप्तच्छद, ये चार प्रासाद होते हैं।।३९७।। सौधर्म और ईशान इन्द्र के गृहों के आगे छत्तीस योजन ऊंचे, एक योजन बाहल्य व विष्कम्भ से सहित बज्रमय बारह धाराओं वाले (स्तम्भ) होते हैं।।३९८।। उन धाराओं में प्रत्येक धारा का व्यास एक-एक कोश प्रमाण है। शेष स्तम्भों का वर्णन मानस्तम्भों के सदृश है। ।३९९।। (ये स्तम्भ) भरत और ऐरावत भूमि के तीर्थंकर बालकों के आभरणों के लटकते हुए उत्तम रत्नमय पिटारों से विराजमान हैं।।४००।। मूल से उपरिम तल में पृथक्-पृथक् पच्चीस कोश प्रमाण जाकर और शिखर से इतने ही उतरकर ये करण्ड होते हैं।।४०१।। मूल २५, शिखर २५ । नाना उत्तम रत्नों की राशिस्वरूप उन श्रेष्ठ करण्डों में से प्रत्येक पांच सौ धनुष विस्तृत और एक कोश लम्बा होता है।।४०२।। विस्तार ५०० ध., दीर्घता १ को.। रत्नमय सींकों के

---

१. तिलोयपण्णत्ति पृ. ८२६, ८२७, ८३०।

ते संखेज्जा सव्वे लंबंता रयणसिक्कजालेसुं। सक्कादिपूजणिज्जा अणादिणिहणा महारम्मा।।४०३।।
आभरणा पुव्वावरविदेहतित्थयरबालयाणं च। थंभोवरि चेट्ठंते भवणेसु सणक्कुमारजुगलस्स।।४०४।।

सौधर्म आदि स्वर्गों में चैत्यवृक्ष एवं जिनमंदिर

सयलिंदमंदिराणं पुरदो णग्गोहपायवा होंति। एक्केक्कं पुढविमया पुव्वोदिदजंबुदुमसरिसा।।४०५।।
तम्मूले एक्केक्का जिणिंदपडिमा य पडिदिसं होदि। सक्कादिणमिदचलणा सुमरणमेत्ते वि दुरिदहरा।।४०६।।
सक्कस्स मंदिरादो ईसाणदिसे सुधम्मणामसभा। तिसहस्सकोसउदया चउसयदीहा तदद्धवित्थारा।।४०७।।
३०००।४००।२००।।
तीए दुवारछेहो कोसा चउसट्ठि तद्दलं रुंदो। सेसाओ वण्णणाओ सक्कप्पासाददसरिसाओ ।।४०८।।
६४।३२।
रम्माए सुधम्माए विविहविणोदेहि कीडदे सक्को। बहुविहपरिवारजुदो भुंजंतो विविहसोक्खाणिं।।४०९।।
तत्थेसाणदिसाए उववादसभा हुवेदि पुव्वसमा। दिप्पंतरयणसेज्जा विण्णासविसेससोहिल्ला।।४१०।।
तीए दिसाए चेट्ठदि वररयणमओ जिणिंदपासादो। पुव्वसरिच्छो अहवा पंडुगजिणभवणसारिच्छो ।।४११।।

समूहों में लटकते हुए वे सब संख्यात करण्ड शक्रादि से पूजनीय, अनादिनिधन और महा रमणीय होते हैं।।४०३।।

सानत्कुमार युगल के भवनों में स्तम्भों के ऊपर पूर्व व पश्चिम विदेह सम्बन्धी तीर्थंकर बालकों के आभरण स्थित होते हैं।।४०४।।

सौधर्म आदि स्वर्गों में चैत्यवृक्ष एवं जिनमंदिर

समस्त इन्द्रमन्दिरों के आगे न्यग्रोध वृक्ष होते हैं । इनमें एक-एक वृक्ष पृथिवीस्वरूप और पूर्वोक्त जंबूवृक्ष के सदृश होते हैं ।।४०५।।

इनके मूल में प्रत्येक दिशा में एक-एक जिनेन्द्र प्रतिमा होती है जिसके चरणों में शक्रादिक प्रणाम करते हैं तथा जो स्मरण मात्र में ही पाप को हरने वाली है ।।४०६।।

सौधर्म इन्द्र के मन्दिर से ईशान दिशा में तीन हजार (तीन सौ) कोश ऊँची, चार सौ कोश लंबी और इससे आधे विस्तार वाली सुधर्मा नामक सभा है।।४०७।। उ. ३०००, दी. ४००, वि.२०० कोस।

सुधर्मा सभा के द्वारों की ऊँचाई चौसठ कोश और विस्तार इससे आधा है। शेष वर्णन सौधर्म इन्द्र के प्रासाद के सदृश है ।।४०८।।

उत्सेध ६४, विस्तार ३२ कोश। इस रमणीय सुधर्मा सभा में बहुत प्रकार के परिवार से युक्त सौधर्म इन्द्र विविध सुखों को भोगता हुआ अनेक विनोदों से क्रीड़ा करता है।।४०९।।

वहाँ ईशान दिशा में पूर्व के समान उपपाद सभा है। यह सभा देदीप्यमान रत्नशय्याओं से सहित और विन्यासविशेष से शोभायमान है।।४१०।।

उसी दिशा में पूर्व के समान अथवा पाण्डुकवन सम्बन्धी जिनभवन के सदृश उत्तम रत्नमय जिनेन्द्रप्रासाद है ।।४११।।

प्रत्येक इन्द्रनगर के चारों तरफ चैत्यवृक्ष

तप्परदो गंतूणं पण्णाससहस्सजोयणाणं च। होंति हु दिव्ववणाणिं इंदपुराणं चउदिसासुं[1]।।४२९।।
पुव्वादिसु ते कमसो असोयसत्तच्छदाण वणसंडा। चंपयचूदाण तहा पउमद्दहसरिसपरिमाणा।।४३०।।
एक्केक्का चेत्ततरू तेसु असोयादिणामसंजुत्ता। णग्गोहतरुसरिच्छा वरचामरछत्तपहुदिजुदा।।४३१।।
पोक्खरणीवावीहिं मणिमय भवणेहिं संजुदा विउला। सव्वउडुजोग्गपल्लवकुसुमफला भांति वणसंडा।।४३२।।

नवग्रैवेयक आदि में भी चैत्यवृक्ष हैं।

उववादसभा विविहा कप्पातीदाण होंति सव्वाणं। जिणभवणा पासादा णाणाविहदिव्वरयणमया[2]।।४५३।।
अभिसेयसभा संगीयपहुदिसालाओ चित्तरुक्खा य। देवीओ ण दीसंति कप्पातीदेसु कइया वि।।४५४।।

प्रत्येक इंद्र नगर के चारों तरफ चैत्यवृक्ष

इसके आगे पचास हजार योजन जाकर इन्द्रपुरों की चारों दिशाओं में दिव्य वन हैं।।४२९।।

पूर्वादिक दिशाओं में क्रम से वे अशोक, सप्तच्छद, चंपक और आम्र वृक्षों के वनखण्ड हैं। इन वनों का प्रमाण पद्म द्रह के वनों के समान है।।४३०।। उन वनों में अशोकादि नामों से संयुक्त और उत्तम चमर –छत्रादि से युक्त न्यग्रोध तरु के सदृश एक–एक चैत्यवृक्ष है।।४३१।। पुष्करिणी वापियों व मणिमय भवनों से संयुक्त तथा सब ॠतुओं के योग्य पत्र , कुसुम एवं फलों से परिपूर्ण विपुल वनखण्ड शोभायमान हैं।।४३२।।

नवग्रैवेयक आदि में भी चैत्यवृक्ष हैं।

सब कल्पातीतों के विविध प्रकार की उपपाद **सभाएँ, जिनभवन,** नाना प्रकार के दिव्य रत्नों से निर्मित प्रासाद, अभिषेकसभा, संगीत आदि शालाएँ और चैत्यवृक्ष भी होते हैं परन्तु कल्पातीतों के देवियाँ कदापि नहीं दिखतीं।।४५३–४५४।।

अहिच्छत्र तीर्थ वन्दना

-उपजातिछंद-

नष्टोपसर्गे रविकेवलोत्थे,
जातं त्वहिक्षेत्रमिदं सुतीर्थं।
क्षेत्रं पवित्रं जगति प्रसिद्धं,
भक्त्या सदा भव्यजनाः स्तुवंति।।22।।

दूर हुआ उपसर्ग तुरत, कैवल्यज्ञान रवि उदित हुआ।
तीर्थ पवित्र "अहिच्छत्रं" भविजन, संस्तुत जग सिद्ध हुआ।।

-गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी

---

१. तिलोयपण्णत्ति अधिकार ७, पृ. ८३०। २. तिलोयपण्णत्ति अधिकार ७, पृ. ८३३।

वैमानिक देवों के जिनमन्दिर

(सिद्धान्तसार दीपक से)

त्रिसहस्रोनपञ्चाशीति लक्षश्रीजिनालयान्। त्रियोविंशतिसंयुक्तान् वन्दे वन्द्यान्नरामरैः[1]।।१।।
अथोर्ध्वलोकभागस्थान् स्वर्गग्रैवेयकादिकान्। इन्द्रादिनाकिनां भूतिस्थितियुक्त्यादिकान् ब्रुवे।।२।।
सौधर्मैशानकल्पौ द्वौ दक्षिणोत्तरयोः स्थितौ। सनत्कुमारमाहेन्द्रौ ब्रह्मब्रह्मोत्तराह्वयौ।।३।।
स्वर्गौ लान्तवकापिष्टौ दक्षिणोत्तरदिक्श्रितौ। द्वौ च शुक्रमहाशुक्रौ युग्मरूपव्यवस्थितौ।।४।।
द्वौ शतारसहस्रारावानतप्राणताभिधौ। आरणाच्युतनामानौ चैते स्वर्गाश्च षोडश।।५।।
चतुर्णामाद्यनाकानां चत्त्वारो वासवा पृथक्। चतुः स्वर्मध्ययुग्मानां चत्त्वारः स्वर्गनायकाः।।६।।
चतुस्तदग्रनाकानामिन्द्राश्चत्वार ऊर्जिताः। इतीन्द्रसंख्यया कल्पाः कथ्यन्ते द्वादशागमे।।७।।

वैमानिक देवों के जिनमन्दिर

(सिद्धान्तसार दीपक से)

मङ्गलाचरण—

अर्थ–मनुष्यों और देवों के द्वारा वन्दनीक चौरासी लाख सत्तान्नवे हजार तेईस जिनालयों को मैं (सकलकीर्त्याचार्य) नमस्कार करता हूँ।।१।।

प्रतिज्ञा—

अर्थ–अब ऊर्ध्वलोक में स्थित सौधर्मादि स्वर्ग और ग्रैवेयक आदि की स्थिति आदि को तथा इन्द्रादिक देवों की विभूति एवं स्थिति आदि को कहता हूँ।।२।।

अब सोलह स्वर्गों के नाम और उनका अवस्थान कहते हैं—

अर्थ–सौधर्म और ऐशान कल्प क्रमशः दक्षिण और उत्तर में अवस्थित हैं, सानत्कुमार–माहेन्द्र, ब्रह्म–ब्रह्मोत्तर तथा लान्तव और कापिष्ट ये स्वर्ग भी दक्षिण–उत्तर दिशाओं के आश्रित अवस्थित हैं। शुक्र और महाशुक्र ये युग्म रूप से अवस्थित हैं।।३–४।।

शतार–सहस्रार, आनत–प्राणत तथा आरण और अच्युत ये भी एक के बाद एक युग्म रूप से अवस्थित हैं, इस प्रकार ये सोलह स्वर्ग ऊर्ध्वलोक में अवस्थित हैं।।५।।

अब इन्द्रों का प्रमाण दर्शाते हैं—

अर्थ—आदि के चार स्वर्गों के पृथक्–पृथक् चार इन्द्र हैं अर्थात् सौधर्म, ऐशान, सानत्कुमार और माहेन्द्र स्वर्गों में से प्रत्येक में एक–एक इन्द्र हैं। मध्य के चार युगलों (आठ स्वर्गों) के चार इन्द्र हैं अर्थात् ब्रह्म, लान्तव, महाशुक्र और सहस्रार स्वर्गों में से प्रत्येक में एक–एक इन्द्र हैं। ब्रह्मोत्तर, कापिष्ट, शुक्र और शतार स्वर्गों में इन्द्र नहीं हैं। शेष ऊपर के आनत, प्राणत, आरण और अच्युत में से प्रत्येक में एक–एक इन्द्र हैं। इस प्रकार आगम में बारह इन्द्र और बारह ही कल्प कहे गए हैं।।६–७।।

---

१. सिद्धान्तसार दीपक पृ. ५०३ से ५०५ तक।

वैमानिक देवों के जितने विमान हैं उतने ही जिनमंदिर हैं।

सौधर्मेन्द्राह्वयः शक्रः सनत्कुमारदेवराट्। ब्रह्मेन्द्रो लान्तवेन्द्रश्चानतेन्द्र आरणाधिपः[१]।।८।।
षडेते दक्षिणेन्द्राः स्युर्नूनमेकावतारिणः। पूर्वार्जितमहापुण्यजिनभक्तिभराङ्किताः।।९।।
ईशानेन्द्रो हि माहेन्द्रः शुक्रेन्द्रः शुक्रनाकभाक्। शतारेन्द्रस्ततः प्राणतेन्द्रोऽच्युतेन्द्र उत्तमः।।१०।।
एते षडुत्तरेन्द्राः स्युर्जिनपूजापरायणाः। सम्यग्दर्शनसंशुद्धाः सर्वामरनतक्रमाः।।११।।
उपर्युपरि सन्त्येते स्वर्गाः षोडशसम्मिताः। दक्षिणोत्तरदिग्भागस्था युग्मरूपिणः शुभाः।।१२।।
स्वर्गाणामुपरि स्युश्चाद्याधोग्रैवेयकास्त्रयः। तेषामुपरिसन्त्येव मध्यग्रैवेयकास्त्रयः।।१३।।
एषामुपरि तिष्ठन्ति चोर्ध्वग्रैवेयकास्त्रयः। अमीषामुपरि स्याच्च नवानुदिशनामकम्।।१४।।
तस्य सन्ति चतुर्दिक्षु चत्त्वारश्च विमानकाः। विदिक्षु तेऽपितावन्तो मध्ये ह्येकं विमानकम्।।१५।।
तस्योपरि च पञ्चानुत्तराख्यं पटलं भवेत्। तच्चतुर्दिक्षु चत्वारि विमानानि भवन्ति वै।।१६।।
मध्ये सर्वार्थसिद्ध्याथाख्यं स्याद्विमानं च्युतोपमम्। ततो मुक्तिशिलादिव्या गत्वा द्वादशयोजनान्।।१७।।

वैमानिक देवों के जितने विमान हैं उतने ही जिनमंदिर हैं।

अब इन्द्रों के नाम और उनकी दक्षिणेन्द्र संज्ञा आदि का विवेचन करते हैं—

अर्थ—सौधर्म, सानत्कुमार, ब्रह्म, लान्तव, आनत और आरण नाम के ये छह इन्द्र दक्षिणेन्द्र हैं। ये छहों एक भवावतारी, पूर्वोपार्जित महापुण्य से युक्त और जिनेन्द्र भगवान की अपूर्व भक्ति के रस से सहित होते हैं।।८-९।।

सर्व देवों से नमस्कृत, सम्यग्दर्शन से शुद्ध और जिनेन्द्र की पूजा में तल्लीन रहने वाले ईशान, माहेन्द्र, शुक्र स्वर्ग का शुक्र, शतार, प्राणत और अच्युत नाम के ये छह इन्द्र उत्तरेन्द्र हैं।।१०-११।।

अब कल्प-कल्पातीत विमानों का और सिद्धशिला का अवस्थान बतलाते हैं—

अर्थ—दक्षिण और उत्तर दिशाओं में षोडश स्वर्ग युग्म रूप से ऊपर-ऊपर अवस्थित हैं अर्थात् एक युगल के ऊपर दूसरा, दूसरे के ऊपर तीसरा इत्यादि।।१२।।

सोलह स्वर्गों के ऊपर तीन अधोग्रैवेयकों की (एक के ऊपर एक) अवस्थिति है। इनके ऊपर तीन मध्यम ग्रैवेयक और उनके ऊपर तीन ऊर्ध्व ग्रैवेयक स्थित हैं। इन ग्रैवेयकों के ऊपर चार दिशाओं में चार, चार विदिशाओं में चार और एक मध्य में इस प्रकार नव अनुदिशों की अवस्थिति है।।१३-१५।।

नव अनुदिशों के ऊपर पाँच अनुत्तर विमान हैं, जो चार दिशाओं में चार हैं और मध्य में उपमारहित सर्वार्थसिद्धि नामक विमान अवस्थित है। सर्वार्थसिद्धि विमान से बारह योजन ऊपर जाकर दिव्य रूप वाली सिद्धशिला अवस्थित है।।१६-१७।।

---

१. सिद्धान्तसार दीपक पृ. ५०४।

इन्द्र के नगर

इन्द्रक्रीडानिवासस्य प्रकारात्प्रथमाद्बहिः। आदिशाल समव्यासोत्सेधाश्चत्वार ऊर्जिताः[१]।।१३२।।
महान्तोऽन्ये च विद्यन्ते प्राकारा अन्तरान्तरे। प्राकारस्यादिमस्यैव योजनानां किलान्तरम्।।१३३।।
त्रयोदशैव लक्षाणि द्वितीयस्यास्य चान्तरम्। त्रिषष्टिरेव लक्षाणि तृतीयस्य तथान्तरम्।।१३४।।
चतुःषष्टिस्तु लक्षाणि तुर्यशालस्य चान्तरम्। लक्षाणि योजनानां चतुरशीतिप्रमाणि वै।।१३५।।
आद्यप्राकारभूमध्ये सैन्यनाथा वसन्ति च। शालान्तरे द्वितीयस्याङ्गरक्षकसुधाभुजः।।१३६।।
तृतीयशालभूभागे निर्जराः परिषत्स्थिताः। अन्तरे तुर्यशालस्य सामानिका वसन्ति च।।१३७।।

सौधर्मादि स्वर्गों के विमानों का प्रमाण[२]—

क्रमांक	स्वर्गों के नाम	विमानों की संख्या	क्रमांक	स्वर्गों के नाम	विमानों की संख्या
१	सौधर्म	३२ लाख (३२०००००)	११	शतार	३०१९ (६ हजार)
२	ऐशान	२८ लाख (२८०००००)	१२	सहस्रार	२९८१
३	सानत्कुमार	१२ लाख (१२०००००)	१३	आनत प्राणत	४४० (७००)
४	माहेन्द्र	८ लाख (८०००००)	१४	आरण अच्युत	२६०
५	ब्रह्म	२,९६००० (४ लाख)	१५	३ अधस्तन ग्रैवेयक	१११
६	ब्रह्मोत्तर	१,०४०००	१६	३ मध्यम	१०७
७	लान्तव	२५०४२ (५० हजार)	१७	२ उपरिम	९१
८	कापिष्ठ	२४९५८	१८	अनुदिश	९
९	शुक्र	२००२० (४० हजार)	१९	अनुत्तर	५
१०	महाशुक्र	१९९८०			

योगफल — ८४,९७,०२३ है।

इन्द्र के नगर

इन्द्र के नगर सम्बन्धी प्राकारों की संख्या और उनके पारस्परिक अन्तर का प्रमाण कहते हैं—

अर्थ—इन्द्र के क्रीड़ा निवास (अर्थात् नगर) के प्रथम प्राकार से बाहर समुन्नत (व्यास के समान उन्नत) एवं महान् एक दूसरे के अन्तराल से चार प्राकार और हैं। जिनका व्यास एवं उत्सेध प्रथम प्राकार के सदृश है। प्रथम कोट (प्राकार) से दूसरे कोट का अन्तर १३ लाख योजन (१०४००००० मील) है। दूसरे कोट से तीसरे कोट का अन्तर ६३ लाख योजन (५०४००००० मील) है। तीसरे कोट से चौथे कोट का अन्तर ६४ लाख योजन (५१२००००० मील) है और चौथे कोट से पांचवें कोट का अन्तराल ८४ लाख योजन (६७२००००० मील) प्रमाण है।।१३२-१३५।।

कोटों के अन्तरालों में स्थित देवों के भेद कहते हैं—

अर्थ—प्रथम कोट के मध्य में सेनापति और दूसरे कोट के मध्य से अङ्गरक्षक देव रहते हैं।।१३६।। तीसरे कोट के मध्य में परिषद् देव तथा चौथे कोट के अन्तराल में सामानिक देव निवास करते हैं।।१३७।।

१. सिद्धान्तसार दीपक पृ. ५३३ से ५३४ तक। २. सिद्धान्तसार दीपक, पृ. ५०८।

इन्द्र के नगर के बाहर उद्यान में चैत्यवृक्ष एवं जिनप्रतिमा

तत इन्द्रपुराद्बाह्ये चतुर्दिक्षु विमुच्य च। लक्षार्धं योजनानां स्युश्चत्वारिंशद्वनान्यपि[1]।।१४९।।
अशोकं सप्तपर्णाख्यं चम्पकाह्वयमाम्रकम्। इति नामाङ्कितान्येव शाश्वतानि वनान्यपि।।१५०।।
योजनानां सहस्रेणायतानि विस्तृतानि च। सहस्रार्धेन रम्याणि भवन्ति सफलानि वै।।१५१।।
अमीषां मध्यभागेषु चत्वारश्चैत्यपादपाः। जम्बूद्रुमसमानाः स्युरशोकाद्या मनोहराः।।१५२।।
एषां मूले चतुर्दिक्षु जिनेन्द्रप्रतिमाः शुभाः। देवाच्र्या बद्धपर्यङ्काः सन्ति भास्वरमूर्तयः।।१५३।।
एषु वनेषु सर्वेषु सन्त्यावासा मनोहराः। वाहनादिक देवानां योषिद्वृन्दसमाश्रिताः।।१५४।।
मध्येऽमरावतीसंज्ञे पुरस्यैशानसद्दिशि। इन्द्रस्तम्भगृहस्यास्ति सभास्थानसुमण्डपः[२]।।१७४।।
सुधर्मसंज्ञकस्तुङ्ग पञ्चसप्ततियोजनैः। शतैकयोजनायामः पञ्चाशद्विस्तरान्वितः।।१७५।।
पूर्वोत्तरदिशोर्दक्षिणाशायां तस्य सन्ति च। द्व्यष्टयोजनतुङ्गानि विस्तृतान्यष्टयोजनैः।।१७६।।
रत्नद्वाराणि देव्योघैर्दुर्गमाणि सुरोत्करैः। तन्मध्ये स्वर्गनाथस्य दिव्यं स्याद्धरिविष्टरम्।।१७७।।

इन्द्र के नगर के बाहर उद्यान में चैत्यवृक्ष एवं जिनप्रतिमा

अर्थ–इन्द्रों के नगरों से बाहर पूर्वादि चारों दिशाओं में पचास-पचास हजार योजन छोड़कर अशोक, सप्तपर्ण, चम्पक और आम्र नाम के शाश्वत चार वन हैं।।१४९-१५०।।

उत्तम फलों से युक्त इन प्रत्येक रमणीक वनों की लम्बाई एक हजार योजन और चौड़ाई पाँच सौ योजन प्रमाण है।।१५१।।

इन चारों वनों के मध्य भाग में जम्बूवृक्ष सदृश प्रमाण वाले, अत्यन्त मनोहर अशोक आदि चार चैत्यवृक्ष हैं।।१५२।।

इन चारों वृक्षों में से प्रत्येक वृक्ष के मूल में चारों दिशाओं में, देव समूहों से पूज्य, पद्मासन एवं देदीप्यमान शरीर की कान्ति से युक्त **जिनेन्द्र भगवान् की एक-एक प्रतिमाएँ** हैं।।१५३।।

इन चारों वनों में देवाङ्गनाओं के समूह से युक्त वाहन आदि जाति के देवों के मनोहारी आवास हैं।।१५४।।

इन्द्र के आस्थान मण्डप का अवस्थान एवं प्रमाण—

अर्थ—अमरावती नामक नगर के मध्य में इन्द्रस्तम्भ प्रासाद की ईशान दिशा में सभास्थान नामक सुन्दर मण्डप है, जिसका नाम सुधर्म सभा है। इस सुधर्म सभा की ऊँचाई ७५ योजन (६०० मील), लम्बाई १०० योजन (८०० मील) और चौड़ाई ५० योजन (४०० मील) प्रमाण है।।१७४-१७५।।

आस्थान मण्डप के द्वार, उनका प्रमाण एवं इन्द्र के सिंहासन का अवस्थान—

अर्थ—आस्थान मण्डप की पूर्व, उत्तर और दक्षिण दिशा में १६ योजन ऊँचे और ८ योजन चौड़ाई के प्रमाण को लिए हुए एक-एक दरवाजा है। ये द्वार रत्नों से निर्मित और देव-देवियों के समूह से अलङ्घनीय हैं। मण्डप के मध्य भाग में इन्द्र का एक दिव्य सिंहासन है।।१७६-१७७।।

---

१. सिद्धान्तसार दीपक पृ. ५४०। सिद्धान्तसार दीपक, पृ. ५४७ से ५५० तक।

तस्य सिंहासनस्यात्र तिष्ठन्ति सन्मुखानि च। अष्टानां तन्महादेवीनां महान्त्यासनान्यपि।।१७८।।
पूर्वादिदिक्षु तिष्ठन्ति लोकपालासनानि च। अन्येषां देवसङ्घानां यथार्हमासनान्यपि।।१७९।।
तस्याग्रे रतनपीठस्थो मानस्तम्भोऽस्ति मानहृत्। षड्त्रिंशद्योजनोत्तुङ्गो योजनव्यास ऊर्जितः।।१८०।।
वज्रकायः स्फुरत्कान्तिर्महाध्वजविभूषितः। मस्तके जिनबिम्बाढ्यः स्वांशूद्द्योतित दिग्मुखः।।१८१।।
क्रौशैकक्रमविस्तीर्ण कोटिद्वादशराजितः। अधोभागे विहायास्य क्रोशोन योजनानि षट्।।१८२।।
ऊर्ध्वभागे परित्यज्य क्रोशाग्रयोजनानि षट्। तिष्ठप्ति मणिमञ्जूषा रत्नरज्जु विलम्बिताः।।१८३।।
क्रोशायाम युताः क्रोशचतुर्थभागविस्तृताः। सुभूषणा जिनेन्द्राणां विद्यन्ते तासु सञ्चिताः।।१८४।।
भरतैरावतोत्पन्नानां सुरत्नमयाः परे। निरौपम्या क्रमायाताः सौधर्मैशानकल्पयोः।।१८५।।
पूर्वापरविदेहोत्थार्हतां विभूषणा इति। सनत्कुमारमाहेन्द्रयोः सन्ति रत्नशालिनः।।१८६।।

महादेवियों के, लोकपालों के और अन्य देवों के सिंहासनों का अवस्थान कहते हैं—

अर्थ—उस सिंहासन के सम्मुख (आगे) अष्ट महादेवांगनाओं के महान् आसन अवस्थित हैं।।१७८।।

महादेवियों के आसनों से बाहर पूर्वादि दिशाओं में चारों लोकपालों के आसन हैं तथा दक्षिण आदि दिशाओं में अन्य देवों के योग्य आसन हैं अर्थात् इन्द्र के सिंहासन की आग्नेय, दक्षिण और नैऋत्य दिशा में अभ्यन्तर आदि परिषदों के, नैऋत्य में त्रायस्त्रिंश देवों के, पश्चिम में सेनानायकों के, वायव्य एवं ईशान में सामानिक देवों के तथा पूर्वादि चारों दिशाओं में अङ्गरक्षक देवों के आसन हैं।।१७९।।

आस्थान मण्डप के अग्र स्थित मानस्तम्भ का स्वरूप, प्रमाण एवं उस पर स्थित करण्डों का अवस्थान—

अर्थ—उस सभामण्डप के आगे रत्नमयी पीठ पर मान को हरण करने वाला, ३६ योजन (२८८ मील) ऊँचा, एक योजन (८ मील) चौड़ा, वज्रमयी देदीप्यमान कान्ति वाली महाध्वजा से विभूषित, शिखर (मस्तक) पर जिनबिम्बों से युक्त एवं अपनी किरणों से दशों दिशाओं को प्रकाशित करने वाला एक मानस्तम्भ है।।१८०-१८१।।

इसमें क्रमशः एक-एक कोश विस्तार वाली सूर्य सदृश प्रकाशमान बारह धाराएँ हैं। इन ३६ योजन ऊँचाई वाले मानस्तम्भों के अधोभाग में पौने छह योजन और उपरिम भाग में सवा छह योजन छोड़कर शेष मध्य भाग में रत्नमयी रस्सियों के सहारे लटकते हुए मणिमय करण्ड (पिटारे) हैं।।१८२-१८३।।

इन पिटारों की लम्बाई एक कोश एवं चौड़ाई पाव कोश प्रमाण है। इन करण्डों में जिनेन्द्रदेवों (तीर्थंकरों) के पहिनने योग्य अनेक प्रकार के आभरण आदि संचित रहते हैं।।१८४।।

भरतक्षेत्र में उत्पन्न होने वाले तीर्थंकरों के उत्तम रत्नमयी एवं उपमारहित आभूषण सौधर्म स्वर्गस्थ मानस्तम्भ पर, ऐरावत क्षेत्रोत्पन्न तीर्थंकरों के ऐशान स्वर्गस्थ मानस्तम्भों पर, पूर्व विदेह क्षेत्रोत्पन्न तीर्थंकरों के सानत्कुमार स्वर्गस्थ मानस्तम्भ पर एवं पश्चिम विदेह क्षेत्रोत्पन्न तीर्थंकरों के रत्नमयी आभूषण माहेन्द्र स्वर्गस्थ मानस्तम्भों पर स्थित मञ्जूषाओं में अवस्थित रहते हैं।।१८५-१८६।।

सौधर्म स्वर्ग में जिनमंदिर-चैत्यवृक्ष

(लोक विभाग से)

सौधर्मे व सभैशाने शेषेन्द्राणां सभास्तथा। उपपातसभाश्चैव अर्हदायतनानि च[1]।।२६३।।
शतार्धायामविस्तीर्णाः पुरस्तान्मुखमण्डपाः। वेदिकाभिः परिक्षिप्ता नानारत्नशतोज्ज्वलाः।।२६४।।
।१००। ५०।
सामानिकादिभिः सार्धम् इन्द्राः पर्वसु सादराः। पूजयन्त्यर्हतां तेषु कथाभिरपि चासते।।२६५।।
कल्पेषु परतश्चापि सिद्धायतनवर्णना। आयागाः खलु कल्पेषु सभा ग्रैवेयतः स्मृताः।।२६६।।
योजनाष्टकमुद्विद्धा तावदेव च विस्तृता। उपपातसभेन्द्राणां त्रायस्त्रिंशवतां स्मृता।।२६७।।
अशोकं सप्तपर्णं च चम्पकं चूतमेव च। पूर्वाद्यानि वनान्याहुर्देवराजबहिःपुरात्।।२६८।।
आयतानि सहस्त्रं च तदर्धं विस्तृतान्यपि। प्राकारः परितस्तेषां मध्ये चैत्यद्रुमा अपि।।२६९।।
। १००० । ५००।
अर्हतां प्रतिबिम्बानि जाम्बूनदमयानि च। तेषां चतुर्षु पार्श्वेषु निषण्णानि चकासते।।२७०।।
वालुकं पुष्पकं चैव सौमनस्यं ततः परम्। श्रीवृक्षं सर्वतोभद्रं प्रीतिकृद्रम्यकं तथा।।२७१।।
मनोहरविमानं च अर्चिमाली च नामतः। विमलं च विमानानि यानकानीति लक्षयेत्।।२७२।।
नियुतव्यासदीर्घाणि वैक्रियाणीतराणि च। वैक्रियाणि विनाशीनि स्वभावानि ध्रुवाणि च।।२७३।।
सौधर्मादिचतुष्के च ब्रह्मादिषु तथा क्रमात्। आनतारणयोश्चैव उक्तान्येतानि योजयेत्।।२७४।।

सौधर्म स्वर्ग में जिनमंदिर-चैत्यवृक्ष

(लोक विभाग से)

सौधर्म कल्प के समान ऐशान कल्प में भी सभागृह है। उसी प्रकार शेष इन्द्रों के भी सभागृह, उपपातसभा और जिनायतन होते हैं।।२६३।। उनके आगे सौ (१००) योजन दीर्घ, इससे आधे (५० यो.) विस्तीर्ण, वेदिकाओं से वेष्टित और सैकड़ों नाना प्रकार के रत्नों से उज्ज्वल मुखमण्डप होते हैं।।२६४।। उनमें इन्द्र पर्व के दिनों में सामानिक आदि देवों के साथ भक्ति से जिन भगवान् की पूजा करते हैं तथा कथाओं के साथ (तत्त्वचर्चा करते हुए) वहाँ स्थित होते हैं।।२६५।। कल्पों में तथा आगे ग्रैवेयक आदि में भी सिद्धायतन का वर्णन करना चाहिए। आयाग (न्यग्रोध वृक्ष) कल्पों में तथा सभाभवन ग्रैवेयक में माने गए हैं।।२६६।। त्रायस्त्रिंशों के साथ इन्द्रों की उपपात सभा आठ योजन ऊँची और उतनी ही विस्तृत कही गई है।।२६७।। इन्द्रपुर के बाहर पूर्वादि दिशाओं में क्रम से अशोक, सप्तवर्ण, चम्पक और आम्र ये चार वन स्थित हैं।।२६८।। वे वन हजार (१०००) योजन लंबे और इससे आधे (५०० यो.) विस्तृत हैं। उनके चारों ओर प्राकार और मध्य में चैत्यवृक्ष स्थित हैं।।२६९।। **उक्त चैत्यवृक्षों के चारों पार्श्वभागों में पल्यंकासन से स्थित सुवर्णमय जिनबिम्ब शोभायमान हैं**।।२७०।। वालुक, पुष्पक, सौमनस्य, श्रीवृक्ष, सर्वतोभद्र, प्रीतिकृत्, रम्यक, मनोहर, अर्चिमाली और विमल ये यानविमान जानना चाहिए। ये एक लाख (योजन) लंबे-चौड़े यानविमान विक्रियानिर्मित और प्राकृतिक भी होते हैं। उनमें विक्रियानिर्मित विमान नश्वर और स्वाभाविक विमान स्थिर होते हैं।।२७१-२७३।। ये उपर्युक्त विमान क्रम से सौधर्म आदि चार कल्पों, ब्रह्मादि चार युगलों तथा आनत व आरण कल्प; इस प्रकार इन दस स्थानों में कहे गए योजित करना चाहिए।।२७४।।

---

१. लोकविभाग-विभाग-१० पृ. २०५।

स्वर्गों में चैत्यवृक्ष एवं मानस्तम्भ में तीर्थंकर के वस्त्राभरणादि

तत्र सिंहासने दिव्ये सर्वरत्नमये शुभे। स्वैरं निषण्णो विस्तीर्णे जयशब्दाभिनन्दितः[१]।।२५४।।
वृतः सामानिकैर्देवैस्त्रायस्त्रिंशैस्तथैव च। सुखासनस्थैः श्रीमद्भिस्तन्मुखोन्मुखदृष्टिभिः।।२५५।।
चित्रभद्रासनस्थाभिर्वामदक्षिणपार्श्वयोः। संक्रीडयमानो देवीभिः क्रीडारतिपरायणः।।२५६।।
तत्र योजनविस्तीर्णः षट्कृतिं च समुच्छ्रितः। स्तम्भो गोरुतविस्तारधाराद्वादशसंयुतः।।२५७।।
वज्रमूर्तिः सपीठोऽस्मिन् क्रोशतत्पाददीर्घकः। व्यासाश्च रत्नशिक्यस्थास्तिष्ठन्ति च समुद्गकाः।।२५८।।
। १ । १/४।
सक्रोशानि हिषट् तूर्ध्वं योजनान्यसमुद्गकाः। क्रोशन्यूनानि तावन्ति अधश्चाप्यसमुद्गकाः।।२५९।।
।२५/४। २३/४।
जिनानां रुच्यकास्तेषु सुरैः स्थापितपूजिताः। भरतैरावतेशानां सौधर्मैशानयोर्द्वयोः।।२६०।।
पूर्वापरविदेहेषु जिनानां रुच्यकाः पुनः। सनत्कुमारमाहेन्द्रकल्पयोर्न्यस्तपूजिताः।।२६१।।
न्यग्रोधाः प्रतिकल्पं च आयागाः पादपाः शुभाः। जम्बूमानाश्चतुःपार्श्वे पल्यङ्कप्रतिमायुताः।।२६२।।
उक्तं च (ति. प. ८,४०५-६)
सयलिंदमंदिराणं पुरदो णग्गोहपायवा होंति। एक्केक्कं पुढविमया पूव्वोदिदजंबुदुमसरिसा।।९।।
तम्मूले एक्केक्का जिणिंदपडिमा य पडिदिसं होंति। सक्कादिणमियचलणा सुमरणमेत्ते वि दुरिदहरा।।१०।।

स्वर्गों में चैत्यवृक्ष एवं मानस्तम्भ में तीर्थंकर के वस्त्राभरणादि

उस सभाभवन में 'जय-जय' शब्द से अभिनन्दित इन्द्र दिव्य, सर्वरत्नों से निर्मित, शुभ एवं विस्तीर्ण सिंहासन के ऊपर स्वेच्छापूर्वक विराजमान होता है। वह सुखकारक आसनों पर स्थित एवं उसके मुख की ओर दृष्टि रखने वाले ऐसे कान्तियुक्त सामानिक और त्रायस्त्रिंस देवों से वेष्टित होकर क्रीड़ा में अनुराग रखता हुआ अपने वाम और दक्षिण भागों में अनेक प्रकार के भद्रासनों पर स्थित देवियों के साथ क्रीड़ा किया करता है।।२५४-२५६।। वहाँ एक योजन विस्तीर्ण, छह के वर्गभूत छत्तीस योजन ऊँचा, एक कोस विस्तार वाली बारह धाराओं से संयुक्त और पादपीठ से सहित वज्रमय स्तम्भ है। इसके ऊपर एक कोस लंबे और पाव (१/४) कोस विस्तृत रत्नमय सींके के ऊपर स्थित करण्डक है।।२५७-२५८।। मानस्तम्भ के ऊपर सवा छह (६-१/४) योजन ऊपर और पौने छह (५-३/४) योजन नीचे वे करण्डक नहीं हैं।।२५९।। सौधर्म और ऐशान इन दो कल्पों में स्थित उन स्तम्भों के ऊपर देवों के द्वारा स्थापित और पूजित भरत एवं ऐरावत क्षेत्रों के तीर्थंकरों के आभूषण रहते हैं।।२६०।। सनत्कुमार और माहेन्द्र इन दो कल्पों में स्थित उन स्तम्भों के ऊपर देवों द्वारा स्थापित एवं पूजित पूर्व और अपर विदेह क्षेत्रों के तीर्थंकरों के आभूषण रहते हैं।।२६१।। **प्रत्येक कल्प में अपने चारों पार्श्वभागों में विराजमान ऐसी पल्यंकासन युक्त प्रतिमाओं से सुशोभित उत्तम न्यग्रोध आयाग वृक्ष होते हैं। ये वृक्ष प्रमाण में जम्बूवृक्ष के समान हैं**।।२६२।।

तिलोयपण्णत्ति ग्रंथ में कहा भी है—

समस्त इन्द्रप्रासादों के आगे पृथिवी के परिणामस्वरूप एक-एक न्यग्रोध वृक्ष होते हैं। वे प्रमाण आदि में पूर्वोक्त जम्बूवृक्ष के समान हैं।।९।। **उनके मूल भाग में प्रत्येक दिशा में एक-एक जिनप्रतिमा होती है**। स्मरण मात्र से ही पाप को नष्ट करने वाली उन प्रतिमाओं के चरणों में इन्द्रादि नमस्कार करते हैं।।१०।।

---

१. लोक विभाग, अधिकार-१०, पृ. २०४

ऊर्ध्व लोक के चैत्यालयों की संख्या

(त्रिलोक भास्कर से[१])

इस उर्ध्व लोक में जितने वैमानिक देवों के विमान हैं। उनमें एक-एक मंदिर होने से उतने ही जिनमंदिर हैं। यथा—

सौधर्म स्वर्ग के	३२०००००	आनत, प्राणत, स्वर्ग के	
ईशान स्वर्ग के	२८०००००	आरण, अच्युत स्वर्ग के	७००
सानत्कुमार स्वर्ग के	१२०००००	अधस्तन तीन ग्रै. स्वर्ग के	१११
माहेन्द्र स्वर्ग के	८०००००	मध्यम तीन ग्रै. स्वर्ग के	१०७
ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर स्वर्ग के	४०००००	उपरिम तीन ग्रै. स्वर्ग के	९१
लांतव, कापिष्ठ स्वर्ग के	५००००	नव अनुदिश स्वर्ग के	९
शुक्र, महाशुक्र स्वर्ग के	४००००	पंच अनुत्तर स्वर्ग के	५
सतार, सहस्रार स्वर्ग के	६०००		

३२०००००+२८०००००+१२०००००+८०००००+४०००००+५००००+४००००+६०००+७००+१११+१०७+९१+९+५=८४९७०२३ होते हैं।

इन चौरासी लाख सत्तानवें हजार तेईस जिनचैत्यालयों को मेरा मन वचन काय पूर्वक बारम्बार नमस्कार होवे।

श्रीपार्श्वनाथ वंदना

-उपजातिछंद-

श्रीपार्श्वनाथाय नमोऽस्तु तुभ्यं।
दुःखार्तिनाशाय नमोऽस्तु तुभ्यं।।
अभीप्सितार्थाय नमोऽस्तु तुभ्यं।
त्रैलोक्यनाथाय नमोऽस्तु तुभ्यं।।23।।

नमोऽस्तु पारसनाथ! तुम्हें, दुःखार्ति विनाशि नमोऽस्तु तुम्हें।
नमोऽस्तु ईप्सित हेतु तुम्हें, हे त्रिभुवननाथ! नमोऽस्तु तुम्हें।।

-गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी

१. त्रिलोक भास्कर, पृ. २३१।

सिद्ध लोक और सिद्ध शिला

(त्रिलोक भास्कर से)

सर्वार्थसिद्धि नामक इंद्रक के ध्वज से १२ योजन मात्र ऊपर जाकर 'ईषत्प्राग्भार' नाम की आठवीं पृथ्वी स्थित है। तीन भुवन के मस्तक पर स्थित इस पृथ्वी की पूर्व-पश्चिम चौड़ाई १ राजु है, उत्तर-दक्षिण लम्बाई ७ राजु है एवं मोटाई आठ योजन मात्र है। अतः यह पृथ्वी लोक के अंत तक आठ योजन मोटी है। इस पृथ्वी के ऊपर तीन वातवलय हैं जो कुछ कम एक योजन मात्र हैं। घनोदधि वातवलय २ कोस, घनवातवलय १ कोस, तनुवातवलय ४२५ धनुष कम १ कोस है। एक कोश २००० धनुष का है।[१]

इस आठवीं पृथ्वी के मध्य में रजतमयी, अर्धचन्द्र के आकार वाला मनुष्य क्षेत्र समान, गोल, पैंतालीस लाख योजन विस्तृत 'सिद्धक्षेत्र' है। इस क्षेत्र के मध्य की मोटाई आठ योजन है एवं क्रम से घटते-घटते अंत में १ अंगुल मात्र है। अर्थात् यह सिद्ध शिला उपरिम भाग में तो समान रूप है और नीचे हानि वृद्धिरूप है। त्रिलोकसार में इस सिद्धशिला को उत्तान चषकमिव[२] —सीधे रखे हुए कटोरे सदृश कहा है। यह शिला ४५,००००० योजन विस्तृत है और इसकी परिधि १४२३०२४९ योजन प्रमाण है। सभी सिद्ध भगवान सिद्धक्षेत्र के उपरिम भाग—तनुवात के चतुर्थ भाग में विराजमान हैं, अंतिम शरीर के प्रमाण से किंचित् न्यून आत्मप्रदेश वाले हैं।

तनुवातवलय ४२५ धनुष कम एक कोश का है। एक कोश में २००० धनुष होते हैं। अतः तनुवातवलय में—२०००-४२५=१५७५ धनुष। तनुवातवलय के कोस प्रमाणांगुल की अपेक्षा से है और सिद्धों की अवगाहना व्यवहारांगुल की अपेक्षा से है। इसलिये १५७५ को ५०० से गुणा करके व्यवहार धनुष बना लीजिये १५७५×५००=७८७५०० तनुवात की मोटाई को पाँच सौ से गुणा करके १५०० का भाग देने पर सिद्धों की उत्कृष्ट अवगाहना का प्रमाण होता है। जैसे—१५७५×५००÷१५००=५२५ धनुष एवं ९००००० का भाग देने पर जघन्य अवगाहना होती है। १५७५×५०० ÷९०००००=७/८ धनुष=३/१/२ हाथ। इसमें सिद्धों की जघन्य अवगाहना सात धनुष के आठवें भाग है। धनुष के ४ हाथ होते हैं अतः ७×४=२८; २८÷८=३-१/२। सिद्धों की जघन्य अवगाहना ३-१/२ हाथ है एवं उत्कृष्ट अवगाहना ५२५ धनुष है[३]।

अथवा सरलता से समझने के लिए दूसरी विधि यह है—

घनोदधि वातवलय	४००० धनुष
घनवातवलय	२००० धनुष
तनुवातवलय	१५७५ धनुष।

ये महाधनुष का प्रमाण है। इन सभी को ५०० से गुणा करके लघु धनुष बनाइये-४०००+२०००+१५७५=७५७५ को ५०० से गुणा-७५७५×५००=३७८७५०० लघु धनुष हुए।

इनमें सिद्धों की उत्कृष्ट अवगाहना ५२५ को घटाइये। तब ३७८७५००-५२५=३७८६९७५ हुआ।

उत्कृष्ट ५२५ धनुष की अवगाहना वाले सिद्ध भगवान—सिद्धशिला से सैंतीस लाख, छ्यासी हजार नव सौ पचहत्तर लघु धनुष ऊपर जाकर उत्कृष्ट अवगाहना वाले सिद्ध भगवान विराजमान हैं, जैसे कि इस युग के प्रारंभ में उत्कृष्ट अवगाहना वाले श्री बाहुबली भगवान हैं।

---

१. त्रिलोक भास्कर, पृ. २३१ से २३४ तक। २. उत्तानस्थितपात्रमिव चषकमिवत्यर्थः। ३. त्रिलोकसार गाथा १४१-१४२ (त्रिलोकसार गाथा ५५८ की टीका का अंश)।

लघु साढ़े ३ हाथ की अवगाहना वाले सिद्ध भगवान—एक धनुष में चार हाथ होते हैं। अतः ३७८७४९९ लघु धनुष व अर्द्ध हाथ ऊपर जाकर साढ़े तीन हाथ की अवगाहना वाले सिद्ध भगवान विराजमान हैं।

मध्यम अवगाहना वाले सिद्ध भगवान—साढ़े तीन हाथ से ऊपर व ५२५ धनुष से नीचे की सभी अवगाहना वाले सिद्ध मध्यम अवगाहना वाले हैं। जैसे कि भगवान महावीर स्वामी ७ हाथ की अवगाहना वाले हैं अतः वे सिद्धशिला से ३७८७४९८ धनुष एक हाथ ऊपर जाकर सात हाथ की अवगाहना से विराजमान हैं।

सभी सिद्ध भगवन्तों के मस्तक तनुवातवलय के अंत से स्पर्शित हैं। भगवान ऋषभदेव, वासुपूज्य और नेमिनाथ ये तीन तीर्थंकर पद्मासन से मोक्ष गये हैं और शेष इक्कीस तीर्थंकर खड्गासन से मोक्ष गये हैं।[१]

वे सिद्ध जीव जहाँ तक धर्मास्तिकाय है वहीं तक जाकर स्थित हो गये हैं आगे नहीं जाते हैं। एक जीव से अवगाहित क्षेत्र के भीतर जघन्य, उत्कृष्ट और मध्यम अवगाहना से सहित अनंत सिद्ध होते हैं। मनुष्य लोक प्रमाण स्थित तनुवात के उपरिम भाग में सब सिद्धों के मस्तक सदृश होते हैं अधस्तन भाग में कोई विसदृश होते हैं। जितना मार्ग मध्यलोक के ऊपर जाने योग्य है उतना जाकर लोक शिखर पर सब सिद्ध पृथक् पृथक् मोम से रहित मूषक के अभ्यंतर आकाश के सदृश हो जाते हैं। ये सिद्ध भगवान आठ कर्मों से छूटकर सम्यक्त्व, दर्शन, ज्ञान आदि अनंतगुणों के सागर स्वरूप, अरूपी, अशरीरी, नित्य, निरंजन, कृतकृत्य होकर एक ही समय में युगपत् तीनलोक, तीनकालवर्ती समस्त पदार्थों को जान लेते हैं और अनंत सुख सागर में सदा के लिये निमग्न हो जाते हैं। असंख्यों कल्प कालों के बीत जाने पर भी वे वापस संसार में नहीं आते हैं। संसार के संपूर्ण दुःखों से छूटकर आत्मीक अनंत शिव सौख्य का अनुभव करते हैं।

लोक में एक शास्त्र या संपूर्ण शास्त्र को अच्छी तरह से जान लेने पर मनुष्य को बहुत ही संतोष सुख—आनंद उत्पन्न होता है। पुनः सम्पूर्ण लोकालोक को जानने वालों को कितना सुख होगा इसका अनुमान करना भी अशक्य है। जिन्हें वह ज्ञान और सुख प्राप्त हुआ है वे ही उस आनंद का अनुभव कर सकते हैं। अन्य जन नहीं कर सकते। त्रिलोकसार में कहा है कि–

चक्किकुरुफणिसुरिदे सहमिन्दे जं सुहं तिकालभवं। तत्तो अणंतगुणिदं सिद्धाणं खणसुहं होदि।।५६०।।

अर्थ—चक्रवर्ती के सुख से भोगभूमियों का सुख अनंतगुणा है भोगभूमियों से धरणेन्द्र का सुख अनंतगुणा है उससे देवेन्द्र का सुख अनंतगुणा है। उससे अहमिन्द्रों का सुख अनंतगुणा है। इन सभी के अनंतानंत गुणित अतीत, अनागत और वर्तमान काल संबंधी सम्पूर्ण सुखों को एकत्रित करिये उसकी अपेक्षा भी अनंतगुणा अधिक सुख सिद्धों को एक क्षण मात्र में उत्पन्न होता है यह तो केवल उदाहरण मात्र है संसारी सभी जीवों का सुख आकुलता सहित है और सिद्धों का सुख निराकुल है इसलिये सिद्धों का सुख वचन के अगोचर है।

संसार में कोई–कोई भव्य जीव सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्–चारित्ररूप रत्नत्रय के बल से कर्मों का नाश करके स्वयं ही अपने स्वरूप को प्राप्त कर लेते हैं। उसी का नाम सिद्धावस्थाहै "सिद्धिः स्वात्मोपलब्धिः" के अनुसार अपने आत्मा के स्वरूप को प्राप्त कर लेना ही सिद्धि है ऐसे सिद्ध परमेष्ठी अनंतानंत प्रमाण हैं वर्तमान में भी विदेह आदि से कितने ही भव्य जो रत्नत्रयरूप पुरुषार्थ के बल से अपने अनंत गुणों को और शाश्वत सौख्य, पूर्ण ज्ञान को प्रकट करेंगे। उन अतीतानागत वर्तमानकालीन सम्पूर्ण सिद्धों को सिद्धभक्तिपूर्वक मेरा मन वचन काय से बारम्बार नमस्कार होवे।

सिद्धांस्त्रैलोक्यमूर्धस्थान्, अकृतानि कृतानि च। जिनचैत्यानि लोकेऽस्मिन् वंदे सर्वाणि सिद्धये।।

।।समाप्तोऽयं ग्रंथ।।

१. हरिवंशपुराण, पृ. ७२६।

चैत्यवंदनाष्टक

(गणिनी ज्ञानमती विरचित)

त्रिभुवन के जितने चैत्यालय, अकृत्रिम उनको नित वंदूं।
भव भव के संचित पाप पुंज, उन सबको इक क्षण में खंडूं।।
असुरों के चौंसठ लाख नागसुर, के चौरासी लाख कहे।
वायुसुर के छ्यानवे लाख सुपरण के बाहत्तर लक्ष कहे।।१।।

विद्युत् अग्नी स्तनित उदधि, दिक् द्वीपकुमार भवनवासी।
इन छह में पृथक्-पृथक् जिनगृह, छीयत्तर लक्ष सुगुण-राशी।।
सब लक्ष बहत्तर सात कोटि, ये जिनगृह भवनालय सुर के।
ये अधोलोक के जिनमंदिर, नितप्रति वंदूं अंजलि करके।।२।।

इस मध्यलोक के पांच मेरु, के अस्सी तीस कुलाचल के।
रजताचल के इक सौ सत्तर, अस्सी हैं वक्षाराचल के।।
गजदंत गिरी के बीस भवन, जंबू शाल्मलि के दश मानें।
इष्वाकृति नग के चार चार, मनुजोत्तर के भी भव हानें।।३।।

अंजनगिरि के चउ दधिमुख के, सोलह रतिकर के बत्तिस हैं।
नंदीश्वर द्वीप जिनालय ये, बावन अतिशय गुणमंडित हैं।।
कुंडलगिरि रुचकगिरी के भी, हैं चार चार सब मिल करके।
ये चार शतक अट्ठावन हैं, जिनमंदिर मध्यलोक भर के।।४।।

व्यंतरवासी ज्योतिष सुर के, सब संख्यातीत जिनालय हैं।
इक ऊपर ऊर्ध्वलोक में भी, वैमानिक वंदित आलय हैं।।
सौधर्म स्वर्ग में जिनमंदिर, बत्तीस लाख शाश्वत मानो।
ईशान स्वर्ग में अट्ठाइस, हैं लाख जिनालय सरधानो।।५।।

सानत्कुमार में बारह लख, माहेन्द्र स्वर्ग में आठ लक्ष।
दिव ब्रह्मयुगल में चार लाख, लांतव युग में पच्चास सहस।।
चालिस हजार दिव शुक्र युगल में, छह हजार युग शतार में।
जिननिलय सात सौ आनत औ, प्राणत आरण अच्युत दिव में।।६।।

ग्रैवेयक तीन अधो में हैं, इक सौ ग्यारह मध्यम त्रय में।
हैं इक सौ सात तथा जिनगृह, हैं निन्यानवे ऊर्ध्व त्रय में।।

नव अनुदिश में नव जिनमंदिर, पंचानुत्तर में पांच कहें।
इन सबका वंदन करते ही, भविजन मनवांछित सिद्धि लहें।।७।।

तीनों लोकों के ये जिनगृह, सब आठ कोटि छप्पन सुलक्ष।
सत्तानवे सहस चार सौ औ, इक्यासी प्रमित कहे शाश्वत।।
नव सौ पच्चीस कोटि त्रेपन, हैं लाख सताइस सहस सही।
नव सौ अड़तालिस जिनप्रतिमा, प्रति जिनगृह इक सौ आठ कहीं।।८।।

सब जिनगृह में अनुपम शाश्वत, मानस्तंभादिक रचनायें।
वर्णन पढ़ते ही जन मन में, दर्शन की इच्छा प्रकटायें।।
जिनबिंब पांच शत धनुष तुंग, उन वीतराग छवि मनहारी।
मैं केवल ''ज्ञानमती'' हेतू, नित नमूँ जिनालय सुखकारी।।९।।

–दोहा–

त्रैकालिक कृत्रिम सभी, जिनप्रतिमा जिनधाम।
कहे अनंतानंत ही, तिन्हें अनंत प्रणाम।।१०।।

उपसर्गविजयि श्रीपार्श्वनाथ वंदना

–शार्दूलविक्रीडित छन्द –

यो लोकांतर्भूतवस्तुसकलं नक्षत्रवत् लोकते।
यो जित्वा ह्युपसर्गकं ''जिन'' इति प्रख्यश्च कर्माण्यपि।।
वामानंदन एष एव भगवान् लोकैककल्पद्रुमः।
भूयात् मे त्वरमश्वसेननृपजः श्री ''ज्ञानमत्यै'' श्रियै।।24।।

जो सब त्रिभुवन की वस्तू को, इक नक्षत्र सदृश देखें।
जो उपसर्ग रु कर्मशत्रु को, जीता ''जिन'' इस विधि से हैं।।
अश्वसेन सुत वामानंदन, वे लोकैककल्पतरु हैं।
उन पारस प्रभु के प्रसाद से, ''ज्ञानमती'' श्री मम होवे।।

-गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी

प्रशस्ति

सिद्धांस्त्रैकालिकान्नत्वा, सर्वांस्तीर्थंकरानपि।
कृत्रिमाकृत्रिमान् वन्दे, जिनचैत्यजिनालयान्।।१।।
इन्द्रभूतिगणीन्द्राय, नमोऽस्तु सर्वसाधवे।
सरस्वति! नमस्तुभ्य, हृदि मे तिष्ठतात्सदा।।२।।
जंबूद्वीपेऽत्र क्षेत्रे प्राग्, भरतेप्यार्यखण्डके।
श्रीवीरशासने सूरिः, कुंदकुंदगुरुर्महान्।।३।।
मूलसंघे च तन्नाम्ना, कुंदकुंदान्वयोऽभवत्।
गच्छे सरस्वतीनाम्नि, बलात्कारगणे शुभे।।४।।
अस्मिन् विंशशताब्दौ यः, प्रथमाचार्य इष्यते।
चारित्र चक्रवर्ती च, गुरुः श्रीशांतिसागरः।।५।।
श्रीवीरसागराचार्यस्तस्य पट्टाधिपोऽभवत्।
तस्य ज्ञानमती शिष्याऽहं गणिन्यार्यिकाऽभवम्।।६।।
नवत्रिपंचद्वयंकेऽस्मिन्, वीराब्दे फाल्गुने सिते।
पंचमी मोक्षकल्याणे, ग्रन्थोऽयं पर्यपूर्यत।।७।।
श्री शान्तिकुन्थ्वरतीर्थेशां, त्रयाणां जिनमूर्तयः।
त्रिलोकरचनायां च, राजन्ते जिनमूर्तयः।।८।।
एतासां सर्वमूतीनां, तृतीया प्रतिष्ठापना।
तिथिः कल्याणदाद्यास्ति, ह्यस्यां ग्रन्थः समर्प्यते[१]।।९।।
कृत्रिमाकृत्रिमाद्या ये, जिनचैत्यजिनालयाः।
तेषां भक्त्यानुरागेण, त्रैलोक्यजिनमंदिरम्।।१०।।
गणिनी ज्ञानमत्येदं, शास्त्रं संकलितं मया।
यावन्मेर्वादयस्तावत् स्थेयाद् ग्रन्थाश्चिरं भुवि।।११।।
मंगलं शान्तिनाथोऽर्हन् कुंथुनाथोऽस्तु मंगलम्।
मंगलमरनाथोऽपि, जन्मभूमिश्च मंगलम्।।१२।।
त्रैलोक्यं मंगलं कुर्यात्, मंगलं नवदेवताः।
मंगलं जिनचैत्यानि, जैनधर्मोऽस्तु मंगलम्।।१३।।

---

१. श्री शांतिनाथ-कुंथुनाथ-अरनाथ की विशाल प्रतिमा एवं तीन लोक रचना की जिनप्रतिमाओं का आज तृतीय प्रतिष्ठापना दिवस है।

तीनलोक का ध्यान

-गणिनी आर्यिका ज्ञानमती

ध्यानमेकाग्र्यचित्तं स्याद्, ध्याता प्रसन्नचित्तभाक्।
तीर्थकृद्भगवान् ध्येयः, फलं सौख्यमतीन्द्रियम्।।१।।

ध्यान का लक्षण है चित्त का एकाग्र होना, प्रसन्नमना भव्यात्मा ध्याता— ध्यान करने वाला है। तीर्थंकर भगवान ध्येय— ध्यान करने योग्य-ध्यान के विषय हैं और अतीन्द्रिय सुख— मोक्षसुख प्राप्त होना यह ध्यान का फल है।

इस प्रकार ध्यान, ध्याता, ध्येय और ध्यान का फल इन चारों विषय को समझना चाहिए।

विशेषार्थ— यहाँ ध्येय में तीर्थंकर भगवान को लिया है। इसमें उनसे संबंधित उनकी प्रतिमाएं, जिनमंदिर, पंचपरमेष्ठी आदि तथा ॐ, ह्रीं, अर्हं आदि बीजाक्षर सभी आ जाते हैं। यहाँ तीनलोक का ध्यान विवक्षित है उसमें सभी पूज्य— तीनलोक के नवदेवता आदि आ जायेंगे।

तीनलोक का आकार बनाकर अर्थात् खड़े होकर दोनों पैर फैलाकर कमर पर हाथ रखकर खड़े आकार में तीनलोक का आकार बना लेवें। पुनः चिंतन करना प्रारंभ करें—

(१)

रज्जुश्चतुर्दशोत्तुंगः, पुरुषाकृतिवानयम्।
अस्मिन् लोके बिना ज्ञानात्, जीवा भ्राम्यन्त्यनादितः।।१।।

दोहा— **चौदह राजु उत्तुंग नभ, लोक पुरुष संठान।**
तामें जीव अनादि तें, भरमत है बिन ज्ञान।।

यह लोक— तीनलोक चौदह राजु ऊँचा है, सर्वत्र चौदह राजु मोटा है तथा नीचे चौदह राजु चौड़ा है और घटते-घटते मध्यलोक सात राजु के पास एक राजु चौड़ा रह गया है। पुनः बढ़ते हुए साढ़े तीन राजु तक ऊपर जाकर कुहनी के पास पाँच राजु हो गया है पुनः घटते-घटते ऊपर साढ़े तीन राजु ऊपर सिद्धशिला के पास एक राजु रह गया है। इसमें बीच-बीच में एक राजु चौड़ी व मोटी त्रसनाड़ी है।

अब इसमें सुविधा से समझने के लिए मध्यलोक से नीचे सात राजु में इस त्रसनाड़ी में दश भाग— हिस्से कर दीजिए।

नीचे एक भाग में निगोद पुनः सातवें नरक से लेकर प्रथम नरक तक सात भाग हुए, ऐसे आठ भाग हो गये। पुनः अपने शरीर में नाभि से नीचे लगभग चार-पाँच अंगुल में दो भाग कीजिए। ये खरभाग व पंकभाग हैं। अर्थात् शास्त्रीय भाषा में प्रथम पृथ्वी के तीन भाग होते हैं— खरभाग, पंकभाग और अब्बहुलभाग। इसमें से तृतीय भाग में तो प्रथम नरक हैं। ऊपर के दो भागों में भवनवासी व व्यंतर देवों के भवन बने हैं।

यह सभी प्रकरण इसी ग्रंथ में आ चुका है पृ. ४१ से ४४ तक खुलासा है।

इसमें खरभाग में भवनवासी देवों के असुरकुमार को छोड़कर शेष नव प्रकार के देवों के सात करोड़ आठ लाख भवन हैं तथा पंकभाग में असुरकुमार देवों के चौंसठ लाख भवन हैं, ऐसे सभी में मंदिर होने से ये दोनों भागों में ७,७२,००००० जिनमंदिर हैं। इन सभी मंदिरों को अपने शरीर में स्थापित कर ध्यान करो।

ऊपर के ऊर्ध्वलोक के सात राजु में इक्कीस (२१) भाग कीजिए। अपने शरीर में कटि— कमर के पास का प्रथम भाग मध्यलोक है। यह सुमेरुपर्वत की ऊँचाई-एक लाख योजन प्रमाण ऊँचा है व एक राजु चौड़ा है। इसमें थाली के समान आकार वाले असंख्यात द्वीप-समुद्र हैं। प्रथम जम्बूद्वीप से लेकर तेरहवें रुचकवर द्वीप तक मध्यलोक के अकृत्रिम जिनमंदिर चार सौ अट्ठावन हैं। यथायोग्य-यथास्थान इनका चिंतन करते हुए ध्यान करें।

पुनश्च ऊपर के आठ भागों में दो-दो ऐसे सौधर्म-ईशान, सानत्कुमार-माहेन्द्र आदि सोलह स्वर्गों की स्थापना करें। ऊपर क्रम से नव भागों में नवग्रैवेयक की कल्पना-स्थापना करें। इसके ऊपर एक भाग में एक बीच में चार दिशा व चार विदिशा में

ऐसे नव स्थानों में नव अनुदिश की स्थापना करें तथा इसके ऊपर एक भाग में चारों दिशाओं में एक-एक व बीच में एक, ऐसे पाँच अनुत्तर—विजय, वैजयंत, जयंत, अपराजित और सर्वार्थसिद्धि को स्थापित करें। इन सबके नाम पृ. ४३-४४ से कंठाग्र कर लें। इस प्रकार ऊर्ध्वलोक में १६ स्वर्गों के ८ भाग, नवग्रैवेयक के ९ भाग, नव अनुदिश का १ भाग व पंच अनुत्तर का एक भाग ऐसे ८+९+१+१=१९ भाग हो गये। ऊर्ध्वलोक के इक्कीस भाग में १ भाग मध्यलोक, १९ भाग ऊर्ध्वलोक के ऐसे २० भाग हो गये। अब इक्कीसवें (२१वें) भाग में सिद्धशिला बनाना है। ऊर्ध्वलोक के चौरासी लाख सत्तानवें हजार तेईस जिनमंदिर हैं। अधोलोक में भवनवासी के जिनमंदिर ७,७२०००००, मध्यलोक के ४५८ एवं ऊर्ध्वलोक के ८४,९७०२३, ये सर्व तीनलोक के अकृत्रिम जिनमंदिर आठ करोड़, छप्पन लाख, सत्तानवें हजार, चार सौ इक्यासी (८,५६,९७,४८१) हैं। इनको नमस्कार कीजिए। इन सबमें १०८-१०८ जिनप्रतिमाएं विराजमान हैं अतः नव सौ पचीस करोड़, त्रेपन लाख, सत्ताईस हजार, नव सौ अड़तालिस (९२५,५३,२७,९४८) इन सभी जिनमंदिर, जिनप्रतिमाओं का ध्यान करें। प्रथम चरण में यह ध्यान होता है।

(२)

अधोलोक में व्यंतर देवों के असंख्यात जिनमंदिर हैं।

व्यंतर देवों के खरभाग में किन्नर, किंपुरुष आदि आठ भेदों में राक्षसजाति के व्यंतरों को छोड़कर शेष सात भेदों के असंख्यातों भवन हैं तथा पंकभाग में राक्षस जाति के व्यंतर देवों के असंख्यातों भवन हैं। इन सबको अपने शरीर में स्थापित कर जिनमंदिर का चिंतन कर ध्यान करो। चूँकि सभी में जिनमंदिर हैं।

व्यंतरदेवों के भवन, भवनपुर और आवास ये तीन प्रकार के स्थान हैं। उनमें से ये भवन अधोलोक में हैं तथा भवनपुर व आवास ये मध्यलोक में असंख्यातों द्वीप-समुद्रों तक हैं। इन सभी में उतने ही जिनमंदिर हैं।

तथा भवनवासी देवों के भी असुरकुमार को छोड़कर शेष नव भेदों के भवनवासी के मध्यलोक में असंख्यातों द्वीप-समुद्रों तक असंख्यातों भवनपुर, आवास होने से इनके भी मध्यलोक में असंख्यात जिनमंदिर हो जाते हैं।

इस मध्यलोक में पृथ्वी से ७९० योजन की ऊँचाई से ज्योतिर्वासी देवों के ताराओं के विमान आदि ऐसे ९०० योजन तक ऊपर में आकाश में अधर सूर्य, चंद्रमा, ग्रह, नक्षत्र और ताराओं के विमान असंख्यातों द्वीप-समुद्रों तक असंख्यातों हैं। उन सभी में १-१ जिनमंदिर होने से ज्योतिर्वासी देवों के असंख्यातों जिनमंदिर हो जाते हैं। इन सभी अकृत्रिम जिनमंदिर व उनमें विराजमान १०८-१०८ जिनप्रतिमाओं को नमस्कार करें-इनका ध्यान करें।

इस प्रकार चारों प्रकार के देवों के जिनमंदिर व जिनप्रतिमाएं असंख्यातों हो गई हैं। तथा च—

मध्यलोक में ढाईद्वीप तक कृत्रिम जिनमंदिर व जिनप्रतिमाएं तीनों कालों की अपेक्षा अनंतानंत हो जाती हैं।

त्रैकालिक कृत्रिम सभी, जिनप्रतिमा जिनधाम।
कहे अनंतानंत ही, तिन्हें अनंत प्रणाम।।१।।

इन सभी का व अपने-अपने मंदिर व प्रतिमाओं का भी ध्यान करें। यहाँ तक ध्यान का द्वितीय चरण होता है।

(३)

मध्यलोक के प्रथम जम्बूद्वीप में १ भरत, १ ऐरावत व ३२ विदेह क्षेत्रों में ऐसी ३४ कर्मभूमियाँ हैं। ऐसे पूर्वधातकी खण्ड, पश्चिम धातकीखण्ड, पूर्वपुष्करार्धद्वीप व पश्चिम पुष्करार्धद्वीप इन चारों जगह भी ३४-३४ ऐसे ३४×५=१७० कर्मभूमियाँ इन ढाई द्वीपों तक हैं। इन सभी १७० कर्मभूमियों में भूत, वर्तमान व भविष्यकाल की अपेक्षा अनंतानंत अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, सर्वसाधु, जिनधर्म, जिनागम, जिनचैत्य और जिनचैत्यालय ये नवदेवता हुए हैं, होते हैं व होवेंगे। उन सभी को मध्यलोक में स्थापित कर नमस्कार करें।

ऐसे ही इन १७० कर्मभूमियों में त्रिकाल की अपेक्षा अनंतानंत तीर्थंकर हो जाते हैं। उन सभी का ध्यान करें। अनंतानंत गणधरदेव त्रिकालापेक्षा होते हैं। उन सभी को एवं वर्तमान चौबीस तीर्थंकरों, त्रैकालिक गणधरों को तथा चौबीस तीर्थंकरों के १४५९ गणधर देवों का ध्यान करते हुए नमस्कार करें। १७० कर्मभूमि के दिगम्बर जैन मुनिगण त्रिकाल की अपेक्षा अनंतानंत हो जाते हैं। इनमें अंतकृत्केवली होने वाले उपसर्ग विजयी आदि सभी मुनियों को एवं चौबीस तीर्थंकर के समवसरण के २८४८०००

मुनियों को नमस्कार होवे।

पुनः आर्यिका माताएं सर्वकर्मभूमि में त्रिकाल की अपेक्षा अनंतानंत एवं चौबीस तीर्थंकर के समवसरण की गणिनी ब्राह्मी आदि सभी आर्यिकाएं ५० लाख, ५६ हजार दो सौ पचास हैं उनको वंदामि करते हुए ध्यान करें। पुनः एक सौ सत्तर कर्मभूमियों की सर्व पंचकल्याणकभूमि, निर्वाणभूमि व अतिशय क्षेत्रों को नमस्कार कर उनका ध्यान करते हुए वर्तमान में इस भरतक्षेत्र के आर्यखंड में १६ तीर्थंकर जन्मभूमि, प्रयाग, अहिच्छत्र, जृंभिका, केवलज्ञानभूमि एवं कैलाशपर्वत, चंपापुरी, गिरनार, पावापुरी व सम्मेदशिखर निर्वाणभूमियों की वंदना करते हुए इनका ध्यान करें। यहाँ तक ध्यान का तृतीय चरण होता है।

(४)

अब चिंतन करें—मेरे मस्तक के अंदर ही अंतिम भाग में (पहले कहे हुए २१ भाग में से २१वें भाग में) सिद्धशिला है जो कि पैंतालिस लाख योजन (४५००००० योजन) विस्तृत अर्धचंद्राकार है। यह बीच में ८ योजन मोटी है। ढाईद्वीप प्रमाण इस सिद्धशिला पर अनंतानंत सिद्ध परमेष्ठी विराजमान हैं। ये सिद्धशिला के ऊपर घनोदधिवातवलय, घनवातवलय के ऊपर तथा तनुवातवलय के अंत में विराजमान हैं। इसी ग्रंथ में पृ. ३४१-३४२ तक पहले पढ़कर समझ लेना चाहिए।

ये सिद्ध भगवान सिद्धशिला से ३७ लाख ८६ हजार ९७५ धनुष ऊपर जाकर, ५२५ धनुष की उत्कृष्ट अवगाहना वाले सिद्ध हैं। पुनश्च ३७,८७,२५० धनुष ऊपर जाकर, भगवान ऋषभदेव ५०० धनुष की अवगाहना वाले पद्मासनमुद्रा में सिद्धशिला से ऊपर विराजमान हैं।

भगवान शांतिनाथ ३७ लाख, ८७ हजार ४६० धनुष ऊपर जाकर ४० धनुष की अवगाहना में खड्गासन मुद्रा में विराजमान हैं। ऐसे सभी उत्कृष्ट व मध्यम अवगाहना के त्रैकालिक अनंतानंत सिद्धों का ध्यान करें।

पुनः सिद्धशिला से ३७ लाख, ८७ हजार ४९९ धनुष अर्ध हाथ ऊपर जाकर जघन्य अवगाहना—साढ़े तीन हाथ की अवगाहना वाले सिद्ध भगवान विराजमान हैं, इन अनंतानंत त्रैकालिक सिद्धों को नमस्कार करते हुए सभी सिद्धों का ध्यान करें।

पुनः अंत में चिंतन करें—

इन सभी अधोलोक, मध्यलोक, ऊर्ध्वलोक के असंख्यातों अकृत्रिम जिनचैत्य, चैत्यालयों को, कृत्रिम अनंतानंत जिनचैत्य, चैत्यालयों को व मध्यलोक में ढाईद्वीप में स्थित अनंतानंत नवदेवताओं को अपने शरीर में विराजमान कर नमस्कार करके ध्यान में चिंतन करें-

इन सबका इस तीनलोक के आकार से बनाये हुए शरीर में ध्यान करते हुए मेरा मन पवित्र हो गया, मेरे वचन पवित्र हो गये। मेरा शरीर पवित्र हो गया एवं मेरी आत्मा पवित्र हो गई।

अब अपनी आत्मा को ऊर्ध्वगमन स्वभाव होने से लोक के अग्रभाग में सिद्धों के मध्य सिद्धशिला पर विराजमान कर चिंतन करें—

सिद्धोऽहं, बुद्धोऽहं, निरंजनोऽहं, निर्विकारोऽहं, निराकारोऽहं, लोकाग्रस्थितोऽहं, अनंतसिद्ध-मध्यविराजितोऽहं।

पुनः अंत में आँख खोलकर दोनों पैर समेट कर दोनों हाथ की हथेली खोलकर हाथ की रेखाओं में सिद्धशिला का आकार देखें और आगे लिखा श्लोक पढ़कर दोनों हाथ को मुकुलित जोड़कर नमस्कार करें—

देहदेवालये भान्ति, त्रैलोक्ये नवदेवताः।
स्वात्मायं तन्मयो भूत्वा, लोकस्योपरि राजते।।१।।

पुनश्च—

त्रिभुवन के मस्तक पर, सिद्धशिला पर सिद्ध अनंतानंत।
नमूँ नमूँ त्रिभुवन के सभी, तीर्थ को जिससे हो भव अन्त।।२।।

इस प्रकार यह तीन लोक का ध्यान चार चरण में अर्थात् चार बार में किया जा सकता है और जब अभ्यास परिपक्व हो जावे, तब एक बार में भी किया जा सकता है।